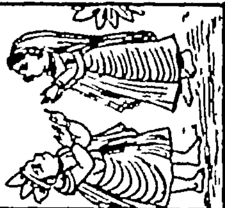
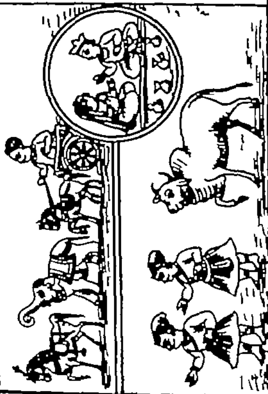
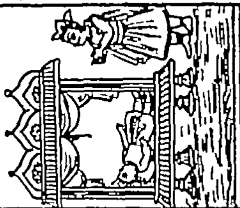
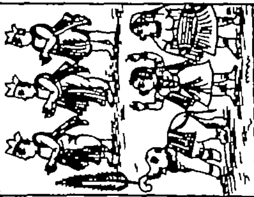
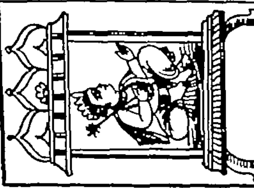


मुनि आत्मारामजी आनंदविजयजी



प्रस्तावना.

अनेक जैन ग्रंथोंके वेत्ता अरु अन्यमतकेन्नी बहोत ग्रंथोंके - करने वाले महामुनि आत्मारामजी आनंदविजयजी है, इनके तत्त्वज्ञानकं क्ति अरु परोपकारबुद्धि तथा यह पंचम कालके वर्तमान समयमें सिद्ध उत्सर्गापवाद पूर्वक यथार्थ जैनमार्गी सुसाधुयोंकी शुद्ध क्रियामें प्रवर्त्त कर पृथ्वीमें विहार करने सबंधी प्रख्याती यह भारतवर्षके बहुत देश रहनेवाले श्रावक मम्मलमें प्रसिद्ध है अरु इनकी निश्रामें रहने वाले योंका समुदायभी पूर्व महामुनियोंके सदृश बहोत गुणवान् नि मुक्षावाला है, तातें आत्मस्वरूपको जान कर परम पदकों साधने वाले, त्यादिक दशविध यतिधर्मके आराधक यह सत्पुरुष विषे हमारे इहां कुछ शेष प्रशंसा लिखनेकी आवश्यकता नहीं है इनके तीव्रबुद्धि अरु धम रुचि आदिक उत्तम गुण जो है, सो इनका बनाया यह ग्रंथ बांचनेसें ब द्धिमान् आपही जान जायंगे ऐसे सर्वदर्शनग्रंथज्ञाता अरु मुनिध लनशील महान्पुरुष, यह सांप्रत कालमें थोडेही दिखनेमें आते हैं

अब पूर्वाचार्योंके संस्कृत अरु मागधी भाषामें रचे हूये ग्रंथोंका शय न जाननेवाले और जैनतत्त्वस्वरूपके अज्ञात जनोके उपर उप बुद्धि करकें हालमें पूर्वोक्त महात्माने यह "जैनतत्त्वादर्श" नामा ग्र रचना न्यारे न्यारे बारह परिच्छेदरूपसें करी है सो इस प्रकारसें कि

प्रथम परिच्छेदमें शुद्ध देवतत्त्वका स्वरूप कथन कीया है, दूसरे रिच्छे कुदेवका स्वरूप वर्णन कीया है, तीसरे परिच्छेदमें शुद्ध गुरुतत्त्वका स्व कहा है, चौथे परिच्छेदमें कुगुरुका स्वरूप कथन करा है, पांचवे रिच्छे शुद्ध धर्मतत्त्वका स्वरूप नव तत्त्वरूपसें कथन कीया है, छठे परिच्छेदमें कुज्ञानका स्वरूप कथन करने वास्ते चौदह गुणस्थानकोंके स्वरूप कहे सातवे परिच्छेदमें सम्यक्दर्शनका स्वरूप कथन करा है, आठवे परिच्छेदमें म्यक्चारित्रके स्वरूप कथनमें देशविरतिचारित्र सबधी श्रावकोंके बारह तोंके स्वरूपका विस्तारपूर्वक वर्णन कीया है, नववे परिच्छेदमें श्रावकोंके नकृत्य, श्राद्धविधि ग्रंथानुसारसें लिखा है, दशवे परिच्छेदमें श्रावकोंका








तामलितापस ईसानेद्रथया तेनु चित्र

प्रस्तावना.

अनेक जैन ग्रंथोंके वेत्ता अरु अन्यमतकेभी बहोत ग्रंथोके अवलोकन करने वाले महामुनि आत्मारामजी आनंदविजयजी है,इनके तत्त्वज्ञानकी श क्ति अरु परोपकारबुद्धि तथा यह पचम कालके वर्त्तमान समयमें सिद्धातोक्त उत्सर्गापवाद पूर्वक यथार्थ जैनमार्गी सुसाधुयोंकी शुद्ध क्रियामें प्रवर्त्त हो कर पृथ्वीमें विहार करने सबंधी प्रख्याती यह भारतवर्षके बहुत देशोके रहनेवाले श्रावक मम्मलमें प्रसिद्ध है अरु इनकी निश्रामें रहने वाले साधु योंका समुदायभी पूर्व महामुनियोंके सदृश बहोत गुणवान् निर्विकारी मुद्रावाला है, तातें आत्मस्वरूपको जान कर परम पदकों साधने वाले, क्षां त्यादिक दशविध यतिधर्मके आराधक यह सत्पुरुष विषे हमारे इहां कुछ वि शेष प्रशंसा लिखनेकी आवश्यकता नहीं है इनके तीव्रबुद्धि अरु धर्माभि रुचि आदिक उत्तम गुण जो है,सो इनका बनाया यह ग्रथ बांचनेसें सद्बु द्धिमान् आपही जान जायंगे ऐसे सर्वदर्शनग्रथज्ञाता अरु मुनिधर्मपा लनशील महान्पुरुष, यह सांप्रत कालमें थोडेही दिखनेमें आते हैं

अब पूर्वाचार्योंके संस्कृत अरु मागधी भाषामें रचे हूये ग्रंथोंका आ शय न जाननेवाले और जैनतत्त्वस्वरूपके अज्ञात जनोके उपर उपकार बुद्धि करकें हालमें पूर्वोक्त महात्माने यह “ जैनतत्त्वादर्श ” नामा ग्रथकी रचना न्यारे न्यारे बारह परिछेदरूपसें करी है सो इस प्रकारसें कि –

प्रथम परिछेदमें शुद्ध देवतत्त्वका स्वरूप कथन कीया है, दूसरे परिछेदमें कुदेवका स्वरूप वर्णन कीया है, तीसरे परिछेदमें शुद्ध गुरुतत्त्वका स्वरूप कहा है, चौथे परिछेदमें कुगुरुका स्वरूप कथन करा है, पांचवे परिछेदमें शुद्ध धर्मतत्त्वका स्वरूप नव तत्त्वरूपसें कथन कीया है,छठे परिछेदमें सम्य ग्ज्ञानका स्वरूप कथन करने वास्ते चौदह गुणस्थानकोंके स्वरूप कहे हैं, सातवे परिछेदमें सम्यग्दर्शनका स्वरूप कथन करा है, आठवे परिछेदमें स म्यक्चारित्रके स्वरूप कथनमें देशविरतिचारित्र सबधी श्रावकोंके बारह व्र तोंके स्वरूपका विस्तारपूर्वक वर्णन कीया है, नववे परिछेदमें श्रावकोंका दि नकृत्य, श्राद्धविधि ग्रंथानुसारसें लिखा है, दशवे परिछेदमें श्रावकोंका रात्रि

कृत्य, पाक्षिककृत्य, चौमासीकृत्य, संवत्सरीकृत्य अरु जन्मकृत्य, यह पांचो कृत्यका स्वरूप वर्णन करा है, इग्यारहवे परिछेदमें श्रीआदीश्वर जगवानसे ले कर श्रीमहावीर जगवान् पर्यंतके कितनेक इतिहासोंका वर्णन करके उससे जैनमत अनादि है ऐसा सिद्ध करा है, अरु दूसरा नवीन बौद्धादिक पाखंमी धर्मके मतों अमुक अमुक बखतसें निकले हैं यहजी दर्साय दीया है, बारहवे परिछेदमें श्रीवर्द्धमान स्वामीके निर्वाण पीछें के किंचित् इतिहास लिखे है इस्सेंजी कितनेक नवीन मतों निकलनेका वखत मालुम पडजाता है

इस प्रकारसे उपर लिखे हूये बारह परिछेदों करिकें यह ग्रंथ समाप्त कीया है यह ऊपर कहे हुये प्रत्येक परिछेदमें मात्र उसमें लिखे जये विषयोंकाही वर्णन कीया है, इतनाही नहीं, परंतु उसके साथ मीमांसकादि अन्यमतवालोंका स्वरूप लिखकें पीछें पूर्वाचार्य रचित सम्मतितर्कादि अनेक जैनशास्त्रोंके अनुसार उन मतोंका खंमनजी सविस्तर कीया है, तातें यह ग्रंथके बांचनेवालोंकू अन्य सांख्यादि दर्शनोंका कछुक स्वरूपजी मालुम हो जावेगा, फेर उसका यथास्थित खंमनजी जाननेमें आवेगा

जैसें मन कल्पनासें निकले हूये नवीन दर्शनोंका उछापन करनेमें यह ग्रंथ उपयोगी है तैसेंही कितनेक जैनमतमें प्रवर्त्तनेवाले जैनशास्त्रोंकी अनेकांत शैलीकों न पीछाननेवाले ऐसे विचित्र विकार युक्त अल्पज्ञ जनोंकी अज्ञानता दूर करनेकोंजी यह ग्रंथ बहोत उपयोगी है, क्योंकि, इस वर्त्तमान कालमें कितने एक जैनमती अपनीअपनी मरजी माफक अध्यात्मज्ञानी बनकें व्यवहारपक्षका त्याग करकें आवश्यकादि क्रियायोंकों उछापकें एकही निश्चयमार्गकों स्वीकार करनेकाही उपदेश लोकोंकों करते फिरते हैं, ऐसे अल्पवेत्ता एकांतपक्षके ग्राहक, स्वमतीयोंकों जी बहोत जैनशास्त्रोंके अनुसार तिनकी आशंकायोंके निवारण पूर्वक क्रियादि शुजव्यवहारमें प्रवृत्त करनेका बहोत करकें छठे परिछेदमें चौदह गुणस्थानोंके स्वरूपमें जहां छठे सातमे गुणस्थानकका स्वरूप कथन कीया है, उसी जगापर अरु दूसरें परिछेदोंमेंजी बहोत स्थलोंमें उपदेश कीया है

तथा अबके समयमें कछुक संस्कृतादि शास्त्राज्यास करकें अरु कोइ ग्रंथ देखे न देखे ऐसें कितनेक लोक अपनी मन कल्पित बातों कहते हैं कि जैनमत बौद्धमतमेंसें निकला है, कितनेक कहेते हैं कि गौतमऋषिने जैनमत

चलाया हैं, ऐसी विचित्र प्रकारकी कल्पना अज्ञानी लोक करते हैं, तथा वेदोंकों सच्चा करणे वास्ते उनके पुराना अर्थोंकों उलटायकें नवीन अर्थ बनाने वाले दयानदजीने तो जैनमतके लक्षावधि ग्रथो आज मोजूद है तिनमेंसूं कोइएक ग्रथके एक पत्तेनी देखे न होवेंगें तोनी विचारे जइक शिष्योंकों अपना पांमित्य दर्शावनेके वास्ते आपके बनवाये हूये पुस्तकोंमें जैन अरु चार्वाक ए दोनुं मत एकही करके लिख दीये हैं, ऐसें ऐसें अपनी कपोल कल्पित बातों करकें जोले लोकोंकों फसाने वाले कपटी लोकोंका कपट रूप वल्लीका छेदन करणेकोंनी यह ग्रथ कुगर समान है

तथा वर्त्तमान समयमें कितनेक अल्पतर,सांसारिक विद्यामात्रकाही कछुक अन्यास करिकें,ऐसें जान रहे हैं कि,हमही सर्व शास्त्रोंके रहस्यार्थ जान गये हैं,दूसरे धर्माचार्यादिकों तों कुछनी समजते नहि वो अपनी डुर्बुद्धिके प्रावल्यसें ऐसे जान रहे हैं कि, पुण्यपापादिक, स्वर्ग नरक परनवादिक अरु धर्मकर्मादिक कुछनी नही है, सब ढोंग है खाना,पीनां और मौज करनां यही सच्चा है,इत्यादि चार्वाक दर्शनके न्याई नास्तिक होय बैठने वालोंकोंनी अनेक शास्त्रोंका हेतु दृष्टांत दर्सायके कोइ कोइ परिछेदके कोइ कोइ स्थलोंमे अछी युक्तियों पूर्वक उनका डुराग्रह दूर करणेका उपदेश करणेमें आया है

तैसेंही मात्र हम जैनमतवाले हैं, ऐसा नाम धराय कें नि केवल अपने अज्ञानसें पराजवित हूये हग्ग्राहिलकी प्रकर्पतासें श्रीवीतरागजाषित धर्मकों उलटाय कें अपनी स्वेछासें श्री जिनप्रतिमाकों उछाप कें जैनमतकी हेलना करनेवाले ऐसें ढूंढकादि लोकों जो यह पंचमकालके महात्म्यसें बहोत डुष्ट परिणतिकों धारण करकें, जइकजनोंकों अधर्मका उपदेश करते फिरते रहते है, उन डुर्गतिमें पडनेवाले जनोके विषकों दूर करणे वास्तेनी यह ग्रथ सुधा तुल्य औपधसदृश दीख पडता है क्योंकि,इन लोकोंकोंनी कुमार्गसें हटायकें सन्मार्गमें ल्यावने वास्ते यह ग्रंथके प्रत्येक परिछेदोंमें बहोत जगेपर अनेक शास्त्रोंकी साक्षीयों दर्सायकें उपदेश कीया है, इस्सें इन लोकोंपरनी यह ग्रथ बनानेवालेने बडा उपकार कीया मालुम होता है

औ इस ग्रथमें कितनेक इतिहासो ऐसे लिखे है कि —जिन इतिहासकों वांचनेंसें शास्त्रोंमें कही हुइ वार्त्तायोंकूं आजके समयमें अयोग्य माननेवालोंकी शकायों तत्काल दूर होयकें उलटी तिस शास्त्रोंके उपर यथार्थ आस्ता

कृत्य, पाक्षिककृत्य, चौमासीकृत्य, संवत्सरीकृत्य अरु जन्मकृत्य, यह पांचो कृत्यका स्वरूप वर्णन करा है, इग्यारहवे परिछेदमें श्रीआदीश्वर भगवान्से ले कर श्रीमहावीर भगवान् पर्यंतके कितनेक इतिहासोंका वर्णन करके उससें जैनमत अनादि है ऐसा सिद्ध करा है, अरु दूसरा नवीन बौद्धादिक पाखंडी धर्मके मतों अमुक अमुक वखतसें निकले हैं यहभी दर्शाय दीया है, बार हवे परिछेदमें श्रीवर्द्धमान स्वामीके निर्वाण पीछें के किंचित् इतिहास लिखे है इस्सेंभी कितनेक नवीन मतों निकलनेका वखत मालुम पडजाता है

इस प्रकारसें उपर लिखे हूये बारह परिछेदो करिकें यह ग्रंथ समाप्त कीया है यह उपर कहे हुये प्रत्येक परिछेदमें मात्र उसमें लिखे भये वि षयोंकाही वर्णन कीया है, इतनाही नहीं, परंतु उसके साथ मीमांसकादि अन्यमतवालोंका स्वरूप लिखकें पीछें पूर्वाचार्य रचित सम्मतितर्कादि अ नेक जैनशास्त्रोंके अनुसार उन मतोंका खंमनभी सविस्तर कीया है, तातें यह ग्रंथके बांचनेवालोंकू अन्य सांख्यादि दर्शनोंका कछुक स्वरूपभी मालुम हो जावेगा, फेर उसका यथास्थित खंमनभी जाननेमें आवेगा

जैसे मन कल्पनासें निकले हूये नवीन दर्शनोंका उत्थापन करनेमें यह ग्रंथ उपयोगी है तैसेही कितनेक जैनमतमें प्रवर्त्तनेवाले जैनशास्त्रोंकी अनेकांत शैलीकों न पीछाननेवाले ऐसे विचित्र विकार युक्त अल्पज्ञ जनोंकी अज्ञानता दूर करनेकोंभी यह ग्रंथ बहोत उपयोगी है, क्यों कि, इस वर्त्तमान कालमें कितने एक जैनमती अपनीअपनी मरजी मा फक अध्यात्मज्ञानी बनकें व्यवहारपक्षका त्याग करके आवश्यकादि क्रि यायोंकों उत्थाप कें एकही निश्चयमार्गकों स्वीकार करनेकाही उपदेश लो कोंकों करते फिरते हैं, ऐसे अल्पवेत्ता एकांतपक्षके ग्राहक, स्वमतीयोंकों भी बहोत जैनशास्त्रोंके अनुसार तिनकी आशंकायोंके निवारण पूर्वक क्रि यादि शुद्धव्यवहारमें प्रवृत्त करनेका बहोत करकें छठे परिछेदमें चौदह गुण स्थानोंके स्वरूपमें जहां छठे सातमे गुणस्थानकका स्वरूप कथन कीया है, उसी जगापर अरु दूसरें परिछेदोंमेंभी बहोत स्थलोंमें उपदेश कीया है

तथा अबके समयमें कछुक संस्कृतादि शास्त्राभ्यास करकें अरु कोइ ग्रंथ देखे न देखे ऐसें कितनेक लोक अपनी मन कल्पित बातों कहते हैं कि जै नमत बौद्धमतमेंसे निकला है, कितनेक कहेते हैं कि गौतमऋषिने जैनमत

॥ अस्य ग्रंथस्यानुक्रमणिका प्रारभ्यते ॥

॥ तत्र ॥

॥ प्रथम परिछेदमें देव तत्त्वका स्वरूप है तिसकी अनुक्रमणिका लिखते हैं ॥

॥ अथ दूसरे परिछेदमें कुदेवका स्वरूप है, तिसकी अनुक्रमणिका लिखते हैं ॥

हो जावे, इत्यादिक अनेक वातो चमत्कृतियुक्त इस ग्रंथमें सूचन कराई है, इसवास्ते यह ग्रंथ, तत्त्वरूप सुवोधकारक अरु कुमार्गकी प्रवृत्तिसे हटाने वाला बहोत मनोरंजक है इन ग्रंथस्थ सब बातके यथार्थ स्वरूप इस जगापर लिखनेसें प्रस्तावनाकी वृद्धि होति है इस वास्ते वांचने वाले सज्जनोंकों इस ग्रंथका सूक्ष्म बुद्धिसे विचारपूर्वक संपूर्ण अवलोकन करणेसे यथार्थ स्वरूप समजनेमें आ जावेगा

और यह ग्रंथकी हिंदुस्थानी नाषामें रचना करी है तिस्से गुर्जर, मारवाड, पंजाव, पूर्व अरु दक्षिण, आदिक सर्व देशोंके रहनेवाले, कोइनी देशकी नाषा जाननेवालेकोंनी वांचनेमें यह ग्रंथ अत्यंत सुगम पडेगा

निष्पक्षपात बुद्धिवाले तथा धर्मतत्त्वकी जिज्ञासा करनेके अनिमानी, सद्धर्म अंगीकार करनेके अधिकारी, विवेकी नव्यजीवोंकू इस ग्रंथके वांचने तथा पढने सुननेसें उत्तम प्रकारके सद्बोधका लान प्राप्त होवेगा, औसा जानिकें श्रीमक्सुदाबाद शहेरके रहनेवाले बाबूसाहेव राय धनपति सिंहजी प्रतापसिंहजी बाहादूर जो अबके समयमें कुमारपालादिकोंकी तरें जैनशास्त्रोंके उद्धार करनेमें आगेवान गिने जाते हैं, तिन साहेवका वडा आश्रय लेकें मैनें यह ग्रंथ छपा कर प्रसिद्ध कीया है, औरनी जैनधर्मकी वृद्धि इछनेवाले हमारे साधर्मिक नाइयोंकों मैं अर्ज करता हूं कि, उदारतापूर्वक यह ग्रंथके यथाशक्ति पुस्तकों खरीद करकें शास्त्रान्यासी जनोंकों वांट दे कर मुजकों अवश्य आश्रय देनां, ये बडा उत्तम पुण्यानुबंधी पुण्य उपार्जन करनेका हेतु है, औ इस ग्रंथकी श्लोक संख्या (१५०००) आशरे हैं

यह ग्रंथके पढने वाले समस्त साहेबोंकों मैं बडी नम्रतापूर्वक विनति करता हू कि, ये ग्रंथ बनानेवालेने तो यथार्थ जैनशैली पूर्वक लखाण कीया है, परंतु मैंने मेरी बुद्धिकी न्यूनतासें, दृष्टिदोषकी प्रबलतासें तथा शास्त्रोंकी शैलीका परिपूर्ण ज्ञानके अनावसें जो कुछ छपनेमें चूक करी होवे, सो गुणज्ञ जनोनें मेरेकों मंद प्रज्ञावाला जानके मेरे पर सुनजरही रख कर दोष सुधार लेनो चाहियें, यही सत्पुरुषके लक्षणका श्रेष्ठ चिन्ह है किं बहु विलेखनेन

॥ श्रावक नीमसिंह माणक ॥

॥ अस्य ग्रंथस्यानुक्रमणिका प्रारभ्यते ॥

॥ तत्र ॥

॥ प्रथम परिछेदमे देव तत्त्वका स्वरूप है तिसकी अनुक्रमणिका लिखते है ॥

॥ अथ दूसरे परिछेदमें कुदेवका स्वरूप है, तिसकी अनुक्रमणिका लिखते हैं ॥

हो जावे, इत्यादिक अनेक वार्त्ता चमत्कृतियुक्त इस ग्रंथमे सूचन कराई है, इसवास्ते यह ग्रथ, उत्कृष्ठ सुबोधकारक अरु कुमार्गकी प्रवृत्तिसे हटाने वाला वहोत मनोरंजक है इन ग्रथस्थ सब बातके यथार्थ स्वरूप इस जगापर लिखनेसें प्रस्तावनाकी वृद्धि होति है इस वास्ते वांचने वाले सज्जनोंकों इस ग्रथका सूक्ष्म बुद्धिसें विचारपूर्वक सपूर्ण अवलोकन करणेसे यथार्थ स्वरूप समजनेमें आ जावेगा

और यह ग्रथकी हिंदुस्थानी नाषामें रचना करी है तिस्से गुर्जर,मार वाड, पंजाब, पूर्व अरु दक्षिण, आदिक सर्व देशोंके रहनेवाले, कोइनी देशकी नाषा जाननेवालेकोंनी वांचनेमें यह ग्रथ अत्यंत सुगम पढेगा

निष्पक्षपात बुद्धिवाले तथा धर्मतत्त्वकी जिज्ञासा करनेके अनिमानी, सद्धर्म अंगीकार करनेके अधिकारी, विवेकी नव्यजीवोंकू इस ग्रथके वांचने तथा पढने सुननेसें उत्तम प्रकारके सद्बोधका लान प्राप्त होवेगा, असा जानिकें श्रीमकृष्ठदावाद शहेरके रहनेवाले बाबूसाहेब राय धनपति सिंहजी प्रतापसिंहजी बाहादूर जो अबके समयमें कुमारपालादिकोंकी तरें जैनशास्त्रोंके उद्धार करनेमें आगेवान गिने जाते हैं, तिन साहेबका वडा आश्रय ले कें मैनें यह ग्रथ ठपा कर प्रसिद्ध कीया है, औरनी जैनधर्मकी वृद्धि इछनेवाले हमारे साधर्मिक नाइयोंकों मैं अर्ज करता हूं कि, उदारतापूर्वक यह ग्रथके यथाशक्ति पुस्तकों खरीद करकें शास्त्राच्यासी जनोंकों बांट दे कर मुजकों अवश्य आश्रय देनां, ये बडा उत्तम पुण्यानुबधी पुण्य उपार्जन करनेका हेतु है,औ इस ग्रथकी श्लोक संख्या (१६०००) आशरे हैं

यह ग्रथके पढने वाले समस्त साहेबोंकों मैं बडी नम्रतापूर्वक विनति करता हू कि, ये ग्रंथ बनानेवालेने तो यथार्थ जैनशैली पूर्वक लखाण कीया है,परंतु मैंने मेरी बुद्धिकी न्यूनतासें,दृष्टिदोषकी प्रबलतासें तथा शास्त्रोंकी शैलीका परिपूर्ण ज्ञानके अनावसें जो कुछ ठपनेमें चूक करी होवे, सो गुणज्ञ जनोनें मेरेकों मंद प्रज्ञावाला जानके मेरे पर सुनजरही रख कर दोष सुधार लेनां चाहियें,यही सत्पुरुषके लक्षणका श्रेष्ठ चिन्ह है किं बहु विलेखनेन.

॥ श्रावक नीमसिंह माणक ॥

॥ अस्य ग्रंथस्यानुक्रमणिका प्रारभ्यते ॥

॥ तत्र ॥

॥ प्रथम परिछेदमें देव तत्त्वका स्वरूप है तिसकी अनुक्रमणिका लिखते हैं ॥

॥ अथ दूसरे परिछेदमें कुदेवका स्वरूप है, तिसकी अनुक्रमणिका लिखते हैं ॥

हो जावे, इत्यादिक अनेक वार्ता चमत्कृतियुक्त इस ग्रंथमे सूचन कराई है, इसवास्ते यह ग्रंथ, उत्कृष्ट सुवोधकारक अरु कुमार्गकी प्रवृत्तिसे हटाने वाला बहोत मनोरंजक है इन ग्रंथस्थ सब वातके यथार्थ स्वरूप इस जगापर लिखनेसे प्रस्तावनाकी वृद्धि होति है इस वास्ते वांचने वाले सज्जनोंकों इस ग्रंथका सूक्ष्म बुद्धिसे विचारपूर्वक संपूर्ण अवलोकन करणेसें यथार्थ स्वरूप समजनेमें आ जावेगा

और यह ग्रंथकी हिंदुस्थानी जाषामें रचना करी है तिस्से गुर्जर, मारवाड, पंजाब, पूर्व अरु दक्षिण, आदिक सर्व देशोंके रहनेवाले, कोइजी देशकी जाषा जाननेवालेकोंजी वांचनेमें यह ग्रंथ अत्यंत सुगम पडेगा

निष्पक्षपात बुद्धिवाले तथा धर्मतत्त्वकी जिज्ञासा करनेके अजिमानी, सद्धर्म अंगीकार करनेके अधिकारी, विवेकी जव्यजीवोंकू इस ग्रंथके वांचने तथा पढने सुननेसें उत्तम प्रकारके सद्बोधका लाज प्राप्त होवेगा, अैसा जानिकें श्रीमक्षुदावाद शहेरकें रहनेवाले वावूसाहेब राय धनपतिसिंहजी प्रतापसिंहजी बाहादूर जो अबके समयमें कुमारपालादिकोंकी तरें जैनशास्त्रोंके उद्धार करनेमें आगेवान गिने जाते हैं, तिन साहेबका वडा आश्रय लेकें मैनें यह ग्रंथ छपा कर प्रसिद्ध कीया है, औरजी जैनधर्मकी वृद्धि इछनेवाले हमारे साधर्मिक जाइयोंकों मैं अर्ज करतां हूं कि, उदारतापूर्वक यह ग्रंथके यथाशक्ति पुस्तकों खरीद करकें शास्त्राज्यासी जनोंकों बांट दे कर मुजकों अवश्य आश्रय देनां, ये बडा उत्तम पुण्यानुबंधी पुण्य उपार्जन करनेका हेतु है, औ इस ग्रंथकी श्लोक संख्या (१६०००) आशरे हैं

यह ग्रंथके पढने वाले समस्त साहेबोंकों मैं बडी नम्रतापूर्वक विनति करता हू कि, ये ग्रंथ बनानेवालेने तो यथार्थ जैनशैली पूर्वक लखाण कीया है, परंतु मैंने मेरी बुद्धिकी न्यूनतासें, दृष्टिदोषकी प्रबलतासें तथा शास्त्रोंकी शैलीका परिपूर्ण ज्ञानके अजावसें जो कुछ छपनेमें चूक करी होवे, सो गुणज्ञ जनोनें मेरेकों मंद प्रज्ञावाला जानकें मेरे पर सुनजरही रखकर दोष सुधार लेनां चाहियें, यही सत्पुरुषके लक्षणका श्रेष्ठ चिन्ह है किं बहु विलेखनेन.

॥ श्रावक जीमसिंह माणक ॥

॥ अस्य ग्रथस्यानुक्रमणिका प्रारभ्यते ॥

॥ तत्र ॥

॥ प्रथम परिछेदमें देव तत्त्वका स्वरूप है तिसकी अनुक्रमणिका लिखते हैं ॥

॥ अथ दूसरे परिछेदमें कुदेवका स्वरूप है,तिसकी अनुक्रमणिका लिखते हैं ॥

हो जावे, इत्यादिक अनेक वार्ता चमत्कृतियुक्त इस ग्रंथमे सूचन कराई है, इसवास्ते यह ग्रंथ, उत्कृष्ट सुबोधकारक अरु कुमार्गकी प्रवृत्तिसे हटाने वाला बहोत मनोरंजक है इन ग्रंथस्थ सब बातके यथार्थ स्वरूप इस जगापर लिखनेसे प्रस्तावनाकी वृद्धि होति है इस वास्ते वांचने वाले सज्जनोंकों इस ग्रंथका सूक्ष्म बुद्धिसें विचारपूर्वक संपूर्ण अवलोकन करणेसे यथार्थ स्वरूप समजनेमें आ जावेगा.

और यह ग्रंथकी हिंदुस्थानी जाषामें रचना करी है तिस्सें गुर्जर, मार वाड, पंजाब, पूर्व अरु दक्षिण, आदिक सर्व देशोंके रहनेवाले, कोइनी दे शकी जाषा जाननेवालेकोंनी वांचनेमें यह ग्रंथ अत्यंत सुगम पडेगा

निष्पक्षपात बुद्धिवाले तथा धर्मतत्त्वकी जिज्ञासा करनेके अजिमानी, सद्धर्म अंगीकार करनेके अधिकारी, विवेकी जव्यजीवोंकू इस ग्रंथके वां चने तथा पढने सुननेसें उत्तम प्रकारके सद्बोधका लाज प्राप्त होवेगा, असा जानिकें श्रीमक्सुदाबाद शहेरके रहनेवाले बाबूसाहेब राय धनपति सिंहजी प्रतापसिंहजी बाहादूर जो अबके समयमें कुमारपालादिकोंकी तरें जैनशास्त्रोंके उद्धार करनेमें आगेवान गिने जाते हैं, तिन साहेबका बडा आश्रय ले कें मैनें यह ग्रंथ उपा कर प्रसिद्ध कीया है, औरजी जैनधर्मकी वृद्धि इछनेवाले हमारे साधर्मिक जाइयोंकों मैं अर्ज करता हूं कि, उदार तापूर्वक यह ग्रंथके यथाशक्ति पुस्तकों खरीद करकें शास्त्राज्यासी जनोंकों बांट दे कर मुजकों अवश्य आश्रय देना, ये बडा उत्तम पुण्यानुबंधी पुण्य उ पार्जन करनेका हेतु है, औ इस ग्रंथकी श्लोक संख्या (१५०००) आशरे हैं

यह ग्रंथके पढने वाले समस्त साहेबोंकों मैं बडी नम्रतापूर्वक विनति करता हू कि, ये ग्रंथ बनानेवालेने तो यथार्थ जैनशैली पूर्वक लखाण कीया है, परंतु मैंने मेरी बुद्धिकी न्यूनतासें, दृष्टिदोषकी प्रबलतासें तथा शास्त्रोंकी शैलीका परिपूर्ण ज्ञानके अजावसें जो कुछ उपनेमें चूक करी होवे, सो गुणज्ञ जनोनें मेरेकों मंद प्रज्ञावाला जानके मेरे पर सुनजरही रख कर दोष सुधार लेना चाहियें, यही सत्पुरुषके लक्षणका श्रेष्ठ चिन्ह है किं बहु बिलेखनेन.

॥ श्रावक जीमसिंह माणक ॥

॥ अस्य ग्रथस्यानुक्रमणिका प्रारन्यते ॥

॥ तत्र ॥

॥ प्रथम परिछेदमें देव तत्त्वका स्वरूप है तिसकी अनुक्रमणिका लिखते हैं ॥

॥ अथ दूसरे परिछेदमें कुदेवका स्वरूप है,तिसकी अनुक्रमणिका लिखते हैं ॥

तीसरे परिछेदमें गुरुतत्त्वका स्वरूप कहा है तिसकी अनुक्रमणिका॥

॥ चतुर्थ परिच्छेदमें कुगुरुका स्वरूप कहा है, तिसकी अनुक्रमणिका ॥

॥ पंचम परिछेदमें शुद्ध धर्मतत्त्वका स्वरूप कहा है, तिसकी अनुक्रमणिका ॥

॥ षष्ठ परिछेदमें चौदह गुणस्थानकका स्वरूप है, तिसकी अनुक्रमणिका ॥

॥ सप्तम परिच्छेदमें सम्यग् दर्शनका स्वरूप लिखा है, तिसकी अनुक्रमणिका ॥

॥ अष्टम परिछेदमें चारित्रका स्वरूप कहा है तिसकी अनुक्रमणिका ॥

॥नवम परिछेदमें श्रावकोंका दिन कृत्य विधि कहा है,तिसकी अनुक्रमणिका॥

॥दशम परिछेदमें रात्रिकृत्य आदिक पाच कृत्य कहे हैं, तिसकी अनुक्रमणिका॥

॥ एकादश परिछेदमें श्री रूषभादिसें महावीर पर्यंत जैनमतादि शास्त्रों ॥
॥ के अनुसार इतिहास कहे हैं, तिसकी अनुक्रमणिका ॥

॥ बारहवे परिछेदमें श्री महावीर भगवान्सें ले कर आजपर्यंत
॥ कितनेक वृत्तांत लिखे है, तिसकी अनुक्रमणिका ॥

॥ ॐ नम स्याद्वादवादिने ॥

॥ अथ तपागच्छीय ॥

॥ मुनिश्री आनंद विजय आत्मारामजी विरचित् ॥

॥ जैनतत्वादर्श नामक ग्रंथ प्रारम्भः ॥

॥ तत्र प्रथम परिछेद ॥

॥ अनुष्टुब् वृत्तम् ॥

॥ स्यात्कारमुद्रितानेक, सदसद्भाववेदिनम् ॥
॥ प्रमाणरूपमव्यक्त, भगवंतमुपास्महे ॥ १ ॥

॥ अथ प्रथम देव, गुरु औ धर्म इन तीनो ॥
॥ तत्वोंका स्वरूप किंचित् लिख्यते ॥

विदित हो कि जो यह जैनमतहै तिसका स्वरूप श्री तीर्थकर,गणधर और पूर्वाचार्यादिकोंने आगम निर्युक्ति भाष्य चूर्णि टीका औ प्रकरण तर्कादि अनेक ग्रंथद्वारा स्पष्ट निरूपन कीयाहै परंतु पूर्वाचार्य रचित सर्व ग्रंथ प्राकृत वा संस्कृत भाषामें हैं सो अब जैन लोगोंके पढणेमे उद्यमके नकरणेसें उन अति उत्तम अद्भुत ग्रंथोंका आशय लुप्त प्राय हो रहाहै सोकि तनेक भव्य जीवोंकी प्रेरणासें तथा स्वकर्म्म निर्ज्जराकी आशयसे जिनकू प्राकृत वा संस्कृत पढणी कठिनहै तिनोके उपकारार्थ देव, गुरु औ धर्मका स्वरूप किंचित् मात्र इस भाषा ग्रंथमें लिखतेहैं

सर्व श्रोतवर्गसे नम्रता पूर्वक यह विनतीहैकि जो इस ग्रंथकू पढे सो जहां मैने जिनमार्गसें विरुद्ध लिखाहो तहां यथार्थ लिख देवें यह मेरे उपर बडा अनुग्रह होगा इस ग्रंथके लिखनेका मेरा मुख्य प्रयोजनतो यहहै जो इस कालमें बहुत नविन मत लोकोने स्वकपोल कल्पित प्रगट करेहैं तथा अंगरेजोंकी औ मुसलमानोकी विद्यापढणेसें तथा अनेक प्रकारके मत मतांतरोंकी वार्ता सुणनेसें अनेक भव्य जीवांकू अनेक प्रकारके संशय उत्पन्नहो रहेहै तिनके दूर करणेके वास्ते इस ग्रंथका प्रारंभ कीयाहै अब पूर्वोक्त तीनो तत्वोंमे प्रथम देवतत्वका स्वरूप लिखतेहैं

देव नाम परमेश्वरकाहै सो परमेश्वरके स्वरूपमें अनेक प्रकारके विकल्प मतांतरिये पुरुष करतेहै सो जैनमतमें परमेश्वरका क्यास्वरूप मान्या है सो तिस परमेश्वरका स्वरूप नाम रूप औ विशेषण संयुक्त लिखतेंहै जैन मतमेजो परमेश्वर मान्याहै सो बारां गुण संयुक्त औ अष्टादश दूषण रहित अर्हंत परमेश्वरहै औ जो परमेश्वर उक्त बारांगुण रहित तथा अष्टादश दूषण सहित होगा तिसमे कदापि परमेश्वरता सिद्ध नही होगी यह कथन आगे चलकर लिखेंगे

अब प्रथम बारां गुण लिखतेंहै अशोकवृक्षादि अष्टमहा प्रातिहार्य सर्व जैनलोगोमें प्रसिद्धहै तथा चार मूलातिशय एव सर्व बारां गुणहै तिनमें चार मूलातिशयका नाम कहतेंहै (१) ज्ञानातिशय (२) वागतिशय (३) अपायापगमातिशय (४) पूजातिशय तत्र प्रथम ज्ञानातिशयका स्वरूप कहतेहै केवलज्ञान केवल दर्शन करी भूत भविष्य वर्तमान कालमे जो सामान्य विशेषात्मक वस्तुहै तिसकू तथा उत्पाद व्यय ध्रौव्ययुक्तं सत् त्रिकाल संबंधि जो सत् वस्तुका जानना तिसका नाम ज्ञानातिशयहै दूजी वचनातिशय तिणमें भगवतका वचन पेंतीस अतिशय करी संयुक्त होताहै तिन पेंतीस अतिशयका स्वरूप ऐसाहै (१) संस्कारवत्त्व (संस्कृतादि लक्षण युक्त) (२) औदार्य (शब्दमे उच्चपणा उपचारपरीतता) (३) अग्राम्यत्व (ग्रामके रहणहारे पुरुषके वचन समान जिनोका वचन नहीं) (४) मेघगंभीर घोषत्व (मेघकी तरें गंभीर शब्द) (५) प्रतिनाद विधायिता (सर्व वाजित्रोंके साथ मिलता शब्द) (६) दक्षिणत्व (वचनकी सरलता संयुक्त) (७) उपनीतरागत्व (मालव कौशक्यादि ग्राम राग करी युक्तता)ए सातअतिशयतो शब्दकी अपेक्षासें जानने औ अन्य अतिशयजो है सो अर्थाश्रय जानने (८) महार्थता (बहामोटा जिसमे अभिधेय कहेने योग्य अर्थहै) (९) अव्याहतत्व (पूर्वापर विरोध रहित) (१०) शिष्टत्व (अभिमत सिद्धांतोक्तार्थता) एतावता अभिमत सिद्धांतजो कहना सोइ वक्ताके शिष्टपणेका सूचकहै (११) संशयनाम अभव (जिनोके कहणेमे श्रोताकू संशय नहीं होता) (१२) निराकृताऽन्योत्तरत्व (जिनोके कथनमे कोइबी दूषण नहीं नतो श्रोताकूं शंका उत्पन्न होवे न भगवान दूसरीवार उत्तर देवें) (१३) हृदय गमता (हृदयग्राह्यत्व) हृदयमे ग्रहणे योग्य (१४) मिथ साकांक्षता (परस्पर आपसमे

पद वाक्योंका सापेक्ष पणा) (१५) प्रस्तावौचित्यं (देशकाल करके रहित पणा नही) (१६) तत्त्वनिष्टता (विवक्षित वस्तुके स्वरूपानुसारि पणा) (१७) अप्रकीर्णप्रसृतत्व (सुसबध होकर प्रसरणा अथवा असबंधाधि कारका अतिविस्तार नही) (१८) अस्वश्लाघाऽन्यनिंदता (आत्मोत्कर्ष पर निंदा करके वर्जित) (१९) अभिजात्यं (प्रतिपाद्य वस्तुकी भूमिकानुसारि पणा) (२०) अतिस्निग्धमधुरत्व (घृत गुडादिवत् सुखकारि) (२१) प्रश स्यता (कहेजो हैं गुण तिनकी योग्यतासे प्राप्तहुइहै श्लाघा) (२२) अम र्मवेधिता (परका मर्म जिसमे उग्घाडणा नहीहै) (२३) औदार्य (अभिधे य अर्थका तुछपणा नही) (२४) धर्मार्थप्रतिबद्धता (धर्म औ अर्थ कर के सयुक्त) (२५) कारकाद्यविपर्या सो कारक काल वचन औ लिंगादि जहां विपर्यय नही (२६) विभ्रमादि वियुक्तता विभ्रमवक्ताके मनकी भ्रांति विक्षेपादि दोष रहित (२७) चित्रकृत्त्व (उत्पन्न कराहै छिन्न कौतुहल पणा) (२८) अभुतत्व (अभ्रुत पणा) (२९) अनति विलम्बिता (अतिवि लंब रहित) (३०) अनेकजाति वैचित्र्य (जातियां वर्णन करणे योग्य वस्तु स्वरूप उनाका आश्रय) (३१) आरोपिता विशेषता (वचनांतरकी अपे क्षा करके स्थापन कियाहै विशेषपणा) (३२) सत्त्वप्रधानता (साहसकरी सयुक्त) (३३) वर्णपदवाक्य विविक्तता (वर्णादिकोंका विछिन्नपणा) (३४) अव्युछित्ति (विवक्षितार्थकी सम्यक् सिद्धि जहां लग नहोवे तहां तांइ अव्य वछिन्न वचनका प्रमेय पणा) (३५) अखेदित्व (थकेंवा रहित) एह भगवत की दुसरी वचनातिशयके पैंतीस भेदहैं तीजी अपायापगमातिशय एतावता उपद्रव निवारक औ चोथी पुजातिशय सो भगवान तीनलोकके पूजनीक हैं इनदोनो अतिशयाकी विस्तार रूप चोतीश अतिशय होतीहैं सो लिखतेहैं

(१) तीर्थंकर भगवानकी देहका रूप औ सुगंध सर्वोत्कृष्ट औ रोग रहित देह तथा पसीना औ मल करि वर्जित (२) स्वास नि स्वास पद्म कमलकी तरें सुगधवाला (३) रुधिर औ मांस गो दुग्ध वत् उज्वल (४) आहार निहारकी विधि चर्मचक्षुवालेकू नही दीखे ए चार अतिश य जन्मसे साथ (१) एक योजन प्रमाणही समवसरणका क्षेत्रहै परंतु तिसमें देवता मनुष्य तिर्यंचकी कोटाकोटीभि समायसकिहै भीड नही होती (२) वाणी भाषा अर्द्ध मागधी देवता मनुष्य तिर्यंचकू अपणी अपणी

नापापणे परिणमतिहे श्री एक योजनमे सुणाईदेताहि (३) प्रनामंमल मस्तकके पीछे सूर्यके बिंबकी मानो विडंबना करताहे आपणी शोना कर के ऐसा मनोहर नाममल शोने हे (४) साढे पचीश योजन प्रमाण चारो पासें उपद्रवरुप ज्वरादि रोग नहोवे तथा (५) वैर (परस्पर विरो ध नहोवे) तथा (६) इति (धान्याद्युपद्रव कारी घणे मुषकादि नहोवे) (७) मारिमरीका उपद्रव नहोवे (८) अतिवृष्टी (निरंतर वर्षणा नहोवे) तथा (९) अवृष्टी (वर्षणेका अनाव नहोवे) (१०) दुर्निक्ष नहोवे (११) स्वचक्र परचक्रका जय नहोवे ए इग्यारें अतीशय ज्ञानावरणीय आदि चार घाति कर्मोंके क्षय होनेसे उत्पन्न होतीहे अब (१) आकाशमें धर्म प्रकाशक चक्र होताहे (२) आकाशगत चामर (३) आकाशमे पाद पीठ सहित स्फटिक मय सिंहासन होताहे (४) आकाशमें तीन छत्र (५) आकाश में रत्नमय ध्वज (६) जब नगवान चलतेहे तब पगके हेठ सुवर्ण कमल देवता रच देतेहें (७) समवसरणमे रत्न सुवर्ण श्री रूपामय तीन कोट म नोहर होतेहे (८) समवसरणमे प्रनुके चार मुख दीखतेहे (९) अ शोक वृक्ष छाया करताहे (१०) कांटे अधोमुख हो जातेहे (११) वृक्ष ऐसे नमृत होतेहे मानो नमस्कार करतेहे (१२) उच्चनादें दुंदुनि नुवन व्यापक नाद ध्वनी करतीहें (१३) पवन सुखदाइ चलतीहे (१४) पक्षी प्रदक्षणा देतेहैं (१५) सुगंध पाणीकि वर्षा होतीहे (१६) गोडे प्रमाण पंच वर्णके फूलोकी वर्षा होतीहै (१७) केश दाढी मुछ नख अवस्थित रहतेहैं (१८) चार प्रकारके देवता जघन्यसें जघन्य नगवतके पास एक कोटी होतेहैं (१९) षटऋतु अनुकूल श्रुन स्पर्श रस गंध रूप शब्द ए पांचो बुरेतो लुप्त हो जातेहैं और अछे प्रगट होजातेहें ए उंगणीश अतीशय देवता करते है मतांतर तथा वांचनांतरमें कोइ कोइ अतीशय अन्य प्रकारसेबीहे ए पूर्वोक्त चार मूलातिशय और आठ प्रातिहार्य एव बारां गुणां करी बिराजमान अ र्हंत नगवत परमेश्वरहे श्री अठारह दूषण करके रहितहे सो अठारह दूषणोंका नाम दो श्लोक करके लिखीयेहे

अंतरायदानलान, वीर्यनोगोपनोगगा ॥ हासो रत्यरतीनीति, र्जुगुप्सा शोक एवच ॥ १ ॥ कामो मिथ्यात्वमज्ञान, निद्रा चाविरतिस्तथा ॥ रागो द्वेषश्च नो दोषा, स्तेषामष्टादशाप्यऽमी ॥ २ ॥ इन दोनों श्लोकोंका

अर्थ (१) दान देणेमें अंतराय ए प्रथम दोष (२) लाजगत अंतराय (३) वीर्यगत अंतराय (४) जो एक वेरी नोगीये सो नोग पुष्पमाला दि तज्जतो अंतराय सो नोगांतराय (५) वार वार नोगणेमे आवे स्त्र्यादि घरादि ककण कुमलादि तज्जतांतराय सो उपनोगांतराय (६) हास्य (ह सना) (७) पदार्थोंके उपरि प्रीति (रति) (८) रतिसे विपरीत सो अरति (९) नय सप्त प्रकारका (१०) जुगुप्सा (घृणा) मलीन व स्तुकू देखकर नाक चढाणा (११) शोक (चित्तका वैधूर्यपणा) विकल पणा (१२) काम (मन्मथ) स्त्री पुरुष नपुंसक इन तीनोंका वेद विका र (१३) मिथ्यात्व (दर्शनमोह) (१४) अज्ञान (मूढपणा) (१५) निद्रा (सोंना) (१६) अविरति (प्रत्याख्यान रहित) (१७) राग (पूर्व सुख तिसके साधनेमे गृध्धि पणा) (१८) द्वेष (पूर्व फुखाका स्मरण औ पूर्व फु खमे वा तिसके साधन विपय क्रोध) येह अठारह दूषण जिनमे नही सो अर्हंत नगवत परमेश्वरहे इन अठारह दूषण मेसे एकबी दूषण जिसमे होगा सो कदेजी अर्हंत नगवत परमेश्वर नही हो सक्ता॥ प्रथम पांच विघ्न जिस मे लग रहेहे सो परमेश्वर क्यु कर हो सक्ताहे?

प्रश्न—दानांतरायके नष्ट होनेसे क्या परमेश्वर दान देताहै? अरु लानां तरायके नष्ट होनेसे क्या लान परमेश्वरकों होताहे? तथा वीर्यांतरायके नष्ट होनेसे क्या परमेश्वर सक्ति दिखलाता है? तथा नोगांतरायके नष्ट हो नेसे क्या परमेश्वर नोग करताहै? उप नोगांतरायके नष्ट होनेसे एतावता क्षय होनेसे क्या परमेश्वर उपनोग करतेहै?

उत्तर पूर्वोक्त पांच विघ्नके क्षय होनेसे नगवतमें पूर्ण पांच शक्तियां प्रगट होतीयांहे जैसे निर्मल चक्षुका पटलादिक बाधकोंके नष्ट होनेसें देखनेकी शक्ति प्रगट होतीहे चाहे देखे चाहे नदेखे परतु शक्ति विद्यमान हे तैसेंही अर्हंत नगवतके पांच शक्तियां प्रगट होतीयाहे पीछे दानादि चाहे करे चाहे नकरे परंतु शक्ति विद्यमानहे जो पांच शक्तियोंसे रहित होगा सो परमेश्वर कैसें होसक्ताहे?

६ छठा दूषण "हसना" हास्यजो आताहैसो अपूर्व वस्तुके देखनेसे वा अपूर्व वस्तुके सुननेसें वा अपूर्व आश्चर्यके अनुनवके स्मरणसे इत्यादिक हास्यके निमित्तहै औ हास्यका मोहकर्मकी प्रकृतिरूप उपादान कारणहै

सो ए दोनोंही कारण अर्हंत भगवतमे नहीं। प्रथम निमित्तकारणका संभव कैसें होवे अर्हंत भगवत सर्वज्ञ सर्व दर्शी है उनके ज्ञानमें कोइ अपूर्व ऐसी वस्तु नही जिसके देखे सुने अनुभवे आश्चर्य होवे इसते कोइभी हास्यका निमित्त कारण नही औ मोह कर्मतो अर्हंत भगवतने सर्वथा क्षय कराहै सो उपादान कारण क्युंकर संभवे इस हेतुसे अर्हंतमे हास्य रूप दूषण नही औ जो हसनशील होगा सो अवश्य असर्वज्ञ असर्वदर्शी औ मोहकरी संयुक्त होगा सो परमेश्वर कैसे होवे?

७ सातमा दूषण रति जिसकी प्रीति पदार्थो उपर होगी सो अवश्य सुंदर शब्द रूप गंध रस स्पर्श स्त्री आदिके उपर प्रीतिमान होगा जो प्रीतिमान होगा सो अवश्य उस पदार्थकी लालसा वाला होगा अरुजो लालसा वाला होगा सो अवश्य उस पदार्थकी अप्राप्तिसे दुखी होगा सो अर्हंत परमेश्वर कैसें होसक्ताहै?

८ आठमा दूषण अरति जिसकी पदार्थो उपर अप्रीतिहोगी सोतो आपही अप्रीतिरूपोये दुखकरी दुखीयाहै सो अर्हंत भगवत कैसे हो सके?

ए नवमा दूषण "भय" सो जिसने आपणाही भय दूर नही कीया सो अर्हंत परमेश्वर कैसें होवे?

१० दशमा दूषण जुगुप्साहै सो मलीन वस्तुकू देखके घृणा करणी (नाक चढाणी) सो परमेश्वरके ज्ञानमे सर्ववस्तुका भासन होताहै जो परमेश्वरमे जुगुप्सा होवेतो बडा दुख होवे इस कारणते जुगुप्सामान अर्हंत भगवत कैसें होवे?

११ इग्यारमा दूषण शोक है सो जो आपही शोक वालाहै सो परमेश्वर नही?

१२ बारवा दूषण कामहै सो आपही जो विषयीहै स्त्रीयोंके साथ भोग करताहै तिस विषयाभिलाषीकू कोन बुद्धिमान पुरुष परमेश्वर मानताहै?

१३ तेरवा दूषण मिथ्यात्व है सो जो दर्शनमोह करी लिप्तहै सो भगवतनही

१४ चौदवा दूषण अज्ञान है सो जो आपही मूढहै सो अर्हंत भगवत नही

१५ पंदरवा दूषण निद्रा है सो जो निद्रामे होता है सो निद्रामे कुछ नही जानता औ अर्हंत भगवानतो सदा सर्वज्ञ है सो निद्रावान् कैसे होवे?

१६ शोलमां दूषण अप्रत्याख्यान है सो जो प्रत्याख्यान रहित है तो स वाभिलाषी है सो तृष्णा वाला कैसे अर्हंत भगवत होसके?

१७–१८ सत्तारवा ओ अठारवां ए दोनो दूषण राग अरु द्वेष है सो राग द्वेषवान मध्यस्थ नही होता अरु जो रागी द्वेषी होता है तिसमें क्रोध मान मायाका सनव है भगवान तो वीतराग, सम शत्रु मित्र, सर्वजी वो पर समबुद्धि, न किसीकू दुःखी अरु न किसीकू सुखी करे, जेकर दुःखी सुखी करेतो वीतराग करुणा समुद्र कदेइ नहोसक्ता इस कारणतें राग द्वेष वाला अर्हंत भगवत परमेश्वर नही ए पूर्वोक्त अठारह दूषण रहित अर्हंत भगवत परमेश्वरहै अपर कोइ परमेश्वर नही

अथ अर्हंतके नाम दो श्लोकों करि लिखतेहै—अर्हन् जिन पारगत स्त्रिकालवित् क्षीणाष्टकर्मा परमेष्ट्यऽधीश्वर ॥ शम्भु स्वयम्भूर्भगवान् जगत्प्र भु, स्तीर्थंकरस्तीर्थंकरो जिनेश्वर ॥ १ ॥ स्याद्वाद्यऽभयदसर्वा सर्वज्ञ सर्वदर्शि केवलिनौ। देवाधिदेव बोधिद पुरुषोत्तम वीतरागाऽप्त ॥ २ ॥ इन दोनो श्लोकोंका अर्थ—(१) चौंतीश अतीशय करी सबसें अधिक होने सें सुरेंद्र आदिकोंकी करी हुइ अष्ट महा प्रातिहार्या जन्म स्नात्रादि पूजा के जो योग्य है सो अर्हन् अथवा ज्ञानावरणीयादि आठ कर्म रूप वैरी ह ननेसें अर्हन् अथवा बध्यमान कर्म रजके हननेसे अर्हन् अथवा नही है कोइ पदार्थ छाना जिनोके ज्ञानमे सो अर्हन् तथा नामांतरमें अरुहन् नही उत्पन्न होना भवरूपी अकूर जिनोके सो अरुहन् ए प्रथम नाम (२) जीते है राग द्वेष मोहादि अष्टादश दूषण जिसने सो जिन ए द्वितीय नाम, (३) ससारके अथवा प्रयोजन जातके, (प्रयोजन मात्रके) पारंपर्य त छेहडेको गत (प्राप्त) हुया है एतावता ससारमे जिनका कोइ प्रयोजन नही सो पारगत ए तृतीय नाम (४) भूत, भविष्य, वर्त्तमान, इन तीनों कालोंकू जो जाणे सो त्रिकालवित् ए चतुर्थ नाम (५) क्षीणानि क्षय हूये हैं आठ ज्ञानावरणीय आदि कर्म जिसके सो क्षीणाष्टकर्मा ए पंचम नाम (६) परमेश्वर पदे तिष्टतीति परमेष्टी परम उत्कृष्ट पदमे जो रहे है सो परमेष्ठि ए षष्ठ नाम (७) जगतका ईश्वर (स्वामी) सो अधीश्वर ए सप्तम नाम (८) श शास्वतं सुखं तिसमे जो होवे सो शम्भु ए अष्टम नाम (९) स्वयं आपही आपणी आत्मा करके तथा भव्यत्वादि सामग्रीके प

रिपक्ष होणेसे परतु परके उपदेशसे नही पर तिनकी नाकी अपेक्षाका कथन् है ऐसाजो होवेसो सपनू ए नवम नाम. (१०) नग शब्दके चौदह अर्थ है तिनमेंसे अर्क श्री यानि ए दो अर्थ वर्जके शेष बारां अर्थ ग्रहण करणा तिसका नाम कहते है (१) ज्ञानवत, (२) माहात्म्यवत, (३) शास्वत वेरीयांके वैर उपशमनेतें यशस्वि, (४) राज्य लक्ष्मीके त्यागणे से वैराग्यवत, (५) मुक्तिवत, (६) रूपवत, (७) अनतबल होणेसे वीर्यवत, (८) तप करनेमे उत्साह वान होनेमे प्रयत्नवत, (९) इच्छावत सो ससार सेती जीवांका उद्धार करणेमे इच्छावत, (१०) चौतीश अतिशय रूप लक्ष्मी करी विराजमान होणेसे श्रीमत, (११) धर्मवत, (१२) अनेक देव कोटि करी सेव्यमान होनेसे ऐश्वर्यवत ए बारां अर्थ करी सयुक्त सो भगवान् ए दशम नाम (११) जगत प्रभु ए एकादशम नाम (१२) तरीये ससार समुद्र जिस करेके सो तीर्थ प्रवचनका आधार चार प्रकारका सघ अथवा प्रथम गणधर तिसके करणेका है शील जिसका सो तीर्थकर, ए द्वादशम नाम, (१३) रागादिकोंके जीतनेहारे जिन (केवली) तिनका जो ईश्वर सो जिनेश्वर ए त्रयोदशम नाम (१४) स्यात् एहजो अव्यय है सो अनेकातका वाचक है वस्तुको अनेकात पणे अनेक स्वरूपे कहणेका शील है जिनका सो स्याद्वादि ए चतुर्दशम नाम (१५) अभयद भय जो है सो सात प्रकारका है (१) मनुष्यादिको कों मनुष्यादि स्वजातीयसे अर्थात् एक मनुष्यकू अन्य मनुष्य सेति जो भय होवे सो इहलोक भय, (२) विजातीय तिर्यंच देवतादिक सेंती जो भय होवे सो परलोक भय, (३) आदान भय सो आदान कहियें धन तिस धनके कारणे चोरादिक सेती जो भय होवे सो आदान भय, (४) बाहिरले निमित्त विना घरादिकों विषे बैठेकू रात्रि आदिक विषे जो भय होवे सो अकस्मात् भय, (५) आजीविका भय सो में निर्द्धनहू कैसे दुर्भिक्षादिकमे अपने आपकू धारण करुगा ऐसाजो भय सो आजीविका भय, (६) मरणसे जो भय सो मरणभय एह प्रसिद्ध है (७) अश्लाघा भय अयशका भय जो मैं ऐसे करुगा तो मेरा वडा अयश होगा अयशके भयसे प्रवर्त्ते नही सो अश्लाघा भय, ए सात प्रकार का भय इसका जो विपक्षी सो अभय सो क्या वस्तु है विशिष्ट आत्मा

का स्वास्थ्यपणा निश्रेयस धर्मनिबंधन नूमिकानूत तिस गुणके प्रकर्पतें अचिंत्य शक्ति युक्त होणेसे सर्वथा परहितकारी होणेसे ऐसा अनय देवे सो अनयद ए पंचदशम नाम (१६) सार्वा सर्व प्राणीयोंके तांइ जो हित सो सार्वा ए षोडशम नाम (१७) सर्वज्ञ सर्वजो जाणे सो सर्वज्ञ ए सप्तदशम नाम (१८) सर्वजो देखे सो सर्वदर्शी, ए अष्टादशम नाम (१९) सर्वथा प्रकारें कर्मावरणके दूर होनेसें, जो चेतन स्वरूप प्रगट नया "केवल" केवलज्ञान है इसके सो केवली ए एकोनविंसतिम नाम (२०) देवताओंका जो अधिपति सो देवो देवाधिदेव ए विंसतिम नाम (२१) बोधि जिनप्रणीत धर्मकी प्राप्ति तिसकू जो देवे सो बोधिद ए एकविंसतिम नाम (२२) पुरुषा मांहे उत्तम सहज तथा नव्यत्वादि नव करी श्रेष्ट सो पुरुषोत्तम ए द्वाविंसतिम नाम. (२३) वीतो गतो रागो अस्मात् इति वीतराग ए त्रयोविंसतिम नाम (२४) आप्त हितोपदेशक होणेसे आप्त कहीयें ए चतुर्विंसतिम नाम इत्यादिक हजारो नाम परमेश्वरके है ए पूर्वोक्त सर्व परमेश्वरका स्वरूप श्रीहेमचंद्राचार्य कृत ग्रंथोके अनुसार तथा समवायांग राजप्रश्नीय प्रमुख शास्त्रोंके अनुसार लिखे है अन्यथा जिनसहस्रनाम ग्रंथमे तो एकहजार आठ नाम अन्वयार्थ सहित कहे है, सर्व नाम व्युत्पत्ति सहित अर्हंत परमेश्वरके है, सो अर्हंत पद तो एक अनादि अनंतहै, परंतु इसपदके धारक जीव अनंत अतीत कालमे होगये है क्युंके एकैक उत्सर्पिणि अवसर्पिणि कालमे नारत वर्षमे चोवीश चोवीश जीव अर्हंत पदकू धारकर पीछे सिद्धपदकू प्राप्त हो गयें है

इस वर्त्तमान अवसर्पिणिसें पिछलि उत्सर्पिणीमें जो जीव अर्हंत पदके धारक हुये है तिनके नाम (१) केवलज्ञानी (२) नीर्वाणी (३) सागर (४) महायश (५) बिमल नाथ (६) सर्वानुनूति (७) श्रीधर (८) दत्त (९) दामोदर (१०) सुतेज (११) स्वामि (१२) मुनिसुव्रत (१३) सुमति (१४) शिवगति (१५) अस्ताग (१६) नेमीश्वर (१७) अनिल (१८) यशोधर (१९) कृतार्थी (२०) (जिनेश्वर (२१) शुद्धमति (२२) शिवकर (२३) स्यंदन (२४) संप्रति ॥

अथ वर्त्तमान चोवीश अर्हतका नाम. (१) श्री ऋषननाथ (२) श्री अजितनाथ (३) श्री संनवनाथ (४) श्री अनिनंदननाथ (५) श्री सुमतिनाथ (६) श्री पद्मप्रन्न (७) श्री सुपार्श्वनाथ (८) श्री चंद्रप्रन्न (९) श्री सुविधिनाथ अपर नाम पुष्पदंत (१०) श्री शीतलनाथ (११) श्री श्रेयांसनाथ (१२) श्री वासुपूज्यस्वामि (१३) श्री विमलनाथ (१४) श्री अनंतनाथ (१५) श्री धर्मनाथ (१६) श्री शांतिनाथ (१७) श्री कुंथुनाथ (१८) श्री अरनाथ (१९) श्री मल्लिनाथ (२०) श्री मुनिसुव्रतस्वामि (२१) श्री नमिनाथ (२२) श्री अरिष्टनेमि (२३) श्री पार्श्वनाथ (२४) श्री महावीर

अथ चोवीश तीर्थंकर नगवतोके जो नाम है, सो नाम किस किस कारणसें हुये है, तिन नामोका एकतो सामान्यार्थहै, जो सब तीर्थंकरोमे पावे और दूजा विशेषार्थ है जो एकही तीर्थंकरके नामका निमित्त है सो लिखते है

"ऋषति गच्छति परमपदमिति ऋषन" जावेजो परम पदकू सो ऋषन एह अर्थ सब तीर्थंकरोमें व्यापक है अथ विशेषार्थ "उर्वोर्वृषनलांछनमनून्नगवतो जनन्याचतुर्दशाना स्वप्नानामादौ वृषनोदृष्ट तेन ऋषन" नगवानकी दोनो साथलोमे बैलका लांछनथा, अथवा नगवतकी माता मरुदेवीने, चौदह स्वप्नकी आदिमे बैलका स्वप्नदेखाथा, तिस कारणसेंति ऋषन ऐसा नाम दीया ऐसेंही सर्व तीर्थंकरोका प्रथम सामान्यार्थ और दूसरा विशेषार्थ जानना

२ "परीसहादिनिर्नजित इत्यजित" परीसहे बावीश आदि शब्दसे चार कषाय, आठकर्म, चार प्रकारका उपसर्ग, इनो करके जो न जीत्या गया सो अजित तथा "यद्वा गर्नस्थे ऽस्मिन् द्युतेराज्ञाजननी न जितेत्यजित" जब नगवान गर्नमे थे, तब जूआ खेलता राजा राणीकू न जीत शका इस हेतुसे अजित नाम दीया ॥ २ ॥

३ "शंसुखंनवत्यस्मिन्स्तुतेसशंनव" शं नाम सुखका है, सुखहोवे जिसकी स्तुतिके कर्या सो संनव "यद्वागर्नगतेप्यस्मिन्नन्यधिकसस्यसंनवात्संनवोपि" अथवा नगवान् जब गर्नमे थे तब पृथिवीमे अधिक धान्यका संनव होनेसें संनव ॥ ३ ॥

४ "अनिनंद्यतेदेवेंद्रादिनिरित्यनिनंदन" जिनकी स्तुति करीये है देवेंद्र

दिकों करी, सो ऽभिनंदन "यद्वागर्भात्प्रभृत्येवाभीक्ष्ण शक्रेणा ऽभिनंदनादभि नंदन" अथवा जिसदिन भगवान गर्भमे आये उसदिनसेलैके शक्रेइके वार वार स्तुति करनेसें अभिनंदन ॥ ४ ॥

५ "शोभनामतिरस्येतिसुमति" भलिहै बुद्धि इसके, सो, सुमति, "यद्वा गर्भस्थेजनन्या सुनिश्चितामतिरभूदिति सुमति" अथवा भगवान्के गर्भमे आये माताकी बहुत निर्मल निश्चित बुद्धि हुइ इस हेतुसें सुमति नाम ॥ ५ ॥

६ "निष्पकतामंगीकृत्यपद्मस्येवप्रभाऽस्यपद्मप्रभ" विषय तृष्णा कर्म कलंक रूप कीचड करी रहित पद्मकी तरे प्रभाहै इनकी, सो पद्मप्रभा "यद्वापद्मशयनदोहदोमातुर्देवतयापूरितइतिपद्मवर्णश्चभगवानितिपद्मप्रभ" अथवा पद्म शयन दोहदो दोहला माताकूं उत्पन्नहूया सो देवताने पूरण कीया इस कारणसे पद्मप्रभ अरु पद्म कमल सरीखा भगवानके शरीरका वर्णथा इस हेतुसेभी पद्मप्रभ ॥ ६ ॥

७ "शोभनौपार्श्वावस्यसुपार्श्व" शोभनिक हैं दोनो पासे इसके, सो सुपार्श्व तथा "यद्वागर्भस्थेभगवतिजनन्यपिसुपार्श्वाभूदिति सुपार्श्व" गर्भमें स्थितहूयां भगवान्के माताके दोनो पासे बहुत सुंदर होगये, इस कारणसे सुपार्श्व ॥ ७ ॥

८ "चंद्रस्येवप्रभाज्योत्स्नासौम्यलेश्याविशेषाऽस्यचंद्रप्रभ" चंद्रमाकी तरें है सौम्य लेश्या इसकी सो चंद्रप्रभ तथा "गर्भस्थेदेव्याचंद्रपानदोहदोऽभूत् इति चंद्रप्रभ" गर्भमें जब भगवानथे तब माताकू चंद्रमा पीनेका दोहद उत्पन्न हूयाथा, इस कारणसे चंद्रप्रभ ॥ ८ ॥

९ "शोभनोविधिविधानमस्यसुविधि" भली है विधि इसकी सो सुविधि तथा "यद्वागर्भस्थेभगवति जनन्यप्येवमिति सुविधि" गर्भमें भगवानके रहणेसें, माताभि शोभनिक विधि वाली होती भइ, इस कारणसें सुविधि ॥९॥

१० "सकलसत्वसंतापहरणात्शीतल" सर्व जीवोंका संताप हरणेसे, शीतल तथा "गर्भस्थेभगवतिपितु पूर्वोत्पन्नाचिकित्स्यपित्तदाहोजननीकरस्पर्शादुपशांत इति शीतल" भगवतके गर्भमें आनेसें, भगवतके पिताके शरीरमें पित्तदाह रोगथा, वैद्योसें शांति नहुइ भगवतकी माताके हाथका स्पर्श होताही राजेका शरीर शीतल हो गया इस कारणे शीतल ॥ १० ॥

११ "श्रेयान्समस्तभुवनस्यैवहितकर श्रान्तशेयानादमत्वाच्छ्रेयांसः स्पुच्चते" सर्व जगतको जो हित करे सो श्रेयांस तथा "य द्गागर्नस्थेश्रस्मिन केनापिनाक्रांत पूर्वदेवताधिष्टितशय्याजनन्याश्राक्रांततेतिश्रेयांजातमितिश्रे यांस" जगवान् जब गर्नमेंथे, तदा जगवतके पिताके घरमे देवताधिष्टित श य्याथी उस उपरि जो बैठताथा उसहीकू असमाधि उत्पन्न होतीथी, जग वतकी माताकू उसी शय्या उपरि सोनेका दोहद उत्पन्न हूया, माता उसी शय्या उपरि सूती देवता शांति जया उपद्रव नकरया इस हेतुसे श्रेयांस ११

१२"तत्रवसूनापूज्य वसुपूज्य वसवोदेवा" वसुश्रोंकर जो पूज्यनीक होवे सो वसुपूज्य वसु कहिये देवता "वसुपूज्यनृपतेरपत्य वासुपूज्य" वसुपूज्य नामा राजेका जो पुत्र सो वासुपूज्य "वासवो देवराया तस्स गप्नगयस्स अ निरकण अनिरकण जणणीए पूयकरेति तेणवासुपुज्योति अहवा वसूणि रयणाणि वासवो वेसमणो सो गप्नगए अनिरकण अनिरकण तं रायकुल रयणेहिं पूरेयत्ति वासुपूयोत्ति ॥ अस्यार्थ—वासव नाम इड्का है सो जग वान् जब गर्नमें आये तदा वार वार इड्ने जगवतकी माताकू पूज्या, इस कार णसें वासुपूज्य अथवा वसु कहिये रतन अरुवासव नाम है वैश्रमणका सो वैश्रमण यदा जगवान् गर्नमेंथे तदा वार वार तिस राजाके कुलकू रत्नो करी पूरण करता जया इस हेतुसें वासुपूज्य ॥ १२ ॥

१३ "विगतोमलोऽस्यविमल विमलज्ञानादियोगाद्वाविमल" दूरहूआ है अष्ट कर्मरूप मल जिसका सो विमल अथवा निर्मल ज्ञानादि योगसे विमल "य द्गागर्नस्थेमातुर्मतिस्तनुश्चविमलाजातेतिविमल" तथा जगवा न् यदा गर्नमेंथे, तदा माताकी बुद्धि अरु शरीर ए दोनु निर्मल हो गये इस कारणे "विमल" नाम जानना ॥ १३ ॥

१४ "नविद्यतेगुणानामतोऽस्यअनंत अनंतकर्मांशजयाद्वानंत अनंता निवाज्ञानादीनियस्येत्यनंत" नही जाणिये है गुणका अंत जिसका सो अ नंत, अथवा अनंत कर्मांस जीतनेसें अनंत, अथवा अनंत है ज्ञानादि गुण जिसके सो अनंत "रयणविचित्त रयण, खचियं अणतं अतिमह प माण ॥ दाम सुमिणे जणणीए, दिठ तउ अणतोत्ति" रत्न विचित्र रत्नजडि

त अति मोटी दाम माला स्वप्नमे माताने देखी तिस कारणे अनंत॥१४॥

१५ "दुर्गतौ प्रततं सत्व संघातं धारयतीतिधर्म्मः" दुर्गतिमें पडतां जीवोंके समूहकू जो धारण करे सो धर्म तथा "गर्नस्थेजननीदानादिधर्म्मपराजातेति धर्मः" परमेश्वरके गर्नमे आवणेसे माता दानादिक धर्ममे तत्पर नयी इस कारणे धर्म नाम॥ १५ ॥

१६ "शांतियोगात्तदात्मकत्वात्तत्कर्तृकत्वाच्चायशांतिः" शांतिके योगसे वा शांति रूप होणेसें वा शांति करणेसे शांति तथा "गर्नस्थेपूर्वोत्पन्नाशिवशांतिरनूदितिशांतिः" तथा गर्नमे नगवान्के उत्पन्न होणेसे पूर्वे जो अशिव उत्पन्नथा, सो शांति होगया इस कारणे शांति नाम ॥ १६ ॥

१७ "कु पृथ्वी तस्यांस्थितिवानितिकुंथुः पृषोदरादित्वात्" कु नाम पृथ्वीका है तिस पृथ्वीमे जो स्थित होता नया सो कुंथु तथा "गर्नस्थे नगवति जननीरत्नानां कुंथुराशिंदृष्टवतीतिकुंथुः" नगवतके गर्नमे स्थित हूया माता रत्नमयी कुंथुओंकी राशि देखती नइ इस हेतुसे कुंथु ॥ १७ ॥

१८ "सर्वोत्तममहासत्व, कुलेयउपजायते तस्याभिवृद्धायवृद्धै,रस्सारवरव्याहृतः ॥१॥ इतिवचनादरः" सर्वसे उत्तम महासात्विक कुलमे जो उत्पन्न होवे, और तिस कुलकी वृद्धिके ताइ है तिसकु वृद्ध पुरुष, प्रधान अर कहते हैं तथा "गर्नस्थेनगवतिजनन्यास्वप्नेसर्वरत्नमयोऽरोदृष्टइत्यपर" तथा नगवतके गर्नमे स्थित होया माताने स्वप्नमे सर्व रत्न मयी अर देख्या इस कारणसे अर इति नाम ॥ १८ ॥

१९ "परीसादिमल्लजयनान्निरुक्तान्मल्लिः" परीसहादि मल्लोके जीतनेसें मल्लि तथा "गर्नस्थे नगवतिमातुः सुरभिकुसुममाल्यशयनीयदोहदोदेवतया पूरितइति "मल्लिः" तथा नगवतके गर्नमे स्थित हूया नगवतकी माताकू सुगंध वाले फूलोंकी मालाकी सय्या उपरि सोनेका दोहद उत्पन्न नया, सो देवताने पूरण कीया इस कारणसे मल्लि ॥ १९ ॥

२० "मन्यतेजगतस्त्रिकालावस्थामितिमुनिः शोननानिव्रतान्यस्येतिसुव्रतः मुनिश्चासौसुव्रतश्चमुनिसुव्रतः" माने जो जगतकू तीनोंही कालमे सो "मुनि" नले है व्रत जिसके सो सुव्रत ए दोनो पद एकठे करणेसे मुनिसुव्रत तथा

"गर्भस्थेजननीमुनिवत्सुव्रताजातेतिमुनिसुव्रत" तथा भगवतके गर्भमें स्थित हूयां माता मुनिकी तरें जले व्रत धारी होतीनइ‌स वास्ते मुनिसुव्रत ॥२०

२१ "परीसहोपसर्गादीनांनामनात्नमेस्तुरेतिनिरुक्तेनोपाध्यपेकाराना वपक्षेनमि" परीसह उपसर्गांकू नमावणेसें नमि तथा "यस्मागर्भस्थे भगवति परचक्रनृपैरपिप्रणति कृतेतिनमि" भगवतके गर्भमें स्थित होयां वैरी राजायोनेभी नमस्कार करी इस कारणसें नमि ॥ २१ ॥

२२ "धर्मचक्रस्यनेमिवन्नेमि" धर्मचक्रकी धारावत् सो नेमि तथा "गम्र गएतस्समायाए, रिठरयणामउमहतिमहापाउ नेमि॥ उप्पयमाणो सुमिणे, दिठोत्ति तेणसेरिठनेमित्ति नामकयति" तथा भगवतके गर्भगत हूया माताने अरिष्ट रत्नमय वडा मोटा नेमी (चक्रधारा) आकाशमे उत्पतमान स्वप्नमें देख्या तिस कारणे अरिष्ट नेमि नाम कहा ॥ २२॥

२३ "स्पृशतिज्ञानेनसर्वभावानितिपार्श्व" स्पर्शे जाणे सर्व पदार्थांकू ज्ञान करी सो पार्श्व तथा "गर्भस्थेजनन्यानिशिशयनीयस्थयाऽधकारेसर्प्पो दृष्टइतिगर्भानुभावोयमितिपश्यतीतिनिरुक्तात्पार्श्व पार्श्वश्चास्यवैयावृत्त्यकरोयक्षस्तस्यनाथ पार्श्वनाथ भीमोभीमसेनइतिन्यायाद्वापार्श्व" तथा भगवतके गर्भमे स्थित होएसे माता निशि रात्रिमे शय्या उपर बैठीने अंधेरेमे जाता हूया सर्प्प देख्या माता पिताने विचार्या जो ए गर्भका प्रभाव है देखे सो पार्श्व अथवा पार्श्व नामा वैयावृत्त करणहारा देवता तिसका जो नाथ सो पार्श्व नाथ ॥ २३ ॥

२४ "विशेषेणईरयतिप्रेरयतिकर्माणीतिवीर" विशेष करके प्रेरेजो कर्मांकू सो बीर तथा बडे उग्र परीसह उपसर्ग सहणेसें, देवताने नाम कह्या श्रमण भगवान् महावीर तथा माता पिताका नाम दीया वर्द्धमान ॥२४॥

इस प्रकार यह अवसर्प्पिणीमे जो तीर्थंकर हो गये तिनोके नाम अरु किस हेतुसे यह नाम रखेगये सो समाप्त हूये

यह चोवीश तीर्थंकर है इनमें सु बावीश अर्हततो इक्ष्वाकु कुलमे उत्पन्न हूये है एतावता ऋषभ देवकी संतानमे है, इक्ष्वाकु कुल ऋषभदेवहीसें प्रसिद्ध है, यह स्वरूप आगें चलकर लिखेंगे और एक तो वीशमें मुनि

सुव्रत स्वामी तथा दूसरा बावीशमें श्रीअरिष्टनेमि नगवान, ए दोनो तीर्थ कर हरिवंशमे उत्पन्न हूये थे तथा इन चोवीसों तीर्थंकरोंमे छठा पद्मप्रन और बारहवा वासुपूज्य ए दोनो तीर्थंकर रक्तवर्ण शरीर वाले हूयें है तथा आठवा चंद्रप्रन और नवमे सुविधिनाथ (पुष्पदंत) ए दोनो तीर्थ कर, स्वेत वर्ण स्फटिक वत् उज्वल शरीर वाले हूये है, तथा उन्नीसवा म ल्लिनाथ और तेइसवा पार्श्वनाथ ए दोनो तीर्थकर, हरित वर्ण शरीर वाले हूये है, तथा वीसवां मुनिसुव्रत स्वामी और बावीसवा अरिष्टनेमि नगवान् ए दोनो तीर्थकर स्यामवर्ण अलसीके फूलवत् रंगवाले शरीरके धारक हूये है अरु शेष शोलां तीर्थकर सुवर्णवर्ण शरीरवाले हूये हैं

अथ चोवीश तीर्थंकरोंके चिन्ह उनके दक्षिण पगोंमे रहे हूये वा उनकी ध्वजामे ए चिन्ह होते है अबनी इनकी प्रतिमाके आसनमे ए चिन्ह हो ते है, सो कहेते है (१) ऋषनदेवजीके बैलका चिन्ह (२) अजितनाथ जीके हाथीका चिन्ह (३) सनवनाथजीके घोडेका चिन्ह. (४) अनिनं दनजीके वंदरका चिन्ह (५) सुमति नाथजीके क्रौंच पक्षीका चिन्ह (६) पद्मप्रनजीके कमलका चिन्ह (७) सुपार्श्वनाथजीके साथीयेका चिन्ह (८) चंद्रप्रनजीके चंद्रमाका चिन्ह (९) सुविधिनाथ (पुष्प दंतजी) के मकरका चिन्ह (१०) शीतलनाथजीके श्रीवत्सका चिन्ह (११) श्रेयांसनाथजीके गैंमेका चिन्ह (१२) श्रीवासुपूज्यजीके महि षेका चिन्ह (१३) श्रीविमलनाथजीके सूअरका चिन्ह (१४) अनत नाथजीके बाजका चिन्ह (१५) धर्मनाथजीके वज्रका चिन्ह (१६) शांति नाथजीके हरिणका चिन्ह (१७) कुंथुनाथजीके बकरेका चिन्ह (१८) अरनाथजीके नंदावर्त्तका चिन्ह (१९) श्रीमल्लिनाथजीके कुंन का चिन्ह (२०) मुनिसुव्रत स्वामीजीके कछुका चिन्ह (२१) नमी नाथजीके नीले कमलका चिन्ह (२२) अरिष्टनेमिजीके शंखका चिन्ह. (२३) श्रीपार्श्वनाथजीके सर्प्पका चिन्ह (२४) श्रीमहावीरजीके सिंह का चिन्ह यह चिन्ह चोवीश तीर्थंकरोंके पगोंमे होते है

अथ चोवीश तीर्थंकरोंके पितायोंके नाम तथा मतायोंके नाम कहते हैं १ नानिनहत्यन्यायिनोद्दकाराव्जिनीतिनिरितिनानिरंत्यकुलकर, (२)

जिता शत्रवोऽनेनजीतशत्रु (जीतेहै शत्रु जिसने सो जितशत्रु) (३) जिताअरयोऽनेनजितारि (जीतेहै वेरी जिसने सो जितारि) (४) संवृणो तींद्रियाणिसंवर (वस करीया है इंद्रिया सो संवर. (५) सकलजगत्संता पहरणात् मेघइवमेघ (सकल जीवोंका संताप दूरणेसे मेघकी तरे मेघ, (६) धरतिधात्रीमितिधर (धारण करे जो पृथ्वीकु सो धर, (७) प्रतिति ष्ठति धर्मकार्ये प्रतिष्ठ (धर्मके कार्य कार्यमें जो रहे सो प्रतिष्ठ. (८) म हतोपूज्यासेनाऽस्यमहासेन (मोटी पूजने योग्य है सेना जिसकी सो महासे न) सचासौनरेश्वरश्च महासेननरेश्वर, (९) शोभनाग्रीवाऽस्यसुग्रीव (भली है ग्रीवा जिसकी,सो सुग्रीव,(१०) दृढोरथो,स्यदृढरथ (दृढ (बलवान) है रथ जिसका सो दृढरथ, ११) निवेष्टितजेने पृथिवीविष्णु (विवेष्टन कीया है पृथवीकु सेना करी जिसने सो विष्णु, (१२) अन्यराजनिर्वसुनिर्धन पूज्यते इतिवसुपूज्य सचासौराट्च वसुपूज्यराट् (दूसरे राजाउने धन करी पूज्या सो वसुपूज्य राजा, (१३) कृतवर्मानेन कृतवर्मा (करा है सनाह जिसने सो कृतवर्मा, (१४) सिंहवत्पराक्रमवतीसेनास्य सिंहसे न (सिंहकीतरे है पराक्रम वाली सेना जिसकी सो सिंहसेन, (१५) भा तित्रिवर्गेणभानु सोभे है जो अर्थ काम अरु धर्म करके सो भानु, (१६) विश्वव्यापिनीसेनाऽस्यविश्वसेन (जगतमे व्यापने वाली सेना है जिसके सो विश्वसेन सचासौराट्चविश्वसेनराट् (१७) तेजसासूरइवसूर (तेज करके सूर्यवत् सो सूर, (१८) शोभनदर्शनमस्यसुदर्शन (भला है दर्शन जिसका सो सुदर्शन, (१९) गुणपयसामाधारभूतत्वात् कुंभइव कुंभ (गु णरूप पाणीका आधारभूत होणेसे कुंभकी तरे कुंभ, (२०) शोभनानि मित्राणिअस्यसुमित्र (भले है मित्र जिसके सो सुमित्र, (२१) विजयते शत्रुनितिविजय (जीते है शत्रुओंकू सो विजय, (२२) गांभीर्येणसमुद्रस्या पिविजेतासमुद्रविजय (गांभीर्यता करी समुद्रकू जीतने वाला समुद्रविजय, (२३) अश्वप्रधानासेनास्यअश्वसेन (घोडों करी प्रधान है सेना जिसकी सो अश्वसेन, (२४) सिद्धार्थो पुरुषार्थो अस्यसिद्धार्थ ॥ ए रूपभ आदि चोवीस तीर्थंकरोके क्रम करके चोवीस पिताओंके नाम कहे

अथ चोवीश तीर्थंकरोकी माताओंके नाम लिखते हैं (१) मरुद्भिर्दी व्यतेस्तूयतेमरुदेवा पृषोदरादित्वात् तलोप मुरदेव्यपि स्यात् (देवता करी जो स्तवीये सा मरुदेवा मुरदेवी एसाजी नाम है, (२) विजयतेविजया (ज यवतविजया, (३) सहअनेनजितारिस्वामिनावर्त्ततेसेना (जितारिराजा के साथ जो वर्त्ते सा सेना, (४) सिद्धोऽर्थोऽस्या सिद्धार्था (सिद्धहूया है अर्थ जिसका सा सिद्धार्था (५) मगलहेतुत्वात्मगला (मगलके हे तुनूत होनेसें मगला, (६) शोननासीमामर्यादाऽस्या सुसीमा(नली है मर्यादा जिसकी सा सुसीमा, (७) स्थेम्नापृथ्वीवपृथ्वी (स्थिर है पृथ्वी की तरे पृथ्वी, (८) लक्ष्मीशोनाऽस्त्यस्या लक्ष्मणा (लक्ष्मीकीतरें शोना है जिसकी सा लक्ष्मणा, (९) धर्मरुत्येपुरमतेरामा (धर्मरुत्यमें जो रमे सा रामा, (१०) नदतिसुपात्रेणनदा (वृद्धिवान् होवे जो सुपा त्रदान देणेसे सा नदा, (११) विवेष्टिगुणैर्जगदितिविष्णु (लपेटे जो गु णा करी जगत् सा विष्णु, (१२) जयतिसतीत्वेनजया (उत्कृष्टपणेवर्त्ते है सती पणे करी सा जया, (१३) श्यामवर्णत्वात्श्यामा (श्यामवर्ण होनेसें श्यामा, (१४) शोननयशोऽस्या सुयशा (नला है यश जिसका सा सुयशा, (१५) शोननव्रतमस्या सुव्रतापतिव्रतत्वात् (नला है व्रत जिसके सा सुव्रता, (पतिव्रता होनेसे सुव्रता, (१६) नचिरयतिधर्मका र्येष्वऽचिरा (नही चिर करती धर्मकार्यों विषे सा अचिरा, (१७) श्रीरि वश्रीदेवीवदेवीप्रनाऽस्त्यस्या श्री (लक्ष्मीकी तरे प्रना है जिसकी सा श्री,(१८) देवीकी तरे प्रना है जिसकी सा देवी, (१९) प्रनावतीप्रनावती. (२०) पद्मश्वपद्मावती (पद्मकी तरे पद्मावती, (२१) धर्मवीजमितिवप्रा, (२२) शिवहेतुत्वात्शिवा (निरुपद्रव होणेके हेतुसें शिवा, (२३) मनोज्ञत्वा द्वामा पापकार्येषुप्रतिकूल्या द्वामा (मनोज्ञ होणेसें वामा) अथवा पापकार्यों विषे प्रतिकूल होनेसें वामा, (२४) त्रिणिज्ञानदर्शनचारित्राणिशलयति प्राप्नोतीतित्रिशला (तीन ज्ञान दर्शन औ चारित्रकूं प्राप्ति होवे सा त्रिशला, इस क्रम करकें रुपनादि चोवीश तीर्थंकरोंके माताओंका नाम है॥ अथ वा सुगमताके कारण चोवीश तीर्थंकरोंके साथ वावन वोलका संबंध है तिसका स्वरूप यंत्र वंध लिखते हैं प्रथम वावन वोलका नाम लिखे है

बावन बोलका नाम कहेते हैं.

१	श्रीतीर्थंकरका नाम	२८	गणधरोंकी संख्या.
२	च्यवनतिथि.	२९	साधुओंकी संख्या.
३	किस विमानसे आये	३०	साध्वीयोंकी संख्या
४	किस नगरीमें जन्म हूये	३१	वैक्रिय लब्धिवतोंकी संख्या
५	जन्म तिथि	३२	अवधि ज्ञानीयोंकी संख्या.
६	पिताओंका नाम	३३	केवल ज्ञानीयोंकी संख्या
७	माताओंका नाम	३४	मन पर्यवज्ञानीयोंकी संख्या
८	किस नक्षत्रमें जन्मे	३५	चौदह पूर्वधारियोंकी संख्या
९	जन्मराशि	३६	वादिओंकी संख्या
१०	लांछनका नाम	३७	श्रावकोंकी संख्या
११	शरीरके उच्च पणेका मान	३८	श्राविकायोंकी संख्या
१२	आयुके वर्षका प्रमाण	३९	शासनके यक्षोका नाम
१३	शरीरका वर्ण	४०	शासनके यक्षणीयोंका नाम
१४	पदवी	४१	प्रथम गणधरका नाम
१५	विवाहे के कुमारे ?	४२	प्रथम आर्याका नाम
१६	कितने जनोके साथ दीक्षा लीई	४३	मोक्ष होनेका स्थान
१७	दीक्षा कोनसी नगरीमें लीई	४४	मोक्ष पोहोचनेकी तिथि
१८	दीक्षा दिने कितना तप	४५	मोक्ष दिने तप
१९	प्रथम पारणे क्या आहार मिला	४६	मोक्ष जानेके आसन
२०	प्रथम पारणेका घर	४७	परस्पर अंतरका मान
२१	कितने दिनाका पारणा	४८	गण नाम
२२	दीक्षाकी तिथि	४९	योनि नाम
२३	छद्मस्थ पणेका कालमान	५०	मोक्ष परिवार
२४	किस नगरीमें केवलज्ञान प्राप्त हूया	५१	सम्यक्त्वपायां पीछे मोटे भव
२५	ज्ञानोत्पत्ति दिने क्या तप	५२	किस कुलमें उत्पन्न हूया
२६	किस वृक्षके हेठ दीक्षा लीनी	५३	गर्भवासका कालमान
२७	किस तिथिमें ज्ञान उत्पन्न हूया		

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थंकरोमें कहेते हैं

१	श्रीतीर्थंकरनाम	१ श्रीरुषनदेव	१ श्रीअजितनाथ	३ श्रीसंनवनाथ.
२	चवणतिथि	आषाढवदि४	वैशाखशुदि १२	फाल्गुनशुदि ७
३	विमाननाम	सर्वार्थसिद्धि	विजयविमान	उपरलाग्रैवेयक
४	जन्मनगरी.	विनीतानूमि	अयोध्या	सावत्थी
५	जन्मतिथि.	चैत्रवदि ७	माहशुदि ७	माहशुदि १४
६	पिताका नाम.	नाभिकुलकर	जितशत्रु	जितारि
७	माताका नाम	मरुदेवी	विजया	सेना
७	जन्मनक्षत्र	उत्तराषाढा	रोहिणी	मृगशिर
ए	जन्मराशि	धन	वृष	मिथुन
१०	लांछननाम.	वृषन	हस्ती	अश्व
११	शरीरमान	५००)धनुष	४५०)धनुष	४००)धनुष
१२	आयुमान	७४)लक्षपूर्व	७२)लक्षपूर्व	६०)लक्षपूर्व
१३	शरीरका वर्ण.	सुवर्णवर्ण	सुवर्णवर्ण	सुवर्णवर्ण
१४	पदवी राजकी	राजपदवी	राजपदवी	राजपदवी
१५	पाणिग्रहण	विवाह हूया	विवाह हूया	विवाह हूया
१६	कितनेसाथ दीक्षा	४०००)साधु	१०००)साधु	१०००)साधु
१७	दीक्षानगरी	विनीता	अयोध्या	सावत्थी
१७	दीक्षातप	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
१ए	प्रथमपारणेकाआ०	इक्षुरस	परमान्नक्षीर	परमान्नक्षीर
२०	पारनेका स्थान	श्रेयांसके घरें	ब्रह्मदत्तके घरें	सुरेंद्रदत्तके घरें
२१	कितने दिनकापारणा	एकवर्षपीछे	दो दिन पीछें	दो दिनपीछे
२२	दीक्षातिथि	चैत्रवदि ७	महावदि ए	मगसिरशुदि १५
२३	छद्मस्थकाल	१०००)वर्ष	१२)वर्ष	१४)वर्ष
२४	ज्ञाननगरी	पुरिमताल	अयोध्या	सावत्थी
२५	ज्ञानतप	तीनउपवास	दो उपवास	दो उपवास
२६	दीक्षावृक्ष	वटवृक्ष	सालवृक्ष	प्रियालवृक्ष
२७	ज्ञानतिथि	फागुणवदि ११	पोषवदि ११	कार्त्तिकवदि ५

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थंकरोमें कहते है

२८	गणधरसंख्या	८४)	९५)	१०२)
२९	साधुओकी संख्या	८४०००)	१०००००)	२०००००)
३०	साध्वीयोकीसख्या	३०००००)	३३००००)	३३६०००)
३१	वैक्रियलब्धिवत	२०६००)	२०४००)	१९८००)
३२	वादिओकीसख्या	१२६५०)	१२४००)	१२०००)
३३	अवधिज्ञानीसख्या	९०००)	९४००)	९६००)
३४	केवलीसख्या	२००००)	२२०००)	१५०००)
३५	मन पर्यवसख्या.	१२७५०)	१२५५०)	१२१५०)
३६	चौदहपूर्वीसख्या.	४७५०)	३७२०)	२१५०)
३७	श्रावकसख्या	३५००००)	२९८०००)	२९३०००)
३८	श्राविकासख्या	५५४०००)	५४५०००)	६३६०००)
३९	शासनयक्षनाम	गोमुखयक्ष	महायक्ष	त्रिमुखयक्ष
४०	शासनयक्षणी	चक्रेश्वरी	अजितबला	दुरितारि
४१	प्रथमगणधरनाम	पुण्डरीक	सिंहसेन	चारु
४२	प्रथमआर्यानाम	ब्राह्मी	फाल्गु	श्यामा
४३	मोक्षस्थान	अष्टपद	समेतशिखर	समेतशिखर
४४	मोक्षतिथि	माघवदि १३	चैत्रशुदि ५	चैत्रशुदि ५
४५	मोक्षसलेषणा	६ उपवास	एक मास	एक मास
४६	मोक्षआसन	पद्मासन	कायोत्सर्ग	कायोत्सर्ग
४७	अतर मान	५०लाखकोटीसा	३०लाखकोटीसा	१०लाखकोटीसा
४८	गणनाम	मानवगण	मानवगण	देवगण
४९	योनि नाम	नकुलयोनि	सर्प्पयोनि	सर्प्पयोनि
५०	मोक्षपरिवार	१००००)	१०००)	१०००)
५१	भवसख्या	तेर भव कथा	तीन भव कथा	तीन भव कथा
५२	कुलगोत्रनाम	इक्ष्वागकुल	इक्ष्वागकुल	इक्ष्वागकुल
५३	गर्भकालमान.	नवमासचारदिन	८मास पच्चीशदि	नवमास ६दिन

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थंकरोमें कहते हैं

१	श्रीतीर्थंकरनाम	४ श्रीअभिनंदन	५श्रीसुमतिनाथ	६ श्रीपद्मप्रभ
२	चवणतिथि	वैशाखशुदि ४	श्रावणशुदि २	माघवदि ६
३	विमाननाम	जयतविमान	जयतविमान	उवरिमग्रैवेयक
४	जन्मनगरी	अयोध्या	अयोध्या	कौसुंबी
५	जन्मतिथि	माघशुदि २	वैशाखशुदि ८	कार्त्तिकवदि १२
६	पिताका नाम	सवरराजा	मेघराजा	श्रीधरराजा
७	माताका नाम	सिद्धार्था	मगला	सुसीमा
८	जन्म नक्षत्र	पुनर्वसु	मघा	चित्रा
९	जन्मराशि	मिथुन	सिंह	कन्या
१०	लांछनका नाम	वदरका	क्रौंचपक्षीका	पद्मकमलका
११	शरीरमान	३५०)धनुष	३००)धनुष	२५०)धनुष
१२	आयुमान	५०)लाखपूर्व	४०)लाखपूर्व	३०)लाखपूर्व
१३	शरीरका वर्ण	सुवर्णवर्ण	सुवर्णवर्ण	रक्तवर्ण
१४	पदवीराजकी	राजा	राजा	राजा
१५	पाणिग्रहण	परण्या	परण्या	परण्या
१६	कितनेसाथदीक्षा	१०००)साधु	१०००)साधु	१०००)साधु
१७	दीक्षानगरी	अयोध्या	अयोध्या	कौसुंबी
१८	दीक्षातप	दो उपवास	नित्य नक्त	एक उपवास
१९	प्रथमपारणेकाआ०	क्षीर	क्षीर	क्षीर
२०	पारनेका स्थान	इंद्रदत्त घरें	पद्म घरें	सोमदेव घरें
२१	कितनेदिनकापारणा	दोदिन (२)	दोदिन (२)	दोदिन (२)
२२	दीक्षातिथि	माघशुदि १२	वैशाखशुदि ९	कार्त्तिकवदि १३
२३	छद्मस्थकाल	अठारहवर्ष	वीशवर्ष	७ मास
२४	ज्ञाननगरी	अयोध्या	अयोध्या	कौसुंबी
२५	ज्ञानतप	दो उपवास	दो उपवास	चोथ नक्त
२६	दीक्षावृक्ष	प्रियगु वृक्ष	साल वृक्ष	छत्र वृक्ष
२७	ज्ञानतिथि	पोषवदि १४	चैत्रशुदि ११	चैत्रशुदि १५

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थंकरोंमें कहते हैं

२८	गणधरसंख्या	११६)	१००)	१०७)
२९	साधुओंकीसंख्या	३०००००)	३२००००)	३३००००)
३०	साधवीयोंकीसंख्या	६३००००)	५३००००)	४२००००)
३१	वैक्रियलब्धिवंत	१९०००)	१८४००)	१६१०८)
३२	वादीओंकीसंख्या	११०००)	१०४००)	९६००)
३३	अवधिज्ञानीसंख्या	९८००)	११०००)	१००००)
३४	केवलीसंख्या.	१४०००)	१३०००)	१२०००)
३५	मन पर्यवसंख्या	११६५०)	१०४५०)	१०३००)
३६	चौदहपूर्वीसंख्या	१५००)	२४००)	२३००)
३७	श्रावकसंख्या	२८८०००)	२८१०००)	२७६०००)
३८	श्राविकासंख्या	५२७०००)	५१६०००)	५०५०००)
३९	शासन यक्ष नाम	नायक यक्ष	तुंबरु यक्ष	कुसुम यक्ष
४०	शासनयक्षणीनाम	कालिका	महाकाली	श्यामा
४१	प्रथमगणधरनाम	वज्रनाभ	चरम	प्रयोतन
४२	प्रथमआर्यानाम	अजिता	काश्यपी	रति
४३	मोक्षस्थान	समेतशिखर	समेतशिखर	समेतशिखर
४४	मोक्षतिथि	वैशाखशुदि ८	चैत्रशुदि ९	मगसिरवदि ११
४५	मोक्षसंलेषणा	एकमास	एकमास	एकमास
४६	मोक्षआसन	कायोत्सर्ग	कायोत्सर्ग	कायोत्सर्ग
४७	अंतरमान	९लाखकोडीसा	९०हजारकोडीस	९हजारकोडीसा
४८	गणनाम	देवगण	राक्षसगण	राक्षसगण
४९	योनिनाम	छागयोनि	मूषकयोनि	महिषयोनि
५०	मोक्षपरिवार	१०००)	१०००)	३०८)
५१	नवसंख्या	तीननवकीया	तीननवकीया	तीननवकीया
५२	कुलगोत्रनाम	इक्ष्वागकुल	इक्ष्वागकुल	इक्ष्वागकुल
५३	गर्भकालमान	८मास२८दिन	नवमास६दिन	नवमास६दिन

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थंकरोमें कहते हैं

१	श्रीतीर्थंकरनाम	७ श्रीसुपार्श्वनाथ	८ श्रीचंद्रप्रभ	९ श्रीसुविधिनाथ
२	चवणतिथि	भाद्रववदि ८	चैत्रवदि ५	फागणवदि ९
३	विमाननाम	मध्यमग्रैवेयक	विजयंत	आनतदेवलोक
४	जन्मनगरी	वणारसी नगरी	चंद्रपुरीनगरी	काकदीनगरी
५	जन्मतिथि	ज्येष्ठशुदि १२	पोषवदि १२	मगसिरवदि ५
६	पिताका नाम	प्रतिष्ठराजा	महासेनराजा	सुग्रीवराजा
७	माताका नाम	पृथिवीमाता	लक्ष्मणामाता	रामाराणीमाता
८	जन्मनक्षत्र	विशाखानक्षत्र	अनुराधानक्षत्र	मूलनक्षत्र
९	जन्मराशि	तुलराशि	वृश्चिकराशि	धनराशि
१०	लांछननाम	साथीयाकालंछन	चंद्रकालंछन	मगरमच्छकालंछन
११	शरीरमान	२००)धनुष	१५०)धनुष	१००)धनुष
१२	आयुमान	२०)लाखपूर्व	१०)लाखपूर्व	२)लाखपूर्व
१३	शरीरका वर्ण	सुवर्णवर्ण	श्वेतवर्ण	श्वेतवर्ण
१४	पदवीराजकी	राजा	राजा	राजा
१५	पाणिग्रहण	परण्या	परण्या	परण्या
१६	कितनेसाथदीक्षा	१०००)साधु	१०००)साधु	१०००)साधु
१७	दीक्षानगरी	बनारसीनगरी	चंद्रपुरीनगरी	काकन्दीनगरी
१८	दीक्षातप	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
१९	प्रथमपारणेकाआ०	क्षीरकाभोजन	क्षीरकाभोजन	क्षीरका भोजन
२०	पारणेका स्थान	माहेंद्र घरें	सोमदत्त घरें	पुष्प घरें
२१	कितनेदिनकापारणा	दो दिन	दो दिन	दो दिन
२२	दीक्षातिथि	ज्येष्ठशुदि १३	पोषवदि १३	मगसिरवदि ६
२३	छद्मस्थकाल	नव मास रह्या	त्रण मास रह्या	चार मास रह्या
२४	ज्ञाननगरी	वणारसी नगरी	चंद्रपुरी नगरी	काकदी नगरी
२५	ज्ञानतप	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
२६	दीक्षावृक्ष	सरीसवृक्ष	नागवृक्ष	सालीवृक्ष
२७	ज्ञानतिथि	फागणवदि ६	फागणवदि ७	कार्त्तिकशुदि ३

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थंकरोंमें कहते हैं

२८	गणधरसंख्या.	९५) गणधर	९३) गणधर	८८) गणधर
२९	साधुओंकीसंख्या	३०००००)	२५००००)	२०००००)
३०	साध्वीयोंकीसंख्या	४३००००)	३८००००)	१२००००)
३१	वैक्रियलब्धिवंत	१५३००)	१४०००)	१३०००)
३२	वादिओंकीसंख्या	८४००)	७६००)	६०००)
३३	अवधिज्ञानीसंख्या	९०००)	८०००)	८४००)
३४	केवलीसंख्या	११०००)	१००००)	७५००)
३५	मन पर्यवसंख्या.	९१५०)	८०००)	७५००)
३६	चौदहपूर्वीसंख्या	२०३०)	२०००)	१५००)
३७	श्रावकसंख्या	२५७०००)	२५००००)	२२९०००)
३८	श्राविकासंख्या	४९३०००)	४३९०००)	४७१०००)
३९	शासनयक्षनाम	मातंगयक्ष	विजययक्ष	अजिता यक्ष
४०	शासनयक्षणीनाम	शाता	भृकुटी	सुतारिका
४१	प्रथमगणधरनाम	विदर्भ	दिन्न	वराहक
४२	प्रथमआर्यानाम	सोमा	सुमना	वारुणी
४३	मोक्षस्थान	समेतशिखर	समेतशिखर	समेतशिखर
४४	मोक्षतिथि	फागणवदि ७	भाद्रवावदि ७	भाद्रवाशुदि ९
४५	मोक्षसंलेषणा	एकमास	एकमास	एकमास
४६	मोक्षआसन	काउस्सग्ग	काउस्सग्ग	काउस्सग्ग
४७	अंतर मान	एसोकोडीसागर	९०कोडीसागर	एकोडीसागर
४८	गणनाम	राक्षसगण	देवगण	राक्षसगण
४९	योनिनाम	मृगयोनि	मृगयोनि	वानरयोनि
५०	मोक्षपरिवार	५००)	१०००)	१०००)
५१	भवसंख्या	तीन भव कीया	तीन भव कीया	तीन भव कीया
५२	कुलगोत्रनाम	इक्ष्वागकुल	इक्ष्वागकुल	इक्ष्वागकुल
५३	गर्भकालमान	मासनवदिन १९	मासनवदिनसात	मास ८ दिनछवीस

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थंकरोमें कहेते हैं

१	श्रीतीर्थंकरनाम.	१० शीतलनाथ	११ श्रेयांसनाथ	१२ श्रीवासुपूज्य
२	चवणतिथि	वैशाखवदि ६	ज्येष्ठवदि ६	ज्येष्ठसुदि ए
३	विमाननाम	अच्युतदेवलोक	अच्युतदेवलोक	प्राणतदेवलोक
४	जन्मनगरी.	नद्दिलपुर	सिंहपुरी	चपापुरी
५	जन्मतिथि	महावदि १२	फागणवदि १२	फागणवदि १४
६	पिताका नाम.	दृढरथराजा	विष्णुराजा	वसुपूज्यराजा
७	माताका नाम	नदामाता	विष्णुमाता	जयामाता
८	जन्मनक्षत्र	पूर्वाषाढा	श्रवणनक्षत्र	शतभिषानक्षत्र
ए	जन्मराशि.	धनराशि	मकरराशि	कुंभराशि
१०	लांछननाम.	श्रीवत्सकालांछन	गेंडाका लांछन	पाडाका लांछन
११	शरीरमान	नेवु धनुष	अशीधनुष	सीत्तरे धनुष
१२	आयुमान	एकलाख पूर्व	(८४)लाख वर्ष	(७२)लाख वर्ष
१३	शरीरका वर्ण.	सुवर्णवर्ण	सुवर्णवर्ण	लालवर्ण
१४	पदवी राजकी	राजा	राजा	कुमार
१५	पाणिग्रहण	परण्या	परण्या	परण्या
१६	कितने साथ दीक्षा	(१०००) साधु	(१०००) साधु	(६००) साधु
१७	दीक्षानगरी	नद्दिलपुर	सिंहपुरी	चपापुरी
१८	दीक्षातप	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
१ए	प्रथमपारणेकाआ०	क्षीरभोजन	क्षीरभोजन	क्षीरभोजन
२०	पारनेका स्थान	पुनर्वसुके घरें	नदके घरें	सुनदके घरें
२१	कितने दिनकापारणा	दो दिन	दो दिन	दो दिन
२२	दीक्षातिथि	महावदि १२	फागणवदि १३	फागणसुदि १५
२३	छद्मस्थकाल	तीन मासरह्या	दो मासरह्या	एक मासरह्या
२४	ज्ञाननगरी	नद्दिलपुर	सिंहपुरी	चपापुरी
२५	ज्ञानतप	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
२६	दीक्षावृक्ष	प्रियंगुवृक्ष	तंडुकवृक्ष	पाडलवृक्ष
२७	ज्ञानतिथि	पौषवदि १४	महावदि ३	महासुदि २

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थंकरोमें कहते हैं

२८	गणधरसंख्या.	८१)गणधर	७६)गणधर	६६)गणधर
२९	साधुओंकीसंख्या	१०००००	८४०००	७२०००
३०	साधवीयोंकीसंख्या	१००००६	१०३०००	१०००००
३१	वैक्रियलब्धिवंत	१२०००	११०००	१००००
३२	वादीओंकीसंख्या	५८००	५०००	४७००
३३	अवधिज्ञानीसंख्या.	७२००	६०००	५४००
३४	केवलीसंख्या.	७०००	६५००	६०००
३५	मनःपर्यवसंख्या	७५००	६०००	६५००
३६	चौदहपूर्वीसंख्या	१४००	१३००	१२००
३७	श्रावकसंख्या	२८९०००	२७९०००	२१५०००
३८	श्राविकासंख्या	४५८०००	४४८०००	४३६०००
३९	शासन यक्ष नाम	ब्रह्मायक्ष	जक्षेटयक्ष	कुमारयक्ष
४०	शासनयक्षिणीनाम	अशोका	मानवी	चंडा
४१	प्रथमगणधरनाम	नंद	कश्यप	सुभूम
४२	प्रथमआर्यानाम	सुयशा	धारणी	धरणी
४३	मोक्षस्थान	समेतशिखर	समेतशिखर	चंपापुरी
४४	मोक्षतिथि	वैशाखवदि २	श्रावणवदि ३	आषाढसुदि १४
४५	मोक्षसंलेषणा	एकमास	एकमास	एकमास
४६	मोक्षआसन	काउस्सग्ग	काउस्सग्ग	काउस्सग्ग
४७	अंतरमान	एककोडीसागर	चोपनसागर	त्रीशसागर
४८	गणनाम	मानवगण	देवगण	राक्षसगण
४९	योनिनाम	नकुलयोनि	वानरयोनि	अश्वयोनि
५०	मोक्षपरिवार	१०००)परिवार	१०००)परिवार	६००)परिवार
५१	भवसंख्या	तीन भव कथा	तीन भव कथा	तीन भव कथा
५२	कुलगोत्रनाम.	इक्ष्वागकुल	इक्ष्वागकुल	इक्ष्वागकुल
५३	गर्भकालमान	मासनव दिन ७	मासनव दिन ७	मास८दिन२०

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थंकरोमें कहते हैं

१	श्रीतीर्थंकरनाम.	१३ विमलनाथ	१४ अनंतनाथ	१५ श्रीधर्मनाथ
२	चवणतिथि.	वैशाखशुदि १२	श्रावणवदि ७	वैशाखशुदि ७
३	विमाननाम	सहसारदेवलोक	प्राणतदेवलोक	विजयविमान
४	जन्मनगरी	कंपिलपुरी	अयोध्या	रत्नपुरीनगरी
५	जन्मतिथि	महाशुदि ३	वैशाखवदि १३	महाशुदि ३
६	पिताका नाम	कृतवर्मराजा	सिंहसेनराजा	भानुराजा
७	माताका नाम	श्यामामाता	सुयशामाता	सुव्रतामाता
८	जन्म नक्षत्र	उत्तराभाद्रपद	रेवतीनक्षत्र	पुष्यनक्षत्र
९	जन्मराशि	मीनराशि	मीनराशि	कर्कराशि
१०	लांछनका नाम	वराहका लांछन	सीचाणाका लां०	वज्र लांछन
११	शरीरमान	शाठ धनुष	पचाशधनुष	पीस्तालीशधनुष
१२	आयुमान	शाठलाखवर्ष	त्रीशलाखवर्ष	दशलाखवर्ष
१३	शरीरका वर्ण	सुवर्णवर्ण	सुवर्णवर्ण	सुवर्णवर्ण
१४	पदवीराजकी	राजा	राजा	राजा
१५	पाणिग्रहण	परण्या	परण्या	परण्या
१६	कितने साथदीक्षा.	१०००)साधु	१०००)साधु	१०००)साधु
१७	दीक्षानगरी.	कंपिलपुर	अयोध्या	रत्नपुरी
१८	दीक्षातप	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
१९	प्रथमपारणेकाआ०	क्षीरभोजन	क्षीरभोजन	क्षीरभोजन
२०	पारनेका स्थान.	जयराजाकेघरें	विजयराजाकेघरें	धनसिंहके घरें
२१	कितनेदिनकापारणा	दो दिन	दो दिन	दो दिन
२२	दीक्षातिथि	महाशुदि ४	वैशाखवदि १४	महाशुदि १३
२३	छद्मस्थकाल	दो मास	तीन वर्ष	दो वर्ष
२४	ज्ञाननगरी	कपिलपुरी	अयोध्या	रत्नपुरी
२५	ज्ञानतप	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
२६	दीक्षावृक्ष	जंबूवृक्ष	अशोकवृक्ष	दधिपर्णवृक्ष
२७	ज्ञानतिथि	पौषशुदि ६	वैशाखवदि १४	पौषशुदि १५

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थंकरोंमें कहते हैं

२८	गणधरसंख्या.	५७)गणधर	५०)गणधर	४३)गणधर
२९	साधुओंकी संख्या	६८०००)	६६०००)	६४०००)
३०	साधवीयोंकीसंख्या	१००८००)	६२०००)	६२४००)
३१	वैक्रियलब्धिवंत.	९०००)	८०००)	७०००)
३२	वादिओंकी संख्या	३६००)	३२००)	२८००)
३३	अवधिज्ञानीसंख्या.	४८००)	४३००)	३६००)
३४	केवलीसंख्या.	५५००)	५०००)	४५००)
३५	मन पर्यवसंख्या.	५५००)	५०००)	४५००)
३६	चौदहपूर्वीसंख्या.	११००)	१०००)	९००)
३७	श्रावकसंख्या	२०८०००)	२०६०००)	२०४०००)
३८	श्राविकासंख्या.	४२४०००)	४१४०००)	४१३०००)
३९	शासनयक्षनाम	षण्मुखयक्ष	पातालयक्ष	किन्नरयक्ष
४०	शासनयक्षिणी	विदिता	अंकुशा	कंदर्पा
४१	प्रथमगणधरनाम	मंदरगणधर	जस गणधर	अरिष्ट
४२	प्रथमआर्यानाम	धरा	पद्मा	आर्यशिवा
४३	मोक्षस्थान	समेतशिखर	समेतशिखर	समेतशिखर
४४	मोक्षतिथि	आषाढवदि ७	चैत्रशुदि ५	ज्येष्ठशुदि ५
४५	मोक्षसंलेषणा	एकमास	एकमास	एकमास
४६	मोक्षआसन	काउस्सग्ग	काउस्सग्ग	काउस्सग्ग
४७	अंतर मान	नवसागरोपम	चारसागरोपम	तीनसागरोपम
४८	गणनाम	मानवगण	देवगण	देवगण
४९	योनि नाम	छागयोनि	हस्तियोनि	मंजारयोनि
५०	मोक्षपरिवार	६००)	७००)	१०८)
५१	जवसंख्या.	तीनजवकख्या	तीनजवकख्या	तीनजवकख्या
५२	कुलगोत्रनाम	इक्ष्वागकुल	इक्ष्वागकुल	इक्ष्वागकुल
५३	गर्भकालमान.	मास ८ दिन २१	मासनवदिन छ	मास८दिनछवीश

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थंकरोमें कहते है

१	श्रीतीर्थंकरनाम.	१६श्रीशांतिनाथ	१७श्रीकुंथुनाथ	१८श्रीअरनाथ
२	चवणतिथि	नाद्रवावदि ७	श्रावणवदि ए	फागणशुदि २
३	विमाननाम	सर्वार्थसिद्ध	सर्वार्थसिद्ध	सर्वार्थसिद्ध
४	जन्मनगरी	गजपुर	गजपुर	गजपुर
५	जन्मतिथि	ज्येष्ठवदि १३	वैशाखवदि १४	मगशिरशुदि१०
६	पिताका नाम	विश्वसेन	सूरराजा	सुदर्शन
७	माताका नाम	अचिराराणी	श्रीराणी	देवीराणी
८	जन्मनक्षत्र	नरणीनक्षत्र	कृत्तिकानक्षत्र	रेवतीनक्षत्र
ए	जन्मराशि	मेषराशि	वृषराशि	मीनराशि
१०	लांछननाम	हरिणका लांछन	बकराका लांछन	नंदावर्त्तकालांछन
११	शरीरमान	४० धनुष	३५ धनुष	३० धनुष
१२	आयुमान	एकलाखवर्ष	(ए५०००)वर्ष	(८४०००) वर्ष
१३	शरीरका वर्ण.	सुवर्णवर्ण	सुवर्णवर्ण	सुवर्णवर्ण
१४	पदवीराजकी	चक्रवर्त्ती	चक्रवर्त्ती	चक्रवर्त्ती
१५	पाणिग्रहण	(६४०००) स्त्री	(६४०००) स्त्री	(६४०००) स्त्री
१६	कितनेसाथदीक्षा	(१०००) साधु	(१०००) साधु	(१०००) साधु
१७	दीक्षानगरी	गजपुर	गजपुर	गजपुर
१८	दीक्षातप	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
१ए	प्रथमपारणेकाआ०	क्षीरनोजन	क्षीरनोजन	क्षीरनोजन
२०	पारणेका स्थान	सुमित्रघरें	व्याघ्रसिंहघरें	अपराजितघरें
२१	कितनेदिनकापारणा	दो दिन	दो दिन	दो दिन
२२	दीक्षातिथि	ज्येष्ठवदि १४	चैत्रवदि ५	मगसिरशुदि११
२३	छद्मस्थकाल	एकवर्ष	शोलवर्ष	तीनवर्ष
२४	ज्ञाननगरी	गजपुर	गजपुर	गजपुर
२५	ज्ञानतप	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
२६	दीक्षावृक्ष	नंदीवृक्ष	नीलकवृक्ष	आंबाकावृक्ष
२७	ज्ञानतिथि	पौषशुदि ए	चैत्रशुदि ३	कार्त्तिकशुदि१२

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थंकरोंमें कहते हैं

२८	गणधरसंख्या.	३६ गणधर	३५ गणधर	३३ गणधर
२९	साधुओंकीसंख्या	६२०००	६००००	५००००
३०	साधवीयोंकीसंख्या	६१६००	६०६००	६००००
३१	वैक्रियलब्धिवंत	६०००	५१००	७३००
३२	वादिओंकीसंख्या.	२४००	२०००	१६००
३३	अवधिज्ञानीसंख्या	३०००	२५००	२६००
३४	केवलीसंख्या	४३००	३२००	२८००
३५	मन पर्यवसंख्या.	४०००	३३४०	२५५१
३६	चौदहपूर्वीसंख्या.	८००	६७०	६१०
३७	श्रावकसंख्या	१९००००	१७९०००	१८४०००
३८	श्राविकासंख्या	३९३०००	३८१०००	३७२०००
३९	शासनयक्षनाम	गरुडयक्ष	गधर्वयक्ष	यक्षेंदयक्ष
४०	शासनयक्षिणीनाम	निर्वाणी	बला	धणा
४१	प्रथमगणधरनाम	चक्रयुद्ध	सांब	कुंभ
४२	प्रथमआर्यानाम	सुचि	दामिनी	रक्षिता
४३	मोक्षस्थान	समेतशिखर	समेतशिखर	समेतशिखर
४४	मोक्षतिथि.	ज्येष्ठवदि १३	वैशाखवदि १	मगशिरसुदि १०
४५	मोक्षसंलेषणा	एकमास	एकमास	एकमास
४६	मोक्षआसन	काउस्सग्ग	काउस्सग्ग	काउस्सग्ग
४७	अंतर मान	० ॥ पल्योपम	० । पल्योपम	१०००क्रोडवर्ष
४८	गणनाम	मानवगण	राक्षसगण	देवगण
४९	योनिनाम	हस्तियोनि	छागयोनि	हस्तियोनि
५०	मोक्षपरिवार	९०० परिवार	१००० परिवार	१००० परिवार
५१	भवसंख्या	बारांभव कथा	तीनभव कथा	तीनभव कथा
५२	कुलगोत्रनाम	इक्ष्वागकुल	इक्ष्वागकुल	इक्ष्वागकुल
५३	गर्भकालमान	मासनवदिनछ	मासनवदिनपांच	मासनवदिन ८

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थंकरोमें कहते हैं

१	श्रीतीर्थंकरनाम.	१९ श्रीमल्लीनाथ	२० श्रीमुनिसुव्रत	२१ श्रीनमीनाथ
२	चवणतिथि	फागुणशुदि ४	श्रावणशुदि १५	आशोशुदि १५
३	विमाननाम	जयंतविमान	अपराजितविमा.	प्राणतदेवलोक
४	जन्मनगरी.	मथुरानगरी	राजगृहीनगरी	मथुरानगरी
५	जन्मतिथि.	मगशिरशुदि ११	ज्येष्टवदि ८	श्रावणवदि ८
६	पिताका नाम	कुंभराजा	सुमित्रराजा	विजयराजा
७	माताका नाम	प्रभावती	पद्मावती	विप्राराणी
८	जन्मनक्षत्र	अश्विनीनक्षत्र	श्रवणनक्षत्र	अश्विनीनक्षत्र
९	जन्मराशि	मेषराशि	मकरराशि	मेषराशि
१०	लांछननाम	कलशका लांछन	कछपका लांछन	कमलका लांछन
११	शरीरमान	पचीशधनुष	वीशधनुष	पंदरधनुष
१२	आयुमान	५५०००) वर्ष	३००००)वर्ष	१००००)वर्ष
१३	शरीरका वर्ण	नीलावर्ण	श्यामवर्ण	पीलावर्ण
१४	पदवी राजकी	कुमार	राजा	राजा
१५	पाणिग्रहण	नहीं परण्या	परण्या	परण्या
१६	कितने साथ दीक्षा	३००) साधु	१०००) साधु	१०००)साधु
१७	दीक्षानगरी	मिथिलानगरी	राजगृहीनगरी	मथुरानगरी
१८	दीक्षातप	तीन उपवास	दो उपवास	दो उपवास
१९	प्रथमपारणेकाआ०	क्षीरभोजन	क्षीरभोजन	क्षीरभोजन
२०	पारनेका स्थान	विश्वसेन	ब्रह्मदत्त	दिन्नकुमार
२१	कितनेदिनकापारणा	दो दिन	दो दिन	दो दिन
२२	दीक्षातिथि	मगशिरशुदि ११	फागणशुदि १२	आषाढवदि ९
२३	छद्मस्थकाल	एक अहोरात्र	इग्यार मास	नव मास
२४	ज्ञाननगरी	मथुरानगरी	राजगृहीनगरी	मथुरानगरी
२५	ज्ञानतप	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
२६	दीक्षावृक्ष	अशोकवृक्ष	चंपकवृक्ष	बकुल वृक्ष
२७	ज्ञानतिथि	मगशिरशुदि ११	फागणवदि १२	मगशिरशुदि ११

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थकरोंमें कहते हैं.

२८	गणधरसंख्या.	११)गणधर	१०)गणधर	११)गणधर
२९	साधुओंकीसंख्या	१८०००)	१६०००)	१४०००)
३०	साधवीयोंकीसंख्या	४००००)	३८०००)	३६०००)
३१	वैक्रियलब्धिवंत	१५००)	११००)	७००)
३२	वादिओंकीसंख्या	८००)	६००)	४००)
३३	अवधिज्ञानीसंख्या	१५००)	१०००)	१३००)
३४	केवलीसंख्या	१५००)	१०००)	७००)
३५	मन पर्यवसंख्या	१०००)	७५०)	५००)
३६	चौदहपूर्वीसंख्या.	४००)	३५०)	३००)
३७	श्रावकसंख्या	१६९०००)	१६४०००)	१५९०००)
३८	श्राविकासंख्या	३३६०००)	३३९०००)	३१८०००)
३९	शासनयक्षनाम	गोमेधयक्ष	पार्श्वयक्ष	मातंगयक्ष
४०	शासनयक्षिणीनाम	अंबिका	पद्मावती	सिद्धायिका
४१	प्रथमगणधरनाम	वरदत्त	आर्यदिन्न	इंद्रभूति
४२	प्रथमआर्यानाम	यक्षदिन्ना	पुष्पचूडा	चंदनबाला
४३	मोक्षस्थान	गिरनार	समेतशिखर	पावापुरी
४४	मोक्षतिथि	आषाढशुदि ८	श्रावणशुदि ८	कार्त्तिकवदि ०)
४५	मोक्षसंलेषणा	एकमास	एकमास	दोउपवास करवा
४६	मोक्षआसन	पद्मासन	काउस्सग्ग	पद्मासन
४७	अंतरमान	८३७५०)वर्ष	२५०)वर्ष	चर्मजिनेश्वर
४८	गणनाम	राक्षसगण	राक्षसगण	मानवगण
४९	योनि नाम	महिषयोनि	मृगयोनि	महिषयोनि
५०	मोक्षपरिवार	५३६)परिवार	३३)परिवार	एकाकी आप
५१	भवसंख्या	नव भव करया	दश भव करया	सत्तावीशभवक०
५२	कुलगोत्रनाम	हरिवंश	इक्ष्वागकुल	इक्ष्वागकुल
५३	गर्भकालमान	मासनव दिन ८	मास नव दिन ७	मासनवदिन ७॥

इस यंत्रके अनुसार एकैक तीर्थंकरके साथ बावन बावन बोलका संबध जान लेना इनमेंसूं मातादिक कितनेक द्वार जो प्रथम न्यारे लिखे गये है, सो व्युत्पत्तिके कारणसे लिखे हैं

इन चोवीश तीर्थंकरोंमें नववा, दशवां, इग्यारवां, बारवां, तेरवां, चौद वां अरु पंदरवां, ए सात तीर्थंकरोके निर्वाण हुवा पीछें इन सातोंका शास न जो द्वादशांग वाणीरूप शास्त्र अरु साधु तथा साधवी, श्रावक, औ श्राविका, ए चतुर्विध श्रीसंघरूप तीर्थ सो कितनेक काल तांइ प्रवृत्त हो कर पीछेसें व्यवछेद गया, तब तो भारत वर्षमें जैन मतका नामभी न र हा था, तबहीसे अनेक मत मतांतर और कुशास्त्रोंकी प्रायें प्रवृत्ति भयी सो अबतांइ होतीही चली जाती है, बहुत लोकोने स्वकपोल कल्पित शा स्त्र बना करके पूर्व मुनि, वा ऋषि, वा ईश्वरप्रणीत प्रसिद्ध करे हैं ऐसे ती नसो त्रेशठ मत प्रवृत्त कर दीये अरु आर्य चारों वेद व्यवछेद हो गये अ रु नवीन वेद बना लीये उन नवीनोकोंभी कइ बार लोकोने नवी नवी रचनासें बना कर उलट पुलट कर दीये जो कुछ बन बनाके शेष रहे उ नकीभी अनेक तरेंके भाष्य, टीका, दीपिका रच कर अर्थोंकी गड बड कर दीनी सो अबतांइ करतेही चले जाते है, ए सर्व स्वरूप जहां वेदोंकी उत्प त्ति लिखेंगे तहां स्पष्ट करके लिखेगे वेद जो नाम है सोतो बहुत प्राचीन कालसे है, अरु जिन पुस्तकोंका नाम वेद अब प्रसिद्ध है सो पुस्तक प्राची न नहीं है, इसका प्रमाण आगें चलके लिखेंगे ॥ इति श्री तपगछीये मुनि श्री बुद्धिविजय शिष्यमुनि आनंदविजय आत्मारामविरचिते जैनतत्त्वादर्शे प्रथम परिछेद सम्पूर्ण ॥ १ ॥

॥ अथ द्वितीय परिछेद प्रारंभ ॥

अब दूसरे परिछेदमें कुदेवका स्वरूप लिखते हैं, कुदेव उसकु कहते हैं जो भगवान् तो नहीं परंतु लोकोंने अपनी बुद्धिसें परमेश्वरका आरोप कर लीया है सो कुदेवका स्वरूप तो उक्त देव स्वरूपसे विपर्यय सर्व बुद्धि मान् आपही जान लेंगे, परंतु विस्तारसें लिखाही जो समझ सक्के हैं ति नोंके तांई लिखते हैं

॥श्लोक॥ ये स्त्रीशस्त्राक्षसूत्रादि, रागाद्यंककलंकिता ॥ निग्रहानुग्रहपरा,

स्तेदेवास्तुर्न मुक्तये ॥ १ ॥ नाट्यात्टहाससंगीता, द्युपप्लवविसंस्थुला ॥ लं नयेयु पदं शांते, प्रपन्नान्प्राणिन कथ ॥२॥ इति योगशास्त्र ॥ अस्यार्थ ॥ जिस देवके पास स्त्री होवे तथा तिसकी प्रतिमाके पास स्त्री होवे क्युंकि जैसा पुरुष होता है उसकी मूर्त्तिभी प्रायें वैसीही होती है आज काल सर्व चित्रोमें वैसाही देखनेमें आता है, सो मूर्त्ति द्वारा देवकाभी स्वरूप प्रगट हो जाता है इस कारणे मूर्त्तिद्वारा तथा मतावलंबी पुरुषोंके ग्रंथानुसार समझ लेना तथा शस्त्र, धनुष्य, चक्र, त्रिशूलादि जिसके पास होवे तथा अक्षसूत्र, जपमाला,आदि शब्दसे कमंडल प्रमुख होवे, फेर कैसा वो देव होवे? राग द्वेषादि दूषणोका जिनमें चिन्ह होवे अरु स्त्रीकू जो पास रखेगा वो जरूर कामी और स्त्रीसे भोग करनेवाला होगा, इससे अधिक रागी होणेका दूसरा कौनसा चिन्ह है? इसी काम रागके वश होकर कुदेवोने परस्त्री, स्वस्त्री, बेटी, माता, बहिन, अरु पुत्रकी वधू प्रमुखसे अनेक कामक्रीडा कुचेष्टा करी है

अब जो पुरुष मात्र होकर परस्त्री गमन करता है उसकू आज कालके मतावलंबीयोमेंसें कोइभी अच्छा नहीं कहता, तो फेर परमेश्वर हो कर जो परस्त्रीसे काम कुचेष्टा करें, तो उसके कुदेव होनेमें कोइभी बुद्धिमान शका नहीं कर सक्ता, जो आपणी स्त्रीसे काम सेवन करता है औ परस्त्रीका त्यागी है उसकूभी परस्त्रीका त्यागी, धर्मी गृहस्थ, लोक कह सके हैं, परतु उसको मुनि वा ऋषि वा ईश्वर कभी नहीं कहेंगे क्युंकि जो आपही कामाग्निके कुंडमें प्रज्ज्वलित हो रहा है तिसमें कभी ईश्वरता नहीं हो सक्ती, इस हेतुसें जो रागरूप चिन्ह करी सयुक्त है, सो कुदेव हैं पुन जो द्वेषके चिन्ह करी संयुक्त है वोभी कुदेव हैं द्वेषके चिन्ह शस्त्रादि धारण करणा क्युके जो शस्त्र, धनुष, चक्र, त्रिशूल प्रमुख रखेगा उसने अवश्य किसी वैरीकु मारणा है,नहींतो शस्त्र रखणेसें क्या प्रयोजन है? तो जिसकू वैर विरोध लगा हुवा है सो परमेश्वर नहीं हो सक्ता है, जो ढाल वा खड्ग रखेगा वह भयकरी अवश्य सयुक्त होगा अरु जो आप ही भय सयुक्त है तो उसकी सेवा करनेसें हम निर्भय कैसें हो सके है? इस हेतुसें द्वेष संयुक्तकों कौन बुद्धिमान् परमेश्वर कह सक्ता है? परमेश्वर जो है सो तो वीतराग है अरु जो राग द्वेष करी सयुक्त है सो कुदेव है

तथा जिसके हाथमें जपमाला है, सो असर्वज्ञताका चिन्ह है जेकर सर्वज्ञ होता तो मालाके मणिकियों बिना भी जपकी संख्या कर सक्ता, अरु जो जपकों करता है, सोभी अपणेसे उच्चका करता है, तो परमेश्वरसें उच्च कौन है जिसका वो जप करता है? इस हेतुसें जो मालासे जप करता है सो कुदेव है

तथा जो शरीरकू भस्म लगाता है, औ धूणी तापता है, नंगा होकर कुचेष्टा करता है, भांग, अफीम, धत्तूरा, मदिरा प्रमुख पीता है तथा मांसादि अशुद्ध आहार करता है, वा हस्ती, ऊंट, बैल, गर्दभ प्रमुखकी जो असवारी करता है सोभी कुदेव है, क्युंकि जो शरीरकों भस्म लगाता है, अरु जो धूणी तापता है सो किसी वस्तुकी इछा वाला है, सो जिसका अभीतक मनोरथ पूरा नहीं हूआ सो परमेश्वर नहीं वो तो कुदेव है

अरु जो नशे, अमलकी चीजें खाता पीता है, सो तो नशेके अमलमें आनद और हर्ष ढूढता है, अरु परमेश्वर तो सदा आनद औ सुखरूप है, परमेश्वरमें वो कौनसा आनद नहीं था जो नशा पीनेसे उसकूं मिलता है? इस हेतुसें नशा पीने वाला अरु मांसादि अशुद्ध आहार करने वाला जो है सो कुदेव है

और जो असवारी है सो परजीवोंकू पीडाका कारण है, अरु परमेश्वर तो दयालु है, सो पर जीवोंकू पीडा कैसें देवे? इस हेतुसें जो असवारी करे, सो कुदेव है

और जो कमंडल रखता है, सो शुचि होणेके कारण रखता है अरु परमेश्वर तो सदाही पवित्र है उनकूं कमंडलसे क्या काम है?

यत ॥ श्लोक॥ स्त्रीसग काममाचष्टे, द्वेष चायुधसग्रह ॥ व्यामोहं चाक्षसूत्रादि, रशोच च कमंडलु ॥ १ ॥ अर्थ —स्त्रीका जो संग है सो कामकूं कहता है, शस्त्र जो है सो द्वेषकू कहता है, जपमाला जो है सो व्यामोहकू कहती है, अरु कमंडलु जो है सो अशुचिपणेकू कहता है तथा निग्रह जो (जिसके उपर क्रोध करे) तिसकू वध,बंधन, मारण, रोगी, शोकी, अतीष्ट वियोगी, नरकपात, निर्धन, हीन, दीन, क्षीण करे, सोभी कुदेव है और जो जिसके उपरि अनुग्रह (तुष्टमान) होवे तिसकू इंद्र, चक्रवर्त्ती, बलदेव, वासुदेव, महामंडलिक, मंडलिकादिकोंकों राज्यादि पदवीका वर देवे तथा

सुंदर स्वर्गसदृश स्त्रीका संयोग, पुत्र परिवारादिकोंका संयोग जो करे, सो कु देव हे, क्युंकि जो ऐसा रागी द्वेषी हे वो मोक्षके तांइ कन्नी नहीं हो सक्ता, सो तो नूत, प्रेत, पिशाचादिकोंकी तरे क्रीडाप्रिय देवता मात्र हे ऐसा देव अपणे सेवकोंकू केसे मोक्ष दे सक्ता हे? आपही यदि वो रागी, द्वेषी, कर्म परतंत्र हे, तो सेवकोंका क्या कार्य सार सक्ता हे? इस हेतुसे योनी कुदेव हे

पुन कुदेवके लक्षण लिखते हे जो नाद, नाटक, हास्य, संगीत, इनके रसमें मग्न हे वाद्यत्र (वाजा) वजाता हे अरु आप नृत्य करता हे तथा औरोंको नचाता हे, आप हसता अरु कूदता हे, विषयी रागोंको गाता हे, अरु संगीत वोलता हे इत्यादिक मोहकर्मके वश संसारकी चेष्टा करता हे, स्वनाव जिसका अस्थिर हो रहा हे, जो आपही ऐसा हे तो फेर सेवकोंकू शांतिपद केसे प्राप्त कर सक्ता हे? जेसे एरंमवृक्ष कल्पवृक्षकी तरे इछा नहीं पूर सक्ता, किसी मूढ पुरुषने जो एरंमकू कल्पवृक्ष मान लीया तो क्या वो कल्पवृक्षका सारा काम दे सक्ता हे? ऐसेही किसी मिथ्यादृष्टि पुरुषने जो कुदेवकू परमेश्वर मान लीया तो क्या वो परमेश्वर हो सक्ता हे? कन्नी नहीं हो सक्ता इसी वास्ते प्रथम परिछेदमें जो लक्षण परमेश्व रके लिखे हें तिनही लक्षणों वाला परमेश्वर देव हे शेष सर्व कुदेव हे

प्रश्न —हमने तो ऐसा सुण रक्का हे जो जैनी ईश्वरको नहीं मानते, उ नका जो मत हे, सो अनीश्वरीय हे और तुमने तो प्रथम परिछेदमें कइ जगे अर्हंत नगवंत परमेश्वर लिखा हे अरु प्रथम परिछेद तो नगवान्हीके स्व रूपकथनमें समाप्त किया हे, यह केसें संनव हो सक्ता हे?

उत्तर —हे नव्य! जे केइ कहते हें कि जैनमतावलंबी ईश्वरको नहीं मानते ऐसा कहणा उनका मिथ्या हे उनोंने कन्नी जैनमतका शास्त्र पढा वा सुना न होगा तथा किसी बुद्धिमान् जैनीका संसर्गनी न करा होगा, जेकर जैन मतका शास्त्र पढा, वा सुना होता तो कन्नी ऐसा न कहता, जो जैनी ईश्व रको नहीं मानते, जेकर जैनी ईश्वरको न मानते तो यह जो श्लोक लिखे जाते हें, वो किसकी स्तुतिके हे ॥श्लोक॥ त्वामव्ययंविन्नुमचिंत्यमसंख्यमाद्यं, ब्रह्माणमीश्वरमनंतमनंगकेतुम् ॥ योगीश्वरं विदितयोगमनेकमेकं,ज्ञानस्वरूप ममलं प्रवदंति संत ॥१॥ अस्यार्थ —हे जिन! (संत) सत्पुरुष (त्वां) तेरे प्रति (अव्ययं) अव्यय (प्रवदंति) कहते हें अव्यय अपचयकू जो न प्राप्ति होवे

सो द्रव्यार्थ नयके मतसे अव्यय तीनो कालोंमें एक स्वरूप है विभाति –शोभता है परमेश्वर पणा करी सो (विभु) अथवा विभवति –समर्थ होवे कर्मोन्मूलन करके सो (विभु) अथवा इंद्रादिक देवताओंका जो स्वामी सो विभु, सत्पुरुष इसवास्ते तुजकू विभु कहते है पुन कैसे तुजकु ? (अचिंत्य) अध्यात्म ज्ञानीभी तुजकू चितवन करनेकू समर्थ नहीं फेर कैसे तुजकूं ? (असंख्य) गुणाकी संख्या (गिणती) नहीं कि इतने गुण है भगवान्में इस हेतुसें सत्पुरुष तुजकू असंख्य कहते हैं फेर कैसें तुजकू ? (आद्य) आदिमें जो होवे सर्व लोक व्यवहारके प्रवर्त्तावणेसे, संत तेरेकुं आद्य कहते हैं, अथवा अपने तीर्थकी आदि करणेसे आद्य. फेर कैसे तुजकूं ? (ब्रह्माण) अनंत आनंद करी जो सर्वसें अधिक वृद्धि वाला है सो ब्रह्म, सत्पुरुष तुजकू ब्रह्म कहते हैं फेर कैसे तुजकूं ? (ईश्वरं) सर्व देवताओंमें वाकुर कहते है फेर कैसें तुजकू ? (अनंतं) अनंत ज्ञान दर्शनके योगतें अनंत अथवा नही है अंत जिसका सो अनंत कहते हैं अथवा अनंत चारों करी संयुक्त १ अनंतज्ञान, २ अनंतबल, ३ अनंतसुख, ४ अनंतजीवन, सो अनंत कहते हैं फेर कैसे तुजकू ? (अनंगकेतु) कामदेवकू केतुके उदय समान नाशकारक सो अनंगकेतु कहते हैं अथवा नहीं है अंग औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस, कार्मण शरीर रूपी चिन्ह जिसके सो अनंगकेतु भविष्य नैगमके मत करी कहते है फेर कैसे तुजकू ? (योगीश्वरं) योगी जो चार ज्ञानके धरनारे तिनोंका ईश्वर कहते हैं फिर कैसे तुजकू ? (विदितयोग) जाण्या है सम्यक् ज्ञानादिरूप जिसने अथवा योगो (ध्यानादि जाण्या है जिसने) अथवा विशेष करकें दित खंडित कीया है कर्मका संयोग जीवके साथ जिसने सो विदितयोग कहते हैं, फेर कैसे तुजकू ? (अनेक) ज्ञान करकें सर्वगत होनेसें अथवा अनेक सिद्धांके एकत्र रहनेसे अथवा गुण पर्यायकी अपेक्षा करकें अथवा ऋषभादि व्यक्ति भेदसें अनेक कहते हैं फिर कैसे तुजकू ? (एक) अद्वितीय उत्तमोत्तम अथवा जीव द्रव्यापेक्ष्या एक कहते हैं फेर कैसे तुजकू ? (ज्ञानस्वरूपं) ज्ञान क्षायिक केवल है स्वरूप जिसका सो ज्ञानस्वरूप कहते है फेर कैसे तुजकू ? (अमल) नहीं है अष्टादश दोषरूप मल जिसके सो अमल कहते हैं, ए पूर्वोक्त पंदरा विशेषण ईश्वरके मतांतरोमें प्रसिद्ध है

तथा श्लोक "बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चितबुद्धिबोधात्, त्वं शंकरोसि भुवन त्रयशंकरत्वात् ॥ धातासि धीर शिवमार्गविधेर्विधानात्, व्यक्तं त्वमेव भगवन् पुरुषोत्तमोसि ॥ २ ॥ अर्थ –हे विबुधार्चित ! विबुध जो देवताओं करी पूजित सातो सुगतामेसें कोइएक सुगत, तिसकूं बुद्ध कहीये, सो बुद्ध तुंही है, किस कारणसे? धर्मबुद्धि प्रगट करणेसें फेर तूं शंकर है किस कारणसें? तीन भुवनमें शं जो सुख करे सो शंकर हे धीर ! त्वं धाता (ब्रह्मा है) किस कारणसें? शिव मोक्ष तिसका मार्ग जो ज्ञान, दर्शन, चारित्र रूप तिसकी विधि करणेसें तूं विधाता है हे भगवन् ! तूं व्यक्त प्रगट पुरुषोमें उत्तम है ॥२॥ इत्यादि लाखों श्लोक परमेश्वरकी स्तुतिके है, जे कर जैनी ईश्वरको न मानते तो इन श्लोकोसें उनोने किसकी स्तुति करी है? इस कारणसें जो कहते हैं कि जैनी लोग ईश्वरकूं नहीं मानते, वे प्रत्यक्ष मृषावादी है

प्रश्न –बहुत अच्छा हूआ जो मेरे मनका संशय दूर हूआ परंतु एक बातका संशय मेरे मनमें है जो तुमने ईश्वर तो मान्या, परंतु जगत्का कर्त्ता ईश्वर जैनमतमें तुमनें मान्या है वा नहीं?

उत्तर –हे भव्य ! जगत्का कर्त्ता जो ईश्वर सिद्ध हो जावें तो जैनी क्युं नहीं माने? परंतु सर्व वस्तुका कर्त्ता ईश्वर किसी प्रमाणसे सिद्ध नहीं होता

प्रश्न –जे कर किसी प्रमाणसें ईश्वर सर्व वस्तुका कर्त्ता सिद्ध नहीं होता तो (१) नवीन वेदांती, (२) नैयायिक, (३) वैशेषिक, (४) पातांजल, (५) नवीन सांख्य, (६) ईसाइ, (७) मुसलमान प्रमुख अनेक मतावलंबी पुरुष ईश्वरको जगत्का कर्त्ता वा सर्व वस्तुका कर्त्ता मानते है क्या इनमेसें कोइभी ईश्वरकूं जगत्का कर्त्तापणामें निषेध करनेवाला समज वार न भया?

उत्तर –हे भव्य ! (१) जैन, (२) बौद्ध, (३) प्राचीन सांख्य, (४) पूर्वमीमांसाकारक जैमनीय मुनिके संप्रदायी भट्ट प्रभाकर इत्यादिक अनेक मतावलंबीयोमेंसें कोइभी समजवार न भया जो ईश्वरकूं जगत्का कर्त्ता स्थापन करता

प्रश्न –जैन बौद्ध अरु प्राचीन सांख्यादि उक्त मतावलंबी सर्व अज्ञानी हूवे हैं इस हेतुसे ईश्वरकूं जगत्का कर्त्ता नहीं मानते?

उत्तर –नवीन वेदांती, नैयायिक अरु वैशेषिकादि यदभी सर्व अज्ञानी हूवे है, जो ईश्वकूंर जगत्का कर्त्ता मानते है

प्रश्न— ईश्वर जगत्का वा सर्व वस्तुका कर्त्ता है, ऐसे जो मानियें, तो क्या दूषण है?

उत्तर—ईश्वरकूं जगत्का कर्त्ता वा सर्व वस्तुका कर्त्ता माननेसें बहुत दूषण आते हैं

प्रश्न—तुम तो अपूर्व वात सुणाते हो, हमने तो कवेइ नहीं सुना जो ईश्वरकू जगत् कर्त्ता वा सर्व वस्तुका कर्त्ता माननेमें दूषण आता है? अब तो आपकूं कहना चाहियें जो जगत्का कर्त्ता माननेसें ईश्वरकू क्या दूषण आता है?

उत्तर—हे नव्य! प्रथम तुम यह वात कहो की तुम कोणसा ईश्वर जगत्का कर्त्ता मानता हो?

प्रश्न—क्या ईश्वरभी कइक तरेंके हैं, जो आप हमसे ऐसा पूछते हो?

उत्तरः—क्या तुम नहीं जानते जो दो तरेंके ईश्वर मतावलंबीयोंने माने हैं? एक तो जगदुत्पत्तिसे पहिलां केवल एकही ईश्वर था जगत्का उपादानादिक कोइभी कारण वा दूसरी वस्तु नहीं थी, एकही शुद्ध बुद्ध सच्चिदानंदादि स्वरूप युक्त परमेश्वर था एकैक जीवोंके तो ऐसा ईश्वर, जगत् वा सर्व वस्तुका रचने वाला अभिमत है, और दूसरोंने तो (१) जीव, (२) परमाणु, (३) आकाश, (४) काल, (५) दिशादि सामग्री वाला, एतावता एक तो ईश्वर उक्त विशेषण सयुक्त, और दूसरी सामग्री जिससें जगत् रचा जावे, ए दोनो वस्तु अनादि हैं, एतावता एक तो ईश्वर और दूसरी जगत् उत्पन्न करणेकी सामग्री, ए दोनो किसीने वणाये नहीं ऐसे माने है, तुमकूं इन दोनो मतोमेंसू कोनसा मत सम्मत है?

पूर्वपक्ष—हमकू तो प्रथम मत सम्मत है, क्यु के वेदादि शास्त्रोंमें ऐसा लिखा है "एतस्मादात्मनआकाश सभूत आकाशाद्वायु वायोरग्नि अग्नेराप अद्भ्य पृथिवी पृथिव्या ओषधय ओषधिभ्योऽन्न अन्नाद्रेत रेतस पुरुष सवा एषपुरुषोन्नरसमयः" यह तैत्तिरीय शाखाकी श्रुति है,तथा "सदेव सौम्येदमग्रआसीदेकमेवाद्वितीयं तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति" यह श्रुति छांदोग्य उपनिषद्की है, तथा "नासदासीन्नो सदासीत्तदानीन्नासीद्रजोन व्योमपरोयत् किमावरीव कुहकस्य शर्मन्नम्भ किमासीद्गहन गभीरं" यह श्रुति ऋग्वेदकी है, "आत्मा वा इदमग्रआसीन्नान्यत् किंचिन्मिषत् स ईक्षत लोकान्नुसृजइति" यह ऐत्तरेय ब्राह्मणकी श्रुति है इत्यादि अनेक श्रुतियोंसे सिद्ध

होता हे, जो सृष्टिसें पहेलें एक केवल ईश्वरही था, न जगत था औैर न जगत्का कारण था, एकही ईश्वर शुद्ध स्वरूप था, तथा ईसाइ वा मुसलमान मतवालेनी ऐसे ही मानते हे इस हेतुसे हम प्रथम पक्ष मानते हें

उत्तर –हे पूर्वपक्षी! तुमारा यह कहना ईश्वरकू बडा कलंकित करता हे?

पूर्वपक्ष –जगत्के रचनेसे ईश्वरकू क्या कलंक प्राप्त होता हे?

उत्तरपक्ष –प्रथम तो जगत्का उपादान कारण हे नहीं, इस हेतुसे जगत् कदेभी उत्पन्न नहीं हो सक्ता, जिसका उपादान कारण नहीं हे, सो कार्य कदापि उत्पन्न नहीं हो सक्ता, जेसे गधेका सींग

पूर्वपक्ष –ईश्वरनें अपणी शक्ति, नामांतर कुदरतसे जगतकू रचा हे ईश्वरकी जो शक्ति हे, सोइ उपादान कारन हे

उत्तरपक्ष –ईश्वरकी जो शक्ति हे सो ईश्वरसे भिन्न हे, वा अभिन्न हे? जे कर कहोगे भिन्न हे, तो फेर जड हे वा चेतन हे? जेकर कहोगे जड हे, तो फेर नित्य हे, वा अनित्य हे? जेकर कहोगे नित्य हे, तो फेर यह जो तुमारा कहना था जो सृष्टिसे पहिलें एक केवल ईश्वर था दूसरा कुछभी नहीं था, यह ऐसा हुवाकि जेसे उन्मत्तोका वचन,अपने ही वचनकु आपही जूठ करा जे कर कहोगे अनित्य हे,तो फेर उसका उपादान कारण, और ईश्वरकी शक्ति हुइ तिस शक्तिकी उत्पन्न करणे वाली और शक्ति हुई, इसी तरें करतां अनवस्थादूपण आता है, जे कर कहोगे चेतन है, तो फिर नित्य है, वा अनित्य है? दोनोही पक्षोमें पूर्वोक्त अपरापरस्ववचनव्याहत अरु अनवस्था दूपण है, जेकर कहोगे ईश्वर शक्ति ईश्वरसे अभिन्न है, तो सर्व बस्तुकों ईश्वरही कहना चाहियें, जब सर्व वस्तु ईश्वरही हो गइ, तो फेर अछा और वुरा, नरक और स्वर्ग, पुण्य और पाप, धर्म और अधर्म, ऊच नीच, रंक राजा, सुशील और दुशील, राजा और प्रजा, चोर और साध,(सत) सुखी और दुखी इत्यादिक सर्व कुछ ईश्वरही आप बना, तब तो ईश्वरने जगत् क्या रचा,आपही आपणा सत्तानाश कर लीया,ए प्रथम कलंक ईश्वरकू लगता है (२) तथा जब ईश्वर आपही सब कुछ बन गया, तो फेर वेदादिक शास्त्र क्यु बनाये? अरु उनके पढणेसे क्या फल हुआ? ए दूसरा कलंक (३) तथा जब वेदादिक बणाये तब आपणे आपकू ज्ञानी होणे वास्ते पहिलें तो अज्ञानी था ए तीसरा कलंक (४) तथा शुद्धसें अ

शुद्ध बना, जो जगत्‌रूप होणेकी मेहनत करी, सो निष्फल हुई, ए चौथा कलंक (५) कोइ वस्तु जगत्‌में अछी वा बूरी नहीं ए पांचवा कलंक (६) क्युं आपणे आपकूं संकटमें माला? ए छठा कलंक. इत्यादि अनेक कलंक तुम ईश्वरकू लगाते हो

पूर्वपक्ष –ईश्वर सर्व शक्तिमान् है, इस हेतुसे ईश्वर, विनाही उपादान कारणसें जगत् रच सक्ता है

उत्तरपक्ष –यह जो तुमारा कहनां है सो प्यारी नार्या, वा मित्र मानेगा परंतु प्रेक्षावान् कोइभी नहीं मानेगा, क्युंकि इस तुमारे कहनेमें कोइभी प्रमाण नहीं परंतु जिसका उपादान कारण नहीं वो कार्य कदेभी न हो सक्ता जैसे गधेका सींग, असा प्रमाण तुमारे कहनेकूं बाधने वाला तो है, परंतु साधने वाला कोइभी नहीं, जेकर हठ करकें स्वकपोलकल्पितहीकू मानोगे तो परीक्षा वालोकी पंक्तिमें कदेभी नहीं गिने जाउगे तथा इस तुमारे कहनेमें इतरेतराश्रय दूषणरूप वज्रका प्रहार पडता है, यथा सृष्टिसे पहिलें उपादानादि सामग्री रहित केवल शुद्ध, एक ईश्वर सिद्ध हो जावे तो सर्वशक्तिमान् सिद्ध होवे, जब सर्व शक्तिमान् सिद्ध होवे तो सृष्टिसें पहिलें उपादानादि सामग्री रहित केवल शुद्ध एक ईश्वर सिद्ध होवे, इन दोनोमेंसू जब तक एक सिद्ध न होवे तब तक दूसरा कभी सिद्ध नहीं होता, तथा इस तुमारे कहनेमें चक्रकदूषण होता है, सृष्टिका कर्त्ता सिद्ध होवे, तदा सर्व शक्तिमान् सिद्ध होवे जब सर्व शक्तिमान् सिद्ध होवे तब सृष्टिसें पहिलें सामग्री रहित केवल शुद्ध एक ईश्वर सिद्ध होवे, तब सृष्टिकर्त्ता सिद्ध होवे असे प्रगट, चक्रक दूषण है

पूर्वपक्ष –ईश्वरतो प्रत्यक्ष प्रमाणसें सिद्ध है, फेर तुम उसकू सृष्टिकर्त्ता क्यु नहीं मानते ?

उत्तरपक्ष –जे कर ईश्वर सृष्टिका कर्त्ता प्रत्यक्ष प्रमाणसें सिद्ध होवे, तो किसीकूभी अमान्य न होवे, औ तुमारा हमारा ईश्वर विषयिक विवाद कभी नहीं होवे, क्युंकि प्रत्यक्षमें विवाद नहीं होता है, तथा ईश्वरका प्रत्यक्ष देखणांभी तुमारे वेद मंत्रसें विरुद्ध है तथा च वेदमंत्र ॥ अपाणिपादो जवनोग्रहीता, पश्यत्यचक्षु शृणोत्यकर्ण ॥ स वेत्ति विश्वं न च तस्यास्ति वेत्ता,

तमाहुरग्र्यं पुरुष पुराणम् ॥ इस मंत्रसे कहता है ईश्वरको जानने वाला कोइभी नहीं.

पूर्वपक्ष –विना कर्त्ताके जगत् कैसे हो गया ? इस अनुमान प्रमाणसें ईश्वर सृष्टिका कर्त्ता सिद्ध होता है, सो तुम क्युं नही मानते ?

उत्तरपक्ष –इस तुमारे अनुमानकू दूसरे ईश्वरपक्षमें खमन करेंगे, ऐसे उक्त प्रकारसें एक केवल उपादानादि सामग्री रहित. ऐसे सृष्टिमें पहिलें परमेश्वर नही सिद्ध हुआ, तोभी हम आगे चलते है कि जब ईश्वरने इन जीवोंकू रचे थे तब (१) निर्मल रचे थे ? (२) पुण्य वाले रचे थे ? (३) पाप वाले रचे थे ? (४) मिश्रित पुण्य पाप अर्धो अर्ध वाले रचे थे ? (५) पुण्य थोडा पापाधिक ऐसें रचे थें ? (६) किंवा पुण्याधिक पाप थोडे वाले रचे थे ? जे कर प्रथम पक्ष ग्रहण करो गे तो जगत्में सर्व जीव निर्मलही चाहियें, फेर वेदादि शास्त्रों द्वारा उनकू उपदेश करना वृथा है, अरु वेदादि शास्त्रोंका कर्त्ताभी मूढ सिद्ध हो जावेगा, क्युंकि जब आगेही जीव निर्मल हैं तो उसके वास्ते शास्त्र काहेकू रचने थे, जो वस्त्र निर्मल होता है तिसकू कोइभी बुद्धिमान् धोता नहीं, जे कर धोवे तो महामूढ है, इस कारणसें जो निर्मल जीवोंके उपदेश निमित्त शास्त्र रचे सोभी मूढ है

पूर्वपक्ष –ईश्वरनेंतो जीवोंकू शुद्ध निर्मल एतावता अच्छाही बनाया था, परंतु जीवोनें अपणी इच्छासें अच्छा वा बुरा (भूंमा) काम कर लीया है, इसमें ईश्वरकू कुछ दोष नहीं ?

उत्तर पक्ष –जब ईश्वरने जीवोंमें अच्छा वा बुरा काम करणेकी शक्ति नहीं रची, तो फेर जीवोंकू पुण्य वा पाप करणेकी शक्ति कहांसें आई ?

पूर्वपक्ष –शक्तियां तो जीवमें सर्व ईश्वरनेही रचियां है परंतु जीवोंकू बुरा काम करणेमें प्रवृत्त नहीं करता, बुरे कामोंमें जीव आपही प्रवृत्त हो जाता है,जैसें कोइ गृहस्थनें अपणे प्रिय पुत्र बालककूं खेलणे वास्ते एक खिलोना दीया है, परंतु जो वो बालक, उस खिलोनेसे आपणी आंख निकाल लेवे तो माता पिताका क्या दूषण है? तैसेंही जीवोंकू ईश्वरने जो हाथ, पग, प्रमुख वस्तु दइ है, सो नित्य केवल धर्म करणेके कारणे दइ हैं पीछें जो जीव उनसें अपणी इच्छासें पाप कर लेवे तो इसमें ईश्वरकू क्या दूषण है ?

उत्तरपक्ष-हे नव्य ! यह जो तुमने बालकका दृष्टांत दीया सो यथा थी नहीं, क्युकि बालकके माता पिताकू यह ज्ञान नहीं है, जो हम इस बालकके खेलणे वास्ते खिलोना देते हैं, सो हमारा बालक इस खिलोनेसें अपणी आख फोड लेगा जेकर बालकके माता पिताकू यह ज्ञान होता जो हमारा बालक, इस खिलोनेसें अपणी आंख फोड लेगा तो माता पिता कभी उसके हाथमें खिलोना न देते, जे कर जान करकें देवें तो वो माता पिता नहीं किंतु ? उस बालकके परम शत्रु है, इसीतरें ईश्वर, माता पिता तुल्य है अरु तुम हम उसके बालक हैं,जे कर ईश्वर जानता था जो मैं इसकू रचा इसके ताइ हाथ, पग, मन, इंद्रियादि सामग्री दीनी है,इस जीवने इस सामग्रीसे बहुत पाप करकें नरक जाना है तो फेर ईश्वरने उस जीवकू क्यु रचा ? जे कर कहोगे ईश्वर यह बात नहीं जानता था जो मेरी धर्मकरणेकी दीनी हुइ सामग्रीसे पाप करकें यह जीव नरक जावेगा, तो फेर ईश्वर तुमारे कहनेहीसें अज्ञानी असर्वज्ञ सिद्ध होता है जेकर कहोगे ईश्वर जानता था जो यह जीव मेरी देइ हुइ सामग्रीसे पाप करकें नरकें जायगा तो फेर हमारा रचने वाला ईश्वर, परम शत्रु हुआ के नहीं ? बिना प्रयोजन रक जीवोंकू सामग्री द्वारा पाप करायके क्यु उनकू नरकमें माले ? जब सामग्रीद्वारा प्रथम पाप कराना और पीछे नरकपात करनेका दम देना इस तुमारे कहनेसे ईश्वरसें अधिक अन्यायी कोइ नहीं क्यु के उस जीवकू प्रथम तो रचा, फेर नरकमें माला, बस येही तुमने ईश्वरकूं अन्यायी, असर्वज्ञ, निर्दयी, अज्ञानी, वृथा मेहनतीरूप कलक दीने, इस वास्ते निर्मल जीव ईश्वरने नहीं रचा ए प्रथम पक्षोत्तर

अथ दूसरा पक्षोत्तर -जेकर कहोगे ईश्वरने पुण्य वालेही जीव रचे हैं तो यहभी कहनां तुमारा मिथ्या है, क्युकि जब पुण्यही वाले सर्व जीव थे तो गर्भमेंही अधे, लंगडे, लूले, बहिरे होनां, भूमा रूप,नीच वा निर्धन के कुलमें उत्पन्न होनां, जाव जीव दु खी रहनां, खाने पीनेकों पूरा न मिलनां, महा कष्ट कारक मेहनत करकें पेट भरनां,यह पुण्यके उदयसें नहीं हो सक्के, अरु बिनाही करे पुण्यके जीवोंकू ईश्वरने पुण्य क्यु लगा दीया ? जेकर बिनाही कर्या जीवोंकू ईश्वरने पुण्य लगा दीया तो असे बिनाही धर्म कर्या जीवोंकू स्वर्ग तथा मोक्ष क्यु नहीं पहूचाय देता ? शास्त्रोप

देश करायके, भूखे मारके, तृष्णा छुडायके, राग द्वेष मिटायके, घर बार छुडायके, साधु बनायके, टुकडे मगायके, दया, दम, दान, सत्यवचन, चोरीका त्याग, स्त्रीका त्याग, इत्यादिक अनेक साधन करायके, पीछे स्वर्ग मोक्षमें पहुचाना,यह सकट ईश्वरने व्यर्थ खडा करके क्यु जीवोकू दुःख दीना इस वातसे तो ऐसा प्रतीत होता है, जो ईश्वरकू कुछनी समझ नही. इति

अथ तृतीय पक्षोत्तर —जे कर कहोगे ईश्वरने पाप सयुक्त ही जीव रचे है, तो फेर विनाही जीवोके करया पाप लगा दीया तो फेर जब ईश्वरने ही हमारा सत्तानाश करा, तो हम किस आगे विनति करें जो विना गुनाह हमकू यह ईश्वर पाप लगाता है, तुम इसकू मने करो, जो विनाही करे पाप लगा देवे,ऐसे अन्यायी ईश्वरकातो कभी नामही न लेना चाहियें तथा जेकर ईश्वरने पाप सयुक्तही सर्व जीव रचे है, तो राजा, आमात्य (मत्री) श्रेष्ठ, सेनापति, धनवानोके घरमें उत्पन्न होना, नीरोगकाय, सुदर रूप, सुदर सहनन, घरमें आदर, वाहिर यशोकीर्त्ति, पचिन्द्रियविषय भोग, इत्यादिक सामग्री पापसें कदेइ सभव नहीं होती इस वास्ते जीवोंकू केवल पापवान् ईश्वरने नहीं रचे ॥ इति तृतीय पक्षोत्तर ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थ पक्षोत्तर —जेकर कहोगे अर्ध्दोऽर्ध्द पुण्य पाप वाले जीव ईश्वरने रचे हैं यह पक्षनी अच्छा नहीं, क्युकि आधे सुखी आधे दुःखी ऐसे भी सर्व जीव देखनेमें नहीं आते ॥ इति चतुर्थपक्षोत्तर ॥

अथ पंचमपक्षोत्तर —पांचवा पक्ष सोभी ठीक नहीं,सुख थोडा और दुःख बहुत ऐसेभी सर्व जीव देखणेमें नहीं आते, परंतु सुख बहुत अरु दुःख अल्प, ऐसें बहुत जीव देखणेमें आते हैं ॥ इति पचमपक्षोत्तर ॥

अथ षष्ठ पक्षोत्तर —छठा पक्षनी समीचीन नहीं, सुख बहुत अरु दुःख थोडा ऐसेभी सर्व जीव देखणेमें नहीं आते है, दुःख बहुत अरु सुख अल्प, ऐसे बहुत जीव देखणेमें आते हैं इन हेतुओंसें ईश्वर जीवोंकू किसी व्यवस्था वाला नहीं रच सक्ता, तो फेर ईश्वर सृष्टिका कर्त्ता क्युं कर सिद्ध हो सक्ता है? कभी नहीं हो सक्ता तथा जब ईश्वरने सृष्टि नहीं रची थी तब तो ईश्वरकू क्या दुःख था? अरु जब सृष्टि रची तब क्या सुख हुआ

पूर्वपक्ष —ईश्वर तो सदाही परम सुखी है, क्या ईश्वरमें कुछ न्यूनता

है जो उस न्यूनताके पूर्ण करणेकूं सृष्टि रचे? वो तो जगत्में अपणी ईश्वरता प्रगट करणेकूं सृष्टि रचता है

उत्तरपक्ष –जब ईश्वरने सृष्टि नहीं रची थी तब तो ईश्वरकी ईश्वरता प्रगट नहीं थी अरु जब सृष्टि रची तब ईश्वरता प्रगट नइ, तो प्रथम जब ईश्वरकी ईश्वरता प्रगट नहीं नइ थी तब तो ईश्वर वडा उदास अरु असपूर्ण मनो रथ ईश्वरताको प्रगट करणेमें विह्वल था इस हेतुसें अवश्य ईश्वरकू दुःख होना चाहियें जब ईश्वर सृष्टिसे पहिलें असा दुःखी था तब तो खाली क्यु बेठ रहा था? इस सृष्टिसें पहिले अपर सृष्टि क्यु नहीं रचकें अपणा दुःख दूर करा?

पूर्वपक्ष –ईश्वरने जो सृष्टि रची हैं सो जीवोसें धर्म करकें उनकू अनंत सुख देगा इस परोपकारके वास्ते ईश्वरने सृष्टि रची है

उत्तरपक्ष –धर्म करायकें जीवोंकू सुख देनां यह तो तुमारे कहनेसे परोपकार हुआ परंतु जो पाप करकें नरक गयें उनके उपरि क्या उपकार करा? उनकू दुःखी करणेसे क्या ईश्वर परोपकारी हो सक्ता है?

पूर्वपक्ष –उनकूं नरकसे निकालके फेर स्वर्गमें स्थापन करेगा.

उत्तरपक्ष –तो फेर प्रथमही नरकमें क्यु जाने दीये?

पूर्वपक्ष –ईश्वरही सर्व कुछ पुण्य पापादि कराता है, जीवके अधीन कुछभी नहीं ईश्वर जो चाहता है सो कराता है, जैसे काठकी पुतलीकू बाजीगर जैसें चाहता है, तैसें नचाता है, पुतलीके कुछ अधीन नहीं

उत्तरपक्ष –जब जीवके कुछ अधीन नही, तो जीवकू अछे बुरेका फलभी नहीं चाहियें क्यु के जो कोइ सिरदार किसी नौकरकू कहें जो तुम यह काम करो, फेर नौकर सिरदारके कहनेसें वो काम करे, अरु वो काम अछा वा बुरा है तो क्या फेर वो सिरदार उस नौकरकूं कुछ दंम दे सक्ता? कुछभी नही दे सक्ता ऐसेही ईश्वरकी आज्ञासें जब जीवने पुण्य वा पाप करे, तो फेर पुण्य पापका फल जीवकू नहीं चाहियें जब पुण्य पाप जीवके करे न हुए तब स्वर्ग अरु नर्क एभी जीवकू न होंगे, तब जीवकू नरक, स्वर्ग, तिर्यग् अरु मनुष्य, ए चार गतिभी न होगी जब चार गति न होवेगी, तब संसारभी न होगा, जब संसार न होगा तब तो वेद, पुराण, कुरान, तौरे, तजबूर, इंजील प्रमुख शास्त्रभी न होंगे जब शास्त्र न

होगे तब शास्त्रका उपदेशकर्त्ता न होगा जब शास्त्रका उपदेशकर्त्ता नहीं तो ईश्वरभी नहीं. जब ईश्वरही नहीं तो फेर सर्व शून्यता सिद्ध भइ. ए कलंक क्युंकर मिटेगा?

पूर्वपक्ष—यह जो जगत् है सो बाजीगरकी बाजीगत है. अरु ईश्वर इसका बाजीगर है, सो इस जगत्कू रच कर ईश्वर इस खेलसे खेलता, (क्रीडा करता) है, नरक, स्वर्ग, पुण्य, अरु पाप कुछ नहीं

उत्तरपक्ष—जब ईश्वरने क्रीडाहीके वास्ते जगत् रचा, तो क्रीडाहीमात्र फल होना चाहियें, परतु इस जगत्में तो कुष्टी, रोगी, शोकी, धनहीन, बलहीन, महादुःखी, महाप्रलाप कर रहे है, जिनकू देखनेसे दयाके वश होकर हमारे रोंघटे (रोम) खडे होते है, तो क्या फेर ईश्वरकू इन दुःखीयांकू देख कर दया नहीं आती? जब ईश्वरकू दया नहीं तो फेर निर्दयीभी कदेइ ईश्वर हो सक्ता है? अरु जो क्रीडा करने वाला है, सो बालककी तरें रागी, द्वेषी, अज्ञ होता है, जब राग द्वेष है, तो उसमें सर्व दूषण है जब आपही औगुणोंसे भरया है, तो वो ईश्वर काहेका? वोतो ससारी जीव है अरु जब राग, द्वेष वाला होवेगा तब सर्वज्ञ कदापि न होवेगा, जब सर्वज्ञ नहीं तो उसकू ईश्वर कौन कह सक्ता है?

पूर्वपक्ष—जीवोंके करे हूये पुण्य पापके अनुसार ईश्वर दंड देता है इस हेतुसे ईश्वरकू क्या दोष है? जैसा जिसने कीया, वैसाही उसकू फल दीया

उत्तरपक्ष—इस तुमारे कहनेसे यह ससार अनादि सिद्ध हो गया, अरु ईश्वर कर्त्ता नहीं, ऐसा सिद्ध हुआ वाह रे मित्र! तेने अपणे हाथसे अपणां मुह काला किया, क्यु के जे जीव अब हैं, अरु जो कुछ इनकू इहां फल मिला है, सो पूर्व जन्ममें करा हुआ ठहरा अरु जो पूर्व जन्म था उसमें जो दुःख सुख जीवकू मिला था, वो उससें पूर्व जन्ममें करा था, इसी तरें पूर्व पूर्व जन्ममें दुःख सुख करणां अरु उत्तरोत्तर जन्ममें सुख दुःखका भोगणां इसी तरें ससार अनादि सिद्ध होता है अब शोचो कि जगत्का कर्त्ता ईश्वर कैसें सिद्ध हूआ?

पूर्वपक्ष—हम तो एकही परम ब्रह्म पारमार्थिक सद्रूप मानते हैं

उत्तरपक्ष—जे कर एकही परम ब्रह्म सद्रूप है, तो फेर यह जो सकल,

रसाल, प्रियाल, हंताल, ताल, तमाल, प्रवाल प्रमुख पदार्थ अग्रगामि पणे करकें जो प्रतीत होते हैं, ठे क्युं कर सत् स्वरूप नहीं हे ?

पूर्वपक्ष -ए पूर्वोक्त जो पदार्थ प्रतीत होते हैं, वे सर्व मिथ्या है तथा च अनुमान प्रपच मिथ्या है, प्रतीत होणेसें जो ऐसा है, सो ऐसा है यथा सीप, चांदी रूप, तैसाही यह प्रपच है, इस अनुमानसे प्रपच मिथ्यारूप है, अरु एक ब्रह्मही पारमार्थिक सद्रूप है

उत्तरपक्ष -हे पूर्वपक्षी ! इस अनुमानके कहनेसें तूं तीक्ष्ण बुद्धिमान् नहीं है, सोइ वात कहते हैं, यह जो प्रपच तुमने मिथ्यारूप माना है सो मिथ्या तीन तरेंका होता है, एक तो अत्यत असत् रूप, अरु दूसरा है तो कुछ और, अरु प्रतीति होवे औरतरें अरु तीसरा अनिर्वाच्य इन तीनोंमेंसू कौनसा मिथ्यारूप प्रपंचकूं माना है ?

पूर्वपक्ष -इन तीनों पक्षोमेंसें प्रथम दो पक्ष तो मेरे स्वीकारही नहीं इस कारण मैं तो तीसरा अनिर्वाच्य पक्ष मानता हू, सो यह प्रपंच अनिर्वाच्य मिथ्यारूप है

उत्तरपक्ष -प्रथम तो तुम यह कहो कि अनिर्वाच्य क्या वस्तु है ? एतावता तुम अनिर्वाच्य किस वस्तुकू कहते हो ? (१) क्या वस्तुका कहनेवाला शब्द नहीं है ? (२) वा शब्दका निमित्त नहीं है ? प्रथम विकल्प तो कल्पनाही करने योग्य नहीं है ! यह सरल है, यह रसाल है, ऐसा शब्द तो प्रत्यक्ष सिद्ध है अथ दूसरा पक्ष है तो शब्दका निमित्त ज्ञान नहीं है ? वा पदार्थ नहीं है ? प्रथम पक्ष तो समीचीन नहीं सरल, रसाल, ताल, तमाल प्रमुखका ज्ञान तो प्राणी प्राणी प्रत्यें प्रतीत है, सर्व जीव देखनेवाले जानते है जो सरल, रसाल, ताल, तमाल प्रमुखका ज्ञान हमकू है अथ दुसरा पक्ष तो पदार्थ, भावरूप नहीं है ? कि अभावरूप नहीं है? जेकर कहोगे पदार्थ भावरूप नहीं अरु प्रतीत होता है, तो तुमकूं विपरीताख्याति मानणी पडी अरु अद्वैतवादीयोंके मतमें विपरीताख्याति मानणी महा दूषण है अथ दूसरा पक्ष जो पदार्थ अभावरूप नहीं तो भावरूप सिद्ध भया, तब तो सत् ख्याति मानणी पडी अरु जब अद्वैतवाद मतांगीकार कीया, अरु सत्ख्याति मानणी पडी,तब तो सत् ख्यातिके माननेसें अद्वैत मतकी जडकू कुहाडेसें काटा कदापि अद्वैतमत नहीं सिद्ध होगा

पूर्वपक्षः—नावरूप तथा अनावरूप ए दोनोही प्रकारें नमु नहीं।

उत्तरपक्षः—हम तुमकूं पूछते हे जो नाव अरु अनाव इन दोनोका अर्थ जो लौकिकमें प्रसिद्ध हे वही तुमने माना हे? वा इससें विपरीत और तरें का अर्थ, नाव अरु अनावका तुमने माना हे? जे कर प्रथम पक्ष मानोगे तो जहां नावका निषेध करो गे तब तो तहां अवश्यमेव अनाव कहना पडेगा, अरु जहां अनावका निषेध करोगे, तहां अवश्यमेव नाव कहना पडेगा, जो परस्पर विरोधी हे, तिसमें एकका निषेध करोगे तो दूसरेकी विधि अवश्य कहनी पडेगी अनिर्वाच्यता तो जडामूलसें नष्ट हो गइ अथ दूसरा पक्षः—तब तो हमारी कुछ हानी नहीं.क्यु के अलौकिक एतावता तुमारे मन कल्पित शब्द अरु शब्दका निमित्त जो नष्ट हो जावेगा, तो लौकिक शब्द अरु लौकिक शब्दका निमित्त कदापि नष्ट नहीं होगा, तो फेर अनिर्वाच्य प्रपच किस तरें सिद्ध होगा? जब अनिर्वाच्य न सिद्ध हुआ, तो प्रपच मिथ्या कैसें सिद्ध हुआ? तब एकही अद्वैत ब्रह्म कैसें सिद्ध हुआ?

पूर्वपक्षः—हम तों जो प्रतीत न होवे, उसकू अनिर्वाच्य कहते हे

उत्तरपक्षः—इस तुमारे कहनेमें तो बहुत विरोध आवे हे, जे कर प्रपच प्रतीत नहीं होता तो तुमने अपणे प्रथम अनुमानमें जो प्रपचको प्रतीयमान हेतु स्वरूप पणे क्यु कर ग्रहण कीया? अरु प्रपचकू अनुमान करती वेलां धर्मीपणे क्यु कर ग्रहण कीया? जे कर कहोगे धर्मी पणे वा प्रतीयमान हेतुपणे प्रपंचकू ग्रहण करणेमें क्या दूषण हे? तो फेर तुमने यह जो उपर प्रतिज्ञा करी थी, कि हम तो जो प्रतीत नहीं होवे, उसकू अनिर्वाच्य कहते हे, तो फेर प्रपंच अनिर्वाच्य कैसें सिद्ध हुआ? जब प्रपंच अनिर्वाच्य नहीं तब या तो नावरूप प्रपंच सिद्ध होगा, या तो अनावरूप प्रपंच सिद्ध होगा इन दोनोही पक्षोमें एकरूप प्रपंचके माननेसें पूर्वोक्त विपरीतख्याति तथा सत्ख्याति रूप दोनो दूषण फेर तुमारें गलेमें रस्सी मालते हें, अब नाग कर कहां जावोगे? हम फेर तुमकों पूछते हे कि यह जो तुम इस प्रपंचकूं अनिर्वाच्य मानते हो, सो प्रत्यक्ष प्रमाणसें मानते हो? वा अनुमान प्रमाणसें मानते हो? प्रत्यक्ष प्रमाण तो इस प्रपंचकू सत्स्वरूपही सिद्ध करता हे, जैसा जैसा पदार्थ हे, तैसा तैसाही प्रत्यक्ष ज्ञान उत्पन्न होता हे अरु प्रपंच जो हे सो पर

स्पर (आपसमें) न्यारी न्यारी जो वस्तु है सो अपणे अपणे स्वरूपमें नाव रूप है अरु दूसरे पदार्थके स्वरूपकी अपेक्षासें अनाव रूप है, इस इतरे तर विविक्त वस्तुओंकूंही प्रपच रूप माना है, तो फेर प्रत्यक्ष प्रमाण प्रपं चकूं अनिर्वाच्य कैसें सिद्ध कर सक्ता है?

पूर्वपक्ष'–पूर्वोक्त जो हमारा पक्ष है, तिसकूं प्रत्यक्ष प्रतिक्षेप नहीं कर सक्ता, क्यु कि प्रत्यक्ष तो विधायकही है, जे कर प्रत्यक्ष इतर वस्तुमें इतर वस्तुके स्वरूपका निषेध करे, तो हमारे पक्षकूं बाधक वहरे, परतु प्रत्यक्ष प्रमाण तो ऐसा है नहीं, प्रत्यक्ष प्रमाणतें इतर वस्तुमें इतर वस्तुके स्व रूप निषेध करणेकु कुछ है

उत्तरपक्ष–यहनी तुमारा कहनां असत्य है अन्य वस्तुके स्वरूपके विना निषेध्यां वस्तुके यथार्थ स्वरूपका कदापि वोध न होगा, पीतादिक वर्णों करी रहित जब बोध होगा, तबही नील ऐसे रूपका बोध होगा तथा जब प्रत्यक्ष प्रमाण करी यथार्थ वस्तु स्वरूप ग्रहण कीया जायगा, तब तो अवश्य अपरवस्तुके स्वरूपका निषेधनी तिहां जाना जायगा जे कर अन्य वस्तुके निषेधकूं अन्य वस्तुमें प्रत्यक्ष न जानेगा तो तिस वस्तुके विधि स्वरूपकूंनी प्रत्यक्ष न जान सकेगा, केवल जो वस्तुके स्वरूपकू ग्रहण करणा है, सोइ अन्य वस्तुके स्वरूपका निषेध करनां है. जब प्रत्यक्ष प्रमाण, विधि अरु निषेध दोनोहीकूं ग्रहण करता है, तब तो प्रपंच मिथ्यारूप कदापि सिद्ध न होगा, जब प्रपच मिथ्यारूप प्रत्यक्ष प्रमाणसें न सिद्ध नया, तव तो परम ब्रह्मरूप एकही अद्वैत तत्त्व कैसे सिद्ध नया? तथा जो तुम प्रत्यक्षकूं नियम करकें विधायकही मानोगे, तब तो विद्यावत् अविद्याकीनी विधि तुमकू मानणी पडेगी सो यह ब्रह्म अविद्यारहित प्रत्यक्ष प्रमाणसें ग्रहण कीया, तव तो अविद्यानी प्रत्यक्ष सें निषेध ग्रहण होगी फेर जो तुमारा यह कहनां है की 'प्रत्यक्ष जो है, सो विधायकही है, परंतु निषेधक नहीं' ऐसे वचन कहने वालेकू क्युं न उन्मत्त कहनां चाहियें? अब जो आगे अनुमान कहेंगे, तिस करकेंनी पूर्वोक्त तेरे अनुमानका पक्ष वाधित है, सो अनुमान हमारा ऐसे है, प्रपच मिथ्या नहीं है, असत्सें विलक्षण होणेसें जो असत्सें विलक्षण है, सो ऐसा है यथा आत्मा तैसा ही यह प्रपंच है, तथा प्रतीयमान जो तुमा

रा हेतु है, सो ब्रह्मात्माके साथ व्यभिचारी है, जैसें ब्रह्मात्मा प्रतीयमान तो है, परंतु मिथ्यारूप नहीं है, जे कर कहोगे कि ब्रह्मात्मा अप्रतीयमान है तो वचनगोचर न होगा, जब वचनगोचर नहीं तब तो तुमकू गुंगे बनना ठीक है, क्यु कि ब्रह्म बिना अपर तो कुछ है नहीं, अरु जो ब्रह्मात्मा है, सो प्रतीयमान नहीं, तो फेर तुमकू हम गुंगेके बिना और क्या कहे? प्रथम अनुमानमें जो तुमने सीपका दृष्टांत दीया था, सो साध्य विकल है, क्यु कि जो सीप है सोभी प्रपचके अंतर्गत है, अरु तुम तो प्रपचकू मिथ्यारूप सिद्ध करा चाहते हो, यह कभी नहीं हो सक्ता है, जो साध्य होवे सोइ दृष्टांतमें कहा जावे, जब सीपकाभी अभीतक सत् असत् पणा सिद्ध नहीं, तो उसकू दृष्टांतमें काहेकू लाना? तथा हम तुमकूं पूछते है कि यह जो तुमने प्रथम अनुमान, प्रपचके मिथ्या साधनेकू कीना था सो अनुमान, इस प्रपचसें भिन्न है वा अभिन्न है? जे कर कहोगे भिन्न है, तो फेर सत्य है, वा असत्य है? जे कर कहोगे सत्य है, तो तिस अनुमान सत्यकी तरें प्रपचभी सत्यही स्वरुप है, जे कर कहोगे असत्य स्वरूप है, तो फेर क्या शून्य है? वा अन्यथा ख्यात है? वा अनिर्वचनीय है? प्रथम दोनो पक्ष तो कदापि साध्यके साधक नहीं है, मनुष्यके शृंगकी तरें, तथा सीपके रूपेकी तरें अरु तीसरा जो अनिर्वचनीय पक्ष है तिसका तो संभवही है नहीं, सो अपणे साध्यकू कैसें साधेगा?

पूर्वपक्ष—हमारा जो अनुमान है, सो व्यवहार सत्य है, इस कारणें असत्य नहीं, फेर आपणे साध्यकू क्यु कर नहीं साध्य सक्ता? अपितु साध्यही सक्ता है

उत्तरपक्ष—हम तुमसें पूछते हैं कि जो यह व्यवहारसत्यका क्या स्वरूप है? व्यवहृतीति (व्यवहार) असें जो व्युत्पत्ति करियें तब तो ज्ञानकाही नाम व्यवहार ठहरा, ज्ञानसें जो सत्य है, सो पारमार्थिकही है, इस पक्षमें सत् ख्यातिरूप प्रपंच सिद्ध हुवा जब प्रपंच सत् सिद्ध हुवा, तब तो एकही परम ब्रह्म सद्रूप अद्वैततत्त्व किसी तरहभी सिद्ध नहीं हो सक्ता, जे कर कहोगे व्यवहार नाम शब्दका सत्य है, तो फेर हम तुमकूं पूछते है जो व्यवहार नाम शब्दका है, तो फेर शब्द, स्वरूपसें सत्य है?

वा असत्य है? जे कर कहोगे शब्द सत्स्वरूप है तो शब्दकी तरे प्रपंचनी सत् स्वरूप है, जे कर कहोगे असत्स्वरूप शब्द है, तो फेर ब्रह्मादि शब्दसें कहे हुये, कैसें सत् स्वरूप हो सकेगे? क्युं कि जो आपही असत् स्वरूप है, सो परकी व्यवस्था करणे वा कहनेका हेतु कभी न हो सक्ता

पूर्वपक्ष–जैसे खोटा रूपक सत्य रूपकके क्रय विक्रयादिक व्यवहारका जनक होणेसें सत्य रूपक माना जाता है, तैसें ही अनुमान हमारा यद्यपि असत् स्वरूप है तोभी जगत्में सत् व्यवहार करकें प्रवर्त्तक होणेसें व्यवहार सत् है, इस वास्ते आपणे साध्यका साधक है

उत्तरपक्ष–हे भव्य! इस तुमारे कहनेसें तुमारा अनुमान पारमार्थिक असत् स्वरूप है, फेर तो जो दूषण असत् पक्षमें दीने हैं, सो सर्व इहां पडेंगे, जे कर कहोगे कि हम प्रपंचसें अभेद अनुमानकूं मानते है, तब तो प्रपंचकी तरें अनुमानभी मिथ्यारूप ठहरा, तब तो आपणे साध्यकूं कैसें साध सकेगा? इस पूर्वोक्त विचारसें प्रपंच मिथ्यारूप नहीं, किंतु आत्माकी तरें सत्रूप है, तो फेर एक ही ब्रह्म अद्वैततत्त्व है यह तुमारा कहना क्यु कर सत्य हो सक्ता है? कभी नहीं हो सक्ता

पूर्वपक्ष–हमारी उपनिषदोमें तथा शंकर स्वामीका शिष्य आनंदगिरि, शंकरदिग्विजयके तीसरे प्रकरणमें लिखता है कि "परमात्मा जगदुपादानकारणमिति" परमात्मा जो है, सोइ इस सर्व जगत्का कारण है, कारणभी कैसा उपादान रूप है उपादान कारण उसकू कहते है कि जो कारण होवे सोइ कार्यरूप हो जावे, इस कहनेसें यह सिद्ध हुआ जो कुछ जगत्में है, सो सर्व कुछ परमात्मा ही आप बन गया, तब तो जगत् परमात्मा रूप ही है, फेर तुम सृष्टि कर्त्ता ईश्वर क्युं नहीं मानते?

उत्तरपक्ष–वाह रे नास्तिक शिरोमणि! तुम अपणे कहणेकूं कभी विचार शोच कर कहते हो, वा नहीं? इस तुमारें कहनेसें तो पूर्ण नास्तिक पणा तुमारे मतमें सिद्ध होता है, यथा जब सर्व कुछ जगत् स्वरूप परमात्मरूपही है, तब तो न कोइ पापी है, न कोइ धर्मी है, न कोइ ज्ञानी है, न कोइ अज्ञानी है, न तो नरक है, न तो स्वर्ग है, साधुभी नहीं, अरु चोर भी नहीं, सत्शास्त्र भी नहीं, अरु मिथ्या शास्त्रभी नही, तथा जैसा गोमांसभक्षी, तैसाही अन्नभक्षी है, जैसा स्वभार्यासें कामभो

ग सेवन कीया तैसा ही माता, भगिन, बेटीसें कीया, जैसा चमाल, तैसा ब्राह्मण, जैसा गधा, तैसा संन्यासी, क्युं के जब सर्व वस्तुका कारण ईश्वर परमात्माही ठहरा, तब तो सर्व जगत् एकरस एक स्वरूप है, दूसरा तो कोइ है नहीं

पूर्वपक्ष –हम एक ब्रह्म मानते है, अरु एक माया मानते हैं, सो तुम ने जो उपर बहुतसें आल जंजाल लिखे है, सो सर्व मायाजन्य है अरु ब्रह्म तो सच्चिदानंद एकही शुद्ध स्वरूप है

उत्तरपक्ष –हे अद्वैतवादी! यह जो तुमने पक्ष माना है सो बहुत अ समीचीन है यथा माया जो है सो ब्रह्मसे भेद है, वा अभेद है? जेकर भेद है तो जड है, वा चेतन है? जे कर जड है, तो फेर नित्य है, वा अनित्य है? जे कर कहोगे नित्य है, तो अद्वैत मतकें मूलहीकू दाह क रती है, क्युंकि जब ब्रह्मसे भेद रूप हुइ, अरु जड रूप भइ, अरु नित्य हुइ, फेर तो तुमने द्वैतपथ आपही आपणे कहनेसे सिद्ध कर लीया अरु अद्वैत पथ जड मूलसें कट गया,जे कर कहोगे कि अनित्य है,तो द्वै तता दूर कभी नहीं होगी, क्युंकि जो नाश होने वाला है, सो कार्य रूप है, अरु जो कार्य है, सो कारण जन्य है, तो फेर उस मायाका उपादान कारण कौन है? सो कहनां चाहियें जे कर कहोगे अपर माया तब तो अनवस्था दूषण है, अरु अद्वैत तीनो कालोमें कदापि सिद्ध नहीं होगा, जे कर ब्रह्महीकू उपादान कारण मानोगे, तब तो ब्रह्मही आप सर्व कुछ बन गया, तब तो पूर्वोक्त दूषण आया जे कर मायाकों चैतन्य मानोगे, तोभी यही पूर्वोक्त दूषण होगा, जे कर कहोगे माया ब्रह्मसें अभेद है तब तो ब्रह्मही कहनां चाहियें, माया नहीं कहनां चाहियें

पूर्वपक्ष –हम तो मायाकूं अनिर्वचनीय मानते है

उत्तरपक्ष –इस अनिर्वचनीय पक्षकू उपर खमन कर आये हैं, तैसें खमन करणां, इहांभी कह देनां तथा अनिर्वचनीय जो शब्द है तिसमें निस् जो उपसर्ग है, तिसका अर्थ तो निषेध रूप कीया है कलापक व्या करणमें शेष जो शब्द है, सो या तो भावका वाचक है या अभावका वा चक है? जब भावकू निषेध करोगे, तब तो अभाव आ जावेगा, अरु जे कर अभावकूं निषेधोगे,तब तो भाव आ जावेगा ए भावाभाव दोनो वर्ज

के तीसरा वस्तुका रूप कोइ नहीं इस वास्ते अनिर्वचनीय जो शब्द है, सो दभी पुरुषोनें छलरूप रचा प्रतीत होता है, इस कहनेसें तो द्वैत ही सिद्ध होता है, अद्वैत नहीं

पूर्वपक्ष—यह जो अद्वैत मत है, इसके मुख्य आचार्य शंकरस्वामी है जिनोंने सर्वमतोंकू खमन करकें अद्वैत मत सिद्ध कीया है, तो फेर अैसे शकर स्वामी साक्षात् शिवका अवतार, सर्वज्ञ, ब्रह्मज्ञानी, शीलवान्, सर्वसामर्थ्ययुक्त, उनोंके अद्वैत मतकों खमने वाला कौन है?

उत्तरपक्ष—हे वल्लभ मित्र! तुमारी समज मूजब तो जरूर जैसें तुम कहते हो, तैसेंही है, परतु शकरस्वामीके शिष्य आनदगिरिनें शकरदिग्विजय के अठावनवे प्रकरणमें जो शकरस्वामीका वृत्तांत लिखा है, उसके पढनेसे तो अैसा प्रतीत होता है, जो शकरस्वामी सर्वज्ञ नहीं,अरु कामी है,अरु अज्ञानी है, अरु असमर्थ है, तिस लिखनेसें अैसाभी प्रतीत होता है कि वेदांतीयोंका अद्वैत ब्रह्मज्ञान जब तांइ यह स्थूल देह रहेगी,तब ताइ रहेगा, परतु इस शरीरके बूटघा पीछें किसी वेदांतीयोंको ब्रह्म ज्ञान नहीं रहेगा.

पूर्वपक्ष—वो कौनसा शकरस्वामीका वृत्तांत है जिस्सें तुमारी पूर्वोक्त बातें सिद्ध होती है?

उत्तरपक्ष—जो तुमकूं वृत्तांत सुनना है, तो हमारे क्या ढील है, हम इसी जग्गे लिख देते हैं जब शकरस्वामीने ममनमिश्रकू जींता, तब ममनमिश्रने यतिव्रत लीया, अरु ममनमिश्रकी भार्या जिसका नाम सरसवाणी था, सो सरसवाणी आपणे पतिकूं यतिव्रत लीया देख कर आप सरसवाणी ब्रह्मलोककूं चली,सरसवाणीकू जातीकू देख कर शकरस्वामी जीवन डुर्गामित्र करकें दिग्वधन करते हुये, तिसके पीछें हे सरसवाणी! तुं ब्रह्म शक्ति है, ब्रह्मके अशभूत ममनमिश्रकी तू भार्या है, उपाधि करकें सर्वकू फलित है, तिस कारणसें मेरे साथ प्रसग करकें फेर तुमकूं जाणा योग्य है अैसे शकरस्वामीने कहा पीछें सरसवाणी शकरस्वामी प्रतें कहती हुई कि—पतिके सन्यासतें प्रथम ही वैधव्य दोषोके भयसें मैनें पृथिवी त्यागी है, तिस कारणसें फेर मैं पृथिवीका स्पर्श न करुगी हे यति! तू तो पृथिवीमें स्थित हैं कैसें तेरे प्रसगके तांइ एक विषय स्थिति होवे, अैसे शकरस्वामीकू कहती प्रतें फेर शकरस्वामी कहते भये कि—हे माता!

तोनी नूमिकाके उपरि ७ हाथ प्रमाण ऊंची आकाशमें रहो मेरे साथ सर्व वचनका प्रपंच संचार करके, पीछेसे जाना ऐसे आदर पर होकर शंकरस्वामीके साथ सर्वशास्त्रों विषे वेद, इतिहास, पुराणो विषे समय प्रसंग करके पीछे शंकरकूं तिरस्कारके तांइ जिसमें दुःखों प्रवेश है, ऐसा जो कामशास्त्र, तिस विषे नायिका, अरु नायक, इनके भेद विस्तारसें सरसवाणी शंकरको पूछे तब तो शंकरस्वामी इस विषयकूं जानते नहीं थे, तातें शंकरस्वामी उत्तर न दे सके, मौनी होते भये, तिस पीछे सरसवाणी शंकरस्वामीकूं सत्य करके कहती हुइ कि—तुमारे जाननेमे यह शास्त्र नहीं आया, निश्चय करके तिस शास्त्रकूं मैंही जानती हूं, कालका जानकार शंकरस्वामी सरसवाणी प्रति कहते हुये कि—हे माता! तुम इहांही ७ महीने रहो, पीछे में सर्व अर्थोंका निश्चय करके तेरे कहेका उत्तर कहुंगा ऐसे कह कर शंकरस्वामी आग्रह पूर्वक सरसवाणीकूं तिहांही आकाश मंमलमें स्थापन करके सर्व शिष्योंकूं यथास्थान भेज करके चार शिष्यो सहित (१) हस्तामलक, (२) पद्मपाद, (३) विधिवत्, (४) आनंदगिरि, ए चार नामक प्रधान शिष्यों करी सेव्यमान तिस नगरसे पश्चिमदिशा नाम गढमें गये, सरसवाणीके प्रश्नोके उत्तर जानने के तांइ उस नगरका राजा मर गया था, उसका शरीर तिस अवसरमें चितामें जलानेके वास्ते रक्खा था, उस शरीरकूं देख कर शंकरस्वामीने अपणा शरीर उस नगरके प्रांत एक पर्वतकी गुफामें स्थापन करकें, शिष्योकूं कह दीया कि तुमने इस शरीरकी रक्षा करनी अरु आप शंकरस्वामी परकाय प्रवेश विद्या करके, लिंगशरीर संयुक्त अभिमान सहित उस राजाके शरीरमें ब्रह्मरंध्रमें प्रवेश कर गये, तब तो राजाजी उठ शीतोपचार करा, औ उत्सवसें नगरमें ले आये, राजा मरा नहीं था यह बात प्रसिद्ध कर दीनी, तब तो शंकरस्वामीकूं लोकोनें राजसिंहासन उपर बिठलाया पश्चात् राजसिंहासनसें उठ कर स्वामीजी बडी राणीके घरमें गये तहां जाकर उस राणीसें काम क्रीडा करने लगे, तब तो शंकरस्वामीकी कुशलतासें तिसके आलिंगन करनेसें उत्पन्न हुआ जो सुख संजोग ताकरिके शंकरस्वामीने उस राणीके मुखके साथ तो अपणा मुख जोडा, औ अपणी छाती उस राणीके दोनो कुचों (स्तनो) के उपर जाडी, तैसेही उस राणीकी

नाभीसें अपनी नाभी जोडी, औ अपणे पगों करकें राणीके पग सकोचे. एतावता जघोमे जघा फसाइ अर्थात् एक शरीरवत् हो गये, दोनो जने व हूत गाढा आलिंगन करनेमें तत्पर हुये, तब तो शंकरस्वामी राणीके कक्षा स्थानो विषे हाथों करी स्पर्श करते हुये, बहुत सुखमें मग्न हुये, तब तो राणी उनकी आलाप, चतुराइ देख कर चित्तमें विचार करनें लगी कि देह मात्र करी तो मेरा भर्त्ता है, परंतु इसका जीव मेरा भर्त्ता नहीं, एतो कोइ सर्वज्ञ है ऐसा विचार करकें राणीने आपणे नौकरोकूं चारों दिसामें भे जा, अरु कह दीया कि जो पर्वतोमें, वा गुफाउमें बारह योजनोके बिचमें जितने शरीर जीव रहित होवे सो सर्व शरीर चितामें रख कर जला दिउ. शंकरस्वामी तो विषयमें मूर्छित हो गये, तब तो राणीके नौकरोनें चार शिष्योंकूं रक्षक देख कर शंकरस्वामीके शरीरकू चितामें रख कर उनके श रीरकू अग्नि करके दाह करने लगे, तब तो शंकरस्वामीके चारों शिष्य, उस नगरमें गये, जिहां शंकरस्वामी थे, उहां शंकरस्वामिकू काम लोलुपी अति विषयमें बद्धबुद्धि देख कर शंकर राजाकें आगें नाटक करने लगे, शंकरस्वा मीकू परोक्ति करकें प्रतिबोध करने लगे सो यह है, जो लिखते हैं—

(१) "यत्सत्यमुख्यशब्दार्थानुकूल, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन्! (२) नह्येतत्त्व विदितं नृप भाव, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन्! (३) विश्वो त्पत्त्यादिविधिहेतुतत्त्व, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन! (४) सर्वचिदात्म क सर्वमद्वैतं, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन्! (५) परतार्किकैरीश्वरसर्वहेतु, स्तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन्! (६) यद्वेदांतादिनिर्ब्रह्मसर्वस्थ, तत्त्वमसि त त्त्वमसि राजन्! (७) यज्जैमिनिनोक्तमखिलकर्म, तत्त्वमसि तत्त्वमसि रा जन्! (८) यत्पाणिनि प्राह शब्दस्वरूपं तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन्! (९) यत्सांख्याना मतहेतुभूतं, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन्! (१०) अष्टागयो गेन अनतरूप, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन्! (११) सत्यं ज्ञानमनतं ब्र ह्म, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन्! (१२) नह्येतदहृश्यप्रपंच, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन! (१३) यद्ब्रह्मणोब्रह्मविषावीश्वराद्यजवन, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन्! (१४) त्वद्रूपमेवमस्मान्निर्विदितं राजन्! तव पूर्वय त्याश्रमस्थम्"॥ इन परोक्तियां करकें राजा प्रतिबोध हुआ, सर्वके सन्मु ख तिस राजाकी देहसें निकल कर जब गये तब तो उस पर्वतकी कदरामें

अपणे शरीरकूं न प्राप्ति हुवे तब तो अपणे शरीरकूं चितामें देखा, देख कर कपालमध्यमें हो कर प्रवेश करा, तब शरीरके चारो ओर अग्नि प्रज्वलित हो रही थी, तब तो निकलना दुष्कर हो गया, फेर शंकरस्वामीने लक्ष्मी नृसिंहकी स्तुति करी तब लक्ष्मीनृसिंहने शंकरस्वामीकू लीना, अग्निमेंसें बाहिर निकाला॥ इति कथा समाप्ता ॥ अब हे भव्य! तू विचार कर देख जो में पूर्वं तुजकू वार्त्ता कही थी सो सर्व सत्य है या नहीं? क्युंकि (१) जब सरस वाणीके कहनेके प्रश्नका उत्तर नहीं आया, तब तो शंकरस्वामीकू सर्वज्ञ कौन बुद्धिमान् निष्पक्षी मान सक्ता है? कोइभी नहीं मानेगा, (२) अरु जब राजाकी राणीसें विषय सेवन करा, तब तो कामी होणेमें कोइ शंकाभी रहती है? (३) अरु जब शिष्योंने आकर प्रतिबोध करा, तब तो अज्ञानी अवश्य हो चूके, (४) जब चितामेंसे न निकल सके, तब लक्ष्मीनृसिंहकी स्तुति करी तब नृसिंहने आय करकें ज्वलती अग्निमेंसे निकाले, तब शंकरस्वामी असमर्थ सिद्ध हो गये, जब शंकरस्वामीने फेर आकर सरसवाणीके प्रश्नोका उत्तर दीया, तब तो सरसवाणीने कहा, हे स्वामी! तू सर्वज्ञ है क्या मृतकके शरीरमें प्रवेश करके उसकी राणीके साथ विषय सेवन करकें राणी पासों कछुक कामशास्त्रकी वार्ता शीखके सर्वज्ञ हो सक्ता है? सर्वज्ञ तो नहीं हो सक्ता, परंतु गद्धे खुरकणी तो हो गइ सरसवाणीकूं उसने सर्वज्ञ कह दीया, अरु शंकरकू सरसवाणीने सर्वज्ञ कह दीया वाह क्याही सर्वज्ञोंकी जोडी मिली है? सरसवाणी तो ब्रह्मकी शक्ति हो कर फेर स्त्री बन कर मंडनमिश्रसें विषय सेवन करती रही, अरु सर्वज्ञभी बन बैठी, अरु शंकरस्वामी परस्त्रीसें विषयसेवन करके अरु कछुक काम शास्त्र शीख कर सर्वज्ञ बन बैठे, क्या यह गद्धे खुरकणी न होइ तो और क्या हुआ? जब शंकरस्वामी, अपणा स्थूल शरीर छोड कर राजाके शरीरमें गये, अरु ब्रह्मविद्या सर्व भूल गये, जे कर न भूले होते तो उनके शिष्य काहेकूं तत्त्वमसिका उपदेश करते? जब शंकरस्वामी स्थूल शरीरके बदल जाने परब्रह्म विद्या भूल गये, तब तो ब्रह्मविद्याका संबध, न तो लिंग शरीरके साथ रहा, न आत्माके साथ संबध रहा किंतु स्थूल शरीरहीके साथ रहा, इस्सें यह सिद्ध हुआ कि—जब वेदांती मर जाते हैं, तब उनका ज्ञानभी नष्ट हो जाता है, अरु स्थूल शरीरहीके

साथ ज्ञानका सबध रहा परंतु आत्माके साथ नहीं अरु जो तुमने कहा था कि —शंकरस्वामीके प्रगट कथन कीये अद्वैत मतकूं कौन खम्न कर सक्ता है? सो हे नव्य! जब शंकरस्वामीका चरित्रही असमंजस है, तो फेर उनके कहे हुये मतकूं कौन सयौक्तिक समज सक्ता है?

पूर्वपक्ष —" पुरुषएवेदं " इत्यादि श्रुतियोंसें अद्वैतही सिद्ध होता है

उत्तरपक्ष —यहजी तुमारा कहनां असत् है, क्युंकि जो पुरुष मात्र रूप अद्वैततत्त्व होवे तब तो यह जो दिखलाइ देता है कोइ सुखी, कोइ दुखी, ए सर्व परमार्थसें असत् हो जावेंगे जब अैसें होगा तब तो यह जो कहनां है, " प्रमाणतोऽधिगम्य ससारनैर्गुण्यं तद्विमुखया प्रज्ञया तदुच्छेदाय प्रवृत्तिरित्यादि " अस्यार्थ —ससारका निर्गुणपणा प्रमाणसें जान कर, तिस ससारसें विमुख बुद्धि हो करकें तिस ससारके उछेदके तांइ प्रवृत्ति करे, यह जो कहनां है, सो आकाशके फूलकी सुगधिका वर्नन करने सरिखा है, क्यु कि जब अद्वैत रूपही तत्त्व है, तब तो नरकादि जवभ्रमण रूप ससार कहां रहा? जिस ससारकू निर्गुण जान कर तिसके उछेद करणेकी प्रवृत्ति होवे

पूर्वपक्ष —तत्त्वत पुरुष अद्वैत मात्रही है, अरु यह जो ससार निर्गुण वर्णन करा है, सो सदा सर्व जीवोंकूं जो प्रतिजासन हो रहा है, सो सर्व चित्रामकी स्त्रीके अगोपांग उचे नीचे जैसे प्रतीत होते है, तैसे सर्व ससार प्रतीत होता है परतु सर्व चित्रामकी स्त्रीके अंगोपांग उच्च नीचकी तरे भ्रांतिरूप है वा भ्रांतिजन्य है

उत्तरपक्ष —यह जो तुमारा कहनां है सो असत् है, इस बातमें कोइ वास्तव्य प्रमाण है नहीं तत् यथा जे कर अद्वैत सिद्ध करणे वास्ते कोइ पृथग्भूत प्रमाण मानोगे, तब तो द्वैतापत्ति होगी, क्युकि प्रमाणके विना किसीकाजी मत नहीं सिद्ध होता, जे कर प्रमाणके विनाही सिद्ध मानोगे तब तो सर्ववादी अपणे अपणे अजिमतकू सिद्ध कर लेवेंगे, तथा भ्रांतिजी प्रमाणजूत अद्वैतसें जिन्नही माननी चाहियें अन्यथा प्रमाणजूत अद्वैत अप्रमाणही हो जावेगा, भ्रांति जब अद्वैतकाही रूप हुइ तब तो पुरुषका रूप हुइ, तातें भ्रांतिसरूपवाला पुरुषही है नहीं, तब तो तत्त्वव्यवस्था कबजी सिद्ध न होइ जे कर भ्रांति जिन्न मानोगे, तब

तो द्वैतापत्ति होवेगी, अद्वैत मतकी हानि हो जावेगी. जेकर स्वप्न रज्जुना विकोंसें नेद माननां इसीकू भ्रांति कहोगे, तब तो निश्चय करके सत्स्वरूप कुनादिक किसी जगें तो जरूर होगे. अभ्रांतिके देखे विना कदापि भ्रांति देखनेमें नही आवेगी, पूर्व जिसने सञ्चा सर्प्प नहीं देखा, तिनकू रज्जुमे सर्प्पकी भ्रांति कदापि न होवेगी ॥ तदुक्तं ॥ श्लोक ॥ नादृष्टपूर्वसर्प्पस्य, रज्ज्वा सर्प्पमति क्वचित् ॥ ततः पूर्वानुसारित्वाद्भ्रांतिरभ्रांतिपूर्विका ॥ १ ॥ इस कहनेसेंजी अद्वैत तत्त्व खमन हो गया तथा पुरुष अद्वैतरूप तत्त्व अवश्य करके दूसरेकू निवेदन करनां, अपणे आपकू नहीं आपणेमें तो व्यामह है नहीं जे कर कहने वालेमें व्यामोह होवे तब तो अद्वैतकी प्रतिपत्ति कबीजी नहीं होवेगी.

पूर्वपक्ष —जब आत्माकू व्यामोह है तब ही तो अद्वैत तत्त्वका उपदेश कीया जाता ?

उत्तरपक्ष —जब आत्माका व्यामोह दूर होगा तब तो आत्मा अवश्य अवस्थातरकू प्राप्ति होगी, जब अवस्था बदलेगी, तब तो अवश्य द्वैतापत्ति हो जावेगी, तथा जब अद्वैत तत्त्वका उपदेशक पुरुष परकू उपदेश करेगा, तब तो परकू अवश्य मानेगा, फेर अद्वैत तत्त्व परकू निवेदन करनां अरु अद्वैत तत्त्व माननां, यह तो असें हुआ के, जैसें मेरा पिता कुमार ब्रह्मचारी है, इस बचनके कहनेसें जरूर वो पुरुष उन्मत्त है, जेकर अपणेकू अरु परकू इन दोनोकू जब मानेगा, तब तो द्वैतापत्ति अवश्य होगी, इस कारणसें जो अद्वैत माननां है, सो युक्ति विकल है

पूर्वपक्ष —परमब्रह्मरूप सिद्धही सकल भेद ज्ञान प्रत्ययोंके निरालंबनपणेकी सिद्धि है

उत्तरपक्ष —ए कथन जी तुमारा ठीक नहीं है, क्युकि परम ब्रह्महीकी सिद्धि नहीं है जे कर है तो स्वत सिद्धि है, वा परत सिद्धि है ? तहां स्वत सिद्धि तो है नहीं, जे कर होवे तब तो किसीकाजी विवाद न रहे, जे कर कहोगे परत सिद्धि है, तो क्या अनुमानसें है, वा आगमसें है ? जे कर कहोगे अनुमानसें है तो वो अनुमान कौनसा है ? कहो

पूर्वपक्ष —सो अनुमान यह है कि विवादरूप जो अर्थ है सो प्रतिजासांत प्रविष्ट ब्रह्मभासके अतर है, प्रतिभासमान होणेसें जो जो प्रतिभा

समान है सो सो प्रतिभासात प्रविष्टही देखा है, जैसें प्रतिभास आत्मा प्रतिभासमान है सकल अर्थ सचेतन अचेतन विवादरूप है तिस कारणसें प्रतिभासात प्रविष्ट है, घटपटादि यह अनुमान है

उत्तरपक्ष –यह अनुमान तुमारा सम्यक् नहीं है, (१) धर्मी, (२) हेतु, (३) दृष्टात, इन तीनोंके प्रतिभासांत प्रविष्ट होणेसें साध्यरूपही हुये

पूर्वपक्ष –तब तो (१) धर्मी, (२) हेतु, (३) दृष्टांत इन तीनोके न होनेसें अनुमानही नहीं बन सक्ता जे कर कहोगे कि, (१) धर्मी, (२) हेतु, (३) दृष्टात, ए तीनो प्रतिभासात प्रविष्ट नहीं है, तो इनोंहीके साथ हेतु, व्यभिचारी होगा जे कर कहोगे अनादि अविद्या वासनाके बलसे हेतु दृष्टात जो है, सो प्रतिभासके बाहिरकी तरें निश्चय करते हैं, जैसे प्रतिपाद्य, प्रतिपादक, सभा, सभापति जनकी तरें तिस कारणसें अनुमानभी हो सका है, अरु जब सकल अनादि अविद्याका विलास दूर हो जावेगा, तब तो प्रतिभासांत प्रविष्टही प्रतिभास होगा विवादभी न रहेगा, प्रतिपाद्य प्रतिपादक, साध्य, साधन भावभी नहीं रहेगा, तब तो अनुमान करनेकाभी कुछ फल नहीं, आपही अनुभवमान परम ब्रह्मके होते हुये देश काल अव्यवछिन्न स्वरूपके होयां निर्व्यभिचार, सकल अवस्था व्यापकपणे वालेमें अनुमानका कुछ प्रयोगभी नहीं चाहियें है

उत्तरपक्ष –जो अनादि अविद्या प्रतिभासांत प्रविष्ट है, तब तो विद्याही हो गइ तब तो असतरूप (१) धर्मी, (२) हेतु, (३) दृष्टांत आदिक भेद कैसें दिखा सके ? जे कर कहोगे प्रतिभासके बाहिरभूत है, तब तो (१) अविद्या प्रतिभासमान है ? वा (२) अप्रतिभासमान है ? तिस अविद्याकू प्रतिभासमान रूप होणेसें अप्रतिभासमान तो नहीं जे कर कहोगे प्रतिभासमान है, तो तिसहीके साथ हेतु व्यभिचारी है तथा प्रतिभासके बाहिरभूत होणेसे तिसके प्रतिभासमान होणेसें जेकर तुमारें मनमें ऐसा होवेंकी अविद्या जो है, सो नतो प्रतिभासमान हैं, न अप्रतिभासमान, न प्रतिभासके बाहिर, न प्रतिभासके अंदर प्रविष्ट है न एक है, न अनेक है, न नित्य हैं, न अनित्य है, न व्यभिचारिणी है, न अव्यभिचारिणी हैं, सर्वथा विचारके योग नहीं सकल विचा

तो द्वैतापत्ति होवेगी, अद्वैत मतकी हानि हो जावेगी. जेकर स्थन कुंना दिकोंसे भेद माननां इसीकू ज्रांति कहोगे, तब तो निश्चय करके मतम्र प कुंनादिक किसी जगे तो जरूर होगे. अज्रांतिके देखे बिना कदापि ज्रांति देखनेमें नही आवेगी, पूर्वे जिसने सच्चा सर्प नही देखा, तिनकू रज्जुमें सर्पकी ज्रांति कदापि न होवेगी ॥ तदुक्तं ॥ श्लोक ॥ नादृष्टपूर्वसर्पस्य, रज्ज्वां सर्पमति क्वचित् ॥ तत पूर्वानुसारित्वाद्भ्रांतिरभ्रांतिपूर्विका ॥ १ ॥ इस कहनेसेजी अद्वैत तत्त्व खमन हो गया तथा पुरुष अद्वैतरूप तत्त्व अवश्य करके दूसरेकू निवेदन करनां, अपणे आपकू नही आपणेमे तो व्यामह है नहीं जे कर कहने वालेम व्यामोह होवे तब तो अद्वैतकी प्र तिपत्ति कदीजी नहीं होवेगी

पूर्वपक्ष—जब आत्माकू व्यामोह है तब ही तो अद्वैत तत्त्वका उपदे श कीया जाता ?

उत्तरपक्ष—जब आत्माका व्यामोह दूर होगा तब तो आत्मा अवश्य अवस्थांतरकू प्राप्ति होगी, जब अवस्था बदलेगी, तब तो अवश्य द्वैताप त्ति हो जावेगी, तथा जब अद्वैत तत्त्वका उपदेशक पुरुष परकू उपदेश करेगा, तब तो परकू अवश्य मानेगा, फेर अद्वैत तत्त्व परकू निवेदन क रनां अरु अद्वैत तत्त्व माननां, यह तो असे हुआ के, जैसे मेरा पिता कु मार ब्रह्मचारी है, इस बचनके कहनेसें जरूर वो पुरुष उन्मत्त है, जेकर अपणेकू अरु परकू इन दोनोकू जब मानेगा, तब तो द्वैतापत्ति अवश्य होगी, इस कारणसें जो अद्वैत माननां है, सो युक्ति विकल है

पूर्वपक्ष—परमब्रह्मरूप सिद्धही सकल भेद ज्ञान प्रत्ययोंके निरालंबन पणेकी सिद्धि है

उत्तरपक्ष—ए कथन जी तुमारा ठीक नहीं है, क्युकि परम ब्रह्महीकी सिद्धि नहीं है जे कर है तो स्वत सिद्धि है, वा परत सिद्धि है ? तहां स्वत सिद्धि तो है नहीं, जे कर होवे तब तो किसीकाजी विवाद न रहे, जे कर कहोगे परत सिद्धि है, तो क्या अनुमानसें है, वा आगमसें है ? जे कर कहोगे अनुमानसें है तो वो अनुमान कौनसा है ? कहो

पूर्वपक्ष—सो अनुमान यह है कि विवादरूप जो अर्थ है सो प्रतिभा सांत प्रविष्ट ब्रह्मभासके अंतर है, प्रतिभासमान होणेसें जो जो प्रतिभा

वादी औसे अनुमान करते हैं कि –पृथिवी, पर्वत, वृक्षादिक सर्व, बुद्धिवा लें कर्त्ताके करे हुये है, कार्य होणेसें जो जो कार्य है, सो सो सर्व बुद्धिवालेके करे हुये है, जैसें घट तैसेही यह जगत् है, तिस कारणसे जगत् बुद्धि वालेका रचा हुआ है, जो बुद्धिवाला है, सोही भगवान् ईश्वर है, औसानी मत कहनां, जो यह तुमारा हेतु असिद्ध है, किस कारणसे असिद्ध है? सो कहते है कि –पृथिवी, पर्वत, वृक्षादिक अपणे अपणे कारणके समूह करके उत्पन्न होये है, इस वास्ते कार्य रूप है तथा अवयवी है, इस करकें कार्यरूप है, सर्व वादीयोकू निश्चित है तथा औसेंनी न कहनां जो यह तुमारा हेतु अनेकातिक है तथा विरुद्ध है क्युकि हमारा हेतु विपक्षसें अत्यंत हटा हुआ है, तथा औसेनी मत कहनां जो यह तुमारा हेतु कालात्ययापदिष्ट है, क्युकि प्रत्यक्ष अनुमान आगम करकें बाध्या नहीं है, धर्म धर्मी अनतर कहनेसें तथा यहनी मत कहनां जो तुमारा हेतु प्रकरण सम है, क्यु कि अनुमानसें जो साध्य है, तिसका शत्रुनूत दूसरे साध्यके साधने वाले अनुमानके अनावसें तथा औसेंनी मत कहनां जो ईश्वर, पृथिवी, पर्वत, वृक्षादिकोंका कर्त्ता नहीं है, बिना शरीरके होणेसें मुक्त आत्माकी तरें यह पीछले तुमारे अनुमानका वैरी अनुमान है, सो ईश्वरकू जगत्का कर्त्तासिद्ध नहीं होणे देता, क्यु कि तुमने तो ईश्वरकूं शरीर रहित सिद्ध करकें जगत्का अकर्त्ता सिद्ध कीया, परंतु हमने तो ईश्वर शरीरवाला माना है इस कारणे तुमारा अनुमान असत्य है, अरु हमारा जो हेतु है, सो निरवद्य है तथा ईश्वर जो है सो एक है, क्यु कि जो बहुत ईश्वर मानीयें, तब तो एक कार्य करनेमें ईश्वरोंकी न्यारी न्यारी बुद्धि हो जावे, तब तो इनके मने करने वाला तो और कोइ है नहीं, फेर कार्य कैसें उत्पन्न होवे? कोइ ईश्वर तो अपणी इछासें चार पगवाला मनुष्य रच देवे, अरु दूसरा ईश्वर ठ पग वाला रच देवे, तथा तीसरा दो पग वाला रच देवे, अरु चौथा आठ पग वाला रच देवे, इसी तरें सर्व वस्तुकू विलक्षण विलक्षण रच देवे, तब तो सर्व जगत् असमंजस रूप हो जावे परंतु सो है नहीं इस हेतुसें ईश्वर एकही होनां चाहियें, तथा ईश्वर सर्वगत् सर्वव्यापी है, जे कर ईश्वर सर्व व्यापक न होवे, तब तो तीन भुवनमें एक साथ जो उत्पन्न होणे वाले कार्य है, सो सर्व एक कालमें कब।

रांतर अतिक्रांत स्वरुप है रुपांतरके अनावसे अविद्या जो है, सो निरूपता लक्षण है, यहनी तुमारी बडी अज्ञानताका विस्तार है, तैसी निरूपता स्वनावकूं यह अविद्या है, यह अप्रतिनासमान है, अैसें कौन कथन करनेकू समर्थ है? जे कर कहोगे यह अविद्या प्रतिनासमान है, तो फेर क्युकर अविद्या नीरूपसिद्ध होगी, जो वस्तु, जिस स्वरुप करकें प्रतिनासमान है, सो तिसही वस्तुका रुप है, तथा अविद्या जो है सो विचार गोचर है, वा विचार गोचर रहित है? जे कर कहोगे विचार गोचर है तव तो नीरूप नहीं, जे कर विचार गोचर नहीं, तव तो तिसके मानने वाला महा मूर्ख है, जव विद्या अविद्या दोनोंही सिद्ध है, तव तो एक परमब्रह्म अनुमानसे कैसें सिद्ध हुआ? इस कहने करके जो उप निषदमें ऐक ब्रह्मके कहनेवाली श्रुति है सोनी खमन हो गइ, तथा "स वैंवैंखल्विदंब्रह्मेत्यादि" वचनकू परमात्माके अर्थांतर होणेसें द्वैतापत्ति हो जावेगी, जे कर कहोगे अनादि अविद्यासें अैसा प्रतीत होता है तव तो पूर्वोक्त दूषणोंका प्रसग होगा, तिस वास्ते अद्वैतकी सिद्धि वंध्याके पुत्रकी शोनावत् है इस कारणसें अद्वैतमत युक्तिविकल है इस हेतुसें एकही ईश्वर जगतसें प्रथम था, यह कहना मिथ्या है यह प्रथम ईश्वर के माननेवालोंके मतका खमन हुआ।

अथ दूसरा ईश्वर जगत्के उपादान कारणवाला एक ईश्वर अरु दूसरी सामग्री, ए दो पदार्थ अनादि है, तिन दोनोमेंसे सामग्री जो है, सो अैसे है, (१) पृथिवी, (२) जल, (३) अग्नि, (४) वायु इन चारों के परमाणु, (५) आकाश, (६) दिशा, (७) आत्मा, (८) मन, (९) काल, ए नव वस्तु नित्य हैं, अनादि है, किसीके वनाइ होइ नहीं सो ईश्वर इस पूर्वोक्त कारणोसें इस सृष्टिकों रचता है अथ मतावलंबीयोंनें जिस रीतिसें ईश्वरकों जगत्का कर्त्ता माना है, सो रीती इहां लिखते है

उपजातिवृत्त ॥ कर्त्तास्ति कश्चिज्जगत सचैक, ससर्वग सस्ववश सनित्य ॥ इमा कुदेवाकविडंबनास्यु, स्तेषां न येषामनुशासकस्त्वम् ॥ १ ॥

अस्यार्थ —जगत जो है,सो प्रत्यक्षादि प्रमाणों करके लक्ष्यमाण (दीसता) है, चराचर रूप तीनो जगत्का कोइक जिसका स्वरूप कह नहीं सके अैसा पुरुष विशेष रचनेवाला है, ईश्वरकूं जगत्का कर्त्ता मानने वाले

योंके देखनेसें, जैसे "अनित्यशब्दप्रमेयत्वात्" जैसें यह प्रमेयत्व हेतु साधारण अनेकांतिक है, तैसे ही यह कार्यत्व हेतुसाधारण अनेकांतिक है

२ जेकर दूसरा पक्ष मानोगे, तब जो ईश्वरका शरीर नहीं दिखलाइ देंता (१) सो ईश्वरके माहात्म्य करके नहीं दिखलाइ देता? (२) वा हमारी बुरी अदृष्टका प्रभाव है? एतावता हमारे खोटे कर्मके प्रभावसे नहीं दिखलाइ देता है? जे कर प्रथम पक्ष ग्रहण करोगे जो ईश्वरके माहात्म्यसें ईश्वरका शरीर नहीं दीखता, इस पक्षमे कोइ भी प्रमाण नहीं है, जिससे ईश्वरका माहात्म्य सिद्ध होवे परंतु हे वादी! जे कर त्रपु (जिस्त) तपा कर पीवें ऐसी सच्ची धीज करे तो कदाचित् मान भी लेवे, अन्यथा नहीं अरु इस तुमारे कहनेमें इतरेतर आश्रय दूषण भी है जब माहात्म्य विशेष सिद्ध हो जावे तब अदृश्यशरीर वाला सिद्ध होवे, जब अदृश्य शरीरवाला सिद्ध होवे, तब माहात्म्य विशेष सिद्ध होवे, इतीतरेतराश्रय दूषण जे कर दूसरा पक्ष पिशाचादिकोंकी तरे अदृश्य शरीर ईश्वरका है ऐसे मानोगे, तब तो संशय की निवृत्ति न होवेगी सो कैसें कि—क्या ईश्वर है नहीं जिस करकें उसका शरीर नहीं दीख पडता? तब तो वांझके पुत्रके शरीरकी तरें, किंवा हमारे पूर्व पापोंके प्रभावसें ईश्वरका शरीर नहीं दीखता, यह संशय कभी दूर न होवेगा जे कर कहोगे हमारा ईश्वर शरीर रहित है, तब तो दृष्टांत अरु दार्ष्टांतिक यह दोनो विषम हो जावेंगें और हेतु विरुद्ध हो जावेगा, क्युंकि घटादिक कार्योंका कर्त्ता शरीरवालाही कुंभारादिक दीख पडता है, अरु ईश्वरकू जब शरीर रहित मानोगे तब तो ईश्वर कुछभी कार्य करणेकू समर्थ न होवेगा, आकाशकी तरें नित्यव्यापक अक्रिय जो है, सो अकर्त्ता है, इस हेतुसे शरीर सहित तथा शरीर रहित ईश्वरके साथ कार्यत्व हेतुकी व्याप्ति सिद्ध नहीं होती है, तथा तेरा हेतु कालात्ययापदिष्टभी है, तेरे साध्यके धर्मीका एक देश, वृक्ष, वीजली, वादल, इंद्रधनुपादिकोंका अबभी कोइ बुद्धिमान् कर्त्ता नहीं दीख पडता है, इस वास्ते प्रत्यक्ष करकें बाधित होयां पीछे तुमने अपणा हेतु कह्या, इस वास्ते तुमारा हेतु कालात्ययापदिष्ट है, इस तुमारे कार्यत्वहेतुसे बुद्धिमान् (बुद्धिवाला) ईश्वर जगत्का कर्त्ता कभी सिद्ध नहीं होता है

तथा दूसरी तरें जगत् कर्त्ताके खंडन करनेका स्वरूप लिखते है, जो

उत्पन्न न होगे, जैसे कुनारादिक जहां होगे, तहांही कुंनादिक कर सकें गे, परंतु देशांतरमें कनी कार्य न कर सकेंगे. तथा ईश्वर जो है, सो सर्वज्ञ है, जे कर सर्वज्ञ न होवेगा तब तो सर्व कार्योंका उपादान कारण कैसे जानेगा? जब कार्योंके उपादान कारणकू न जानेगा, तब तो जगत् विचित्र कैसे रच सकेगा? तथा स्वतंत्र ईश्वर जो है, सो स्वतंत्र है किसि दूसरेके अधीन नहीं ईश्वर अपणी इच्छासें सर्व जीवोंकू सुख दुःखका फल देता है ॥उक्तं च॥ ईश्वरप्रेरितोगच्छेत्,स्वर्गं वा श्वभ्रमेव वा ॥ अन्यो जतुरनीशोय, मात्मन सुखदुःखयोरिति ॥ १ ॥ अस्यार्थः –ईश्वरहीकी प्रेरणाहीसें जगत्वासी जीव, स्वर्ग तथा नरकमें जाता है, क्युंकि ईश्वरके बिना और सर्व जीव आपणे आपकू सुख दुःखका फल देनेकू समर्थ नहीं है, जेकर ईश्वरकू नी परतंत्र (पराधीन) मानीयें, तब तो मुख्य कर्त्ता ईश्वर न रहेगा, अपर अपरके अधीन माननेसे अनवस्था दूषणजी लग जावेगा, इस हेतुसें ईश्वर अपणेही वश है, परतु पराधीन नहीं तथा "सनित्य" (सो ईश्वर) नित्य है जेकर ईश्वर अनित्य होवे तब तो तिसके उत्पन्न करने वाला कोइ और चाहियें, सोतो है नहीं, इस हेतुसे ईश्वर नित्यही है, ऐसें पूर्वोक्त विशेषणों करी संयुक्त ईश्वर (नगवान्) जगत्का कर्त्ता है, इति पूर्वपक्ष

उत्तरपक्ष –हे वादी! जो तुमारा यह कहना है पृथिवी, पर्वत, वृक्षादिक बुद्धिवाले कर्त्ताके रचे हुये हैं, सो अयुक्त है, क्यु के इस तुमारे अनुमानमें व्याप्तिका ग्रहण नहीं हो सक्ता है, अरु हेतु जो होता है, सो सर्वत्र व्याप्तिमें प्रमाण करकें सिद्ध हुया होयाही अपणे साध्यका गमक होता है, इस कहनेमें सर्व वादियोंकी सम्मति है

अथ प्रथम तुम यह कहो जब ईश्वर जगतकूं रचता है, तो ईश्वर शरीर वाला है? वा शरीर रहित है? जेकर कहोगे ईश्वर शरीर वाला है, तो हमारा सरीखा दृश्य शरीर अर्थात् दिखलाइ देने वाला शरीर है अथवा, पिशाच आदिकोकी तरे अदृश्य (न दिखलाइ देने वाले) शरीर करी संयुक्त है? जेकर प्रथम पक्ष मानोगे तब तो प्रत्यक्ष बाधा है तिस ईश्वरके बिनाही अब नी उत्पन्न होते हुये तृण, वृक्ष, इन्द्रधनुष, बादल प्रमुख का

क्योंकि जब कोइ पुण्यवान् राजा राज करता है, तब उसके राजमें सुका ल, निरुपद्रव देशोमें होता है, तो वो उस राजाके शुभ कर्मका प्रभाव है, इस कारणसें जो उद्र उद्र जीवोंकू फल देते हैं सो कर्म हैं कर्म जो हैं सो जीवोंके आश्रय है, अरु जीव जो हैं सो चेतन होणेसे बुद्धि वाले हैं तब तो बुद्धिवालेके अधीन हो कर कर्म उद्र उद्र कर फल देते हैं इस कारणसें सिद्ध साधन दूषण है जे कर कहोगे हम तो विशिष्ट बुद्धिवाला ईश्वरही सिद्ध करते है, परतु सामान्य बुद्धिवाले जीव नहि सिद्ध करते? तब तो तुमारा दृष्टात साध्यविकल है, वसोला आदि प्रमुख विषे ईश्वर अधिष्ठितका व्यापार, नहीं उपलभ होता है, किंतु कुंभकारादिकोंका व्या पार तहा तहां अन्वयव्यतिरेक करकें उपलब्ध होता है

पूर्वपक्ष—वर्द्धक्यादिकभी ईश्वरकी प्रेरणाहीसें तिस तिस काममें प्रवृत्त होते हे, इस वास्ते हमारा दृष्टात साध्य विकल नहीं है

उत्तरपक्ष—तब तो ईश्वरभी और ईश्वरकी प्रेरणाहीसें प्रवृत्त होवेगा प रतु आप नहा प्रवृत्त होता, सोभी ईश्वर दूसरे ईश्वरकी प्रेरणासें प्रवृत्त होगा, तब तो अनवस्था दूषण होगा

पूर्वपक्ष—बढइ प्रमुख जीव तो सर्व अज्ञानी हैं, इस वास्ते ईश्वरकी प्रेरणाहीसें अपणे अपणे काममें प्रवृत्त होते हैं, अरु ईश्वर (भगवान्) तो सर्व पदार्थोंका ज्ञाता है, इस वास्ते अनवस्था दूषण नहीं है

उत्तरपक्ष—यहभी तुमारा कहना असत् है, क्योंकि इस तुमारे कहनेमें इतरेतर दूषण होता है, प्रथम ईश्वर सर्व पदार्थका यथावस्थित स्वरूप ज्ञाता सिद्ध हो जावे, तब अन्यकी प्रेरणा विना ईश्वर आपही प्रवृत्त होता है ऐसा सिद्ध होवे, जब अन्यकी प्रेरणा विना ईश्वर आपही प्रवृत्त होता है ऐसें सिद्ध हो जावे तब तो ईश्वर सर्व पदार्थका यथावस्थित स्वरूप जान नेवाला सर्वज्ञ सिद्ध होवे, जब तांइ दोनोमेंसें एक सिद्ध न होवे, तब तांइ दूसरेकी सिद्धि कभी न होगी, तथा हे ईश्वरवादी! हम तुमकू पूछ ते हैं जे कर ईश्वर सर्वज्ञ अरु वीतराग है तो काहेकूं और जीवोंकू अ सत् व्यवहारमें प्रवर्त्तावे है? क्योंकि जो विवेकी होते है वे मध्यस्थही होते हैं, फेर तो जीवोंकू सत्व्यवहारहीमें प्रवृत्त करनां चाहियें परंतु असत् व्यवहारमें नहीं प्रवृत्त करनां चाहियें अरु ईश्वर तो असत् व्यवहा

कोइ ईश्वरवादी यह कहते हैं जगत सर्व ईश्वरका रचा हुआ है, यह उनका कहना समीचीन नहीं है काहेतें कि जगतका कर्त्ता ईश्वर किसी प्रमाणसें सिद्ध नहीं होता है

पूर्वपक्ष—ईश्वरकूं जगत्का कर्त्ता सिद्ध करनेवाला अनुमान प्रमाण है तथाहि जो ठहर ठहर करके अभिमत फलके संपादन करनेके तांइ प्रवृत होवे, तिसका अधिष्ठाता कोइ बुद्धिमान् जरूर होना चाहियें जैसे वसोला आरी प्रमुख शस्त्र, काष्ठके दो टुकडे करणेमें प्रवर्त्तते है. तैसेंही ठहर ठहर कर सर्व जगत्कूं सुख दुःखादिक जे फल देते है तिनका अधिष्ठाता कोइ बुद्धिमान् जरूर चाहियें है, तुमने ऐसें न कहना जो वसोला आरी प्रमुख आपही काष्टके दो टुकडे करणेमें प्रवृत्त होते है, क्युं कि वो तो अचेतन हैं आपही कैसे प्रवृत्त हो सके? जे कर कहोगे वसोलाआरि प्रमुख स्वभावसें प्रवृत्त होते है तब तो तिनकूं सदाही प्रवृत्त होना चाहियें, बीचमें कभी ठहरना न चाहियें, परंतु ऐसे है नहीं, इस पूर्वोक्त हेतुसें जो ठहर ठहर कर अपणे अपणे फलके साधनेवाले जीव है, तिनका अधिष्ठाता ईश्वर (भगवान्) ही सिद्ध हो सक्ता है, तथा दूसरा अनुमान जो परिमंडलादिक वृत्त, त्र्यश्र, चतुरश्र, संस्थान वाले गाम, नगरादिक है, वे सर्व ज्ञानवान्के करे हुये हैं, जैसे घटादिक पदार्थ, तेसेंही पूर्वोक्त संस्थान संयुक्त पृथिवी, पर्वत प्रमुख हैं इस अनुमानसेंभी जगत्का कर्त्ता ईश्वर सिद्ध होता है, इति पूर्वपक्ष ॥

उत्तरपक्ष—जिस अनुमानसें तुमने जगत्का कर्त्ता ईश्वर सिद्ध करा है, सो तुमारा अनुमान अयुक्त है, क्योंकि यह तुमारा पूर्वोक्त अनुमान हमारे मतमें जैसे आगें सिद्ध है, तैसेंही सिद्ध करता है, इस वास्ते सिद्धसाधन दूषण तुमारे अनुमानमें होता है, जैसें हमारे मतमें आगेंही सिद्ध है तैसें लिखते हैं—संपूर्ण यह जगत्की विचित्रता जो है सो सर्व कर्मके फलसें है, ऐसे हम मानते हैं, क्योंकि यह जो भारतवर्षमें अनेक देशोमें, अनेक टापुओंमें, अनेक हेमवत आदिक पर्वतोंमें, अनेक प्रकारके मनुष्यादि प्राणी जो वास करते हैं, अरु जो उनकूं सुख दुःखादिक अनेक तरेंकी अवस्था बण रही है, तिन सर्व अवस्थायोंका कारण कर्मही जानने दूसरा कोइ नहीं अरु देखनेमेंभी कर्मही कारण हो सक्ते हैं,

पूर्वोक्त दूषण है जेकर कहोगे कि जीवोंकूं पापमें प्रवृत होतोंकूं ईश्वर म
ने करने समर्थ नही, तो फेर उचे शब्दसें ऐसें न कहना जो "सर्व कु
छ ईश्वरनेही करा है, और ईश्वर सर्व शक्तिमान् है" तथा जेकर जीव पा
पभी आपही करता है, अरु धर्मभी आपही करता है, तो फलभी आप
ही भोग लेवेगा, तो फेर हे पूर्वपक्षी! ईश्वर कर्त्ताकी कल्पना व्यर्थ है

पूर्वपक्ष—धर्म अधर्म तो जीव, आपही करते हैं, परंतु उनका फल
प्रदान तो ईश्वरही कर्त्ता है, जीव जो हैं, सो आपणे करे हुवे धर्म अधर्म
का फल आप भोगनेकू समर्थ नहीं है, जैसें चोर चोरी करता है सो
चोरी तो आपही करता है, परंतु उस चोरीका फल (बंदीखाना) भोगना
आप नहीं भोग सक्ता, कोइ दूसरा बंदीखानेमें डालने वाला चाहियें

उत्तरपक्ष—यहभी तुमारा कहना असत् है, क्योंकि जब जीव, धर्म
अधर्म करने समर्थ है, तो फेर फल भोगनेमे समर्थ क्युं नही? इस सं
सारमें जैसा जैसा जो जीव पाप, धर्म करता है, तैसा तैसा पाप धर्मके
फल भोगनेमें निमित्तभी बन जाता है, जैसे चोर चोरी करता है, तिस
चोरीका फल राजा देता है, तथा कुष्ट हो जाता है, तथा शरीरमें कीडे
पड जाते हैं, तथा अग्निमें जल मरता है, तथा पाणीमें डूब मरता है,
तथा खड्गसें कट जाता है, तथा तोप बंदूककी गोला गोलीसें मर जाता
है, तथा हाट, हवेली, औ माटीके खानेके नीचें दब कर अनेक तरेंके संक
ट भोग कर मर जाता है, निर्धन हो जाता है, इत्यादि असंख्य निमित्तों
से अपणे करे कर्मके फलकू भोक्ता है इहां बिना निमित्तके दूसरा ईश्वर
फलदाता कोइ नहीं दीखता, ऐसें ही नरक स्वर्गादि परलोकमें भी शुभा
शुभ कर्म फल भोगनेके असंख्य निमित्त है जे कर कहोगे जो परस्त्री गमन
करनेसें इत्यादि पापफलमें क्या निमित्त मिलेगा, जिसके जोगसें फल भो
गना होगा? यह बात तो में (ग्रंथकार) नहीं जानता, जो इस पुण्य पा
पका यह निमित्त तुमकू मिल कर फल होगा, क्युंकि मेरेकू इतना ज्ञान
नहीं जो ठीक ठीक पूरा पूरा निमित्त बता सकू? परंतु इतना कह सक्ता
हू कि जो जो जीव पुण्य पाप करते है, उनके फल भोगनेमें अवश्य कोइक
निमित्त जरूर होगा अरु इस तरेंसे फल भोगेगा, यह निमित्त मिलेगा,
अमुक देशमें, अमुक कालमें, इत्यादि सर्व प्रत्यक्षपणे तो अर्हंत, भगवंत

रोमेंनी जीवोंकूं प्रवृत्त करता है.तब तो ईश्वरकू सर्वज्ञ श्रोर वीतराग क्यों कर कहना चाहिये ?

पूर्वपक्ष —ईश्वर (नगवान) तो सर्व जीवोंकू शुन कर्म करनेहीमें प्रवृत्त करता है, इस वास्ते नगवान् सर्वज्ञ श्रोर वीतरागही है श्ररु जो जीव अधर्म करनेवाले है, उनकू असत् व्यवहारमें प्रवृत्त करके पीछे नरकपात करकें उनकू फल देता है, जो फेर वो जीव इस दुःखमें मरता हुआ फेर पाप न करे, इस वास्ते उचित फल देणे करके ईश्वर (नगवान) विवेकवान् श्ररु वीतराग सर्वज्ञ है, उसमें कोइनी दूषण नहीं है

उत्तरपक्ष —यहनी तुमारा कहना विना विचारेका है,क्योंकि प्रथम पाप करनेमेंनी तो ईश्वरही प्रवृत्त करता है, ईश्वर विना दूसरा तो कोइ प्रेरक है नहीं श्ररु जीव श्राप तो कुछ कर सक्ता है नहीं क्योंकि जीव तो अज्ञानी है पापमें वा धर्ममें श्राप नहीं प्रवृत्त हो सक्ता,तो फेर प्रथम पाप करानेकू जीवोंकू प्रवृत्त करनां, पीछे नरकमें मालके उस जीवकू फल नुक्तानां, पीछे धर्ममें प्रवृत्त करनां, क्या यही ईश्वरकी ईश्वरता, श्ररु विचार पूर्वक करणा है ?

पूर्वपक्ष —ईश्वर (नगवान्) जीवोंकू कदेइ नहीं प्रवृत्त कर्त्ता, किंतु जीव श्रापही प्रवृत्त होता है, तब तो जो जीव जैसा जैसा कर्म करता है, उस कर्मके वशसे ईश्वर (नगवान्) नी तैसा तैसा फल उन जीवोंकू देता है, जैसें राजा राज करता है, परंतु राजा चोरकू ऐसे नहीं कहता जो तू चोरी कर, किंतु चोरी करनेकी मनाइ तो करता है फेर जे कर वो चोर जो श्रापही चोरी करेगा, तब दंम तो राजा देवेगा, तैसे ईश्वर (नगवान्) पाप तो नहीं कराता, परंतु पाप करने वालोंकों दंम देता है

उत्तरपक्ष —यहनी तुमारा कहना अयुक्त है, क्योंकि दूसरे जो राजा हैं,सो चोरोंकू निषेध करनेमें समर्थ नहीं हैं, क्योंकि कैसाही उग्र (कठिन) हुकम वाला राजा होवें श्रोर मन वचन काया करकें कितनाही चोरी आदिक पाप कर्म मने करा चाहे, परंतु लोक चोरी आदिक पापकर्म कदापि सर्वथा न छोडेगे, श्ररु ईश्वर (नगवान्) तो सर्व शक्तिमान् तुम मानते हो, तो फेर सर्व जीवोंकू पाप करनेमें प्रवृत्त होतोंकू क्यों नहीं मने करता ? जब ईश्वर जीवोंकू पाप करतां मने नहीं करता, तब तो ईश्वरही जीवोंपासों पाप कराता है, फेर उनकूं दंम देता है, तो फेर वोही

किसीकूं स्वर्गमें उत्पन्न करता है, जब वो जीव नाचते, कूदते, रोते, पीट ते, विलाप करते हैं, तब ईश्वर अपणी रची हुइ बाजीका तमासा देखता है, इस वास्ते जगत् रचता है

उत्तरपक्ष—जब ऐसे है, तब तो ईश्वर प्रेक्षावान् नहीं है, क्युं कि उसकी तो क्रीडा होती है, अरु एक जीव तडफ तडफके महा करुणा स्पद हो कर मर रहे है तो फेर ईश्वरकू दयालु माननां यह कैसी तुमा री अज्ञानता है ! क्योंकि जो महा पुरुष दयालु सर्वज्ञ होते है, वे कदा पि किसी जीवोंकूं दुःख दे कर क्रीडा नहीं करते, तो फेर ईश्वर क्रीडार्थी कैसें हो सक्ता है ? तथा क्रीडा जो है, सो सरागीकू होती है अरु ईश्व र (नगवान) तो वीतराग है, तो फेर ईश्वर (नगवानकू) क्रीडा रसमें मग्न होणा कैसें सनवे ?

पूर्वपक्ष—हमारा जो ईश्वर है सो रागी द्वेषी है, इस कारणसे उसमें क्रीडा करणेका सनव हो सक्ता है

उत्तरपक्ष—तब तो तुमने मुख चोपडनेके बदले आपणा मुख काला कर लीया, क्योंकि जब रागी द्वेषी होगा, तब तो ईश्वर शेष जीवोकी तरें सरागी हुवा, वीतराग न हुवा, अरु सर्वज्ञनी न हुवा, तब तो हमारे सरी खा हुवा फेर जगत्का रचने वाला क्यों कर हो सक्ता है ?

पूर्वपक्ष—हम तो ईश्वरकू राग द्वेष सयुक्त सर्वज्ञ मानते है, इस वास्ते सर्व जगत्का कर्त्ता है

उत्तरपक्ष—इस तुमारे कहनेमे कोइनी प्रमाण नहीं है जिस प्रमाण सें ईश्वर रागी, द्वेषी, सर्वज्ञ सिद्ध होवे ?

पूर्वपक्ष—ईश्वरका स्वनाव ही ऐसा है, जो रागी द्वेषीनी होनां अरु सर्वज्ञनी रहनां, स्वनावमें कोइ तर्क नहीं हो सक्ती जैसें अग्नि तो दा हक है, परतु आकाश दाहक क्यों नहीं ! इस प्रश्नमें उत्तर यह दीया जायगा जो अग्निमें दाहक स्वनाव है, आकाशमें नहीं इसी तरें ईश्वर नी स्वनावसेंही रागी, द्वेषी अरु सर्वज्ञ है

उत्तरपक्ष—ऐसें तो कोइक वादी नी कह सक्ता है जो यह हमारे सन्मुख गर्दन खडा है, सो सर्व जगत्का रचने वाला है जे कर कोइ वादी पूछेकि किस हेतुसें यह गर्दन जगत्का रचने वाला है ? तब तो तिसकू

(परमेश्वर) सर्वज्ञके ज्ञानमे जासन होता है. निमित्त विना कोइनी फल न हीं नोग सक्ता, इस वास्ते ईश्वर फलदाता कल्पना व्यर्थ है तथा यहनी बुद्धिमानोका कहना है कि जो रोटी पका तो सक्ता है, परंतु आप खा नही सक्ता, तथा ईश्वरकू फलदाता कल्पना करनेसे एक औरनी कलंक तुम परमेश्वरकू लगाते हो, जैसे किसी पुरुषकू किसी दूसरे पुरुषने खङ्गा दि शस्त्रसें मारे, तब तो मरने वालेने जो संकट पाया, सो किसके पा गसे? किसकी प्रेरणासे पाये? जे कर कहोगे ईश्वरने उस शस्त्र वालेकू प्रेरा, तब तिसने उसकू मारा, तो फेर उस मारने वालेकू फासी क्यु मिलती है? क्या ईश्वरका यही न्याय है, जो प्रथम पुरुषके हाथमें उसकू मरवा मालना, अरु पीछे फेर उस मारने वालेकू फासी देना, इस तुमारी सम ऊने ईश्वरकू बडा अन्यायी सिद्ध करा है जे कर कहोगे ईश्वरकी प्रेरणा के बिना ही उस पुरुषने दूसरे पुरुषकू मारा, अरु डुःखदीना, तब तो नि मित्तहीसें सुख डुःखका नोगना सिद्ध हो गया, फेरनी ईश्वर फलदाता कल्पना करना यह अल्प बुद्धिवालोका काम है, तथा हे ईश्वर वादी! तुमकू एक और बात पूछते है कि जो धर्मका फल है कि उन्मत्त देवांगना ओंके सुकुमार शरीरका स्पर्श करना सो तो जीवोंकू सुखका कारण है, इस वास्ते ईश्वरने यह फल तो जीवोंकू दीया परंतु जो अधर्मका फल घोर न रकके कुंममें पडनां, नाना प्रकारके डुःख (संकट) त्रास कुंजीपाक चर्मोत्क र्तन, अग्निमें ज्वलना, इत्यादि महा डुःख ईश्वर उस जीवकू क्यों देता है?

पूर्वपक्ष –उस जीवने जो पाप करे थे, उनका फल उस जीवकू जरू र होनां चाहियें इस वास्ते ईश्वर फल देता है

उत्तरपक्ष –इस तुमारे कहनेसे तो ईश्वर व्यर्थ ही जीवोंकूं पीडा देता है, क्योंकि जब ईश्वर उस जीवकू पापका फल न देगा, तब तो जीव क र्मका फल आप तो नोग सक्ता नहीं फेर नतो शरीर धारेगा अरु नवी न पापनी न करेगा, फेर बैठे बेगार्ये ईश्वरकूं क्या गुदगुदी उठती है जो फेर उन जीवोंकू नरकमें माल देता है? जो मध्यस्थ नाव वाला अरु प रम दयालु होता है, वो किसी जीवकू कन्नी निरर्थक पीडा नहीं देता

पूर्वपक्ष –ईश्वर (नगवान्) अपणी क्रीडाके वास्ते किसीकूं नरकमें माल ता है, किसीकू तिर्यंचयोनिमें उत्पन्न करता है, किसीकू मनुष्य जन्ममें,

किसीकूं स्वर्गमें उत्पन्न करता है, जब वो जीव नाचते, कूदते, रोते, पीटते, विलाप करते है, तब ईश्वर अपणी रची हुइ बाजीका तमासा देखता है, इस वास्ते जगत् रचता है

उत्तरपक्ष–जब ऐसे है, तब तो ईश्वर प्रेक्षावान् नहीं है, क्यु कि उसकी तो क्रीडा होती है, अरु एक जीव तडफ तडफके महा करुणास्पद हो कर मर रहे है तो फेर ईश्वरकूं दयालु मानना यह कैसी तुमारी अज्ञानता है? क्योंकि जो महा पुरुष दयालु सर्वज्ञ होते हैं, वै कदापि किसी जीवोकू दुःख दे कर क्रीडा नही करते, तो फेर ईश्वर क्रीडार्थी कैसें हो सक्ता है? तथा क्रीडा जो है, सो सरागीकू होती है अरु ईश्वर (भगवान) तो वीतराग है, तो फेर ईश्वर (भगवान्कू) क्रीडा रसमें मग्न होणा कैसे संभवे?

पूर्वपक्ष–हमारा जो ईश्वर है सो रागी द्वेषी है, इस कारणसे उसमें क्रीडा करणेका संभव हो सक्ता है

उत्तरपक्ष–तब तो तुमने मुख चोपडनेके बदले आपणा मुख काला कर लीया, क्योंकि जब रागी द्वेषी होगा, तब तो ईश्वर शेष जीवोकी तरें सरागी हुवा, वीतराग न हुवा, अरु सर्वज्ञभी न हुवा, तब तो हमारे सरीखा हुवा फेर जगत्का रचने वाला क्यों कर हो सक्ता है?

पूर्वपक्ष–हम तो ईश्वरकू राग द्वेष संयुक्त सर्वज्ञ मानते है, इस वास्ते सर्व जगत्का कर्त्ता है

उत्तरपक्ष–इस तुमारे कहनेमे कोइभी प्रमाण नहीं है जिस प्रमाणसें ईश्वर रागी, द्वेषी, सर्वज्ञ सिद्ध होवे?

पूर्वपक्ष–ईश्वरका स्वभाव ही ऐसा है, जो रागी द्वेषीभी होनां, अरु सर्वज्ञभी रहनां, स्वभावमें कोइ तर्क नही हो सक्ती जैसें अग्नि तो दाहक है, परंतु आकाश दाहक क्यों नहीं? इस प्रश्नमें उत्तर यह दीया जायगा जो अग्निमें दाहक स्वभाव है, आकाशमें नहीं इसी तरें ईश्वर भी स्वभावसेंही रागी, द्वेषी अरु सर्वज्ञ है

उत्तरपक्ष–ऐसें तो कोइक वादी भी कह सक्ता है जो यह हमारे सन्मुख गधा खडा है, सो सर्व जगत्का रचने वाला है जे कर कोइ वादी पूछेकि किस हेतुसें यह गर्दभ जगत्का रचने वाला है? तब तो तिसकू

ऐसा उत्तर दीया जायगा जो इस सर्वज्ञका रागादि ही ऐसा है, जो ज गतकूं रचके राग द्वेष वाला सर्वज्ञ हो कर फेर सर्वज्ञ बन जाता है. इसी तरें महिष आदिक सर्व जीव जगतके कर्त्ता वादी सिद्ध कर देवेंगे, तब तो ईश्वर क्या हुआ जो कुछ अपने मनमे मान्या सो बना लीया, यह तो ईश्वरकूं बडा कलंक लगाना है इस हेतुसे ईश्वर (जगवान्) सर्वज्ञ अरु वीतराग है, फेर क्रीडाके अर्थे कभी जगतकूं न रचेगा तथा हे ईश्वरवा दी! तेरे कहनेमे जब ईश्वरनेही सर्व कुछ रचा है तब तो सर्व तीनसो त्रेशठ पाखम मतके सर्व शास्त्रभी ईश्वरहीने रचे हैं. अब शास्त्र सर्व आ पसमें विरुद्ध है, तब तो अवश्य कितनेक शास्त्र सत्य अरु कितनेक अ सत्य है. तब तो झूठ अरु सत्य दोनोंका उपदेशक ईश्वर ही ठहरा, तब तो ईश्वर आपही सर्व मतावलंबीयोंकों आपसमे लडाता है. हजारो लाखो मनुष्य इन मतोके कगडोमें मर जाते है, तब तो ईश्वरने शास्त्र क्या रचे? एक जगतमें बडा उपद्रव रचा, ऐसे झूठे सच्चे शास्त्र रचनेवालेकूं महा धू र्त कहनां चाहिये, नतु ईश्वर जे कर कहोगे ईश्वरने तो सच्चे शास्त्र ही रचे हैं, झूठे नहीं रचे झूठे तो जीवोनें आपही बना लीये है, तब तो ईश्वर ने जगत् जी नही रचा होगा, जगत् जी जीवोने ही रचा होगा, क्योंकि ईश्वर सर्व वस्तुका कर्त्ता सिद्ध हुआ नही।

तथा तुमने जो पूर्वे दूसरा अनुमान करा था, कि जो जो आकार वाली वस्तु है, सो सो सब बुद्धिवालेकी रची हुइ है, जैसे पुराना कूवा देखेंगे यद्यपि कारीगर तहां नहींजी उपलब्ध होता, तोजी कारीगर ही कर्त्ता अनुमानसें सिद्ध होगा, जैसें नवे कूवेका कर्त्ता उपलब्ध होता है

उत्तरपक्ष—यह तुमारा कहनां समीचीन नहीं, क्यों कि आकार वाला हेतु, तुमारा सध्या, बादल, सर्प्पकी वबी प्रमुख संस्थान वालोमें है, परंतु बुद्धिवाला कर्त्ता कोइ नहीं है जे कर कहोगे बादल, इंद्रधनुप, सर्प्पकी वबी प्रमुख सगाण वाले बुद्धिमान्के करे हुये नहीं माने जाते है तैसें ही पृथिवी, पर्वत जी बुद्धिमान्के करे हुये नहीं मानने चाहियें

इन पूर्वोक्त प्रमाणोसें किसी तरें जी ईश्वर जगतका कर्त्ता सिद्ध नहीं होता अब जे पुरुष, ईश्वरकू जगतका कर्त्ता मानते है, उनसें हम यह कहेते है, कि जब तक इन हमारी युक्तियोंका उत्तर सर्वथा न दीया जावे,

तब ताइं ईश्वरकूं जगत्का कर्त्ता न मानना चाहियें जब कोइ ईश्वरवादी इन युक्तियोंका उत्तर, पूरा दे देवेगा, तब तो हमनी जगत्का कर्त्ता ईश्वर मान लेवेंगें, अन्यथा कन्नी नहीं माना जायगा

पूर्वपक्ष—ईश्वर तो जगत्का कर्त्ता सिद्ध नहीं होता, परंतु एक ईश्वर है असा तो सिद्ध होता है कि नहीं?

उत्तरपक्ष—ईश्वर एकही है, यह बात सिद्ध करनेवाला कोई प्रमाण नहीं है, तब तो ईश्वर एक सिद्ध कैसें होवे?

पूर्वपक्ष—ईश्वरके एकत्व सिद्ध होणेमें यह प्रमाण है, कि जहां बहुते एकठे हो कर एक कामकू करने लगते हैं, तब तो अन्य अन्य मति होणेसें एक कार्यन्नी नहीं बन सक्ता, असेही जब ईश्वर अनंत होंगे, तब तो सृष्टि प्रमुख एकही कार्यके करनेमे न्यारी न्यारी मति होणेसें असमंजस कार्य उत्पन्न होवेगा, इस वास्ते ईश्वर एकही होना चाहियें

उत्तरपक्ष—इस तुमारे प्रमाणसें तो ईश्वर, एक नहीं सिद्ध होता है, क्यों कि ईश्वर तो किसी वस्तुका कर्त्ता उक्त प्रमाणोंसें सिद्ध नहीं होता है, तथा एक मधुछत्तेके बनानेमें सर्व मक्षीयोंका एक मता तो हो जाता है,अरु ईश्वर, परमात्मा, निर्विकार, निरुपाधिक, ज्योति स्वरूपोंका एक मता नहीं हो सक्ता, यह बडे आश्चर्यकी बात है! क्या तुमने ईश्वरोंकू कीडों सेंन्नी बुद्धिहीन, अनिमानी, अरु अज्ञानी बना दीया जो उन सर्वका एक मता नहीं हो सक्ता?

पूर्वपक्ष—मक्षिका जो बहुत एकठी हो कर एक मधुछत्ता आदिक कार्य बनाती हैं, तहांन्नी एक ईश्वरहीके व्यापारसें एक मधुछत्ता बनता है

उत्तरपक्ष—तब तो घडा बनाना, चोरी करना, परस्त्रीगमन करना, इत्यादिक सर्व काम, ईश्वरके व्यापारसें बने सिद्ध होंगे, अरु जीव सर्व, अकर्त्ता सिद्ध हो जावेंगे, फेर पुण्य पापका फल किसकू होगा? अरु नरक स्वर्गमें जीव, क्यो न्नेजे जायगे

पूर्वपक्ष—जीव, कुन्नारादिक चोरादिक सर्व स्वतंत्रतासें अपना अपना कार्य करते हैं, यह प्रत्यक्ष सिद्ध है

उत्तरपक्ष—क्या मक्षीयोंहीने तुमारा कुछ अपराध करा है, जो उनकू स्वतंत्र नहीं कहते हो? इस तुमारे एक ईश्वरके माननेसे तो असान्नी प्र

तीत होता है,जे कर अनंत ईश्वर माने जावें, तब जो कदाचित् एक सृष्टि रचनेमें विवाद हो जावे, तो फेर उस विवादकूं दूर कौन करे? शिर, पंच तो कोइ है नहीं; तथा एक ईश्वरकूं देख के दूसरा ईश्वर ईर्ष्या करेगा, जो यह मेरे तुल्य प्रभु है? इत्यादिक अनेक उपद्रव उत्पन्न हो जावेंगे, इस वास्ते ईश्वर एकही मानना चाहिये, यहभी तुमारी समज अज्ञानरूपी घुणकी खाइ हुइ है, क्यु कि जब ईश्वर (भगवान्) सर्वज्ञ है, तब तो सर्वज्ञ के ज्ञानमे एकही सरीखा भान होना चाहियें, तो फेर विवाद क्यों कर होगा? तथा ईश्वर तो राग, द्वेष, ईर्ष्या, अभिमानादि सर्व दूषणोसें रहित है,तब तो दूसरे ईश्वरकू देख कर ईर्ष्या अभिमान क्यों कर करेंगे? जे कर ईश्वर हो करभी आपसमें विवाद,झगडे,ईर्ष्या,अभिमान करेंगे, तो तिन पामरोंकू ईश्वरही कैसे माना जायगा? जब जगत्कर्त्ताही ईश्वर सिद्ध नहीं होता, तब तो विवाद झगडाही ईश्वरोंका आपसमें काहेकू होगा? इस वास्ते ईश्वर अनंते माननेमें कुछभी दूषण नहीं तथा "सर्वगतत्व" ईश्वर सर्व व्यापक है, यहभी जो मानते है, सो भी प्रामाणिक नहीं है, क्योंकि जब ईश्वरकू सर्व व्यापक, वादी मानते है, तब शरीर करकें व्यापक मानते है? वा ज्ञान स्व रूप करके व्यापक मानते हें? जे कर शरीर करके ईश्वरकू व्यापक मानेंगे, तब तो ईश्वरका शरीरही सर्व जगा समा जायगा, दूसरे पदार्थोंके रहने वास्ते कोइभी अवकाश न मिलेगा? इस वास्ते ईश्वर देह करकें तो सर्वत्र व्यापक नहीं है

प्रश्न —क्या ईश्वरकेभी शरीर है, जो तुम ऐसे विकल्प करते हो?

उत्तर —हे भव्य! ऐसेभी इस जगत्में मत है, जो ईश्वरकू देहधारी मानते हैं

प्रश्नः—वो कौनसे मत है, जिनोंने शरीरधारी ईश्वर माना है?

उत्तर —तौरेतनामा ग्रंथ है, तिसमें ऐसें लिखा है, जो ईश्वरने अबर हामके यहां रोटी खाइ, इस लिखनेसें, तथा याकूबके साथ कुस्ती करी, इस लिखनेसें प्रतीत होता है जो ईश्वर देहधारी है तथा शंकरदिग्विजयके दूसरे प्रकरणमें शंकरस्वामीका शिष्य, आनंदगिरि जो कि इसी ग्रंथ की आदिमें लिखता है, जो मैं सर्वज्ञ हु सो लिखता है कि जब नारदजी ने देखा की इस लोकमें बहुत कपोलकल्पित मत उत्पन्न हो गये हैं, अरु सनातन धर्म लुप्त हो गया है, तब तो नारदजी शीघ्रही ब्रह्मा

जीके पास पहुचे, अरु जा कर कहने लगे कि हे पिताजी! तुमारा मत तो प्राय नहीं रहा, अरु लोकोने अनेक मत बना लीयें है. सो इस बातका कुछ उपाय करना चाहियें. तब तो ब्रह्माजी बहुत काल तांइ चिंता करके पुत्र, मित्र, भक्त जनोंकूं साथ ले कर अपणे लोकसे चल कर शिवलोकमें प्रवेश करते हुये आगें क्या देखते है कि जैसे मध्यान्हमें कोटि सूर्योका तेज तथा कोटि चंद्रमा समान शीतल, और पांच जिसके मुख है, चन्द्रमा मुकुट है, बिजलीवत् पिंगल जटाका धारक, औ पार्वती जिसके वामाङ्ग अंगमें है, सर्वका ईश्वर महादेव देखा फेर ब्रह्माजीने नमस्कार करकें स्तुति करी, और कहते हुये कि जो महादेव, सर्वज्ञ, सर्वलोकेश, सर्व साक्षी, सर्वमय, सर्वकारण, इत्यादि इस लिखनेसें प्रगट प्रतीत होता है जो ईश्वर देहधारी है, जे कर देहधारी ईश्वर न होवे, तो फेर पांच मुख कैसे होवे? इस लिखनेसें ईश्वर शरीर रहित नहीं सिद्ध हो सक्ता है अब जे कर शरीरधारी ईश्वर होवे तब तो इस लोकमें एकिला ईश्वरही व्यापक हो कर रहेगा, दूसरे पदार्थोके वास्ते कोइ दूसरा लोक रहनेकू चाहियें? जे कर कहोगे ज्ञानात्मा करके ईश्वर सर्व व्यापक है, तब तो सिद्ध साध्य नहीं है, हमभी तो ज्ञानस्वरूप करकें भगवान्कूं सर्वव्यापी मानते हैं, परन्तु जे कर तुमारे वेदसे न विरोध होवे? क्युकि वेदोमें शरीर करकेही सर्व व्यापक कहा है॥ तथाच॥ " विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पादित्यादि श्रुते " इस श्रुतिसें सिद्ध है, जो ईश्वर शरीर करकें सर्व व्यापक है, फेर तो पूर्वोक्त दूषण है, इस वास्ते ईश्वर व्यापक नहीं तथा तुम कहते हो जो ईश्वर सर्वज्ञ है, परंतु तुमारा ईश्वर सर्वज्ञ भी नहीं क्यों के हम जो ईश्वर सृष्टिकर्त्ताके खंडने वाले है, सो उससें विपरीत चलते हैं, फेर हमकू उसने क्यों रचा? जे कर कहोगे जन्मांतरोंमें उपार्जित जो जो तुमारे शुभाशुभ कर्म, तिनोंके अनुसारसें तुमकू ईश्वर फल देता है, तो फेर तुमारे कहनेहीसें ईश्वरके स्वतंत्रपणेकूं जलांजलि दीनी गइ, क्यों कि जब हमारे कर्मोके बिना ईश्वर फल नहीं दे सक्ता, तब तो ईश्वरके कुछ अधीन नहीं, जैसें हमारे कर्म होंगे, तैसा हमकू फल मिलेगा जे कर कहोगे ईश्वर जो इछे, सो करे, तब तो क्यों न जानता है जो ईश्वर क्या करेगा, धर्मीयोंकू नरकमें, पापीयोंकू स्वर्गमें भेजेगा? जे कर

कहोगे परमेश्वर न्यायी है, जैसा जैसा जो करेगा, उसकूं वैसा वैसा फल देता है, तो फेरजी वोही परतंत्रतारूप दूषण ईश्वरमें लगता है, तथा ईश्वर नित्य है, यह जी कहना उनका अपणे घरहीमें सुंदर लगता है, क्यों कि नित्य तो उस वस्तुकूं कहते है, जो तीनो कालोंमें एक रूप रहै, जब ईश्वर नित्य है, तो क्या जगत्को बनानेवाला स्वनाव है वा नहीं? जे कर कहोगे ईश्वरमें जगत् रचनेका स्वनाव है, तब तो ईश्वर निरंतर जगतकूं रचाही करेगा, कदापि रचनेमें न बंध होगा, क्योंकि जगत्के रचनेका स्वनाव तो ईश्वरमें नित्य है जेकर कहोगे ईश्वरमें जगत् रचनेका स्वनाव नहीं है, तब तो ईश्वर कदापि जगत्कूं न रचेगा क्योंकि जगत् रचनेका स्वनाव ईश्वरमें हैही नहीं. तथा जे कर ईश्वरमें एकांत नित्य जगत् रचनेका स्वनाव है, तब तो प्रलय कदेइ न होगी, क्यों कि ईश्वरमें प्रलय करनेका स्वनाव नहीं है जे कर कहोगे ईश्वरमें रचनेकी अरु प्रलय करनेकी दोनोही शक्तियां नित्य है, तब तो न कदापि जगत् रचा जायगा अरु न कदेइ प्रलय होगी, क्योंकि दो शक्तियां परस्पर विरुद्ध एक जगे एक कालमें कदापि नहीं रहेगी, जे कर रहेगी, तब तो जगत् न रचा जावेगा, न प्रलय करा जयगा, क्योंकि जिस कालमें रचने वाली शक्ति रचेगी, तिसी कालमें प्रलय करनेवाली शक्ति प्रलय करेगी, अरु जिस कालमें प्रलयशक्ति प्रलय करेगी, तिसी कालमें रचने वाली शक्ति रच देवेगी, ऐसे जब शक्तियोंका परस्पर विरोध होगा, तब तो न जगत् रचा जावेगा, न प्रलय कीया जावेगा, तब तो हमाराही मत सिद्ध हो गया, क्योंकि न किसीने जगत् रचा है, अरु न इस जगत्की कदेइ प्रलय होती है, तातें यह जगत् अनादि, अनंत सिद्ध हो गया जे कर कहोगे ईश्वरमें दोनोंही शक्तियां नहि है, फेरजी तो जगत् न रचा, न प्रलय किया जायगा, तब तो अनादि, अनंत सिद्ध हुवा जेकर कहोगे ईश्वर जब चाहता है, तब रचनेकी इच्छा कर लेता है, अरु जब प्रलय करता है, तब प्रलयकी इच्छा कर लेता है, इसमें क्या दूषण है? तब तो ईश्वरकी शक्तियां अनित्य होवेगी, सो सुखेन अनित्य होवे इसमें हमारी क्या हानी है? जे कर ईश्वरकी शक्तियों अनित्य है, तब तो ईश्वर जी अनित्य हो जावेगा, क्यों कि ईश्वर अपणी शक्तियोंसें अनेद है जे कर कहोगे शक्तियां ईश्वरसें

नेदरूप है, तवनी शक्तियाके नित्य होणेसें जगत् न रचा जायगा, न प्रयत्न कीया जायगा, अरु ईश्वर अकिंचित्कर सिद्ध हो जावेगा, क्यों कि जब ईश्वर सर्व शक्तियोंसें रहित है, तव तो ईश्वर कुछनी करने समर्थ नहीं है, फेर जगत् रचनेमें क्यों कर समर्थ होवेगा? अरु शक्तियोंका उपादान कारण कौन होवेगा? अरु ईश्वरका अनाव हो जावेगा. क्योंकि जब ईश्वरमें शक्तिही कोइ नहीं, तव तो ईश्वर काहेका? वो तो आकाशके फूल समान असत् है, फेर जगत्का कर्त्ता किसकू मानोगे?

अथाग्रे खरड ज्ञानीयोंका ईश्वरवाद लिखते हैं खरडज्ञानी कहता है, कि जगत्में जितने पदार्थ है, उनके विलक्षण विलक्षण सयोग, आकृति, तथा गुण, और स्वनाव, दीख पडते हें, जे कर इनका तथा इनके नियमोंका कर्त्ता कोइ न होगा, तो ये नियम कनी न बनेंगे, क्योंकि जड पदार्थोंमें तो मिलने वा जुदे होनेकी यथावत् समर्थता नहीं, इस हेतुसें ईश्वर कर्त्ता अवश्य होना चाहियें

उत्तर –प्रथमही हम जगत् कर्त्ता ईश्वरका खमन कर चूके है, तो फेर आप जगत् कर्त्ता क्यों कर मानते है? अरु जो तुमने लिखा है कि जगत्के पदार्थोंमे न्यारे न्यारे स्वनाव दीख पडते है, इस्सें ईश्वर सिद्ध होता है, इस कहनेसें ईश्वर जगत्कर्त्ता नहीं सिद्ध होता, क्यों कि सर्व पदार्थोंमें अनत शक्तियां हैं सो अपणी अपणी शक्तियोसें सर्व पदार्थ अपणें अपणें कार्यकू करते हैं, इनके मिलनेमें निमित्त यह है, एक तो काल, दूसरा पदार्थका स्वनाव, तीसरी नियती, चउथा जीवोंका कर्म, पांचवा जीवोंका उद्यम, इन पूर्वोक्त पाचों निमत्त बिना कोइनी और निमित्त नहीं है, इन पाचोंका स्वरूप, आगें चल कर लिखेंगे?

प्रत्यक्षमेंनी इन पांचोंके निमित्तसें ही सर्व कुछ उत्पन्न होता है, जैसें बीजांकुर जव बीज वोया जाता है, तब कालही यथानुकूलही होना चाहियें, अरु बीज तथा जल, पृथिवी, इत्यादिकोंका स्वनावनी अवश्य होना चाहियें तथा नियतीनी जो जो पदार्थोंका स्वनाव है, तिन पदार्थोंका तथा तथा जो परिणाम होता है, तिसका नाम नियती है, सोनी कारण है तथा अष्टविध कर्मनी कारण है तथा पुरुषाकार (जीवोंका उद्यमनी) कारण हैं ए पांचों वस्तु अनादि है, कीसीनेनी प्रथम रची

नहि है, क्यों कि जो जो वस्तुका स्वभाव है, सो सो सर्व अनादिसें है जे कर वस्तुमें अपणा अपणा स्वभाव न होवेगा, तब तो वस्तुही कोइ सत्रूप न रहेगी सर्व शशशृंगवत् असत हो जायगी, अरु प्रत्यक्ष जो दृष्ट पृथिवी, आकाश, सूर्य, चंद्रमा, आदि पदार्थ दीख पडते है, सो इसी तरे अनादि रूपसे सिद्ध है, अरु पृथ्वी उपर जो जो रचना दीखती है, सो सर्व प्रवाहमे ऐसेंही चली आती है, अरु जो जो जगत्के नियम है, वे सर्व इन पांचो निमित्तोके विना नहीं हो सके है इस वास्ते सर्व पदार्थ अपणे अपणे नियममे है, जे कर तुम द्रव्यकी शक्तिकू ईश्वर मान लोगे, तब तो हमारी कुछ हानी नहीं, क्यों कि हम द्रव्यकी अनादि शक्तिका नाम ईश्वर रख लेवेंगे, अरु तुम अनादि द्रव्यकी शक्ति कू ईश्वर मान लेवेंगे, तव तो तुमारा हमारा विवाद दूर हो जावेगा अरु तुमने लिखा जो जडमें यथावत् मिलनेकी शक्ति नहीं है, यहभी तुमारा कहना मिथ्या है, क्यो कि जगत्में अनेक तरेके जड पदार्थ आपसे आप ही इन पूर्वोक्त पांच निमित्तोसें आपसमें मिल जाते है, जैसे सूर्यके किरणा वादलोंमें पडती है, तब इंद्रधनुष वन जाता है, तथा सध्याका होनां, पांच वर्णके वादलोकी चिनी हुइ घटा, चंद्रमा सूर्यके गिरद कुंमला, आकाशमें पवनोंके मिलनेसें जल, और अग्निका उत्पन्न होनां, अरु वर्षाके होनेसें उन पूर्वोक्त पांचों निमित्तोसें अनेक प्रकारकें घास तृणादि अनेक प्रकारकी वनस्पति, तथा अनेक प्रकारके कीट पतंग प्रमुख जीव उत्पन्न हो जाते हैं, इन पांचो निमित्तोंके बिना किसी वस्तुको वनाता हुआ ईश्वर नहीं दिखलाइ देता, जरा पक्षपात छोड कर विचार कर देखो के, ईश्वर कर्त्ता किस तरेंसे हो सक्ता है? क्यों कि पृथिवी, आकाश, चंद्र, सूर्य, इत्यादिक तो द्रव्यार्थिक नयके मतसें अनादि हैं, फेर इनके वास्ते पूछना कि यह किसने बनाये हैं? तो फेर हम पूछते हैं, ईश्वर किसने बनाया? जे कर कहोगे ईश्वर तो, किसीनेही बनाया नहीं, वो तो अनादिसें बना बनायाही है, तो फेर पृथिवी प्रमुख कितनेक पदार्थभी बने बनाये अनादिसेंही है, ऐसे माननेमें क्यु लज्जा करते हो?

खरड ज्ञानी कहते है की स्वभावसें जगत्की उत्पत्ति जो मानते हैं, उनके मतमें यह दोष आवेंगे यह पृथिवी स्वभावसें होती, तो इसका कर्त्ता और

नियंता न होता, इस पृथिवीसें निन्न दशमे कोश अंतरिक्षमें दूसरा आपसे आप पृथिवी बन जाती, सो आज तक नहीं बनी, इस्सें जाना जाता है, जो ईश्वर कर्त्ता है

उत्तर –तुमकू कुछ विचार है, वा नहीं? जें कर है, तो पूर्वोक्त तुमारा कहनां अयुक्त है, क्यों कि जब हम तो यह कहते है, जो पृथ्वी आदिक अनादि है, किसीनें नहीं बनाये अरु तुम कहते हो आकाशमें ऊंची दश कोशके अंतरे दूसरी पृथिवी क्यों नहिं बन जाती? अब विचारो यह तुमारा प्रश्न मूर्खताइका है, वा नहीं? तथा इस प्रश्नके उत्तरमें जो कोइ तुमकू पूछे, जो ईश्वर स्वनावसें बना होवे, तब तो ईश्वरसें अलग दूसरा ईश्वर क्यों नहीं उत्पन्न होता? जे कर कहोगे ईश्वर तो अनादि है, वो क्यों कर नवा दूसरा ईश्वर बन जावे? इस तरे हमनी कह सक्ते हें जो पृथ्वी अनादि है, नवीन नहीं बनती, तो फेर दश कोश आकाशमें क्यों कर बन जावे?

पूर्वपक्ष –जे कर आपसें आपही वस्तु बनती होवे, तब सर्व परमाणु एकठे क्यों नहीं मिल जाते? अथवा एकेक हो कर विखर क्यों नहीं जाते?

उत्तरपक्ष –हमारी कुछ आज्ञा जड नहीं मानते है, जो हमारे कहेसें एकठे होकर एकरूप हो जावे, अथवा एक एक हो कर विखर जावे, पूर्वोक्त पांच निमित्त मिलनेके जहां होंगे, तहां मिल जावेंगे, जहां निमित्त नहीं होवेंगें, तहां नहीं मिलेंगे

पूर्वपक्ष –सर्व परमाणुओंके एकत्र मिलनेके पांच निमित्त क्यों नहीं मिलते?

उत्तरपक्ष –जो अनादि ससारकी नियतीरूप मर्यादा है, वो कदापि अन्यथा नहीं होती, जे कर हो जावे, तब तो ससारमें जो जीव जन्म लेते हैं, सो सर्व, स्त्रीयोंहीके वा पुरुषोंकेही रूपसें क्यों नहीं उत्पन्न होते? जे कर कहोगे जैसे जैसे कर्म करे थे, वैसा वैसा ही उनकू फल मिलता है, फेर एक स्त्री आदिक स्वरूपसें कैसें उत्पन्न होवे? तब हम यह पूछते है, जो सर्व जीवोंने स्त्री होनेके वा पुरुष होनेके न्यारे न्यारे कर्म क्यों करे? एकही सरीखे कर्म क्यों न करे? जे कर कहोगे ससारमें यह सनातनसें रीति है, जो सर्व जीव, एक सरीखे कर्म कदापि नहीं करते तब तो परमाणुओंमेंनी यही सनातन स्वनाव है, जो एकत्र कदेही न मिलनां, तथा एक एक हो कर विखरनी नहीं जानां? हे पूर्वपक्षी! यह तुमारा ई

श्वर जगत् जो रचता है, सो तुमारे कहनेसें आगे अनंत सृष्टियां रच चु का है, अरु एकेक जीवकूं अशुन कर्मोका फल, अनंत वेर दे चूका है, ता नी वो जीव आज तांइ पाप करतेही चले जाते है, तो फेर इस खेलमें ईश्वरकू क्या लान हुआ? जो अनंत कालमें इसी विटंबनामें फस रहा है? तथा ईश्वरकू सृष्टि रचनेमें क्या प्रयोजन था?

पूर्वपक्ष—ईश्वरकू सृष्टि नहीं रचनेका क्या प्रयोजन था?

उत्तरपक्ष—वाह रे वढेके वावा! यह तूने क्या उत्तर दीया, क्या यह उत्तर देखके विद्वान् तेरा उपहास्य न करेंगे? ईश्वर जे कर सृष्टि रचे, तो ईश्वरताही नष्ट हो जावे, यह वृत्तांत उपर अछी तरेंसे लिख आये है.

पूर्वपक्ष—ईश्वरकी जो सर्व शक्तियां है, सो सर्व अपनी अपनी कार्य करती है, जेसे आंख देखनेका काम करती है, कान सुननेका काम करते है, तैसेही जो ईश्वरमें रचना शक्ति है, सो रचनेसेंही सफल होती है, इस वास्ते जगत् रचता है.

उत्तरपक्ष—जव तुमनें ईश्वरकू सर्व शक्तिमान् माना, तव तो ईश्वरकी सर्व शक्तिया सफल होनी चाहियें, तव तो ईश्वर एक सुंदर पुरुषका रूप रच कर १ सर्व जगत्‌की सुंदर सुंदर स्त्रीयोंमे नोग करे, अरु २ चोर वन कर चोरी करे, ३ विश्वास घातीपना करे, ४ जीवहत्या करे, ५ जूठ वोले, ६ अन्याय करे, ७ अवतार हो कर गोपीयोंसे कल्लोल करे, ८ अरु कुब्जासें नोग करे, ९ दूसरेकी मांगकू नगा कर ले जावे, १० तथा शिरपर जटा रखे, ११ तीन आंख वनावे, १२ वैल उपर चढे, १३ तनमें विनूति लगावे, १४ एक स्त्रीकू वामाङ्गमें रखे, १५ किसी मुनिके आगें नगा हो कर नचे, १६ किसीकूं वर देवे, १७ किसीकू शाप देवे, इसी तरें १८ चार मुख बनाके एक स्त्री रखे, अरु १९ अपनी पुत्रीसें नोग करे, तथा २० संग्राम करे, २१ स्त्रीकों चोर ले जावे, तो पीछें उस स्त्रीके वास्ते रोता फिरे, २२ एक अपना नाइ बनावे, उसकू जव संग्राममें कोइ शस्त्र लगे, तव नाइके उखसें बहुत रोवे, २३ अपणे आपकों तो अज्ञानी समजे, २४ नाइकी चिकित्सा वास्ते वैद्य बुलावे, २५ सर्व कुछ खावे, २६ पीवे, २७ नाचे, २८ कूदे, २९ रोवे, ३० पीटे, पीछेसें ३१ निर्मल, ३२ ज्योति स्वरूप, ३३ निरहंकार, ३४ सर्वव्यापक, बन वैठे इत्यादिक पूर्वोक्त शक्तियां ई

श्वरमें है, वा नहीं ? जे कर है तो इतने पूर्वोक्त सर्व काम ईश्वरकूं करने पढेंगे जे कर न करेगा, तब तो ईश्वरकीयां सर्व शक्तिया सफल न होवेगी ? तब तो ईश्वर महा दुःखी हो जावेगा ? क्योंकि जिसने नेत्र तो पाये है, अरु देखना उसकू न मिले, तो वो कैसा दुःखी होता है ? जे कर कहोगे पूर्वोक्त अयोग्य शक्तियां ईश्वरमें नहीं है, तब तो सर्व शक्तिमान् ईश्वर है, असे फिर कदापि न कहनां चाहियें जे कर कहोगे कि योग्य शक्तियाकी अपेक्षा हम सर्व शक्तिमान् मानते है, तब तो जगत् रचनेकीभी शक्ति अयोग्यही है, यह भी परमात्मामें नहीं इस शक्तिकी अयोग्यता उपर लिख आये है तथा हे पूर्वपक्षी ! जब ईश्वरने प्रथमही सृष्टि रची थी, तब तो स्त्री पुरुषादिक थे नहीं, तब तो माता पिताके बिना मनुष्य क्यों कर उत्पन्न होये होंगे ?

पूर्वपक्ष —जब ईश्वरने सृष्टि रची थी, तबही बहुत पुरुष, अरु बहुत स्त्रीयों, माता पिताके बिनाही रच गये थे, उनके आगें फिर गर्भसें उत्पन्न होने लगे.

उत्तरपक्ष —यह अप्रामाणिक कहनां कोइभी विद्वान् नहीं मानेगा, क्यों कि माता पिताके बिना कभी पुत्र नहीं उत्पन्न हो सक्ता है ? जेकर ईश्वरने प्रथम माता पिताके बिनाहि मनुष्य, स्त्री, उत्पन्न करे थे, तो अब भी घडे घडाये, बने बनाये, स्त्री पुरुष क्यो नहीं भेज देता ? गर्भ धारण कराणां, स्त्री पुरुषका मैथुन कराणां, गर्भवासका दुःख भोगानां, योनियंत्र द्वारा खैंचके निकालनां इत्यादि संकट काहेकूं रचने थे ? अनंत वार ईश्वरने सृष्टि रची, अरु प्रलय करी, तब तो ईश्वर थाका नहीं, तो क्या मनुष्योंहीके बनानेसें थकेंवा चढ गया ? जो घडे घडाये, बने बनाये, नहीं भेज सक्ता ? यह कभी नहीं हो सक्ता, जो माता पिताके बिना पुत्र उत्पन्न हो जावे इस हेतुसेंभी जगत्का प्रवाह अनादिसें इसी तरें तारतम्य रूपसें चला आता सिद्ध होता है

पूर्वपक्ष —जे कर ईश्वर सर्व वस्तुका कर्त्ता न होवे, अरु जीवही कर्त्ता होवे, तब तो जीव आपही शरीर धारण कर लेवेगा, अरु शरीरकू कदेइ न छोडेगा, अरु आपणे आपकू अछा फल लगा लेलेंगे, फेर तो कभी मरेंगे नहीं

उत्तरपक्ष —जो तुमने कहा है सो सर्व, कर्मोंके वश है, परंतु जीवके अधीन नहीं, जे कर कहोगे कर्मभी तो जीवनेही करे थे, तब क्यों जीवने अछुभ कर्म करे ? क्योंकि कोइ भी अपणे बुरे करणेमें नहीं है, इस

का उत्तर तो दीया गया है, परंतु तुमारी समझ थोडी है, जो नहीं समझो क्यों कि जो जो अवस्था जीवोंकी शुभ अशुभ है, सो सर्व कर्मोंका फल है तथा जीव जो है, सो कर्म करणेमें तो प्राय स्वतंत्रही है, परंतु फल भोगनेमें स्ववश नहीं क्योंकि जैसे कोइ जीव धनुषसे तीर चलावे, अरु फिर उस तीरकू पकडने सामर्थ्य नही. तथा कोइ जीव विष खावे, सो तो स्ववश है, परतु उस विषवेगके रोकणेमें जीव समर्थ, नहीं ऐसेही जीव कर्म तो स्वतंत्रतासे प्राय करता है, परंतु फल भोगनेमे जीव पर वश है, जैसे वर्तमानमे रेलगाडी सर्व जीवोंहीने इस तरेकी बनाइ है, परतु उस चलती हुइ रेलके तथा तारके वेगकू जितना चिर, उस कलकी प्रेरणाशक्ति नहीं हटती, इतना चिर, कोइ जीव नही रोक कर सक्ता ऐसेही कर्मफल वेगके रोकणेकू जीवभी समर्थ नहीं है, तथा जीव कू भवांतरमें कौन ले जाता है? तथा जीवके शरीरकी रचना आंखोंके पडदे तथा नाना प्रकारके रग वरगके हाड, चाम, लोहु, वीर्य, इत्यादिक रचना कौन रचता है? इसका पूर्ण स्वरूप जहां कर्म प्रकृति (१४८) का स्वरूप लिखेंगे, तहांसें जानना. इस हेतुसे ईश्वर जगत् कर्त्ता किसी तरेंभी सिद्ध नहीं होता, विशेष करकें जगत् कर्त्ता ईश्वरका खंडन देखना होवे, तो श्री (१) सम्मतितर्क, (२) द्वादशसार नयचक्र (३) स्याद्वादरत्नाकर, (४) अनेकांतजयपताका, (५) शास्त्रसमुच्चय स्याद्वादकल्पलता (६) स्याद्वादमजरी, (७) स्याद्वादरत्नाकरावतारिका, (८) सूत्रकृतांग, (९) नदीसिद्धांत, (१०) शब्दांभोनिधिगंधहस्तीमहाभाष्य, (११) प्रमाणसमुच्चय, (१२) प्रमाणपरीक्षा, (१३) प्रमाणमीमांसा, (१४) आप्तमीमांसा, (१५) प्रमेयकमलमार्त्तंड, (१६) प्रमेयप्रमार्त्तंड, (१७) न्यायावतार, (१८) धर्मसंग्रहणी, (१९) तत्त्वार्थ, (२०) षड्दर्शनसमुच्चय इत्यादि जैनमतके ग्रंथ देख लेने इस वास्ते जो कामी, क्रोधी, छली, धूर्त्त, परस्त्री स्वस्त्री गमन करनेवाला, नाचने वाला, गाने बजाने वाला, रोने पीटने वाला, भस्म लगाने वाला, माला जपने वाला, संग्राम करने वाला, तथा डमरु आदिक वाजे बजाने वाला, वर वा शापके देने वाला, विना प्रयोजन अनेक संक्लेशोंमें फसने वाला, इत्यादिक जो अगारह दूषण करी सहित है, सो कुदेव है, उसकूं ईश्वर मानना सोइ मिथ्यात्व है,

इन कुदेवोंकूं मानने वाले पथ्थरकी नावो उपर बैठे है, इस वास्ते लिखनेका प्रयोजन इतना ही है, जो कुदेवकू कदेइ अर्हंत भगवत परमेश्वर करी न मानना ॥ इतिश्री तपागछीयेमुनिश्रीबुद्धिविजयशिष्यमुनिआनंदविजयआत्मारामविरचिते, जैनतत्त्वादर्शे, कुदेवनिर्णयनामा द्वितीय परिछेद संपूर्ण २

॥ अथ तृतीयपरिछेद प्रारंभ ॥

॥ यह तीसरे परिछेदमे गुरुतत्त्वका स्वरूप कहते है, जैनमतमें गुरुके लक्षण ऐसे लिखे हैं ॥ अनुष्टुब् वृत्तं ॥ महाव्रतधरा धीरा, भैक्षमात्रोपजीविन ॥ सामायिकस्था धर्मोप, देशकागुरवो मता ॥१॥ अस्यार्थ —अहिंसादि पांच महाव्रतका धारने पालने वाला होवे, अरु आपदा आ पडे, तब धीर साहसिकपणा करे, अपणे जो व्रत हैं, तिनकू दूषण लगा के कलंकित न करे, तथा बेंतालीश दूषण रहित, भिक्षावृत्ति माधुकरीवृत्ति करी, अपणे चारित्र धर्मके तथा शरीरके निर्वाह वास्ते भोजन करे, भोजनभी पूरा पेट भर कर न करे, भोजनके वास्ते अन्न, पाणी, रात्रिकू न राखे, तथा धर्मसाधनके उपकरण वर्जके और कुछभी संग्रह न करे तथा धन, धान्य, सुवर्ण, रूपा, मणि, मोती, प्रवालादि परिग्रह न राखे तथा राग, द्वेषके परिणाम रहित, मध्यस्थ वृत्ति हो कर, सदा वर्त्ते, तथा "धर्मोपदेशक" जो धर्म, जीवोंके उद्धार वास्ते सम्यग् ज्ञान, दर्शन, चारित्ररूप परमेश्वर, अर्हत, भगवतें स्याद्वादअनेकांत स्वरूप निरूपण कीया है, उस धर्मकू जो भव्य जीवोंके तांइ उपदेश करे, परंतु ज्योतिषशास्त्र, अष्ट प्रकारका निमित्त शास्त्र, तथा वैद्यशास्त्र, धन उत्पन्न करनेका शास्त्र, राजसेवा आदिक अनेक शास्त्र, जिनसें धर्मकू बाधा पहुंचे, तिनका उपदेशक न होवें, क्यों कि लौकिक जो शास्त्र है, सो तो बुद्धिमान् पुरुष वर्त्तमानमेंभी बहुत सीखते है, तथा नवीन नवीन अनेक सांसारिक विद्याके पुस्तक बनाते हुये चले जाते है, तथा अंगरेजोकी बुद्धि देख कर इस देशके लोकभी बहुत सांसारिक विद्यामें निपुण होते चले जाते हैं इस वास्ते साधुकू धर्मोपदेश ही करनां चाहियें, क्यों कि धर्महीं जीवोकू पाना कठिन है, ऐसे गुरुके लक्षण जैन मतमें हैं

तथा प्रथम जो पांच महाव्रत साधुकुं धारने कहे हैं. सो कौन कौन से वे पांच महाव्रत है ? सो कहते है –श्लोक ॥ अहिंसा सूनृतास्तेय, ब्रह्मचर्यापरिग्रहा ॥ पंचभिः पंचभिर्युक्ता, भावनाभिर्विमुक्तये ॥ २ ॥ अस्यार्थ –(१) अहिंसा, (जीवदया,) (२) सूनृत. (सत्य वचन बोलना,) (३) अस्तेय (साधुके उचित. वस्तुकू बिना दीयां न लेनां,) (४) ब्रह्मचर्यका पालनां, (५) सर्व परिग्रहका त्याग, इन पांचोंका नाम महाव्रत कहते हैं, तथा ए पांच महाव्रतोंमें एकैक महाव्रतकी पांच पांच भावना है, यह पांच महाव्रत, अरु पच्चीश भावना, ए सर्व मोक्षके वास्ते पाले.

अब इन पांचो महाव्रतोंमेंसू प्रथम महाव्रतका स्वरूप लिखीये है ॥ ॥ श्लोक ॥ न यत् प्रमादयोगेन, जीवितव्यपरोपण ॥ त्रसानां स्थावराणां च, तदहिंसाव्रतं मतं ॥ ३ ॥ अस्यार्थ –त्रस, (द्वींद्रियादिक जीव) अरु स्थावर, (१) पृथवीकाया, (२) अप्काया, (३) अग्निकाया, (४) पवनकाया, (५) वनस्पतिकाया, ए पांचोकू स्थावर जीव कहते है इन सर्वे पूर्वोक्त जीवोंकू प्रमाद वश हो कर मारे नहीं, प्रमाद नाम है, राग, द्वेप, असावधानपणा, अज्ञान, मन वचन कायाका चचल पणा, धर्मके विषे अनादर, इत्यादि प्रमादके वश हो कर जो प्राणातिपात करना, इस का जो त्याग करणां, इसका नाम अहिंसा व्रत है

अब दूसरे महाव्रतका स्वरूप लिखते हैं ॥ श्लोक ॥ प्रिय पथ्य वचस्तथ्य, सूनृतव्रतमुच्यते ॥ तत्तथ्यमपि नो तथ्य, मप्रिय चाहितं च यत् ॥ ॥ ४ ॥ अस्यार्थ–जिस वचनके सुननेसें दूसरा जीव हर्ष पावे, तिस वचनकू प्रिय वचन कहियें, तथा जो वचन जीवोंकू पथ्यकारी होवे, परिणामसुंदर होवे, एतावता जिस बचनसें जीवके आगें बहुत सुधारा होवे, तथा जो वचन सत्य होवे ऐसा जो बचन बोले, सो सूनृतव्रत कहियें, इस व्रत विषे कछुक विशेष लिखते हैं, जो बचन व्यवहारमें चाहो सत्यही होवे, परंतु जो आगले जीवकूं दुखदायी होवे, ऐसा बचन न बोले, जैसे काणेकू काणा कहना, चोरकू चोर कहनां, कुष्ठीकू कुष्टी कहनां, इत्यादिक जो बचन दूसरेकू दुखदायी होवे, सो न बोले, तथा जो बचन जीवोंकू आगें अनर्थका हेतु होवे, वसुराजावत् सोभी न बोले. जे कर

ह दोनों वचन बोले, तब तो उस साधुके सूनृत व्रतमें कलंक लग जावें, योंकि ए दोनो वचन जूठहीमें गिने हैं

अब तीसरा महाव्रत लिखते हैं ॥ श्लोक ॥ अनादानमदत्तस्या, स्ते व्रतमुदीरितं ॥ वाह्या प्राणान्नृणामर्थो, हरताहृताहिते ॥ ५ ॥ अस्या '–अदत्त, मालिकके बिना दीया ले लेणां, तिसका जिसके नियम है, ो अस्तेय व्रत कहीयें, अचोरीव्रत नामांतर है, अदत्तादान चार प्रका का है (१) जो वस्तु साधुके लेने योग्य है, अचित्त जीवरहित वस्तु ृण, काष्ट, पाषाणादिक वस्तुयोंके स्वामीकूं विना पूछे ले लेनां सो स्वामी ग्रदत्त (२) तथा जैसें कोइ भेड बकरी, गौ प्रमुख कोइ इनका स्वामी ्सरे हिंसक जीवकूं मोल लेकर दे देवे, अथवा विना मोल दे देवे, अरु लेने ालेने देइ होइ वस्तु लीनी है, परंतु उस जीवने तो अपणा शरीर नहीं ीया है, इस हेतुसें जीवअदत्त (३) तथा जो जो वस्तु आधाकर्मादिक आहार, अचित्त जीव रहितभी है, अरु दीनीभी उस वस्तुके स्वामीने है, रंतु तीर्थंकर भगवतें निषेध करी है, फेर जो साधु उस वस्तुकूं लें लेवें, तो तीर्थंकर अदत्त (४) तथा जो वस्तु निर्दोष है, वस्त्र आहारादिक अरु उस वस्तुके स्वामीने वो दीनी है, अरु तीर्थंकर भगवतें निषेध नहीं करी है, परंतु गुरुकी आज्ञा विना वो वस्तुकूं साधु ले लेवे, सो गुरु अ दत्त इस महाव्रतमें ए चार प्रकारका अदत्त न लेणां जितने व्रत नियम हैं, वे सर्व अहिंसाव्रतकी रक्षा वास्ते वाडी समान हैं, यह पूर्वोक्त तिसरे व्रतका जो पालनां है, सो अहिंसा व्रतहीकी रक्षा होती है अरु जो तीसरा महाव्रत न पाले तो अहिंसा व्रतकूं दूषण लगे है, यही वात कहते हैं ॥ "वाह्या प्रणा नृणां" मनुष्योंका अर्थ, (लक्ष्मी) जो है, सो बाहिरला प्राण है जब कोइ किसीकी चोरी करता है, सो निश्चय करकें उसके प्राणो हीका नाश करता है इसी हेतुसें चोरी करनां महा पाप है, सर्व चोरीका जो त्याग करना है, इसीका नाम तीसरा अदत्तादान त्यागरूप महा व्रत है

अब चोथे महाव्रतका स्वरूप लिखते हैं ॥ श्लोक ॥ दिव्यौदारिककामानां, कृतानुमतिकारितैः ॥ मनोवाक्कायतस्त्यागो, ब्रह्माष्टदशधा मतम् ॥ ६ ॥ अस्यार्थ –दिव्य (देवताके) वैक्रिय शरीर संबंधि जो काम भोग, अरु औदा रिक शरीर तिर्यंच मनुष्यका, तिन संबधी जो काम भोग, एतावता वैक्रिय

शरीर अरु औदारिक शरीर, ए दोनोंके साथ विषय सेवन करनो, और दू सरायोसे विषय सेवन करावणो, विषय सेवन जो करे उसकू अछा जानना, ए ७ भेद मन करकें, ७ वचन करकें, अरु ७ काया करके, एव अठारह प्र कारका जो मैथुन सेवनका त्याग करे, उसकू ब्रह्मचर्य व्रत कहते है.

अब पांचवा महाव्रत लिखते है ॥ श्लोक ॥ सर्वभावेषु मूर्छाया, स्त्या गस्यादपरिग्रह ॥ यदि सत्स्वपि जीयेत, मूर्छया चित्तविह्लव ॥ ७ ॥ अ स्यार्थ –सर्व संपूर्ण जो अछाभाव पदार्थ, द्रव्य, क्षेत्र, कालभावरूप व स्तु, तिस विषे जो मूर्छा, ममत्वभाव मोह, तिसका जो त्याग करे, तिस का नाम अपरिग्रह व्रत कहियें, परंतु जिसके पास अपणे शरीरके विना दूसरी कोइ वस्तु नहीं, तोभी तिसकू निष्परिग्रहपणा न कहिये किंतु जिसकी मूर्छा, ममत्व, सर्व वस्तुसे दूर जावे, उसीको निष्परिग्रह व्रत क हियें, क्योंकि जिसके पास कोइ वस्तु नही, अरु अण होइ वस्तुकी जिस कू चाहना लग रही है, वो त्यागी नहीं, जे कर ज्ञानद्वारा मूर्छा त्यागे विना, त्यागी हो जावे, तब तो कुत्ते अरु गधेभी त्यागी होना चाहियें, अ रु जो पुरुष ममत्व रहित है, सो निष्परिग्रह है, चाहो उसके पास धर्म साधनके कितनेक उपकरणभी है, तोभी मूर्छाके न होनेसे वो परिग्रह नही

अब इन पूर्वोक्त एकेक महाव्रतकी पांच पांच भावना लिखते हैं ॥ श्लोक ॥ भावनाभिर्भावितानि, पचभि पचभि क्रमात् ॥ महाव्रतानि नो कस्य, साधयंत्यव्ययं पदम् ॥ १ ॥ अस्यार्थ –यह जो पांच महाव्रतोंकी पच्चीश भावना हैं, जो कोइ इन भावना करकें अपणे अपणे महाव्रतकूं रं जित वासित करे, एतावता पांच पांच भावना पूर्वक अखंम महाव्रत पा ले तो ऐसा कोइ जीव नही है, जिसकू ए महाव्रत मोक्षपदमें न पहुंचावे?

अब प्रथम महाव्रतकी पांच भावना लिखते हैं ॥ श्लोक ॥ मनोगु प्त्येषणादाने, र्याभि समितिभि सदा ॥ दृष्टान्नपानग्रहणे ना हिंसा भाव येत्सुधि ॥१॥ अस्यार्थ –मनकूं पापके काममें न प्रवर्त्तावे, किंतु पापके का मसें अपणे मनकूं हटा लेवे, इसका नाम मनोगुप्ति कहते हैं जे कर पापके काममें मनकू प्रवर्त्तावे, अरु चाहो बाह्यवृत्ति करकें हिंसा नहींभी करता, तोभी प्रसन्नचंद्र राजर्षिकी तरें सातमी नरकके जाने योग्य कर्म उत्प न्न कर लेता है, इस वास्ते मुनिकूं अवश्य मनोगुप्ति करनी चाहियें, ए

प्रथम भावना. दूसरी भावना एषणासमिति सो आहारादिक चार वस्तु आधाकर्मादिक बेंतालीश दूषण रहित लेवे, बेंतालीश दूषणका पूरा स्वरूप देखनां होवे, तो पिंमनिर्युक्ति शास्त्र (७०००) श्लोक प्रमाण है, सो देख लेनी, ए दूसरी भावना. तीसरी भावना आदाननिक्षेप नामा है, जो कुछ पात्रक. दंम, फलक प्रमुख लेना पडे, तथा भूमिकाके उपरि रखना पडे, तब प्रथम नेत्रोसे देख लेनां, पीछें रजोहरण करकें पूज लेवे, पीछे सें लेना अरु रखना करें, क्योकि विछु सर्पादिक अनेक जहेरी जीव, जे कर उस उपकरणके उपर बेठे होवें, तब तो काट खावें, अरु दूसरा जीव बिचारा अनाथ कोइ बेंग होवे, तो हाथके स्पर्शसे मर जावे, तब तो जीवहत्याका पाप लग जावे, इस वास्ते जो काम करनां, सो यत्नपूर्वक करनां, ए तीसरी भावना. चोथी भावना जब चलनेका काम पडे, तब अपणी आखोंसें चार हाथ प्रमाण धरती देख कर चले, जो कोइ नीचा देख कर चलता है, उसकू इस लोकमें कितनेक गुण प्राप्त हो जाते है, प्रथम तो पगकूं ठोकर नहीं लगती, दूसरा जिसके परिग्रहका त्याग न होवे, उसकू गिरा पडा पैसा, रूपक, आदि मिल जावे, तीसरे लोकमें भला मनुष्य किसीकी वहू बेटीकू देखता नहीं, ऐसा प्रसिद्ध हो जाता है, चोथे जीवकी रक्षा करनेसें धर्मकी प्राप्ति होती है, ए चोथी भावना. पांचमी भावना जो अन्न, पाणी, साधु लेवे, सो प्रकाशवाली जगासें लेवे, अंधकार वाली जगासें न लेवे, क्योंकि अंधकारवाली जगामें एक तो जीव नहीं दीख पडता, और दूसरा साप विछुके काटनेका भर रहेता है, तथा गृहस्थका कोइ आभूषण प्रमुख जाता रहै, तब उसके मनमें शंका उत्पन्न हो जावे, कि क्या जाने अंधेरेमेंसें साधुही ले गया होगा ? तथा अंधेरेमें सुंदर साधुकू देख कर कदा चित् कोइ उत्कट विकार वाली स्त्री लिपट जावे, अरु उस वखत कोइ दूसरा देखता होवे, तो धर्मकी वडी निंदा होवे, तथा साधुहीका मन अंधेरेमें स्त्रीकू देख कर बिगड जावे, साधु स्त्रीकूं पकड लेवे, स्त्री पुकार कर देवे, तब तो बडी धर्मकी हानी, होवे तथा साधुओकी अप्रीति हो जावे, इस वास्ते अंधेरेकी जगासें साधु अन्नादिक न लेवे, ए पांचमी भावना. ए प्रथम महाव्रतकी पांच भावना हैं.

अब दूसरे महाव्रतकी पांच भावना लिखते हैं॥ श्लोक ॥ हास्यलोभभ

यक्रोध ,प्रत्याख्यानैर्निरंतरम् ॥ आलोच्य नापणमपि,नावयेत्सूनृत व्रतं ॥१॥ अस्यार्थ –प्रथम तो किसीकी हासी न करे, हासीका त्याग करे, क्योंकि जो पुरुष किसीकी हासी करेगा, वो अवश्य जूठ बोलेगा, ए जो परकी हासी करणी है, सो बडा अनर्थका कारण हो जाती है. श्रीहेमचंद्र सूरिकृत रामायणमें लिखा है, कि रावणकी बहिन शूर्पनखाकी श्रीरामचंद्र और लक्ष्मणजीने हासी करी थी, तब शूर्पनखा क्रुद्ध हो कर अपने भाइ रावणके पास जा कर सीताका वर्णन करा, फेर रावण सीताकूं हर कर ले गया, एह बडा संग्राम हुआ, आज तांइ लोक नकल बनाते है. इस सारी रामायणका निमित्त शूर्पनखाकी हासी है, इस वास्ते पर हास्यका त्यागरूप प्रथम भावना जाननी दूसरी भावना लोभका त्याग करनां, क्योंकि जो लोभी होगा सो अवश्य अपने लोभके वास्ते जूठ बोलेगा, क्योंकि यह बात सर्व लोकोमें प्रसिद्ध है, जो लोभी होगा, वो जरूर जूठ बोलेगा, ए दूसरी भावना. तथा भय न करनां, क्योंकि भयवत पुरुषभी जूठ बोल देता है, ए भय त्यागरूप तिसरी भावना तथा क्रोध करनेका त्याग करे, क्योंकि जो पुरुष क्रोधके वश होगा, वो दूसरायोंके हूवे अणहूवे दूषण जरुर बोलेगा, इस वास्ते क्रोध त्यागरूप चोथी भावना तथा प्रथम मनमें विचार कर लेवे, पीछेसें बोले क्यो कि जो विचार करे विना बोलेगा वो अवश्य जूठ बोलेगा, इस वास्ते विचार पूर्वक बोलनां ए पांचमी भावना ए दूसरे महाव्रतकी पांच भावना है

अब तीसरे महाव्रतकी पांच भावना लिखते हैं ॥ श्लोक ॥ आलोच्या वग्रहयाञ्चा, भीक्ष्णावग्रहयाचन ॥ एतावन्मात्रमेवैत, दित्यवग्रहधारण ॥ १ ॥ समानधार्मिकेभ्यश्च, तथावग्रहयाचन ॥ अनुज्ञापि तथा पान्ना, स नमस्तेयभावना ॥ २ ॥ अस्यार्थ –जिस मकानमें साधुने रहणा होवे, तो प्रथम उस मकानके स्वामीकी आज्ञा लेणी, घरका स्वामी यही है, ऐसा जान कर आज्ञा लेणी, जे कर स्वामीकीआज्ञा विना रहे, तो चोरी लगे अरु रात्रिमें कदाचित् घरका स्वामी क्रोध करकें साधुकू वांहासें निकाल देवे, तब साधु रात्रिमें कहां जावे ? इत्यादि अनेक क्लेश उत्पन्न हो जाते हैं, इस वास्ते मकानके स्वामीकी आज्ञा ले कर उसके मकानमें रहनां ए प्रथम भावना दूसरी भावना उपाश्रयके स्वामीकी वार वार आज्ञा लेनी, क्योंकि कदाचित् कोइ साधु रोगी हो जावे, तब जंगल पुरीष मूत्र करनेकूं

जरूर जगा चाहियें, गृहस्वामीकी आज्ञाके विना जो उसके मकानमें मल मूत्र करे, तो चोरी लगे, इस वास्ते गृहस्वामीकी आज्ञा वार वार लेनी, ए दूसरी नावना तीसरी नावना उपाश्रयकी नूमिकाकी मर्यादा कर लेवे, कि इतनी जगा तक हमारेकू तुमारी आज्ञा रही, जे कर मर्यादा न कर लेवे तो अधिक नूमिकाकू काममें लानेसें चोरी लगती है, इस वास्ते प्रथमही मर्यादा कर लेवे, ए तीसरी नावना तथा चोथी जो साधु समान धर्मी होवे, अरु वो किस जगामें प्रथम उतर रहा है, पीछें दूसरे साधु जो उस मकानमें उतरा चाहे, तो प्रथम साधुकी आज्ञा विना न रहना, जे कर प्रथम साधुकी आज्ञा न लेवे, तो स्वधर्मी अदत्त लागे, ए चोथी नावना पाचमी नावना साधु जो कुछ अन्न, पान, वस्त्र, पात्र, शिष्यादिक लेवे, सो सर्व गुरुकी आज्ञासें लेवे, जे कर गुरुकी आज्ञा विना कोइ वस्तु ले लेवे, तो गुरु अदत्त लागे, ए पाचमी नावना ए तिसरे महाव्रतकी पांच नावना हैं

अव चौथे महाव्रतकी पांच नावना लिखते हैं ॥ श्लोक॥ स्त्रीपढपशुमद्वेश्मा, सनकुड्यातरोज्ञनात् ॥ सरागस्त्रीकथात्यागात्, प्राग्गतस्मृतिवर्जनात् ॥ १ ॥ स्त्रीरम्यांगेक्षणस्वांग, सस्कारपरिवर्जनात् ॥ प्रणीतात्यशनत्यागात्, ब्रह्मचर्य तु नावयेत् ॥ २ ॥ अस्यार्थ –जिस घरमें अथवा आसनमें अथवा नीतके अतरे देवी अथवा मनुष्यकी स्त्री वसे, (रहे,) अथवा देवांगनाकी वा स्त्रीकी लेप, चित्राम प्रमुखकी मूर्ति होवे, तथा पंढ नपुंसक तीसरे वेद वाला जिस घरमें रहता होवे, तथा पशु, गाय, महिषी, घोडी, वकरी, नेड प्रमुख तिर्यंच स्त्री जिस मकानमें रहती होवे, तथा जिस मकानमें काम सेवन करती स्त्रीका शब्द तथा दूसरा कोइ मोह उत्पन्न करनेका शब्द, तथा आनूषणोंका शब्द, सुणाइ देवे, इन पूर्वोक्त विशेषणों सयुक्त मकानमें तथा एक नीतके अतरेमें साधु न रहे, ए प्रथम नावना तथा सराग (प्रेम सहित) स्त्रीके साथ वार्तालाप न करे, अथवा सराग स्त्रीके साथ वार्त्ता न करे तथा स्त्रीके देश, जाति, कुल, वेष, नाषा, स्नेह, शृंगार प्रमुखकी कथा सर्वथा न करे, क्योंकि सराग स्त्रीके साथ जो पुरुष स्नेह सहित कामशास्त्र प्रमुखकी कथा करेगा, सो अवश्य विकार नावकू प्राप्त होगा, इस वास्ते सराग स्त्रीसें कथा न करे, ए दूसरी नावना तथा दीक्षा लेनेसें पहिले गृहस्थावस्थामें जो स्त्रीके साथ कामक्रीडा, वद

नजुवन. चौरासी कामासनमें विषयसेवन प्रमुख क्रीडा करी होवे, तीसको फेर मनमें कदेइ न स्मरण करणा, क्योंकि पूर्व क्रीडास्मरणरूप इंधनमें कामाग्नि फिर धुखने लग जाती है, ए तीसरी नावना. तथा अविवेकी जनोंकू देखने, अरु वांछने योग्य स्त्रीके अंग जो मुख, नयन, स्तन, जघन, होठ प्रमुख तिनोंको सराग दृष्टिसे देखना तथा अपूर्व विस्मय रसके पूरमें मग्न हो कर आंख फाड देखना वर्जे, परंतु जो राग रहित दृष्टि करी कदाचित् देखनेमें आ जावे, तो दोष नहीं. तथा अपणे शरीरकू संस्कार करणा, स्नान, विलेपण, धूप करणी, नख, दांत,केश,समा रचना, कगी सुरमासें विभूषा करणी, इत्यादिक शरीरसंस्कार न करे, क्योंकि स्त्रीके रमणिक अंग देखनेमें जैसे दीप शिखामें पतंगीया जल जाता है, ऐसे कामी पुरुषनी कामाग्निमें जल जाता है, क्यो कि शरीर जो है, सो सर्व अशुचिका मूल है, इसका जो शृंगार करणा है, सो अज्ञानता है, जैसे मलिन वस्तुकी कोथलीके उपर जे कर चंदन घस कर लगा दिया, तो क्या वह कोथली सुगंधित हो जाती है? यह शरीर अंतमें मशानकी एक मुठी राखकी बन जायेगी, फिर किस वास्ते इस शरीरकी शोना करणेमें व्यर्थ काल खोवे है? ए चोथी नावना तथा प्रणीत, स्निग्ध, मधुरादि रस, इनका अधिक आहार करणा, तथा रूखा नोजननी कठ उदर पूर कर खाना, ए दोनोंही प्रकारके आहारका त्याग करे, क्योंकि जो पुरुष, निरंतर स्निग्ध, मधुर रसका आहार करेगा, उसके जरूर धातुपुष्ट होवेगी, तब तो वेदोदय करी अवश्य कुशील सेवेगा अरु रूक्ष निक्षावृत्तिका नोजननी प्रमाणसें अधिक नहीं करणा, क्योंकि रूक्ष नोजन अधिक करणेसें काम उत्पन्न हो जाता है, अरु अधिक खानेसें शरीरकू पीडा उत्पन्न हो जाती है, विशूचिका प्रमुख रोग हो जाते हैं, इस वास्ते प्रमाणसें अधिक नोजननी न करे पूर्व पुरुषोंने खानेकी ऐसें मर्यादा लिखी हैं कि ॥यत॥ अद्धमसणस्स सव्वं, जणस्स कुज्जा दवस्स दो नागे ॥ वाउपवियारणठा, उक्काय कणग कुज्जा ॥ १ ॥ अस्य तात्पर्यार्थ —बुद्धि करिकें अपणे उदरके ६ नाग करणे,तिनोमें तीन नाग तो अन्नसें नरने, अरु दो नागमें पानी, एक नाग खाली रखणा,जिस्सें सुखें सुखें उछ्वास नि श्वास आता रहे,ए पांचमी नावना ए चोथे व्रतकी पांच नावना

अब पांचमे महाव्रतकी पांच नावना लिखते है ॥ श्लोक ॥ स्पर्शे रसे च

गंधे च, रूपे शब्दे च हारिणि ॥ पच सुर्हींड्रियार्थेषु, गाढं गाध्र्यस्य वर्जन ॥ १ ॥ एतेष्वेवामनोज्ञेषु, सर्वथा द्वेषवर्जन ॥ अकिंचन्यव्रतस्यैव, जावना पंच कीर्त्तिता ॥ २ ॥ युग्म ॥ अस्यार्थ –स्पर्शादिक मनोहर पांच विषयोंमें जो अत्यत गृध्धिपणा सो वर्जनां, अरु स्पर्शादिक अमनोज्ञ पांच विषयोंमें द्वेष न करणां ए पांचमे महाव्रतकी पांच जावना एव पूर्वोक्त पांच महाव्रत, अरु पच्चीश जावना जिसमें होवे, सो गुरु तथा चरणसित्तरी अरु करणसित्तरी करकें सयुक्त होवे, सो जैनमतमें गुरु है

अथ चरण सित्तरीके सित्तर जेद लिखते हैं ॥ गाथा ॥ वय समण धम्मसजम, वेयावच्च च बन्न गुत्तीउ ॥ नाणाइ तिय तव को, ह निग्गहाइ चरणमेयं ॥ १ ॥ अर्थ –व्रत पांच प्रकारका, श्रमणधर्म दश प्रकारका, सयम सत्तर प्रकारका, वैयावृत्त्य दश प्रकारका, ब्रह्मचर्य गुप्ति नव प्रकारकी, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, ए तीन प्रकारका, तप बार प्रकारका, निग्रह क्रोधादिक चार प्रकारका, ए सर्व सित्तर हुये, तीनमेंसूं पांच व्रतका स्वरूप तो उपर जावना सयुक्त लिख आये हैं, सो जाननां

तथा श्रमणधर्म दश प्रकारका लिखीयें हैं ॥ गाथा ॥ खतिय मद्दव ऊव, मुत्ती तव सजमे य बोधव्वा ॥ सच्च सोयं आकिं,चण च बन्न च जइधम्मो ॥ १ ॥ अस्यार्थ –(१) क्षाति (क्षमा) करणी चाहो सामर्थ्य होवे,चाहो असामर्थ्य होवे, परतु दूसरेके डुर्वचन सहनेके जो परिणाम मनोवृत्ति है, तिसका नाम क्षमा कहते हैं, सर्वथा क्रोधका त्याग क्षमा, (२) कोमल कहीयें अहंकार रहित, तिसका जो जाव, वा कर्म सो कहियें मार्दव, नीचा हो कर अजिमान रहित होणां, (३) रुजु कहियें मन, वचन, काया करी सरल, तिसका जो जाव, वा कर्म, सो आर्जव, मन वचन कायाकी कुटिलताइसें रहित, (४) मोचन मुक्ति वाहिर, अदर, तृष्णाका त्याग लोजका त्याग, (५) रसादिक धातु अथवा अष्ट प्रकार कर्म, जिस करकें तपे सो तप अनशनादि बारा प्रकारका, (६) सयम, आश्रवकी त्यागवृत्ति, (७) सत्य, मृषावाद विरति जूठका त्याग, (८) शौच, अपणी सयमवृत्तिमें कोइ कलंक न लगावनां, (९) नहीं है किंचित् मात्र द्रव्य जिसके पास सो आकिंचन, (१०) नव ब्रह्मचर्यकी गुप्ति, ए दश प्रकारका यतिधर्म, तथा मतांतरमें दश प्रकारका

यतिधर्म ऐसेनी कहते है ॥गाथा॥ खंती मुत्ती अज्जव, मद्दव तह लाघवे तवे चेव ॥ संजम चियोग किंचण, बोधवे बंनचेरेय ॥१॥ अस्यार्थः सुगम ॥

अथ सत्तर भेद संयमके लिखते है ॥ गाथा ॥ पंचासवाविरमण, पंचिंदिय निग्गहो कसाय जउ ॥ दंमत्तयस्स विरई, सत्तरसहा संजमो होइ ॥ १ ॥ अथवा ॥ पुढवि दग अगणि मारुय, वणसइ बि ति चउ पणिंदि अजीवा ॥ पहु प्पेहपमज्जण, परिठवण मणो वइ काए ॥२॥ इनोंका अर्थ - उत्पन्न करीयें कर्म इनों करके सो आश्रव सो आश्रव पांच प्रकारका है, जो पांच महाव्रतोमें त्यागने लिखे है (१) हिंसा, (२) जूठ, (३) चोरी, (४) अब्रह्म, (५) परिग्रह, ए पांच आश्रवका त्याग करे, तथा स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु अरु श्रोत्र, ए पांचों इंद्रियका स्पर्शादिक पांचों विषयोंविषे लंपटपणा त्यागे, तथा क्रोध, मान, माया अरु लोभ, इन चारों कषायका जीतना इन चारोंके उदय होयाकूं निःफल करणा, अरु जो नहीं उदय आये उनकूं उत्पन्न न करणा तथा दमीये चारित्र धर्मरूप लक्ष्मी जीव पासों इनों करकें सो खोटा मन, खोटा वचन, खोटी काया, इन तीनों दंमकी विरति करणी एवं सत्तर भेद करिकें संयम है, अथवा प्रकारांतर करकें सत्तर भेदसें संयम कहते है,(१) पृथिवी, (२) उदक, (३) अग्नि, (४) पवन, (५) वनस्पति, (६) द्वींद्रियजीव, (७) त्रींद्रियजीव, (८) चतुरिंद्रिय जीव, (९) पचेंद्रिय जीव, इन पूर्वोक्त नवविध जीवोंकूं मन, वचन, अरु काया करी करणां,करावणां,अरु करणे वालेकूं नला जाननां, संरंन समारंनाऽरंन, इन नव विकल्पोसें पूर्वोक्त नवविध जीवोंकी हिंसा त्यागनी, ए नव प्रकारका संयम जो प्राणीके प्राणकूं विनाशनेका संकल्प करणां, इसका नाम संरंन है, जीवके प्राणकू जो परिताप करनां, (पीडा देनी) इसका नाम समारंन है, तथा जीवोंका प्राणका जो विध्वंस करनां, इसका नाम आरंन है, तथा (१०) अजीव संयम जिस अजीव वस्तुके राखणेसें संयम कलंकित हो जावे, जैसें मांस, मदिरा, सुवर्ण प्रमुख सर्व धातु, मोति आदिक सर्व रत्न, अंकुशादिक सर्व शस्त्र, इत्यादिक अजीवके रखनेसें संयममें कलंक होवे, सो अजीव वस्तु न रखणी, तथा अजीवरूप जो पुस्तक, अरु शरीरोपकरणादि, सो दुःखमादि दोषसें तैसी बुद्धि नहीं, आयु लंबी नहीं, श्रद्धा, संवेग, उद्यम, बल, ए सर्व हीन हो

गये हैं, विद्या कंठ रहती नहीं, इस वास्ते इस कालमें जो पुस्तक रखणां, सो प्रतिलेखणा, प्रमार्जनापूर्वक यतनोसें राखणां, ए दसवा अजीव सयम (११) प्रेक्षासयम सो नेत्रोंसें देख करकें बीज, हरि प्रमुख जीवों करी रहित स्थानमें सोनां, बैठणां, चलनां, इत्यादिकके करणेसें प्रेक्षासयम तथा (१२) उपेक्षासयम सो गृहस्थकूं पापका व्यापार करतेकू उपदे णां सो (उपदेश देणां) कि यह काम तुम ऐसें करो, एसें जो गृहस्थकू कहना, सो उपेक्षा सयम, अथवा केइ साधु सयमसें चलायमान हो ग या होवे, उसकूं हित करकें जो उपदेश करनां, सो प्रेक्षासयम, तथा पार्श्वस्थादिक जो साधुकी समाचारीसें भ्रष्ट हो गये हैं, अरु वो भ्रष्ट साधु कोइ अनुचित काम कर रहा है, अरु साधुनी अपणे मनमें जा न जावे जो इसकू उपदेश करुगा, तो इसने मानना नहीं है, इस वास्ते जो औदासीन्य रहणां, उसका नाम उपेक्षासयम, (१३) प्रमार्जन सयम, सो देखे हुये स्थानमें वस्त्र पात्रादिक जो लेने, वा रखने पडे, तव प्रथम रजोहरणादिकसें प्रमार्जन करकें पीछेसें लेनां, रखनां, सोनां, बैठनां करे, तव प्रमार्जना सयम, तथा (१४) भात, पाणी, वस्त्र, पात्रादिक जि समें जीव पड गयें होवे, तव तिनकू जीवों रहित शुद्ध भूमिकामें शास्त्रो क्त विधि कर जो परिष्ठापना करे, सो परिष्ठापनासयम, तथा (१५) मनमें द्रोह, ईर्ष्या, अभिमान,तो न करणां,अरु धर्मध्यानादिकमें मन प्रवृ त्त करणां, सो मन सयम तथा (१६) हिंसाकारी कठोर वचनकों त्यागनां, अरु शुद्ध वचनमें प्रवृत्त होनां, सो वचनसयम, तथा (१७) गमनागमन करणेमें अरु अवश्यकरणे योग्य कामोंमें उपयोग पूर्वक जो कायाकू प्रवृत्तावे, सो कायासयम, ए सत्तरभेद सयमके जाननां

अथ वैय्यावृत्त्यके दश भेद कहते हैं ॥ गाथा ॥ आयरिय उवझाए, तवस्सि सेहे गिलाण साहुसु ॥ समणोन्न सघ कुल गण, वेयावच्च हवइ दसहा ॥१॥ अर्थ —(१) ज्ञानादिक पांच आचारकू जो पाले, सो आचार्य, तथा सेवीयें जो, सो आचार्य तथा (२) जिनके समीप आ कर पढीयें, सो उपाध्याय, तथा (३) तप जो करे, सो तपस्वी, तथा (४) जिसनें न वाही साधुपणा लीया है, सो शिष्य, तथा (५) ज्वरादि रोग वाला जो साधु सो ग्लान, तथा (६) जो धर्मसें भिगतेकू स्थिर करे, सो स्थविर, साधु

तथा (७) जिस साधुकी अपणे समान एक समाचारी होवे, सो समनोज्ञ, तथा (८) साधु, साधवी, श्रावक अरु श्राविका इन चारोंको जो समुदाय सो संघ, तथा (९) बहुते एक सरिखे गछोंका सजातियोंका जो समूह,सो कुल चंद्रादिक जानना, तथा (१०) एक आचार्यकी वाचनावाले साधुवोंको समूह, सो गण गछ कौटिकादिक इन पूर्वोक्त आचार्यादिक दसोंका अन्न, पाणी, वस्त्र, पात्र, मकान, पीठ, फलक, संस्तारक प्रमुख धर्म साधनों करके जो साहाय्य करणा, शुश्रूषा करणी भेषज करणी, उजाड (जंगल) में रोग उत्पन्न होनेसें, तथा नाना प्रकारके उपसर्गोंमें पालना करणी, इसका नाम वैय्यावृत्त है.

अथ जो शीलवान् साधु होवे, सो नव वाड सहित शील पाले, उनकू नवविध ब्रह्मचर्यकी गुप्ति कहते है, सो लिखते है ॥गाथा॥ वसहि कह निसिंदिय,कुड्डंतर पुव्वकीलिय पणीए ॥ अइमायाहार विभू,सणाइ नव बंभ गुत्तीउ ॥१॥ अर्थ –१ (वसहि के०) वस्ती सो जो ब्रह्मचारी साधु होवे सो स्त्री,पशु,पंडक इनों करी, संयुक्त जो वस्ती होवे,तहां ब्रह्मचारी न रहे,तिनमें सू प्रथम तो स्त्री जो है,सो दो तरेंकी हैं, एक तो देवी, दूसरी मनुष्यणी, इन दोनोके दो दो भेद हैं, एक तो असल, और दूसरी इनकी मूर्त्ति, वा चित्रामकी मूर्त्ति, यह दोनो प्रकारकी स्त्री जहां न होवे, तिस वस्तिमें रहे, तथा पशु जो तिर्यंचिणी, गौ, महिषी, घोडी, बकरी, भेड प्रमुख जिस वस्ति में नहीं रहे, तहां रहे, तथा पंडक सो नपुंसक, तीसरे वेद वाला, महा मोहवाला काम करनेहारा, स्त्री अरु पुरुष, इन दोनोंके साथ विषय सेवने वाला, जिस वस्तिमें रहता होवे, तहां ब्रह्मचारी न रहे, क्योंकि इन तीनों करी संयुक्त वस्तिमें रहते थके उनोंकी कामविकारकी चेष्टा देखनेसें, ब्रह्मचारीके मनमें विकार उत्पन्न होनेसें ब्रह्मचर्यकू बाधा होती है, जैसे मूषा अरु बिल्ली दोनु एक जगे रहे, तो मूषेकूं सुख नहीं, तैसेही इन तीनो संयुक्त वस्तिमें रहणेसे शीलकू उपद्रव होवे, ए प्रथम ब्रह्मचर्य गुप्ति

२ तथा (कह के०) कथा सो केवल स्त्रीयोंहीकू तथा एकली स्त्रीकू धर्मदेशना वचनका प्रबंधरूप कथा न कहे, तथा स्त्रीकी कथा नकरे ॥ यथा ॥ कर्णाटी सुरतोपचारचतुरा, लाटी विदग्धा प्रिया ॥ इत्यादिक कथा न करे, क्योंके यह कथा जो है, सो राग उत्पन्न करनेकी हेतु है, जो स्त्रीके देश, जाति,

कुल, वेष, जापा, गति, (चलनां) विभ्रम, इंगित, हास्य, लीला, कटाक्ष स्नेह, रति, कलह, शृंगार, इत्यादिक जो विषयरसकी पोखने वाली कामि नीकी कथा है, सो कदेइ न करे जे कर करे, तो अवश्य मुनिकाभी मन वि कारकू प्राप्त हो जावे ए दूसरी ब्रह्मचर्यकी गुप्ति है

३ तथा (निसिज्ज के०) आसन सो स्त्रीयोंके साथ एक आसन उपर न वैठनां, तथा जिस जगेसें स्त्री उठी होवे, उस आसन वा स्थानमें दो घडी तक साधु न वैठे, क्यों कि उस जगे तत्काल वैठनेसें स्त्रीकी स्मृति होती है औ स्त्रीके वैठनेसें शय्या वा आसन, मैलसें मलिन होता, स्त्रीके स्पर्शवा आसनादि स्पर्शसें विकार उत्पन्न हो जाता है, ए तीसरी ब्रह्मचर्यगुप्ति

४ तथा (इंदिय के०) इंद्रिय सो अविवेकी लोकोंकू देखने योग्य, स्त्रीयोंके अंगोपांग जो नाक, स्तन, जघन प्रमुख है, उसकू ब्रह्मचारी साधु अपूर्व रस मग्न हो कर, नेत्र फाड कर, न देखे, कदाचित् दृष्टि पड जाय, तो पीछेसें औरः चितवनाभी न करे, जैसें कि बडे सुंदर लोचन है। नासिका बहुत सीधी है। वांछने योग्य दोनो कुच हैं। जे कर स्त्रीके पूर्वोक्त अंगोपांग एकाग्र रस मग्न हो कर चितवना करे, तो अवश्य मन मोहे, तथा विकारकू प्राप्त होवे

५ तथा(कुड्डंतर के०) कुड्यांतर सो जिन भींतके, तट्टीके, कनातके अंतर बीचमें होनेसें स्त्री पुरुष, मैथुन करते होवें, अरु उनका शब्द सुणाइ देवे, तहां साधु ब्रह्मचारी न रहे ए पांचमी गुप्ति

६ तथा (पुवकीलिय के०) पूर्वक्रीडा सो पूर्वगृहस्थ अवस्थामें स्त्रीके साथ जो विषय भोग क्रीडा करी होवे, तीसकू स्मरण न करे, जे कर करे तो कामाग्नि प्रज्वलित हो जाता है, ए छठी गुप्ति

७ तथा (पणीय के०) प्रणीत सो अति चीकणा, मीठा, दूध, दधि प्र मुख अति धातुपुष्ट करनेवाला आहार निरंतर न करे, जे कर करे, तो वीर्यकी वृद्धि होनेसें अवश्य वेदोदय होगा, फेर जरूर विषय सेवेगा क्योंकि जो थोडी कोथलीमें बहुत रूपिये भरेगा, तो जरूर फाट जायगी

८ तथा (अइमायाहार के०) अतिमात्राहार, सो रूखी भिक्षाभी प्रमा णसें अधिक न खावे, क्यों कि अधिक खानेसें विकार हो जाता है, अरु शरीरकू पीडा विशूचिकादिक होनेका कारण है, ए आठमी गुप्ति

९ तथा (विभूसणाइ के०) विभूषणादि शरीरकी विभूषा सो स्नान, विले

पन, धूप. नख, दांत. केश, इनकी सुंदरताके वास्ते समारणा, तथा तिलक, सुरमा, कज्जल, विनूषाके वास्ते नेत्रामें गेरना, तथा कायमें पग मांजने, साबु. तेल प्रमुख मसल कर गरम पाणीमें सुकोमलताके वास्ते धोना, इत्यादिक शरीरकी विनूषा न करे, ए नवमी ब्रह्मचर्यगुप्ति. ए नव प्रकारकी गुप्ति सो ब्रह्मव्रतकी रक्षा रूप नव वाड है

अथ ज्ञानादि तीन कहेते है, उसमें यथार्थ वस्तुका जो बोधक सो ज्ञान, सो ज्ञानावरणीय कर्मके क्षय तथा क्षयोपशमके होनेसें जो उत्पन्न हूया है बोध, तिसका हेतु जो द्वादशांग औ द्वादशोपांग, तथा प्रकीर्णक उत्तराध्ययनादिक, सो सर्व ज्ञान कहियें. तथा दूसरा दर्शन सो १ जीव, २ अजीव, ३ पुण्य, ४ पाप, ५ आश्रव, ६ संवर, ७ निर्ज्जरा, ८ बंध, ९ मोक्ष, इन जीवादिक नव तत्त्वका जो स्वरूप, तिनमें श्रद्धा (रुचि) करनी, जैसेकी ए नव तत्त्व तथ्य है, मिथ्या नहीं, ऐसी तत्त्वरुचि तिसका नाम दर्शन है, तथा तिसरा सर्व पापके व्यापारोंसे ज्ञान, श्रद्धान पूर्वक जो निवृत्त होनां, इसका नाम चारित्र है, इस चारित्रकेनी दो नेद है, एक देशविरतिचारित्र, दूसरा सर्व विरतिचारित्र, उसमें देशविरति चारित्र तो जहा गृहाश्रम धर्मका स्वरूप लिखेगें, तहासें जान लेनां, अरु जो सर्वविरति चारित्र है, तिसकाही स्वरूप, इसी गुरुतत्त्वमें लिखने लग रहे है, ए ज्ञानादिक तीन जाननां.

अथ बारा प्रकारका तप लिखते है ॥ गाथा ॥ अणसण मूणोयरिया, वित्तीसखेवणरसच्चाउ ॥ कायकलेसो सलीं, णया य बज्को तवो होइ ॥१॥ पायछित्त विणउ, वेयावच्च तहेव सद्याउ ॥ ज्ञाण उस्सग्गोविय, अंभित रउ तवो होइ ॥ २ ॥ इनका अर्थ –१ व्रत करणां, २ थोडा खाणां, ३ नाना प्रकारके अनिग्रह करणे, ४ रस जो दूध, दहीं, घृत, तेल, मीठ पक्वान्न, इनोका त्याग करनां, ५ कायक्लेश, वीरासन, दमासन आदिक करी अनेक तरेंका कायक्लेश करनां, ६ पांचो इंडियोंकू अपणे अपणे विषयोंसें रोकनां, ए ७ प्रकारका बाहिर तप है, १ जो कुछ अयोग्य काम करा अरु पीछेसें गुरुके आगें आपणा पाप जैसे करा था, वैसेही प्रगट पणे कहना, आगेकू फेर वों पाप न करनां, अरु पूर्वे जो करा है, उसकी निवृत्तिके वास्ते गुरु पासों यथा योग्य दंम लेनां, इसका नाम प्रायश्चित तप है, तथा २ अपनेसें गुणाधिककी विनय करनी, तथा ३ वैय्यावृत्त नक्ति करनी,

तथा ४ एक आप दूसरायोंकों पढानां, दूसरा संशय उत्पन्न हूया गुरुकूं पूछना, तीसरा अपने सीखे हूयेकूं वारवार उच्चारन करनां, चौथा जो कुछ पढा है, उसके तात्पर्यकू एकाग्रचित्त करकें चिंतनां, इसका नामअनुप्रेक्षा है पांचमी धर्मकथा करनी, ए पांच प्रकारका स्वाध्याय तप है, तथा ५ एक आर्त्तध्यान, दूसरा रौद्रध्यान, तीसरा धर्मध्यान, चौथा शुक्लध्यान, इन चारोंमेंसू आर्त्तध्यान अरु रौद्रध्यान, ए तो दोनो त्यागने, औ धर्मध्यान अरु शुक्लध्यान, ए दोनो अंगीकार करने, ए ध्यानतप तथा ६ सर्व उपाधियोंकों त्याग देनां सो व्युत्सर्ग तप है, ए छ प्रकारका अभ्यंतर तप है, ए सर्व मिल कर बारा प्रकारका तप हैं

क्रोध, मान, माया, अरु लोभ, इन चारोका निग्रह करना यह पांच व्रत, दश श्रमणधर्म, सत्तर प्रकारका संयम, दश प्रकारका वैय्यावृत्त, नव प्रकारकी ब्रह्मचर्यगुप्ति, तीन ज्ञान, दर्शन, चारित्र, बारां प्रकारका तप, अरु क्रोधादिक चारका निग्रह, ए सर्व मिल कर सित्तर भेद चारित्रके हैं, इस वास्ते इनकू चरणसित्तरी कहते है

अथ करणसित्तरीके भेद लिखते है ॥ गाथा ॥ पिंडविसोही समिई, भावण पडिमाय इंदिय निरोहो ॥ पडिलेहण गुत्तीउ, अभिग्गह चेव करण तु ॥ १ ॥ इसका अर्थ –पिंडविशुद्धि सो एक आहार, दूसरा उपाश्रय, तीसरा वस्त्र, चौथा पात्र, ए चार वस्तुकू साधु बैतालीश दूषण करकें रहित लेवे, तिसका नाम पिंडविशुद्धि है बैंतालीश दूषणका जो पुरा स्वरूप देखनां होवे, तव तो पिंडनिर्युक्ति ग्रंथ भद्रबाहुस्वामिकृत उसकी मलयगिरिसूरि कृत टीका सात हजार श्लोक प्रमाण है, सो देखनी तथा पिंडविशुद्धि ग्रंथ जिनवल्लभसूरिकृत औ उसकी जिनपतिसूरिकृत टीकासें जान लेना, तथा प्रवचनसारोद्धार श्रीनेमिचंद्रसूरिकृतसूत्र, तथा उसकी सिद्धसेनसूरिकृतटीकासें जान लेनां, तथा श्रीहेमचंद्र सूरि कृत योग शास्त्रसें जान लेनां

अथ समिई सो पांच समिति, उसका स्वरूप लिखते है प्रथम ईर्या समिति, सो चलनेका नाम ईर्या कहते है, अरु समिति कहियें सम्यक् आगमके अनुसार जो प्रवृत्ति चेष्टा करणी, सो समिति कहियें त्रस स्थावर जीवोंकू अभयदान दाता जो मुनि है, तिस मुनिकू अवश्य प्रयोज

नके वास्ते चलनो पडे, तब किस रीतिसें चलना? प्रथम तो प्रसिद्ध रस्तेमें चलना. जो रस्ता सूर्यकी किरणोंसें प्रतप्त होवे, प्रासुक जीव रहित होवे. जिसमें स्त्री पुरुषका संघट्ट न होवे, जीवोंकी रक्षा निमित्त अथवा अपने शरीरकी रक्षा निमित्त पगके अगूठेसें ले कर चार हाथ प्रमाण नूमिका आगेसें देख कर चलना, इसका नाम ईर्यासमिति है इस रीतिसें जो साधु चले, तथा दूसरा कोइ काम करे, तिस काममें कदाचित् कोइ जीव मरनी जावे, तोनी साधुकू पाप नही लगता, क्योंकि उसका उपयोग बहुत शुन्न है. यह प्रथम ईर्यासमिति. तथा पाप सहित नाषा. तथा कगेर नाषा, जैसे के तू धूर्त्त है, कामी है, राक्षस है, चार्वाक प्रमुखके कहे शब्दोंकों न कहे, जो शब्द, जगत्में निंदनिक होवे,सो न बोले, परकू सुखदाइ बोलने मे थोडा बहुत प्रयोजनोंका साधनेवाला संदेह रहित असा वचन बोले,सो दूसरी नाषासमिति तथा बेतालीश दूषण रहित आहारादिक ग्रहण करे, सो तीसरी एषणासमिति, तथा आसन, संस्तारक, पीठ, फलग, वस्त्र, पात्र, दमादिककों नेत्रोंसे देख कर उपयोग पूर्वक लेनां, अरु रखनां, करना, सो चोथी आदाननिक्षेप समिति, तथा पुरीष, प्रश्रवण, थूक, नाकका श्लेष्म, शरीरमल वस्त्र, अन्न, पानी, जो शरीरका अनुपकारी होवे, इन सबकू जीव रहित नूमिकामें स्थापन करना, सो पांचमी परिस्थापना समिति, यह पांच समिति कही

अथ बार नावना लिखते हैं प्रथम अनित्यनावना, दूसरी अशरण नावना, तीसरी संसारनावना, चौथी एकत्वनावना, पांचमी अन्यत्वनाव ना, बठी अशुचित्वनावना, सातमी आश्रवनावना, आठमी संवरनावना, नवमी निर्ज्जरानावना, दशमी लोकस्वनावनावना, अग्यारमी बोधिडर्लन त्व नावना, बारमी धर्मका कथन करने वाला, अर्हन् है यह बारा नाव ना जिस तरेसें नावने योग्य रात दिनमें है, तैसें अन्यास करनां, इन बारां नावनायोंका किंचित् स्वरूप लिखते हैं,

१ अनित्यनावना. सो जिनका वज्जकी तरें सार अरु कठिन शरीर था, वोनी अनित्य रूप राक्षसेने नक्षण कर लीये, तो फेर केलेके गर्नकी तरें निःसार जो जीवोंका शरीर है, सो यह अनित्य रूप राक्षससें कैसें बचेंगे? तथा लोक, बिजलीकी तरें आनंदित हो कर, विषय सुखका

दूधकी तरें स्वाद लेते है, परंतु लाठीकी मारकूं नहीं देखते है, भावार्थः– विषयसुख भोग कर आनंद तो मानते है, परंतु जन्मांतरमें नरकपतन रूप संकटसें नहीं मरते है, तथा जीवोंका शरीर तो पाणीके बुल बुलेकी तरें है, अरु जीवोंका जो जीवित है, सो ध्वजाकी तरें चंचल है, तथा लावण्य, स्त्री, परिवार, आंखकी पापण, (भांफण) की तरें चंचल है, अरु यौवन जो है, सो हाथीके कानकी तरें चंचल है, तथा स्वामीपणा जो है, सो स्वप्नश्रेणीकी तरें है, अरु लक्ष्मी जो है सो चपला (बीजली) की तरें चपल है, इसी तरें सर्व पदार्थोंकू अनित्य पणा विचारता प्यारा पुत्रादिकभी मर जाये, तोभी अपणे मनमें शोच न करे, तथा जो मूर्ख जीव सर्व भावकू नित्य माने है, वो जीर्ण पत्रोकी झोंपडीके भग होनेसें रात दिन रुदन करता है, तिस वास्ते तृष्णाका नाश करकें ममत्व रहित शुद्ध बुद्धि वाला जीव, अनित्य भावना भावे ॥ इति प्रथम भावना ॥ १ ॥

२ दूसरी असरण भावनाका स्वरूप कहते हैं पिता, माता, पुत्र, भार्या, प्रमुखके आगें बहुत आधि व्याधिके समूह रूप शृंखलामें बंधा हुये रुदन करते हुयेकू कर्मरूप योद्धोनें यमके (कालके) मुखमें प्रक्षेप करता थकां बडा दुःख है, जो लोक शरण रहित अनाथ है, वे क्या करेंगे? तथा नाना प्रकारके शास्त्र विषयोंकू जो जानते हैं, तथा नाना प्रकारके मंत्र यंत्रोकी क्रिया जो जानते है तथा जो ज्योतिषविद्याकू जानते हैं, तथा जो नाना प्रकारकी औषधि, रसायन प्रमुख वैद्यक क्रियाओंमें कुशल हैं, ए सर्व विद्यावानोंकी क्रिया कालके आगें कुछभी करनेकू समर्थ नहीं है, तथा नाना प्रकारके शस्त्रों वाले उन्नटजोद्धोंओंकी सेना करकें परिवेष्टितभी है, नाना प्रकारके मदझर हाथीयोंकी वाहभी है औसे इंद्र, वासुदेव, चक्रवर्त्ती सरीखे बलवान्भी कालके घरमे खैंचे हुये चले जाते हैं, बडा दुःख है कि जो प्राणियोकू कोइभी त्राण नहीं तथा जो मेरुका दंम अरु पृथ्वीका छत्र करनेकू समर्थ थें, अरु थोडाभी जिनकू क्लेश नहीं था, औसें अनंतबली तीर्थंकरभी लोकोकू कालसें बचानेकूं समर्थ नहीं, तो फेर दूसरा कौनसा समर्थ है? स्त्री, मित्र, पुत्रादिकोके स्नेहरूप भूतके दूर करणे वास्ते शुद्धमति जीव अशरण भावना भावे ए दूसरी अशरण भावना.

३ तीसरी संसार भावना कहते हैं. बुद्धिमान् तथा बुद्धि रहित, सुखी,

नके वास्ते चलना पडे, तब किस रीतिसें चलना? प्रथम तो प्रसिद्ध रस्तेमें चलना, जो रस्ता सूर्यकी किरणोंमे प्रतप्त होवे, प्रासुक जीव रहित होवे, जिसमें स्त्री पुरुषका संघट्ट न होवे, जीवोंकी रक्षा निमित्त अथवा अपने शरीरकी रक्षा निमित्त पगके अंगुठेसें ले कर चार हाथ प्रमाण नूमिका आगेसें देख कर चलना, इसका नाम ईर्यासमिति है इस रीतिसें जो साधु चले, तथा दूसरा कोइ काम करे, तिस काममें कदाचित् कोइ जीव मरजी जावे, तोजी साधुकू पाप नहीं लगता, क्योंकि उसका उपयोग बहुत शुद्ध है. यह प्रथम ईर्यासमिति तथा पाप सहित नाषा, तथा कठोर नाषा, जैसें के तू धूर्त है, कामी है, राक्षस है, चार्वाक प्रमुखके कहे शब्दोंकों न कहे, जो शब्द, जगत्में निंदनिक होवे,सो न वोले, परंतु सुखदाइ बोलनेमे थोडा वहुत प्रयोजनोंका साधनेवाला संदेह रहित असा वचन वोले,सो दूसरी नाषासमिति तथा बेंतालीश दूषण रहित आहारादिक ग्रहण करे, सो तीसरी एषणासमिति, तथा आसन, संस्तारक, पीठ, फलग, वस्त्र, पात्र, दंमादिकको नेत्रोंसे देख कर उपयोग पूर्वक लेनां, अरु रखनां, करना, सो चौथी आदाननिक्षेप समिति, तथा पुरीष, प्रश्रवण, थूक, नाकका श्लेष्म, शरीरमल वस्त्र, अन्न, पानी,जो शरीरका अनुपकारी होवे, इन सबकू जीव रहित नूमिकामे स्थापन करनां, सो पाचमी परिस्थापना समिति, यह पांच समिति कही

अथ बार नावना लिखते हैं प्रथम अनित्यनावना, दूसरी अशरण नावना, तीसरी संसारनावना, चौथी एकत्वनावना, पांचमी अन्यत्वनावना, उठी अशुचित्वनावना, सातमी आश्रवनावना, आठमी संवरनावना, नवमी निर्ज्जरानावना, दशमी लोकस्वनावनावना, अग्यारमी वोधिउर्लनत्व नावना, बारमी धर्मका कथन करने वाला, अर्हन् है यह बारा नावना जिस तरेसें नावने योग्य रात दिनमें है, तैसें अन्यास करनां, इन बारां नावनायोंका किंचित् स्वरूप लिखते हैं,

१ अनित्यनावना. सो जिनका वज्रकी तरें सार अरु कठिन शरीर था, वोनी अनित्य रूप राक्षसेंने नक्षण कर लीये, तो फेर केलेके गर्नकी तरें निःसार जो जीवोंका शरीर है, सो यह अनित्य रूप राक्षसमें कैसें बचेंगे? तथा लोक, बिल्लीकी तरें आनंदित हो कर, विषय सुखका

क्षुधा प्रमुख करके पीडित हो कर,आपणी आयु दीनमन होकर पूर्ण करते हैं. यह देवगति कही इस तरेसें मोक्षाभिलाषी पुरुष तीसरी संसार भावना भावे.

४ चोथी एकत्व भावना कहते हैं एकलाही जीव उत्पन्न होता है, अरु एकलाही मृत होता है, एकलाही कर्म करता है, अरु एकलाही तिनका फल भोगता है, तथा जो जीवने बहुत कष्ट करके धन उपार्ज्या है, सो धन, स्त्री, मित्र, पुत्र, भाइ प्रमुख खा जावेंगे अरु जो पाप कर्म उपार्ज्या है, उसका फल तो करने वाला जीव एकलाही नरक, तिर्यंच गतिमें जाकर भोगता है, देखो यह कैसा आश्चर्य है! तथा यह जो जीव इस देहके वास्ते रात दिन फिरता है, अरु दीनपणा अवलंबन करता है, धर्मसें भ्रष्ट होता है, अपणे हितकू ठगाता है, न्यायसें दूर होता है, सो देह इस आत्माके साथ एक पग तकभी परभवमें न चलेगी, तो फेर यह देह क्या करेगी? क्या साहाय्य देगी? अरु स्वजन जो है, सो अपने स्वार्थमें तत्पर हैं, तेरा वास्तवमें कोइभी नहीं इस वास्ते हे बुद्धिमान्! तू अपने हितके वास्ते धर्म करनेमें प्रयत्न कर इस तरेसें चोथी एकत्व भावना भावे

५ पाचमी अन्यत्वभावना कहते हैं, जीव इस देहकू छोड कर परलोककू जाता है, इस वास्ते इस शरीरसें जीव भिन्न है, तो फिर नाना प्रकारका सुगंधि लेपन करनां व्यर्थ है, इस वास्ते इस शरीरकू कोइ दण्डादिक करकें मारे तो समता रस पीना चाहियें क्रोध न करनां, जो पुरुष अन्यत्वभावना भावे, तिसकू शरीर, धन, पुत्रादिकके वियोग होनेसेभी शोक नहीं होता है यह पांचमी अन्यत्व भावना कही

६ छठी अशुचि भावना लिखते हैं जैसें लूणकी खानमें जो पदार्थ पडता है वो सर्व लूण हो जाता है, तैसेही इस कायामे जो कुछ आहार पडता है सो सर्व मलरूप हो जाता है, ऐसी यह काया अशुचि है, तथा यह काया लोहि, अरु शुक्र इन दोनोके मिलनेसे गर्भ उत्पन्न होता है, जरा करकें वेष्टित होता है, जो कुछ माता खाती है, उसीके रससें वो गर्भ, वृद्धिकू प्राप्त होता है, अरु स्थिल धातुयों करी पूर्ण है, ऐसी देहकू कौन बुद्धिमान् शुचि मानता है? तथा जो सुस्वाद, शुभ गंध वाले मोदक, दहीं, दूध, इक्षुरस, शालि, उदन, द्राक्ष, पापड, अमृता, घेउर, आंब प्रमुख खाता है, सो तत्काल मलरूप हो जाता है, ऐसी अशुचि कायाकू

दुःखी, रुपवान् तथा कुरूपवान्, स्वामी तथा दास, प्यारा तथा वैरी, राजा तथा प्रजा, देवता, मनुष्य, तिर्यग्, नारक, इत्यादिक अनेक प्रकारके कर्मोंके वशसे स्वांग धार कर, इस संसार रूप अखाडेमें यह जीव नाटक करता है, तथा अनेक पाप बांध करके महारंभ, मांस भक्षण, मदिरापानादिक कारणों करके, महा अंधकार जहां कुछ नहीं दीखता, ऐसी नरकभूमिकामें जा करके पडता है, तिहां अंग छेदन, अग्निमें जलनादि क्लेशरूप महा दुःख जो जीवकू होते हैं, उन दुःखोंकू केवलीभी कथन नहीं कर सक्ता यह प्रथम नरकगति कही तथा छल, कुगादिक कारणोंमें प्राणी तिर्यंच गतिमें सिंह, वाघ, हाथी, मृग, बैल, बकरे प्रमुखके शरीर धारण करता है अरु तिस तिर्यंच गतिमें क्षुधा, तृषा, वध, बंधन, ताडन, रोग, हल प्रमुख में वहना इत्यादिक दुःख सदा जो जीव सहता है, वो दुःख कौन कहनेकू समर्थ है ? यह दूसरी तिर्यग्गति कही

तथा खाद्य, अखाद्य, विवेकशून्य, मनमें लज्जा नहीं, माता, बेटी, गमन करनेमें एक समान निःशुक्ता वर्त्तन है, तहां जो अनार्य मनुष्य है, वोतो निरंतर जीवघात, मांस भक्षण, चोरी, परस्त्रीगमन प्रमुख कारणों करकें बडा भारी पापकर्म महा दुःखोंका देने वाला उत्पन्न करते है, तथा आर्यदेशमेंभी क्षत्रिय, ब्राह्मण प्रमुख जो हैं, वेभी अज्ञान, दरिद्र, कष्ट दौर्भाग्य, रोगादिक करकें पीडत हैं दूसरोंका काम करणां, मानभंग, अपमान प्रमुख अनेक दुःख निरंतर भोग रहे है, तथा अग्निवत् रक्त रंग है जिनका ऐसीयों सूइयों एक एक रोममें एकेक सूइ किसी जुवान पुरुषके एक कालमें चोभनेसें जैसा उसकू दुःख होवे तिस दुःखमें आठ गुणा दुःख जीव स्त्रीके गर्भमें जब रहता है तब पाता है, इस दुःखसें अनंत गुणां दुःख जन्म समय होते है, तथा बाल अवस्थामें मूत्र, पुरीष, धूलिमें लोटनां, अज्ञानी पणा, जगत्की निंदा, यौवनमें धन अर्जन करनां, इष्ट वस्तुका वियोग, अनिष्ट वस्तुका संयोग, अरु वृद्ध अवस्थामें शरीरका कंपनां, नेत्रोंका बलहीन हो जानां, श्वास, खांसी प्रमुख करकें महा दुःखी होनां तोवो कौनसी दशा है कि जिसमें प्राणी सुख पावे ? कोइभी नहीं यह मनुष्यगति कही तथा सम्यग् दर्शनादिकके पालनेसे जो जीव देवता होता है, सोभी शोक, विषाद, मत्सर, भय, थोडी ऋद्धि, करके ईर्ष्या, काम, मद,

रूप, दुःख दावानलकूं मेघसमान ऐसी शर्मावलि मोक्षकी देने हारी अंगीकार करता है इस तरेसें सातमी आश्रवभावना भावे

८ आठमी संवरभावना कहते है, सो आश्रवोंका जो निरोध करना, तिसकू संवर कहते है, सो संवर दो प्रकारका होता है, एक देशसंवर, दूसरा सर्व संवर उसमें सर्व करिके संवर तो अयोगी केवलीमे होता है, अरु जो देशसें संवर है, सो एक दो प्रमुख आश्रवके निरोध करने वालेमें होता है तथा वली संवर दो प्रकारका है, एक द्रव्यसंवर, दूसरा भावसंवर, उस में जो कर्मपुद्गल आश्रव करकें जीव ग्रहण करता है, तिनका जो देशसे वा सर्वसें छेदन करना, सो द्रव्यसंवर अरु जो भव हेतु क्रियाका त्याग, सो भावसंवर मिथ्यात्व कषाय प्रमुख आश्रवोंकों जो बुद्धिमान् उपाय करकें निरोध करे, अरु आर्त्त, रौद्र ध्यान जो बुद्धिमान वर्जे, धर्मध्यान शुक्लध्यान ध्यावे, क्रोधकूं क्षमा करके जीते, मानकू मृदुभाव करकें जीते, मायाकूं सरलता करके जीते, लोभकूं संतोष करके जीते, इंद्रियोंके विषय इष्टानिष्टकूं राग द्वेषके त्यागनेसें जीते, इस प्रकारसे जो बुद्धिमान् संवरभावना भावे, तो स्वर्ग मोक्षरूप लक्ष्मी अवश्य उसके वशीभूत हो जाती है

९ नवमी निर्ज्जरा भावना लिखते हैं संसारकी हेतुभूत जो कर्मकी संतति है, तिसकी अतिशय करकें जो हानी करे, तिसका नाम निर्जरा है सो निर्जरा दो प्रकारकी है एक सकाम निर्जरा, दूसरी अकाम निर्जरा, इन दोनोमेंसू जो सकाम निर्जरा है, सो उपशांति चित्तवाले साधुकू होती है, अरु अकामनिर्ज्जरा, शेष जीवोंकू होती है शेष जीवोंकू जो अकाम निर्ज्जरा होती है, सो कर्मका पाक स्वयमेव होता है, अरु उपायसें भी कर्मका पाक होता है, जैसें आंबका फल स्वयमेवही वृक्षकी मालीमें लगा हूवाही पक जाता है, अरु कोद्रवादिक पलाल गर्त्ताक्षेप करनेसेंभी पक हो जाता है, ऐसेही निर्जराभी दो प्रकारकी है हमारे कर्मोंकी निर्जरा होवे ऐसे आशय वाले पुरुष जो तप प्रमुख करते हैं, उनोंके सकाम निर्जरा होती है, अरु एकेंद्रिय जो जीव है, तिनकू विशेष ज्ञान तो नहीं परंतु शीतोष्ण, वर्षा, दहन, छेदन, भेदनादिक करके सदा जो वो कष्ट भोगनेसें कर्म निर्जरा होती है, उसका नाम अकाम निर्जरा है, ऐसें तप प्रमुख करकें जो निर्जराकी वृद्धि करे, सो नवमी निर्जरा भावना जाननी

महा मोहांध पुरुष, शुचि माने है. तथा पानीके सौ (१००) घडोंमें स्नान करके सुगंधि, पुष्प, कस्तूरि प्रमुख द्रव्यों करके वासित्ली तथा तो कितनेक कालतांइ मुग्धजीव शुचि सुगंधित करते है, परंतु विष्टेका कोथ मध्य जागमें कैसें शुचि होवे? तथा बडे दर्प वृद्धिवाले द्रव्य करके वासि त है, दिशा, तथा चंदन, कस्तूरी, कपूर, अगरु, कुंकुम प्रमुख वस्तुका शरी रके साथ जब संबंध होता है, तब ए पूर्वोक्त सर्व वस्तु दुर्गंध रूप क्षण मात्रमें हो जाती है, फेर इस कायाकू कोन बुद्धिमान् शुचि मानता है? असे शरीरकी अशुचिरूपता विचार करके बुद्धिमान् पुरुष, इस शरीरकी ममत्व न करे यह छठी अशुचि जावना कही

७ सातमी आश्रवजावना कहते है मन, वचन, औ कायाके योग करके शुजाशुज कर्म जो जीव ग्रहण करते है, तिसका नाम आश्रव, जिनेश्वर देव कहते है सर्व जीवों विषे मैत्र जावना, गुणाधिक जीवमें प्रमोद जा वना, अविनीत शिष्यादिकमें मध्यस्थ जावना, दुःखी जीवोमें कारुण्यजा वना, इन चारो जावनाओ करके जिस पुरुषका अंतःकरण निरंतर वासि त होवे, वो पुण्यवान् जीव, बेतालीश प्रकारका पुण्य उपार्जन करता है तथा रौद्रध्यान, आर्त्तध्यान, पांच प्रकारका मिथ्यात्व, शोल प्रकारको कषा य, पांच प्रकारका विषय, इनो करके जिनोका मन वासित है, वे जीव, ब्या शी प्रकारका अशुज कर्म उपार्जन करते हैं, तथा सर्वज्ञ अर्हंत जगवंत, गुरु, सिद्धांत द्वादशांग, चार प्रकारका संघ, इन सर्वका जो गुणानुवाद कीर्त्तन करता है, अरु सत्य वचन हितकारी बोलता है, वे जीव, शुजकर्म उपार्ज्जन करते है तथा श्रीसंघ, गुरु सर्वज्ञ, धर्म, अरु धर्म्मी इन सबके जो अवर्णवाद बोले, जूठे मतका, वा कपोल कल्पित मतका जो उपदेश करे, वो जीव अशुज कर्म उपार्ज्जन करता है तथा जो पुरुष वीतराग देव की पुष्पादिके करी पूजा करे तथा साधुकी जक्ति, विश्रामण प्रमुख करे, तथा पापसें काया गुप्त करे, वो जीव, शुज कर्म उपार्ज्जन करता है तथा जो, जीव, मांसजक्षण, सुरापान, जीवघात, चोरी, जुआ, परस्त्रीगमनादिक करे, वो अशुज कर्म उपार्ज्जन करता है ए अनुक्रमसें मन, वचन, काया कर के शुजाशुज आश्रव उपार्ज्जन करता है, इस प्रकारसें यह आश्रव जावना जो जीव जावे है, सो अनर्थ परंपराकू त्याग देता है, अरु महानंदस्व

रूप, दुःख दावानलकूं मेघसमान ऐसी शर्मावलि मोक्षकी देने हारी अंगीकार करता है इस तरेसें सातमी आश्रवभावना भावे

८ आठमी संवरभावना कहते है, सो आश्रवोंका जो निरोध करना, तिसकू संवर कहते हैं, सो संवर दो प्रकारका होता है, एक देशसंवर, दूसरा सर्व संवर उसमें सर्व करिके संवर तो अयोगी केवलीमें होता है, अरु जो देशसे संवर है, सो एक दो प्रमुख आश्रवके निरोध करने वालेमें होता है तथा वली संवर दो प्रकारका है, एक द्रव्यसंवर, दूसरा भावसंवर, उस में जो कर्मपुद्गल आश्रव करकें जीव ग्रहण करता है, तिनका जो देशसें वा सर्वसें छेदन करना, सो द्रव्यसंवर अरु जो भव हेतु क्रियाका त्याग, सो भावसंवर मिथ्यात्व कषाय प्रमुख आश्रवोकों जो बुद्धिमान् उपाय करकें निरोध करे, अरु आर्त्त, रौद्र ध्यान जो बुद्धिमान् वर्ज्जे, धर्मध्यान शुक्लध्यान ध्यावे, क्रोधकूं क्षमा करके जीते, मानकू मृदुभाव करकें जीते, मायाकू सरलता करके जीते, लोभकूं संतोष करके जीते, इंद्रियोंके विषय इष्टानिष्टकूं राग द्वेषके त्यागनेसें जीते, इस प्रकारसे जो बुद्धिमान् संवरभा वना भावे, तो स्वर्ग मोक्षरूप लक्ष्मी अवश्य उसके वशीभूत हो जाती है

९ नवमी निर्ज्जरा भावना लिखते हैं संसारकी हेतुभूत जो कर्मकी संत ति है, तिसकी अतिशय करकें जो हानी करे, तिसका नाम निर्जरा है सो निर्जरा दो प्रकारकी है एक सकाम निर्जरा, दूसरी अकाम निर्जरा, इन दोनोमेंसू जो सकाम निर्जरा है, सो उपशांति चित्तवाले साधुकू हो ती है, अरु अकामनिर्ज्जरा, शेष जीवोंकू होती है शेष जीवोंकू जो अ काम निर्ज्जरा होती है, सो कर्मका पाक स्वयमेव होता है, अरु उपायसें भी कर्मका पाक होता है, जैसें आंबका फल स्वयमेवही वृक्षकी डालीमें लगा हूवाही पक जाता है, अरु कोद्रवादिक पलाल गर्त्तक्षेप करनेसेंभी पक हो जाता है, ऐसेही निर्जराभी दो प्रकारकी है हमारे कर्मोंकी निर्ज रा होवे ऐसे आशय वाले पुरुष जो तप प्रमुख करते हैं, उनोंके सकाम निर्जरा होती है, अरु एकेंद्रिय जो जीव है, तिनकू विशेष ज्ञान तो नहीं परंतु शीतोष्ण, वर्षा, दहन, छेदन, भेदनादिक करके सदा जो वो कष्ट भो गनेसें कर्म निर्जरा होती है, उसका नाम अकाम निर्जरा है, ऐसें तप प्रमुख करकें जो निर्जराकी वृद्धि करे, सो नवमी निर्जरा भावना जाननी

१० दशमी लोकस्वभाव भावना कहते है यह पृथिवी, चंद्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, तारे अरु लोकाकाश, नरक, स्वर्ग प्रमुख सर्व मिलाके एक लोक क हनेमे आता है, तिस संपूर्ण लोकका आकार जैनमतके सिद्धांतमें ऐसें लिखा है जैसे कोइ पुरुष जामा पहिरके कमरमें दोनों हाथ लगा कर ख डा होवे, जैसा उसका आकार है, ऐसाही लोकका आकार है, षद्द्रव्य करकें पूर्ण है, उत्पत्ति, स्थिति, अरु व्यय इन तीनों स्वरूपों करी संयुक्त है, अनादि अनंत है, किसीका रचा हूआ नहीं है, ऊर्ध्वलोक, अधोलोक, ति र्यग्लोक, इन तीन स्वरूपोमें वटा हूया है जो जीवपुजल, सब इसीके अं दर है, बाहिर नहीं लोकसें बाहिर तो केवल एक आकाशही है, वो आ काशभी अनंत है, इसी आकाशका नाम जैन शास्त्रोमें अलोक नाम कर के लिखा है, अधोलोकमें न्यारी न्यारी हेठ उपरि सात पृथिवी है, उनमें नरकवासी जीव रहते है, अरु किसी जगे भवनपति व्यंतरभी रहते हैं, तिरछे लोकमें मनुष्य अरु तिर्यंच और व्यंतर रहते है, ऊर्ध्व लो कमें देवता रहते है, विशेष करकें जो लोकस्वरूप देखनां होवे, तो लो कनाडी द्वात्रिंशतिकासे तथा लोकप्रकाश ग्रंथसे जान लेनां इसतरें लोक के स्वरूपका जो चिंतन करनां है, सो दशमी लोकस्वभावभावना है

११ अगीयारमी बोधिदुर्लभत्व भावना कहते हैं, पृथ्वी, पाणी, अग्नि, वायु, वनस्पति, इनमें अपणे करे हूये क्लिष्ट कर्मों करके जीव भ्रमण करता है, इस भ यानक संसारमें अनंतानंत पुजलपरावर्त्तन करता हूवा यह जीव अकाम नि र्जरा करकें, अरु पुण्य उपार्जन करकें, बेंद्रिय, त्रींद्रिय, चउरिंद्रिय, पंचेंद्रिय रूप त्रस पणा पावे है, फेर आर्यक्षेत्र, सुजाति, भला कुल, रोग रहित श रीर, संपदा, बडा राज्यसुख, हलके कर्म, तत्त्वातत्त्वके विवेचन करने वाली, बोधबीजके बोने वाली, कर्मक्षय करकें मोक्ष सुखोंकी जननी, ऐसी श्री सर्वज्ञ अर्हंतकी देशना मिलनी बहुत दुर्लभ है, जे कर जीव एक वारभी सम्यक्स्वरूप बोधि पालता, तो इतने काल तांइ कदापि संसारमें पर्यटन न करता, जो अतीत कालमें सिद्ध हूये, जो वर्त्तमानमें सिद्ध होते है, अरु जो अनागत कालमें सिद्ध होवेंगे, वे सर्व बोधिहीके माहात्म्य है, इस वास्ते भव्य जीवकूं बोधिकी प्राप्तिमें यत्न करनां चाहियें, क्योंकि कि

तनेक जीवोंने अनत वार द्रव्य चारित्र पाया है, परतु बोधिके बिना सर्व निष्फल हूवा. यह अगीआरमी नावना कही

-१२-बारमी धर्म कथाके कथन करनेवाला अर्हन् है यह नावना लिखते हैं जो पुरुष परहित करनेमे उद्यत है, अरु वीतराग है, वो किसी ज गामेंनी जूठ न बोलेगा ईस वास्ते उसके कहे हूये धर्ममें सत्यता है, असा तो लोकालोककूं केवलज्ञान करकें प्रकाश करनहार, अर्हतही हो सक्ता है, दूसरा नहीं क्षात्यादि दश प्रकारका धर्मकू जिनेश्वर कहते हूये उस धर्म करकें जीव, ससार समुद्रमें डूबता नहीं, जो अर्हतकी वाणी है, सो पूर्वापर अविरुद्ध है, अरु तिन वचनोंमें हिंसाका उपदेश नहीं. वचन जो कहते है, सो निर्ज्जरा वास्ते दूसरेका उपदेश बिना वि चित्र तरेंसें कह जाते है, तथा कुतीर्थीयोंके जो वचन हे सो सर्व सम तिके वैरी हैं, क्यों के यज्ञादिकोंमें पशुवध रूप हिंसा करकें क लकित हैं, पूर्वापरविरोधी है, निरर्थक वचननी बहुत हैं, इस वास्ते जो कुतीर्थी धर्म कहते हैं, वोनी धर्मानास हैं, धर्म नहीं ईस हेतुसे तिनका वचन किस तरें प्रमाण हो सक्ता है? अरु जो जो कुतीर्थीयोंके शास्त्रोंमे कहीं कहीं दया सत्यादिकोंका कथन है, सोनी कहनेही मात्र है, परतु तत्त्वमें वोनी कुछ नहीं है, क्यों के यथार्थ ईनका स्वरूप वे जानते नहीं हैं, अरु यथार्थ पालते नहीं है, प्रथम तो उन शास्त्रोंके जो उपदेशक हैं, वेही सर्व कामाग्निमे प्रज्वलित थे, यह बात सर्व सुज्ञ जनोंकों वि ज्ञात है, ईस वास्ते अर्हत नगवतही सत्यार्थके उपदेशक हैं, तथा बडे मदफर हाथीयोंकी घटा सयुक्त जो राज्यका पावनां, औ सर्व जनोंकों आ नद देने वाली सपदाका पावनां, तथा जो चद्रमाकी तरें निर्मल गुणका समूह पावनां, अरु जो उत्कृष्ट सौनाग्यका विस्तार पावनां, यह सवे धर्म हीका प्रनाव है, तथा समुद्र जो पृथिवीकूं अपणी कल्लोला करी वहाता नहीं है, तथा मेघ जो सर्व पृथिवीकू रेल पेल नहीं करता, अरु चद्रमा, सूर्य, जो उदय होते हैं, सर्व अधकारका विछेद करते हैं, सो सर्व जय वत धर्महीका प्रनाव है जिसका नाई नहीं, जिसका मित्र नहीं, जिस रोगीका कोई वैद्य नहीं, जिसके पास धन नहीं, जिसका कोई नाथ नहीं, जिसमें गुण नहीं, ईन सर्वका नाई, मित्र, वैद्य, धन, नाथ, गुणोंका निधान,

१० दशमी लोकस्वभाव भावना कहते हैं. यह पृथिवी, घट, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, तारे अरु लोकाकाश, नरक, स्वर्ग प्रमुख सर्व पदार्थ मिलके एक लोक इनेमें आता है, तिस संपूर्ण लोकका आकार जैनमतके सिद्धांतमें ऐसें लिखा है जैसे कोइ पुरुष जामा पहिरके कमरमें दोनों हाथ लगाके खडा होवे, जैसा उसका आकार है, ऐसाही लोकका आकार है, षट्द्रव्य करके पूर्ण है, उत्पत्ति, स्थिति,अरु व्यय इन तीनों स्वरूपों करी संयुक्त है, अनादि अनंत है, किसीका रचा हूआ नहीं है, ऊर्ध्वलोक, अधोलोक, तिर्छालोक, इन तीन स्वरूपोंमें वटा हूया है जो जीवपुद्गल, सब इसीके अंदर है, बाहिर नहीं लोकसें बाहिर तो केवल एक आकाशही है. वो आकाशभी अनंत है, इसी आकाशका नाम जैन शास्त्रोमें अलोक नाम करके लिखा है, अधोलोकमें न्यारी न्यारी हेठ उपरि सात पृथिवी है, उनमें नरकवासी जीव रहते हैं, अरु किसी जगे भवनपति व्यंतरभी रहते है, तिर्छे लोकमें मनुष्य अरु तिर्यंच और व्यंतर रहते है, ऊर्ध्व लोकमें देवता रहते है, विशेष करकें जो लोकस्वरूप देखना होवे, तो लोकनाडी द्वात्रिंशतिकासें तथा लोकप्रकाश ग्रंथसे जान लेना इसतरें लोकके स्वरूपका जो चिंतन करना है, सो दशमी लोकस्वभावभावना है

११ अगीयारमी बोधिदुर्लभत्व भावना कहते है, पृथ्वी, पाणी, अग्नि, वायु, वनस्पति, इनमें अपणे करे हूये क्लिष्ट कर्मों करके जीव भ्रमण करता है,इस भयानक संसारमें अनंतानंत पुद्गलपरावर्त्तन करता हूवा यह जीव अकाम निर्जरा करकें, अरु पुण्य उपार्जन करकें, बेंद्रिय, त्रींद्रिय, चउरिंद्रिय,पंचेंद्रिय रूप त्रस पणा पावे है, फेर आर्यक्षेत्र, सुजाति, भला कुल, रोग रहित शरीर, संपदा, बडा राज्यसुख, हलके कर्म, तत्त्वातत्वके विवेचन करने वाली, बोधबीजके बोने वाली, कर्मक्षय करकें मोक्ष सुखोंकी जननी, ऐसी श्री सर्वज्ञ अर्हतकी देशना मिलनी बहुत दुर्लभ है, जे कर जीव एक वारभी सम्यक्त्वरूप बोधि पालता, तो इतने काल ताइ कदापि संसारमें पर्यटन न करता, जो अतीत कालमें सिद्ध हूये, जो वर्त्तमानमें सिद्ध होते है, अरु जो अनागत कालमें सिद्ध होवेंगे, वे सर्व बोधिहीके माहात्म्य है, इस वास्ते भव्य जीवकूं बोधिकी प्राप्तिमें यत्न करनां चाहियें, क्योंकि कि

तिमाओंका एक वर्षमें परिकर्म एक वर्षमें प्रतिमा, ऐसें नव वर्षमें आदिकी सात प्रतिमा समाप्त करिये हैं

अथ जो यह प्रतिमा अंगीकार करता है, उसकूं कितना ज्ञान होता है? यावत् किंचित् न्यून दश पूर्व होता है, क्युंकि जिसकूं पूर्ण दश पूर्वकी विद्या होती है, उसका वचन अमोघ होता है, इस वास्ते उसकूं धर्मोपदेश देना चाहियें उसके उपदेशसें बहुत भव्योंकूं उपकार अरु तीर्थकी वृद्धि होनेसे प्रतिमादि कल्प करना चाहियें, अरु प्रतिमा अंगीकार करने वालोंकों जघन्य ज्ञान नवमे पूर्वकी तीसरी वस्तु, आचार वस्तु जिसका नाम हैं, तहां तांइ होवे. इतना ज्ञान सूत्र तथा अर्थ, दोनोही पूरे होवें, क्योंकि निरतिशय ज्ञानी होनेसे कालादिककों नहीं जान सकेगा, तथा "व्युत्सृष्ट" शरीरकी सार संभाल त्यागी है, देवतादिकका उपसर्ग सहै, जिनकल्पीकी तरें उपसर्ग सहै, तथा एषणापिंमग्रहण प्रकार, निक्षामग्रहण विधि, गछसें बाहिर रहे इत्यादि शेष वर्णन देखना होवे तो प्रवचनसारोद्धारकी वृद्धवृत्ति देख लेनी ए बारां प्रतिमा कही ॥१२॥

अथेंद्रियनिरोध कहते है "स्पर्शन रसना घ्राण चक्षु श्रोत्र चेति" यह पांच इंद्रिय अरु स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, शब्द, ए पांच, पूर्वोक्त पांच इंद्रियोंके यथाक्रम विषय हैं, इन पांचों विषयोंका निरोध करनां, क्यों के जो इंद्रिय वशमें न होंगी तो बडी अनर्थकारी होगी, अरु क्लेश सागरमें गेरेंगी॥ यदन्यधायि ॥ आर्या वृत्त ॥ सक्त शब्दे हरिण, स्पर्शे नागो रसे च वारिचर ॥ कृपणपतंगो रूपे, भुजगो गंधेन च विनष्ट ॥१॥ पंचसु सक्ताः पच, विनष्टा यत्र गृहीतपरमार्थां ॥ एक पंचसु सक्त, प्रयाति भस्मांततां मूढ ॥ २ ॥ तुरंगैरिव तरलतरैः, र्दुर्दंतैरिंद्रियै समाकृष्य ॥ उन्मार्गे नीयते, तमोघने दुःखदे जीव ॥ ३ ॥ अनुष्टुव्वृत्त ॥ इंद्रियाणां जये तस्मा, द्यत्न कार्य सुबुद्धिभि ॥ तज्जयो येन भविनां, परत्रे हचशर्मणे ॥४॥

अथ प्रतिलेखना जैन साधुओंमें प्रसिद्ध हैं, उस वास्ते नहीं लिखी

अथ तीन गुप्ति लिखते है मनोगुप्ति, वचनगुप्ति, कायागुप्ति ए तीन गुप्ति है इनका स्वरूप ऐसे है कि अच्छन मन, वचन, कायाका निरोध करणां, अरु अच्छी मन, वचन, कायाकी प्रवृत्ति करणी अभिप्राय यह हैकि, मनोगुप्ति तीन प्रकारकी हैं, आर्त्त, रौद्र ध्यानानुबंधी, कल्पनाका वियोग, ए प्रथम म

धर्म है तथा यह जो अर्हतका कथन कीया हुया धर्म है, सो महारत्न है, ऐसे जो नव्य जीव मनमें ध्यावे. सो धर्ममें हृढतर होवे. एकही मैत्र धर्म नावनाकू निरंतर जो जीव नावे, सो नव्य. अशेष पापकर्म नाश करके अनेक जीवांकू उपदेश द्वारा सुखी करके, परम पदकूं प्राप्त होता है, तो फेर जो बाराही नावना नावे, तिसके परमपद प्राप्ति होनेमें क्या आश्चर्य है? यह बारा नावना समाप्ति द्वार ५ है ॥ १२ ॥

अथ बारा प्रतिमा लिखते है एक मासमें ले कर सात मास पर्यंत एक एक मासकी वृद्धि जान लेनी. ए सात प्रतिमा होती है जैसें प्रथम एक मासकी, दूसरी दो मासकी, ऐसेंही एक एक मास वृद्धि कर सात मास पर्यंत सात प्रतिमा होती है, औ आठमी सात दिन रातकी, नवमी सात दिन रातकी, दशमी सात दिन रातकी, अग्यारमी एक दिन रातकी, अरु बारमी प्रतिमा एक रात्रि प्रमाण जाननी एव बारा प्रतिमा अभिग्रह, अरु प्रतिज्ञा, ए एकही नाम है

अथ जो साधु, इन बारा प्रतिमाकू अंगीकार कर सक्ता है, तिसका स्वरूप लिखते हैं "संहनधृतियुक्त" तहां जिसका संहननवज्रऋषभनाराच होवे, सो परीषह सहनेमें अत्यंत समर्थ होता है, "धृति" सो चित्तका स्वस्थपणा होवे, सो रति, अरति करके पीडित नहीं होता है, "महासत्त्व" महासात्त्विक जो होवे, सो अनुकूल, प्रतिकूल, उपसर्ग सहनेमें विषादकों नहीं धरता है, "नावितात्मा" सन्नावना करके वासित अंत करण होवे, तिसकी नावना पांच है तिनका विस्तार, व्यवहार नाष्यटीकासें जानना ए नावना कैसें नावे? जैसें आगममें है, तथा जैसें गुरु आचार्य आज्ञा देवे, जे कर गुरुही प्रतिमा अंगीकार करे, तदा नवीन आचार्य स्थापन करके उसकी आज्ञासें, तथा गच्छकी आज्ञा ले कर करे, तथा प्रथम आपणे गच्छमेंही रह कर प्रतिमा अंगीकार करणेका प्रतिकर्म करे, सो प्रतिकर्म यह है:—

मासादिक सात जो प्रतिमा हैं, तिनका प्रतिकर्मनी तितनाही है, वर्षाकालमें ए प्रतिमा नहि अंगीकार करी जाती है, अरु परिकर्मनी वर्षाकालमें नहीं करणां तथा आदिकी दो प्रतिमा एक वर्षमें होती है, तीसरी एक वर्षमें, चौथी एक वर्षमे, शेष पांचमी, छठी, सातमी, इन तीनों प्र

इत्यादि जैनमतके गुरु तत्त्वके स्वरूप लिखनेमें लखों श्लोक लिखे जायगे तोजी संपूर्ण जैनमतके गुरुका स्वरूप नहीं जाना जायगा, इस वास्ते थोडाहीसा स्वरूप लिखा है जेकर विशेष जाननेकी इछा होवे, तदा श्रीउंघनिर्युक्ति, श्रीआचारांग, दशवैकालिक, बृहत्कल्पजाष्य वृत्ति, पंचकल्प चूर्णी, जितकल्पवृत्ति, महाकल्पसूत्र, कल्पसूत्र, निशीथजाष्यचूर्णी, महानिशीथसूत्र, इत्यादि पदविजाग समाचारीके शास्त्र देख लेने

प्रश्न —जैसा जैनमतके शास्त्रोमें गुरुका स्वरूप लिखा है, वैसी वृत्तिवाला कोइजी जैनका साधु देखनेमें नहीं आता है, तो फेर जैनमतके साधुओंको इस कालमें गुरु क्यु कर मानना चाहियें?

उत्तर —तुमने किसी गीतार्थकी सगत नहीं करी होगी, क्योंकि जे कर जैनमतके चरण करणानुयोगके शास्त्र पढे होते, अथवा किसि गीतार्थ गुरुके मुखारविंदसें वचन रूप अमृत पान करा होता, तो पूर्वोक्त सशय रूप रोगकी कसमसी कदापि न उत्पन्न होती? क्योंकि जैनमतमें ठ प्रकारके निर्ग्रंथ कहे हैं इस कालमे जो जैनके साधु हैं, वे सर्व पूर्वोक्त ठ प्रकारमेंसें दो प्रकारके है, क्योंकि श्रीजगवती सूत्रके पच्चीशमे शतकके ठठे उद्देशेमें लिखा है, कि पंचम कालमें दो तरेंके निर्ग्रंथ होगें, उनोंसें तीर्थ चलेगा कषाय कुशील निर्ग्रंथ तो किसिमें परिणामापेक्षा होगा, मुख्य तो दोही रहेंगे अरु जो जैन शास्त्रोमें गुरुकी वृत्ति लिखी है, सो प्राय उत्सर्ग मार्गकी अपेक्षा है, और इस कालमें तो प्राय अपवाद मार्गकी प्रवृत्ति है, सो उत्सर्गवृत्तिवाले मुनि इस कालमें क्योंकर हो जावे? कदाचित् होइ नहीं सक्ते हैं क्योंकि न तो वो सहननवज्रऋषजनाराच हैं, न मनोबल वैसा है, न जीवोंकें वैसी श्रद्धा है, न वैसा देश काल है, न धैर्य है, तो फेर इस कालके जीव वैसी उत्सर्ग वृत्ति कैसें कर सके?

प्रश्न —जे कर वैसी वृत्ति इस कालमें नहीं तो उनकूं साधुजी काहेकू कहना चाहिये?

उत्तर —यह तुमारा कहना बहुत बे समजका है, क्यों के व्यवहारसूत्र जाष्यमें असें लिखा है ॥ गाथा ॥ पोरकरिणी आयारे, आणयण ते गाय गीयछे ॥ आयरिय उएए, आदरण डुति नायवा ॥ १ ॥ सछ परिसा ठक्काय, अहिगमो पिम्ह उत्तरिशाए ॥ रुस्के वसहे जूहे, जोहे सोहीय पु

नोगुप्ति शास्त्रानुसारी.परलोकके साधनेवाली धर्मध्यानानुबंधवाली.माध्यस्थ परिणति करणी. ए दूसरी मनोगुप्ति सपूर्ण शुनाशुन मनोवृत्तिका निरोध, अयोगी गुणस्थान अवस्थामें स्वात्मारामरूपता, ए तीसरी मनो गुप्ति.

वचनगुप्ति दो प्रकारकी है. वसमें मुख, नेत्र, नृविकार, अगुलीका ऊचा होना, खांसी करणी, हुंकारा करणा, पत्थर फेंकणा. इन पूर्वोक्त चेष्टावोंसें अपणा सूचन कराणा वर्जनां, ए प्रथम वचनगुप्ति. क्यों के जब चेष्टाद्वारा सर्व कुछ सूचन करा दीया, तब मौन रहना व्यर्थ है. बोलना, दूसरेके प्रश्नका उत्तर देनां, सो लोकसें अरु आगममें अविरोध होवे, और वस्त्रादिकसें मुखका यत्न करके बोलनां, ए दूसरी वचनगुप्ति, इन दोनों नेदों करके वचनका निरोध अरु सम्यक् नाषण रूप वचनगुप्ति जाननी.

कायागुप्ति दो प्रकारसे है एक चेष्टाका निषेध, दूसरी आगमानुसारें चेष्टाका नियम करणा तहां देवता मनुष्यादि उपसर्गमें क्षुधा तृषादि परीसहोके सन्नाव होया, जो कायोत्सर्ग करणादि करकें कायाकू निश्चल करणा, तथा अयोगी अवस्थामें जो सर्वथा कायाकी चेष्टाका निरोध करणा, ए प्रथम कायगुप्ति तथा गुरु प्रछन्न शरीर सस्तारक, नूम्यादि प्रतिलेखन, प्रमार्जनादि, जैसे शास्त्रमे है, तिसी तरें क्रियाकलाप पूर्वक शयनादिक साधुकू करणी, शयनासन लेना, रखनां, इन सर्व कृत्योमें स्वछंद चेष्टाका त्याग देनां, मर्यादा सहित कायाकी चेष्टा करणी ए दूसरी कायगुप्ति

अथ अभिग्रह प्रतिज्ञा लिखते हैं सो अभिग्रह इव्य, क्षेत्र, काल अरु नाव करि चार प्रकारके हैं, इसका विस्तार प्रवचनसारोद्धार वृत्तिमे है, ए करणसित्तरीकी गणती कहते है यद्यपि आहारादिकके बैतालीस दूषण हैं, तथापि पिंम, शय्या, वस्त्र, पात्र, ए चारही वस्तु सदोष नहीं ग्रहण करणी इस वास्ते सख्यामें ए चारही दूषण लिये हैं तथा पांच समिति, बारा नावना, बारा प्रतिमा, पांच इंद्रियनिरोध, पच्चीश प्रतिलेखना, तीन गुप्ति, चार अभिग्रह, ए सर्व एकठे करेसे सित्तरे, करण सित्तरीके नेद हैं

प्रश्न —चरण सित्तरी औ करण सित्तरी, ए दोनोमें क्या विशेष है?

उत्तर —जो नित्य करनां सो चरण, अरु जो प्रयोजन हुआ तो कर लेनां, औ प्रयोजन नहीं होवे तदा न करणां, सो करण यह इनका नेद है ए चरण सित्तरी औ करण सित्तरीके नेद समाप्त हुये हैं

मे कालमें साधु श्रैसाज्ञी होवे, तोज्ञी संयमी कहनां चाहियें, तथा नि शीथमेज्ञी लिखा है ॥ जाप्य गाथा ॥ जा संजमया जीवे, सु ताव मूले गु णुत्तर गुणाय ॥ इत्तरियछेय सजम, नियंठवउ सा पडिसेवी ॥ १ ॥ इस गाथाकी चूर्णीकी जाषा लिखते हैं, बकायोंके जीवों विषे जब तांइ दयाके परिणाम है, तब तांइ वकुश निर्ग्रंथ श्री प्रतिसेवना निर्ग्रंथ रहेंगे, इसवास्ते प्रवचन शून्य श्री चारित्र रहित पंचमकाल कदापि न होवे गा, तथामूलोत्तरगुणोमें दूषण लगनेसे तत्काल चारित्र नष्टजी नहीं होता, मूलगुणजंगमें वो दृष्टांत है, उत्तरगुण जंगमे मम्पका दृष्टांत है, निश्चयनयमे एक व्रत जग हूया सर्व व्रत जग हो जाता है, परंतु व्यवहारनयके मतसें जो व्रत जग होवे, सोइ जंग होवे दूसरे नहीं इस वास्ते बहुत अतिचारके लगनेसें सयम नहीं जाता, परतु जो कुशील सेवे, अरु धन रखे, श्री कच्चा सचित्त पानी पीवे, प्रवचन अनपेक्ष, वो साधु नहीं जहां तांइ छेद प्रायश्चित्त लगे, तहां तांइ संयम सर्वथा नहीं जाता तथा जो इस कालमें साधु न माने, सो मिथ्यादृष्टि है, क्यों कि स्थानां गसूत्रमें लिखा है, जो अतिचार बहुत लगते देखके श्री आलोचना प्रा यश्चित्त यथार्थ कोइ लेता देता नहीं है, इस वास्ते साधु कोइ नहीं जो श्रैसे कहे के वो चारित्र जेदिनी विकथाका करनेवाला है, तथा श्रीजगवती सू त्रके पच्चीशमे शतकके छठे उद्देशेकी सग्रहणीकार श्रीमदजयदेवसूरि, इन दोनो निर्ग्रंथोका जो स्वरूप है सो लिखते हैं, सो इहां जापामें प्रगट लिखा जाता है ॥ गाथा ॥ बउसं सबलं कब्बर, मेगठतमिह जस्स चारि त्तं ॥ अइयार पकजावा, सो बउसो होइ निग्गथो ॥ १ ॥ व्याख्या—बकु श, शबल, कर्बुर, ए तीनो एकार्थ हैं एकही वस्तुकों कहते हैं, श्रैसा है चारित्र जिसका, अतिचार रूपपंक होनेसें सो बकुशनामा निर्गंथ है, इस जारत वर्षमें इसकालमें बकुश श्री कुशील ए दोनो निर्ग्रंथ हैं, शेष तीनो तो व्यवछेद हो गये हैं ॥ तथा चोक्त परम मुनिजि ॥ "बकुश कुशी ला दो पुण, जातिछ तावहो हति इति ॥" इसका अर्थ बकुश कुशील ए दोनो निर्ग्रंथ जहां लग तीर्थ रहेगा तहां तक रहेंगे,

अब जो बकुश निर्ग्रंथ है, तिसके दो जेद हैं, सो कहते हैं तहां जो वस्त्र पात्रादि उपकरणकी विजूषा करे सो उपकरण बकुश, ए प्रथम जेद

करिणी ॥२॥ "दार गाहा दो" इन दोनो द्वार गाथाका व्याख्यान भाष्यकारने पंदरा भाष्यगाथा करके कीया है. जे कर भाष्यगाथा देखनेकी इछा होवे, तो व्यवहारभाष्य देख लेनी. इहां तो उन पंदरा गाथाओंका अर्थ भाषामे लिख देता हुं. अर्थ —जैसीयों पूर्वकालमे कुसुमित फूलों वालियों पुष्करिणीयो बावडीयां थी. वैसे फूलो वालीयों अब है नहीं, तोभी पुष्करिणीयो बावडीयां तो है, लोक इन सामान्य बावडीयोंमे अपना कार्य करते है ॥ १ ॥ तथा संपूर्ण आचारप्रकल्प, नवमे पूर्वमे था. उस नवमे पूर्वसे उद्धार करके पूज्यपाद वैशाख गणिने निशीथ रचा, तो क्या उस निशीथकूं आचारप्रकल्प न कहना चाहियें? ॥ २ ॥ पूर्वकालमे तालो द्घाटिनी, अवस्वापिनी आदिक विद्याके धारक चोर थे, औ इस कालमें वो विद्या तो नहीं है, तो फिर क्या चोरी करने वालोंकू चोर न कहना चाहियें? ॥३॥ पूर्वकालमे तो चौदह पूर्वके पाठीकूं गीतार्थ कहते थे, तो इस कालमे जघन्य आचार प्रकल्प, निशीथ औ मध्यम आचार प्रकल्प बृहत्कल्पके पढे हूयेकू इस कालमें क्या गीतार्थ न कहना चाहियें? ॥४॥ पूर्वकालमें श्रीआचारागका शस्त्रप्रज्ञा अध्ययनके पढनेसें, छेदोपस्थापनीय चारित्रमें स्थापन करते थे, तो क्या अब दशवैकालिकके छ जीवनीय अध्ययनके पढनेसें न स्थापन करना चाहियें? ॥ ५ ॥ दूसरे ब्रह्मचर्यके पांचमे उद्देशमें जो आमगंधी सूत्र है, उस सूत्रानुसार पूर्वे मुनि आहार ग्रहण करते थे, तो क्या अब पिंमेषणा अध्ययन अनुसारें न करना चाहियें? ॥ ६ ॥ पूर्वे आचारांगके पीछे उत्तराध्ययन पढते थे, तो क्या अब दशवैकालिकके पीछे न पढना चाहियें? ॥ ७ ॥ पूर्वे मत्तांगादिक दश प्रकारके वृक्ष थे, तो क्या अब अवादिक वृक्ष न कहने चाहियें? ॥ ८ ॥ पूर्वे बहुत गौवोंके समूहवाले नव गोपकूं ग्वाल कहते थे, तो क्या अब थोडी गौवों वालेकूं ग्वाल न कहना चाहियें? ॥ ९ ॥ पूर्वे सहस्र मल्ल योद्धे थे, तो अब क्या किसीकूं योद्धा न कहना चाहियें? ॥ १० ॥ पूर्वे छ मासी तपका प्रायश्चित्त था, तो क्या उसके बदले निवी प्रमुख प्रायश्चित्त न लेना चाहियें? ॥ ११ ॥ इसी तरें जो पूर्वकाल मुनियोंकी वृत्ति नहीं, तो क्या आचार्य वा साधु न कहना चाहियें? किंतु जरूरही साधु मानना चाहियें तथा जीवानुशासन सूत्रकी वृत्तिमेंभी लिखा है कि पांच

कुश निर्ग्रंथ परिवार प्रमुखकी ऋद्धि वांछता है ॥ गाथा ॥ पंडिच्च तवाइ क यं, जस च इछेइ तंमि तुस्सइय ॥ सुहसीलो नयवाढं, जयइ अहोरत्त किरि यासु ॥ १ ॥ व्याख्या —पंडितपणे करी तथा तपादि करकें यशकी इछा करे, तिस यशके हुवे थके बहुत खुशी माने, औ सुखशीलिया होवे, औ दिन रात्रिकी क्रिया समाचारीमें बहुत उद्यमीभी नहीं होवे ॥ गाथा ॥ परि वारो य असजम, अविवित्तो होइ किंचि एयस्स ॥ घसिय पाउ तिल्लाइ, मासणि कित्तरिय केसो ॥ १ ॥ व्याख्या —इसका जो परिवार होवे, सो अ सयमी कहते असयम वाला होवे, वस्त्र पात्रादिकके मोहसें वस्त्र पात्रादि कसें दूर न जावे पग, जोजावे आदिकसे औ तैलादिक चोपडके सुकुमा र करे, औ शिर, दाढी, मूछके बाल, कतरणीसें कापे, (कतरे) एतावता लोचकी जगें उस तरें, वा कतरणीसें बाल दूर करे, परंतु लोच न करे ॥ गाथा ॥ तह देस सव्वछेयारि, देहिं सबलेहीं सजुउ बउसो ॥ मोहरकयछ मप्पु,छिउय सुत्तंमि भणियं च ॥ १ ॥ व्याख्या —तथा देशछेद सर्वछेद योग्य दोषों करी जिसका चारित्र कर्बुर है, परतु मनमें उसके मोहक्षय करनेकी इ छा है, एतावता मनमें सयम पालनेमें उत्साह है, परंतु पूर्ण सयम पाल नहीं सक्ता, इन पूर्वोक्त कृत्यों करी सयुक्त होवे, उसकू बकुशनिर्ग्रंथ कहियें औ सूत्रमेंभी कहा है, सो यह आगें लिखते हैं ॥ गाथा ॥ उवगरण देह चु स्का, रिद्धि रसगारवासिया निच्चं ॥ बहु सबल छेय जुत्ता, निग्गथा बउसा भ णिया ॥ १ ॥ आभोगे जाणतो, करेइ दोस अयाण मण भोगे ॥ मूलुत्तरे हि सवुम, विवरिय असवुडो होइ ॥ २ ॥ अछि मुह मज्जमाणो, होइ अहा सु हमउ तहा बउसो ॥ सील चरण ज जस्स, कुछियं सो इह कुसीलो ॥ ३ ॥ पडिसेवणा कसाए, डुहा कुसीलो डुहावि पंचविहो ॥ नाणे दसण चरणे, तवेय अह सुहुमए चेव ॥ ४ ॥ इह नाणाइ कुसीलो, उवजीव होइ नाण पभिईए ॥ अह सुहुमो पुण तुस्सई, एस तवसत्ति ससए ॥ ५ ॥ इन पांचो गाथाओंकी व्याख्या —उपकरण देह चुक्ष रक्के, ऋद्धि, रश, साता, ए तीनो गारवमें नित्य आश्रित होवे, उपकरणोंसें अविविक्त रहे, परिवार जिसका छेद योग्य शबल चारित्र सयुक्त सो निर्ग्रंथ बकुश कहते है ॥१॥ साधुओंके यह करने योग्य नहीं, ऐसें जानताभी है, तोभी उस कामकू करता है, सो प्रथम आभोग बकुश कहियें अरु अनजानपणेसें अकृत करे, तिसकू अ

औ जो हाथ, पग, नख, मुखादिक देहके अवयवोंकी विभूषा करे, सो शरीरबकुश, ए दूसरा भेद जानना. ए दोनों भेदोंके पांच भेद है ॥ गाथा ॥ उवगरणसरीरेसु, सो दुहा दुविहोवि होइ पंचविहो ॥ आभोग अणाभोग, असवुड सवुडे सुहुमे ॥ १ ॥ अर्थ —प्रथम दो पदोंका अर्थ तो ऊपर लिखा है, अगले दो पदोंका अर्थ लिखते है. साधुकुं यह करने योग्य नही, ऐसें जानताभी है, तोभी उस कामको जो करे, सो प्रथम आभोग बकुश, और जो अजाण पणेंसें करे सो दूसरा अनाभोग बकुश मूलगुण, उत्तर गुणोमें जो छिप कर छाना दोष लगावे, सो तीसरा संवृत बकुश, जो मूलगुण उत्तरगुणोंमे प्रगट दूषण लगावे, सो चोथा असंवृत बकुश. नेत्र, नासिका, मुखादिककी जो मल दूर करे, सो पांचमा सूक्ष्म बकुश जानना

अथ जो उपकरन बकुश है, तिसका स्वरूप लिखते है ॥गाथा॥ जो उपगरणे बउसो, सो धुवइअ पाउसे विवहइ ॥ इछइय लण्हयाइं, किंचिवि भूसाइ भुंजइय ॥ १ ॥ व्याख्या —जो उपकरण बकुश है, सो प्रावृट् (पावस) ऋतु विनाभी जल क्षारसें वस्त्र धोता है, पावस ऋतुमें तो सर्व गछवासी साधुवोकू आज्ञा है, जो एक वार वर्षासें पहिले आपणें सर्व उपकरण जल क्षारसें धो लेवे, नहीं तो वर्षाऋतुमे मलके संसर्गसें निगोदादिक जीवोंकी उत्पत्ति हो जावेगी, औ यह जो बकुशनिर्ग्रंथ है, सो पावस ऋतु बिना अन्य ऋतुवोंमेंभी जल क्षारसे वस्त्रादिक धो लेता है, औ बकुश निर्ग्रंथ, सुंदर, सुकुमाल, वस्त्रभी वांछता है, और उपकरण विभूषा शोभाके वास्तेभी कछुक पहिरता है॥ गाथा ॥ तह पत्त दंडयाई, घट्ठ मट्ठ सिणेह कयतेय ॥ धारेइ विभूसाए, बहु च पेछेई उवगरणं ॥ १ ॥ व्याख्या —तथा पात्र, दंड प्रमुख घोटेसें घोटके सुकुमार करे, तथा घी, तेल प्रमुख करी चोपडके तेजवंत चमकदार करकें रखे, अरु विभूषाके वास्ते बहुत उपकरण रखने चाहे, एतावता रखे

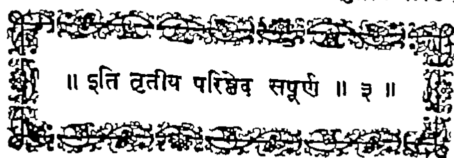
अथ शरीर बकुशका स्वरूप लिखते हैं ॥ गाथा ॥ देह बउसो अकजे, करचरण नहाइयं विभूसेइ ॥ दुविहोवि इमो इट्ठिं, इछइ परिवार पभिईय ॥ १ व्याख्या —देहबकुश जो है, सो विना कारण हाथ, पग, नखादिककी विभूषा करे, जलादिसें धोवे, ऐसे उपकरण औ शरीर ए दोनो प्रकारका ब

कुश निर्ग्रंथ परिवार प्रमुखकी ऋद्धि वांछता है ॥ गाथा ॥ पंमिच्च तवाइ क र्य, जस च इछेइ तंमि तुस्सइय ॥ सुहसीलो नयवाढ, जयइ अहोरत्त किरि यासु ॥ १ ॥ व्याख्या –पंमितपणे करी तथा तपादि करकें यशकी इछा करे, तिस यशके हुवे थके वहुत खुशी माने, औ सुखशीलिया होवे, औ दिन रात्रिकी क्रिया समाचारीमें वहुत उद्यमीजी नहीं होवे ॥ गाथा ॥ परि वारो य असंजम, अविवित्तो होइ किंचि एयस्स ॥ घंसिय पाउ तिल्लाइ, मासणि कित्तरिय केसो ॥ १ ॥ व्याख्या –इसका जो परिवार होवे, सो अ सयमी कहते असयम वाला होवे, वस्त्र पात्रादिकके मोहसें वस्त्र पात्रादि कसें दूर न जावे पग, जोजावे आदिकसे औ तैलादिक चोपडके सुकुमा र करे, औ शिर, दाढी, मूछके वाल, कतरणीसें कापे, (कतरे) एतावता लोचकी जगें उस तरें, वा कतरणीसें वाल दूर करे, परंतु लोच न करे ॥ गाथा ॥ तह देस सवछेयारि, हेहिं सवलेहीं सजुउ वउसो ॥ मोहखयछ मभु,छिउय सुत्तंमि जणियं च ॥ १ ॥ व्याख्या –तथा देशछेद सर्वछेद योग्य दोषों करी जिसका चारित्र कर्बुर है, परंतु मनमें उसके मोहक्षय करनेकी इ छा है, एतावता मनमें सयम पालनेमें उत्साह है, परतु पूर्ण सयम पाल नहीं सक्ता, इन पूर्वोक्त कृत्यों करी सयुक्त होवे, उसकू वकुशनिर्ग्रंथ कहियें औ सूत्रमेंजी कहा है, सो यह आगें लिखते हैं ॥ गाथा ॥ उवगरण देह चु क्खा, रिद्धि रसगारवासिया निच्च ॥ वहु सवल छेय जुत्ता, निग्गथा वउसा न णिया ॥ १ ॥ आजोगो जाणतो, करेइ दोस अयाण मण जोगे ॥ मूलुत्तरेहिं सवुम्, विवरिय असवुमो होइ ॥ २ ॥ अछि मुह मज्जमाणो, होइ अहा सु हमउ तहा वउसो ॥ सील चरण जं जस्स, कुछियं सो इह कुसीलो ॥ ३ ॥ पडिसेवणा कसाए, डुहा कुसीलो डुहावि पंचविहो ॥ नाणे दसण चरणे, तवेय अह सुहुमए चेव ॥ ४ ॥ इह नाणाइ कुसीलो, उवजीव होइ नाण पजिईए ॥ अह सुहुमो पुण तुस्सई, एस तवसत्ति ससए ॥ ५ ॥ इन पांचो गाथाओंकी व्याख्या –उपकरण देह मुछ रखे, ऋद्धि, रश, साता, ए तीनो गारवमें नित्य आश्रित होवे, उपकरणोंसें अविविक्त रहे, परिवार जिसका छेद योग्य शवल चारित्र सयुक्त सो निर्ग्रंथ वकुश कहते है ॥१॥ साधुओंके यह करने योग्य नहीं, ऐसें जानताजी है, तोजी उस कामकू करता है, सो प्रथम आजोग वकुश कहियें अरु अनजानपणेसें अकृत करे, तिसकू अ

नाभोग वकुश कहिये, ए दूसरा भेद मूलोत्तर गुणों करी संयुक्त है. जो ऐसे जानते है, परंतु छाना (गुप्त) दोष लगावे है. तिसकूं संवृत बकुश कहिये ए तीसरा भेद अरु जो प्रगट मूलोत्तर गुणमें दोष लगावे, तिसकूं असंवृत बकुश कहिये ए चौथा भेद ॥ ४ ॥ तथा जो आंख मुखादि मांजे, मलादि दूर करे. सो यथा सूक्ष्मबकुश कहिये. ए पांचमा भेद

अथ कुशील निर्ग्रंथका स्वरूप लिखते है. शील कहिये चारित्र सो चारित्र जिसका कुत्सित है. सो कुशील निर्ग्रंथ, इसके दो भेद है ॥३॥ एक प्रतिसेवना कुशील, दूसरा कषायों करी कुशील, सो सञ्चलनकी कषाया करकें जो कुशील सो कषाय कुशील, ए दोनोंही भेद पांच प्रकारसें है. सो कहते हैं, जो १ ज्ञान, २ दर्शन, ३ चारित्र, ४ तप, ५ यथा सूक्ष्मत ॥४॥ इहां ज्ञानादि कुशील तो जो ज्ञान, दर्शन, चारित्र, अरु तप, यह चारो आजीविकाके वास्ते करे, सो इन चारोंका प्रतिसेवना कुशील तथा एह तपस्वी है, इत्यादि प्रशंसा सुणके बहुत खुशी होवे, सो पांचमा यथासूक्ष्मप्रतिसेवना कुशील जाननां तथा जो १ ज्ञान, २ दर्शन, ३ तपांसि तप, सञ्चलन, कषायके उदय करकें इनका व्यापार करे, सो ज्ञान, दर्शन, चारित्रका कषाय कुशील जानना जो कषाय कुशील है, सो कषायके वश हो कर के शाप दे देता है, मन करकें जो क्रोधादिकोको सेवे, सो यथासूक्ष्मकषायकुशील, अथवा कषायों करकें जो ज्ञानादिकोंकों विराधे, सो ज्ञानादिक कुशील जाननां काइक आचार्य, तप कुशीलके स्थानमे लिंगकुशील कहते हैं, यह दो प्रकारके निर्ग्रंथ पांचमे आरेके पर्यंत तक रहेंगे जो कोइ इस तरेके साधुकू साधु वा गुरु न माने, वो जीव, मिथ्यादृष्टि बहुल संसारी जिनमतका उत्थापक है, ऐसे मिथ्यादृष्टिकी संगतभी करनी योग्य नहीं ॥

इतिश्री तपगच्छीये मुनिश्री बुद्धिविजयशिष्य मुनिआनंदविजय आत्माराम विरचिते, जैनतत्त्वादर्शे गुरुतत्त्वस्वरूपनिर्णयनामा तृतीय परिछेद संपूर्ण ॥३



॥ अथ चतुर्थपरिछेद प्रारंभ ॥

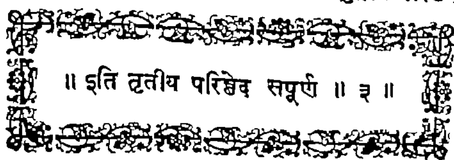
॥ यह चतुर्थ परिछेदमें कुगुरु तत्त्वका स्वरूप लिखते हैं ॥ श्लोक ॥ सर्वा भिलाषिण सर्वे, भोजिन सपरिग्रहा ॥ अब्रह्मचारिणो मिथ्यो, पदेशागुर वोमता ॥ १ ॥ अस्यार्थ –(सर्वाभिलाषिण) सर्वे जो स्त्री, धन, धान्य, हिरण्य, (सोना) रूपादि सर्वे धातु तथा क्षेत्र, वास्तु क्षेत्र(खेत) हाट, हवे ली, चतु पदादिक अनेक प्रकारके पशु, इन सर्वेकी अभिलाषा करनेका शील है जिसका, सो सर्वाभिलाषी, तथा (सर्वभोजिन) सो सर्वे मद्य, मांसादिक बावीश अभक्ष्य, तथा बत्तीस अनतकाय, तथा अपर जो अ नुचित्त आहारादिक है, इन सर्वका भोजन करनेका शील है जिसका सो सर्वभोजिन (सपरिग्रहा) जो पुत्र, कलत्र, बेटा, बीटी प्रमुख करी स हित वर्ते, सो सपरिग्रह इसी वास्ते अब्रह्मचारी है जो अब्रह्मचारी होता है, तिसमें महा दोष होते है, इस वास्ते अब्रह्मचारी ऐसा न्यारा उप न्यास कह्या है, अथ अगुरुपणेका असाधारण कारण कहियें है, (मि थ्योपदेशा) मिथ्या (वितथ) आप्तके उपदेश विना धर्मका उपदेश है जिनका सो अगुरु है, जे कर इहां कोइ ऐसी तर्क करे जो धर्मोपदेशका दाता है, सो गुरु है, तो फेर नि परिग्रहादि गुणोंका काहेकू अन्वेषण कर णां ? इस शंकाके दूर करणे वास्ते दूसरा श्लोक फेर कहते हैं

॥ श्लोक ॥ परिग्रहारंभमग्ना, स्तारयेयु कथ परान् ॥ स्वयं दरिद्रो न पर, मीश्वरीकर्तुमीश्वर ॥ २ ॥ अर्थ –परिग्रह इत्यादि आरंभ जीवोंकी हिंसा सर्वाभिलाषीपणा, औ सर्व भोजिपणां इन दोनो वस्तुओंमें जो मग्न है, औ भवसमुद्रमें डूबा हूआ है, वो किसतरेंसें दूसरे जीवोंकू ससार सागरसें तार सक्ता है ? इस बातमें दृष्टांत कहते हैं, कि जो पुरुष आपही दरद्री है, वो दूसरोंको क्युं कर धनाढ्य कर सक्ता है ? प्रथम श्लोकके चोथे पदमें “मि थ्योपदेशागुरवोमता ” इस पदका विस्तार लिखते हैं, कुगुरु जो हैं, उनका उपदेश इस प्रकारसें मिथ्या है इस मिथ्या उपदेशके स्वरूपहीमें प्रथम तीन सौ त्रेशठ मतका स्वरूप लिखते है, उनमें एक सौ अस्सी मत तो क्रिया वादीके है, औ चौरासी मत, अक्रियावादीके हैं, औ सदसठ मत, अज्ञानवा दीके है, अरु बत्तीस मत, विनयवादीके हैं, ए पूर्वोक्त सर्व मत एकत्र कर नेसें तीन सौ त्रेशठ होते हैं

नाभोग बकुश कहिये, ए दूसरा भेद. मूलोत्तर गुणों करी संवृत है. लोक ऐसे जानते है. परंतु छाना (गुप्त) दोष लगाते है. तिसकूं संवृत बकुश कहिये ए तीसरा भेद. अरु जो प्रगट मूलोत्तर गुणमें दोष लगाते, तिसकूं असंवृत बकुश कहिये ए चौथा भेद ॥ २ ॥ तथा जो आंख मुखादि मांजे, मलादि दूर करे. सो यथा सूक्ष्मबकुश कहिये. ए पांचमा भेद

अथ कुशील निर्ग्रंथका स्वरूप लिखते है. शील कहिये चारित्र सो चारित्र जिसका कुत्सित है. सो कुशील निर्ग्रंथ, इसके दो भेद है ॥३॥ एक प्रतिसेवना कुशील, दूसरा कषायों करी कुशील, सो सञ्ज्वलनकी कषायों करके जो कुशील सो कषाय कुशील, ए दोनोंही भेद पांच प्रकारमें है. सो कहते हैं, जो १ ज्ञान, २ दर्शन, ३ चारित्र, ४ तप, ५ यथा सूक्ष्मत ॥४॥ इहां ज्ञानादि कुशील तो जो ज्ञान, दर्शन, चारित्र, अरु तप, यह चारो आजीविकाके वास्ते करे, सो इन चारोंका प्रतिसेवना कुशील तथा एह तपस्वी है, इत्यादि प्रशंसा सुणके बहुत खुशी होवे, सो पांचमा यथासूक्ष्मप्रतिसेवना कुशील जाननां तथा जो १ ज्ञान, २ दर्शन, ३ तपोसि तप, सञ्ज्वलन, कषायके उदय करकें इनका व्यापार करे, सो ज्ञान, दर्शन, चारित्रका कषाय कुशील जाननां जो कषाय कुशील है, सो कषायके वश हो कर के शाप दे देता है, मन करकें जो क्रोधादिकोकों सेवे, सो यथासूक्ष्मकषायकुशील, अथवा कषायो करकें जो ज्ञानादिकोंकों विराधे, सो ज्ञानादिक कुशील जाननां कोइक आचार्य, तप कुशीलके स्थानमें लिंगकुशील कहते हैं, यह दो प्रकारके निर्ग्रंथ पांचमे आरेके पर्यंत तक रहेंगे जो कोइ इस तरेके साधुकूं साधु वा गुरु न माने, वो जीव, मिथ्यादृष्टि बहुल संसारी जिनमतका उत्थापक है, ऐसे मिथ्यादृष्टिकी संगतभी करनी योग्य नहीं ॥

इतिश्री तपगच्छीये मुनिश्री बुद्धिविजयशिष्य मुनिआनंदविजय आत्माराम विरचिते, जैनतत्त्वादर्शे गुरुतत्त्वस्वरूपनिर्णयनामा तृतीय परिछेद संपूर्ण ॥३



नहीं होते हैं, तथा षट् ऋतुवोंका विनाग, तथा बाल, कुमार, यौवन, औ पलितादिक अवस्था विशेष काल विना नहीं हो सक्ती हैं, जो जो प्रति नियत काल विनागादिक हैं, तिन सबका कालही नियंता है, जे कर कालकों नियंता न मानीयें, तो किसी वस्तुकीनी व्यवस्था नहीं होवेगी, क्यों कि जैसे कोइ पुरुष, मूग रांधता है, सो नी काल बिना नहीं रांधे जाते हैं, नहीं तो हांमी इंधनादि सामग्रीके संयोगसें प्रथम समयेहीमें मूंग रंध जाते ? तिस वास्ते जो करता है, सो कालही करता है, तथाचोक्त ॥ न कालव्यतिरेकेण, गर्नबाल शुनादिक ॥ यत्किंचिज्जायते लोके, तदसौ कारण किल ॥ १ ॥ किंचित्कालादृते नैव, मुजपंक्तिरपीक्ष्यते ॥ स्थाल्यादि सन्निधानेऽपि, तत कालादसौ मत ॥ २ ॥ कालनावे च गर्नादि,सर्वं स्याद व्यवस्थया ॥ परेष्टहेतुसन्नाव, मात्रादेव तड्डवात् ॥ ३ ॥ इन श्लोकोंका नावार्थ उपर लिख आये हैं तथा ॥ काल पचति नूतानि, काल संहरते प्रजा ॥ काल सुप्तेषु जागर्त्ति, कालोहि डुरतिक्रम ॥ ४ ॥ इहां परेष्ट हेतुके सन्नाव मात्रादिकसें दूसरायोंने जो मान्या है, कि स्त्री पुरुषके संयोग मात्र हेतुसें गर्नकी उत्पत्ति, सो एक वर्षके स्त्री पुरुषके संयोगसें क्यों नहीं हो जाते है ? इस वास्ते कालही गर्नकी उत्पत्तिका हेतु है,तथा जब स्त्रीकूं गर्न होनेमें ऋतुकाल है तिसके विना स्त्री पुरुषके संयोगसें क्यों नहीं गर्न होता है ? तथा कालही पकाता है, औ कालही पृथिवी आदिक नूतोंकों परिणामांतरकों पहुंचाता है, तथा "काल संहरते प्रजा" कालही पूर्व पर्यायसें पर्यायांतरमें लोकोंकों स्थापन करता है तथा "काल सुप्तेषु जागर्त्ति" कालही सूते हूये जनोंकी रक्षा करता है तिस वास्ते प्रगट है कि काल डुरतिक्रम है, कालकों दूर करणेमें कोइनी समर्थ नहीं है, यह कालवादीका विकल्प है ॥ १ ॥

इसी तरें दूसरा विकल्पनी कह देनां परंतु कालकी जगे ईश्वर कह देनां "यथा अस्ति जीव स्वतो नित्य ईश्वरत" जीव, अपणे स्वरूप करकें नित्य है परंतु ईश्वर उत्पन्न करता है, क्योंकि ईश्वरवादी सर्व जगत् ईश्वरहीका करा हूया मानते हैं, ईश्वर उसकू कहते हैं, कि जिसके १ ज्ञान, २ वैराग्य, ३ धर्म, ४ ऐश्वर्य, ए चारो स्वत सिद्ध होवें, अरु जीवोंकों स्वर्ग, मोक्ष, नरकादिकके जानेमें जो प्रेरक होवे ॥ तडुक्त ॥

तीनमें जो क्रियावादी है सो ऐसे कहते है कि कर्ताके बिना पुण्यपापादिलक्षण क्रिया नहीं होती है, तिस वास्ते क्रिया जो है, सो आत्माके साथ समवाय संबंधवाली है. ऐसे कहनेका शील स्वभाव है जिनका सो क्रियावादी है. यह जो क्रियावादी है, सो आत्मादिक नव पदार्थोंको एकांत अस्तिस्वरूप पणे माने है, तिस क्रियावादीके एक सौ अस्सी मत इस उपाय करकें जान लेने, १ जीव, २ अजीव, ३ आश्रव, ४ बंध, ५ संवर, ६ निर्जरा, ७ पुण्य, ८ अपुण्य, ९ मोक्ष, यह नव पदार्थ अनुक्रम करकें पट्टी पत्रादिकम लिखने. फेर जीव पदार्थके हेठ स्वत अरु परत यह दो भेद स्थापन करने फेर इन स्वत परत के हेठ न्यारे न्यारे नित्य अरु अनित्य यह दो भेद स्थापन करने फेर नित्य अनित्यके इन दोनोंके हेठ न्यारे न्यारे १ काल, २ ईश्वर, ३ आत्मा, ४ नियति, ५ स्वभाव, यह पांच स्थापन करने, पीछेसें विकल्प कर लेनें, सो आगें लिखते है पत्रस्थापना ॥

जीव			
स्वत		परत	
नित्य	अनित्य.	नित्य	अनित्य
१ काल	१ काल	१ काल	१ काल
२ ईश्वर	२ ईश्वर	२ ईश्वर	२ ईश्वर
३ आत्मा	३ आत्मा	३ आत्मा	३ आत्मा
४ नियति	४ नियति	४ नियति	४ नियति
५ स्वभाव	५ स्वभाव	५ स्वभाव	५ स्वभाव.

विकल्प करणेकी रीति कहते हैं अस्ति जीव स्वतोनित्य कालतइत्येकोविकल्प ॥ १ ॥ इस विकल्पका यह अर्थ है कि यह आत्मा निश्चय अपणे रूप करकें कालसें उत्पन्न हुइ है, कालवादीके मतमें यह विकल्प है, कालवादी उसकू कहते हैंकि जो कालहीसें जगत्की उत्पत्ति, स्थिति अरु प्रलय मानते हैं, तैसेही कालवादी कहते है कि चंपक, अशोक, सहकार, नींब, जंबू, कदंबादि जो बनस्पति है, सो कालके बिना फूलोंका लगनां, फलका बंधादिक नहीं हो सका है, तथा हिमकण संयुक्त शीतका पडणां, तथा नक्षत्र गर्भका धारण, वर्षाका होणां, यह काल बिना

नहीं होते हैं, तथा षट् ऋतुवोंका विनाग, तथा बाल, कुमार, यौवन, औ पलितादिक अवस्था विशेष काल विना नहीं हो सक्ती है, जो जो प्रति नियत काल विनागादिक हैं, तिन सबका कालही नियंता है, जे कर कालकों नियंता न मानीयें, तो किसी वस्तुकीनी व्यवस्था नहीं होवेगी, क्यों कि जैसे कोइ पुरुष, मूग रांधता है, सो नी काल विना नहीं राधे जाते हैं, नहीं तो हांमी इधनादि सामग्रीके संयोगसें प्रथम समयेहीमें मूग रंध जाते? तिस वास्ते जो करता है, सो कालही करता है, तथाचोक्त ॥ न कालव्यतिरेकेण, गर्नबाल घुनादिक॥ यत्किंचिज्जायते लोके, तदसौ कारण किल ॥ १ ॥ किंचित्कालादृते नैव, मुजपक्तिरपीष्यते ॥ स्थाल्यादि सन्निधानेऽपि, तत कालादसौ मत ॥ २ ॥ कालनावे च गर्नादि,सर्व स्याद व्यवस्थया ॥ परेष्टहेतुसन्नाव, मात्रादेव तदुन्नवात् ॥ ३ ॥ इन श्लोकोंका नावार्थ उपर लिख आये हैं तथा ॥ काल पचति नूतानि, काल संहरते प्रजा ॥ काल सुप्तेषु जागर्त्ति, कालोहि दुरतिक्रम ॥ ४ ॥ इहां परेष्ट हेतुके सन्नाव मात्रादिकसें दूसरायोंने जो मान्या है, कि स्त्री पुरुषके सयोग मात्र हेतुसें गर्नकी उत्पत्ति, सो एक वर्षके स्त्री पुरुषके सयोगसें क्यों नहीं हो जाते है? इस वास्ते कालही गर्नकी उत्पत्तिका हेतु है,तथा जब स्त्रीकूं गर्न होनेमें ऋतुकाल है तिसके बिना स्त्री पुरुषके सयोगसें क्यों नहीं गर्न होता है? तथा कालही पकाता है, औ कालही पृथिवी आदिक नूतोंकों परिणामांतरकों पहुचाता है, तथा "काल संहरते प्रजा" कालही पूर्व पर्यायसें पर्यायांतरमें लोकोंकों स्थापन करता है तथा "काल सुप्तेषु जागर्त्ति" कालही सूते हूये जनोंकी रक्षा करता है तिस वास्ते प्रगट है कि काल दुरतिक्रम है, कालकों दूर करणेमें कोइनी समर्थ नहीं है, यह कालवादीका विकल्प है ॥ १ ॥

इसी तरें दूसरा विकल्पनी कह देना परंतु कालकी जगे ईश्वर कह देना "यथा अस्ति जीव स्वतो नित्य ईश्वरत" जीव, अपणे स्वरूप करकें नित्य है परंतु ईश्वर उत्पन्न करता है, क्योंकि ईश्वरवादी सर्व जगत् ईश्वरहीका करा हूया मानते हैं, ईश्वर उसकू कहते हैं, कि जिसके १ ज्ञान, २ वैराग्य, ३ धर्म, ४ ऐश्वर्य, ए चारो स्वत सिद्ध होवें, अरु जीवोंकों स्वर्ग, मोक्ष, नरकादिकके जानेमें जो प्रेरक होवे ॥ तदुक्त ॥

ज्ञानमप्रतिघं यस्य, वैराग्यं च जगत्पतेः ॥ ऐश्वर्यं चैव धर्मश्च, सहसिद्धं च तुष्टयम् ॥ १ ॥ अज्ञोजंतुरनीशोय, मात्मनः सुखदुःखयोः ॥ ईश्वर प्रेरितो गच्छे, त्स्वर्गं वा श्वभ्रमेव च ॥ इत्यादि ॥ ३ ॥

तीसरा विकल्प आत्म वादीयोंका है. आत्मवादी उनको कहते है कि जो "पुरुष एवेदं सर्व मित्यादि" (जो कुछ दीखता) है, सो सर्व पुरुषही है ऐसें मानते है॥ ३ ॥

चौथा विकल्प नियतवादीयोंका है. जो नियतवादी ऐसें कहते है कि पदार्थोंमें एक ऐसी सामर्थ्य है कि जिसकी सामर्थ्यसें सर्व पदार्थ अपणे अपणे स्वरूप नियमों करके वैसे वैसेही होते है, परंतु अन्यथा पणे नहीं होते है, सोइ कहते है. जो पदार्थ जिसकालने जिस करिके होता है, सो पदार्थ तिस कालने तिस करिकें नियत रूप करकेही होता दीखता है. अन्यथा नहीं, तो कार्य कारण भावकी व्यवस्था नियामकके अभावसें कदापि न होवेगी, तिस वास्ते ऐसें कार्य नियततासे प्रतीत होती है जो नियति, तिसकों कौन पुरुष प्रमाणपथका कुशल है जो बाध सक्ता है ? जे कर नियति बाधित हो जावेगी तो और जगेभी प्रमाण मिथ्या हो जावेंगे, तथा चोक्त ॥ नियते नैव रूपेण, सर्वे भावा भवति यत् ॥ ततो नियतिजा ह्येते, तत्स्वरूपानुवेधत ॥ १ ॥ यद्यदेव यतो यावत्, तत्तदेव ततस्तथा॥ नियतं जायते न्यायात्, क एनां बाधितुं क्षम ॥ २ ॥ इन दोनो श्लोकोंका अर्थ उपर लिख दीया है ॥ ४ ॥

पांचमा विकल्प, स्वभाववादीयोंका है, वो स्वभाववादी ऐसें कहते है कि इस ससारमें सर्व पदार्थ स्वभावहीसें उत्पन्न होते हैं, सो कहते हैं कि माटीसें घट होता है, परंतु वस्त्र नहीं होता है, अरु तंतुओंसें वस्त्र होता है, परंतु घटादिक नहीं होता है, यह जो मर्यादा सयुक्त होनां है सो स्वभाव बिना कदापि नहीं हो सक्ता है, तिस वास्ते यह जो कुछ होता है, सो सर्व स्वभावसेंही होता है, तथा अन्यकार्य तो दूर रहो, परंतु यह जो मूगोका रंध जाणा है, सोभी स्वभाव विना नहीं रंधते हैं, तथाहि हांमी, इंधन, कालादि सामग्रीका सभवभी है तोभी कोकडु (कठिनमूंग) नहीं रंधते हैं, तिस वास्ते जो जिसके होयां होवे, जिसके न होयां जो

न होवे, सो सो अन्वय व्यतिरेक करकें तिसका कर्त्ता है, स्वन्नावहीसें मूंग रं धते है, इस वास्ते स्वन्नावही सर्व वस्तुका हेतु है, ए पांचमा विकल्प ॥ ५ ॥

यह पाच विकल्प स्वत ईशपद करके होते है, ऐसेही पांच परत ईश पद करके उपलब्ध होते हैं, परत शब्दका अर्थ तो ऐसा है, कि पर पदार्थोसें व्यावर्त्त रूप करके यह आत्मा निश्चय करकें है, ऐसें नित्य शब्द करकें दश विकल्प हूये है, ऐसेही अनित्य पद करकेन्नी दश विकल्प होते हैं, सर्व विकल्प एकठे करेंसें वीश होते हैं, यह वीश विकल्प जीव पदार्थ करकें होते हैं, ऐसेही अजीवादिक पदार्थोंके साथ, न्यारे न्यारे वीश विकल्प जान लेनें. तब वीशकों नवसू गुणाकार कर्या सब मिलिके एक शो अस्सी मत क्रियावादीके होते हैं ॥ इति क्रियावादी ॥

अथ अक्रियावादीके चौरासी मत लिखते हैं अक्रियावादी कहते हैं कि क्रिया, पुण्य पाप रूपादि नहीं है, क्योंकी क्रिया, पुण्य पाप रूपादि स्थिर पदार्थकों लगती है, अरु स्थिर पदार्थ तो जगत्में कोइ न्नी नहीं है, क्योंके उत्पत्त्यनतरही पदार्थका विनाश हो जाता है ऐसें जो कहते हैं, सो क्रियावादी ॥ तथा चाहुरेके ॥ श्लोक ॥ क्षणिका सर्वसस्कारा, अस्थिराणां कुत क्रिया ॥ नूतिर्येषां क्रिया सैव, कारक सैव चोच्यते ॥ १ ॥ अस्यार्थ – सर्व सस्कार पदार्थ क्षणिक हैं, इस वास्ते अस्थिर पदार्थोंकूं पुण्य पापादि क्रिया कहांसें होवे ? पदार्थोंका जो होणा है, सोइ क्रिया है, सोइ कारक है, इस वास्ते पुण्यापुण्यादि क्रिया नहीं यह जो अक्रियावादी हैं, सो आत्माकू नहीं मानते है, तिनके चौरासी मत जाननेका यह उपाय है कि १ जीव, २ अजीव, ३ आश्रय, ४ सबर, ५ निर्ज्जरा, ६ बध, ७ मोक्ष, यह सात पदार्थ लिखने, पीछे यह जीवादि सातो पदार्थोंके हेठ न्यारे न्यारे स्व अरु पर यह दो विकल्प लिखने फेर इन दोनोके हेठ न्यारे न्यारे १ काल, २ ईश्वर, ३ आत्मा, ४ नियति, ५ स्वन्नाव, ६ यदृछा, यह छे लिखने इहां नित्यानित्य यह दो विकल्प इस वास्ते नहीं लिखे हैं कि जब आत्मादि पदार्थही नहीं हैं, तो फेर नित्य अनित्यका सन्नव कैसें होवे ? तथा जो यह यदृछावादी हैं, सो सर्व नास्तिक अक्रियावादी हैं, इस वास्ते क्रियावादी यदृछावादी नही हैं, इस वास्ते क्रियावादीके मतमें यदृछा पद नहीं ग्रहण कीया है, इस मतके चौरासी न्नेद इसी रीतिसें जानने सो कहते है

"नास्ति जीव स्वतः कालतइत्येकोविकल्प" नहीं है जीव अपने स्वरूप करकें कालमें उत्पन्न हूया, यह एक विकल्प. ऐसेही ईश्वरादिकोंके कर यदृच्छा पर्यंत सर्व छ विकल्प हूये इनका अर्थ पीछली तरें जानना, परंतु इतना विशेष है जो यहां यदृच्छावादी अधिक है

प्रश्न –यदृच्छावादीयोंका क्या मत है ? उत्तर –जो पदार्थोंकूं संतान की अपेक्षा नियत कार्य कारण भाव नहीं मानते, किंतु "यदृच्छया" जो कुछ होता है, सो सर्व यदृच्छासें होता है, एतावता कार्य कारण भाव नहीं यदृच्छाहीसें होता है, यदृच्छावादी ऐसें कहते है. कि नहीं है नियम करकें पदार्थोंकों आपसमें कार्य कारण भाव, क्यों कि कार्य कारण भाव प्रमाणसें ग्रहण नहीं करा जाता है, तथाहि मृतक मंमकसेंभी मंमक उत्पन्न होता है अरु गोबरसेंभी मंमक उत्पन्न होता है अग्निसेंभी अग्नि उत्पन्न होती है अरणीके काष्टसेंभी अग्नि उत्पन्न होती है, धूमसेंभी धूम उत्पन्न होता है, अरु अग्निसेंभी धूम उत्पन्न होता है, कदलीके कंदसेंभी केला उत्पन्न होता है, अरु केलेके बीजसेंभी केला उत्पन्न होता है, बीजसेंभी वटवृक्ष उत्पन्न होता है, अरु वटवृक्षकी शाखासेंभी वटवृक्ष उत्पन्न होता है, इस वास्ते प्रति नियत कार्य कारण भाव किसी जगेंभी नहीं देखणेमें आता है, इस वास्ते यदृच्छा करीकें किसी जगें कुछ होता है, ऐसे माननां चाहियें, क्योंकि जब जान लीया कि जो कुछ होता है, सो यदृच्छासें होता है, तो फेर काहेकों बुद्धिमान् कार्य कारण भावकों माने, औ आत्माकों क्लेश देवे यह जैसें स्वतके साथ छ विकल्प करे है, ऐसेंही नास्ति परत के साथभी छ विकल्प होते हैं, यह जब सर्व विकल्प मिलाइयें तब बारा विकल्प होते हैं, इन बारांकूं जीवादिक सात पदार्थों करकें सात गुणा करया चौरासी भेद अक्रिया वादीके होते हैं ॥ इति अक्रियावादी ॥ २ ॥

अथ तीसरा अज्ञानवादीका भेद कहते है, कि कूंत्सा ज्ञान है, जिनका सो अज्ञानवादी जाननां, अथवा अज्ञान करकें जो प्रवर्त्ते, सो अज्ञानिका अज्ञानवादी, ऐसें कहते हैं कि ज्ञान अच्छी वस्तु नहीं है, क्योंकि ज्ञान जब होवेगा, तब परस्पर विवाद होगा, जब विवाद होगा तब चित्त मलिन होगा, जब चित्त मलिन हूवा, तब संसारकी वृद्धि होवेगी, जैसें किसी पुरुषने को

इ वस्तु उलटी कही, तब जो ज्ञानीने सुण करकें ज्ञानके अनिमानसे उस पुरुषके उपर बहुत मलिन चित्त करकें उसके साथ विवाद करणे लगा, विवाद करते थके अत्यंत तीव्रचित्त मलिन अरु अहंकार बढा, उस अहंकार औ चित्तकी मलिनतासें महा पाप कर्म उत्पन्न हूवा, तिस पापसे दीर्घतर संसारकी वृद्धि हूइ, इस वास्ते ज्ञान अछी वस्तु नहीं अरु जब अज्ञानी अपणेकों मानीयें, तब तो अहंकारका संनव नहीं होता है, अरु दूसरोंके उपर चित्तका मलिन पणानी नहीं होता है, तिस वास्तें कर्मका बंधनी नहीं होता है, तथा जो कार्य विचार करीयें है, तिसमें महा कर्मका बंध होता है, उसका फलनी महा नयानक होता है, अरु जो काम, मनोव्यापार विना करीयें है, तथा मनोव्यापार बिना किसी जीवका वध करीये हैं, तिसका फल अवश्यमेव नोगनेमें नहीं आता है, अरु जो उस काममें किंचित् कर्मबंध होता है, सोनी चूने गजनींतके उपरि वालु (रेतिकी) मुष्टिके संबंधवत् स्पर्शमात्र है, परंतु बंध नहीं होता है इस वास्ते अज्ञानही मोक्षगामीयों पुरुषोंकों अंगीकार करणां श्रेय है, परंतु ज्ञान अंगीकार करणां श्रेय नहीं है यह अज्ञानवादी कहते हैं की ज्ञान हम माननी लेवें, जे कर ज्ञानका निश्चय करणेमें सामर्थ्य होवें? क्योंकि प्रथम तो ज्ञान सिद्धही नहीं हो सक्ता है, तथाहि जितने मतावलंबी पुरुष है, सो सर्व परस्पर निन्नही ज्ञान अंगीकार करते हैं, इस वास्ते क्यों कर निश्चय करणेमें समर्थ होवे? जो इस मतका ज्ञान सम्यग् है, अरु इस मतका ज्ञान सम्यग् नहीं है, जे कर कहोगे कि जो सकल वस्तुके समूहकों साक्षात् कारी असे ज्ञानवाला जो नगवान् है, तिसके उपदेशसें जो ज्ञान होवे सो सम्यग् ज्ञान है, अरु जो इसके विना दूसरे मत हैं, उनका ज्ञान सम्यग् नहीं क्योंकि उनके मतमें जो ज्ञान है, सो सर्वज्ञका कथन कीया हुआ नहीं है

अज्ञानवादी कहते हैं कि यह तुमारा कहनां है, सो तो सत्य है, किंतु सकल वस्तु समूहका साक्षात् करणेवाला ज्ञानी सुगत, ईश्वर, विष्णु, ब्रह्मादिककों हम माने? किंवा नगवान् वर्द्धमान महावीर स्वामीकों सकल वस्तु समूहके साक्षात् करणे वाला माने! फेरनी वोही संशय रहा, निश्चय न हूआ, जो कौन सर्वज्ञ है? जे कर कहोगे कि जिस नगवान्के पादार

"नास्ति जीव. स्वत' कालातश्चैकोविकल्प" नहीं है जीव अपने स्वरूप करके कालसें उत्पन्न हूआ, यह एक विकल्प. ऐसेंही ईश्वरादिकों कर यदृच्छा पर्यंत सर्व छ विकल्प हुये इनका अर्थ पीछली तरें जानना, परंतु इतना विशेष है जो यहां यदृच्छावादी अधिक है.

प्रश्न –यदृच्छावादीयोंका क्या मत है ? उत्तर.–जो पदार्थोंके संतान की अपेक्षा नियत कार्य कारण भाव नहीं मानते, किंतु "यदृच्छया" जो कुछ होता है. सो सर्व यदृच्छासें होता है. एतावता कार्य कारण भाव नहीं यदृच्छाहीसें होता है. यदृच्छावादी ऐसें कहते हैं. कि नहीं है नियम करकें पदार्थोंको आपसमें कार्य कारण भाव. क्यों कि कार्य कारण भाव प्रमाणसें ग्रहण नहीं करा जाता है. तथाही मृतक मंमकसेंभी मंमक उत्पन्न होता है अरु गोबरसेंभी मंमक उत्पन्न होता है अग्निसेंभी अग्नि उत्पन्न होती है अरणीके काष्टसेंभी अग्नि उत्पन्न होती है, धूमसेंभी धूम उत्पन्न होता है, अरु अग्निसेंभी धूम उत्पन्न होता है. कदलीके कंदसेंभी केला उत्पन्न होता है, अरु केलेके बीजसेंभी केला उत्पन्न होता है बीजसेंभी वटवृक्ष उत्पन्न होता है, अरु वटवृक्षकी शाखासेंभी वट वृक्ष उत्पन्न होता है, इस वास्ते प्रति नियत कार्य कारण भाव किसी जगेंभी नहीं देखणेमें आता है, इस वास्ते यदृच्छा करीके किसी जगें कुछ होता है, ऐसें माननां चाहियें, क्योंकि जब जान लीया कि जो कुछ होता है, सो यदृच्छासें होता है, तो फेर काहेकों बुद्धिमान् कार्य कारण भावकों माने, औ आत्माकों क्लेश देवे यह जैसें स्वतके साथ छ विकल्प करे है, ऐसेंही नास्ति परत के साथभी छ विकल्प होते हैं, यह जब सर्व बिकल्प मिलाइयें तब बारा विकल्प होते हैं, इन बारांकू जीवादिक सात पदार्थों करकें सात गुणा करा चौरासी भेद अक्रिया वादीके होते हैं ॥ इति अक्रियावादी ॥ २ ॥

अथ तीसरा अज्ञानवादीका भेद कहते है, कि कुत्सित ज्ञान है, जिनका सो अज्ञानवादी जाननां, अथवा अज्ञान करकें जो प्रवर्ते, सो अज्ञानिका अज्ञानवादी, ऐसें कहते हैं कि ज्ञान अच्छी वस्तु नहीं है, क्योंकि ज्ञान जब होवेगा, तब परस्पर बिबाद होगा, जब बिबाद होगा तब चित्त मलिन होगा, जब चित्त मलिन हूवा, तब संसारकी वृद्धि होवेगी, जैसें किसी पुरुषने को

हावीर सर्वज्ञहीके कथन करे हूये हैं, यह क्योंकर जाना जाये ? क्या जाने किसी धूर्त्तने रच करकें महावीरका नाम रख दीया होवेगा ? क्योंकि यह बात इंद्रिय ज्ञानका विषय नहीं है, अरु अतींद्रिय ज्ञानकी सिद्धिमें कोइजी प्रमाण नहीं है

नला कही यहजी होवे कि जो आचारांगादिक शास्त्र हैं सो महावीर सर्वज्ञहीके कहे हुये हैं, तोजी श्रीमहावीरजीके कहे हुये शास्त्रका यही अजिप्राय, यही अर्थ है, और अर्थ नहीं,यह क्योंकर जान्या जाय ? क्योंकि शब्दोंके अनेक अर्थ है, सो इस जगत्में प्रगट सुननेमें आते हैं, क्या जाने इनही अक्षरों करकें श्रीमहावीर स्वामीजीने कोइ अन्यही अर्थ कह्या होवे, अरु तुमारी समजमें उनही अक्षरों करकें कछु और अर्थ जासन होता होवे, फेर निश्चय क्यों कर होवे जो इन अक्षरोंका यही अर्थ जगवानने कह्या है, जे कर तुमने यह मान रक्खा होवे कि जगवानके समयमें गौतमादिक मुनि थे, उनोने जगवानके मुखारविंदसें साक्षात् जो अर्थ सुना था, सोइ अर्थ आज तांइ परंपरासें चला आता है, इस वास्ते आचारांगादिक शास्त्रोंका यही अर्थ है, अन्य नहीं यहजी तुमारा कहना अयुक्त है, क्योंकि गौतमादिकजी उद्मस्थ थे, अरु उद्मस्थकों दूसरेकी चित्तवृत्तिका ज्ञान नहीं होता है, दूसरेकी चित्तवृत्ति तो अतींद्रिय ज्ञानका विषय है, उद्मस्थ तो इंद्रिय द्वारा जान सक्ता है, इंद्रियज्ञानी सर्वज्ञके अजिप्रायकों क्यों कर जान सके, जो सर्वज्ञका यही अजिप्राय है ? इस अजिप्रायसें सर्वज्ञनें यह शब्द कह्या है ? इस वास्ते जगवान्का अजिप्राय तो गौतमादिक नहीं जान सक्के है, केवल जो वरणावली जगवान् कहते जये सोइ वरणावली जगवानके पीछें लगे हूये गौतमादिक उच्चारण करते आये, परंतु जगवान्का अजिप्राय किसीने नहीं जाना, जैसें आर्य देशोत्पन्न पुरुषके शब्द उच्चारणसे म्लेछजी वैसा शब्द उच्चार सक्ता है, परंतु तात्पर्य कुछ नहीं जानता, ऐसेही महावीरके शब्दके अनुवादक गौतमादिक हैं, परंतु महावीरका अजिप्राय नहीं जानते, इस वास्ते सम्यग् ज्ञान किसी मतमेंजी सिद्ध नहीं होता है, एक तो ज्ञान होणेसें पुरुष अजिमानसें बहुत कर्म बांध कर दीर्घ संसारी हो जाता है, दूसरा सम्यग् ज्ञान किसी मतमें है नहीं, इस वास्ते अज्ञानही श्रेय है,

निद युगल सर्व देवता. इंद्र, परस्पर अनं पूर्वोक्त विशिष्ट विशिष्टतर विभूति सुति करके संयुक्त. सकडो विमानोमें बेठ करके सकल आकाश मंडलकों आछादित करते हुये पृथिवीमें उतर करके पूजते नये हे. सो नगवन् वर्द्धमान स्वामी सर्वज्ञ हे परंतु सुगत, शंकर, विष्णु, ब्रह्मादिक नहि; क्योंकि सुगतादिक सर्व, अल्प बुद्धिवाले मनुष्य हूये हे. इस वास्ते वो देव नही हूये हे, जे कर सुगतादिकजी सर्वज्ञ होते, तो तिनकीनी देवता, इंद्र, पूजा करते, परंतु किसीनी देवता, इंद्रने पूजा नही करी इस वास्ते सुगतादिक सर्वज्ञ नहीं हूये हे. हे जैन! यह जो तुमने बात कही है, सो अपणे मतके राग करके कही है, परंतु इस बातमें इष्टसिद्धि नहीं है. क्योंकि वर्द्धमान स्वामीकी देवता, इंद्र, देवलोकसे आ करके पूजा करते थे, यह तुमारा कहना हम क्योंकर सच्चा मान लेवे? नगवान् श्री महावीरकों तो बहुत काल हूयाको हो गया है,उनके सर्वज्ञ होणेमें कोइनी साधक प्रमाण नहीं है? जे कर कहोगे कि संप्रदायसें एतावता महावीरके शासनसे महावीर सर्वज्ञ सिद्ध होता है, तो इसमें यह तर्क होगी कि यह जो तुमारी संप्रदाय है, सो कोन जाने किसी धूर्त्तकी चलाइ हुइ है? वा किसी सत्पुरुषकी चलाइ हुइ हे, हम क्यों कर जान सके? इस बातके सिद्ध करने वाला कोइनी प्रमाण नहीं है, अरु विना प्रमाणके हम मान लेवे,तो हम प्रेक्षावान् काहे के? तथा मायावान् पुरुष आप सर्वज्ञ नहीं नी होते तोनी अपणे आपकू जगतमें सर्वज्ञ होना प्रगट कर देते हें इंद्रजालके (२४) पीर है, तिनमेंसू कितनेक पीरोंके पाठक अपणे आपकों तीर्थंकरका रूप अरु इंद्र, देवता, पूजा करते हूये बना सक्ते हें, तो फेर देवताओंका आगमन पूजा देखनेसें सर्वज्ञ पणा क्यों कर सिद्ध होवे, जो हम श्रीमहावीरजीकू सर्वज्ञ मान लेवे? तुमारे मतका आचार्य समंतभद्र स्तुतिकारनी कहता हे ॥ श्लोक ॥ देवागमननोयान, चामरादिविभूतय ॥ मायाविष्वपि दृश्यंते, ह्यतस्त्वमसि नो महान् ॥१॥ इस श्लोकका नावार्थ —देवताओंका आगमन आकाशमें चलनां, छत्र चामरादिककी विभूति, यह सर्व आडम्बर, इंद्रजालीयमेंनी हो सक्ता है, इस हेतुसें तो हे नगवन्! तू हमारा महान् स्तुति करणे योग्य नहीं हो सक्ता है तथा हे जैन! तेरे कहनेसें महावीरही सर्वज्ञ होवे, तोनी यह जो आचारांगादिक शास्त्र हैं, सो म

बढ जावेगा, तब तो ज्ञानवान् बहुत कर्म बंध करके दीर्घतर संसारी हो जावेगा, ऐसेंही असत् आदिक शेष विकल्पोंकानी अर्थ जान लेना ॥इति॥

विनय करकें जो प्रवर्त्ते, सो वैनयिका इन विनयवादीयोंके लिंग अरु शास्त्र नहीं होता है, केवल विनयहीसें मोक्ष मानते हैं, तिन विनय वादीयोंके वत्तीस मत हैं, सो इस तरेंसे हैं, कि १ सुर, २ राजा, ३ जाति, ४ ज्ञाति, ५ स्थविर, ६ अधम, ७ माता, ८ पिता, इन आठोंकी मन करकें, बचन करकें, काया करके ,अरु देशकाल उचित्त दान देने करकें विनय करे, इन चारोंसें आठकों गुण्या वत्तीस हूये ॥ इति विनयवादी ॥ ४ ॥

ए सब मिल कर तीनसौ त्रेशठ मत हुये ए सर्व मतधारी तथा इन मतोंके प्ररूपणे वाले सर्व कुगुरु हैं, क्योंकि यह सर्व मत मिथ्यादृष्टियोंके है, यह सब एकांतवादी हैं, परंतु स्याद्वादरूप अमृत स्वादसें रहित है, इनका जो अनिमत तत्त्व है, सो प्रमाण करकें बाधित है, इनके मतोंकों पूर्वाचार्योंने अनेक युक्तियोंसें खम्मन करा है, सो नव्य जीवोंके जानने वास्ते मैं नी पूर्वाचार्योंकी युक्तियां इन नाषाग्रथमें किंचित् मात्र नीचें लिखता हुं

प्रथम जो कालवादी कहते हैंकि सर्व वस्तुका कालही कर्त्ता है, तिसका खम्मन लिखता हु हे कालवादी ! यह जो काल है सो क्या १ एक स्वनाव नित्य व्यापी है ? २ किंवा समयादिक रूप करकें परिणामी है ? जे कर आदि पक्ष मानोगे सो तो अयुक्त है, क्योंकि ऐसे कालकों सिद्ध करने वाला कोइनी प्रमाण नहीं है, जैसा आद्य पक्षमें तूनें काल मान्या है, तैसा काल, प्रत्यक्ष प्रमाणसें उपलब्ध नहीं होता है, अरु ऐसे कालका कोइ लिंगनी अविनानावरूप नहीं दीखता, इस वास्ते अनुमानसेंनी सिद्ध नहीं होता है

पूर्वपक्ष —क्योंकर अविनानावलिंगका अनाव कहते हो ? क्योंकि दिखता हैकि नरत रामचंद्रादिकों विषे पूर्वापर व्यवहार सो पूर्वापर व्यवहार वस्तुरूप मात्र निमित्त नहीं है ? जे कर वस्तुरूप मात्र निमित्त होवे, तदा वर्त्तमानकालमें वस्तु रूपके विद्यमान होणे करकें तैसें व्यवहार होनां चाहियें, तिस वास्ते जिस करकें यह नरत रामादिकोविषे पूर्वापर व्यवहार है, सो काल है, तथाहि पूर्वकालयोगी, पूर्व नरतचक्रवर्त्ती, अपरकालयोगी अपर रामादि

॥ इत्यज्ञानवादीका श्रद्धान ॥सो अज्ञानी सदसठ प्रकारके हैं. तिनके जान नेका यह उपाय है कि जीवादिक नव पदार्थ किसी पट्टादिकमें लिखने, अरु दशमे स्थानमें उत्पत्ति लिखनी. तिन जीवादि नव पदार्थोंके हेठ न्यारे न्यारे सत्त्वादिक सात पद स्थापन करणे,सो यह है कि –१ सत्त्व, २ असत्त्व, ३ सदसत्त्वं, ४ अवाच्यत्वं, ५ सदवाच्यत्व, ६ असदवाच्यत्व, ७ सदसदवाच्यत्व, तहां १ सत्त्व, सो स्वरूप करके विद्यमान पणा, २ असत्त्व, सो पररूप करकें अविद्यमान पणा, ३ सदसत्त्व, सो स्वरूप पररूप करकें विद्यमान पणा तहां यद्यपि सर्व वस्तु स्वपररूपों करकें सर्वदाही स्वनावसें सदसत् स्वनाव है, तोनी किसी जगे कदाचित् उनूत रुप करकें विवक्षा करियें है, तिस हेतुसें यह तीन विकल्प होते हैं, तथा ४ सोइ सत्त्व असत्त्व, जब युगपत् एक शब्द करकें कहनेकी इछा करियें, तदा तिसका वाचक कोइनी शब्द नही है, इस वास्ते अवाच्यत्त्व यह चारों विकल्प सकलादेशा अैसा नाम कहीयें, क्यों के यह चारो सकल वस्तु विषयकों ग्रहण करते है, ५ अरु यदा एक नागमें सत्, दूसरे नागमें अवाच्य, युगपत् विवक्षा करियें, तदा सदवाच्यत्त्व, ६ यदा एक नागमें असत्, दूसरे नागमें अवाच्य, तदा असत् अवाच्यत्त्व, ७ यदा एक नागमें सत्, दूसरे नागमें असत्, तीसरे नागमें अवाच्य युगपत् कल्पना करियें, तदा सदसदवाच्यत्त्व इन सातों विकल्पोंसें अन्य (दूसरा) विकल्प कोइनी नहीं है, जे कर कोइ करनी लेवे, तो इन सातोहीके अंतरनाव हो जायगे, परंतु सातोंसें अधिक विकल्प कदापि न होवेंगे, यह जो सात विकल्प कहे हैं इन सातोंकों नव गुणा करे, तब त्रेशठ होतेहैं, अरु उत्पत्तिके चार विकल्प आदिकेही होते हैं. १ सत्त्व २ असत्त्व, ३ सदसत्त्व, ४ अवाच्यत्त्व, यह चार विकल्प त्रेशठमें प्रक्षेप करीयें, तब सदसठ मत अज्ञानवादीके होते है अब इन सातों विकल्पोंका अर्थ लिखते हैं, कि कौन जानता है जो जीव सत्य है,यह एक विकल्प हूया कोइनी नहीं जानता है सत् जीव है इसका ग्रहण करनेवाला प्रमाण कोइनी नहीं है जे कर कोइ जाणनी लेवेगा जो जीव सत् है तो कौनसे पुरुषार्थकी सिद्धि हो गइ क्यों कि जब ज्ञान हो जावेगा तब अनिनिवेश,अनिमान, चित्त मलिन लोकोंसें विवाद,झगडा,

मागमात् ॥ कालस्य पूर्वादित्व च, सहचार्यवियोगत ॥ २ ॥ प्रागसिद्धा वेकस्य, कथमन्यस्य सिद्धिरिति ॥ इस वास्ते प्रथम पक्ष श्रेय नहीं है

अथ दूसरा पक्ष मानोगे, सोजी अयुक्त है, क्योंकि समयादिक रूप परिणामी काल विषे काल एकजी है, तोजी विचित्र पणा उपलब्ध होता है, तथाहि एक कालमें मूग राधता कोइ रंधता है ? कोइ नहीं रधता है तथा समकालमें एक राजाकी नौकरी करते थके एक नौकरकू थोडेही कालमें नौकरीका फल मिल जाता है,अरु दूसरेकू बहु कालांतरमेंजी वैसा फल नहीं मिलता है, तथा समकालमें खेती करता एक जाटके तो बहु धान्य उत्पन्न हो जाते हैं, अरु दूसरेकूं थोडा फूटा हुआ खमित उत्पन्न होता है, तथा समकालमें कौडीयोंकी मूठी नर कर नूमिकामें गेरीयें, तब कितनीक कौडीयां सूधी पडती हैं, अरु कितनीक ओंधी पडती है अब जे कर कालही एकला कारण होवे, तब तो सर्व मूंग एकही कालमें रध जाते, परंतु सर्व रंधते नहीं हैं, इस वास्ते नि केवल कालही जगत्के विचित्रताका कर्त्ता नहीं है, किंतु कालादि सामग्रीके मिलनेसें कर्म कारण है, यह सिद्ध पक्ष है ॥ इति प्रथम कालवादीके मतका खमन ॥ १ ॥

अथ दूसरा ईश्वरवादी अरु तीसरा अद्वैतवादी, ए दोनो मतोंका खमन ईश्वरवादमें लिख आये हैं, तहांसें जान लेना ॥ ३ ॥

अब चौथा मत नियतिवादीका है, तिसका खमन लिखते हैं कि नियतिवादी जो कहते हैं, कि सर्व पदार्थोंका करता नियति है, नियति उसकूं कहते हैं जो तत्त्वांतर होवे, सोजी नियति, ताडयमान अति जीर्ण वस्त्रकी तरें विचार रूप ताडनाकूं असहमान सैंकडे टुकडोंकों प्राप्ति होती है, सोइ कहते हैं हे नियतवादी! तेरा जो नियतिनाम तत्वांतर है, सो जावरूप है, किंवा अजाव रूप है? जे कर कहोगे कि जावरूप है, तो फेर एकरूप है, वा अनेक रूप है? जे कर कहोगे कि एक रूप है, तो फेर नित्य है,वा अनित्य है? जे कर कहोगे नित्य है,तो किस तरें पदार्थोंकी उत्पत्त्यादिकमें हेतु है? क्योंकि नित्य जो होता है, सो किसीकाजी कारण नहीं होता है, सोइ कहते हैं कि नित्य जो होता है सो सर्व कालमें एकरूप होता है, नित्यका लक्षण "अप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकस्वजावतया नित्यत्वस्य व्यावर्णात्" नित्यका लक्षणतो ऐसा है, जो क्षरे नहीं अरु उत्पन्नजी न होवे, स्थिर एक

उत्तर पक्षीकी तर्फ–जे कर भरत रामादिकोंविषे पूर्वापर कालके योग से पूर्वापर व्यवहार है, तो कालका पूर्वापर व्यवहार कैसे सिद्ध होगा?

पूर्वपक्षीका समाधान. कालका जो पूर्वापर व्यवहार है, सो अन्य दूसरे कालके योगसे है.

उत्तरपक्ष–जे कर दूसरे कालके योगमें प्रथम कालका पूर्वापर व्यवहार है, तब तो दूसरे कालका पूर्वापर व्यवहार तीसरे कालके योगमें हुआ, ऐसेही करते जाइये, तब अनवस्था दूषणका प्रसंग होता है

पूर्वपक्ष–यह दूषण हमकूं नहीं लगता है, क्यों कि हम तो तिस कालहीके स्वयमेव पूर्वापर विभाग मानते है, किसी कालादिक योगसें नहीं मानते हैं, तथा चोक्तं ॥ पूर्वकालादि योगी य, पूर्वादिव्यपदेशभाक् ॥ पूर्वापरत्वं तस्यापि, स्वरूपादेव नान्यतः ॥ १ ॥ अस्यार्थः–जो पूर्वापर कालके योगी भरत रामादि है, सो भरत रामादि पूर्वापर व्यपदेश वाले है, अरु कालका जो पूर्वापर विभाग है, सो स्वतः ही है, परंतु अन्यकालादि योगसें नहीं है

उत्तरपक्ष–हे पूर्वपक्षी–यह तुमारा कहना ऐसा है कि जैसा कंठ लग मदिरा पीके मदिरा पानीका प्रलाप, तैसा है, क्योंकि तुमनें प्रथम पक्षमें काल एकांत एक नित्य व्यापी मान्या है, तो फेर कैसें तिस कालका पूर्वापर व्यवहार होवे?

पूर्वपक्ष–सहचारिके संगसें एक वस्तुकाभी पूर्वापर कल्पनामात्र व्यवहार हो सक्ता है, जैसें सहचारि भरतादिकोंका पूर्वापर व्यवहार है, तैसें ही भरतादि सहचारियोंके संगसें कालकाभी कल्पनामात्र पूर्वापर व्यपदेश होता है, सहचारियों करकें व्यपदेश सर्व तार्किकोंके मतमें प्रसिद्ध है, यथा "मंचा क्रोशंतीति" जैसें मंचा गालीयां देता है

उत्तरपक्ष–यहभी मूर्खोंहीका कहना, है क्योंकि इस कहनेमें इतरेतर दोषका प्रसंग है सोइ कहते हैंकि सहचारि भरतादिकोंको कालके योगसे पूर्वापर व्यवहार हुआ अरु कालकों पूर्वापर व्यवहार, सहचारि भरतादिकोंके योगसें हुआ, जब एक सिद्ध नहीं होवेगा तब दूसराभी सिद्ध नहीं होगा ॥ उक्तंच ॥ एकत्वव्यापितायांहि, पूर्वादित्वं कथं भवेत् ॥ सहचारिवशात्तच्चे, दन्योन्याश्रयतागमः ॥ १ ॥ सहचारिणां हि पूर्वत्वं, पूर्वकाल स

मागमात् ॥ कालस्य पूर्वादित्व च, सहचार्यवियोगत ॥ २ ॥ प्रागसिद्धा वेकस्य, कथमन्यस्य सिद्धिरिति ॥ इस वास्ते प्रथम पक्ष श्रेय नहीं है

अथ दूसरा पक्ष मानोगे, सोजी अयुक्त है, क्योंकि समयादिक रूप परिणामी काल विषे काल एकजी है, तोजी विचित्र पणा उपलब्ध होता है, तथाहि एक कालमें मूग राधता कोइ रंधता है ? कोइ नहीं रधता है तथा समकालमें एक राजाकी नौकरी करते थके एक नौकरकू थोडेही कालमें नौकरीका फल मिल जाता है,अरु दूसरेकू बहु कालांतरमेंजी वैसा फल नहीं मिलता है, तथा समकालमें खेती करता एक जाटके तो बहु धान्य उत्पन्न हो जाते है, अरु दुसरेकू थोडा फूटा हुआ खमित उत्पन्न होता है, तथा समकालमें कौडीयोंकी मूठी जर कर जूमिकामें गेरीयें, तब कितनीक कौडीयां सूधी पडती हैं, अरु कितनीक औंधी पडती है अब जे कर कालही एकला कारण होवे, तब तो सर्व मूंग एकही कालमें रंध जाते, परंतु सर्व रधते नहीं हैं, इस वास्ते नि केवल कालही जगत्के वि चित्रताका कर्त्ता नहीं है, किंतु कालादि सामग्रीके मिलनेसें कर्म कारण है, यह सिद्ध पक्ष है ॥ इति प्रथम कालवादीके मतका खम्डन ॥ १ ॥

अथ दूसरा ईश्वरवादी अरु तीसरा अद्वैतवादी, ए दोनो मतोंका खम्डन ईश्वरवादमें लिख आये हैं, तहांसें जान लेना ॥ ३ ॥

अब चौथा मत नियतिवादीका है, तिसका खंम्डन लिखते हैं कि नियतिवा दी जो कहते हैं, कि सर्व पदार्थोंका करता नियति है, नियति उसकूं कहते हैं जो तत्त्वांतर होवे, सोजी नियति, ताडयमान अति जीर्ण वस्त्रकी तरें विचार रूप ताडनाकू असहमान सैंकडे टुकडोंकों प्राप्ति होती है, सोइ क हते है हे नियतवादी! तेरा जो नियतिनाम तत्वांतर है, सो जावरूप है, किंवा अजाव रूप है? जे कर कहोगे कि जावरूप है, तो फेर एकरूप है, वा अनेक रूप है? जे कर कहोगे कि एक रूप है, तो फेर नित्य है,वा अनित्य है? जे कर कहोगे नित्य है,तो किस तरें पदार्थोंकी उत्पत्त्यादिकमें हेतु है? क्योंकि नित्य जो होता है, सो किसीकाजी कारण नहीं होता है, सोइ क हते हैं कि नित्य जो होता है सो सर्व कालमें एकरूप होता है, नित्यका लक्षण "अप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकस्वजावतया नित्यत्वस्य व्यावर्णात्" नित्य का लक्षणतो ऐसा है, जो क्षरे नहीं अरु उत्पन्नजी न होवे, स्थिर एक

स्वनाव करके रहे, सो नित्य तब तो नियति तिस नित्य रूप करके जे का कार्य उत्पन्न करे, तब तो सर्वदा तिसही रूप करके कार्य उत्पन्न करे, क्योंकि तिसके रूपमे कोइनी विशेष नहीं है, एकही रूप है. अरु सर्वदा तिसही रूप करकें तो कार्य उत्पन्न नहीं करती है. क्योंकि कनी कैसा अरु कनी कैसा कार्य उत्पन्न होता दीख पडता है. तथा एक औरनी बा त है कि, जो दूसरे तीसरे आदि क्षणमे नियतिने कार्य करणे हैं. वो स वेंही कार्य प्रथम समयहीमें उत्पन्न कर लेवे, क्योंकि तिस नियतिका जो नित्य करण स्वनाव द्वितीयादि क्षणमें है सो स्वनाव प्रथम समयमेंनी विद्यमान है, जे कर प्रथम क्षणमें द्वितीयादि क्षणवर्त्ती कार्य करणेकी शक्ति नहीं तो द्वितीयादि क्षणमेंनी कार्य न होना चाहियें क्यों कि प्रथम द्वितीयादि क्षणमें कुठनी विशेष नहीं, जे कर प्रथम द्वितीयादि क्षणमें निय तिके रूपमें परस्पर विशेष मानोगे तबतो जोरा जोरी नियतिके रूपमें अ नित्यता आ गइ "अतादवस्थ्यमनित्यतां ब्रूम इतिवचन प्रामाण्यात्" ॥ जो जैसा है वो तैसा न रहे इस वचन प्रमाणसें उसकों हम अनित्य कहते हैं.

पूर्वपक्ष—नियति नित्य विशेष रहितनी है, तोनी तिस तिस सहका रिकी अपेक्षा करकें कार्य उत्पन्न करती है, अरु जो सहकारि है, सो प्रति नियति देश काल वाले है, तिस वास्ते सहकारियोंके योगसे कार्य क्रम क रकें होता है

उत्तरपक्ष—यह नी तुमारा कहना असमीचीन है, क्योंकी सहकारिजो हैं, सोनी नियति करकेही प्राप्त होते है, अरु नियति जो है, सो प्रथम क्षणमेंनी तिसके करणेवाले स्वनाव वाली है, जेकर द्वितीयादि क्षणमें दूसरे स्वनाववाली नियति मानोगे, तब तो नित्यपणेकी हानी हो गइ, तिस वास्ते प्रथम क्षणमें सर्व सहकारियोंके सनव होणेसें प्रथम क्षणमेंही सर्व कार्य करणेका प्रसग हो गया तथा एक औरनी बात है, कि सहकारि योंके होणेसें कार्य हूआ, अरु सहकारियोंके न होणेसें कार्य न हूआ, तब सहकारियांहीकों अन्वय व्यतिरेक देखनेसें कारण कल्पना करनी चाहियें परंतु नियति कारण नहीं हुइ,क्यों कि नियतिमें व्यतिरेकका असनव है,उक्त च ॥श्लोक॥ हेतुनान्वयपूर्वेण, व्यतिरेकेण सिध्यति ॥ नित्यस्याव्यतिरेकस्य, कुतो हेतुत्वसनव ॥ अथ जे कर इन पूर्वोक्त दूषणोंके नयसें अनित्य पक्ष

मानोगे, तब तो तिस नियतिके प्रतिक्षण अन्य अन्य रूप होणेसें नियति या बहुत हो गइयां, तब तो जो तुमनें नियति एकरूप मानी थी, तिस प्रतिज्ञाका व्याघात होनेका प्रसग हो गया, अरु जो पदार्थ क्षणक्षयी होता है, वो किसीका कार्य कारण नहीं हो सक्ता है, तथा एक औरभी बात है कि जे कर नियति एकरूप होवे, तब तिससें जो कार्य उत्पन्न होवेंगे सो सर्व एकरूपही होने चाहियें, क्योंकि विना कारणके भेद हूया कार्य भेद कदापि नहीं हो सक्ता है, जे कर हो जावे, तब तो वह कार्यभेद निर्हेतुकही होवेगा, अरु हेतुविना किसी कार्यका भेद नहीं है, जे कर अनेकरूप नियति मानोगे, तव तो तिस नियतिसे अन्य नानारूपी विशेषण विना नियति नानारूप कदापि न होवेगी, जैसे मेघका पानी, काली, पीली, ऊखर भूमिके सबध विना नानारूप नहीं हो सक्ता है, यदुक्त "विशेषण विना यस्मा,न्न तुल्यानां विशिष्टतेति वचनप्रामाण्यात्" तिस वास्ते अवश्य तिस नियतिसे अन्य नानारूप विशेषण नियतिके भेद मानने चाहियें तिन नानारूप विशेषणोंका जो होणां है, सो क्या तिस नियतिसेंही होता है अथवा किसी दूसरेंसे होता है? जे कर कहोगे कि नियतिसें ही होता है, तव तो तिस नियतिकों स्वत एकरूप होणेसें कैसें *तिस नियतिसें हूये होये विशेषणोंको नानारूपता होवे?*

अथ विचित्र कार्यकी अन्यथानुपपत्ति करकें नियतिभी विचित्र रूपही मानते हैं, तब तो नियतिकी विचित्रता बहुत विशेषणों विना नहीं होवेगी, तिस वास्ते तिस नियति विषे विशेष्य बहुत अगीकार करणे चाहियें, अब तिन विशेषणोंका जो भाव है, सो तिस नियतिहीसें होता है, अथवा किसी दूसरेसें? इत्यादि सोइ फेर आ गया, इस वास्ते अनवस्था दूषण होता है

अथ जे कर कहोगे अन्यसें होता है, तो यहभी पक्ष अयुक्त है, क्यों के नियति विना और किसीकों तुमने हेतु नहीं मान्या है, यह तुमारा कहना किसी कामका नहीं है, तथा अनेक रूप नियति है, जे कर तुम ऐसे मानोगे, तब तो तुमारे मतके वैरी दो विकल्प हम तुमकू भेट करते हैं, तुमारी नियति अनेकरूप जो है, सो मूर्त्त है? वा अमूर्त्त है? जे कर कहोगे कि मूर्त्त है, तब तो नामांतर करकें कर्मही तुमने माने, क्यों

स्वनाव करकें रहे, सो नित्य तब तो नियति तिस नित्य रूप करके जे कार्य उत्पन्न करे, तब तो सर्वदा तिसही रूप करके कार्य उत्पन्न करे. क्योंकि तिसके रूपमें कोइनी विशेष नहीं है. एकही रूप है. अरु सर्वदा तिसही रूप करके तो कार्य उत्पन्न नहीं करती है. क्योंकि कनी कैसा अरु कनी कैसा कार्य उत्पन्न होता दीख पडता है, तथा एक औरनी बात है कि, जो दूसरे तीसरे आदि क्षणमें नियतिने कार्य करणे हैं. वो तो वेही कार्य प्रथम समयहीमें उत्पन्न कर लेवे, क्योंकि तिस नियतिका जो नित्य करण स्वनाव द्वितीयादि क्षणमें है सो स्वनाव प्रथम समयमेंनी विद्यमान है, जे कर प्रथम क्षणमें द्वितीयादि क्षणवर्त्ती कार्य करणेकी शक्ति नहीं तो द्वितीयादि क्षणमेंनी कार्य न होना चाहियें क्यों कि प्रथम द्वितीयादि क्षणमें कुछनी विशेष नहीं, जे कर प्रथम द्वितीयादि क्षणमें नियतिके रूपमें परस्पर विशेष मानोगे तबतो जोरा जोरी नियतिके रूपमें अनित्यता आ गइ "अतादवस्थ्यमनित्यतां ब्रूम इतिवचन प्रामाण्यात्" ॥ जो जैसा है वो तैसा न रहे इस वचन प्रमाणसें उसकों हम अनित्य कहते हैं

पूर्वपक्ष –नियति नित्य विशेष रहितनी है, तोनी तिस तिस सहकारिकी अपेक्षा करकें कार्य उत्पन्न करती है, अरु जो सहकारि है, सो प्रति नियति देश काल वाले हैं, तिस वास्ते सहकारियोंके योगसे कार्य क्रम करकें होता है

उत्तरपक्ष –यह नी तुमारा कहना असमीचीन है, क्योंकी सहकारिजो हैं, सोनी नियति करकेही प्राप्त होते है, अरु नियति जो है, सो प्रथम क्षणमेंनी तिसके करणेवाले स्वनाव वाली है, जेकर द्वितीयादि क्षणमें दूसरे स्वनाववाली नियति मानोगे, तब तो नित्यपणेकी हानी हो गइ, तिस वास्ते प्रथम क्षणमें सर्व सहकारियोंके सनव होणेसें प्रथम क्षणमेंही सर्व कार्य करणेका प्रसग हो गया तथा एक औरनी बात है, कि सहकारियोंके होणेसें कार्य हूआ, अरु सहकारियोंके न होणेसें कार्य न हूआ, तब सहकारियांहीकों अन्वय व्यतिरेक देखनेसें कारण कल्पना करनी चाहियें परंतु नियति कारण नहीं हुइ,क्यों कि नियतिमें व्यतिरेकका असनव है,उक्त च ॥श्लोक॥ हेतुनान्वयपूर्वेण, व्यतिरेकेण सिध्यति ॥ नित्यस्याव्यतिरेकस्य, कुतो हेतुत्वसंनव ॥ अथ जे कर इन पूर्वोक्त दूषणोंके नयसें अनित्य पक्ष

हो सक्ता, क्योंकि जे कर नावरूप है तो अनाव कैसें हुआ ? जे कर अनाव रूप है,तो नाव कैसें हुआ ? जे कर कहोगे कि स्वरूप अपेक्षा नावरूप है,अरु पररूपापेक्षा अनावरूप है, तिस वास्ते नावानाव दोनोके न्यारे निमित्त होनेसें कुछनी दूपण नहीं, इस कहनेसें तो माटीका पिंम नावानावरूप अनेकांतात्मिकरूप तुमारेकूं प्राप्त हुआ, परतु यह अनेकांतात्मपणा जैनोहीके मतमें शोनता है, क्योंकि जैनमतवालेही सर्व वस्तुकूं स्वपरनावादि स्वरूप करके अनेकांतात्मिक मानते हैं, परंतु तुमारे सरीखे एकांतग्रहग्रस्त मतवालोंकों नहीं शोनता है, जे कर कहोगे कि मृत्पिंममें जो पररूपका अनाव है, सो तो कल्पित है, अरु जो नावरूप है, सो तात्विक है, इस वास्ते अनेकांतात्मिक वाद हमारे मतमें नहीं आता है, तव तो तिस मृत्पिंमसें कैसें घट होवेगा ? क्यों कि तिस मृत्पिंममें परमार्थसें घटके प्राग्नावका अनाव है, जे कर प्राग् अनाव विनानी तिस मृत्पिंमसें घट हो जावे, तव तो सूत्र पिंमादिकसेंनी घट क्यों नहीं होजावे ? जैसा मृत्पिंममें घट प्राग्नावका अनाव है, तैसाही सूत्रपिंमादिकमेंनी घट प्राग्नावका अनाव है, तथा तिस मृत्पिंमसे खरशृग क्यों नहीं हो जाता है ? इस वास्ते यह तुमारा कहनां कुछ नहीं है, तथा जो तुमने कहा था कि जो वस्तु जिस अवसरमें जिससेंति होवे है, सो कालांतरमेंनी सोई वस्तु तिस अवसरमें तिससें नियतरूप करके होती हुई दीखती है, यह तो तुमारा कहनां ठीक है, क्योंकि कारण सामग्रीके अनादि नियमोसे कार्यनी तिस अवसरमें तिससें नियतरूप करकेंही होता है, जब कारण शक्तिके नियमसें कार्य हो गया, तव कौन ऐसा प्रेक्षावान् प्रमाणपंथका कुशल है जो प्रमाण बाधित नियतिकों अंगीकार करे ? ॥इति नियति खमन॥

अथ पांचमा स्वनाववादीका खंमन लिखते हैं स्वनाववादी ऐसे कहते हैं कि इस ससारमें सर्व नावपदार्थ स्वनावहीसें उत्पन्न होते हैं, यह स्वनाववादीयोंका मत नियतिवादके खंमनसेंही खमन हो गया, क्योंकि जो दूषण, नियतिवादीके मतमें कहे हैं, वे सर्व दूषण, प्राय यहांनी समानही हैं, सोई कहते हैं, कि यह जो तुमारा स्वनाव है, सो नावरूप है ? अथवा अनावरूप है ? जे कर कहोगे कि नावरूप है, तो क्या एक रूप है ? वा अनेक रूप है ? इत्यादि सर्व दूषण नियतिकी तरें कह देने

कि कर्म जो है, सो पुद्गलरूप होणेंसे मूर्त्तिंभी है, अरु अनेक रूपभी है, तो तुमारा हमारा एकही मत हो गया, क्योंकि हम जिनकूं कर्म मानते हैं उनही कर्मोंका नामांतर तुमने नियति मान लीया, परंतु वस्तु एकही है अथ जे कर नियतिकूं अमूर्त्त मानोगे, तब तो नियति सुख दुःखका हेतु अमूर्त्त होनेसे न होवेगी, जैसें आकाश अमूर्त्त है, परंतु सुख दुःखका हेतु नहि है, पुद्गलही मूर्त्ति होनेसे सुख दुःखका हेतु हो सका है, जे कर तुम ऐसे मानोगे कि आकाशभी देश भेद करके सुख दुःखका हेतु है, जैसे मारवाड देशमें आकाश दुःखदायी है, शेष सजल देशोमें सुखदायी है, यहभी तुमारा कहना असत् है, तिन मारवाडादि देशोमेंभी आकाशमें रहे हूये जो पुद्गल है, उन पुद्गलोंही करी दुःख सुख होते हैं, तथाहि मरुस्थली जो है, सो प्राय जल करकेंर हित है अरु वालु (रेति)भी बहुत है, अरु रस्तेमें चलतां पग वालुमें धस जाते हैं, तब तो पसीना बहुत आ जाता है, अरु उष्णकालमें सूर्यकी किरणोंसें वालु तप जाता है, तब बहुत संताप होता है, अरु जलभी पीनेकों पूरा नहीं मिलता है, तिसके खननेमें कोइ प्रयत्न करनां पडता है, इस वास्ते उन देशोंमें बहुत दुःख है अरु सजल देशोमें पूर्वोक्त कारण नहीं है, इस वास्ते पूर्वोक्त दुःखभी नहीं है, इस हेतुसें पुद्गलही सुख दुःखका हेतु है, परंतु आकाश नहीं

अथ जे कर नियतिकू अभावरूप मानोगे, तो यहभी तुमारा पक्ष अयुक्त है, क्योंकि अभाव जो है सो तुच्छरूप है, शक्ति रहित है, औ कार्य करणेमें समर्थ नहीं, क्यों कि कटक कुंडलादिकोंका जो अभाव है, सो कटक कुंडल उत्पन्न करनेकू समर्थ नहीं, तैसेंही देखनेमें आता है, जेकर कटक कुंडलादिकोंका अभाव कटक कुंडलादिक उत्पन्न करे, तब तो जगतुमें कोइभी दरिद्री न रहे

पूर्वपक्ष –घटाभाव जो है सो मृत्पिंड है, तिस माटीके पिंडसें घट उत्पन्न होता है, तो फेर हमारे कहनेमें क्या अयुक्तता है ? अरु जो माटीका पिंड है सो तुच्छरूप नहीं है क्योंकि वो अपणे स्वरूप करकें विद्यमान है, तो फेर अभाव पदार्थकी उत्पत्तिमें हेतु क्यों नहीं हो सक्ता ?

उत्तरपक्ष –यहभी तुमारा पक्ष असमीचीन है,क्योंकि जो माटीके पिंडका भाव स्वरूप है सो भावाभावका आपसमें विरोध होनेसें अभाव रूप नहीं

न्न होता है, परंतु अरणीके काष्ठसे नहीं होता, अरु जो अरणीके काष्ठसें अग्नि उत्पन्न होता है, सो सदा अरणीकाष्ठसेंही उत्पन्न होता है, परंतु अग्निसें नहीं होता, अरु जो कहा था कि बीजसेंभी केला उत्पन्न होता है, इत्यादिक सोभी परस्पर विभिन्न होनेसें सोइ उत्तर है कि जो उपर लिख आये हैं एक औरभी वात है, कि जो केला कंदसें उत्पन्न होता है, सो भी परमार्थसें बीजहीसें होता है, तातें परंपरा करकें बीजही कारण है, असेही वटादिकभी शाखाके एक देशतें उत्पन्न होते हूये परमार्थसें बीज सेंही उत्पन्न होते हैं, सोइ कहते हैं कि शाखासें शाखा होती है, परतु उ स शाखाकी हेतु शाखा है, असा लोकमें व्यवहार नहीं है, काहेतें कि वट बीजहीकूं सकल शाखा प्रशाखा समुदाय रूप वटका हेतु होने करकें प्र सिद्ध है, असेंही शाखाके एक देशसेंभी उत्पन्न होता हूआ वट परमार्थसें मूल, वटशाखारूपही है, इसतें सोभी मूल बीजहीसें उत्पन्न हूया मान नां चाहियें, तिस वास्ते किसी जगेसेंभी कार्य कारण भाव व्यभिचारी न हीं है ॥ इति यदृछावादि मतखमन ॥

अथ अज्ञानवादी मत खंमन लिखते हैं अज्ञानवादी जो कहते हैं कि ज्ञान श्रेय नहीं है, क्योंकि जब ज्ञान होता है, तब परस्पर विवा दके योगसें चित्तमें कलुष पणेसें दीर्घतर ससारकी वृद्धि होती है, इत्यादि यह जो अज्ञान वादीयोंनें कहा है, सो भी मूर्खताका सूचक है, सोइ दिखाते हैं, कि और बात तो रहो परंतु प्रथम हम तुमकों दो बातें पूछते हैं सो यह बातें है कि ज्ञानका जो तुम निषेध करते हो, सो क्या ज्ञानसे करते हो? वा अज्ञानसें करते हो? जे कर कहोगे कि ज्ञानसें करते हैं, तो फेर कैसें कहते हो कि अज्ञान श्रेय है? इस कहनेसें तो ज्ञानही श्रेय हूआ, ज्ञानके विना अज्ञानको कोई स्थापन करने समर्थ नहीं है, जे कर उक्त कहनेको मानोगे, तो तुमारी प्रतिज्ञा का व्याघात प्रसग होगा, जे कर कहोगे कि अज्ञानसें निषेध करते हैं, सोभी अयुक्त है, सो अज्ञानकों ज्ञान निषेधनेका सामर्थ्य नहीं है, क्योंकि अज्ञान किसीकेभी साधने बाधनेमें समर्थ नहीं है, अज्ञान हो नेसें जब अज्ञान निषेधनेमें सामर्थ्य न हूआ तब सिद्ध हूआ कि ज्ञानही श्रेय है, अरु जो तुमने कहा था कि जब ज्ञान होगा, तब परस्पर विवादके

एक औरजी बात है, कि स्वभाव आत्माके नाशकों करते हैं, तो स्वभाव कार्यगत हेतु है? वा कारण गत है? कार्य गत तो नहीं है, क्यों कि जब कार्य हो जावेगा तब कार्यगत स्वभाव होवेगा परंतु विना कार्य के हूये कार्य गत कैसे होवे? अरु जब कार्य हो गया, तब तिसका हेतु स्वभाव केसे होवे? जो जिसके आत्मस्थ लाभ संपादनमें सामर्थ्य होवे, तो तिसका हेतु है, अरु कार्य तो निष्पन्न होने करके लब्ध आत्मलाभ है न हीं तो तिस स्वभावहीकू अभावका प्रसंग हो जावेगा, तब तो वो स्वभाव कैसें कार्यका हेतु होवेगा? जे कर कहोगेकि कारणगत हेतु है, यह तो हमकूंभी समत है, सो स्वभाव प्रति कारण भिन्न है, तिस करके माटीसें घट होता है, परंतु माटीसें पटादि नहीं होता है, माटीके पिंममें पटादि होनेका स्वभाव नहीं है, अरु तंतुओंसे पटही होता है, घटादि नहीं होते हैं, क्योंकि तंतुओंमें घट होनेका स्वभाव नहीं है, तिस वास्ते जो तुमने कहा था कि माटीसे घटही होता है, पटादि नहीं होता, सोतो सर्व कारणगत स्वभाव माननेसें सिद्धहीकों साध्या है यह पक्ष, हमारे मतका वाधक नहीं है, तथा जो तुमने कहा था कि मूगोंमें रधनेका स्वभाव है, कोकडुमें नहीं? इत्यादि सोभी कारणगत स्वभाव अंगीकार कर्या सर्वही समीचीन हो जाता है, जैसें एक कोकडु मूग है, स्वकारण वशतें तैसे रूप वाले हूये हैं, हांभी, इंधन, कालादि सामग्रीका संयोगभी है, तोभी नहीं रंधते है, अरु स्वभाव जो है सो कारणसें अभेद है, इसतें सर्व वस्तु सकारणही हैं, यह सिद्ध पक्ष है ॥ यह क्रियावादीयोंका मत तो खंमन हो चुका ॥

अथ अक्रियावादीयोमें जो यहच्छावादी हैं, तिनोंनें जो कहा था कि वस्तुओंका नियम करकें कार्य कारणभाव नहीं है, इत्यादि सोभी कहना कार्य कारणके विवेचने वाली बुद्धिसें रहित होनेका सूचक है, क्यो कि कार्य कारणकों प्रतिनियतताका संभव होनेसें है, सोई कहते हैं कि जो शालूकसें शालूक उत्पन्न होता है, सो सदा शालूकहीसें उत्पन्न होता है, परंतु गोबरसें नहीं अरु जो गोबरसें शालूक उत्पन्न होता है, सो सदा गोबरहीसें उत्पन्न होता है, परंतु शालूकसें नहीं, अरु इन दोनों शालुकयोंकों शक्तिवर्णादि वैचित्रतासें भी परस्पर जात्यंतर होनेसें एकरूपभी नहीं हैं, अरु जो अग्निसें अग्नि उत्पन्न होता है, सोभी सदैव अग्निहीसें उत्प

न्न होता है, परंतु अरणीके काष्ठसें नहीं होता, अरु जो अरणीके काष्ठसें अग्नि उत्पन्न होता है, सो सदा अरणीकाष्ठसेंही उत्पन्न होता है, परतु अग्निसें नहीं होता, अरु जो कहा था कि बीजसेंनी केला उत्पन्न होता है, इत्यादिक सोनी परस्पर विनिन्न होनेसें सोइ उत्तर है कि जो उपर लिख आये हैं एक औरनी बात है, कि जो केला कंदसें उत्पन्न होता है, सो नी परमार्थसें बीजहीसें होता है, तातें परंपरा करकें बीजही कारण है, ऐसेही वटादिकनी शाखाके एक देशतें उत्पन्न होते हूये परमार्थसें बीजसेंही उत्पन्न होते हैं, सोइ कहते हैं कि शाखासें शाखा होती है, परतु उस शाखाकी हेतु शाखा है, ऐसा लोकमें व्यवहार नहीं है, काहेतें कि वट बीजहीकू सकल शाखा प्रशाखा समुदाय रूप वटका हेतु होने करकें प्रसिद्ध है, ऐसेंही शाखाके एक देशसेंनी उत्पन्न होता हूआ वट परमार्थसें मूल, वटशाखारूपही है, इसतें सोनी मूल बीजहीसें उत्पन्न हूया माननां चाहियें, तिस वास्ते किसी जगेसेंनी कार्य कारण नाव व्यनिचारी नहीं है ॥ इति यदृछावादि मतखमन ॥

अथ अज्ञानवादी मत खमन लिखते हैं अज्ञानवादी जो कहते हैं कि ज्ञान श्रेय नहीं है, क्योंकि जब ज्ञान होता है, तब परस्पर विवादके योगसें चित्तमें कलुष पणेसें दीर्घतर ससारकी वृद्धि होती है, इत्यादि यह जो अज्ञान वादीयोंनें कहा है, सो नी मूर्खताका सूचक है, सोइ दिखाते हैं, कि और बात तो रहो परंतु प्रथम हम तुमकों दो बातें पूछते हैं सो यह बातें है कि ज्ञानका जो तुम निषेध करते हो, सो क्या ज्ञानसें करते हो? वा अज्ञानसें करते हो? जे कर कहोगे कि ज्ञानसें करते हैं, तो फेर कैसें कहते हो कि अज्ञान श्रेय है? इस कहनेसें तो ज्ञानही श्रेय हूआ, ज्ञानके विना अज्ञानको कोई स्थापन करने समर्थ नहीं है, जे कर उक्त कहनेको मानोगे, तो तुमारी प्रतिज्ञाका व्याघात प्रसग होगा, जे कर कहोगे कि अज्ञानसें निषेध करते हैं, सोनी अयुक्त है, सो अज्ञानकों ज्ञान निषेधनेका सामर्थ्य नहीं है, क्योंकि अज्ञान किसीकेनी साधने बाधनेमें समर्थ नहीं है, अज्ञान होनेसें जब अज्ञान निषेधनेमें सामर्थ्य न हूआ तब सिद्ध हूआ कि ज्ञानही श्रेय है, अरु जो तुमने कहा था कि जब ज्ञान होगा, तब परस्पर विवादके

एक औरनी वात है, कि स्वनाव आत्माके नावकों कहते हैं, तो स्वनाव कार्यगत हेतु है? वा कारण गत है? कार्य गत तो नहीं है, क्यों कि जब कार्य हो जावेगा तब कार्यगत स्वनाव होवेगा परंतु विना कार्य के हूये कार्य गत कैसें होवे? अरु जब कार्य हो गया, तब तिसका हेतु स्वनाव कैसें होवे? जो जिसके अलब्ध लान संपादनमें सामर्थ्य होवे, तो तिसका हेतु है, अरु कार्य तो निष्पन्न होने करके लब्ध आत्मलान है, नहीं तो तिस स्वनावहीकूं अनावका प्रसंग हो जावेगा, तब तो वो स्वनाव कैसें कार्यका हेतु होवेगा? जे कर कहोगेकि कारणगत हेतु है, यह तो हमकूंनी समत है, सो स्वनाव प्रति कारण निन्न है, तिस करकें माटीसें घट होता है, परंतु माटीसें पटादि नहीं होता है, माटीके पिंममें पटादि होनेका स्वनाव नहीं है, अरु तंतुओंसे पटही होता है, घटादि नहीं होते हैं, क्योंकि तंतुओंमें घट होनेका स्वनाव नहीं है, तिस वास्ते जो तुमने कहा था कि माटीसें घटही होता है, पटादि नहीं होता, सोतो सर्व कारणगत स्वनाव माननेसें सिद्धहीकों साध्या है यह पक्ष, हमारे मतका बाधक नहीं है, तथा जो तुमने कहा था कि मूगोंमें रंधनेका स्वनाव है, कोकडुमें नहीं? इत्यादि सोनी कारणगत स्वनाव अंगीकार कर्या सर्वही समीचीन हो जाता है, जैसें एक कोकडु मूग है, स्वकारण वशतें तैसे रूप वाले हूये हैं, हांमी, इंधन, कालादि सामग्रीका संयोगनी है, तोनी नहीं रंधते है, अरु स्वनाव जो है सो कारणसें अनेद है, इसतें सर्व वस्तु सकारणही हैं, यह सिद्ध पक्ष है ॥ यह क्रियावादीयोंका मत तो खंमन हो चुका ॥

अथ अक्रियावादीयोमें जो यदृच्छावादी हैं, तिनोंनें जो कहा था कि वस्तुओंका नियम करके कार्य कारणनाव नहीं है, इत्यादि सोनी कहनां कार्य कारणके विवेचने वाली बुद्धिसें रहित होनेका सूचक है, क्यो कि कार्य कारणको प्रतिनियतताका संनव होनेसें है, सोई कहते हैं कि जो शालूकसें शालूक उत्पन्न होता है, सो सदा शालूकहीसें उत्पन्न होता है, परंतु गोबरसें नहीं अरु जो गोबरसें शालूक उत्पन्न होता है, सो सदा गोबरहीसें उत्पन्न होता है, परंतु शालूकसें नहीं, अरु इन दोनों शालुकयोंकों शक्तिवर्णादि वैचित्रतासैं भी परस्पर जात्यंतर होनेसें एकरूपनी नहीं हैं, अरु जो अग्निसें अग्नि उत्पन्न होता है, सोनी सर्वेव अग्निहीसें उत्प

व्यवसायवाला नहीं होता है, अरु जो तुमने कहा था कि अज्ञानही सत्पु रुषोंको मोक्ष जाने वास्ते श्रेय है, परंतु ज्ञान श्रेय नहीं, यह जो कहना है, सो मूढताका सूचक है, जिसका नामही अज्ञान है, वो श्रेय क्यो कर हो सक्ता है? अरु जो तुमने कहाथा कि हम ज्ञानकूं माननी लेवे,जो ज्ञानका निश्चय करणेमें कोइ समर्थ होवे, सोनी मूर्खोंका कहना है, क्योंकि यद्यपि सर्व मतों वाले परस्पर जिन्नही ज्ञान अंगीकार करते हैं, तोनी जि सका वचन दृष्टेष्ट बाधित नहीं अरु पूर्वापर व्याहत नहीं है, सोइ सम्य क् रूप जानना तैसा वचन तो जगवानहीका कह्या हूआ हो सक्ता है, सोइ प्रमाण है, शेष नहीं अरु जो कहा था कि बौधनी अपनें बुध जग वानकों सर्वज्ञ मानते हैं, इत्यादि सोनी असत् है, क्योंकि दृष्टेष्टकरकें तिनका वचन बाधित है, इस वास्ते सुगतादिक सर्वज्ञ नहीं है, तिनका व चन जैसें बाधित है, तैसें आगें लिखेंगे

तथा जो तुमने कहाथा कि जो वर्द्धमान स्वामी सर्वज्ञ होवे,तोनी तिस वर्द्धमान स्वामीहीका कह्या हूआ यह आचारांगादि शास्त्र हैं, सो क्योंकर प्रती त होवे? यहनी तुमारा कहना दूर हो गया, क्योंकि और किसीका ऐसा दृष्टेष्ट बाधा रहित वचन है नहीं अरु जो तुमने कहाथा कि यहनी तुमारा कहना होवेकि आचारांगादि यह जो शास्त्र है, सो वर्द्धमान स्वामी सर्वज्ञके कहे हूये हैं तोनी वर्द्धमान स्वामीके उपदेशका यही अर्थ है अन्य नहीं है इत्यादि सोनी अयुक्त है क्योंकि जगवान् जो है,सो वीतराग है, अरु जो वीतराग होता है, सो किसीकू कपट उपदेश देकर जूलाता नहीं है क्योंकि विप्रतारणेका हेतु जो रागादि दोषोंका समूह सो जगवान्में नहीं है, अरु जो सर्वज्ञ होता है, सो जानता है, जो इस शिष्यने विपरीत समजा है, अरु इसने सम्यक् समजा है, तब तो जिसने विपरीत समजा है, ति सकूं मनाकर देते हैं, अरु जगवानने तो गौतमादिकोंकों मने नहीं करा, इस वास्ते गौतमादिकोने सम्यगही जाना है, अरु जो कहाथा कि गौत मादि छद्मस्थ हैं, इत्यादि सोनी असार है, क्योंकि छद्मस्थनी उक्त रीति करकें जगवानके उपदेशसेंही यथार्थ वक्ता निश्चय हो सक्ता है, तथा विचि त्र अर्थोंवाले शब्दनी जगवानूनेही कहे हैं, सो शब्द जैसें जैसें प्रकरण हो गा, तैसें तैसें ही अर्थका प्रतिपादक हो सक्ता है, इस वास्ते कोइनी दूषण

योगसें चित्त कालुष्यादि भावकूं प्राप्त होगा, इत्यादि. सोभी विना विचारे
कहनो है, हम परमार्थसें ज्ञानी उसकों कहते हैं कि जिसको [illegible]
विवेक करके पवित्र होवे, अरु जो ज्ञानका गर्व न करे, अरु जो [illegible]
ज्ञानी हो कर कंठ लग मद्य पी कर जैसें उन्मत्त भांडता है तैसें बोले, अ
रु सकल जगत्कों तृणोंकी तरें माने, सो परमार्थसें अज्ञानीही है, क्यों
कि उनकों ज्ञानका फल नहीं है, ज्ञानका फल तो राग द्वेषादि दूषणोंको
त्यागनो है जब यह नहीं हूआ, तब तो परमार्थसें ज्ञानही नहीं " उक्तं
च ॥ तत् ज्ञानमेव न भवति, यस्मिन्नुदिते विभाति रागगणः ॥ तमसः कु
तोस्ति शक्ति,र्दिनकरकिरणाग्रतः स्थातुं ॥१॥" ऐसा ज्ञानी विवेक करके प
वित्र आत्मा वाला परजीवोंके हित करणेमें एकांत रसीया होवे, जेकर वो
वादभी करेगा, सोभी परजीवोंके उपकार वास्ते करेगा, अरु राजा आदि
क परीक्षक निपुण बुद्धिवालोंकि परिषदामें करेगा, अन्यथा नहीं करेगा
ऐसेंही तीर्थंकर गणधरोंनें वाद करणेकी आज्ञा दीनी है जब ऐसें हूआ
तब कैसें चित्तकी मलिनता करकें कर्मका बंध होनेसें दीर्घतर संसारकी
वृद्धि होवे? केवल ज्ञानवान्का जो वाद है, सो वादी नरपति परीक्षकोंके
अज्ञानके दूर करणेके वास्ते है, सम्यक् ज्ञानके प्रगट होनेसें बडा उपका
र होता है, इस वास्ते ज्ञानही श्रेय है

अरु जो अज्ञानवादी कहता है, कि तीव्राध्यवसाय करकें जो कर्म उ
त्पन्न होते हैं, उनसें दारुण विपाक फल होता है, सो तो हम मानते हैं,
परंतु जो अशुभाध्यवसाय है, तिनका हेतु ज्ञान नहीं है, क्योंकि अशु
भाध्यवसायोंका अज्ञानभी हेतु देखनेमें आता है, केवल इतनी बात तो
है कि ज्ञानके होते हूया जे कर कदाचित् कर्म दोषतें अकार्यमें प्रवृत्तिभी
होवेगी, तोभी ज्ञानके बलसें प्रतिक्षण संवेग भावनासें तीव्र अशुभ परि
णाम नहीं होते हैं, सोइ दिखाते हैं

जैसें कोइक पुरुष राजादिकोंके दुष्ट नियोगसें विषमिश्रित अन्न है, ऐसें
जानता भला भयभीत मन करकें जीमेगा, तैसेंही सम्यक् ज्ञानीभी कर्म
वित्तकर्म दोषसें अकार्यभी आचरेगा, तोभी संसारके दुःखों करकें भयभीत
मनवाला होवेगा, परंतु निःशंक नहीं होवेगा अरु जो संसारसें भयभीत
होता है, तिसहीका नाम संवेग कहते है, तबतो संवेगवान् तीव्र अशुभा

ध्यवसायवाला नहीं होता है, अरु जो तुमने कहा था कि अज्ञानही सत्पु रुषोंको मोक्ष जाने वास्ते श्रेय है, परंतु ज्ञान श्रेय नहीं, यह जो कहना है, सो मूढताका सूचक है, जिसका नामही अज्ञान है, वो श्रेय क्यो कर हो सक्ता है? अरु जो तुमने कहाथा कि हम ज्ञानकूं माननी लेवे,जो ज्ञानका निश्चय करणेमें कोइ समर्थ होवे, सोनी मूर्खोंका कहनां है, क्योंकि यद्यपि सर्व मतों वाले परस्पर जिन्नही ज्ञान अंगीकार करते हैं, तोनी जि सका वचन दृष्टेष्ट बाधित नहीं अरु पूर्वापर व्याहत नहीं है, सोइ सम्य क् रूप जाननां तैसा वचन तो नगवान्हीका कह्या हूआ हो सक्ता है, सोइ प्रमाण है, शेष नहीं. अरु जो कहा था कि बौधनी अपनें बुद्ध नग वान्कों सर्वज्ञ मानते हैं, इत्यादि सोनी असत् है, क्योंकि दृष्टेष्टकरकें तिनका बचन बाधित है, इस वास्ते सुगतादिक सर्वज्ञ नहीं है, तिनका ब चन जैसें बाधित है, तैसें आगें लिखेंगे

तथा जो तुमने कहाथा कि जो वर्द्धमान स्वामी सर्वज्ञ होवे,तोनी तिस वर्द्धमान स्वामीहीका कह्या हूआ यह आचारांगादि शास्त्र हैं, सो क्योंकर प्रती त होवे? यहनी तुमारा कहनां दूर हो गया, क्योंकि और किसीका अैसा दृष्टेष्ट बाधा रहित बचन है नहीं अरु जो तुमने कहाथा कि यहनी तुमारा कहनां होवेकि आचारांगादि यह जो शास्त्र है, सो वर्द्धमान स्वामी सर्वज्ञके कहे हूये हैं तोनी वर्द्धमान स्वामीके उपदेशका यही अर्थ है अन्य नहीं है इत्यादि सोनी अयुक्त है क्योंकि नगवान् जो है,सो वीतराग है, अरु जो वीतराग होता है, सो किसीकूं कपट उपदेश देकर जूलाता नहीं है क्योंकि विप्रतारणेका हेतु जो रागादि दोषोंका समूह सो नगवान्में नहीं है, अरु जो सर्वज्ञ होता है, सो जानता है, जो इस शिष्यने विपरीत समजा है, अरु इसने सम्यक् समजा है, तब तो जिसने विपरीत समजा है, ति सकू मनाकर देते है, अरु नगवानने तो गौतमादिकोंकों मने नहीं करा, इस वास्ते गौतमादिकोने सम्यग्ही जाना है, अरु जो कहाथा कि गौत मादि छद्मस्थ हैं, इत्यादि सोनी असार है, क्योंकि छद्मस्थनी उक्त रीति करकें नगवानके उपदेशसेंही यथार्थ वक्ता निश्चय हो सक्ता है, तथा विचि त्र अर्थोंवाले शब्दनी नगवान्नेही कहे हैं, सो शब्द जैसें जैसें प्रकरण हो गा, तैसें तैसें ही अर्थका प्रतिपादक हो सक्ता है, इस वास्ते कोइनी दूषण

नहीं क्योंकि तिस तिस प्रकरणके अनुसारें तिस तिस अर्थका निश्चय हो जाता है, अरु गौतमादिकोंनें जिस जिस जगे जिस जिस शब्दका जैसा जैसा अर्थ करा है, सो नगवानने निषेध नहीं करा, इस वास्तेनी जाना जाता है, जो गौतमादिकने यथार्थही जाना है, अरु यथार्थही शब्दोंका अर्थ करा है, अरु जो कुछ गौतमादिकोंने कहा था, सोई आचार्योंकी अविच्छिन्न परंपरा करकें अब ताइं तैसेंही अर्थका अवगम होता है, ऐसेंनी न कहना कि आचार्योंकी परंपरा हमकूं प्रमाण नहीं? क्यों कि अविपरीतार्थ कहने करके आचार्योंकी परंपराकों कोइनी जूठी करने समर्थ नहीं.

एक औरनी बात है, कि तुमारा जो मत है, सो आगम मूल है? वा अनागम मूल है? जे कर कहोगे कि आगम मूल है, तब तो आचार्योंकी परंपरा क्योंकर अप्रामाणिक हो सकि है? आचार्योंकी परंपरा बिना, आगमका अर्थही क्योंकर जाना जाये? जे कर कहोगे कि अनागममूल है, तब तो उन्मत्तके विरचित वचनवत् प्रामाणिक न होवेगा

पूर्वपक्ष –यद्यपि हमारा मत अनागम मूल है, तोनी युक्ति संयुक्त है, इस वास्ते हम मानते है.

उत्तरपक्ष –अहो " इरत स्वदर्शनानुराग " कैसा नारी अपणे मतका राग है, क्योंकि यह पूर्वापर विरुद्ध नाषण तो अज्ञान मतका नूषण है?

पूर्वपक्ष –किसी तरें हमारा पूर्वापर विरुद्ध बोलनाही हमारे मतका नूषण है?

उत्तरपक्ष –युक्तियां जो होतीयां हैं, सो ज्ञानमूलही होतीयां है, अरु तुम तो अज्ञानहीकूं श्रेय मानते हो, तो फेर तुमारे मतमें सत् युक्तियोंका कैसें संनव होवे? इस वास्ते तुम पूर्वापर विरुद्धार्थके नाषक हो, इस हेतुसें तुमारा मत किसीनी कामका नहीं है॥इति अज्ञानवादि मत खंमन॥

अथ विनयवादीके मतका खंमन लिखते है अब जो विनयहीसें मोक्ष मानते हैं सोनी एकांत वादके मोहसें हैं, क्योंके विनय मुक्तिका अंग है, जो मुक्ति मार्गमें चलते हैं, तिनकी विनय करे अरु मुक्तिमार्ग तो "सम्यक्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः इति बचनात्" सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, अरु सम्यक् चारित्र रूप है, ऐसा तत्त्वार्थ सूत्रका प्रमाण है, इस वास्ते ज्ञानादिकोंकी तथा ज्ञानादिकोंके आधार नूत जो बहुश्रुतादिक

पुरुष है, तिनकी जो विनय करे, बहुमान देवे, ज्ञानादिककी वृद्धि करे, सो परपरा करकें मुक्तिका अग हो सक्ता है, परतु जो सुर, नरपति आदिककी विनय है, सो ससारका हेतु है, क्योंकि जो जिसकी विनय करता है, वो वसके गुणोंकों बहु मान देता है, अरु सुर, नरपति, प्रमुखोंमें तो विषय नोगनेका प्रधान गुण है, जब वनकी विनय करी, तब तो वनके नोगोंकूं बहु मान दीया, जब नोगोकूं बहु मान दीया, तब दीर्घ ससारपथकी प्रवृत्ति कर लीनी इस वास्ते एकांत विनयसें जो मोक्ष मानते हैं, सोनी असत् वादी हैं, क्योंकी ज्ञानादिकोंसें रहित विनय साक्षात् मुक्तिका अग नहीं है ज्ञान, दर्शन, चारित्रसें रहित पुरुष, केवल पादपतनादिक विनयसें मुक्ति नहीं पा सक्ता है, किंतु ज्ञानादिक सहितही पा सक्ता है, तब तो ज्ञानादिकही साक्षात् मुक्तिके अग हूये विनय नहीं

पूर्वपक्ष—कैसे हम जानीयें जो ज्ञानादिकही मुक्तिके अग है?

उत्तरपक्ष—इस ससारमें मिथ्यात्व, अज्ञान, अविरति, इन तीनोही करकें कर्म वर्गणाका सबंध आत्माकों होता है, अरु कर्मकालका जो क्षय होना है, सोइ मोक्ष है "मुक्ति कर्मक्षयाविष्टेति वचनप्रामाण्यात्" अरु कर्मका क्षय तो तब होगा, जब कर्मबधका कारण वछेद होगा, अरु कर्मका कारण तो मिथ्यात्वादि तीन है, इस वास्ते मिथ्यात्वका प्रतिपक्ष सम्यक् दर्शन है, अरु अज्ञानका प्रतिपक्ष सम्यक् ज्ञान है, अरु अविरतिका प्रतिपक्ष सम्यक् चारित्र है, जब इन तीनोकों सेवता हुवा, यह तीनो प्रकर्ष नावकों प्राप्त होगे, तब सर्वथा कर्मोका कारण दूर होवेगा जब कारण वछेद होवेगा, तब निर्मूल कर्मोछेदके होनेसे मोक्ष होवेगा, इस वास्ते ज्ञानादिकही मोक्षका अग है, परतु विनय मात्र नहीं अरु जो ज्ञानादिकों विषे विनय करता हूवा परंपरा करकें मुक्ति अंग है, अरु साक्षात् मोक्षका हेतु तो ज्ञानादिक है, अरु जो जैनशास्त्रोंमें केइ जगें लिखा है कि "सर्वकल्याणनाजन विनय" सो ज्ञानादिकोंकी प्रवृत्ति वास्ते है, अरु जे कर विनयवादीनी इसी तरें मानता है, तब तो विनयवादीनी हमारे मतमेंही वर्त्ते है, तब तो विवादकाही अनाव है॥ इति विनयवादी मत खमन ॥ यह समुच्चय (३६३) मतका किंचित् मात्र स्वरूप लिखा है

अथ नव्य जीवोंके शीघ्र बोध होनें वास्ते षट् दर्शनोंका किंचित् स्वरू

प लिखते है. उसमें प्रथम बौद्ध दर्शनका स्वरूप है सो कहते है. बौद्ध मतमें गुरु जो होते है, तिनका लिंग ऐसा होता है. १ मस्तक मुंडन हुवा, २ चामका टूकडा, ३ कमंडलु. ४ धातुरक्त वस्त्र, यह तो उन का वेष है अरु शौचक्रिया बहुत है. कोमल शय्यामें सोना, सवेरे उठ कर पेया पीना, मध्यान्ह कालमें जात खाना, अपरान्हमें पानी पीना, द्राख, खंड, मिसरी अर्द्धरात्रिमें मरणांतमें मोक्ष, यह बौद्धोंका वचन है. तथा मनगमता जोजन करना, मनगमती शय्या, आसन, अरु मनगमता रहने का स्थान, ऐसी अछी सामग्रीमें मुनि अछा ध्यान करता है, अरु जिसका पात्रमें जो कुछ पड जावे, सो सर्व शुद्ध, ऐसे मान करके मांसनी खा लेते है, अरु ब्रह्मचर्यादि अपणी क्रियामें बहुत दृढ होते है, यह उनका आचार है, १ धर्म, २ बुद्ध, ३ संघ, यह तीनोंको रत्नत्रय कहते है, अरु शासनके विघ्नोंके नाश करने वाली तारा देवी मानते है, अरु विपश्यादिक सात बौद्धावतार जिनोंकी मूर्त्तियोंके कंठमें तीन तीन रेखाका चिन्ह होता है, तिसकू जगवान् मानते हैं, तिसकू सर्वज्ञ मानते है

अरु बुद्ध जगवान्कों जितने नामो कर कहते हैं, सो लिखते है, १ बुद्ध, २ सुगत, ३ धर्मधातु, ४ त्रिकालवित्, ५ जिन, ६ बोधिसत्त्व, ७ महाबोधी, ८ आर्य, ९ शास्ता, १० तथागत, ११ पंचज्ञान, १२ षडभिज्ञ, १३ दशार्ह, १४ दशजूमिग, १५ चतुस्त्रिंशज्जातकज्ञ, १६ दशपारमिताधर, १७ द्वादशाक्ष, १८ दशबल, १९ त्रिकाय, २० श्रीघन, २१ अद्वय, २२ समन्तभद्र, २३ सगुप्त, २४ दयाकूर्च, २५ विनायक, २६ मारजित्, २७ लोकजित्, २८ सुखजित्, २९ धर्मराज, ३० विज्ञानमात्रक, ३१ महामैत्र, ३२ मुनींद्र यह बत्तीस नाम, बुद्ध जगवान्के कहते हैं अरु सात बुद्ध मानते है, १ विपशी, २ शिखी, ३ विश्वभू, ४ क्रकुछंद, ५ कांचन, ६ काश्यप, ७ शाक्यसिंह पीछला जो शाक्यसिंह बुद्ध है, उसके नाम, १ शाकसिंह, २ अर्कबांधव, ३ राहुलसू, ४ सर्वार्थसिद्ध, ५ गौतम, ६ मायासुत, ७ शुद्धोदनसुत, ८ देवदत्ताग्रज तथा १ जिक्षु, २ सौगत, ३ शाक्य, ४ शौद्धोदनी, ५ सुगत, ६ तथागत, यह शून्यवादी बौद्धोंके नाम हैं तथा १ शौद्धोदनी, २ धर्मोत्तर, ३ अर्वट, ४ धर्मकीर्त्ति, ५ प्रज्ञाकर, ६ दिग्नाग, ७ रामट इत्यादि ग्रंथोंके करने वाले गुरु हैं तथा

१ तर्कनाषा, २ न्यायविंड, ३ हेतुविंद, ४ अर्वट, ५ तर्ककर्मजशैत, ६ न्याय प्रवेश, ७ ज्ञानपार, इत्यादि नाम उनके तर्कशास्त्रोंके हैं तथा बोध्धोंकी शाखा चार है, सो कहते है, १ वैनापिक, २ सौतांत्रिक, ३ योगाचार, ४ माध्यमिक.

अथ बोध्धमतं बोध्ध चार वस्तु मानते हैं, सो लिखतेहैं, १ फुख, २ समुदाय, ३ मार्ग, ४ निरोध तहां जो फुख है, सो पांच स्कंधरूप है, उसका नाम लिखते हैं १ ज्ञानस्कध, २ वेदनास्कध, ३ संज्ञास्कंध, ४ सस्कारस्कंध, ५ रूपस्कध इन पांचो विना अपर कोइनी आत्मादिक पदार्थ नहीं है, यह पांच स्कंधका अर्थ लिखते है १ रूपविज्ञान, रस विज्ञान, इत्यादिक निर्विकल्पक जो विज्ञान हैं, सो विज्ञान स्कध, २ सुखा फुखा, अफुख सुखा, यह वेदनास्कध है, यह वेदना पूर्वकृत कर्मोंसें होती है, ३ सविकल्पक ज्ञान जो है, सो सज्ञास्कध, ४ पुण्य अपुण्यादिक धर्म समुदाय जो है, सो सस्कारस्कध है, इसही संस्कारके प्रबोधसें पूर्व अनुनवका स्मरणादिक होता है, ५ पृथिवी, धातु आदिक अरु रूपादिक, यह रूपस्कध है, इन पांचोसें अतिरिक्त आत्मादिक कोइ पदार्थ नहीं अरु यह जो पांचों स्कध हैं, वे सर्व एक क्षणमात्र रहते हैं, नित्यनी नहीं है, अरु कितनेक काल तांइ रहनेवालेनी नहीं है, यह फुख तत्त्वके पांच नेद कहे

अथ फुख तत्त्वका कारणनूत समुदाय तत्त्वका स्वरूप लिखते हैं, जो इस जगत्में राग द्वेषोंका समूह उत्पन्न होता है, वो राग द्वेषका समूह कैसा है? कि "आत्माआत्मीयनावाख्य" मैं हू, यह मेरा है, ऐसा जो सबंध, तथा यह दूसरा है, यह दूसरेकी वस्तु है, ऐसा जो सबध, सोइ है नाम जिसका इस करके जो राग द्वेषादिक उत्पन्न होते हैं, तिसका नाम समुदायतत्त्व है अथ फुख, अरु समुदाय, यह जो दोनों हैं, सो ससारकी प्रवृत्तिके हेतु है

अब इन दोनोंके जो विपक्षीनूत १ मार्ग २ निरोध तत्त्व है, सो लिखते हैं कि "परमनि कृष्ट काल क्षण" तिसमें जो होवे, सो क्षणिक है, सर्व पदार्थ क्षणमात्र रह कर नाश हो जाते हैं, आत्मा कोइ सर्वकाल स्थायी नहीं पूर्वक्षणके नाश होनेसें तत्सदृश उत्तर क्षण उत्पन्न होता है, पूर्वज्ञान जनिता वासना सो उत्तर ज्ञानमें शक्ति है, अरु क्षणोंकी परंपरा करकें जो मान

सी प्रतीति होवे, तिसका नाम मार्ग है. सो निरोधका कारण जानना अथ चौथा निरोध नामा तत्त्व लिखते हैं. निरोध नामा तत्त्व मोक्षको कहते हैं चित्तकी जो निःक्लेश अवस्था तिसका नाम निरोध तत्त्व है. प्रमातर करिकें मोक्ष कहते हैं, यह दुःखादि चारकों आर्यसत्य कहते हैं, अरु यह जो चारों तत्त्व अनंतर कहे हैं, सो सौत्रान्त्रिक बौद्धमतकी अपेक्षा है.

अरु जेकर भेद रहित समुच्चय बौद्धमतकी विवक्षा करियें, तब तो बौद्धमतमें बारा पदार्थ होते हैं, उसमें १ श्रोत्र, २ चक्षु, ३ घ्राण, ४ रसन, ५ स्पर्शन. यह पांच तो इंद्रिय, अरु इन पांचों इंद्रियोंके पांच विषय, तथा १ चित्त, २ शब्दायतन धर्म जो है, सुख दुःखादि तिनका जो आयतन (घर) सो क्या है? कि शरीर है यह सर्व द्वादश तत्त्वोंका नाम आयतन कहते है, अरु यह बारा आयतन क्षणिक हैं, उक्त प्रकारसे. चार तत्त्व तो सौत्रान्त्रिकके मतके, अरु सामान्य प्रकारसें बौद्धमतके बारा आयतन कह करकें अब बौद्धमतके प्रमाण लिखते हैं, बौद्धमतमें एक प्रत्यक्ष, दूसरा अनुमान, यह दो प्रमाण मानते हैं ॥ इति संक्षेप मात्र बौद्धदर्शन ॥ १ ॥

अथ नैयायिक दर्शन लिखते हैं नैयायिक मतका अपर नाम योगमतभी कहते हैं, इन नैयायिकोंके गुरु १ दंभ रखते हैं, २ बडी कौपीन पहेरतें हैं, ३ कांबली उढते हैं, ४ जटा राखते हैं, ५ शरीरकों भस्म लगाते हैं, ६ नीरस आहार करते हैं, ७ बांहके मूलमें तूंबी राखते हैं, ८ प्राय करके वनोंमें रहते है, ९ आतिथ्य कर्ममें तत्पर होते हैं, १० कंद, मूल, फल, खाते हैं, ११ कितनेक स्त्री रखते हैं, औ कितनेक नहीं रखते हैं, १२ जो स्त्री नहीं रखते हैं, सो तिनमें उत्तम गणे जाते हैं, १३ पंचाग्नि तापते हैं, १४ जटामें प्राणलिंग धरते हैं, १५ उत्तम संयम अवस्थामें जब प्राप्त होते है, तब नग्न हो कर भ्रमण करते हैं, १६ सवेरे दंत पादादि शौच करके शिवका ध्यान करते हैं, १७ भस्म करकें तीन तीन वार अंगकूं स्पर्श करते हैं, १८ जो उनका भक्त वंदना करता है, सो " ॐ नमः शिवाय " कहता है, अरु १९ गुरु भक्तके तांइ " शिवाय नमः " ऐसे कहता है उनका कहना ऐसाभी है, कि जो पुरुष शैवी दीक्षा बारां वर्षपाल करकें छोड देवे, जे कर पीछे वो दास दासीभी होवे, तोभी निर्वाण

पद पाता है, अरु शंकर इनका देव है, सो शंकर कैसा हैकि.—सर्व सृष्टि का संहारका कर्त्ता है

तिस शकरके अगरह अवतार मानते हैं, तिसका नाम लिखते हैं, १ नकुलीश, २ कौशिक, ३ गार्ग्य, ४ मैत्र, ५ कौरुप, ६ ईशान, ७ अपर गार्ग्य, ८ कपिलाण्ड, ९ मनुष्यक, १० अपर कुशिक, ११ अत्रि, १२ पिंगलाक्ष, १३ पुष्पक, १४ वृहदाचार्य, १५ अगस्ति, १६ सतान, १७ राशिकर, (१८) विद्यागुरु, यह अगरह उनके तीर्थेश हैं, इनकी बहुत सेवा करते हैं, इनका पूजन, अरु प्रणिधान तिनके शास्त्रोंसें जान लेनां

अरु इनका अक्षपाद मुनि अर्थात् गौतम मुनि गुरु है, तिनके मतमें जरट पूजनिक है, सो कहते है, देवतावोंके सन्मुख हो कर नमस्कार न करणी, जैसा नैयायिक मतमें लिंग, वेष, देवादि स्वरूप है, तैसाही वैशेषिक मतमेंभी जान लेनां, क्योंकि नैयायिक वैशेषिकोंके प्रमाण अरु तत्त्वोंमें थोडासा भेद है, इस वास्ते यह दोनो मत तुल्य ही है,इन दोनों हीकों तपस्वी कहते हैं, अरु तिनके शैवादिक चार भेद हैं, एक शैव, दूसरा पाशुपत, तीसरा महाव्रतधर, चौथा कालमुख इनके अवातर भेद जरट, भक्तलैंगिक, तापसादिक है, जरटादिकोको व्रत ग्रहणेमें ब्राह्मणादि वर्णोका नियम नहीं, किंतु जिसकी शिव विषे भक्ति होवे, सो व्रती जरटादिक होता है, परंतु नैयायिक जो हैं, सो सर्व सदाशिवभक्त होनेसें उनका नाम शैव कहते है, अरु वैशेषिकोंको पाशुपत कहते है

इन नैयायिकोंके मतमें १ प्रत्यक्ष, २ अनुमान, ३ उपमान, ४ शाब्द, यह चार प्रमाण मानते है, अरु १ प्रमाण, २ प्रमेय, ३ सशय, ४ प्रयोजन, ५ दृष्टांत, ६ सिद्धांत, ७ अवयव, ८ तर्क ९ निर्णय, १० वाद, ११ जल्प, १२ वितंडा, १३ हेत्वाभास, १४ छल, १५ जातय, १६ निग्रहस्थान यह सोला पदार्थ मानते हैं, इनका विस्तार बहुत है, इस वास्ते नहीं लिखा, अरु आत्यतिक दुःखोंका जो वियोग तिसकू मोक्ष कहते हैं इनके १ न्यायसूत्र, अक्षपाद मुनि कर्त्ता, २ भाष्य, वात्स्यायन मुनि कर्त्ता, ३ न्याय वार्त्तिक, उद्योतकर कर्त्ता, ४ तात्पर्य टीका, वाचस्पति कर्त्ता, ५ तात्पर्य परिशुद्धि, उदयन कर्त्ता, ६ न्यायालकार वृत्ति, श्रीकंगभयतिलकोपाध्याय कर्त्ता, ७ भासर्वज्ञप्रणीत,

सी प्रतीति होवे, तिसका नाम मार्ग है, सो निरोधका कारण जानना.
अथ चौथा निरोध नामा तत्त्व लिखते हैं. निरोध नामा तत्त्व मोक्षको
कहते हैं चित्तकी जो निःक्लेश अवस्था तिसका नाम निरोध तत्त्व है. न
मांतर करिकें मोक्ष कहते हैं, यह दुःखादि चारकों आर्यसत्य कहते हैं,
अरु यह जो चारों तत्त्व अनंतर कहे हैं, सो सौतांत्रिक बौद्धमतकी अपेक्षा है.
अरु जेकर भेद रहित समुच्चय बौद्धमतकी विवक्षा करियें, तब तो
बौद्धमतमें बारा पदार्थ होते हैं. उसमें १ श्रोत्र, २ चक्षु, ३ घ्रा
ण, ४ रसन, ५ स्पर्शन. यह पांच तो इंद्रिय, अरु इन पांचों इं
द्रियोंके पांच विषय, तथा १ चित्त, २ शब्दायतन धर्म जो है, सुख
दुःखादि तिनका जो आयतन (घर) सो क्या है? कि शरीर है यह
द्वादश तत्त्वोंका नाम आयतन कहते हैं, अरु यह बारा आयतन
हैं, उक्त प्रकारसे. चार तत्त्व तो सौतांत्रिकके मतके, अरु सामान्य
सें बौद्धमतके बारा आयतन कह करकें अब बौद्धमतके प्रमाण ...
ते हैं, बौद्धमतमें एक प्रत्यक्ष, दूसरा अनुमान, यह दो प्रमाण ..
हैं ॥ इति संक्षेप मात्र बौद्धदर्शन ॥ १ ॥
अथ नैयायिक दर्शन लिखते हैं नैयायिक मतका अपर नाम यौग
कहते हैं, इन नैयायिकोंके गुरु १ दंड रखते हैं, २ बडी कोपीन पहे
हैं, ३ कांबली उंढते हैं, ४ जटा राखते हैं, ५ शरीरकों भस्म लगाते
६ नीरस आहार करते हैं, ७ बांहके मूलमें तूंबी राखते हैं, ८ प्राय
रके वनोमें रहते है, ९ आतिथ्य कर्ममें तत्पर होते हैं, १० कंद,
फल, खाते हैं, ११ कितनेक स्त्री रखते हैं, औ कितनेक नहीं रखते
१२ जो स्त्री नहीं रखते हैं, सो तिनमें उत्तम गणे जाते हैं, १३ प
तापते हैं, १४ जटामें प्राणलिंग धरते हैं, १५ उत्तम संयम
जब प्राप्त होते है, तब नग्न हो कर भ्रमण करते हैं, १६ सवेरे दंत
धावि शौच करके शिवका ध्यान करते हैं, १७ भस्म करकें तीन तीन
र अंगकू स्पर्श करते हैं, १८ जो उनका भक्त बंदना करता है, सो "
नमः शिवाय" कहता है, अरु १९ गुरु भक्तके तांइ "शिवाय नमः"
से कहता है उनका कहना ऐसाभी है, कि जो पुरुष शैवी दीक्षा
वर्षपाल करकें छोड देवे, जे कर पीछे वो दास दासीभी होवे, तोभी .

न्यायसार तिसविषे अगरह टीका है, तिनमेंसू न्यायभूषण नामक टीका प्रसिद्ध है, न्यायकलिका जयंत रचित, न्याय कुसुमांजलि यह सब इन नैयायिकोंके तर्क ग्रंथ है, यह नैयायिकदर्शन, संक्षेपसे लिखा.

अथ वैशेषिकनी यही लिख देते है कि वैशेषिकोंका मत नैयायिकों के तुल्यही है, परतु यह विशेष है कि, यह मतवाले प्रत्यक्ष अरु अनुमान यह दो प्रमाण मानते है, अरु १ द्रव्य, २ गुण, ३ कर्म, ४ सामान्य, ५ विशेष, ६ समवाय, यह नावरूप ७ तत्वो मानते हैं, इन सर्वका विस्तार देखना होवे, तदा वैशेषिक मतके ग्रंथोमें देख लेना, तथा तपागच्छाचार्य श्रीगुणरत्नसूरिविरचित षट्दर्शन समुच्चय ग्रंथकी टीका देख लेनी अरु यह वैशेषिकमतके जो तर्कग्रंथ हैं, सो कहते है, एक तो ६००० श्लोक प्रमाण, कदली श्रीधर आचार्य कर्त्ता, वैशेषिक सूत्र, ३००० श्लोक प्रमाण, प्रशस्तकर नाष्य, ७०० श्लोक मान, व्योमशिवाचार्यकृत व्योममतीटीका, ए००० श्लोक मान, उदयनकी करी हूइ किरणावली ६००० श्लोकमान, श्रीवत्स आचार्यकृत लीलावती टीका ६००० श्लोकमान, अरु एक आत्रेय तंत्र था, सो व्यवछेद हो गया है यह वैशेषिक मतवाले कहते हैं की शिवजीने उलूकका रूप करके कणाद मुनिके आगें यह वैशेषिक मत प्रकाश करा था, इस वास्ते इस मतका नाम औलूक्य मतनी कहते हैं ॥ इति वैशेषिक मत ॥

अथ सांख्यमत लिखते हैं प्रथम तो सांख्यमतके साधुओंके जानने वास्ते उनका लिंगादिक लिखते हैं सो त्रिदमीनी होते हैं, कौपीन पहेरते हैं, धातुरक्त वस्त्र रखते हैं, कोइ शिर उपर शिखा रखते है, अरु कोइ जटा रखते हैं, कोइ मस्तक क्षुरमुम कराते हैं, मृगचर्मका आसन रखते हैं, द्विजके घरका अन्न खाते हैं, केइ पांचही ग्रास खाते हैं, अरु बारा अक्षरका जाप करते हैं, तिनके नक्त, जब गुरुकूं बंदना करता है, तब "ॐ नमो नारायणाय" असे कहते है, तब गुरु उनकू "नमो नारायणाय" असे कहते है, अरु महानारतमें जिसका नाम "वीटा" असा लिखा है, यह काष्ठकी मुखवस्त्रिका मुखके नि श्वास निरोधके वास्ते रखते हैं, जिससें मुखश्वाससें जीवहिंसा न होवे यदाह "॥ श्लोक ॥ तेप्राणादनुयातेन, श्वासेनैकेन जंतव ॥ हन्यंते शतशो ब्रह्म, न्नणुमात्राक्षरवादिन ॥ १ ॥ ते सांख्य गुरु. ज

लके जीवोंकी दया वास्ते अपने पास पाणीके गानने वास्ते गलनां राख ते हैं, अरु अपनें नक्तोकू पाणीके गानने वास्ते तीस अगुल प्रमाण लां बा और वीश अगुल प्रमाण चौडा, दृढ गलना राखनेका उपदेश करते है, अरु जो जीव पानीके गाननेसे निकले, वो उसी पाणीमें पीछे प्रक्षेप करने, क्योंकि मीठे पाणी करके खारे पाणीके पूरे मर जातें हैं, अरु खारे पा णीके मिलनेसें मीठे पाणीके पूरे मर जाते हैं, इस वास्ते परस्पर पानी योंका मेल न करना, बहुत सूक्ष्म पाणीके एक बिंदुमें इतने जीव है कि जे कर भ्रमर समान त्रस जीवोंकी काया बनाइ जावे, तो तीन लोकमें वे जीव न समावे ॥ इति गलनक विचारो मीमांसाया ॥

यह सांख्यनी एक प्राचीन, अरु एक नवीन, ऐसे दो तरेंके हैं, नवीनोका दूसरा नाम पातंजलनी कहते है, इनमेंसू प्राचीन सांख्य ईश्वरकों नहीं मानते है, अरु नवीन सांख्य ईश्वरकों मानते है, जो निरीश्वर है वो ना रायण पर है, अरु उनके जो आचार्य है, सो विष्णु प्रतिष्ठा कारका चैत न्य प्रमुख शब्दों करके कहे जाते है, अरु सांख्य मत कहने वाले यह आचार्य है सो लिखते है कपिल, आसुरी, पंचशिख, नार्गव, उलूक, ईश्वर, रुष्ण, यह शास्त्रोंके कर्त्ता है सांख्यमत वालोंकों कापिलानी कहते है, तथा कपिलाका परमर्षि ऐसा दूसरानी नाम है, इस वास्ते तिनकों पारमर्षानी कहते है, वाणारसीमें सो बहुत होते है, मासोपवासनी करते है, अरु ब्रा ह्मण जो है, सो अर्चिमार्गसें विरुद्ध धूममार्गानुगामी है, अरु सांख्य जो है, सो अर्चिमार्गानुयायी है, तिस वास्ते ब्राह्मणोको तो वेद प्यारे है, अरु यज्ञमार्गानुयायी है, अरु सांख्य जो हैं सो हिंसा करकें पूर्ण, ऐसे जो वेद, तिनोंसें निवर्त्ते हूये हैं, अध्यात्मवादी हैं सो सांख्य अपने मतकी महिमा ऐसी मानते है माठर शास्त्रके प्रांतमें लिखा है ॥श्लोक॥ हस पिब चखाद मोद, नित्य भुंक्ष्व च नोगान् यथाऽनिकाम ॥ यदि विदितं कपिलमतं, तत्प्राप्स्यसि मोक्षसौख्यमचिरेण ॥१॥ अस्यार्थ —जे कर तुमने कपिल मत जाना है तो हसो, पीयो, खेलो, खाउ, सदा खुशी रहो, जैसे रुचि होवे, तैसें नोगोंको सदा नोगो, तो तुमकों थोडेसे कालमें मुक्ति सुख प्राप्त होवेगा शास्त्रातरमेंनी कहा है ॥ श्लोक ॥ पचविंशति तत्त्वज्ञो, यत्र तत्राश्रमे रत ॥ शिखी मुंमी जटी वापि, मुच्यते नात्र सशय ॥ १ ॥

न्यायसार तिसविषे अठारह टीका है, तिनमेंसू न्यायभूषण नामक टीका प्रसिद्ध है, न्यायकलिका जयंत रचित, न्याय कुसुमांजलि यह सब इन नैयायिकोंके तर्क ग्रंथ हैं, यह नैयायिकदर्शन, संक्षेपसें लिखा

अथ वैशेषिकभी यही लिख देते हैं कि वैशेषिकोंका मत नैयायिकों के तुल्यही है, परंतु यह विशेष है कि, यह मतवाले प्रत्यक्ष अरु अनुमान यह दो प्रमाण मानते हैं, अरु १ द्रव्य, २ गुण, ३ कर्म, ४ सामान्य, ५ विशेष, ६ समवाय, यह भावरूप ७ तत्त्वों मानते हैं, इन सर्वका विस्तार देखनां होवे, तदा वैशेषिक मतके ग्रंथोमें देख लेना, तथा तपागच्छाचार्य श्रीगुणरत्नसूरिविरचित षट्दर्शन समुच्चय ग्रंथकी टीका देख लेनी अरु यह वैशेषिकमतके जो तर्कग्रंथ हैं, सो कहते हैं, एक तो ६००० श्लोक प्रमाण, कदली श्रीधर आचार्य कर्त्ता, वैशेषिक सूत्र, ३००० श्लोक प्रमाण, प्रशस्तकर भाष्य, ७०० श्लोक मान, व्योमशिवाचार्यकृत व्योममतीटीका, ९००० श्लोक मान, उदयनकी करी हूइ किरणावली ६००० श्लोकमान, श्रीवत्स आचार्यकृत लीलावती टीका ६००० श्लोकमान, अरु एक आत्रेय तंत्र था, सो व्यवछेद हो गया है यह वैशेषिक मतवाले कहते है की शिवजीने उलूकका रूप करके कणाद मुनिके आगें यह वैशेषिक मत प्रकाश करा था, इस वास्ते इस मतका नाम औलूक्य मतभी कहते हैं ॥ इति वैशेषिक मतं ॥

अथ सांख्यमत लिखते हैं प्रथम तो सांख्यमतके साधुओंके जानने वास्ते उनका लिंगादिक लिखते हैं सो त्रिदंडीभी होते हैं, कौपीन पहेरते हैं, धातुरक्त वस्त्र रखते हैं, कोइ शिर उपर शिखा रखते हैं, अरु कोइ जटा रखते हैं, कोइ मस्तक क्षुरमुंड कराते हैं, मृगचर्मका आसन रखते हैं, द्विजके घरका अन्न खाते हैं, केइ पांचही ग्रास खाते हैं, अरु बारा अक्षरका जाप करते हैं, तिनके भक्त, जब गुरुकू वंदना करता है, तब "ॐ नमो नारायणाय" असे कहते है, तब गुरु उनकू "नमो नारायणाय" असे कहते है, अरु महाभारतमें जिसका नाम "वीटा" असा लिखा है, यह काष्ठकी मुखवस्त्रिका मुखके नि श्वास निरोधके वास्ते रखते हैं, जिससें मुखश्वाससें जीवहिंसा न होवे यदाह "॥ श्लोक ॥ तेप्राणादनुयातेन, श्वासेनैकेन जंतव ॥ हन्यंते शतशो ब्रह्म, न्नणुमात्राक्षरवादिन ॥ १ ॥ ते सांख्य गुरु, ज

नके जीवोंकी दया वास्ते अपने पास पाणीके गानने वास्ते गलना राख ते है, अरु अपनें नकोकू पाणीके गानने वास्ते तीस अगुल प्रमाण ला वा और वीश अगुल प्रमाण चौडा, दृढ गलना राखनेका उपदेश करते है, अरु जो जीव पानीके गाननेसें निकले, वो उसी पाणीमें पीठे प्रक्षेप करने, क्योंकि मीठे पाणी करके खारे पाणीके पूरे मर जाते है, अरु खारे पा णीके मिलनेसें मीठे पाणीके पूरे मर जाते हैं, इस वास्ते परस्पर पानी योंका मेल न करनां, बहुत सूक्ष्म पाणीके एक बिंदुमें इतने जीव है कि जे कर भ्रमर समान उस जीवोंकी काया बनाइ जावे, तो तीन लोकमें वे जीव न समावे ॥ इति गलनक विचारो मीमासायां ॥

यह सांख्यनी एक प्राचीन, अरु एक नवीन, ऐसे दो तरेंके हैं, नवीनोका दूसरा नाम पातांजलनी कहते हैं, इनमेंसूं प्राचीन सांख्य ईश्वरकों नहीं मानते हैं, अरु नवीन सांख्य ईश्वरकों मानते है, जो निरीश्वर है वो ना रायण पर हैं, अरु उनके जो आचार्य है, सो विष्णु प्रतिष्ठा कारका चैत न्य प्रमुख शब्दों करके कहे जाते है, अरु सांख्य मत कहने वाले यह आचार्य है सो लिखते है कपिल, आसुरी, पचशिख, नागव, उलूक, ईश्वर, कृष्ण,यह शास्त्रोंके कर्त्ता है सांख्यमत वालोकों कापिलानी कहते है, तथा कपिलाका परमर्षि ऐसा दूसरानी नाम है, इस वास्ते तिनकों पारमर्षनी कहते है, वाणारसीमें सो बहुत होते है,मासोपवासनी करते है, अरु ब्रा ह्मण जो है, सो अर्चिमार्गसें विरुद्ध धूममार्गानुगामी है, अरु सांख्य जो है, सो अर्चिमार्गानुयायी है, तिस वास्ते ब्राह्मणोको तो वेद प्यारे है, अरु यज्ञमार्गानुयायी है, अरु सांख्य जो हैं सो हिंसा करकें पूर्ण, ऐसे जो वेद, तिनोंसें निवर्त्ते हूये हैं, अध्यात्मवादी हैं सो सांख्य अपने मतकी महिमा ऐसी मानते है माठर शास्त्रके प्रांतमें लिखा है ॥श्लोक॥ हस पिव चखाद मोद,नित्य नुक्ष्व च नोगान् यथाऽनिकाम ॥ यदि विदितं कपिलमतं, तत्प्राप्स्यसि मोक्षसौख्यमचिरेण ॥१॥ अस्यार्थ –जे कर तुमने कपिल मत जाना है तो हसो, पीयो, खेलो, खाउ, सदा खुशी रहो, जैसें रुचि होवे, तैसें नोगोंको सदा नोगो, तो तुमकों थोडेसे कालमें मुक्ति सुख प्राप्त होवेगा शास्त्रांतरमेंनी कहा है ॥ श्लोक ॥ पचविंशति तत्त्वज्ञो, यत्र तत्राश्रमे रत ॥ शिखी मुंडी जटी वापि, मुच्यते नात्र सशय ॥ १ ॥

अस्यार्थ –पच्चीश तत्त्वोंका जो जानकार होवे,सो चाहो किसी आश्रममें रहे, शिखावाला होवे, वा मुंडित होवे, अथवा जटावाला होवे, वे सर्व उपाधिसे छुट जाते है, इसमें संशय नहीं

अब सांख्यमतमें सर्वसांख्य पच्चीश तत्त्व मानते है,जब पुरुष तीन दुःखोंसे अभिहत होता है, तब तिन दुःखोंके दूर करणे वास्ते जिज्ञासा उत्पन्न होती है, सो तीन दुःख यह है १ आध्यात्मिक, २ आधिदैविक, ३ आधिभौतिक, यह तीन दुःख है, आध्यात्मिक जो आधि है, सो दो प्रकारकी है, एक शारीरी, दूसरी मानसी, तहा जो वायु, पित्त, श्लेष्म, इन तीनोंकी विषमतासें देहमें जो अतिसारादिक होते है, सो शारीरिक है अरु काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, विषयोंके देखनेसे जो होवे, सो मानसी यह दोनोंही आंतर उपायसें दूर हो सकते है इस वास्ते इसकू आध्यात्मिक दुःख कहते है, २ अरु जो बाह्य उपाय करकें साध्या जावे सो दुःख दो प्रकारके है, एक आधिभौतिक, दूसरा आधिदैविक, तहां जो दुःख मनुष्य, पशु, पक्षी, मृग, सर्प, स्थावर आदिके निमित्त करिकें होता है ताकू आधिभौतिक कहते है, ३ अरु यक्ष, राक्षस, भूतादिकका प्रवेश हो जाना, तथा महामारी अनावृष्टि अतिवृष्टिका होनां तिसका नाम आधिभौतिक है इन तीनो दुःखो करकें रज परिणामके भेद करकें प्राणीयोंकों दुःखोंके दूर करणे वास्ते तत्त्वोंके जाननेकी इच्छा होती है, सो तत्त्व, पच्चीश प्रकारके हैं

अब प्रथम पच्चीश तत्त्वोंका स्वरूप लिखते है तिनमें प्रथम सत्त्वादि गुणोंका स्वरूप कहते हैं १ प्रथम सत्त्वगुण सुखलक्षण, २ दूसरा रजोगुण दुःख लक्षण, ३ तीसरा तमोगुण मोहलक्षण, इन तीनो गुणोंके यह लिंग हैं, १ सत्त्वगुणका चिन्ह प्रसन्नता, २ रजोगुणका चिन्ह संताप, ३ तमोगुणका चिन्ह दीनपणा, अब १ प्रसाद, २ बुद्धिपाटव, ३ लाघव, ४ प्रश्रय, ५ अनभिष्वंग, ६ अद्वेष, ७ प्रीत्यादय, यह सत्त्वगुणके कार्यलिंग हैं १ ताप, २ शोष, ३ भेद, ४ चलचित्त, ५ स्तंभ, ६ उद्वेग, यह रजोगुणके कार्य लिंग हैं, १ दैन्य, २ मोह, ३ मरण, ४ असादन, ५ वीभत्सा, ६ ज्ञानगौरवादि, यह तमोगुणके कार्यलिंग हैं इन कार्यों करकें सत्त्वादि गुण जाने जाते हैं ॥ तथाहि ॥ लोकमें जो कुछ सुख उपलब्ध होता है,

सो १ आर्जव, २ मार्दव, ३ सत्य, ४ शौच, ५ लज्जा, ६ बुद्धि, ७ क्षमा, ८ अनुकपा, प्रसादादि, यह सर्व सत्त्व गुणके कार्य्य हैं अरु जो कुछ दुःख उपलब्ध होता है, सो १ द्वेष, २ द्रोह, ३ मत्सर, ४ निंदावचन, ५ बधन, तापादि स्थान हैं, सो रजोगुणके कार्य्य हैं अरु जो कुछ मोह, उपलब्ध होता है, सो १ अज्ञान, २ मद, ३ आलस्य, ४ जय, ५ दैन्य, ६ कृपणता, ७ नास्तिकता, ८ विषाद, ए उन्माद स्वप्नादि, यह तमोगुणके कार्य्य हैं यह सत्त्वादिक परस्परोपकारी तीन गुणों करकें सर्व जगत् व्याप्त है, परंतु ऊर्ध्व लोकमें देवतायों विषे बाहुल्य करके सत्त्वगुण हैं, औ अधोलोक तिर्यंच नरकों विषे बाहुल्य करके तमोगुण है, औ मनुष्यों में बहुलता करकें रजो गुण है, इन तीनो गुणों की जो सम अवस्था है, तिसका नाम प्रकृति है, तिस प्रकृतिकों प्रधान, अव्यक्त शब्दो करकेंजी कहते हैं, सो प्रकृति नित्य स्वरूप है, "अप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकस्वजाव कूटस्थ नित्यं" यह नित्यका लक्षण है अरु यह जो प्रकृति है सो अन्वय, वा असाधारणी, अशब्दा, अस्पर्शा, अरसा, अरूपा, अगधा, अव्यया, कहते है अरु जो मूल सांख्यमती हैं, वे एकैक आत्माके साथ न्यारा न्यारा प्रधान मानते हैं, अरु जो नवीन सांख्य है, वे सर्वात्माओंमें एक, नित्य, प्रधान मानते हैं, प्रकृति अरु आत्माके सयोगसें सृष्टि होती है, इस वास्ते सृष्टि होनेका क्रम लिखते हैं

तिस प्रकृतिसेंती बुद्धि उत्पन्न होती है, गौ आदिकोंके आगें दीखनें सें यह गौही है घोडा नहीं, यह स्थाणुही है, परंतु पुरुष नहीं, ऐसा जो निश्चयरूप अध्यवसाय होता है, तिसका नाम बुद्धि कहते हैं, दूसरा तिसका नाम महत्जी कहते है तिस बुद्धिके आठ रूप हैं १ धर्म, २ ज्ञान, ३ वैराग्य, ४ ऐश्वर्य, यह चार तो सात्विक बुद्धिके रूप है, १ अधर्म, २ अज्ञान, ३ अवैराग्य, ४ अनैश्वर्य्य, यह चारो तामसी बुद्धिके रूप है तिस बुद्धिसें अहंकार उत्पन्न होता है, तिस अहंकारसेंति सोला गुणका समूह उत्पन्न होता है, सो गुण यह है, १ स्पर्शन (त्वक्) २ रसन जिव्हा, ३ घ्राण नासिका, ४ चक्षु लोचन, ५ श्रोत्र श्रवण इन पांचोकों बुद्धींद्रिय कहते हैं, क्योंकि यह पांचों अपणे अपणे विषयको जानती है, अरु पाच कर्मेंद्रिय है १ पायु गुदा, २ उपस्थ स्त्री पुरुषका चिन्ह, ३

कठादि स्थानोसें जो शब्द उच्चरियें है, सो वच, ४ हाथ, ५ पग, इन पाचोसें पांच काम होते है. १ मलोत्सर्ग, २ सनोग, ३ वचन, ४ पकडना, ५ चलना, इस वास्ते इन पाचोंको कर्मेंद्रिय कहते है अरु अ गीयारवा मन, यह मन जो है, सो बुद्धींद्रियोसे मिलता है, तब बुद्धीइि यरूप हो जाता है, अरु जब कर्मेंद्रियोसे मिलता है, तब कर्मेंद्रिय रूप हो जाता है, अरु यह मन जो है, सो सकल्पवृत्ति है, तथा अहंकारसती पाच तन्मात्रा जिनकी सूक्ष्म सज्ञा है, सो उत्पन्न होते है, तहां १ रूप तन्मात्रा सो शुक्ल कृष्णादिरूप विशेष, २ रस तन्मात्रा सो तिक्तादि रस विशेष, ३ गध तन्मात्रा सो सुरभ्यादि गध विशेष, ४ शब्दतन्मात्रा, सो मधुरादि शब्द विशेष, ५ स्पर्श तन्मात्रा, सो मृदु काठिन्यादि स्पर्श विशे ष, यह षोडशका गण है अथ पांच तन्मात्राओंसे पाच भूत उत्पन्न होते हैं, सो कहते है १ रूप तन्मात्रा सूक्ष्म सज्ञासे अग्नि उत्पन्न होता है, २ रस तन्मात्रासे जल उत्पन्न होता है, ३ गध तन्मात्रासे पृथिवी उत्पन्न होती है, ४ औ शब्द तन्मात्रासें आकाश उत्पन्न होता है, तथा ५ स्पर्श तन्मात्रासें वायु उत्पन्न होता है ऐसे पांच तन्मात्राओंसे पाच भूत उत्पन्न होते हैं, ऐसे यह सब मिल कर चोवीश तत्त्व रूप सांख्य मतमें प्रधान निवेदन कीया, "औ अकर्त्ता विगुण भोक्ता" ऐसा पुरुष तत्त्व नित्य चिद्रूप मानते हैं, चोवीश तत्त्वरूप प्रधान ऐसे हैं कि १ प्रकृति, २ महान्, ३ अहंकार, ८ पांच ज्ञानेंद्रिय, १३ पांच कर्मेंद्रिय, १४ मन, १९ पां च तन्मात्रा, २४ पांच भूत, यह चोवीश तत्त्व हैं तिनमेंसू प्रथम एक प्रकृति है, ऐसें अनुत्पन्न होनेसें बुद्धि आदिक सात अगलोंके तो कारण हैं, अरु पीछलोंके कार्य हैं, इस वास्ते इन सातोंको प्रकृति विकृति कहते हैं, अरु षोडशका गण सो कार्यरूप होणेसें विकृति रूप है, अरु पुरुष जो है, सो न प्रकृति है, न विकृति है, न किसीसें उत्पन्न हूआ है, न किसीकों उत्पन्न करता है, इस हेतुसें ॥ तथाचेश्वर कृष्ण सांख्यसप्तती ॥ "मूलप्रकृतिरविकृति,र्महदाद्या प्रकृतिविकृतय सप्त ॥ षोडशकश्चवि कारो,विकृतय न प्रकृतिर्न विकृति पुरुष इति ॥ अर्थ—तथा ईश्वर कृष्ण सांख्यमतका आचार्य सांख्यसप्तति ग्रथमें लिखता है, कि मूल प्रकृ ति अविकृति है, महत् आदिक सात प्रकृति विकृति हैं, षोडशक विकार

विकृति हैं न प्रकृति है, न विकृति है, सो पुरुष है तथा महदादिक, प्रकृतिका विकार है, सो व्यक्त हो कर फेर अव्यक्तभी हो जाते है, सो अनित्य होनेसे अपणे स्वरूपसें भ्रश हो जाते हैं, अरु प्रकृति जो है, सो अविकृतिरूप है, सो कदापि अपणे स्वरूपसे भ्रंश नहीं होती है तथा महत् आदिकोंका अरु प्रकृतिका स्वरूप सांख्यमतवाले ऐसें मानते हैं १ हेतुमत्, २ अनित्य, ३ अव्यापक, ४ सक्रिय, ५ अनेक, ६ आश्रित, ७ लिंग, ८ सावयव, ९ परतंत्र, १० व्यक्त, इनसें विपरीत प्रकृति है तहां १ हेतुमत् कारण वाले हैं, महत् आदिक २ अनित्य, उत्पत्ति धर्मवाले हैं, ३ बुद्धयादिक अव्यापी है, सर्वगत नहीं, ४ अध्यवसाय करकें सयुक्त वर्त्ते है, इस हेतुसें सक्रिय सव्यापार चलने वाले हैं, ५ अनेक, तेवीस प्रकारके हैं इस वास्ते, ६ आश्रित, आत्माके उपकार वास्ते प्रधानकों अवलव करिकें रहे हैं, ७ लिंग, जो जिससेतें उत्पन्न होते हैं, सो तिसहीमें "लय कृर्यं गच्छतीति लिंग," तहां पाच भूत, पांच तन्मात्राओमें लय होते है, औ पांच तन्मात्रा, अरु दश इंद्रिय, अरु मन, यह अहकारमें लय होते हैं, अरु अहकार बुद्धिमें लय होता है, अरु बुद्धि प्रकृतिमें लय होती है, औ प्रकृति किसीमेंभी लय नहीं होती हैं, ८ सावयव, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गधादिकों करकें सयुक्त है, ९ परतंत्र, कारणके अधीन होनेसें, १० ऐसेही महत् आदिक व्यक्त हैं, प्रकृति इनसें विपरीत है, सो सुगम है, आपही समझ लेनी यह थोडासा स्वरूप लिखा है, जे कर विस्तार देखना होवे तदा सांख्य सप्तति आदिक, तिनोंके शास्त्रोंसें जान लेनां

अथ पच्चीशवा पुरुष तत्त्वका स्वरूप कहते हैं, पुरुषजो है सो "अकर्त्ताविगुणोभोक्ता नित्यचिदभ्युपेतश्च" पुरुष तत्त्व आत्माको कहते है, १ आत्माजो है, सो विषय सुखादिक तिनका कारण पुण्यादिक नहीं करता है, इस वास्ते "अकर्त्ता" है, क्योंकि आत्मा तृण मात्रभी तोडने समर्थ नहीं है, औ कर्त्ता जो है, सो प्रकृति है, क्योंकि प्रकृतिमें प्रवृत्ति स्वभाव है, तथा २ "विगुण" सत्त्वादि गुणरहित है, क्योंकि सत्वादिक जो हैं सो प्रकृतिके धर्म हैं, तथा ३ "भोक्ता" आत्मा भोक्ता भोगने वाला है, भोक्ताभी साक्षात् नहीं किंतु प्रकृतिका विकार भूत उभय मुख दर्प्पणाकार जो बुद्धि है, तिसमें सक्रमण होय हुवे सुख दुखोंकों पुरुष स्वात्म निर्मलविषे प्रतिबिंबोदय मात्र

करके "नोक्ता" कहियें है, "बुद्ध्यध्यवसितमर्थं पुरुषश्चेतयते" इति वचनात् ॥ जैसे जाइके फूलोंके सन्निधानके वशसें स्फटिकमें रक्तादि कहनेमें आता है, तैसे प्रकृतिके निकट होनेसें पुरुषभी सुख दुःखोंका भोक्ता कहा जाता है, सांख्यमतका वाद महार्णवभी कहता है, उक्तंच " बुद्धिदर्पणसंक्रांत, समर्थप्रतिबिंबक ॥ द्वितीयदर्पण कल्पे, पुंस्यध्यारोहति ॥ तदेव भोक्तृत्व मस्य नत्वात्मनोविकारापत्तिरिति" ॥ इसका तात्पर्यार्थ ऊपर लिखा जानना.

तथा च कपिलका शिष्य आसुरिभी कहता है ॥ श्लोक ॥ विवक्ते दृक्परिणतौ, बुद्धौ भोगोऽस्य कथ्यते ॥ प्रतिबिंबोदय स्वच्छे,यथा चंद्रमसोंऽभसि ॥१॥ तथा विंध्यवासी सांख्याचार्य आत्माको ऐसें भोक्ता कहता है, कि पुरुष जो है, सो अविकृतात्माही है, स्वनिर्भास अचेतनमन करता है, तिस मनकी निकटतासे उपाधि स्फटिकवत् दिखलाइ देती है, तथा " नित्या या चिच्चेतना तयाऽभ्युपेत " इस कहने करकें पुरुषही चैतन्य स्वरूप है, " नतु ज्ञानस्य " (परंतु ज्ञान को नहीं) क्योंकि ज्ञानको बुद्धिधर्म होनेसें. तथा पतंजलीभी ऐसेही कहता है तथा " पुमान् " यह जो एक वचन है, सो जातिकी अपेक्षा है, परतु आत्मा अनत है, क्योंकि जन्म मरण कारणोंके नियम देखनेसे, तथा धर्मादिक प्रवृत्ति नाना देखनेसें सो सर्व अनत आत्मा सर्वगत अरु नित्य है ॥ उक्तंच॥ अमूर्त्तिश्चेतनो भोगी,नित्य सर्वगतोऽक्रिय ॥अकर्त्ता निर्गुण सूक्ष्म,आत्माकापिलदर्शनइति

सांख्यमतमें प्रमाण तीन मानते है, १ प्रत्यक्ष, २ अनुमान, ३ शाब्द, इस मतका नाम सांख्य वा शांख्य किस वास्ते कहते हैं ? तिसका हेतु कहियें हैं सख्या प्रकृति तत्त्व पच्चीश रूप तिनकों जो जाने, वा पढे, इति सांख्य तथा जे कर तालवी शकारसें बोलियें तब शांख्य, तिनके मत में शख ध्वनि है ऐसी वृद्धोंकी आम्नायसें यह नाम है, तथा शख नामक कोइ आद्य पुरुष हूआ है, "तस्यापत्यं पौत्रादिरिति गर्गादित्वाद्यञ्प्रत्यये शांख्यास्तेषामिद दर्शन सांख्य शांख वा ॥ इति सांख्यमतं सक्षेपत सपूर्ण ॥

अथ मीमांसक मत लिखते हैं इसका दूसरा नाम जैमिनीयाभी कहते हैं, इस मत वाले सांख्यमतकी तरें एकदंडी, त्रिदंडी होते हैं, धातु रक्त वस्त्र पहिरते हैं, मृगचर्मके आसन ऊपर बैठते हैं, कमंडल रखते हैं, शिर मुंडित रखते है, सन्यासी प्रमुख द्विज इस मतमें होते हैं, ति

नका वेदही गुरु है, परंतु और वक्ता गुरु कोइ नहीं. सो आपणे आपकों सन्नस्त सन्नस्त कहते हैं, यज्ञोपवीतको प्रक्षाल करकें तीन वार जल पीते हैं, सो मीमासक दो प्रकारके हैं एक याज्ञिकादि हैं, ते पूर्व मीमांसक हैं, दूसरे उत्तर मीमांसावादी हैं, कुकर्मके वर्जक यजनादिक षट् कर्मके करणहार, ब्रह्मसूत्रके धारक, गृहस्थाश्रममें स्थित,शूद्रका अन्नादिक वर्जते हैं, तिनकेभी दो भेद हैं, एक भट्ट, दूसरे प्रभाकर, उसमें भट्ट छै प्रमाण मानते हैं, अरु प्रभाकर पांच प्रमाण मानते हैं, अरु जो उत्तरमीमांसक है, सो वेदांतिक है, ब्रह्माद्वैतही मानते हैं, "सर्वमेवेद ब्रह्मेति भाषते" तिस पर प्रमाण देते हैं, कि एकही आत्मा सर्व शरीरोमें उपलब्ध होता है ॥ श्लोक ॥ एकएव हि भूतात्मा, भूते भूते व्यवस्थित ॥ एकधा बहुधा चैव, दृश्यते जलचंद्रवत् ॥ १ ॥ इतिवचनात् ॥ "पुरुषएवेद सर्वं यद्भूतं यच्चभाव्यमिति वचनात्" ॥ आत्माहीमें लय होना मुक्ति मानते हैं, और कोइ मुक्ति नहीं मानते सो, मीमांसक द्विजही भगवत्जिनका नाम है, सो चार प्रकारके हैं, १ कुटीचर, २ बहूदक, ३ हंस, ४ परमहंस तिन मेंसू १ त्रिदंडी, सशिखा, ब्रह्मसूत्री, गृहत्यागी, यजमान, परिग्रही, एक वार पुत्रके घरमें भोजन करता है, कुटीमें वसता है, तिनकों कुटीचर कहते हैं २ तुल्य वेष, पूर्वोक्त विप्रके घरमें नीरस भिक्षाभोजी, विष्णुजाप पर नदीके तीरमें रहता है, तिसकों बहूदक कहते हैं, ३ ब्रह्मसूत्र शिखा करकें रहित, कषाय वस्त्र, दंडधारी, ग्राममें एक रात्रि अरु नगरमें तीन रात्रि रहता है, धूम रहित जब अग्नि हो जावे, तब ब्राह्मणके घरमें भोजन करता है, अरु तप करकें शोषित शरीर, देशोमें फिरता रहता है, तिसकू हंस कहते है, हंसकूही जब ज्ञान हो जाता है, तब चारो वर्णोंके घरमें भोजन कर लेता है, अपनी इछासें दंड रखता है, ईशानदिशाके सन्मुख जाता है, जे कर शक्ति हीन हो जावे, तब अनशन ग्रहण करता है, ४ वेदांतिकध्यायी तिसकू परमहंस कहते है, इन चारोंमेंसू पर परोऽधिक यह चारोंही केवल ब्रह्माद्वैतवाद साधनेमें व्यसनी हैं, इत्यादिक इस मतका स्वरूप हैं

अथ पूर्वमीमांसा वादीयोंका मत विशेष करकें लिखते हैं जैमिनी मत वाले कहते है, कि सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, वीतराग, सृष्टयादिकका कर्त्ता,इन

पूर्वोक्त विशेषणों करी संयुक्त कोइभी देव नहीं है, जिस देवका वचन प्रमाणिक होवे,प्रथम तो देवही वक्ता कोइ नहीं,जिसका कहा हूआ वचन प्रमाण होवे, अनुमान पुरुष सर्वज्ञ नहीं, मनुष्य होनेसे, रथ्या पुरुषवत्

पूर्वपक्ष –किंकर हो कर जिसकी असुर, सुर, सेवा करते है, औ तीन लोकके ऐश्वर्यके सूचक, छत्र चामरादि जिसकी विभूति है, सो सर्वज्ञ विना क्यों कर हो सक्ती है ?

उत्तरपक्ष –यह विभूति तो इंद्रजालीयाभी बना सक्ता है, क्योंकि इस बातका साक्षी जैनमतका समतभद्र आचार्यभी है॥श्लोक॥ देवागमनभोयान,चामरादिविभूतय ॥ मायाविष्वपि दृश्यते,व्हातस्त्वमसि नो महान्॥१॥

पूर्वपक्ष –जैसे अनादि सुवर्णका मल, क्षार मृत्पुटपाकादिकोकी क्रिया विशेषसे शोध्यमान सुवर्णको सर्वथा निर्मलता हो जाती है, ऐसे आत्माभी निरतर ज्ञानादिकोके अभ्याससे निर्मल होनेसे सर्वज्ञ पणेका सभव क्यों कर न होवे ? किंतु होही जावेगा

उत्तरपक्ष –यह कहनाभी तुमारा ठीक नहीं है, क्योंकि अभ्यास करनेसेंभी शुद्धिकी तारतम्यताही होती है, परतु परम प्रकर्ष अवस्था नहीं होती है, क्योंकि जो पुरुष चलनेका अभ्यास करे, एतावता कूदनेका, छलांक मारनेका, ठाल मारनेका अभ्यास करेगा, वो दश हाथ कूद जावेगा, वीश हाथ कूद जावेगा,परतु शत योजन कूदनेका अभ्यास कदापि न होवेगा, सर्व लोकक्रू कूदके जानेका अभ्यास कदापि न होवेगा,ऐसे आत्माभी अभ्यास द्वारा सर्वज्ञ नहीं हो सक्ती है

पूर्वपक्ष –मनुष्यकों सर्वज्ञता मत होवो, परतु ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वरादिकोंकों तो सर्वज्ञता होवे, क्योंकि तिनको तो जगत् ईश्वर मानता है, इस बातकों कुमारिलभी कहता है अथापि दिव्य देह होनेसें ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, इनकों सर्वज्ञता होवे, मनुष्यकों सर्वज्ञता क्यों कर होवे ?

उत्तरपक्ष –जो राग द्वेषमें मग्न हैं, औ निग्रह अनुग्रहमें ग्रस्त है, काम सेवनमें तत्पर है, ऐसे लक्षण वाले ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, क्यों कर सर्वज्ञ हो सके हैं ? क्योंकि प्रत्यक्ष प्रमाणभी सर्वज्ञका साधक नहीं है, कारणके इंद्रियों वर्त्तमान वस्तुहीकों ग्रहण करती हैं अरु अनुमानसेंभी सर्वज्ञ सिद्ध नहीं होता है, क्योंकि अनुमान प्रत्यक्ष पूर्व

कही प्रवृत्त हो सक्ता है, अरु आगमनी सर्वज्ञकी सिद्धि करणेवाला कोइ नहीं क्योकि आगम सर्व विवादास्पद है, उपमाननी नहीं, क्योंकि दूसरा सर्वज्ञ कोइ होवे, तब उपमान बने, तैसेंही अर्थापत्तिसेनी सर्वज्ञ सिद्ध नहीं होता है, क्योंकि अन्यथा अनुपपद्यमान ऐसा कोइ पदार्थ नहीं है, जिसके होनेसें सर्वज्ञ सिद्ध होवे जब नावग्राहक पाच प्रमाणों सें सिद्ध न हूआ, तब सर्वज्ञ अनाव प्रमाणका विषय हूआ, यह अनु माननी सर्वज्ञकी नास्ति सिद्धकर्त्ता प्रयोग नहीं है, सर्वज्ञ प्रत्यक्षादि गोचरके अतिक्रात होनेसें शशशृगवत् जब कोइ सर्वज्ञ देव नहीं, अरु उ स सर्वज्ञ देवका कहा हूआ कोइ शास्त्र नहीं,तब अतींद्रिय अर्थका ज्ञान कैसें होवे ? ऐसी मनमें आशका करकें जैमिनी कहता हेकि "तस्मात्" तिस कारणसे, "अतींद्रिय" इंद्रियोंकी विषय रहित जो आत्मा, धर्माधर्म, काल, स्वर्ग, नरक, परमाणु प्रमुख जो पदार्थ है, तिनका साक्षात् करत लामलकवत् देखने वाला कोइ नही इस हेतुसे नित्य जो वेद वाक्य है, तिनोंहीसें यथार्थ तत्त्वका निश्चय होता है, क्योंकि वेद जो हैं, सो अपौ रुषेय हैं, एतावता किसीकेनी रचे हूये नहीं, अनादि नित्य है, तिन वेद वचनोसेंही अतींद्रिय पदार्थोंका ज्ञान होता है, परतु किसी सर्वज्ञके कहे हूये आगमसें नहीं होता है, क्योंकि सर्वज्ञ कोइनी न हुआ है,न वर्त्तमा नमें है,न आगें कोइ होवेगा ॥ यथाहुस्ते ॥ अतींद्रियाणामर्थानां, साक्षा द्रष्टा न विद्यते ॥ वचनेनहि नित्येन, य पश्यति स पश्यति ॥१॥

प्रश्न —अपौरुषेय वेदांतका अर्थ कैसें जाना जाये ?

उत्तर —अव्यवछिन्न जो हमारी परंपरा तिससें जाना जाता है,इसी वास्ते सर्वज्ञादिकोंके अनाव होनेसें प्रथम वेदोंहीका पाठ प्रयत्नसें करना चाहियें वेद चार हैं, १ ऋग्, २ यजुष्,३ साम,४ आथर्व, इन चारोंका पाठ करकें तिसके पीछें धर्मकी जिज्ञासा करनी चाहियें, धर्म जो है, सो अतींद्रिय है, अरु जो धर्म है, सो कैसा है ? अरु किस प्रमाणसें हम जानेंगे ? ऐ सी जो जाननेकी इछा है, तिसका नाम जिज्ञासा है सो करणी कैसी है ? वो जिज्ञासा धर्मसाधनी (धर्मसाधनेका) उपाय है, तब तिस नो दनाके निमित्त दो है, एक जनक, दूसरा ग्राहक, इहां ग्राहक निमित्त जा ननां इसहीका विशेष स्वरूप कहते हैं

प्रेरीयें श्रेय साधक इत्यादिकों विषे जीवोंको, इस करके सो नोदना वेदवचनकी करी हूइ प्रेरणा है ॥ इत्यर्थ ॥ धर्मजो है, सो नोदना करके जानीयें है इस वास्ते नोदना लक्षणधर्म है, धर्मको अतींद्रिय होने करके नोदनाहीसें जानीयें है, और किसी प्रत्यक्षादिक प्रमाणोंसें नही जाना जाता है, क्योंकि प्रत्यक्षादिक विद्यमानके उपलंजक है, अरु धर्म जो है, सो कर्त्तव्यतारूप है, अरु कर्त्तव्य जो है, सो त्रिकाल स्वनाव वाली है, तिस कर्त्तव्यताका ज्ञान नोदनाही उत्पन्न कर सक्ती है, यह मीमांसकोंका अन्युपगम है

अथ नोदनाका व्याख्यान करिये है अग्निहोत्र, सर्व जीवोंकी अहिंसा दानादिक क्रिया, इनोके करने वास्ते जो प्रवर्त्तक प्रेरक वेदोंके वचन हैं, सोइ नोदना है जैसे "अग्निहोत्र जुहूयात्स्वर्गकाम" अैसा जो प्रवर्त्तक वेदवचन है, सो नोदना जाननी "यथा ॥ न हिंस्यात् सर्वनूतानि, तथा न वेहिंस्रो नवेत्" इन वचनो करकें प्रेरया हूआ द्रव्य, गुण कर्मोंकरके जो हवनादिक विषे प्रवर्त्त होता है, सो धर्म है, अरु इन वेद वचनों करकें प्रेरया हूआनी जो न प्रवर्त्ते, वा विपरीत प्रवर्त्ते, तिसकों नरकादि अनिष्ट फल होता है शावर नाष्यमेंनी अैसेही कहता है

यह जैमनी षट् प्रमाण मानता है १ प्रत्यक्ष, २ अनुमान, ३ शब्द, ४ उपमान, ५ अर्थापत्ति, ६ अनाव, इनका विस्तार षट्दर्शन समुच्चय की टीकासें जानना ॥ इति सक्षेपतो मीमांसमतं ॥ ५ ॥

यह पांच दर्शन आस्तिक कहे जाते हैं, अरु छठा जैन दर्शन है, तिसका स्वरूप अगले परिछेदमें लिखा जायगा, तथा नास्तिक जो है, सो दर्शनमें नहीं "नास्तिक तु नदर्शनमिति राजशेखर सूरिकृत षट्दर्शन समुच्चय वचनात्" तोनी नव्य जीवोंके जानने वास्ते कछुक स्वरूप लिखते हैं

कपाली, नस्म लगाने वाले, योगी, ब्राह्मणादि, अत्य जातिके लोक, जिनकों लोक वाममार्गी कहते हैं, तथा कौलिक, इत्यादिक नास्तिक हैं, तिनके मतका नाम नास्तिक चार्वाक कहते हैं, वो जीव पुण्य पापादिक कुछ नहीं मानते हैं, चार नौतिक देह मानते हैं, तथा सर्व जगतृही चार नौतिक मानते हैं

अरु कोइ चार्वाकैकदेशीया आकाशकों पांचमा नूत मानते हैं, पांच

नूतात्मक जगत् है, ऐसें कहते है, तिनोंके मतमें नूतोंसेंतीही मद्यशक्ति वत् चैतन्य उत्पन्न होता है, पाणीके बुलबुलेंकी तरें जो शरीर है, सोही जीव है, इस मत वाले मद्य मांस खाते हैं, माता, बहिन, बेटी, आदिक जो अगम्य है, तिनकोनी गमन कर लेते है, ते नास्तिक वामी, वर्ष वर्ष विषे एक दिनमें सर्व एक जगा एकठे होते है, स्त्रीकों नगी करके उसकी योनिकी पूजा करते हैं, अरु विषय सेवननी करते हैं, इत्यादि ऐसा बुरा काम करते हैं, जो इस पुस्तकमें लिखते मुजको लज्जा आती है, इस वास्ते नहीं लिखा है, सो नास्तिक,कामसे अपर (दूसरा) कोइ धर्म नहीं मानते हैं, किंतु कामहीकू धर्म मानते हैं

इस मतकी उत्पत्ति जैनमतके शीलतरंगिणी नामक शास्त्रमें ऐसे लिखी है, सो कहते हैं एक बृहस्पतिनामा ब्राह्मण था, दूसरा उसका नाम देवव्यासनी था, उसकी एक बहिन थी, वो उसकी बहिन बाल विधवा हो गइ थी, उसके सासरोमें ऐसा कोइ न था, जिनके आश्रयसें वो अपना जीवितव्य सपूर्ण करती, तातें निराधार हो कर, अपनें नाइके घरमें आ रही, वो अत्यंतरूप अरु यौवनवत थी, अरु जो उसका नाइ था तिसकी नार्या मृत्युकों प्राप्त हो गइ थी, तब तो बृहस्पतिकों कामनें अत्यंत पीडा दीनी, तब उनकू आपनी बहिनके साथ विषय सेवनकी इछा नइ, अपनी बहिनसें प्रार्थना करी कि हे नगिनी! मेरे साथ तु सनोग कर, तब तिसकी बहिनने कहा कि हे नाई! यह बात उनय लोक विरुद्ध है,सो में क्योंकर करु? क्यों कि प्रथम तो मैं तेरी बहिन हू,जे कर नाइके साथ विषय नोग करु तो अवश्यमेव नरकमें जाउगी,अरु यह बात जो जगत्में प्रसिद्ध हो जावेंगी, तब तो लोक मुजकों धिक्कार देवेंगे ऐसी बात सुन कर बृहस्पतिने अपने मनमें शोचा कि जब तक इसके मनसें पाप अरु नरकादिकोका नय दूर न होवेगा, तब तक यह मेरे साथ कनी सनोग न करेगी? ऐसा विचार करकें बृहस्पति सूत्र रचे, तिन सूत्रोंसें पुण्य, पाप, स्वर्ग, नरकका अनाव,सिद्ध करकें अपनी बहिनको शास्त्र सुना करकें प्रतिबोध करा तब तो तिसकी बहिननें अपने मनमें विचार करा कि यह जो शरीर है, सोतो पांच नौतिक है, अरु इस शरीरसे अतिरिक्त आत्मा नामक कोइ पदार्थ नहीं है, तब तो पुण्य, पाप, नरक, स्वर्ग, कु

ठनी सिद्ध नहीं होता है, तो फेर मे इन मूर्ख लोकोंकी लज्जा करके अप ना यौवन वृथा काहेको खोक? असे विचार करके अपने जाइके साथ विषयजोग करनेमें लुब्ध हो गई, जब लोकोंका यह बात जान पडी, तब लोक निंदा करने लगे, तब तो बृहस्पति निर्लज्ज हो कर लोकोंको ना स्तिक मतका उपदेश करने लगा, तब तो जो अत्यंत विषयी अरु अज्ञानी जन थे, वे उसके शिष्य होते जये, कितनेक काल पीछें उनके शिष्योंने अपने मतको वडा करनेके वास्ते कहते जये कि यह जो हमारा मत है, सो देवतावोंका गुरु जो बृहस्पति नामक आकाशमें ग्रह है, तिसने प्रवृत्त करा है, अरु बृहस्पतिसेंति अन्य कोइ दूसरा बुद्धिमान् नही है, इस वा स्ते हमारा मत सच्चा है, इस बृहस्पतिका होना हमारे चोवीशमे तीर्थ कर श्रीमहावीरसें पहिलें सिद्ध है, क्योंकि श्रीमहावीरके कथन करे हूये शास्त्रोमें चार्वाकमतका निरूपण है. असें चार्वाक मतकी उत्पत्ति है, इस मतका नाम चार्वाक, लोकायितादि है, "चर्व अदनें चर्वति, जक्षयति तत्त्व तो न मन्यते पुण्यपापादिक परोक्षवस्तुजातमिति चार्वाका ॥ मयाकश्या माकेत्यादि सिद्ध है, मोणादि दम्भकेनशब्दनिपातन. लोका निर्विचाराः सामान्या लोकास्तद्वदाचरंति स्मेति लोकायिता लोकायितकाइत्यपि ॥ बृह स्पतिप्रणीतमतत्वेन बार्हस्पत्याश्चेति " चर्व जो धातु है सो जक्षण अर्थ में है, चर्बण (जक्षण) जो करे, तात्पर्यार्थसें जो पुण्य पापादिक परोक्ष वस्तु समूहको न माने, सो चार्वाक, मयाक श्यामाक इत्यादि सिद्ध है, हे मव्याकरणके कणादिदम्भक करकें निपातसें सिद्ध है, तथा लोक निर्विचार है,सामान्य लोकोकी तरें जो आचरण करते जये हैं, ते लोकायिता लोका यितका असेंजी है तथा बृहस्पतिके प्ररूपणेसें इस मतका नाम बार्हस्प त्यजी कहते हैं

अथ चार्वाकका मत लिखते है नास्तिक असें कहते है कि, जीव चे तना लक्षण परलोकमें जानेवाला नहीं, पांच महाजूतसें जो चेतन उत्प न्न होता है, सोजी इहांही जूतोंके नाश होनेसें नाश हो जाता है, जे कर जीव परलोकसें आया होवे, तब परलोकका स्मरण होना चाहियें, परंतु सो तो होता नहीं, इस वास्ते जीव न परलोकसें आया है, अरु न परलो कमें जाने वाला है तथा जीव स्थानमें जो देव असा पाठ मानीयें, त

व सर्वज्ञादि विशेषण विशिष्ट कोइ देव नहीं, तथा मोक्षजी नहीं, धर्माधर्म नहीं, पुण्य पाप नहीं, पुण्यपापका जो फल नरक, स्वर्ग, सोनी नहीं, "तथाच तन्मतं ॥श्लोक॥ एतावानेव लोकोयं, यावानिंद्रियगोचर ॥ नद्रे वृकपदं पश्य, यद्वदंत्यबहुश्रुता ॥१॥ अस्यार्थ —इतनाही मनुष्य लोक है, जितना प्रत्यक्ष देखनेमें आता है क्योंकि जो पदार्थ इंद्रियोंसें ग्रह्या जाता है, सोइ पदार्थ है, और दूसरा कोइन्नी पदार्थ नहीं है, यहा लोक शब्द की जगें लोकमें जो रहे हूये पदार्थ हैं, सो ग्रहण करणे अरु सो इस लोकसें परे है, जीव, पुण्य, पाप, अरु तिनका फल जो स्वर्ग नरकादिक सो अप्रत्यक्ष होनेसें नहीं है जे कर अप्रत्यक्षजी माने जावे तब तो शशशृंग वंध्यापुत्रादिन्नी होने चाहियें, पंचविध प्रत्यक्ष करके यथाक्रम १ मृडु कठोरादि वस्तु २ तिक्त, कटु, कषायादि द्रव्य, ३ सुरनि डुरनिरूप गंध, ४ नू, नूधर, नुवन, नूरुह, स्तंन, कुन, अनोरुहादि, नर, पशु, श्वापदादि, स्थावर, जंगम प्रमुख पदार्थोंका समूह, ५ विविध, वेणु वीणादि कक्की ध्वनि, इन पांचोंके विना और कुबन्नी नहीं प्रतीत होता है, पांच नूतोंसे व्यतिरिक्त नरक स्वर्गके जाने वाला जीव जब प्रत्यक्ष प्रमाणसें न सिद्ध नया, तब तो जीवोंके सुखड खोंका कारण धर्माधर्म है, अरु तिन धर्माधर्मके उत्कृष्ट फल नोगनेकी नूमि स्वर्ग नरक है, अरु सर्वथा पुण्य पापके क्षय होनेसे मोक्ष सुख जो वर्णन करते हैं, यह सर्व पूर्वोक्त वर्णन असा है, कि जैसा आकाशमें चित्राम करणा है क्योंकि जीव नतो किसीने स्पर्शा है, न किसीने खा कर स्वाद चरका है, न किसीने सूघा है, न किसीने देखा है, न किसीने शब्दवत् सुना है, फेर मूढमति किसतरें जीव को मान करकें स्वर्गादि सुखोंकी इन्ना करकें शिर, दाढी, मोंठ, मुन्मवा करकें नाना प्रकारका डु कर तप करकें शीत, आतप सह करकें वृथाही इस शरीरकी विडंबना करकें इस मनुष्य जन्मकों खराब कर रहे है? यह उनकी समजकी विडंबना है॥ तडुक्त ॥श्लोक॥ तपांसि यातनाश्चित्रा, संयमो नोग वंचना ॥ अग्निहोत्रादिक कर्म, बालक्रीडेव लक्ष्यते ॥१॥ यावज्जीवेत् सुखं जीवेत्, तावद्वैषयिक सुखं ॥ नस्मीनूतस्य देहस्य, पुनरागमन कुत ॥ १ ॥ इत्यादि तिस वास्ते यह सिद्ध हूआकि जो इंद्रियगोचर है, सोइ तात्त्विक है

अथ जो परोक्ष प्रमाण, अनुमानागमादिकों करके जीव, अरु पुण्य

पापादिकोंकू व्यवस्थापन करते है, अरु कदाचित् स्थापन करनेसें हटते नही है, तिनके प्रतिबोधने वास्ते दृष्टांत कहते है " जहे वृकपद पश्यस्व त्राप सम्प्रदाय " कोइक पुरुष नास्तिक मत करके वा सदर्शन करण आपणी भार्याको आस्तिक मत विषे दृढ प्रतिज्ञा वाली जान करके अपणे शास्त्रोक्त युक्तियो करकें " प्रत्यह " प्रतिबोध करता है, जब वो प्रतिबोध नही होती, तब उसने विचारा जो यह इस उपाय करकें प्रतिबोध होवेगी, असें स्वचित्तमें चिंतन करके रात्रिके पीछले प्रहरमें तिस स्त्रीके साथ नगरसे निकल करकें तिस आपणी भार्याको कहता हूआ, हे वल्लभे ! यह जो इस नगरके वसने वाले लोक परोक्ष पदार्थोंकों अनुमानादि प्रमाणों करकें सिद्ध करते है, अरु लोकमें बहुत शास्त्रोके पढे हूये कहलाते हैं, अब तू तिनको चातुर्य देख, असें कह कर नगरके दरवाजेसे ले कर चौंक तक सूक्ष्म धूलीमें अपणे हाथों करकें भेडीयेंके पंजोका आकार कर दीया, तस पीछें प्रात कालमें ते भेडीयेंके पंजे देख कर बहुत लोक राज मार्गमें मिलते भये, तब तो बहुश्रुतजी तहां आ गये, सो बहुश्रुत लोकों कों कहने लगे कि भो लोको ! भेडीयेंके पगोकी अन्यथा अनुपपत्ति करकें निश्चयही कोईक भेडीया रात्रिमें वनसेंती इहां आया था, तब तो वो नास्तिक मती तिनकों तैसें कहते हूआंको देख करकें निज भार्याकों कहता हूआ कि हे भद्रे ? "वृकपद" (भेडीयेंका पंजा) तू देख, जिस पंजेकू भेडीयेंका पंजा अबहुश्रुत कहते हैं, लोक रूढीसें यह बहुश्रुत कहलाते है, परंतु परमार्थसें महा ठोठ हैं, क्योंकि ये परमार्थ तो कुछ जानते नहीं हैं, केवल देखा देखी रौला करने लग रहे हैं, परमार्थसें इनका वचन मानने योग्य नहीं है, असेंही बहुत मतोवाले धार्मिक, ठग (धूर्त) दूसरोके ठगनेमें तत्पर सो कबुक अनुमान आगमादि करके दृढपणेसें जीवादिकी अस्ति सिद्ध करकें वृथाही भोले लोकोंको स्वर्गादि सुखोंका लोभ दिखा कर भक्ष्याभक्ष्य, गम्यागम्य, हेयोपादेयादि, संकटोमें गेरते हैं, बहुत मूर्खोंकों धार्मिक पणेका व्यामोह उत्पन्न करते हैं, इस वास्ते बुद्धिमानोंकों उनका बचन मानना न चाहियें तब तो तिसकी भार्या अपने पतिके सर्व बचन मानती भई, तिसके पीछें तिसका पति जो अपनी भार्याकू उपदेश देता भया, सो इहां लिखते हैं

॥ श्लोक ॥ पिव खाद च चारुलोचने, यदतीतं वरगात्रि तन्न ते ॥ नहि भीरु गतं निवर्त्तते, समुदायमात्र मिदं कलेवरं ॥१॥ व्याख्या —हे चारुलो चने ! शोभन (सुंदर) आखवाली " पिव " पी, तू पेयापेयकी व्यवस्था छोड कर मदिरापान कर न केवल मदिराही पी, "खाद च" भक्ष्याभक्ष्यकी निरपेक्षा करकें मासादिक खा, तथा गम्यागम्यका विभाग त्याग कर भोगों कों भोग कर अपना यौवन सफल कर, जो कुछ यौवनादि अतिक्रांत, (व्य तीत) हो गया है ! हे वरगात्रि ! हे प्रधानांगि ! फेर वो तुझको न मिलेगा, अति काम राग जनावनेके वास्ते बहुत सबोधन पद कहे है, इस वास्ते पुनरुक्ति दोष नहीं है किसीकी आशका मनमें ला कर बृहस्पति मत वा ला कहता हैं, कि अपनी इच्छा करकें जो खान, पान, भोग, विलास करेगा, उसकू परलोकमें कष्ट परंपरा पावणी बहुत सुलभ है, औ जो सुकृत करेंगे, उनकों भवांतरमें सुख यौवनादिक पावनां सुलभ है, ऐसी परकी आशका दूर करने वास्ते बृहस्पति कहता है नहीं हे भीरु ! प रके कहने मात्र करकें नरकादि दुःखोंकी प्राप्ति, इस लोकके यौवनादिको सें निवर्त्त होनां, एतावता इस लोकमें विषयभोग करकें यौवनका सुख तो नहीं लेना, अरु परलोकमें हमकों यौवनादिक फेर मिलेगा, ऐसे पर लोकके सुखोंकी इच्छा करकें तपश्चरणादि कष्ट क्रिया करकें जो इस लोक के सुखोकी उपेक्षा करनी है, सो महा मूढताका चिन्ह है

अथ शुभाशुभ कर्मके वश करकें इस जीवने अवश्य परलोकमेंभी स्व कर्म हेतुक सुख दुःखादि वेदना होवेगी, ऐसी आशका मनमें ला करके बृह स्पति कहता है कि "समुदायमात्र" समुदायभूत चारोंका सयोग मात्रही यह " कलेवरं " (शरीर है,) परतु चारों भूतोंके सयोग मात्रसें अपर दूसरा भवांतरमें जानेवाला, शुभाशुभ कर्मविपाकका भोगने वाला, ऐसा जीव ना मक कोइभी पदार्थ नहीं, अरु चारों भूतका जो सयोग है, सो विजलीके उद्योतकी तरें क्षणमात्रमें नष्ट हो जाता है, इस वास्ते परलोकका भय मत कर हे हरिणाक्षि ! जैसे मन माने, ऐसा खा, पी, भोग विलास कर

अथ प्रमेय प्रमाण दोनो कहता है ॥ श्लोक ॥ पृथ्वी जल तथा ते जो, वायुर्भूतचतुष्टय ॥ आधारो भूमिरेतेषा, मानं त्वक्षजमेव हि ॥ १ ॥ अर्थ —१ पृथिवी, २ जल, ३ अग्नि, ४ वायु, यह चारभूत हैं, अरु इन

पापादिकोंकू व्यवस्थापन करते है, अरु कदाचित् स्थापन करनेसें हटते नही है, तिनके प्रतिबोधने वास्ते दृष्टांत कहते है " नद्रे वृकपद पश्यत्व आप सम्प्रदाय " कोइक पुरुष नास्तिक मत करके वा सर्यात करके व पणी नार्याको आस्तिक मत विषे दृढ प्रतिज्ञा वाली जान करके बह पणे शास्त्रोक्त युक्तियो करके " प्रत्यह " प्रतिबोध करता है, जब वो प्रति बोध नही होती, तब उसने विचारा जो यह इस उपाय करके प्रतिबोध होवेगी, अैसे स्वचित्तमें चितन करके रात्रिके पीछले प्रहरमे तिस स्त्रीके सा थ नगरसे निकल करके तिस आपणी नार्याको कहता हूआ, हे वल्लने ! य ह जो इस नगरके वसने वाले लोक परोक्ष पदार्थोको अनुमानादि प्रमाणों करकें सिद्ध करते हैं, अरु लोकमें बहुत शास्त्रोंके पढे हूये कहलाते है, अब तू तिनको चातुर्य देख, अैसे कह कर नगरके दरवाजेसे ले कर चौंक तक सूक्ष्म धूलीमें अपणे हाथो करकें नेडीयेंके पंजोका आकार कर दीया, तस पीछें प्रात कालमें ते नेडीयेके पजे देख कर बहुत लोक राज मार्गेमें मिलते नये, तब तो बहुश्रुतजी तहां आ गये, सो बहुश्रुत लोकों कों कहने लगे कि जो लोको ! नेडीयेंके पगोकी अन्यथा अनुपपत्ति करकें निश्चयही कोईक नेडीया रात्रिमें वनसेंती इहां आया था, तब तो वो नास्तिक मती तिनकों तैसें कहते हूआंकों देख करकें निज नार्याकों कह ता हूआ कि हे नद्रे ? "वृकपद" (नेडीयेंका पंजा) तू देख, जिस पंजेकूं नेडीयेंका पजा अबहुश्रुत कहते हैं, लोक रूढीसे यह बहुश्रुत कहला ते है, परतु परमार्थसें महा ठोठ हैं, क्योकि ये परमार्थ तो कुछ जानते नहीं हैं, केवल देखा देखी रौला करने लग रहे हैं, परमार्थसें इनका वच न मानने योग्य नहीं है, अैसेंही बहुत मतोवाले धार्मिक, ठग (धूर्त्त) दूसरोंके ठगनेमें तत्पर सो कछुक अनुमान आगमादि करके दृढपणेसें जी वादिकी अस्ति सिद्ध करकें वृथाही नोले लोकोंको स्वर्गादि सुखोंका लोन दिखा कर नक्ष्यानक्ष्य, गम्यागम्य, हेयोपादेयादि, सकटोमें गेरते हैं, बहु त मूर्खोंकों धार्मिक पणेका व्यामोह उत्पन्न करते है, इस वास्ते बुद्धि मानोंकों उनका बचन मानना न चाहियें तब तो तिसकी नार्या अपने पतिके सर्व बचन मानती नई, तिसके पीछें तिसका पति जो अपनी ना र्याकू उपदेश देता नया, सो इहां लिखते हैं

धार करकें सुनो में तुमारे मतोमें पूर्वापर व्याहत पणा दिखलाता हू प्रथम बौद्धमें पूर्वापर विरोध उद्भावन करते है

प्रथम तो बौद्ध मतमें सर्व पदार्थ क्षणजगुर कह करकें पीछेसे ऐसे कहा है "नाननुकृतान्वयव्यतिरेक कारण नाकारण विषय इति" अस्यार्थ मर्थ — ज्ञान अर्थके होते हूयाही उत्पन्न होता है, परंतु अर्थके बिना नहिं होता है ऐसें अनुकृत अन्वयव्यतिरेक अर्थज्ञानका है अरु कारण जिस थकी अर्थज्ञान उत्पन्न होता है, तिस कारणहीकों विषय करता है इस कहनेसें अर्थकों दो क्षण स्थिति वाला कह्या ॥ तद्यथा ॥ अर्थरूप कारणसे ज्ञान कार्य उत्पन्न होता है, अरु एकही समयमें कारण, कार्य, उत्पन्न नहीं होते हैं, तब तो ज्ञान अपने जनक अर्थहीकों ग्रहण करता है "नापरं नाकारण विषय इति वचनात्" ॥ जब ऐसें हूआ तब तो अर्थकों दो समयकी स्थिति जोरा जोरी हो गइ अरु बौद्ध मतमें द्वय समय स्थिति वाला कोइ पदार्थ नहीं, एक तो यह पूर्वापर विरोध है

तथा "नाकारण विषय इत्युक्तं" जो पदार्थ ज्ञानकी उत्पत्तिमें कारण नहीं है, उस पदार्थकों ज्ञान विषयजी नहीं करता है, ऐसें कह कर फेर योगी प्रत्यक्ष ज्ञानकों अतीत अनागत पदार्थोंका जानने वाला कह्या है, अरु अतीत पदार्थ तो नष्ट हो गये है, तथा अनागत पदार्थ उत्पन्न नहीं हूये हैं, इस वास्ते अतीत अनागत पदार्थ ज्ञानके कारण नहीं हो सके हैं, तब अकारणकों योगी प्रत्यक्षका विषय कहना यह दूसरा पूर्वापर विरोध है

ऐसेही साध्य साधनोंकी व्याप्ति औ ग्राहक व्याप्ति ग्रहण करानें वालेकू कारण पणेके अजावसें त्रिकालगत अर्थकों विषय कहने वालेकों क्यों नहीं पूर्वापर व्याघात होवेगा? क्योंकि कारणहीकों प्रमाणका विषय मान्या है इस वास्ते तीसरा पूर्वापर विरोध है

तथा क्षण क्षय अंगीकार करणेमें जिनका काल जिन्न जिन्न है, ऐसे जो अन्वयव्यतिरेक तिनकी प्रतिपत्ति नहीं संजव होती है, तब तो साध्य साधनोंके त्रिकाल विषय व्याप्ति ग्रहण मानने वालेकों पूर्वापर व्याहति क्यों नहीं? यह चोथा पूर्वापर विरोध है

तथा सर्व पदार्थोंकों क्षणक्षयी मान करकें पीछेसे बुद्धनें ऐसे कह्या

चारोकी आधार पृथ्वी है, अरु किसी जगे ऐसा पाठ है कि "चैतन्यभूमिरे तेषां" इन चारोंको चैतन्यभूमि कहते है, यह चारों एकठे होके रसें चैतन्य उत्पन्न करते है. तथा इन चार्वाकोंके मतमे यह चारो भूत प्रमाणकी भूमिका प्रमाणका विषय तात्त्विक है, अरु इन चार्वाकोंके मतमें, प्रमाण तो एक प्रत्यक्षही है

अथ भूतचतुष्टयसे देहकों चेतनता क्यों कर हो जाती है? ऐसी आशंका करकें कहता है ॥ श्लोक ॥ पृथ्व्यादिभूतसंहत्या, तथा देह परीणते ॥ मदशक्ति सुरांगेभ्यो, यद्वत्तद्विदात्मनि ॥ १ ॥ अर्थ –" पृथिव्यादीनि" पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, तिनकी जो "संहति" संयोग तिस करकें जो देहकी परिणाम, तिसतें जैसें मदिराके अंगोसें (गुड धातकी आदिकोसें) उन्माद शक्ति उत्पन्न होती है, ऐसेंही इस देहमें चैतन्य शक्ति उत्पन्न होती है, परंतु देहसे अन्य जीव पदार्थ नहीं होते, ओ आदि शब्दसे पर्वतादि सर्व पदार्थ चार भूतोंसेंही उत्पन्न है, इस वास्ते दृष्ट सुखोंका त्याग न करनां अरु अदृष्ट सुखोमें प्रवृत्त होनां,यह तो लोकोंकी वडी मूर्खता है, अरु जो शांतिरसमें मग्न हो कर मोक्ष सुखका वर्णन करते है, वेभी महा मूढ है क्योंकि काम (मैथुन) सेवनसे अधिक न कोइ धर्म है, अरु न कोइ मोक्ष है, न कोइ सुख है ॥ इति चार्वाकमतं संक्षेपत संपूर्ण ॥

यह जो उपर मत लिखे हैं, इनके जो उपदेशक है, वे सर्व कुगुरु हैं, क्योंकि जो इनोंके मत हैं, वे युक्तिप्रमाणसें खंमित हो जाते हैं, अरु पूर्वापर व्याहत है, पूर्वापर विरोधी है

पूर्वपक्ष –अहो जैन! अरिहंतके कहे हूये तत्त्वका तुझकों वडा राग है, इस करकें तुम अपने मतको तो निर्दोष ठहराते हो, अरु हमारे मतोंकों पूर्वापर विरोधी कहते हो, परंतु हमारे मतोंमें कुछभी पूर्वापर व्याहतपणां नहीं है, क्योंकि हमारे जो मत हैं, सो निर्दोष हैं, उनकों जो पूर्वापर व्याहत (कलंक) देना है, सो ऐसा है कि जैसा अमृतके कुंडमें मक्कीका बिंडु गेर देनां

उत्तरपक्ष –हे वादीयो! तुम अपने अपने मतका पक्षपात छोड कर मध्यस्थपणेको अवलंबन करकें अरु निरभिमान हो करकें सुंदर बुद्धिकों

मत है कि सर्व पदार्थ नैरात्म्य है, एतावता आत्मस्वरूप आपणे स्वरूप करकें सदा स्थिर रहनेवाले नहीं है, ऐसी जो जावना, तिसका नाम नैरात्म्य जावना है, यह जो नैरात्म्य जावना है, सो रागादि क्लेशोंके नाश करने वाली है, तथाहि जब नैरात्म्य जावना होवेगी, तब अपणे आप विषे तथा पुत्र, जाइ, जार्या, आदिकोविषेजी आत्मीय अजिनिवेश नहीं होवेगा, एतावता 'यह मेरे हैं' ऐसा मोह न होवेगा, क्योंकि जो आप उपकारी है, सो आत्मीय है, अरु जो आपणा प्रतिघातक है, सो द्वेष है, जब आत्माही नहीं है, किंतु पूर्वापर क्षण टूटे हूयांका अनुसधान है, पूर्व पूर्व हेतु करकें जो प्रतिबद्ध है ज्ञानक्षण, सोइही तैसें तैसें उत्पन्न होते हैं, तब कौन किसीका उपकर्त्ता अरु उपघातक है? क्योंकि क्षणोंकों क्षण मात्र रहने करकें परमार्थसें उपकार अनुपकार नहीं कर सके हैं, इस वास्ते तत्त्ववेदीयोंकों अपने पुत्रादिकोमें आत्मीय अजिनिवेश नहीं है अरु वैरीयों विषे द्वेष नहीं है, अरु जो लोकोंकों अनात्मीय पदार्थोंमें आत्मीय अजिनिवेश है, सो अतत्त्व मूल होनेसें अनादि वासनाके परिपाकने करा है, ऐसें जानना

प्रश्न—यदि परमार्थसें उपकार्युपकारक जाव नहीं, तब तो ऐसें तुम कैसे कहते हो कि जगवान् सुगत, करुणा करकें सकल जीवोंके उपकार वास्ते देशना करता हूआ? अरु क्षणिक पणाजी जे कर एकांतही है, तब तो तत्त्ववेदी एक क्षण पीछें नष्ट हो गया, अरु तत्त्ववेदी जानता था जो मैं पीछें नहीं था अरु आगेंकों मैंने होनां नहीं, तो फेर काहेकों मोक्ष वास्ते यत्न करे?

उत्तर—जो तुमने कहा, सो हमारा अजिप्राय न जाननेसें अयुक्त है जगवान् जो है, सो प्राचीन अवस्था विषे अवस्थित है, अरु सकल जगत्कों राग द्वेषादि दुःखों करके सकुल जानता थका कैसें यह सकल जगत्का दुःख मेरेकों दूर करणां योग्य है? ऐसी दया उत्पन्न होनेसें नैरात्म्य क्षणिकत्वादिक जानता हूआजी तिन उपकार्य जीवोंके निःक्लेश क्षण उत्पन्न करनेके वास्ते सप्रजा हित राजेकी तरें अपणी सतति बुद्धि विषे सकल जगत् साक्षात् करण समर्थ अपणी सततिगत विशिष्ट क्षणकी उत्पत्तिके वास्ते यत्न आरंज करता है क्योंकि सकल जगत् साक्षात्कार

है ॥ श्लोक ॥ इतएकनवते कल्पे, शक्त्या मे पुरुषोहत ॥ तेन कर्मवि पाकेन, पादे विद्धोस्मि निक्षव ॥ १ ॥ इस श्लोकमें जन्मांतरविषेमें कर्म का प्रयोग रूप कृय विरुद्ध वोलता हूआ बुद्ध, क्यों कर पूर्वापर विरोध न कहना चाहिये ? यह पाचमा पूर्वापर विरोध है

तथा "निरंश सर्व वस्तु है" थैसें प्रथम कह कर फेर " हिंसा विरति दान चित्तस्वसंवेदन अरु स्वगत सद्व्यचेतनत्व स्वर्गप्रापण शक्त्यादिक य द्यदपि स्वर्गप्रापण शक्त्यादेरशस्येति सांशतां पश्चाद्वत सौगतस्य कथ पूर्वापरविरुद्ध वचो न स्यात् ॥ " यह छठा विरोध है

थैसेही निर्विकल्पक प्रत्यक्ष प्रमाण नीलादिक वस्तुओंको सर्व प्रकार करकें ग्रहण करता हूयानी नीलादिक अंश विषे निर्णय उत्पन्न करता है, परंतु नीलादि अर्थगत क्षणक्षय अंशविषय निर्णय नही उत्पन्न कर ता है, अैसे सांशताको कहता हूआ सौगतको पूर्वापर वचन विरोध सु वोधही है यह सातमा विरोध है

तथा हेतुको तीन रूप वाला मानता है, अरु संशयको दो उल्लेख वा ला मानता है, अरु कहता है फेर सांश वस्तुको नहीं मानता है, य हनी आठमा पूर्वापर विरोध है

तथा परस्पर अनमिले हुये परमाणु निकटता संबंध वाले एकठे हो कर घटादि रूपपणे प्रतिनास होते हैं, परंतु आपसमें अगागीनाव रूप करके कोइनी कार्य नहीं आरंन करते, यह बौद्धोंका मत है, तिसमें यह दूषण है कि आपसमें परमाणुओंके अनमिलनेसें घटका एक देश जब हम हाथसें पकडेंगे, तब संपूर्ण घटकों नहीं रहना चाहियें, तथा घटके उ गनेसेंनी एक देशही घटका उठना चाहियें, परंतु संपूर्ण घट नहीं उठना चाहियें, तथा जब घटकों कांठा पकडके हम खैंचेंगे तबनी घटका एक दे शही हमारे पास आना चाहियें, परंतु संपूर्ण घट नहीं, अरु जलादि धा रण रूप घटका अर्थ क्रियालक्षण सत्व अंगीकार करणे करकें सौगतोंनें परमाणुओंका मिलना मान्या है, अरु तिनके मतमें परमाणुओंका मि लना है नहीं, तिस वास्ते यह नवमा पूर्वापर विरोध है इत्यादि बौद्ध मतमें अनेक पूर्वापर विरोध है

अथ बौद्धमतका खंडननी थोडासा लिखते हैं इन बौद्धोंका यह

बधमोक्षादिकका संभव नहीं है, क्योंकि सर्वकाल एक स्वभाव होनें कर कें तिसके अवस्था विचित्र नहीं हो सक्ती है, अरु तुम तो नित्य मानते नहीं हो, "सर्वं क्षणिकमिति वचनात्" अथ जे कर कहोगे कि क्षणिक है, तब तो वोही प्राचीन बंध मोक्षादि वैय्यधिकरण दूषण प्राप्त हूआ, जे कर कहोगे कि अभिन्न है, तब तो तिससें अभिन्न होनेसें तिसके स्वरूपकी तरें संतानीही हूआ, संतान नहीं भई जब ऐसें हूआ, तब तो तदवस्थही पूर्वला दूषण है, जे कर कहोगे कि क्षणासेंति अन्य संतान कोइ नहीं किंतु जो कार्य कारण भाव प्रबंध करकें क्षण भाव है, सोइ संतान है, तिस वास्ते दोष कोइ नहीं है, यहभी तुमारा कहनां अयुक्त है, क्योंकि तुमारे मतमें कार्य कारण भावभी नहीं घटता है, सोइ दिखाते हैं, कि प्रतीत्य समुत्पादमात्र कार्य कारण भाव है, तिसतें यथाविवक्षित घट क्षणानंतर घट क्षण है, तैसें पटादि क्षणभी है, अरु जैसें घट क्षणसें पहिला अनंतर विवक्षित घटक्षण है, तैसें पटादि क्षणभी है, तब तो कैसें प्रतिनियत कार्य कारण भावका अवगम होवे ?

एक औरभी दूषण है, सो यह है कि —कारणसेंती उत्पन्न होता हूआ जो कार्य, सो सत् उत्पन्न होता है ? वा असत् उत्पन्न होता है ? जे कर कहोगेकि सत् उत्पन्न होता है, तब तो कार्योत्पत्ति कालमेंभी कारण सत् हूआ, अरु तब कार्य कारणकों समकालताका प्रसंग हूआ, अरु एक कालमें दो पदार्थोंका कार्य कारण भाव मान्या नहीं है,अन्यथा माता पुत्रका व्यवहार न होवेगा, घट पटादिकोंकाभी परस्पर कार्य कारण भावका प्रसंग हो जावेगा जे कर असत् पक्ष मानोगे, तो सोभी अयुक्त है, क्योंकि जो असत् है, सो कार्य नहीं हो सक्ता है, अन्यथा खरशृंगसेंतीभी कार्य उत्पन्न होनां चाहियें, अरु अत्यंताभाव, प्रध्वंसाभाव दोनोंही जगे वस्तुसत्ताका संभव होनेसें इन दोनोका कोइभी विशेष न हूआ, जे कर कहोगेकि प्रध्वंसाभावमें वस्तु थी, इस करकें हेतु है, तब तो जब थी तब हेतु नहीं, अन्यदा हेतु हूआ, ऐसें तो बहुत अच्छी तत्त्वव्यवस्था भइ

एक औरभी बात है, कि तद्भावे भाव ऐसे अवगममें कार्य कारण भावका अवगम है, सो जो तद्भावे भाव है, सो क्या प्रत्यक्ष करकें प्रतीत होता है ? वा अनुमान करकें प्रतीत होता है ? प्रत्यक्ष करकें तो

करे विना सर्वेकों श्रक्षण विधान उपकार करणेका अशक्य होनेसें तिस वास्ते समुत्पन्न केवल ज्ञान पूर्वस्थापन रूपाके विशेष संस्कार वशसें न गवान् कृतार्थनी है, तोनी देशना देवेमें प्रवृत्त होता है, तब तो देशना सु न करके निर्मल बुद्धि नैरात्म्य तत्त्व विचारता हूआ जीवको नावना प्रकर्ष विशेषसें वैराग्य उत्पन्न होता है, तिससेंती मुक्तिलान होता है. अरु जो आत्माको मानता है, तिसकों मुक्तिका संनव नहीं, क्योंकि परमार्थ सेती आत्माके होते हूये तिस आत्मामें स्नेह वर्त्तेगा, तिस स्नेहके वश से तिस आत्माके सुखी होनेकी तृष्णा वाला होता है, अरु तृष्णाके व शसें सुखोके साधना विषे प्रवृत्त होता है, जब गुण उत्पन्न हूये, तब गुणोमें राग करता है, तिस रागसें यावत्काल आत्मानिनिवेश रहेगा, तावत् काल संसार है॥ आह च॥ श्लोक॥ ये पश्यंत्यात्मानं,तत्रास्याह मि ति शाश्वत स्नेह ॥स्नेहात्सुखेषु तृष्यति, तृष्णा दोषास्तिरस्कुरुते ॥१॥ गु णदर्शिपरितृष्यन्, ममेति तत्साधनान्युपादत्ते॥ तेनात्मानिनिवेशो, यावत्ताव त्ससंसार ॥ २ ॥ इति बौद्धमत पूर्वपक्ष ॥

अथ जैनमतकी तरफसें उत्तरपक्ष —यह सर्व कहना तुमारा अंत कर णमें वास करणेवाले महा मोहका मोटा विलास है, क्योंकि आत्माके अ नाव हूये बंध मोक्षादिकोंका एकाधिकरणत्व नहीं होवेगा, सोइ दिखाते हैं

हे बौद्धो ! तुम आत्मा नहीं मानते हो, किंतु पूर्वापर क्षण त्रूटाका अनुसंधान ज्ञान क्षणादीको मानते हो, जब ऐसें माना,तब अन्यकों बंध हूआ, अरु अन्यकों मुक्ति हुई,औ क्षुधा औरकों लगी, अरु तृप्ति औरकों हो गइ, तैसेही अनुनवता और हूआ, अरु स्मर्त्ता और हो गया, छलाब औरने लीया, अरु राजीरोग रहित तो और हो गया, तप क्लेश तो औरने करा, अरु स्वर्गादिकका फल औरने नोगा, औ पढनेका अन्यास और करने लगा, अरु और कोई पढ गया, यह बात अतिप्रसंग होनेसें कोइ सुसंग त नहीं है, जे कर कहोगे कि संतानकी अपेक्षा करके बंध मोक्षादिकोंका एक अधिकरण हो सक्ता है, सोनी ठीक नहीं, क्योंकि संतानजी तुमारे मत में नहीं हो सक्ता है, संतान जो है सो संतानीसें निन्न है ? वा अनिन्न है ? जे कर कहोगेकि निन्न है, तब तो फेर दो विकल्प तुमारी नेट करते हैं, सो संतान नित्य है ? वा अनित्य है ? जे कर कहोगेकि नित्य है,तब तो तिसकों

तरें तिससे अभिन्न होनेसें वासककीभी सक्रांति है, जे कर कहोगे कि सं क्रांति है, तब अन्वयका प्रसग होवेगा, इस वास्ते तुमारा कहनां किसी कामका नहीं है, अरु जो तुमने कह्या था कि सकलही जगत् राग द्वेषा दि दुःख सकुल जानता हुवा सकल जगत्कों दुःखोंसे कैसें मैं उद्धार करु? इत्यादि सोभी पूर्वापर असबंध है, क्योंकि तुमारे मत क्षणही पूर्वापर टूटे हूये परमार्थसें सत् है, अरु क्षणोंके रहनेका कालमान एक परमाणुके व्यतिक्रम मात्र है, इस वास्ते उत्पत्तिसें व्यतिरिक्त तिनकी कोइ क्रिया नहीं उपपद्यमान होती, "भूतिर्येषां क्रिया सैव, कारक सैव वोच्यते ॥ इति वचनात्" तिसतें ज्ञान क्षणोंकों उत्पत्ति अनतर न गमन है, न अवस्थान है, न पूर्वापर क्षणोसेंभी अनुगम है, तिस वास्ते तिनोंकू परस्पर स्वरूपावधारण नहीं अरु न कोइ उत्पत्ति अनतर व्यापार है, तब कैसे मेरे सन्मुख यह अर्थ साक्षात् प्रतिभासता है? इस प्रकारसें अर्थके निश्चयमात्र करणेमेंभी अनेक क्षणोंका सभव है, अनुस्यूत हो कर उत्पन्न होते हैं, अरु तिस अनुस्यूतके अभावसें कहांसें सकल जगत् राग द्वेषादिक दुःख सकुलता करके विचारणां है? अरु कहांसें दीर्घतर कालके अनुसधान करकें शास्त्रार्थका चितन है? जिसके प्रभावसें सम्यक् उपाय जान करके दया विशेषसें मोक्षके वास्ते घटना होवे?

पूर्वपक्ष—यह जो सर्व व्यवहार है, सो ज्ञान क्षणोंकी सततिकी अपेक्षा करकें है, फेर तुम क्यों इस पक्षमें दूषण देते हो?

उत्तरपक्ष—"सुकुमारप्रज्ञोदेवानां प्रिय सदैव सप्त घटिका मध्यमिष्टान्न भोजन मनोज्ञाशयनीय शयनाभ्यासेन सुखैधितो" परंतु वस्तुके यथार्थ तत्त्व विचारनेसें तेरी बुद्धि क्लेशित नहीं हुइ है, तिस करके हमारा कह्या तेरी समझमें नहीं आता है, क्योंकि ज्ञान क्षण सततिविषेभी वोही दूषण है, जो हमने उपर कह्या है, सोइ दिखातें है, कि वैकल्पिक, अरु अवैकल्पिक, जो ज्ञान क्षण है, सो परस्पर अनुगमके अभावसे परस्पर स्वरूप नहीं जानते, अरु क्षणमात्रसें उपरांत रहते नहीं, तब तो कैसें पूर्वापर अनुसधान रूप दीर्घकालिक सकल जगत् दुःखिताका विचार शास्त्र विचारण रूप यह व्यवहार होवे? आंखों मीच करके विचारो तो सही? इत्यादि बौद्धमतका खमन, नदीसिद्धांत, तथा सम्मतितर्क, द्वादशा

नहीं, क्योंकि पूर्व वस्तुगत प्रत्यक्ष करके पूर्ववस्तु परिछिन्न हुइ, अरु उत्तर वस्तुगत करके उत्तर वस्तु हुइ, अरु ये दोनो परस्पर स्वरूपको जानते नहीं, अरु इन दोनोका अनुसधान करने वाला असा तीसरा एक स्वरूप कोइ मानते नहीं है, तिस वास्ते इसके अनतर इसका नाव है, असें किस तरें अवगम होवे? सो तो तिसकूनी प्रत्यक्षपूर्वक होनेसें अनुमान करकेंनी नहीं होवे, अरु अनुमान जो है, सो लिग लिगी सबध ग्रहणपूर्वक प्रवृत्त होता है, अरु लिग लिगीका सबध तो प्रत्यक्ष करके ग्राह्य है, जे कर अनुमानसे सवध ग्रहण करियें, तव अनवस्थादूषण आता है अरु कार्य कारण नाव विषे प्रत्यक्ष प्रवृत्त होता नहीं, तिस वास्ते अनुमानकीनी प्रवृत्ति नहीं, असेंही ज्ञानके दोनो क्षणोकोंनी परस्पर कार्य कारण नावका अवगमनी निषेध हुआ जानना तहांनी स्वसवेदन करके अपणे अपणे रूपके ग्रहणेमें परस्पर स्वरूप अनवधारणसें तदनतरमै उत्पन्न हूआ हू, अरु इसका मै जनक हू, असी अवगतिके न होनेसें तुमारे मतम कार्यकारण नाव नहीं है अरु तिसका अवगमनी नहीं है, तिसतें मृषाही यह तुमारा कहना है कि एक सतति पतित होनेसे वध मोक्षका एकाधिकरण है, इस कहने करके जो कहते है कि उपादेयोपादान क्षणोंका परस्पर वास्यवासक नाव होनेसें, उत्तरोत्तर विशिष्ट विशिष्टतर क्षणोत्पत्तिसें मुक्तिका सनव है, सोनी उपादानोपादेय नावका उक्तरीतिसें अनुपपद्यमान होनेसें प्रतिक्षिप्त जाननां, अरु जो वास्यवासक नाव कह्या है, सोनी तिल फूलोंकी तरें एक कालमें दोनो होवे तव हो सक्ता है, "उक्तचान्यैरपि ॥ अवस्थिताहि वास्यंते, नावानावैरवस्थिते" तव कैसें उपादेयोपादान क्षण दोनोंकों परस्पर असाहित्य होनेसें वास्यवासक नाव होवे? उक्त च ॥ श्लोक ॥ वास्यवासकयोश्चैव, मसाहित्यान्न वासता ॥ पूर्वक्षणैरनुत्पन्नो, वास्यते नोत्तर क्षण ॥ १ ॥ उत्तरेण विनष्टत्वान्न च पूर्वस्य वासना ॥ इति ॥

एक औरनी बात है, कि वासना वासकसे निन्न है? वा अनिन्न है? जे कर कहोगे कि निन्न है, तव तो तिस वासना करकें शून्य होनेसें अन्यकों वस्त्वतरवत् कदापि वासित न करेगी, जे कर कहोगे कि अनिन्न है, तव तो वास्यक्षणमें वासनाका सक्रम कदापि नहीं होवे, असें तिसके स्वरूपकी

९ तथा स्मृतिगृहीतग्राही होने करके प्रमाण नहीं मानते हैं, "अनर्थ जन्यत्वेन" विना अर्थके होने करके अरु गृहीतग्राही होनेसें प्रमाण नहीं, अरु धारावाही ज्ञानजी गृहीतग्राही है, तिनकोंनी अप्रमाणता होनी चाहियें, परंतु धारावाही ज्ञानकों नैयायिक औ वैशेषिक प्रमाण मानते हैं, अरु अनर्थजन्य होने करकें स्मृतिकों जब अप्रमाण मान्या, तब अतीतानागत अनुमानजी अनर्थजन्य होने करकें प्रमाण न हूआ, अरु अनुमानकों शब्दकी तरें त्रिकाल विषयक मानते हैं, क्योंकि धूम करकें वर्त्तमान अग्नि अनुमेय है, अरु मेघोन्नति करकें नविष्यत् वृष्टि, अरु नदीका पूर देखनेंसें अतीत वृष्टिका अनुमान, यह दोनोंही अनर्थ जन्य है, तो फेर धारावाही ज्ञान, अरु अनर्थ जन्य अनुमान, इन दोनोंको तो प्रमाण माननां अरु स्मृतिकों अप्रमाण नहीं माननां यह पूर्वापर विरोध है

१० ईश्वरका सर्वार्थ विषय प्रत्यक्ष जो है, सो इंद्रियार्थ सन्निकर्ष निरपेक्ष मानते हो ? वा इंद्रियार्थ सन्निकर्षोत्पन्न मानते हो ? जे कर कहोगे कि इंद्रियार्थ सन्निकर्ष निरपेक्ष मानते हैं,तब तो "इंद्रियार्थ सन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानमव्यपदेश्यमित्यत्र सूत्रे" सन्निकर्षोपादान निरर्थक होवेगा, क्योंकि ईश्वर प्रत्यक्ष ज्ञान सन्निकर्षके विनाजी हो सक्ता है, जे कर कहोगे कि ईश्वर प्रत्यक्ष इंद्रियार्थ सन्निकर्षोत्पन्न मानते हैं, तब तो ईश्वरके मनकों अणुमात्र प्रमाण होनेसें युगपत् सर्व पदार्थोंके साथ सयोग न होवेगा ? तब तो ईश्वर जब एक पदार्थकों जानेगा, तब दूसरे पदार्थ होते हूयांकोंजी नहीं जानेगा तब तो हमारेकी तरें तिस ईश्वरकों कदापि सर्वज्ञता न होवेगी, क्योंकि सर्व पदार्थोंके साथ युगपत् सन्निकर्ष नहीं हो सक्ता है, जे कर कहोगे कि सर्व पदार्थोंको क्रम करकें जाननेंसें सर्वज्ञ है, तब तो बहुत काल करकें सर्व पदार्थोंके देखने करकें ईश्वरकी तरें हमकूंजी सर्वज्ञ कहनां चाहियें. एक औरजी बात है कि अतीत, अनागत जो पदार्थ हैं, सो विनष्ट अनुत्पन्न होनेसें मनके साथ सन्निकर्ष नहीं हो सक्ता है, होतेही पदार्थोंका सयोग होनेसे, अरु अतीत अनागत तो तिस अवसरमें दोनो असत् है, तब किस तरें महेश्वरका ज्ञान अतीत अनागत अर्थका ग्राहक होवे ? अरु तुम तो ईश्वरका ज्ञान सर्वार्थका ग्राहक मानते होत,

र नयचक्र, अनेकांत जयपताका, स्याद्वादरत्नाकर, स्याद्वादरत्नाकराव तारिका प्रमुख अनेक शास्त्रोमें अछी तर कीया है, सो देख लेना॥ इति बौद्ध मत खमन ॥ १ ॥

१ अथ द्वितीय नैयायिक मतमें पूर्वापर व्याहतपणा लिखते हैं, कि सत्ता योगसे सत्त्व है ऐसे कह कर सामान्य विशेष समवाय इन पदार्थोंको सत्ता के योगसे विनाही सत् कहतेको क्यो नहीं पूर्वापर व्याहत वचन होवेगा ?

२ ज्ञान आपणे आपको नहीं जानता, आपणे आप विषे क्रियाका विरोध है, इस वास्ते ऐसे कह करकें फेर कहिते है कि ईश्वरका जो ज्ञान है, सो आपणे आपकों जानता है, अरु स्वात्माविषे क्रियाका विरोध मानते नहीं है, तो फेर क्योंकर स्ववचन विरोध न हूआ ?

३ अरु दीपक जो है, सो अपणे आपको आपही प्रकाश करता है,अरु इस जगे स्वात्म विषे क्रिया विरोध मानते नहीं, यह पूर्वापर वचन व्याहत है

४ दूसरोंके ठगने वास्ते छल, जाति, निग्रह, स्थान, इनको तत्त्वरूप पणे करके उपदेश करते हुवा अक्षपाद रुषिका वैराग्य वर्णन करना ऐसा है कि जैसा अधकारकों प्रकाशवाला कहना यह क्यों कर पूर्वा पर व्याहत नहीं है ?

५ आकाशको निरवयवी स्वीकार करकें फेर तिसका गुण शब्द जो है, सो एक देशमें सुणाइ देता है, सर्वत्र नहीं तब तो आकाशको सांशता हो गइ यह पूर्वापर व्याहत पणा है

६ सत्तायोगसें सत्त्व अरु योग जो है सो सर्व वस्तुवोंके सांशता होने हीसें होता है, अरु सामान्यकों निरंश एक मानते हैं, तब कैसें पूर्वापर व्याहत वचन न होवे ?

७ समवाय, नित्य एकस्वभाव मानते हैं, अरु सर्व समवायी पदार्थोंके साथ संबध नैयत्य करके होता हूआ समवाय, अनेक स्वभाव वाला हो गया, तब तो पूर्वापर विरोध हो गया

८ "अर्थवत्प्रमाण" अर्थ सहकारी है, जिसका सो अर्थवत् प्रमाण, य ह कह करकें फेर योगी प्रत्यक्षकों अतीताद्यर्थ विषय कहतेकों क्यों नहीं पूर्वापर विरोध है ? क्योंकि अतीतादिक जो है, सो विनष्ट अनुत्पन्न होने सें सहकारी नहीं हो सके हैं

पूर्वपक्ष—सुगतादिक ईश्वर मत होवो, परंतु सृष्टिका कर्त्ता तो महादेव ईश्वर है, सो क्यों नहीं मानते?

उत्तरपक्ष—जगत् कर्त्ता ईश्वरकी सिद्धिमें प्रमाणका अनाव है, इस वास्ते नहीं मानते

पूर्वपक्ष—जगत् कर्त्ताकी सिद्धिमें प्रमाण है पृथिव्यादिक किसी बुद्धिवानके करे हूये हैं घटादिवत् कार्यरूप होनेसें यह हेतु असिद्ध नहीं है, पृथिव्यादिकोंकों सावयव होने करिकें कार्यत्वकी प्रसिद्धि होनेसे तथाहि पृथिवी, पर्वत, वृक्षादिक सर्व सावयव होनेसे घटवत् कार्यरूप है, अरु यह हेतु विरुद्धनी नहीं है, निश्चित कर्तृक घटादिकों विषे कार्यत्व हेतुके देखनेसें अरु जिनोका कर्त्ता नहीं है, उनसे व्यावृत्त होनेसे अनेकांतिकनी नहीं है, अरु प्रत्यक्ष आगम करकें अबाधित विषय होनेसें कालात्ययापदिष्टनी नहीं है,इस निर्दोष हेतुसें जगत्कर्त्ता ईश्वर सिद्ध होता है

उत्तरपक्ष—तहां प्रथम पृथिवीआदिक बुद्धिमान्के बनाये हूये हैं, इस सिद्धिके वास्ते जो तुमनें कार्यत्व हेतु कहा था, सो हेतु क्या सावयवत्व है? वा प्राग्वत् स्वकारण सत्ता समवाय है? वा 'कृतं' असे प्रत्ययका विषयत्व है? वा विकारित्व है? इन चारों विकल्पोंमेंसू कार्यत्व हेतुका कौनसा स्वरूप है? जे कर कहोगेकि सावयवत्व स्वरूप है, तो यह सावयवपणा अवयवों विषे वर्त्तमानत्व है? वा अवयवों करकें आरज्यमाणत्व है? वा प्रदेशत्व है? वा सावयव असी बुद्धिविषयत्व है?

तहां आद्य पक्षविषे अवयव सामान्य करकें यह हेतु अनेकांतिक है, तथा अवयवों विषे वर्त्तमाननी निरवयव अरु अकार्य कहते है, तथा दूसरे पक्षमें हेतु साध्यके समान है, जैसा पृथिव्यादिकोंकों कार्यत्व साध्य है, असेही परमाणु आदिकोंकों अवयव आरज्यत्व पणा है, तथा तीसरे पक्षमें आकाशके साथ हेतु अनेकांतिक है, क्योंकि आकाश प्रदेश वाला तो है, परंतु कार्य नहीं है तथा चउथे पक्षमेंनी आकाशके साथ हेतु व्यनिचारी है, क्योंकि जो व्यापक होता है, सो निरवयव नहीं होता है, अरु जो निरवयव होता है, सो परमाणुवत् व्यापक नहीं होता है

तथा प्रागसत स्वकारण सत्तासमवाय कार्यत्वनी नहीं, क्योंकि तिसकों नित्य होने करकें तिसके लक्षणके न होनेसें जे कर तिसका लक्षण

व तो पूर्वापर विरोध सहजहीमें हो गया, ऐसेही योगीयोंकोंभी सर्वार्थ ग्राहक ज्ञानका दुर्धर विरोध जान लेना

११ कार्य द्रव्यके प्रथम उत्पन्न होनेसें तिसका जो रूप है,सो पीछेसें उत्पन्न होता है, विना आश्रयके गुण क्योंकर उत्पन्न होवे ? यह कह करके पीछेसे यह कहते हैकि कार्य द्रव्यके विनाश हूये पीछे तिसका रूप नष्ट होता है, यह पूर्वापर विरोध है, क्योंकि जब कार्यद्रव्य नाश होग या, तब रूप आश्रय विना पीछें क्यों कर रह सकेगा ?

१२ नैयायिक औ वैशेषिक जगत्का कर्त्ता ईश्वरको मानते है, यह बा तभी एक महामूढताका चिन्ह है, क्योंकि जगत्का कर्त्ता ईश्वर किसी प्रमाणसे सिद्ध नही हो सक्ता है, यह जगत् कर्त्ताका खमन दूसरे परिछे दमें अछी तरे विस्तार पूर्वक लिख आये है, तोभी भव्य जीवोंके ज्ञान वास्ते थोडासा इहांभी लिख देते है

कोइक कहते है कि साधुवोंके उपकार वास्ते अरु दुष्टोंके सहार वास्ते ईश्वर युग युगमे अवतार लेता है, अरु सुगतादिक कितनेक यह बात कह ते हैं कि मोक्षको प्राप्त हो करकें अपने तीर्थको क्लेशमें देख कर फेर भग वान् अवतार लेता है,"यदाहु रन्ये॥ ज्ञानिनोधर्मतीर्थस्य,कर्त्तार परम पद ॥ गत्वा गछति भूयोपि, भवतीर्थनिकारत इति ॥ १ ॥" जो फिर ससारमें अवतार लेता है, वो परमार्थसे मोक्षरूप नहीं हूआ है, क्योंकि उसके सर्व कर्म क्षय नही हूयें है,जे कर मोहादिक कर्मक्षय हो जाते, तो वो का हेकों अपने मतका तिरस्कार देखके पीडा पाता, अरु अवतार लेता, जे कर साधुवोंके उपकारार्थ अरु दुष्टोंके सहार वास्ते अवतार लेता है, तब तो असमर्थ हूआ, क्योंकि विनाही अवतारके लीयां वो यह काम नहीं कर सक्ता था, जे कर कर सक्ता था, तो फेर काहेकों गर्भावासमें पडा ? इ स वास्ते सर्व कर्म क्षय नहीं हुये, जे कर क्षय हो जाते तो कबीभी अव तार न लेता ॥ यदुक्त ॥ दग्धे बीजे यथात्यंतं,प्रादुर्भवति नांकुर ॥ कर्म्मबी जे तथा दग्धे, न रोहति भवांकुर ॥ १ ॥ उक्तच श्रीसिद्धसेन दिवाकर पा दैरपि ॥ भवाभिगामुकानां, प्रबलमोहविजृंभितं ॥ श्लोक ॥ दग्धेंधन पुन रुपैति भव प्रमथ्य, निर्वाणमप्यनवधारितभीरनिष्टं ॥ मुक्त स्वयं कृततनुश्च परार्थशूर, स्वच्छासनप्रतिहतेष्विह मोहराज्यं ॥ १ ॥ इत्यलंविस्तरेण ॥

त्व होवे, तब तो वाष्यादिकोंकोंनी अग्नि प्रतिगमकत्वका प्रसग होवेगा, अरु महेश्वर आत्मत्व करकें सर्व जीवोंके सदृश होनेसें १ ससारिपणा, २ किंचित् ज्ञत्वपणा, ३ सपूर्ण जगत्का अकर्तृत्वपणेके अनुमापकका अनुपग है, क्योंकि तुल्य अक्षेप समाधान होनेसें तिस वास्ते वाष्य अरु धूम इन दोनोकों किसी अश करकें साम्यनी है, तोनी कोइक ऐसा विशेष है, जिस करकें धूम अग्निका गमक है, परंतु वाप्यादिक नहीं. तैसेही पृथिव्यादिकोंकों इतर कार्येसेंनी कछुक विशेष अगीकार करो

जे कर दूसरा पक्ष मानोगे, तब हेतु असिद्ध है, कार्य विशेषके अनावसे नावे वा जीर्ण कूप प्रासादादिकोंकी तरें अक्रिया देखने वालेकोंनी कृतबुद्धि उत्पादकका प्रसग है, जे कर कहोगेकि समारोपसें प्रसग नहि होता है, सोनी दोनों जगें एक सरीखा होनेसे क्यो नहीं होता है? दोनों जगें कर्त्ताकों अतींद्रियत्वके अविशेषसे पूर्वपक्ष प्रामाणिककों है, यहां कृतबुद्धि उत्तरपक्ष कैसें तहां तिसकों कृतत्त्वका अवगम होवे? इस अनुमान करकें अथवा अनुमानातर करकें आद्य पक्षमें परस्पर आश्रय दूषण है, तथाहि सिद्ध विशेषण हेतुसें इस अनुमानका उछान है, तिसके उछानके होयां हेतुके विशेषणकी सिद्धि है अरु दूसरे पक्षमें अनुमानातरकोंनी सविशेषण हेतुसें उछान होवेगा, तहांनी अनुमानांतरसें तिसकी सिद्धि इसी तरें अनवस्था दूषण होता है, इस वास्ते कृत बुद्धि उत्पादकत्व रूप विशेषण सिद्धि नहीं, तब तो विशेषण असिद्ध हेतु है

अरु जो कहते हैं कि खातप्रतिपूरित पृथिवीके दृष्टांत करके कृतकोंकों आत्मविषे कृतबुद्धि उत्पादकत्वका अनाव है, सोनी असत् है, तहां आकृति नूनागादि सारूप्यकों तिसके उत्पादकके अनावसें, तिसके अनुत्पादककी उत्पत्तिसें

अरु ऐसेंनी न कहनाकि पृथिव्यादिकोंमेंनी अकृत्रिम सस्थान सारूप्य है, जिस करकें आकृतिमत्व बुद्धि उत्पन्न होती है, तिसहीके न माननेसें अपसिद्धातकी प्रसक्ति होवेगी, ऐसें कृतबुद्धि उत्पादकत्व रूप विशेपण असिद्ध होनेसे हेतु विशेपण असिद्ध है, सो सिद्ध होवो, तोनी यह हेतु घटादिकोंकी तरें शरीरादि विशिष्टकोंही बुद्धिमत् कर्त्ताका इहां प्रसाधनसे हेतुविरुद्ध है

होवेगा, तब तो पृथिव्यादिकोंके कार्यत्वकोंभी नित्यताका प्रसंग होवेगा, तब बुद्धिमत्का बनाया हूआ क्या सिद्ध करोगे? एक औरभी दूषण है कि योगीयोंके अशेष कर्मके क्षय हूआ थका पक्षांतपातिविषे अप्रवृत्त होने करके यह हेतुभागा असिद्ध है, क्योंकि योगी प्रत्यक्षको प्रध्वंसाभाव रूप होने करके सत्ता स्वकारण समवाय इन दोनोंके अनावर्त्त

तथा "कृतं" असे प्रत्ययका जो विषयत्व है सोभी कार्यत्व नहीं हो सक्ता है, खनन उत्सेचनादिक करके कृतं आकाश असे अकार्य आकाशमें भी वर्त्तमान होने करके अनेकांतिक है

तथा विकारत्वकोंभी कार्यत्वका अनुषंग है, सत् वस्तुको जो अन्यभाव है, सो विकारित्व है तब तो ईश्वरकोंभी विकारित्व पणा है, अपर बुद्धिमत् हेतुकत्व प्रसंग होनेसें अनवस्था हो जावेगी, जे कर कहोगेकि ईश्वर विकारी नहीं तब तो कार्यका कारित्व पणा दुर्घट है, असे कार्य स्वरूपको विचारता थका उपपद्यमान न होनेसे "कार्यत्वात्" यह हेतु असिद्ध है,एक औरभी दूषण है कि कदे होना कदे न होना, लोकमें उसकों कार्यत्वकी प्रसिद्धि है अरु यह जो जगत् है, सो तुमारे महेश्वरकी तरें सदा सत्व होनेसें कैसे कार्यत्व होवे?

पूर्वपक्ष—तिस जगत्के अंतर्गत तृणादिकोंकों कार्यत्व होनेसे जगत्कोंभी कार्यत्त्व है

उत्तरपक्ष—महेश्वर अंतर्गत बुद्धिआदिकोंकों तथा परमाणु आदिकोंके अंतर्गत पाकज रूपादिकोंकों कार्यत्व रूप होनेसें महेश्वरको तथा परमाणु आदिकोंकों कार्यत्वका अनुषंग होवेगा, तब तो इस ईश्वरको अपर बुद्धिमत् हेतुकत्व प्रसंगसें अनवस्था दूषण आता है, अरु अपसिद्धांतका अनुषंग है, तथा हे ईश्वरवादि! जैसे तैसें करके जगत्कों कार्यत्वपणा होवो, तोभी कार्यमात्र इहां हेतु तुमने माना है? वा कार्य विशेष हेतु माना है?

जे कर आद्य पक्ष मानोगे, तब तो तिससेंती बुद्धिमत्कर्त्ता विशेष सिद्धि नहीं क्योंके तिसके साथ व्याप्तिकी सिद्धि नहीं, किंतु कर्त्ता सामान्यकी सिद्धि होती है, जे कर असेही मानोगे, तब तो हेतु अकिंचित्कर है, साध्यसें विरुद्ध साधनेसें हेतु विरुद्ध है, तिस वास्ते कार्यत्वकृत बुद्धि उत्पादक बुद्धिमत् कर्त्ताका गमक नहीं, अरु जे कर सर्व सारूप्य मात्र करकें गमक

हैं? अथवा और किसी प्रमाणसें है? प्रथम पक्षमें चक्रक दूषण है, इस प्रमाणसें तिसका सद्भाव सिद्ध होवे, तब अदृश्य होने ईश्वरके अनुपलंभकी सिद्धि होवे, तिसकी सिद्धिके होयां कालात्ययापदिष्टका अभाव सिद्ध होवे, तिसके पीछें इस प्रमाणकी सिद्धि होवे. दूसरा पक्षभी अयुक्त है, ईश्वरके भावावेदिक प्रमाणके अभावसें होवे, तहां प्रमाणका सद्भाव तोभी १ ईश्वरके अदृश्य होनेमें क्या शरीरका न होनां कारण है? २ वा विद्यादि प्रभाव हैं? ३ वा जाति विशेष है? प्रथम पक्षमें अशरीरी होनेसे मुक्त आत्मावत् कर्त्तापणेकी अनुपपत्ति है

प्रश्न – शरीरके अभाव करकेंभी ज्ञानेछा प्रयत्नाश्रयत्व करकें शरीर उत्पन्न करकें ईश्वर कर्त्ता हो सक्ता है

उत्तर –यहभी विना विचारहीका तुमारा कहनां है, क्योंकि शरीर संबध करकेंही तिसकी प्रेरणा होनेसें शरीरके अभाव हूयां मुक्त आत्मवत् तिसका असंभव होनेसें अरु शरीरके अभावसें ज्ञानादि आश्रयित्वकाभी असंभव है, तिसकी उत्पत्तिमें इसकों निमित्त होनेसें अन्यथा मुक्तात्माकोंभी तिसकी उत्पत्ति होवेगी अरु विद्यादि प्रभावकों अदृश्यपणेमें हेतु हूयां कदाचित् यह दीखना चाहियें, परंतु सर्वदा नहीं क्योंकि विद्यावान् सदा अदृश्य नहीं रहते हैं, पिशाचादिकोंकी तरें जाति विशेषभी अदृश्यमें हेतु नहीं, क्योंकि ईश्वर एक है, एकमें जाति नहीं होती है, जाति जो होती है, सो अनेक व्यक्ति निष्ठ होती है भलेही ईश्वर दृश्य अथवा अदृश्य होवे, तोभी १ क्या सत्ता मात्र करकें? २ वा ज्ञानवत्त्व होने करकें? ३ वा ज्ञानेछा प्रयत्नवत्त्व करकें? ४ वा तत्पूर्वक व्यापार करकें? ५ वा ऐश्वर्य करकें पृथिव्यादिकोंका कारण है?

तहां आद्य पक्षमें कुलालादिकोंकोंभी सत्त्वके अविशेष होनेसें जगत्कर्तृकाअनुषग होवेगा दूसरे पक्षमें योगीयोंकोभी जगत् कर्त्ताकी आपत्ति होवेगी, तीसरा पक्षभी ठीक नहीं, क्योंकि अशरीरकों प्रथमही ज्ञानादि आश्रयत्वका प्रतिषेध करनेसें चतुर्थेकाभी संभव नहिं क्यों कि अशरीरकों काय वचनके व्यापारवत्त्वका असंभव होनेसे अरु ऐश्वर्यभी ज्ञातपणा है? अथवा कर्त्तापणा है? अथवा और कुछ है? जे कर कहोगे कि ज्ञातपणा है, तब क्या ज्ञातृत्वमात्र है? अथवा सर्वज्ञातृ पणा है? आद्यपक्षमें ज्ञाताही होवेगा,

प्रश्न –ऐसे दृष्टांत दार्ष्टांतिक साम्य अन्वेषणमें सर्व जगें हेतुओंकी अनुपपत्ति होवेगी.

उत्तर –ऐसे नही है धूमादि अनुमानमें महानस इतर साधारण अग्निकी प्रतिपत्तिसें, यहांभी ऐसेंही बुद्धिमत् सामान्य प्रसिद्धिसें हेतु विरोध नही, ऐसेंभी कहना अयुक्त है, क्योंकि दृश्य विशेष आधारकोंही तिस सामान्यको कार्यत्व हेतुकी प्रसिद्धि है, परंतु अदृश्य विशेषाधारकों नहीं, तिसकी स्वप्नेमेंभी प्रतिपत्ति नहीं है, तिस सामान्य वालेका खरशृंग आधार है, तिस वास्ते जैसे कारणसें जैसा कार्य उपलब्ध होता है, तैसाही अनुमान करने योग्य है, यथावत् धर्मात्मक अग्निसे यावत् धर्मात्मकस्य धूमकी उत्पत्ति है, सुदृढ प्रमाणसें प्रतिपन्न है, तैसेंही धूमसें तैसेंही अग्निका अनुमान है, ऐसे कहने करकें साध्य साधन दोनोंका विशेषण करके व्याप्तिविषे ग्रहण करता हूआ, सर्वानुमानकी उच्छेद प्रसक्ति है, इत्यादि जो कहना है, सोभी खमन हो गया

तथा विना बीजके बोया जो तृणादिक उत्पन्न होते है तिनके साथ यह कार्यत्व हेतु व्यभिचारी है, बहुतसें कार्य देखनेमें आते है, उनमेंसूं कितनेक तो बुद्धिमान्के करे हुये दीखते हैं, जैसें घटादिक

अरु कितनेक उकसें विपरीत दिखाइ देते हैं, जैसें विना बोया तृणादिक जे कर कहोगेकि हम सर्वको पक्षमें कर लेवेंगे तब तो " स श्यामस्तत्पुत्रत्वादितरतत्पुत्रवत् " इत्यादिभी गमक होने चाहियें, तब तो कोइभी हेतु व्यभिचारी न होवेगा जहां जहां व्यभिचार होवेगा, तहां तहां तिसकों पक्षमें कर लेनेसें तथा यह हेतु ईश्वर बुद्धि आदिकों करकेंभी व्यभिचारी है, ईश्वर बुध्ध्यादिकोंकों कार्यत्वके होयां हूयांभी समवायि कारणसें ईश्वरादिकोंसें भिन्न बुद्धिमत्पूर्वकत्वके अभावसें, जे कर यहांभी इसी तरें मानोगे, तब अनवस्थादूषण होवेगा, तथा यह कार्यत्व हेतु कालात्ययापदिष्टभी है, विना बोयां उत्पन्न हुये तृणादिको विषे बुद्धिमत् कर्त्ताका अभाव प्रत्यक्ष प्रमाणसें अग्निके अनुष्णत्व साध्यविषे द्रव्यत्व हेतुवत् दीख पडता है

प्रश्न – अंकुर तृणादिकोंकाभी अदृश्य ईश्वर कर्त्ता है

उत्तर –यहभी ठीक नहीं, तहां अदृश्य ईश्वरका होना इसी प्रमाणसें

वितंडा, १३ हेत्वाभास, १४ छल, १५ जाति, १६ निग्रहस्थान, य
ह सोला पदार्थ कहे हैं

तहां, हेय उपादेय प्रवृत्तिरूप करके जिस करकें पदार्थोंकी परिछित्ति क
रियें हैं, " तत्त्वमीयतेऽनेनेति प्रमाण" सो प्रमाण, सो प्रमाण १ प्रत्यक्ष,
२ अनुमान, ३ उपमान, ४ शब्द भेदसें चार प्रकारका है, " तत्रेंद्रियार्थ
सन्निकर्षोत्पन्न ज्ञानमव्यपदेश्यमव्यभिचारिव्यवसायात्मक प्रत्यक्ष इति
गौतम सूत्र ॥" इसका यह तात्पर्य है कि इंद्रिय अरु अर्थका जो सबध
तिससेती जो उत्पन्न हूआ व्यपदेश रहित व्यभिचार रहित निश्चयात्मक
तिसकों प्रत्यक्ष प्रमाण कहते हैं, परंतु प्रत्यक्ष प्रमाणका यह लक्षण नहीं
है, तथाहि जहां आत्मा अर्थ ग्रहण प्रति साक्षात् व्यापारियें, सोइ प्रत्य
क्ष प्रमाण है, सो अवधि, मन पर्यव, अरु केवल है, अरु यह जो प्रत्य
क्ष नैयायिकोने कह्या है, सो उपाधि द्वारा प्रवृत्ति होनेसें अनुमानकी त
रें परोक्ष है, जो उपचार प्रत्यक्ष मानें, तब तो है, परतु तत्त्वचिंतामें
उपचारका व्यापार नहीं होता है

अरु अनुमान प्रमाण तीन भेद करिकें मानते हैं, १ पूर्ववत्, २शेषवत्,
३ सामान्यतोदृष्ट तहा कारणसें कार्यका जो अनुमान, सो पूर्ववत्, तथा
कार्यसें कारणका जो अनुमान, सो शेषवत्, तथा एक आंबका वृक्ष फूला
देख कर आंब, जगत्में फूले है, ऐसें जानना, अथवा देवदत्तादिकोमें गति
पूर्वक स्थानसें स्थानांतरकी प्राप्ति देख कर सूर्यमेंभी गतिका अनुमान क
रना इसका नाम सामान्यतो दृष्ट है, तहांभी अन्यथानुपपत्तिही गमक है,
नतु कारणादिक क्योंकि अन्यथानुपपत्तिके बिना कारणको कार्य प्रति व्य
भिचार होनेंसें अरु जहां अन्यथानुपपत्ति है, तहां कार्य कारणादिकों
के विनाभी गमकभाव देखीयें है, सोइ दिखाते हैं कृत्तिकाके देखने
सें रोहिणीका उदय होवेगा ॥ तडुक्तं ॥ श्लोक ॥ अन्यथानुपपन्नत्व, यत्र
तत्र त्रयेण किं ॥ नान्यथानुपपन्नत्त्व, यत्र तत्र त्रयेण किं ॥ १ ॥ तथा
एक औरभी वात है कि जब प्रत्यक्ष प्रमाणही नैयायिकका कह्या प्रमाण
न हूआ तब प्रत्यक्ष पूर्वक अनुमान जो है सो क्योंकर प्रमाण होवे ?
तथा " प्रसिद्ध साधर्म्यात् " अर्थात् प्रसिद्ध साधर्म्यसे जो साध्यका सा
धन है, सो उपमान है, जैसा गौ है तैसा रोज है, यहांभी सज्ञा सज्ञी

परतु ईश्वर न होवेगा. असमदायन्यज्ञातृयोंकी तरें दूसरे पक्षमे सर्वज्ञ पणा इसको होवेगा परंतु सुगतादिवत् ईश्वरपणा न होवेगा.

अथ जे कर कहोगे कि कर्तृत्वपणा है तब तो कुंनकारादिकोंकोंनी अनेक कार्य करने वालोंको ऐश्वर्यकी प्रसक्ति होवेगी, अरु इछा प्रयत्नके विना और कोइन्नी वस्तु ईश्वरके ऐश्वर्यकी निबधन नहीं है

एक औरन्नी वात है, कि ईश्वरके जगत् बनानेमे यथारुचि प्रवृत्ति है ? वा कर्मके वश हो करकें है ? वा दया करके है ? वा क्रीडा करकें है ? वा निग्रहानुग्रह करने वास्ते है ? वा स्वनावसे है ? आद्य विकल्पमें कदाचित् और तरेंकी सृष्टि हो जावेगी, दूसरे पक्षमें ईश्वरकी स्वतंत्रताकी हानी होवेगी, तीसरे पक्षमें सर्व जगत् सुखीही करना था

पूर्वपक्ष –ईश्वर क्या करे ? जेसे जेसे जीवोंने कर्म करे ह, तिन कर्मोके वशसें ईश्वर तैसा तैसा डु ख सुख देता है

उत्तरपक्ष –तब तो तिसका क्या पुरुषाकार है ? जब कर्महीकी अपेक्षा करके कर्त्ता है, तब तो ईश्वरकी कल्पना करकें क्या करना है ? कर्महीके बलसें सब कुछ हो जावेगा, तथा चउथे पांचमे विकल्पमें ईश्वर, रागी द्वेषी हो जावेगा, तब तो ईश्वर क्यों कर सिद्ध होवेगा ? तथाहि क्रीडा करनेसें बालवत् रागवान् ईश्वर है ? तथा ईश्वर अनुग्रह निग्रह करनेसें राजाकी तरें राग द्वेप वाला है ?

जे कर कहोगे कि ईश्वरका स्वनावही जगत करने (रचनेका) है, तब तो जगत् स्वनावसेंही हूआ है, असें मान लेवो फेर ईश्वरकी कल्पना का हेकों करते हो ? इस वास्ते कार्यत्व हेतु बुद्धिमत् कर्त्ता ईश्वरकों नहीं सिद्ध कर्त्ता है, इस वास्ते नैयायिक, वैशेषिक जो जगत्का कर्त्ता ईश्वरकों मानते हैं, सो मूर्खताका सूचक है, विशेष करकें जगत् कर्त्ताका खमन देखना होवे, तदा सम्मतितर्क ग्रंथ देखना

अरु जो नैयायिकोने सोला पदार्थ माने हैं, सोन्नी बालकोंकी खेल है, क्योंकि सोला पदार्थ घटते नहीं है, सोला पदार्थ यह है इसका नाम कहते हैं १ प्रमाण, २ प्रमेय, ३ संशय, ४ प्रयोजन, ५ दृष्टांत, ६ सिद्धांत, ७ अवयव, ८ तर्क, ९ निर्णय, १० वाद, ११ जल्प, १२

लोकका सद्भाव होना सोभी जीवाजीवके बिना और कुछ नहीं है, तथा १० फल, जो सुख दुःखका भोगना है, सोभी जीव गुणोंके अंतर्भाव है, इस वास्ते पृथग् पदार्थ कहनां ठीक नहीं, तथा ११ दुःख, यहभी फलसें न्यारा नहीं, अरु १२ जन्म मरण प्रबंध उच्छेदरूप करके सर्व दुःखोंको दूर करणां, असा मोक्षका लक्षण है, सो हमने नवतत्त्वमें मान्याही है

३ तथा यह क्या है? असा अनिश्चयरूप प्रत्ययको संशय कहते हैं, सोभी निर्णय ज्ञानवत् आत्माहीका गुण है

४ तथा जिस करके प्रयुक्त हूआ होयां प्रवर्त्ते है, तिसका नाम प्रयोजन है, सोभी इच्छा विशेष होनेसें आत्माका गुण है

५ तथा अविप्रतिपत्ति विषयमें प्राप्त है, अर्थ सो दृष्टांत है, सोभी जीवाजीवपदार्थोंसें न्यारा नहीं है, इस वास्ते पृथक् पदार्थ नहीं है क्योंकि अवयवग्रहणेमेंभी आगें इसका ग्रहण हो जावेगा

६ तथा सिद्धांत चार प्रकारका है, १ सर्वतंत्राविरुद्ध सर्व शास्त्रोमें अविरुद्ध जैसें स्पर्शनादि इंद्रिय है, अरु स्पर्शादि इंद्रियार्थ है, तथा प्रमाणों करके प्रमेयका ग्रहण होता है, २ समानतंत्रसिद्ध, परतंत्रासिद्ध, प्रतितंत्रासिद्धांत, जैसें सांख्य मत वालोके असत् आत्म लाभको प्राप्त नहीं होता है, अरु सत्का सर्वथा विनाश नहीं है, तथा ३ जिसकी सिद्धिके हूयां औरभी अर्थ अनुषंग करकें सिद्ध हो जावे, सो अधिकरणसिद्धांत है तथा ४ "अपरीक्षितार्थाभ्युपगमत्वात्तद्विशेषपरीक्षणमभ्युपगमसिद्धांत" जैसें किसीने कहा शब्द क्या वस्तु है? कोइक कहता है शब्द द्रव्य है, सो शब्द नित्य है? वा अनित्य है? इत्यादि विचार यह चार प्रकारका सिद्धांत ज्ञान विशेषसें अतिरिक्त नहीं है, अरु ज्ञानविशेष आत्माका गुण है गुणीके ग्रहणेसें ग्रहण कीया है, इस वास्ते पृथक् पदार्थ नहीं

७ अथावयवा प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय, निगमन, यह पांचो अवयवकों जे कर शब्दमात्र मानीयें, तब तो पुद्गल रूप होनेसें अजीव तत्त्वमें ग्रहण कीये हैं जे कर ज्ञानरूप मानीयें, तब तो जीव तत्त्वमें ग्रहण कीये हैं, इस वास्ते पृथक् पदार्थ कहनां ठीक नहीं, जे

सवधकी प्रतिपत्ति उपमानका अर्थ है, इहांजी अन्यथानुपपत्तिके सिद्ध होनेसे उपमानजी अनुमानके अंतरजावही है, परंतु पृथग् प्रमाण नहीं जे कर कहोगे कि इहां अन्यथानुपपत्ति नहीं है, तब तो व्यभिचारी होनेसे उपमान प्रमाणही नहीं है, शाब्दजी सर्व प्रमाण नहीं है, किंतु जो आप्त प्रणीत आगम है, सोइ प्रमाण है, अरु अर्हंत विना दूसरा कोइ आप्त नहीं इस बातका निर्णय देखनां होवे, तदा सम्मतितर्क, नदीसिद्धांत, आप्तमीमांसादि शास्त्र देख लेने तथा एक औरजी बात है, कि यह चारों प्रमाण आत्माका ज्ञान है, अरु ज्ञान वस्तुके गुणोंको पृथग् पदार्थ मानीयें, तब तो रूपरसादिकोंजी पृथग् पदार्थ मानना चाहियें जे कर कहोगे कि प्रमेयके ग्रहणे करके, औ इंडियार्थ होने करके तेजी ग्रहण कीये जाते हैं, यहजी तुमारा कहनां युक्ति युक्त नहीं है, क्योंकि ड्व्यसें पृथग् गुणोंका अजाव है, ड्व्यके ग्रहण करनेसे गुणोंकाजी ग्रहण सिद्ध है, इस वास्ते पृथग् पदार्थ माननां ठीक नहीं

२ तथा प्रमेयका जेद, १ आत्मा, २ शरीर, ३ इंडिय, ४ अर्थ, ५ बुद्धि, ६ मन, ७ प्रवृत्ति, ८ दोष, ९ प्रेत्यजाव, १० फल, ११ डुख, १२ अपवर्ग तहां १ आत्मा सर्वका देखने वाला अरु जोक्ता है, अरु इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, डुख, ज्ञान, इन करकें अनुमेय है, सो तो हमने जीवतत्त्वमें ग्रहण कीया है, अरु २ शरीर जो है, सो आत्माका जोगायतन है, इंडिय जो गोंके साधन हैं, अरु ३–४ इंडियार्थ जोग्य हैं, येजी शरीरादिक जीवाजीवके ग्रहण करकें हमने ग्रहण करे हैं, अरु ५ बुद्धि जो है, सो उपयोग रूप ज्ञान विशेष है, सो बुद्धि जीवके ग्रहणहीमें आ गइ, एतावता जीव तत्त्वमेंही ग्रहण हो गइ, अरु ६ सर्व विषय अंत करण है, युगपत् ज्ञान का न होनां यह मनका लिंग है, तहां ड्व्य मन तो पौजलिक है, सो अजीव तत्त्वमें ग्रहण कीया है, अरु जावमन जो है सो ज्ञानरूप आत्माका गुण है, सो जीव तत्त्वमें ग्रहण कीया है, अरु ७ आत्माकी इच्छाका नाम प्रवृत्ति है, सो सुख डुखोंके होनेमें कारण है, सो ज्ञानरूप होणेसें जीवतत्त्वमें ग्रहण करी है, ८ आत्माके जो अध्यवसाय राग, द्वेष, मोहादि दोष हैं, यह दोषजी जीवके अजिप्राय रूप होनेसें जीवतत्त्वमेंही ग्रहण कीया है, इस वास्ते पृथग् पदार्थ नहीं ९ प्रेत्यजाव, पर

है, अरु हेतु तो किसी साध्यवस्तुमें हेतु है, दूसरे साध्यमें अहेतु है, इस वास्ते नियतस्वरूप वाला नहीं

१४-१५-१६ तथा छल, जाति, निग्रहस्थान, यह तीनो पदार्थ नहीं क्योंकि यह तीनोही वास्तवमें कपटरूप हैं, जिनोने इनकों तत्त्व करके कथन करे हे,उनके ज्ञान, वैराग्यका क्या कहनां हे ? इस संसारमें जो चोरी, ठगी,हथफेरी प्रमुख सिखावे,तिसकोंभी तत्त्वज्ञानका उपदेशक मानना चाहियें ? यह नैय्यायिकमतके सोला पदार्थोका खम्मन कीया,जे कर विशेष करकें देखना होवे, तो न्यायकुमुदचंद्र देख लेनां यह खम्मन, सूत्रकृतांग सिद्धांतसें लिखा है, जे कर विशेष देखनां होवे, तब बारहवा अध्ययन देख लेनां ॥ इति नैयायिक दर्शन खम्मन संपूर्णम्॥

अथ वैशेषिक मत खम्मन लिखते हैं वैशेषिकोंके कहे हूये तत्त्वभी तत्त्व नहीं है, सोइ दीखाते हैं १ द्रव्य, २ गुण, ३ कर्म, ४ सामान्य, ५ विशेष, ६ समवाय, इनोंने यह ठ तत्त्व माना है तहां १ पृथिवी, २ अप्, ३ तेज, ४ वायु, ५ आकाश, ६ काल, ७ दिक्, ८ आत्मा, ए मन, यह नव द्रव्य हैं तिनमें पृथिवी, अप्, तेज, अरु वायु, इन चारोंकों भिन्न भिन्न द्रव्य माननेसें ठीक नहीं क्योंकि परमाणु जो हैं, सो प्रयोग विश्रसा करकें पृथिवी आदिकोंके रूपपणे परिणमतेभी हैं, तोभी अपणे द्रव्य पणेकों नहीं त्यागते है, अरु अति प्रसंग होनेसें अवस्था भेद करके द्रव्यका भेद मानना युक्त नहीं हैं, अरु आकाश, तथा कालकों तो हमनेभी द्रव्य माना है, अरु दिशा जो है, सो आकाशका अवयवभूत है, इस वास्ते पृथग् द्रव्य नहीं अरु आत्मा शरीर मात्र व्यापी उपयोग लक्षण तिसकों हमभी द्रव्य मानते हैं,अरु द्रव्य मन जो है, सो पुजलद्रव्यके अंतर्भाव है, तथा भावमन जो है, सो जीवका गुण होनेसें आत्माके अंतर्भाव है, यद्यपि वैशेषिक कहते हैं, कि जैसें पृथिवीत्वके योगसें पृथिवी है, यहभी उनका कहनां स्वप्रक्रिया मात्र है, क्योंकि पृथिवीसें अन्य दूसरा कोइ पृथिवीपणा नहीं है, जिसके योगसें पृथिवी होवे, अपि तु सर्वही जो कुछ है, सो सामान्य विशेषात्मक है, नरसिंहाकारवत् उभयस्वभाव है

तथा चोक्तं ॥ श्लोक॥ नान्वय सहि भेदत्वान्न, भेदोन्वयवृत्तित ॥ मृ

कर ज्ञान विशेषको पृथक् पदार्थ मानीयें, तब तो पदार्थ बहुत हो जावेंगे, क्योंकि ज्ञानविशेष अनेक प्रकारके है.

८ संशयसें उपरि भवितव्यता प्रत्ययरूप सदर्थपर्यालोचनात्मक तिसकों तर्क कहते है, जैसे कि यह स्थाणु अथवा पुरुष जरूर होवेगा, यहभी ज्ञान विशेषही है, ज्ञानविशेष जो है, सो ज्ञातासें अभिन्न है, इस वास्ते पृथक् पदार्थ कल्पना ठीक नहीं

९ संशय अरु तर्कसेंती उत्तर काल भावी निश्चयात्मक ऐसा जो ज्ञान, तिसका नाम निर्णय है, यहभी ज्ञानविशेष है, अरु निश्चयरूप हो ऐसे प्रत्यक्षादि प्रमाणोंके अंतर्भाव होनेंसें पृथक् पदार्थ कल्पना ठीक नहीं

१०-११-१२ तथा वाद,जल्प,वितंडा,तहां प्रमाण तर्क साधन उपालंभ सिद्धांत अविरुद्ध पंचावयव करकें संयुक्त पक्ष प्रतिपक्षका जो ग्रहण करणा, तिसका नाम वाद है सो वादतत्त्व ज्ञानके वास्ते शिष्य अरु आचार्यका होता है, अरु सोइ वाद जिसकों जीतना होवे, तिसके साथ छल, जाति, निग्रह स्थान करके साधनोपलंभ, सो जल्प है, तथा सो वादही प्रतिपक्ष स्थापना करकेही वितंडा है, यह वाद, जल्प, वितंडा, इन तीनोका भेद ही नहीं हो सक्ता है, क्योंकि तत्त्वचिंताविषे तत्त्वके निर्णयार्थ वाद करनां चाहियें, परंतु छल जाति आदिक करकें तत्त्वका निश्चय नहीं होता है, क्योकि छलादिक जो हैं, सो परके वचने वास्ते करियें हैं, तिनसें तत्त्व निर्णयकी प्राप्ति नहीं होती है, जे कर इनका भेदभी मानोगे, तोभी ये पदार्थ नहीं हो सक्के हैं, क्योंकि जो परमार्थसे वस्तु है, सोइ पदार्थ है अरु वाद जो है,सो पुरुषकी इछाके अधीन है, नियतरूप नहीं है इस वास्ते पदार्थ नहीं, तथा एक औरभी बात है, कि कुक्कड, लाल, मींढे, इनके वादमेंभी पक्ष प्रतिपक्ष ग्रहण करते हैं, तिनोंकोंभी तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति होनी चाहियें, परंतु यह तुम नहीं मानते हो,इस वास्ते वाद पदार्थ नहीं है

१३ तथा १ असिद्ध, २ अनेकांतिक, ३ विरुद्ध, यह तीनो हेत्वाभास हैं हेतु तो नहीं, परंतु हेतुकी तरें भासन होते हैं, इस वास्ते हेत्वाभास कहते हैं जब सम्यक् हेतुवोंकीही तत्त्वव्यवस्थिति नहीं, तो हेत्वाभासों का तो क्याही कहना है? क्योंकि जो नियत स्वरूप करकें रहे, सो वस्तु

किसी सत्ताके यागसे है ? वा स्वरूप करकें है ? जे कर कहोगे कि और स
त्ताके योगसें है, तब तो तिस सत्तामें सत् प्रत्यय, और सत्ताके योगसें
होनां चाहियें ? ऐसे करतां अनवस्था दूषण आता है, अरु जे कर क
होगेकि स्वरूप करके सत् है, तब तो द्रव्यादिकन्नी स्वरूप करकें सत् हैं,
तब तो अजाके गलेके स्तनोकी तरे नि फल सत्ताके कल्पनेसें क्या प्रयो
जन है ? एक औरन्नी बात हैकि द्रव्यादिक जो हैं, सो सत्ताके योग होने
सें सत् कहे जाते हें ? अथवा सत्ताके सबंध विनाही सत् स्वरूप है ? जे
कर कहोगेकि स्वत ही सत् स्वरूप हैं, तब तो सत्ताकी कल्पना करनी व्य
र्थ है, जे कर कहोगे कि सत्ताके योगसें सत् है, तब तो शशविषाणन्नी
सत्ताके योगसें सत् होनां चाहियें ॥ तथा चोक्त ॥ श्लोक ॥ स्वतोऽर्था
सतु सत्ताव,त्सत्तया किं सदात्मनां ॥ असदात्मसु नैषास्या, त्सर्वथा ति
प्रसगत ॥ १ ॥ इत्यादि येही दूषण तुल्य योग क्षेम होनेसें अपर सामा
न्यमेंन्नी जोड लेनें तथा हमनी सामान्य विशेष रूप होनेसें वस्तुकों
कथचित् सामान्यरूप मानतेही हें, इस वास्ते द्रव्यके ग्रहण करनेसें
सामान्यकान्नी ग्रहण हो गया, इस हेतुसें सामान्य जो है, सो कुछ द्र
व्यसें पृथक् पदार्थ नही

५ अथ विशेष जो है, सो अत्यंत व्यावृत्ति बुद्धिके हेतु होने करकें
वैशेषिकोंनें माने हैं तहा यह विचार करते हें कि तिन विशेषोंने जो
विशेष बुद्धि है, सो अपर विशेषों करके है ? वा स्वत ही स्वरूप करकें है ?
अपर विशेष हेतुक तो नहीं है, अनवस्था अरु विशेषमें विशेपका अगी
कार नहीं है, जे कर कहोगेकि स्वत ही विशेष बुद्धिके हेतु हैं, तब तो
द्रव्यादिकन्नी स्वत ही विशेष बुद्धिके हेतु हें, तो फेर विशेषोंकों द्रव्यसें
अतिरिक्त पदार्थ कल्पने व्यर्थ हें अरु द्रव्योंसे अव्यतिरिक्त विशेषोंकों स
र्व वस्तुओंकों सामान्य विशेषात्मक होनेसें हमन्नी मानते है

६ अरु समवाय जो है, सो अयुत सिद्ध आधार आधेय नूतोंका जो
इह प्रत्ययका हेतु है, सो समवाय कहते हैं, अरु समवाय जो है, सो
नित्य अरु एक है, ऐसें वैशेपिक मानते हें तिस समवायके नित्य होनेसें
समवायोनी नित्य होने चाहियें जे कर समवायी अनित्य हैं, तो समवा
यन्नी अनित्य होना चाहियें ? क्योंकि समवायका आधार समवायी है,इस

नेद द्व्यससर्ग, वृत्तिजात्यतरं घट ॥ १ ॥ इसका नावार्थ –घट जो है तिसमें मृत्तिकाका अन्वय नहीं है, पृथु बुध्न उदराकारादिको करके इस हेतुसे नेद है, अरु अन्वयवर्त्ति होनेसे घटका मृत्तिकासे एकांत नेदनी न हीं है, एतावता घट मृत्तिका रूपही है, अन्वय व्यतिरेक दोनोंके मिलने से घडा जो है, सो जात्यतर रूप है, एतावता मृत्तिकासे कथचित् नेदा नेद रूप है ॥ तथा ॥ श्लोक ॥ न नर सिंहरूपत्वा, न्नसिंहो नररूपत ॥ शब्दविज्ञानकार्याणा, नेदो जात्यतर हि स ॥ १ ॥ नावार्थ –सिंहरूप होनेसे नर नही है, अरु नररूप होनेसे सिंहनी नही है, तो क्या है, १ शब्द, २ विज्ञान, ३ कार्य, इनके नेद होनेसे नरसिंह जो है सो तीसरी जाति है

२ अथ रूप, रस, गध, स्पर्श, रूपी द्रव्यमें इनकी प्रवृत्ति है अरु विशेष गुण है, तथा १ सख्या, २ परिमाण, ३ पृथक्त्व, ४ सयोग, ५ विनाग, ६ परत्व, ७ अपरत्व, ये सामान्य गुण है, इनकी सर्व द्रव्यमें वृत्ति है त था १ बुद्धि, २ सुख, ३ दुःख, ४ इच्छा, ५ द्वेष, ६ प्रयत्न, ७ धर्म, ८ अधर्म, ९ सस्कार, ये आत्माके गुण हैं तथा गुरुत्व, पृथिवी पाणीमें है, द्रव्यत्व पृथिवी, जल, अरु अग्निमें है, स्नेह जलमेंही है, वेग नाम सस्कार ये मूर्त्त द्रव्योंमें हैं, अरु शब्द आकाशका गुण है, तिनमें सख्या दिक सामान्य गुण रूपादिवत् द्रव्यस्वनाव होने करके, अरु परोपाधिसें गुणही नहीं है, क्योंकि जब गुण, द्रव्यसें पृथग् हो जावेंगे, तब द्रव्यके स्वरूपकी हानी हो जावेगी, "गुणपर्यायवद्द्रव्य" इस कहने करके गुण जो है, सो द्रव्यसें न्यारे नहीं हैं, द्रव्यके ग्रहणहीसे गुणका ग्रहणा न्या य है, परंतु पृथक् पदार्थ माननां अयुक्त है, अरु शब्द जो है, सो आका शका गुण नहीं है, क्योंकि यह तो पौजलिक है, अरु आकाश तो अ मूर्त्त है, अरु शेष जो वैशेषिकने कहा है सो प्रक्रियामात्र है, साधन दूष णोंका अग नहीं हैं

३ अरु कर्मनी गुणवत् पृथक् पदार्थ माननां अयुक्त है

४ अथ सामान्य दो प्रकारके है, एक पर, दूसरा अपर तिनमें पर सा मान्य महासत्ता नाम है, द्रव्यादि तीन पदार्थोंमें व्यापी हैं, अरु जो अ पर है, सो द्रव्यत्व गुणत्व कर्मत्वादिक है, तिनमें महासत्ताकों पृथक् पदा र्थ माननां अयुक्त है क्योंकि सत्तामें जो सत् यह प्रत्यय है, सो और

सक्ते हैं, तथा महदादि विकारके होनेमें प्रकृतिमें विषमता उत्पन्न करनेमें कोइभी कारण नही है,क्योकि प्रकृतिके विना और वस्तु, सांख्य कोइ मानते नहीं है,अरु आत्माको अकर्त्ता अकिंचित् कर मानते है,जे कर स्वभावसें वैषम्य मानेंगे, तव निर्हेतुकताकि आपत्ति होवेगी, क्योंकि जो कार्य कभी होवे,अरु कभी न होवे, वो हेतुके विना नहीं हो सक्ता है,अरु जो खरशृंगादि नित्य असत् हैं,तथा आकाशादिनित्य सत् हैं, सो हेतुसें नहीं होते है॥ उक्तंच॥ श्लोक॥ नित्यसत्त्वमसत्त्व वा, हेतोरन्यानपेक्षणात् ॥ अपेक्षा तोहि भावाना, कदाचित्त्वसभव ॥ १ ॥

तथा स्वभाव प्रकृतिसें भिन्न है? वा अभिन्न है? भिन्नतो नहीं क्योंकि प्रकृति विना सांख्योंने अपर कोइ वस्तु मानी नहीं है, जे कर कहोगे कि अभिन्न है, तब तो प्रकृति है "नतुस्वभाव" (स्वभाव नहीं है)

तथा एक औरभी वात है कि महत् अरु अहंकार ज्ञानसें भिन्न हम नहीं देखते हैं, सोइ दिखावते हैं, कि बुद्धि जो है सो अध्यवसायमात्र है, अरु अहंकार जो है सो अह सुखी, अह दु खी, ऐसें स्वरूप वाला है, इन दोनोको चिद्रूप होनेंसें आत्माका गुणत्व पणा है, परंतु जडरूप प्रकृतिका विकार नहीं

तथा यह जो तन्मात्रोंसें भूतोंकी उत्पत्ति मानते है, कि जैसें १ गंध तन्मात्रात् पृथिवी, २ रसतन्मात्रासें जल, ३ रूप तन्मात्रासें अग्नि, स्पर्श तन्मात्रासें वायु, ५ शब्दतन्मात्रासें आकाश, यहभी मानना युक्ति नहीं है, जे कर बाह्यभूतकी अपेक्षा करके कहते हो सो अयुक्त है, इन बाह्य पांच भूतोंके सदाही होनेसे उत्पत्ति नहीं "न कदाचिदनीदृश जगत् इति वचनात्" अर्थात् यह जगत् प्रवाह करकें अनादि कालसें ऐसाही चला आता है

जे कर कहोगेकि प्रति शरीरकी अपेक्षा हम कहते है,तिनमेंसू त्वचा,हाड, कठीन लक्षण पृथिवी है श्लेष्म,रुधिर द्रव लक्षण आप (जल)है पक्ति लक्षण अग्नि है, पानापान लक्षण वायु है, सुषिर अर्थात् पोलाड लक्षण आकाश है, यहभी कहना ठीक नहीं है, क्योकि तिनमेंभी कितने शरीरोंकी उत्पत्ति पिताका शुक्र, अरु माताके रुधिरसें होती है, तहां तन्मात्राओंकी गधभी नहीं है, अरु अदृष्ट वस्तुकों कारण कल्पनेमें अति प्रसग

वास्ते तथा समवायके एक होनेसे समवायीनी एकही होने चाहियें, अथवा समवायीयोंके अनेक होनेसे समवायनी अनेक रूप होना चाहियें, तथा यह जो समवाय पदार्थोंका समवायी संबध करता है, सो समवाय उन पदार्थोंके साथ अपणा संवध अपर समवायके योगसें करता है? किंवा आपही अपणा संबध करता है? जे कर कहोगे कि अपर समवायसे करता है, तब तो अनवस्थादूषण है अरु समवायनी दूसरा है नहीं, जे कर कहोगे कि आपही आपणा संबध करता है, तब तो गुण क्रियादिकनी इव्यसें स्वरूप करके तथा अविष्वगनाव संवध करकें संबंधी है, तब तो समवायनी कल्पना व्यर्थही है

ऐसे वैशेषिक मतमेंनी सम्यक् पदर्थोंका कथन आप्तोक्त नहीं, तथा नैयायिक वैशेषिक मतमे जो मोक्ष मानी है, सोनी प्रेक्षावानोको मानने योग्य नहीं है, क्योंकि जब आत्मा ज्ञानसे रहित होवे, एतावता जडरूप हो जावे, तब आत्माको मोक्ष मानते है, ऐसी मोक्षको कौन बुद्धिमान् उपादेय मानता है? क्योंकि ऐसा कौन बुद्धिमान् है, जो सर्व सुख और ज्ञानसें रहित पाषाण तुल्य आपणी आत्माकों करना चाहे? इसी वास्तेकिसीने वैशेषिकोंका उपहास्यनी करा है, सो कहते हैं ॥ श्लोक ॥ वर वृंदावने रम्ये, क्रोष्टृत्वमभिवांछति ॥ नतु वैशेषिकीं मुक्तिं, गौतमोगतुमिच्छति ॥ १ ॥ अस्यार्थ —स्वर्गके जो सुख हैं, सो सोपाधिक, सावधिक, परिमितआनंद रूप हैं, अरु मोक्ष जो है, सो नैरुपाधिक, नैरवधिक, अपरमितानंद ज्ञानसुख स्वरूप, विचक्षण पुरुष कहते है, जब मोक्ष होना पाषाणके तुल्य है, तब तो ऐसी मोक्षसें कुछ प्रयोजन नहीं इस्सेंतो संसारही अच्छा है कि जिस संसारमें दुःख करकें कलुषित सुख नोगनमें आता है, जरा विचार तो करो, कि थोडे सुखका नोगना अच्छा है? वा सर्व सुखोंका उच्छेद अच्छा है? इत्यादि विशेष चर्चा स्याद्वादमंजरीकी टीकासें जाननी इस वास्ते नैयायिक मत, अरु वैशेषिक मत उपादेय नहीं है ॥इति॥

अथ सांख्य मतका खमन लिखते है सांख्य मतका स्वरूप तो उपरलिखा है,सो जान लेना,सांख्यका मत ठीक नहीं हैं,क्योंकि परस्पर विरोधी सत्त्व, रजो, तम, गुणोंका प्रकृति रूपोंका गुणीके बिना एकत्र अवस्थान अर्थात् रहणा युक्त नहीं है, जैसें कृष्ण श्वेतादि गुण गुणी विना एकत्र नहीं रह

पूर्वपक्ष–सृष्टिसे पहिला आत्माकों दिदृक्षा भइ, तब तिस दिदृक्षाके व शसें प्रधानके साथ आपणा एकरूप देखने लगा, तब संसारी हो गया, अरु जब प्रकृतिका दुष्टपणा विचारमें आया, तब प्रकृतिसे वैराग्य हुआ, फेर प्रकृतिविषे दिदृक्षा नही तब संसारभी नहीं

उत्तरपक्ष–यहभी तुमारा कहना स्वकृतांत विरोध होनेसें अयुक्त है,सोई दिखाते है दिदृक्षा सो देखनेकी अभिलाषाका नाम है, सो अभिलाषा पूर्व देखे हूये पदार्थोमें तथा स्मरणसे होता है,अरु प्रकृति तो पूर्वे कदापि देखी नहीं है, तब कैसे तिस विषे स्मरण अभिलाषा होवे ? जे कर कहो गेकि अनादि वासनाके वशसे प्रकृतिमेंही स्मरण अभिलाषा है, सोभी अ सत् है, क्योंकि वासनाभी प्रकृतिका विकार होने करकें प्रकृतिके पहिलां नहीं थी, जे कर कहोगेकि वासना जो है, सो आत्माका स्वभावरूप है, तब तो आत्मस्वरूपवत् वासनाका कदापि अभाव नहीं होवेगा, अरु मोक्षभी कदापि नहि होवेगी,तब तो सांख्यका मतभी बालकोंका खेल जैसा हो गया ॥ इति सांख्यमत खंमन समाप्तम् ॥

अथ मीमांसक मतका खंमन लिख्यते ॥ इस मतका स्वरूप उपर लिख आये हैं, अरु वेदांतियोंके ब्रह्म (अद्वैत)का खंमन ईश्वर वादमें अच्छी तरेसें कर चुके है इस वास्ते यहां नहीं लिखा इति मीमांसक मत ॥

अथ जैमिनीयमतका खंमन लिखते है जैमिनीया ऐसें कहते है, कि जो "हिंसागाध्यात्' अर्थात् इंड्रियोंके रस वास्ते अथवा कुव्यसन करकें करियें सोइ हिंसा अधर्मका हेतु है, प्रमादके उदय करनेसें शौनिक लु ब्धकादिकोंकी तरें अरु वेदोमें जो हिंसा कही है, सो हिंसा नहीं है, किंतु धर्मका हेतु है, देवता, अतिथि, पितरोंके प्रीतिसंपादक हो नेसें तथाविध पूजा उपचारवत् अरु यह प्रीति संपादकत्व असिद्ध नहीं है, क्योंके कारीरी प्रभृति यज्ञोंके स्वसाध्य विषे वृष्ट्यादि फलोका जो अ व्यभिचारी पणा है, सो यज्ञ करनेसें जो देवता तृप्त होते है, वो वृष्ट्या दिकोंके हेतु हैं, ऐसेही "त्रिपुरार्णववर्णित छगल" अर्थात् बकरेके मां सका होम करनेसें परराष्ट्रका जो वश होनां है, सोभी उस मांसकी आहु तीयोंसे तृप्त हूये होय देवताओंकाही अनुभाव है, अरु अतिथि प्रीतिभी "मधुसपर्कसस्कारादिसमास्वादजा" प्रत्यक्षही दीख पडता है, अरु पित

दूषण है, अरु अमज, उन्निज्ज, अंकुरादिकोंकीभी उत्पत्ति अपरही वस्तुसें होती दीख पडती है, इस वास्ते महदहंकारादिकोंकी उत्पत्ति जो सांख्यों ने अपनी प्रक्रिया करके मानी है, सो युक्ति रहित मानी है, केवल अपने मतके रागसेंही यह मानना है अरु आत्माको अकर्त्ता माने है, तब तो कृतनाश अकृताभ्यागम दूषण है, अरु बंध मोक्षका अभाव है, अरु निर्गुण होनेसें आत्मा ज्ञानशून्य हो जावेगी, इस वास्ते यह सर्व पूर्वोक्त बालप्रलापमात्र है

अथ सांख्यमतकी मोक्ष विचारिये हैं, " प्रकृतिपुरुषांतरपरिज्ञानात् मुक्ति " अर्थात् प्रकृति पुरुषसें अन्य है, ऐसा जब ज्ञान होता है, तब मुक्ति होती है सोइ दिखाते है ॥ श्लोक ॥ शुद्धचैतन्यरूपोयं, पुरुष पुरुषार्थत ॥ प्रकृत्यतरमज्ञात्वा, मोहात्ससारमाश्रित ॥ १ ॥ भावार्थ - पुरुष जो है, सो परमार्थसें शुद्ध चैतन्यरूप है, अपणे आपकों प्रकृतिसें एकमेक समझता है, इस मोहसे ससारको आश्रित हो रहा है, तिस हेतुसें प्रकृतिसुखादि स्वभावसे जहां लगि विवेक करके न ग्रहण करेगा, तहां लगि मुक्ति नहीं अरु केवल ज्ञानके उदय होनेसें मुक्ति है, यहभी असत् है, क्योंकि आत्मा एकांत नित्य है, अरु सुखादिक जो हैं, सो उत्पाद व्यय स्वभाव वाले हैं, तब तो विरुद्ध धर्म ससर्गसें आत्मासेंतो प्रकृतिका भेद प्रतीतही है, तो फेर मुक्ति क्यों नहीं ?

अथ यही तो ससारी विचार नहीं करता है, इस वास्ते मुक्ति नहीं जे कर ऐसें कहोगे तब तो तुमारे कहनेसें कदापि मुक्ति नहीं होवेगी, ऐसा विवेकाध्यवसाय ससारीकों कदापि नहीं हो सक्ता है,सोइ दिखाते हैं

जहां लग ससारी है, तहां लग विवेक परिभावना करकें ससारी पणा दूर नहीं होता है, इस वास्ते विवेकाध्यवसायके अभावसें कदापि ससारसें छूटना नहीं है

एक औरभी बात है, कि इस सृष्टिके पहिला केवल आत्मा है, ऐसे तुम मानते हो, तब फेर आत्माकों ससार कहांसें लिपट गया ? जे कर कहोगेकि निर्मल आत्माको संसार लिपट जाता है, तब तो मोक्ष हूआ पीछें फेरभी ससार लिपट जायगा, तब तो मोक्षभी क्या हूइ, एक विर्मबना खमी हो गई

है? अरु जे कर हिंसा है,तो धर्मका हेतु क्यों कर हो सक्ती है? ॥श्लोक॥ श्रूयतां धर्मसर्वस्व, श्रुत्वा चैवावधार्यतां ॥ आत्मन प्रतिकूलानि, परेषा न समाचरेत् ॥१॥ इत्यादिक जे धर्म कहे हैं, तो हिंसा क्यों कर है? क्यों के माताजी है, अरु वध्याजी है, ऐसा कभी नहीं होता है

पूर्वपक्ष –हिंसा कारण है, अरु धर्म तिसका कार्य है

उत्तरपक्ष –यहजी तुमारा कहना असत् है, क्योंकि जो जिसके साथ अन्वय व्यतिरेक वाला होता है, सो तिसका कार्य होता है, जैसें मृत्पिण्डादिकोंका घटादिक कार्य है, तो कुछ धर्म हिंसादी करनेसें नहीं होता है, क्योंकि तप, दान, पढनादिकजी धर्मके कारण हैं

पूर्वपक्ष –हम सामान्य हिंसाकों धर्म नहीं कहते हैं, किंतु विशिष्ट हिंसाकों धर्म कहते हैं, सो विशिष्ट हिंसा वोही है, जो वेदोमें करनी कही है

उत्तरपक्ष –जे कर वेदकी हिंसा धर्मका हेतु है, तो क्या जो जीव यज्ञादिकोंमें मारे जाते हैं, वो मरते नहीं है? इस वास्ते धर्म है? अथवा क्या उनके मरणेमें उनको आर्त्तध्यानका अजाव है, इस वास्ते धर्म है? अथवा जो यज्ञादिकोमें मारे जाते हैं, वो मरके स्वर्गको जाते हैं? इस वास्ते धर्म है? इसमें आद्य पक्ष तो ठीक नहीं, क्योंकि प्राण त्यागते हूये तो वो जीव प्रत्यक्ष दीख पडते हैं तथा दूसरा पक्षजी असत् है, क्योंकि दूसरेके मनका ध्यान ङुर्लक्ष है, इस वास्ते आर्त्तध्यानका अजाव कहना, यहजी परमार्थ शून्य वचनमात्र है, आर्त्तध्यानका अजाव तो क्या होना था? वलिक हा ड खी है! है कोइ करुणारस जरा जो हमकू छुडावे? ऐसा अपनी जाषामें कहते हूये अरु अपनी जाषा करकें विरस आरराट करता हूआ वदन दैन्य,नयन तरलादिक लिंग देखनेसें स्पष्ट उन विचारोंके आर्त्तध्यान उपलब्ध होता है

पूर्वपक्ष –जैसें लोहेका गोला पानीमें डूबनें वालाजी है, तोजी तिसके सूक्ष्म पत्र कर दीये जाय तो जलके उपर तरेंगे, परंतु डूबेंगे नहीं, तथा विष जो है सो मारणे वालाजी है, तोजी मन्त्रो करकें सस्कार करा हूआ गुण करता है, तथा जैसे अग्नि दाहक स्वजाव वालाजी है, तोजी सत्य शीलादिकके प्रजावसें दाह नहीं करता है ऐसेंही वेद मन्त्रादिकों करकें सस्कार करी हुइ जो हिंसा सो दोषका कारण नहीं, अरु वैदिकी हि

रोके ताइ जो श्राद्ध करते है, उस करके पितर तृप्त हुवे होयें, स्वसंता नकी वृद्धि प्रत्यक्षही करते दीखते है, अरु इस बातमे आगमभी प्रमाण देता है, आगममें देव प्रीत्यर्थं अश्वमेध, नरमेध, गोमेधादिक करणे कहे है,अरु अतिथि विषय "महोक्ष वा महाज वा,श्रोत्रियाय प्रकल्पयेदिति" ऐसा कहा है, अरु पितरोंकी प्रीति वास्ते यह श्लोक है ॥ श्लोक ॥ द्वौ मासौ मत्स्यमांसेन,त्रीन् मासान् हारिणेन तु ॥ औरभ्रेणाथ चतुर , शा कुनेनेह पच तु ॥ १ ॥ षण्मास छागमांसेन, पार्षतेनेह सप्त वै ॥ अष्टावे णस्य मांसेन, रौरवेण नवैव तु ॥ २ ॥ दशमासास्तु तृप्यति, वराहमहि षामिषै ॥ शशकूर्मयोर्म्मांसेन, मासानेकादशैव तु ॥ ३ ॥ सवत्सर तु गव्येन, पयसा पायसेन तु ॥ वाध्रीणेशस्य मांसेन, तृप्तिर्द्वादशवार्षिकी ॥ ॥ ४ ॥ यह श्लोक स्मृतिके है, इनका अर्थ कहते हैं

जे कर पितरोंको मत्स्यका मांस देवे,तो पितर दो मास लग तृप्त रहते हैं, जे कर हरिणका मांस पितरोंकों देवे, तो पितर तीन मास लग तृप्त रहते हैं जे कर मीढेका मास पितरोंको देवे, तब चार मास लग पितर तृप्त रहते हैं, जे कर जगली कूकडका मास पितरोंकों देवे, तो पितर पांच मास तृप्त रहते हैं ॥ १ ॥ जे कर बकरेका मांस देवे, तो पितर छमास लग तृप्त रह ते हैं, जे कर छपतबिंडु करकें युक्त जो हरिण होवे, उसकों पार्षत कहते हैं, तिसका मांस जो पितरोंकों देवे, तो पितर सात मास लग तृप्त रहते हैं, जे कर एण मृगका मांस देवे, तो आठ मास लग पितर, तृप्त रहते है, जे कर बडे काले मृगका मांस देवें, तो नव मास लग पितर तृप्त रहते हैं, जे कर सूवर अरु महिषका मांस देवे, तो दश मास लग पितर तृप्त रहते हैं, जे कर शश अरु कछु,इन दोनोंके मांस देवे, तो अग्यारह मास ल ग पितर तृप्त रहते हैं, जे कर गोका दूध अथवा खीर देवे, तो बारह मा स लग पितर तृप्त रहते हैं, तथा वाध्रीण कहते हैं जो अति बूढा बकरा होवे तिसका मांस देवें, तो बार वर्ष लग पितर तृप्त रहते हैं, यह मीमां सक मानते हैं

अब इसका खंडन लिखते हैं कि हे मीमांसक ! वेदोमें जो हिंसा कही है, सो धर्मका हेतु कदापि नहीं हो सक्ती है, इस तुमारे कहनेमें प्रगट स्ववचनविरोध है, तथाहि जे कर धर्मका हेतु है, तब तो हिंसा क्यों कर

सेही जिनप्रतिमा देखनेसेंनी श्रीजिनेश्वर देवके स्वरूपका ज्ञान होता है,जे कर कहोगेकि प्रतिमा तो कारीगरने पाषाणकी बनाइ है, इससें क्या ज्ञान होता है? तो हम पूछते है कि वेद, कुरान, इंजील, प्रमुख पुस्तक लिखारीयोंने स्याही, और कागजोंके बनाये है, इनसें क्या ज्ञान होता है? जे कर कहोगेकि ज्ञान तो हमारी समझसें होता है, अक्षरोंकी स्थापना तो हमारे ज्ञानका निमित्त है, तैसेही जिनेश्वरदेवका ज्ञान तो हमारी समझ से होता है परंतु उस स्वरूपका निमित्त प्रतिमा है. क्योंकि जो बुद्धिमान् पुरुष, किसी वस्तुका नकशा नहीं देखेगा, अर्थात् चित्र नहीं देखेगा, वो कभी उस वस्तुका स्वरूप नहीं जान सकेगा? इस वास्ते जो बुद्धिमान् है, वो अवश्य स्थापना मानता है

जे कर कहोगेकि परमेश्वर तो निराकार, ज्योति स्वरूप,सर्व व्यापक है, तिसकी मूर्त्ति क्योंकर बन सक्ती है?

उत्तर –यह तुमारा कहनां बडे उपहास्यका कारण है, क्योंकि जब तुमने परमेश्वरका रूप आकार (मूर्त्ति) नहीं मानी, तब तो वेद, वा इंजील, वा कुरान, इनको परमेश्वरका वचन माननां क्यों कर सत्य हो सकेगा? विना मुखके साक्षर शब्द कदापि नहीं हो सक्ता है

जे कर कहोगेकि ईश्वर, विनाही मुखके शब्द कर सक्ता है, तो इस बात कहेनेमें कोइ प्रमाण नही इस वास्ते जो साक्षर शब्द है, सो विना मुखके नहीं, अरु शरीरके विना, मुख नहीं हो सक्ता है, इस वास्ते जो कोइ वादी किसी पुस्तकको ईश्वरका वचन मानेगा, वो जरुर ईश्वरका मुख और शरीरभी मानेगा, अरु जब शरीर माना, तब भगवान्की प्रतिमाभी जरुर माननी पडेगी, जब प्रतिमा सिद्ध हो गइ, तब मंदिरभी जरुर बनानां पडेगा, इस वास्ते जिनमंदिरका बनानां जो है, सो आवश्यक है, अरु जो बनानें वाला है, सो यत्न पूर्वक बनाता है, अरु पृथिवी कायादिक के जो जीव हैं, सो अस्पष्ट चैतन्य हैं उनकी हिंसामें अल्प पाप अरु बहुत निर्जरा है, अरु तुमारे पक्षमें तो श्रुति, स्मृति, पुराण, इतिहास प्रमुखोंमें यम नियमादिकों करकेभी स्वर्गकों होनां कहा है, तो फेर कृपण, दीन, अनाथ, ऐसें पंचेंद्रिय जीवोंका वध काहेकों यज्ञमें करते हो? इस्सें यही सिद्ध होता है कि जो तुम निरपराध, कृपण, दीन, अनाथ,

सा निंदनीय कनी नहीं है, क्योंकि तिस हिंसाके करने वाले याज्ञिक ब्राह्मणोंको जगत्में पूजनिक देखते है

उत्तरपक्ष—यहनी तुमारा कहनां असत् है, क्योंकि जितने दृष्टांत तुमने कहे हैं, सो सर्व वैषम्य है इस वास्ते सिद्धि कुछनी नहीं कर सके हैं, लोहेका जो पिम, पत्रादि रूप होनेसें जलके उपरि तरता है, सो परिणामांतर होनेसे तरता है, परंतु वेद मंत्रोसें सस्कार करके जब पशुकों मारते है, तब उसमें क्या परिणामांतर होता है? क्या उस परिणामांतरसें उन पशुओकों मारते डुःख नहीं होता है? डुःख करकें तो वे प्रगट आरराट शब्द करते हैं, तो फेर लोह पत्रका दृष्टांत कैसें समीचीन हो सक्ता है?

पूर्वपक्ष—जो पशु यज्ञमें मारे जाते हैं, वो सर्व देवता हो जाते है, यह यज्ञ करनेमें परोपकार है

उत्तरपक्ष—इस बातमें कौनसा प्रमाण है? तिसमें प्रत्यक्ष प्रमाण तो नहीं है, क्योंकि प्रत्यक्ष तो इंद्रिय संबध वर्त्तमान वस्तुकाही ग्राहक है, "संबधोवर्त्तमान च, गृह्यते चक्षुरादिनेति वचनात्" अरु अनुमाननी नहीं है, क्योंकि तत्प्रतिबद्धलिंग कोइनी नहीं दीखता है, अरु आगम प्रमाणनी नहीं क्योंकि आगम तो ऊगडेका घर है, इस वास्ते सिद्ध हूआ नहीं है तथा अर्थापत्ति अरु अनुमान यह दोनो अनुमानकेही अंतर्गत है, तो अनुमानके खमनेसें यहनी दोनु खमन हो गये

पूर्वपक्ष—जैसें तुम जिनमंदिर बनाते हूये पृथिवीकायादि जीवोंकी हिंसाको परिणाम विशेष करकें पुण्यके तांइ कल्पते हो, ऐसें हमनी यज्ञमें जो हिंसा करते हैं, सो पुण्यके वास्ते है, क्योंकि वेदोक्त विधि विधान रूप परिणाम विशेष इहांनी निःसंदेह होनेसें पुण्य क्यों कर नहीं होता?

उत्तरपक्ष—परिणाम विशेषनी वेही पुण्यका कारण होते हैं, जहां और कोइ उपाय न होवे, अरु यत्नसें प्रवृत्त होवे, ऐसी प्रवृत्ति जिनमंदिरमें हो सक्ती है, क्योंकि जिनमंदिरके विना श्रीनगवान्की प्रतिमा रहती नहीं जहां प्रतिमा रहेगी उसीका नाम जिनमंदिर है, जे कर कहोगेकि जिनप्रतिमा पूजनेसे क्या लान है? तो हम तुमकू पूछते हैं कि जो पुस्तकमें ककारादि अक्षर लिखते हो, इनके लिखनेसें क्या लान है? जे कर कहोगे कि ककारादि अक्षरोंकी स्थापना देखनेसें वस्तुका ज्ञान होता है, तो तै

पूर्वपक्ष – हम नि केवल प्रदान मात्रही पशुवध क्रियाका फल नहीं करते है, किंतु नूत्यादिक अर्थात् लक्ष्मी आदिन्नी होती है, यदाह श्रुति " श्वेतवायव्यामजमालान्नेत् नूतिकामइत्यादि " नावार्थ –श्वेतवर्णका जिसका वायु देवता स्वामी है अैसे बकरेकों आलान्नेत् हिंसेत् अर्थात् मारे कौन मारे ? लक्ष्मीका कामी मारे

उत्तरपक्ष –यहन्नी तुमारा कहनां व्यन्निचार पिशाच करी ग्रस्त होनेसें अप्रामाणिक है,क्योंकि नूति जो है,सो अन्य उपाय करकेंनी साध्यमान है

पूर्वपक्ष – तहां यज्ञमें जो ढागादिक मारे जाते हैं वे मरके देवगतिकों प्राप्त होते हैं, यह यज्ञ करनेमें उन जीवों उपरि उपकार हैं

उत्तरपक्ष –यहन्नी तुमारा कहनां प्रमाणके अन्नावसें वचन मात्र है, क्योंकि यज्ञमें मारे गये पशुयोंमेंसू सजतिके लान होनेसे मुदित मन हो करकें कोइन्नी पशु पीडा आ करकें अपणे स्वर्गके सुखोंका निरूपण नहीं करता है

पूर्वपक्ष –इस कहनेमें आगम प्रमाण है ॥ यथा ॥ औषध्य पशवोवृक्षा,स्तिर्यंच पक्षिणस्तथा ॥ यज्ञार्थं निधन प्राप्ता ,प्राप्नुवन्त्युच्छ्रितं पुनरित्यादि ॥ नावार्थ –औषधियो, अजादिक पशु, किंजलकादि पक्षी, जो ये यज्ञमें मारे जाते हैं, वे फेर उच्छ्रितं अर्थात् उन्नतिकों प्राप्त होते हैं

उत्तरपक्ष –यहन्नी तुमारा कहनां ठीक नहीं तुमारा आगम पौरुषेय अपौरुषेय विकल्पों करके हम आगें खमन करेंगे अरु श्रोत्रविधि करकें पशुओंके मारनेंसें जे कर स्वर्गप्राप्ति होती होवे, तव तो कसाइ (खटीक) प्रमुख न्नी स्वर्गवासी हो जावेंगे ॥ तथा च पठति पारमर्षा ॥ यूपं छित्वा पशून् हत्वा, कृत्वा रुधिरकर्दम ॥ यद्येव गम्यते स्वर्गे, नरके केन गम्यते ॥ १ ॥ एक औरन्नी बात है, जे कर अपरिचित, अस्पष्ट चैतन्य, अनुपकारी पशुओंके मारनेसें त्रिदिव पदवी प्राप्त होवे, तदा परिचित, स्पष्ट चैतन्य, परमोपकारी, माता पितादिकोंके मारनेंसें याज्ञिकोंकों अधिकतर पदकी प्राप्ति होवेगी ? यहन्नी करनां चाहियें

पूर्वपक्ष –" अचिंत्योहि मणिमत्रौपधीनां प्रन्नाव इति वचना त् " इस वास्ते वैदिक मत्रोंकी अचिंत्य शक्ति होनेसें उन मत्रों करकें सस्कार करा हूआ पशुके मारनेसें अवश्य स्वर्ग प्राप्ति होती है

जीवोंकों यज्ञादिकोंमें मारते हो, तिस्से सपूर्ण पुण्यका नाश करके अव श्य दुर्गतिमें जाओगे, शुजपरिणामका होनां तुमको बहुत डुर्लन है

जे कर कहोगेकि जिनमंदिर बनानेमेंनी हिंसा होती है, इस वास्ते जिनमदिर बनानेमेंनी पुण्य नहीं है

उत्तर —यह तुमारा कहनां अयुक्त है, क्योंकि जिनमदिर, जिनप्रतिमा के देखनेंसे उनके दर्शनसे जगवान्के गुणानुराग करके कितनेक जव्यजी वोंकों बोधिलाज होता है, अरु पूजातिशय देखनेंसे मन प्रसाद होता है, तिस मन प्रसादसें समाधि होती है, पीछें क्रम करकें नि श्रेयस अर्था त् मोक्षकी प्राप्ति होती है ॥ तथा च जगवान् पचलिंगीकार ॥ पुढवाइया ण जइविहु, होइ विणासो जिणालयाहि तो ॥ तविसयावि सुदिछिस्स, नि यमओ अछि अणुकपा ॥ १ ॥ एआहि तो बुद्धा, विरिया रक्कति जेण पु ढवाइ ॥ इत्तो निवाण गया, अवाहया आजव मणतं ॥ २ ॥ रोगसिरावे हो इव, सुविक्ज किरियाव सुप्पउत्ताउ ॥ परिणाम सुदरच्चिय, चिठ्ठासे वाह जोगेवित्ति ॥ ३ ॥ इनका जावार्थ लिखते हैं यद्यपि जिनमदिर बनानेमें पृथिवीआदिक जीवोंकी हिसा होती है, तोजी सम्यक् दृष्टिकी तिन जी वों उपर निश्चयही अनुकपा है ॥ १ ॥ इनकी हिसासें निवर्त्त हो कर ज्ञानी निर्वाणकों प्राप्त होये हैं कैसें निर्वाणकों ? अव्याहत, अनत काल लगि ॥ २ ॥ जैसें रोगीकी नाडीकों बडे यत्नसें वैद्य वींधता है उस वैद्यके अैसे परिणाम अछे हैं कि कदाचित वो रोगी मरजी जावे, तोजी वैद्यकों पाप नहीं, तैसेही जिनमदिरके बनानेमें यत्नपूर्वक प्रवर्त्तमान पुरुषोकों उ नजीवोंके उपर अनुकपाही है, अरु वेदके कहे मुजब बध करनेमें किंचित् मात्रजी पुण्य हम नहीं देखते हैं

पूर्वपक्ष —ब्राह्मणोंके तांइ पुरोमाशादि प्रदान करनेसें पुण्यानुबधी गुण होता है

उत्तरपक्ष —यहजी तुमारा कहनां ठीक नहीं क्योंकि पवित्र सुवर्णादि प्रदान मात्रसेंजी पुण्योपार्जनेका सजव होता है, अरु जो कृपण, दीन, अनाथ, पशु गणकों मारणां, अरु तिनके मांसका दान करनां, यह केवल तुमारी निर्दयता अरु मांस लोलुपताहीका चिन्ह है

कि सम्यक् दर्शन ज्ञान संपन्न अर्चिमार्गप्रतिपन्न वेदांतवादीयोनेंनी निंदी है " तथा च तत्त्वदर्शिन पठंति ॥ श्लोक ॥ देवोपहारव्याजेन, यज्ञव्याजेन वाथवा ॥ घ्नति जंतून् गतघृणा, घोरा ते यांति दुर्गतिं ॥ १ ॥ वेदांतिका अप्याहु ॥ अंधे तमसि मज्जाम, पशुनिर्ये यजामहे ॥ हिंसा नाम नवेद्धर्मो, न नूतो न नविष्यति ॥१॥ "तथा अग्निर्मामेतस्मात् हिंसाकृतादेनसोमुंचतु ढादसत्वान्मोचयतु इत्यर्थ " व्यासेनाप्युक्त ॥ ज्ञानपालिपरिक्षिते, ब्रह्मचर्यदयानसि ॥ स्नात्वातिविमले तीर्थे, पापपंकापहारिणि ॥ १ ॥ ध्यानाग्नौ जीवकुंमस्थे, दममारुतदीपिते ॥ असत्कर्मसमिक्षेपै, रग्निहोत्रं कुरुत्तम ॥२॥ कपायपशुनिर्डुष्टै, धर्मकामार्थनाशकै ॥ शममंत्रहुतैर्यज्ञ, विधेहि विहितं बुधै ॥ ३ ॥ प्राणिघातात्तु यो धर्म, मीहते मूढमानस ॥ स वांछति सुधावृष्टिं, कृष्णाहिमुखकोटरात् ॥ ४ ॥ इत्यादि

अरु जो यज्ञ करने वालोंकों पूजनिक पणा तुम कहते हो, सोनी असार है, क्योंकि अबुद्ध जनही उनकों पूजते हैं, नतु विविक्त बुद्धिमान् अरु मूर्खोंका जो पूजना है, सो प्रामाणिक नहि, क्योंकि मूर्ख तो कुत्ते औ गद्धेकोंनी पूजते हैं

अरु जो तुमने कहा था कि देवता, अतिथि, पितृ प्रीति संपादक होनेसें वेद विहिता हिंसा, दोषके तांई नहीं, यहनी जूठ है, क्योंकि देवताओंके संकल्प मात्रसेंही अनिमत आहारके रसका स्वाद, प्राप्त हो जाता है, अरु देवताओंका शरीर वैक्रियरूप है, सो तुमारी जुगुप्सित पशुमांसादि आहुतिके लेनेकों उनकी इछाही नहीं हो सक्ती है, क्योंकि औदारिक शरीर वालेही तिन मांसादिकोंके ग्राहक है, जे कर देवताओंकोनी कवल आहारी मानोगे, तब तो देवताओंका शरीर तुमने मंत्रमय माना है, तिसके साथ विरोध होवेगा, अरु अन्युपगमकी बाधा है, देवताओंका शरीर मंत्रमय तुमारे मतमें असिद्ध नहीं है, " चतुर्थ्यंतं पदमेव देवता इति जैमिनीय वचनप्रामाण्यात् ॥ तथा च ॥ मृगेंद्र शब्देतरत्वे युगपन्निन्नदेशेषु यष्टृषु नसा प्रयाति सांनिध्य मूर्त्तत्वादस्मादिवदिति "

तथा जिस वस्तुकी आहुति देवताओंकों देते हैं, वोतो नस्मीनावमात्र हो जाती है, तो फेर देवता क्या उस नस्म अर्थात् राखकों खाते हैं? इस वास्ते तुमारा कहना प्रलापमात्र है.

उत्तरपक्ष –यहनी कहना व्यभिचारी है क्योंकि इह लोकमें विवाह, गर्भाधान, जातकर्मादिकोंके विषे तिन मंत्रोंका व्यभिचार देखनेमें आता है, तो अदृष्ट स्वर्गादिकोमेंनी तिनोके व्यभिचारका अनुमान करते है क्यों कि वेदोक्त मंत्रो करिकें संस्कार करे हूये विवाहसेंनी अनंतरही स्त्री, विधवा, अल्पायुष्या, दारिद्र्यादि उपद्रव करकें विधुर होते हूये, देखनेमें आते हैं, अरु वेद मंत्रोके संस्कार विनानी कितनेक विवाह करने वाले सुखी, धनी, आदिक दीखते है

पूर्वपक्ष –जिस विवाहादिकोमें विधवादि हो जाती है तहा क्रियाकी वैगुण्यतासे विसंवाद होता है

उत्तरपक्ष –इस तुमारे कहनेमें यह संशय कनी दूर नहीं होवेगा, क्या तहां क्रियाकी वैगुण्यता विसंवादका हेतु है? किंवा वेदमंत्रोकी असमर्थता विसंवादका हेतु है ?

पूर्वपक्ष –जैसे तुमारे मतमें "आरोग्ग बोहिलाभं समाहिवरमुत्तमं दिंतु" इत्यादिक वचनोंका कालांतरमेंही फल चाहते (वाछते) हैं, ऐसें हमारे अभिमत वेद वचनोंकानी इस लोकमें फल नहीं कल्पना करते हैं, किंतु लोकांतरमें फल होता है इस वास्ते विवाहादिकका उपालंभावकाश नहीं

उत्तरपक्ष –अहो वचन वैचित्री! जैसें वर्त्तमान जन्मविषे विवाहादिकोंमें प्रयुक्त मंत्र, संस्कारों करकें आगम जन्ममें तिसका फल है, ऐसे ही द्वितीयादि जन्ममेंनी विवाहादिकोंके पुण्य हेतु माननेसें अनंत नवोंका अनुसंधान होवेगा, ऐसें तो कदापि संसारकी समाप्ति नहीं होवेगी, तब तो किसीकोंनी मोक्षप्राप्ति नहीं इस्से यही सिद्ध हूआ जो वेदही अपर्यवसित संसार वल्लरीका मूल (कंद) है, अरु आरोग्यादि प्रार्थना जो है, सो असत्य अमृषा नाषा है, परिणाम विशुद्धिका कारण होनेसें दोषके वास्ते नहीं, क्योंकि तहां नाव आरोग्यादिककीही विवक्षा है, अरु वो जो आरोग्यपणा है, सो चातुर्गतिक संसार लक्षण नावरोग परिक्षय रूप होनेसे उत्तम फल है, तिस विषयक जो प्रार्थना है, वो कैसें विवेकवानोंकों आदरणीय नहीं? ऐसेंनी मत कहना जो परिणाम शुद्धिसें तिस फलकी प्राप्ति नहीं, क्योंकि सर्व वादीयोंके नावशुद्धिसें फल पानेमें विवाद नहीं ऐसेंनी मत कहना जो वेदविहित हिंसा बुरी नहीं, क्यों

क्योंकि कितनेक क्षुद्र देवताकों तैसेंही प्रीति है, तहांनी वे दुष्ट देव सो अपनी पूजा देखके राजी होते हैं, परंतु मलिन (बीजत्स) मासके खानेसें नहीं राजी होते जे कर होम करी हूइ वस्तुकों खाते है, तब तो निंबपत्र, कडुवा तेल, आरनाल, धूमाशादिनी हूयमान इव्यनी तिनका नोजन हो जावेगा, वाह क्याही तुमारे देवता सुंदर नोजन करते हैं!

अरु अतिथिकी जो प्रीति है, सो सत्कार संपन्न पक्वान्नादिक करकेंनी हो सकी है, तो फेर तिनके अर्थे महोक्ष महाजादिकोंका कल्पनां सोनि केवल तुमारी निर्विवेकताकों कहता है

अरु श्राद्धादिकोंके करनेसें पितरोकी जो प्रीति है, सोनी अनेकांतिक है, क्योंकी कितनेक श्राद्ध नहींनी करते हैं, तोनी तिनकी संतानवृद्धि देखते हैं, गर्त्तशूकरादिके जैसे वृद्धि है तिस वास्ते श्राद्धादिकोंका जो करणा है, सो मुग्ध जनोकों विप्रतारणमात्रही फल है जो पितर लोकांतरमें प्राप्त हूये हैं, सो अपणे सुकृत दुकृत कर्मोंके अनुसार सुर नारकादि गतियोमें सुख दुःख नोग रहे हैं, तो फेर पुत्रादिकोंके दीयें हूये पिंमोको क्योंकर नोगनेकी इछा कर सक्ते हैं? "तथा च युष्मयूथिन पठति ॥ श्लोक ॥ मृतानामपि जतूनां, श्राद्ध चेत्तृप्तिकारणं ॥ तं निर्वाणप्रदीपस्य, स्नेह सवर्द्धयेछिखामिति ॥

तथा श्राद्ध करनेसें पुण्य क्यो कर उस पितरोके पास चला जाता है? क्योंकि वो पुण्य तो औरने करा है, अरु पुण्य जो है, सो आप जडरूप है, औ पगोंसें रहित है जे कर कहोगेकि उद्देशतो पितरोहीका है, परंतु पुण्य, श्राद्ध करनेवाले पुत्रादिकोंकों होता है, यहनी कहनां ठीक नहीं पुत्रादिकोंकों पुण्य नहीं होता है, पुत्रादिकोंके मनमें यह वासना नहीं जा हम पुण्य करते हैं, इसका फल हमकों मिलेगा, तो विना पुण्यकी नावनासें पुण्य फल नहीं होता है, इस हेतुसें नतो पितरोंकों, अरु न पुत्रादिकोंकों श्राद्ध करनेका फल है, किंतु विचमेंही त्रिशङ्कुके दृष्टांत करिकें विलीन हो गया

अरु पापानुबंधी जो पुण्य है, वो तत्त्वसें पाप रूपही है, जे कर कहोगे कि ब्राह्मण जो कुछ खाते हैं, वो उनकों मिलता है, तो इस कहनेकी तुमकोंही सत्यता प्रतीत होती होवेगी, ब्राह्मणोहीका मोटा उदर दिखला

तथा एक औरजी बात है, यो यह त्रेताग्नि है, सो तेतीस कोटि देवताका मुख है, "अग्निमुखा वै देवा इति श्रुते" तब तो उत्तम, मध्यम, अधम, सर्व देवता एकही मुख करकें खाने वाले सिद्ध हूये अरु सर्व आपसमें जूठ खाने वाले बन गये, तब तो तुरकोसेजी अधिक हो गये क्यो कि तुरकजी एक पात्रमें एकठे खाते है, परतु एक मुख करकें सर्व नहीं खाते है

एक औरजी दूषण है, एक शरीरमें मुख बहुत हैं, यह बात तो हम आगेजी सुनते थे, परंतु अनेक शरीरोका एक मुख, यह ता बडा आश्चर्य है. जब सर्व देवताओका एक मुख माना, तब तो किसी पुरुषने जब एक देवताकी पूजादि करकें आराध्या, अरु अन्य देवताओकी निंदादि करकें विराध्या, तब तो एक मुख करकें युगपत् अनुग्रह, निग्रह, वाक्यके उच्चारणमें संकरका प्रसग होवेगा

तथा एक औरजी बात है कि, मुख जो है सो देहका नवमा जाग है, तो जब उन देवताओंका मुखही दाहात्मक है, तब एक एक देवताका शरीर दाहात्मक होनेसें तीनो जवनही जस्मीजूत हो जाने चाहियें ? इत्यलमतिचर्चया ॥

अरु जो कारीरी यज्ञादिकोमें वृष्ट्यादि फलका अव्यजिचार है, तिस फलमें आहुति करकें प्रीणीत देवताका अनुग्रह जो तुम कहते हो सोजी अनेकांतिक है किसी जगे व्यजिचारजी देखनेमें आता है, अरु जहां व्यजिचार नहीं, तहांजी आहुतिके जोजन करनेसे अनुग्रह नहीं किंतु वो देवता विशेष अतिशय ज्ञानी हैं, स्वउद्देश्य पूजोपचारकों देख करकें, अपणे स्थानमेंही स्थित हूये थके पूजा करनें वाले प्रति प्रसन्न हो कर उसका कार्य, अपणी इच्छासें कर देता है, अनुपयोग करकें अनजानता अथवा जानता थकाजी पूजकके अजाग्य करकें कार्य नहींजी करता ? क्योंकि इव्य, क्षेत्र, काल, जावादि सहकारियों करकें कार्यका होनां दीख पडता है, अरु वो जो पूजा उपचार है, सो नि केवल पशुओंहीके मारनेसें नहीं हो सक्ती, दूसरी तरेंसेंजी हो सक्ती है, तो फेर पाप एक फल रूप शौनिकवृत्ति करनेसें क्या है ?

अरु जो छगल अर्थात् बकरेके मांस होमनेसे पराराष्ट्र वश करने वाली सिद्धादेवीके परितोष होनेका जो अनुमान है, तो इसमें क्या आश्चर्य है ?

क्योंकि कितनेक क्षुद्र देवताकों तैसेंही प्रीति है, तद्यानी वें दुष्ट देव सो अपनी पूजा देखके राजी होते हैं, परंतु मलिन (बीभत्स) मासके खानेसें नहीं राजी होते जे कर होम करी हूइ वस्तुको खाते हैं, तब तो निंबपत्र, कडुवा तेल, आरनाल, धूमांशादिभी हूयमान द्रव्यभी तिनका भोजन हो जावेगा, वाह् क्याही तुमारे देवता सुंदर भोजन करते है।

अरु अतिथिकी जो प्रीति है, सो संस्कार संपन्न पक्वान्नादिक करकेंभी हो सक्ती है, तो फेर तिनके अर्थें महोक्ष महाजादिकोका कल्पना सो नि केवल तुमारी निर्विवेकताकों कहता है

अरु श्राद्धादिकोंके करनेसें पितरोकी जो प्रीति है, सोभी अनेकांतिक है, क्योंकी कितनेक श्राद्ध नहींभी करते हैं, तोभी तिनकी संतानवृद्धि देखते हैं, गर्त्तशूकरादिके जैसें वृद्धि है तिस वास्ते श्राद्धादिकोंका जो करणा है, सो मुग्ध जनोकों विप्रतारणमात्रही फल है जो पितर लोकांतरमें प्राप्त हूये हैं, सो अपणे सुकृत दुःकृत कर्मोंके अनुसार सुर नारकादि गतियोमें सुख दुःख भोग रहे हैं, तो फेर पुत्रादिकोंके दीयें हूये पिंमोको क्योंकर भोगनेकी इच्छा कर सक्ते हैं? "तथा च युष्मयूथि न पठति ॥ श्लोक ॥ मृतानामपि जंतूनां, श्राद्धं चेत्तृप्तिकारणं ॥ तं निर्वाणप्रदीपस्य, स्नेहः संवर्द्धयेच्छिखामिति ॥

तथा श्राद्ध करनेसें पुण्य क्यो कर उस पितरोंके पास चला जाता है? क्योंकि वो पुण्य तो औरने करा है, अरु पुण्य जो है, सो आप जडरूप है, औ पगोंसें रहित है जे कर कहोगेकि उद्देशतो पितरोहीका है, परंतु पुण्य, श्राद्ध करनेवाले पुत्रादिकोंकों होता है, यहभी कहनां ठीक नहीं पुत्रादिकोंकों पुण्य नहीं होता है, पुत्रादिकोंके मनमें यह वासना नहीं जो हम पुण्य करते हैं, इसका फल हमको मिलेगा, तो विना पुण्यकी भावनासें पुण्य फल नहीं होता है, इस हेतुसें नतो पितरोकों, अरु न पुत्रादिकोकों श्राद्ध करनेका फल है, किंतु बिचमेंही त्रिशंकुके दृष्टांत करिकें विलीन हो गया

अरु पापानुबंधी जो पुण्य है, वो तत्त्वसें पाप रूपही है, जे कर कहोगे कि ब्राह्मण जो कुछ खाते हैं, वो उनकों मिलता है, तो इस कहनेकी तुमकोंही सत्यता प्रतीत होती होवेगी, ब्राह्मणोहीका मोटा उदर दिखला

इ देता है, परतु उनके पेटमे प्रवेश करके पितर खाते हूये कदापि नहीं दिखते है, नोजनावसरमें ब्राह्मणोके उदरम प्रवेश करते हूये पितरोका कोइन्नी लिंग हम नहीं देखते है,केवल ब्राह्मणोंहीको तृप्त होते देखते हैं

अरु जो तुमने कहाथाकि हमारे पास आगम प्रमाण है, सो तुमारा आगम पौरुपेय है ? वा अपौरुपेय है ? जे कर कहोगेकि पौरुपेय है, तो क्या सर्वज्ञका करा हूआ है ? वा असर्वज्ञका करा हूआ है ? जे कर आद्य पक्ष मानोगे, तव तो तुमारे मतकी व्याहति होवेगी, क्योंकि तुमारा यह सिद्धांत है, " अतींद्रियाणामर्थाना, साक्षाद्दृष्टा न विद्यते ॥ नित्येन्यो वेदवाक्येन्यो, यथार्थत्वविनिश्चय ॥ १ ॥ दूसरे पक्षमें दूपण वाले करता के करे हूये शास्त्रका विश्वास नहीं होता है, जे कर कहोगेकि अपौरुपेय है, तव तो सन्नवही नहीं हो सक्ता है, स्वरूप निराकरणेसें तुरगशृगवत् पुरुपक्रियानुगत रूप इसका है पुरुप क्रियाके विना यह क्योंकर हो सका है ? इस वास्ते जो साक्षर वचन है, सो पौरुपेयही है, कुमारसन्नवादि वचनवत् वचनात्मकही वेद है, " तथा चाहु ॥ ताल्वादिजन्मा ननु वर्ण वर्गो, वर्णात्मको वेद इति स्फुट च ॥ पुसश्च ताल्वादिरत कथ स्या,दपौरुपेयोयमिति प्रतीति ॥१॥ इति श्रुतिकों अपौरपेयत्व " अगीकार करकेन्नी तुमने तदर्थव्याख्यान पौरुपेयही अगीकार करी है, अन्यथा " अग्निहोत्र जुहूयात् स्वर्गकाम " इसका अर्थ " श्वमांस नक्षयेत् इति" नियामकके अनावसें असें क्यों न हो जावे ? तिस वास्ते यही अच्छा है जो शास्त्रको पौरुपेय माननां होवे तुमारे हठसें अपौरुपेय वेद माने, तोन्नी तिसकों प्रमाणता नहीं, क्योंकि प्रमाणता जो है, सो आप्त पुरुपाधीन है, जव वेद प्रमाण न हूये, तव तिन वेदोंका कह्या हूआ तथा वेदानुसारी स्मृतिन्नी प्रमाणनूत नहीं, हिंसात्मक याग श्राद्धादिविधि प्रामाण्य विधुरही है

पूर्वपक्ष –जो यह कहा है कि "न हिंस्यात् सर्वनूतानीत्यादि" करकें जो हिंसाका निषेध करा है, सो औत्सर्गिक मार्ग है, अर्थात् सामान्य विधि है, अरु वेदविहिता जो हिसा है, सो अपवाद विधि है, अर्थात् विशेप विधि है, तब तो अपवाद करकें उत्सर्गकी बाधा होनेसें वैदिकी हिंसा दोष का कारण नहीं " उत्सर्गापवादयोरपवादविधिर्बलीयानिति न्यायात् " तुमारे जैनोंके मतमेंन्नी एकांत हिंसाका निषेध नहीं है, कितनेक कारणोके

होनेसें पृथिव्यादिक जीवोंकी हिंसा करनेकी आज्ञा है, अरु जब साधु रोग पीडित होता है, "असस्तरे" अर्थात् असामर्थ्य होता है, तब आधाकर्मादि आहारके ग्रहणेकीनी आज्ञा है, ऐसेही हमारे मतमें याज्ञिकी हिसा जो है, सो देवता अतिथिकी प्रीतिके वास्ते पुष्टालंबनरूप होनेसे अपवाद रूप है, इस वास्ते दोष नही

उत्तरपक्ष –अन्यकार्यके वास्ते उत्सर्ग वाक्य, अरु अन्य कार्यके वास्ते अपवाद पद कहनां, यह उत्सर्ग, अपवाद, कदा नी नहीं हो सक्ता है, किंतु जिस अर्थके वास्ते शास्त्रमें उत्सर्ग कह्या है, तिसी अर्थके वास्ते अपवाद होवे, तबही उत्सर्ग अपवाद हो सक्ता है, तिन दोनोंहीकों उन्नत निम्नादि व्यवहारवत् परस्पर सापेक्ष होनेसेंही एकार्थके साधक हो सके हैं, जैसें जैनोंके संयम पालनेके अर्थ नवकोटि विशुद्ध आहारकों ग्रहणां, सो उत्सर्ग है, तैसेंही द्रव्य, क्षेत्र, काल, नाव, आपत्में पडनेसे गत्यतरके अनावसें पंचकादि यत्ना करके अनेषणीयादि आहारकों जो ग्रहण करना, सो अपवाद है, सोनी संयमहीके पालने वास्ते है, ऐसेंनी मत कहनां कि जिस साधुको मरणाही एक शरणा है,तिसकों गत्यंतर अनावकी असिद्धि है ॥ उक्त चार्षेपि ॥ सव्वह स जम स,जमाउ अप्पाणमेव रकिज्जा ॥ मुच्चइ अइवायाउ, पुणो विसोही नयाविरई ॥१॥ इत्यागमात् ॥ इसका नावार्थ –सर्वत्र संयम करणा, जे कर संयमके दूषित होनेसे प्राण रहित होवे, तो संयममें दूषणनी लगा कर प्राणोंकी रक्षा करणी, प्राणोके रहणेसें प्रायश्चित्त द्वारा उस पापसें छूट करके शुद्ध हो जावेगा, अरु अविरतिनी नहीं रहेगी, तथा आयुर्वेदमें नी जो वस्तु किसी रोगमें किसी अवस्थामें अपथ्य है, सोइ वस्तु उसी रोगमें उसी अवस्थामें अवस्था, देश, काल, देख कर देवे, तो पथ्य है देशादि अपेक्षा करके ज्वर वालेकों दहीं खानेको देते हैं॥ तथाच वैद्या ॥ कालाविरोधिनिर्दिष्टं, ज्वरादौ लंघनं हितं ॥ ऋतेऽनिलश्रमक्रोध, शोककामकृतज्वरात् ॥ १ ॥ जैसें प्रथम अपथ्यका परिहार करनां, अरु जो तद्वाही अवस्यांतरमें तिसीको नोगनां, सो दोनोही जगे रोगके दूर करनेका प्रयोजन है इस्सें यह सिद्ध हूआ जो एकही वस्तुविषयक उत्सर्ग अपवाद है

अरु तुमारे तो उत्सर्ग, और अर्थ वास्ते है, तथा अपवाद,और अर्थ

वास्ते है, क्योंकि तुमारे तो "न हिंस्यात् सर्वभूतानि" यह जो उत्सर्ग है सो डुर्गतिके निषेध वास्ते है, अरु जो तुमारी अपवाद हिंसा है, सो देवता, अतिथि, पितरोंकी प्रीति संपादनेके अर्थ है, इस वास्ते परस्पर निरपेक्ष होनेसे उत्सर्ग अपवाद विधि नहीं हो सक्ती है तब केसे तुमारा अपवाद, उत्सर्ग विधिकों बाधा कर सक्ता है ?

ऐसेजी मत कहना कि वैदिक हिंसाकी जो विधि है, सो स्वर्गहेतु होनेसे डुर्गति निषेधार्थही है, वैदिकहिंसा स्वर्गका हेतु नहीं है, यह उपर अछी तरेसें लिख आये है, वैदिक हिंसाके विनाजी स्वर्गकी प्राप्ति हो सक्ती है, गत्यंतरके अनावमेंही अपवाद हो सक्ता है, कुछ हमही नहीं यज्ञ करनेसे स्वर्गका निषेध करते हैं, किंतु तुमारा व्यासजीजी कहता है यदाह व्यास महर्षि ॥ पूजया विपुलं राज्य,मग्निकार्येण संपद ॥ तपः पापविशुद्ध्यर्थं, ज्ञानं ध्यानं च मुक्तिदं ॥१॥ यहां अग्निकार्य शब्दवाच्यस्य यागादिविधि उपायांतर करके जो साध्य है संपदा, तिसहीका हेतु कहता हुआ आचार्य तिस यागकों सुगतिका हेतु अर्थात् ही कदर्थन करता हूआ है, तथा सोइ व्यासजी नावाग्निहोत्र "ज्ञानपाली" इत्यादि श्लोकों करके स्थापन कर गया है ॥ इति मीमांसकमतखंमनम् ॥ ५ ॥

अथ चार्वाकमत खंमन लिखते हैं ॥ चार्वाक कहता है की आत्माही नहीं है, तब किस वास्ते मतावलंबी पुरुष, वचनकलहा करते हैं ? जब आत्माही नास्ति है तब जैन, बौद्ध, सांख्य, नैयायिक, वैशेषिक, अरु जैमिनीय, यह जो षट् दर्शन है, सो नि केवल लोकोंकों भ्रममें माल करकें भोग विलास बुडा देते हैं, वास्तवमें आत्मानामा कोइ वस्तु नहीं इस वास्ते हमारा मत अछा है, जे कर आत्मा है,तो कैसें तिसकी सिद्धि है ?

उत्तरपक्ष—प्रतिप्राणी स्वसंवेदन प्रमाण चैतन्यकी अन्यथानुपपत्तिसें सिद्ध है, तथाहि यह जो चैतन्य है, सो भूतोंका धर्म नहीं है, जे कर भूतोंका धर्म होवे, तब तो पृथिवीकी कठीनताकी तरें सर्वत्र सर्वदा उपलंन होनां चाहियें, सो सर्वत्र सर्वदा उपलंन होता है नहीं,क्योंकि लोष्ठादिकों में अरु मृत् अवस्थामें चैतन्य उपलंन नहीं होता

पूर्वपक्ष—लोष्ठादिकोंमें अरु मृत् अवस्थामेंजी चैतन्य है, केवल शक्ति रूप करिकें है, तिस वास्ते नहीं उपलंन होता है

उत्तरपक्ष –दो विकल्पके न उल्लंघनेंसें यह तुमारा कहना अयुक्त है, तथाहि वो शक्ति, चैतन्यसे विलक्षण है? अथवा चैतन्यही है? जे कर कहोगेकि विलक्षण है,तब तो शक्तिरूप करकें चैतन्य है ऐसा मत कहो, क्योंकि नहीं पटके विद्यमान हूआ पटरूप करकें घट रहता है, “आह च ॥ प्रज्ञाकरगुप्तोपि ॥ श्लोक ॥ रूपांतरेण यदित, त्तदेवास्तीति मारटी ॥ चैतन्यादन्यरूपस्य, नावे तद्विद्यते कथम् ॥१॥ जे कर दूसरा पक्ष मानोगे,तब तो चैतन्यही वो शक्ति है,तो फेर क्यु नहीं उपलभ्न होती? जे कर कहोगेकि आवृत्त होनेसे उपलंभ नहीं होती, तो यहनी ठीक नहीं, क्योंकि आवृत्ति नाम आवरणका है, सो आवरण क्या विवक्षित परिणामका अनाव है? अथवा परिणामांतर है? अथवा नूतोंसें अतिरिक्त और वस्तु है? उसमें विवक्षित परिणामोंका अनाव तो नहीं हैं, क्योंकि एकांत तुछ होने करकें तिस विवक्षित परिणाम अनावकों आवरण शक्ति नहीं है, अन्यथा तिसकों अतुछ रूप होनेसें सोनी नावरूप हो जावेगा अरु जब नावरूप हूआ, तब तो पृथिवी आदिकोंमेंसू अन्यतम हूआ,क्योंकि “पृथिव्यादीन्येव नूतानि तत्त्वमिति वचनात्” अरु पृथिवी आदिक जो नूत है, सो चैतन्यके व्यंजक हैं, परंतु आवरक नहीं तब कैसें आवरकत्व सिद्ध होवे?

अथ जे कर कहोगेकि परिणामांतर है,सोनी अयुक्त है, क्योंकि परिणामांतरकों नूत स्वनाव होने करकें नूतोकी तरें चैतन्यका व्यंजकही हो सक्ता है, आवरक नहीं

अथ जे कर कहोगेकि नूतोंसें अतिरिक्त वस्तु है, यह कहना बहुत ही असंगत है, क्योंकि नूतोसे अतिरिक्त वस्तु माननेसें “चत्वार्येव पृथ्व्यादि नूतानि तत्त्वमिति” इस कहनेंसे तत्त्वसंख्याका व्याघात हो जावेगा

एक औरनी बात हैकि यह जो चैतन्य है, सो एक एक नूतका धर्म है? वा सर्व नूत समुदायका धर्म है? एक एक नूतका धर्म तो नहीं, क्योंकि एक एक नूतमें दीखता नहीं औ एक एक परमाणुमें संवेदन उपलंन नहीं होता है जे कर प्रति परमाणुमें होवे, तब तो पुरुष,सहस्र चैतन्य वृंदकी तरें परस्पर निन्न स्वनाव होवेगा, परंतु एक रूप चैतन्य नहीं होवेगा, अरु देखनेमें एक रूप आता है, “अहं पश्यामि” अर्थात् मैं देखता हू, मै करता हू, ऐसे सकल शरीरका अधिष्ठाता एक उपलंन होता है

जे कर समुदायका धर्म मानोगे सोनी प्रत्येकमें अनाव होनेसें असत् है, क्योंकि जो प्रत्येक अवस्थामें असत् है, वो समुदायमनी नहीं होता है, जैसे रेणुकायोमें तेल

जे कर कहोगेकि मद्यांगोमें मद शक्ति नहीं है समुदायमें हो जाती है, असें चेतन्यनी हो जावे, तो क्या दोष है? यहनी अयुक्त है, क्योंकि प्रत्येक मद अंगोमें मद शक्त्यनुयायि माधुर्यादि गुण दीखते है, तथाहि॥ दीखता है माधुर्यादि इक्षुरसमें धातकी फूलोसें थोडीसी विकलता उत्पादक शक्ति, असें चैतन्य, सामान्य प्रकारसे नूतोमे नहीं उपलब्ध होता है, तब कैसे नूत समुदायमें चैतन्य हो सक्ता है? जे कर प्रत्येक अवस्थामें असत् समुदायमें हो जावे, तब तो सर्व समुदायसें सर्व कुछ हो जाना चाहियें. यह अति प्रसंग होवेगा

एक औरजी बात है, कि जे कर तुमने चैतन्य धर्म माना है,तब तो अवश्य धर्मके अनुरूप धर्मीनी मानना चाहियें, जे कर अनुरूप न मानोगे, तब तो जल अरु कठिनता इन दोनोको धर्म धर्मी माननां चाहियें, असेंनी मत कहनां जो नूतही धर्मी हैं, क्योंकि नूत, चैतन्यसें विलक्षण हैं, तथाहि चैतन्य बोध स्वरूप, अरु अमूर्त्त है, अरु नूत इससें विलक्षण हैं, तब कैसें परस्पर धर्म धर्मी नाव हो सक्ता है? अरु यह चैतन्य नूतोका कार्यनी नहीं है, अत्यंत वैलक्षण्य होनेसें कार्य कारण नाव कदापि नहीं होता है ॥ उक्तंच ॥ काठिन्याबोधरूपाणि, नूतान्यध्यक्षसिद्धित ॥ चेतना च न तद्रूपा, सा कथं तत्फलं नवेत् ॥ १ ॥

एक औरजी बात हैकि जे कर नूतकार्य चेतना होवे, तब तो सकल जगत् प्राणीमय होवे, जे कर कहोगेकि परिणति विशेष सन्नावके अनाव सें सकल जगत् प्राणिमय नहीं होता है, तो वो परिणति विशेष सन्नाव सर्वत्र किसी वास्ते नहीं होता है? सोनी परिणति नूतमात्र निमित्तकही है, तब कैसें तिसका किस जगें होनां न होनां सिद्ध होवे? तथा वो परिणति विशेष किस स्वरूपवाली है, जे कर कहोगेकि कठिनादि रूप है, सो ६ दिखाते हैं कि घुणादि जंतु उत्पन्न होते हूये काष्ठादिकोंमें दीखते हैं तिस वास्ते जहां कठिनत्वादि विशेष है, सो प्राणिमय है, शेष नहीं यह नी व्यनिचार देखनेसें असत् है तथाहि अविशिष्टनी कठिनत्वादि विशेषके

हूया कहीं होता है, और कहीं नहीं होता, अरु किसी जगे कठिनत्वादि विशेषके बिनाजी सस्वेदज घने आकाशमें समूर्छिम उत्पन्न होते हैं

एक औरजी वात है कि कितनेक जीव समानयौनिकजी विचित्रवर्ण संस्थान वाले दीखते हैं, तथाहि गोवर आदि एक योनिवालेजी कितनेक नीले शरीर वाले हैं, अपर पीत शरीर वाले हैं, अन्य विचित्र वर्ण वाले है, अरु सस्थानजी इनका परस्पर जिन्न है, जे कर नूतमात्र निमित्त चैतन्य होवे, तव तो एक योनिक सर्व एक वर्ण सस्थान वाले होने चाहियें, परंतु सोतो होते है नहि, तिस वास्ते आत्माही तिस तिस कर्मके वश तैसें उत्पन्न होती है, यही सिद्ध माननां चाहियें

जे कर कहोगेकि आत्मा होवे, तव जाता आता क्यों नहीं उपलब्ध होता ? केवल देहके हुवांही सवेदन उपलब्ध होता है, अरु देहके अजाव होयां जस्म अवस्थामें नहीं दीखता है, तिस वास्ते आत्मा नहीं किंतु सवेदन मात्रही एक है, सो सवेदन देहका कार्य है, देहहीमें आश्रित है, जीतके चित्रवत् चित्र, जीतके विना नहीं रह सक्ता है,अरु दूसरी जीत उपर सक्रमणजी नहीं होता है, किंतु जीत उपर उत्पन्न हूआ है, अरु जीतके साथही विनाश हो जाता है, सवेदनजी ऐसेही जान लेनां यहजी असत् है, क्योंकि आत्मा स्वरूप करके अमूर्त्त है, अरु आंतर शरीर अति सूक्ष्म है, इस वास्ते दृष्टिगोचर नहीं ॥ तडक्त ॥ श्लोक ॥ अतराजावदेहोपि, सूक्ष्मत्वान्नोपलज्यते ॥ नि क्रामन् प्रविशन् वात्मा,नाजावोऽनीक्षणादपि ॥ १ ॥ तिस वास्ते आंत शरीर युक्तजी आत्मा आता जाता हूआ नहीं दीखता है, परंतु लिंगसें उपलब्ध होता है, तथाहि तत्काल उत्पन्न हूआजी कमी जीवकों अपने शरीर विषे ममत्व है, घातककों जान करके दौड जाता है, जिसका जिस विषे ममत्व है, सो पूर्वले ममत्वके अन्यास पूर्वक है, तैसेही देखनेसें अरु जितना चिर, किसी वस्तुके गुण दोष नहीं जानता, उतना चिर, उस वस्तुमें किसीकोंजी आग्रह नहीं होता है, तव तो जन्मकी आदिमें जो शरीरका आग्रह है, सो शरीर परिशीलन अन्यासपूर्वक सस्कार निवधन है, इस वास्ते आत्माका जन्मांतरसें आवनां सिद्ध हूआ ॥ उक्त च ॥ शरीरग्रहरूपस्य, चेतस सजवोयदा ॥ जन्मादौ देहिनो दृष्ट, किन्न जन्मांतरा गति ॥ १ ॥

अथ आगति प्रत्यक्षसे नहीं दीखती है, तब कैसें तिसका अनुमानसें बोध होवे? यह तुमारा कहनां कुछ दूषण नहीं, क्योंकि अनुमेय अर्थ विषे प्रत्यक्षकी प्रवृत्ति नहीं हो सक्ती है, परस्पर विषयको परिहार करके प्रत्यक्ष अनुमानका प्रवर्त्तना बुद्धिमान् मानते है, तब कैसे यह तुमारा दूषण है? आह च ॥ अनुमेयेस्ति नाध्यक्ष, मिति कैवात्र दुष्टता ॥ अध्यक्षस्यानुमानस्य, विषयो विषयो नहि ॥ १ ॥

अरु जो चित्रका दृष्टांत तुमने कहा था, सोभी विषम होनेसे अयुक्त है, तथाहि चित्र जो है सो अचेतन है अरु गमन स्वभाव रहित है, औ आत्मा जो है सो चैतन्य है सो कर्मोंके वशसे गति आगति करता है, तब कैसें दृष्टांत अरु दार्ष्टांतकी साम्यता होवे? जैसें देवदत्त किसी विवक्षित ग्राममें कितनेक दिन रह करकें फेर ग्रामांतरमें जाता रहता है,तैसेंही आत्माभी विवक्षित भवमें देहको त्याग कर भवांतरमें देहांतर रच कर रहता है,

अरु जो तुमने कहा था कि संवेदन देहका कार्य है, सोभी ठीक नहीं क्योंकि चक्षुषादि इंद्रियद्वारें उत्पन्न होनेसें चाक्षुषादि संवेदन कथंचित् देहसेंभी उत्पन्न होता है, परंतु जो मानस ज्ञान है, वो कैसे देहका कार्य हो सक्ता है? तथाहि सो मानस ज्ञान देहसें उत्पद्यमान होता हुवा इंद्रियरूपसे उत्पन्न होता है? वा अनिंद्रिय रूपसे उत्पन्न होता है? वा केश नखादि लक्षणसें उत्पन्न होता है? प्रथम पक्ष तो ठीक नहीं जेकर इंद्रियरूपसें उत्पन्न होवे, तब तो इंद्रिय बुद्धिवत् वर्त्तमानार्थकाही ग्राहक होनां चाहियें, इंद्रियज्ञान जो है, सो वर्त्तमान अर्थही ग्रहण कर सक्ता है, इस सामर्थ्यसें उपजायमान मानस ज्ञानभी इंद्रियज्ञानवत् वर्त्तमान अर्थकाही ग्रहण कर सकेगा.

अथ जब चक्षुरूप विषय व्यापार करता है, तब रूप विज्ञान उत्पन्न होता है, शेष काल नहीं तब वो रूपविज्ञान वर्त्तमानार्थ विषय है, क्योंकि वर्त्तमानार्थ विषयही चक्षुका व्यापार होनेसें अरु रूप विषय व्यावृत्तिके अभावमें मनोज्ञान है, तिस वास्ते नियत काल विषयक नहीं है, ऐसेही शेष इंद्रियमेंभी जान लेनां, तब कैसें मनोज्ञानकों वर्त्तमानार्थ ग्रहण प्रसक्ति होवे? उक्त च ॥ अक्षव्यापारमाश्रित्य, भवदक्षजमिष्यते ॥ तद्व्यापारोन तत्रेति, कथमक्षभव भवेत् ॥ १ ॥

अथ अनिंड्रिय रूपसें है, सोनी तिसकों अचेतन होनेसें अयुक्त है, अरु केश नखादिक तो मनोज्ञान करकें स्फुरत चिद्रूप नहीं उपजंन होते हैं, तब कैसे तिनसेंती मनोज्ञान होवे? आह च ॥ चेतयंतो न दृश्यंते, केशश्मश्रुनखादय ॥ ततस्तेज्यो मनोज्ञान, नवतीत्यतिसाहस ॥ १ ॥

जे कर केश, नखादिकों करकें प्रतिबद्ध मनोज्ञान होवे, तब तो तिनोंके उछेद हूया मूलसेंही मनोज्ञान नहीं होवेगा? अरु केश, नखादिकोंकों उपघात हूआं ज्ञाननी उपहत होना चाहियें, परतु सोतो होता है नहीं, इस वास्ते यह तीसरा पक्षनी ठीक नहीं

एक औरनी बात है, कि मनोज्ञानके सूक्ष्म अर्थ नेतृत्व अरु स्मृतिपाटवादि विशेप जो है, सो अन्वयव्यतिरेक करकें अन्यासपूर्वक देखे हैं, तथाहि वोही शास्त्र, इहा अपोहादि प्रकार करकें जे कर वार वार विचारियें, तब सूक्ष्म सूक्ष्मतर अर्थावबोध उल्लास होता है, अरु स्मृति पाटव अपूर्व वृद्धि होती है, ऐसें एक शास्त्रविपे अन्याससेंती सूक्ष्मार्थ नेतृत्व शक्तिके होयां, अरु स्मृतिपाटवके हूयां अन्य शास्त्रोमेंनी सहजसेंही सूक्ष्मार्थावबोध, अरु स्मृतिपाटव उल्लास होती है, ऐसें अन्यास हेतुक सूक्ष्मार्थ नेतृत्वादिक मनोज्ञानके विशेष देखे हैं, अरु किसीकों अन्यासके विनानी देखियें है, तिस वास्ते अवश्य परलोकका अन्यास हेतु है, सो काहेतं? कि कारणके साथ कार्यका अन्यथानुपपन्न पणा है, तिस प्रतिबंधमें अदृष्ट तिसके कारणकीनी सिद्धि है, तिस वास्ते जीवका परलोकमें जाना सिद्ध हूआ

अरु देह, क्षयोपशमका हेतु है, इस वास्ते देहनी कथचित् ज्ञानकों उपकारी हम मानते है नहीं देहके दूर होनेसे सर्वथा ज्ञानकी निवृत्ति होती जैसें अग्नि करकें घटकों कुछ विशेपता है, परतु अग्निकी निवृत्ति हूया घट मूलसेंही उछेद नहीं हो जाता है, केवल कछुक विशेप दूर हो जाता है, जैसे सुवर्णकी द्रवता ऐसें इहांनी देहकी निवृत्ति हूआ कोइक ज्ञानविशेप तत्प्रतिबद्धही निवृत्त होता है, परंतु समूल ज्ञानका उछेद नहीं होता है, जे कर देहही ज्ञानका निमित्त मानेंगे, अरु देहकी निवृत्तिसे ज्ञान निवृत्तिवाला मानोगे, तब तो स्मशानमें देहके नस्म हूयां तो ज्ञान न होवे, परतु देहके वियमान हूआ मृत अवस्थामें किस वास्ते नहीं होता?

जे कर कहोगे कि प्राण, अपानभी ज्ञानके हेतु हे, तिनके अभावसें ज्ञान नहीं होता है, यहभी कहना ठीक नहीं, क्योंकि प्राणापान ज्ञानके हेतु नहीं हो सक्ते है, किंतु ज्ञानहीसें तिनकी प्रवृत्ति होनेसें तथाहि जब प्राणापानका करने वाला मद इच्छा करता है, तब मद होता है, अरु ज व दीर्घकी इच्छा करता है, तब दीर्घ होता है, जे कर देहमात्र नैमित्तिक प्राणापान होवे, अरु प्राणापान नैमित्तिक विज्ञान होवे, तब तो इच्छाके वशसे प्राणापानकी प्रवृत्ति न होवेगी, क्योंकि जिनका निमित्त देह है, ऐसी जो गौरता औ श्यामता, वो इच्छाके वशसे प्रवृत्त नहीं होती है, जे कर प्राणापान ज्ञानका निमित्त होवे, तब तो प्राणापानके थोडे वा बहुतेके होनेसें ज्ञानभी थोडा वा बहुत होनां चाहियें, क्योंकि जिसका कारण हीन अथवा अधिक होवेगा, तब उसका कार्यभी हीन अधिक होवेगा जैसें माटीका पिंड बडा किंवा छोटा होवेगा, तब घटभी बडा अरु छोटा होवेगा, अन्यथा वो कारणभी नहीं तुमारेभी तो प्राणापानके न्यून अधिक होनेसें ज्ञान, न्यून अधिक नहीं होता है किंतु विपर्यय होता तो दीखता है क्योंकि मरणावस्थामें प्राणापान अधिकभी होते हैं, तोभी विज्ञान घट जाते है

जे कर कहोगे कि मरणावस्थामें वात पित्तादि दोषो करकें देहके विगुणी हो जानेसे प्राणापानकी वृद्धिसेंभी ज्ञानकी वृद्धि नहीं होती है, ऐसेंही मृतावस्थामेंभी देहके विगुणीभूत होनेसें चेतनता नहीं है, यहभी असमीचीन है, जे कर ऐसें होवे, तब तो मरा हूआभी जिंदा होनां चाहियें॥ तथाहि ॥ "मृतस्य दोषा समीभवति" अर्थात् मरण पीछे वात पित्तादि दोष नहीं रहते हैं, औ ज्वरादि विकारके न देखनेसें दोषोका न रहना प्रतीत होता है, अरु जो दोषोका समपणा है, सोइ आरोग्यता है, "तेषां समत्वमारोग्य, क्षयवृद्धिविपर्यय ॥ इति वचनात्" ॥ आरोग्य जानसें देहको फेर जिंदा होनां चाहियें, अन्यथा देह कारणही नहीं, जिसके साथ देहका अन्वय व्यतिरेक नहीं जे कर मारा हुवा जी उठे, तो हम देहकों कारणभी मान लेवे

पूर्वपक्ष—यह फेर जी उठनेका प्रसग तुमारा अयुक्त है, क्योंकि यद्यपि दोष, देहकों वैगुण्य करके निवृत्त हो गये हैं, तोभी तिनका वैगुण्य पणा

करा हुआ नहीं निवृत्त होता है, जैसें अग्निका करा हुआ काष्ठमें विकार अग्निके निवृत्त होनेसेंजी नहीं निवृत्त होता है

उत्तरपक्ष —यह तुमारा कहनां अयुक्त है,क्योंकि विकारजी दो प्रकारका है, एक निवृत्त होता है, एक नहीं निवृत्त होता है, अनिवृत्त विकार जैसें काष्ठमें अग्निका करा हूआ श्यामता मात्र अरु निवृत्त विकार जैसें अग्नि कृत सुवर्णमें द्रवता वायु आदिक जो दोष हैं, सो निवृत्त विकार है, चिकित्सा प्रयोग देखनेसे जे कर वायु आदि दोषजी अनिवृत्त विकार होवे, तब तो चिकित्सा वैफल्य हो जावेगी, ऐसेजी मत कहनां मरणेसें पहिलां दोषनिवृत्त विकारारंजक है, अरु मरण कालमें अनिवृत्त विकारारंजक है, क्योंकि एककों एक जगे निवृत्त अनिवृत्त विकार दो रूप नहीं हो सक्ते हैं,

पूर्वपक्ष —व्याधि दो प्रकारकी लोकमें प्रसिद्ध है, एक साध्य, दूसरी असाध्य, उसमें साध्य जो है, सो चिकित्सासें दूर हो सक्ती है, अरु दूसरी दूर नहीं होती है, तब दो प्रकारकी व्याधि क्यों नहीं सिद्ध हो सक्ती है?

उत्तरपक्ष —यहजी असत् है, क्योंकि तुमारे मतमें असाध्य व्याधिही नहीं हो सक्ती है तथाहि व्याधिका जो असाध्यपणा है, सो आयुके क्षय होनेसें होता है, क्योंकि तिसी व्याधिमें समान औषध वैद्यके योगसें जी कोइ मर जाता है, कोइ नहीं मरता है, अरु जो प्रतिकूल कर्मोंके उदय करकें चित्रादि व्याधि है, वो हजार औषधसेंजी साधी नहीं जाती है, यह दोनों प्रकारकी व्याधि परमेश्वरके बचनोंके जानने वालोंके मतमेंही सिद्ध होती हैं, परंतु तुमारे जूतमात्र तत्त्ववादीयोंके मतमें नहीं हो सक्ती है कहीक आसाध्य व्याधि इस वास्ते हो जाती है, दोषकृत विकारके दूर करणेमें समर्थ औषधि, अरु वैद्यके अजावसें जब औषधि अरु वैद्यके अजावसे व्याधि वृद्धिमान हो कर सकल आयुकों उपक्रम करती है, अर्थात् क्षय कर देती है तथा कोइक दोषोंके उपशम होनेसे अकस्मात् मर जाता है अरु कोइक अति दुष्ट दोषोंके होनेसेंजी नहीं मरता है यह बात तुमारे मतमें नहीं हो सक्ती है॥ आह च ॥ श्लोक ॥ दोषस्योपशमेऽप्यस्ति, मरण कस्यचित्पुन ॥ जीवन दोषदुष्टत्वे, प्येतन्न स्यात्त्वन्मते ॥ १ ॥ हमारे मतमें तो जहां लगि आयु है, तहां लगि दोषों करके पीडितजी जीता रहता है, अरु जब आयु क्षय हो जाता है, तब

जे कर कहोगे कि प्राण, अपानभी ज्ञानके हेतु हे, तिनके अजावसें ज्ञान नहीं होता है, यहभी कहना ठीक नहीं, क्योंकि प्राणापान ज्ञानके हेतु नहीं हो सके है, किंतु ज्ञानहीसें तिनकी प्रवृत्ति होनेसें तथाहि जब प्राणापानका करने वाला मद इच्छा करता है, तब मद होता हे, अरु ज ब दीर्घकी इच्छा करता है, तब दीर्घ होता है, जे कर देहमात्र नैमित्तिक प्राणापान होवे, अरु प्राणापान नैमित्तिक विज्ञान होवे, तब तो इच्छाके वशसें प्राणापानकी प्रवृत्ति न होवेगी, क्योंकि जिनका निमित्त देह है, अैसी जो गौरता औ श्यामता, वो इच्छाके वशसें प्रवृत्त नहीं होती है, जे कर प्राणापान ज्ञानका निमित्त होवे, तब तो प्राणापानके थोडे वा बहुतेके होनेसें ज्ञानभी थोडा वा बहुत होना चाहिये, क्योंकि जिसका कारण हीन अथवा अधिक होवेगा, तब उसका कार्यभी हीन अधिक होवेगा जैसें माटीका पिंम बडा किंवा गेटा होवेगा, तब घटभी बडा अरु गेटा होवेगा, अन्यथा वो कारणभी नहीं तुमारेभी तो प्राणापानके न्यून अधिक होनेसें ज्ञान, न्यून अधिक नहीं होता है किंतु विपर्यय होता तो दीखता है क्योंकि मरणावस्थामें प्राणापान अधिकभी होते हैं, तोभी विज्ञान घट जाते है

जे कर कहोगे कि मरणावस्थामें वात पित्तादि दोषो करकें देहके विगुणी हो जानेसे प्राणापानकी वृद्धिसेंभी ज्ञानकी वृद्धि नहीं होती है, अै सेंही मृतावस्थामेंभी देहके विगुणीभूत होनेसें चेतनता नहीं है, यहभी असमीचीन है, जे कर अैसें होवे, तब तो मरा हूआभी जिंदा होना चाहियें॥ तथाहि ॥ "मृतस्य दोषा समीभवति" अर्थात् मरण पीछें वात पित्तादि दोष नहीं रहते हैं, औ ज्वरादि विकारके न देखनेसें दोषोका न रहना प्रतीत होता है, अरु जो दोषोका समपणा है, सोइ आरोग्यता है, "तेषां समत्वमारोग्यं, क्षयवृद्धिविपर्यय ॥ इति वचनात्" ॥ आरोग्य जानसें देहको फेर जिंदा होना चाहियें, अन्यथा देह कारणही नहीं, जिसके साथ देहका अन्वय व्यतिरेक नहीं जे कर मारा हुवा जी उठे, तो हम देहकों कारणभी मान लेवें

पूर्वपक्ष—यह फेर जी उठनेका प्रसग तुमारा अयुक्त है, क्योंकि यद्यपि दोष, देहकों वैगुण्य करके निवृत्त हो गये हैं, तोभी तिनका वैगुण्य पणा

॥ अथ पंचम परिछेद प्रारंभ ॥

यह पंचम परिछेदमें धर्मतत्त्वका स्वरूप लिखते हैं धर्म उसकों कहते हैं, जो दुर्गति जाते हुवे आत्माकों धरी राखे, एतावता दुर्गतिमें न जाने देवें, उसकू धर्म कहते हैं तिस धर्मके तीन भेद है १ सम्यक् ज्ञान, २ सम्यक् दर्शन, ३ सम्यक् चारित्र, इन तिनोमेंसू प्रथम ज्ञानका स्वरूप सक्षेपसें लिखते हैं ॥श्लोक॥ यथावस्थिततत्त्वानां, सक्षेपाद्विस्तरेण वा ॥ योवबोधस्तमत्राहु, सम्यग्ज्ञान मनीषिण ॥ १ ॥ अस्यार्थ - यथावस्थित नय प्रमाणों करकें प्रतिष्ठित है स्वरूप जिनका, ऐसें जो जीव,अजीव,आश्रव, सवर, निर्ज्जरा, बध, मोक्ष रूप सप्त तत्त्व, तथा प्रकारांतरें पुण्य पापके अधिक होनेसे नव तत्त्व होते हैं, इनका जो अवबोध, अर्थात् ज्ञान सो सम्यक् ज्ञान जाननां अरु वह जो ज्ञान है, सो क्षयोपशमके विशेषसें किसी जीवकों सक्षेप करकें अरु किसी जीवकों विस्तार करके होता है इन नव तत्त्वोंमें प्रथम जो जीवतत्त्व है तिसका स्वरूप ऐसा है कि जीव कहो अथवा आत्मा कहो यह दोनो एकही वस्तुके नाम है.

प्रश्न - जैनमतमें आत्माका क्या लक्षण है ?

उत्तर - चैतन्य लक्षण है,

प्रश्न - जैनमतमें जीव प्राणी आत्मा किसकों कहते है ?

उत्तर -॥ श्लोक ॥ य कर्त्ता कर्मभेदानां, भोक्ता कर्मफलस्य च ॥ संसर्त्ता परिनिर्वाता, सह्यात्मा नान्यलक्षण ॥ १ ॥ इस श्लोकसें जान लेनां. इसका भावार्थ कहते हैं, कि जो मिथ्यात्वादिकों करकें कलुषित अर्थात् मैला हो करकें वेदनीयादिक कर्मोका कर्त्ता,(करनेवाला) अरु तिन अपने करे हूये कर्मोका जो फल सुख दुःखादिक तिनोंका भोगनेवाला, अरु नारकादि भावों विषे कर्म विपाकके उदय करके जो भ्रमण करनेवाला अरु सम्यक्दर्शनादि तीन रत्नोंके उत्कृष्ट अभ्यास करकें सपूर्ण कर्माशको दूर करकें जो निर्वाण रूप होनेवाला, सोइ प्राणी है, सोइ जीव है, सोइ आत्मा है, यह नदीसूत्रमें लिखा है आत्माकी सिद्धि चार्वाकमतखंडनमे लिख आये हैं जे कर आत्माकी सिद्धि विशेष करकें देखनी होवे, तदा शुभ्भोनिधि, गधहस्ती महाभाष्य देख लेनी यह आत्मा सर्व व्यापीभी नहीं है, औ एकांत नित्य, कूटस्थभी नहीं है एकात अनित्यक्षणिकभी नहीं है,किंतु

दोषोंके विकार विनाजी मर जाता है, इस वास्ते देह, ज्ञानका निमित्त नहीं है,

एक औरजी बात है कि देह जो तुम ज्ञानका कारण मानते हो, तो सहकारी कारण मानते हो? वा उपादान कारण मानते हो? जे कर सहकारी कारण मानते हो, तब तो हमजी देहको क्षयोपशमका हेतु मानते है, कथचित् विज्ञानका हेतु मानते है, जे कर उपादान कारण मानोगे तब तो अयुक्त है, उपादान वो होता है कि जिसके विकारी होनेसें कार्यजी विकारी होवे, जैसे मृत्तिका और घट. देहके विकार करकें सवेदन विकारी नहीं होता है, अरु देह विकारक विनाजी जय शोकादिकों करकें सवेदनकों विकारी देखते है, इस वास्ते देह, सवेदनका उपादान कारण नहीं॥ उक्त च ॥ अधिकृत्य हि यद्वस्तु, य पदार्थो विकार्यते ॥ उपादान न तत्तस्य, युक्त गोगवयादिवत् ॥१॥ इस कहने करकें जो कहते हैं, कि माता पिताका चैतन्य, पुत्रके चैतन्यका उपादान कारण है, सोजी खमन हो गया तहां माता पिताके विकारी होनेसें पुत्र विकारी नहीं होता है, अरु जो जिसका उपादान होता है, सो अपने कार्यसे अजेद होता है, जैसें माटी और घट जब माता पिताका चैतन्य, पुत्रके चैतन्यके साथ अजेदरूप हूआ, तब तो पुत्रका चैतन्य, माता पिताके चैतन्यसें अजेद होनां चाहियें इसी वास्ते तुमारा कहनां किसी कामका नहीं है, इस हेतुसें जूतोंका धर्म वा जूतोंका कार्य चैतन्य नहीं है, इस वास्ते आत्मा सिद्ध है विशेष करकें चार्वाकमतका खमन देखनां होवें, तदा सम्मतितर्क, स्याद्वाद रत्नाकरादि शास्त्र देख लेनां ॥ इति चार्वाक मत खमन ॥ इस परिछेदमें जो कुगुरुके लक्षण कहे हैं, वे लक्षण चाहो जैनके साधुमें होवें, चाहो अन्यमतके साधुमें होवे, उन सर्वकों कुगुरु कहनां चाहियें ॥ इतिश्री तपगच्छीये मुनि श्रीबुद्धिविजयशिष्य मुनि आनदविजयआत्मारामविरचिते जैनतत्त्वादर्शे कुगुरुस्वरूपनिर्णयनामा चतुर्थ परिछेद सपूर्ण ॥ ४ ॥

॥ इति चतुर्थ परिछेद सपूर्ण ॥ ४ ॥

ति है अरु दोइंद्रिय, तीनइंद्रिय, चौरिंद्रिय, इन जीवोंमें एक मन विना पांच पर्याप्ति है पंचेंद्रिय जीवोंमें छही पर्याप्ति है. १ पृथिवीकाय, २ जलकाय, ३ तेजस्काय, ४ वायुकाय, (पवन) इन चारोमें असख्य जीव हैं तथा वनस्पतिकायमें जो प्रत्येक वनस्पति है, उसमें तो असख्यजीव है अरु साधारण वनस्पतिमें अनत जीव है. इन स्थावर अरु त्रसोंके जघन्य तो चौदह नेद हैं मध्यम (५६३) नेद हैं अरु उत्कृष्ट अनत नेद हैं तिनमें मध्यम चौदह नेद नरक वासीयोंके है अडतालीश नेद तिर्यच गतिवालोंके हैं, औ तीनसो तीन नेद मनुष्यगति वालोके हैं (१एट) नेद देवगति वालोंके हैं यह सर्व मध्यम नेद (५६३) हैं इनका विचार पूरा देखनां होवे, तदा प्रज्ञापन्न सिद्धांत, तथा जीव समास प्रकरणादि शास्त्रोंसे देख लेनां

प्रश्न – हे जैन ! दो इंद्रियादिक जीव तो जीव लक्षण सयुक्त होनेसें जिव सिद्ध हो जाते हैं, परंतु पृथिवीआदि पांच स्थावरोमें जीव कैसें हम मान लेवे ? क्योंकि पृथिवी आदिकोमें जीवका कोइनी चिन्ह उपलब्ध नहीं होता है

उत्तर – यद्यपि पृथिवी आदिकमें प्रगट जीवके होनेका चिन्ह नहीं दीखता, तोनी अव्यक्तपणेमें जीवके चिन्हसें जीव सिद्ध होते हैं जैसें धतूरेके तथा मदिरापानादिकके नशे करकें मूर्छित हूये जीवोंके व्यक्त लिंगके होनेसेंनी जीवपणा है, तैसेंही पृथिवी आदिककोंकोनी सजीव मानना चाहियें

प्रश्न – मदिरेकी मूर्छामें उश्वासादिकोके देखनेंसे अव्यक्तमेंनी चेतना लिंग है परंतु पृथिवी आदिकोंमें तैसा चेतनताका लिग कोइनी नहीं तिनको कैसें चैतन्य माना जावे ?

उत्तरपक्ष – जैसें तुमने कहा है, सो ऐसें है नहीं क्योंकि पृथिवीकायमें प्रथम स्व स्व आकारमें रहे हूये लवण, विद्रुम, पाषाणादिकोंको अर्श मांस अकुरकी तरें समान जातीय अकुरउत्पत्ति पणा है वनस्पतिकी तरें चैतन्यपणेका चिन्ह है, इस वास्ते अव्यक्त उपयोगादि लक्षणके होनेसे पृथिवी सचेतन है यह सिद्ध हुआ

प्रश्न – विद्रुम पाषाणादि पृथिवी कठिन रूप है, तो फेर कठिन रूप होनेसे कैसें पृथिवी सचेतन हो सक्ती है ?

शरीरमात्रव्यापी कथंचित् नित्यानित्य रूप है. इनका खंडन मंडन स्या द्वादरत्नाकर, स्याद्वादरत्नाकरावतारिका, अनेकांतजयपताका प्रमुख शास्त्रोंसें देख लेनां. इस वास्ते मैने नहीं लिखा है जो ग्रंथ वडा नारी हो जावेगा, अरु पढनेवाले आलस कर जायेंगे

तहां जे जीव हैं सो दो प्रकारके है एक मुक्त रूप, दूसरा संसारी, यह दोनोंही प्रकारके जीव अनादि अनंत हे अरु ज्ञान दर्शन इनका लक्षण है, अरु जो मुक्त स्वरूप आत्मा है वो सर्व एक स्वजाव है जन्मादि क्लेशों करके वर्जित हे अनंत दर्शन, अनंत ज्ञान, अनंतवीर्य, औ अनंत आनंदमय स्वस्वरूपमें स्थित है, निर्विकार निरंजन ज्योति स्वरूप है

अरु जो संसारी जीव है, सो दो प्रकारकें हे एक स्थावर, दूसरा त्रस, उसमें स्थावरके पांच जेद है, १ पृथिवीकाय, २ अप्काय, ३ तेजस्काय, ४ वायुकाय, ५ वनस्पतिकाय. तथा त्रस जीवके चार जेद हे १ दोइंद्रिय, २ तीनइंद्रिय, ३ चारइंद्रिय, ४ पांचइंद्रिय स्थावर जो है सो सर्व एकही स्पर्शेंद्रिय वाले है कृमी, गमोला, जलोक, सुमी, इत्यादि जीव एक स्पर्शन अर्थात् शरीर इंद्रिय, दूसरा रसनेंद्रिय अर्थात् मुख, इन दो इंद्रिय वाले हैं कीडी, जू, सुरसली, ढोरा, इत्यादि जीव, दो पूर्वोक्त अरु एक नासिका, यह तीन इंद्रियवाले हैं माखी, ज्रमर, सहेतकी माखी, मेंनू, धमोडी, विछू, इत्यादि जीव, तीन पूर्वोक्त, अरु चउथा नेत्र, इन चार इंद्रिय वाले हैं नारक, तीर्यंच, मनुष्य, अरु देवता, ये पंचेंद्रिय जीव हैं यह सर्व स्पर्शन, रसना, घ्राण, नेत्र, कान, इन पांच इंद्रिय वाले हैं स्थावर जीवजी दो तरेंके हैं, एक सूक्ष्म नामकर्मके उदयवाले सूक्ष्म, दूसरा बादर नामकर्मके उदय वाले बादर, यह जो स्थावर अरु त्रस जीव है, सो समुच्चय छै पर्याप्ति वाले हैं इन छै पर्याप्तिका नाम लिखते हैं १ आहारपर्याप्ति, २ शरीर पर्याप्ति, ३ इंद्रियपर्याप्ति, ४ श्वासोछ्वासपर्याप्ति, ५ जाषापर्याप्ति, ६ मन पर्याप्ति.

अथ पर्याप्तिका स्वरूप लिखते हैं आहार (जोजन) तिसके ग्रहणेकी जो शक्ति, तिसका नाम आहारपर्याप्ति कहते हैं २ शरीर रचनेकी जो शक्ति, तिसका नाम शरीरपर्याप्ति कहते हैं ३ इंद्रिय रचनेकी शक्ति, सो इंद्रियपर्याप्ति है ऐसेंही सर्वत्र जान लेनां जिस जीवके पूर्वोक्त छै शक्ति, अधूरी हैं, उसकू अपर्याप्ति कहते हैं स्थावर जीवोंमें आदिकी चार पर्या

शीही हें, श्रैसें वैशेषिक कहते हैं, तथा शीतकालमें शीतके बहुत पडनेसें प्रात कालमें तलावादिकोंके पश्चिम दिशामें खडे हो कर जब तलावादि देखियें, तदा तिस जलसेती निकलता हूआ बाष्पका समूह दिखता है, सो जी जीवहेतुकही है, तिसका प्रयोग श्रैसे हें कि शीतकालमें जो बाष्प है, सो उष्ण स्पर्शवाली वस्तुसें होता है बाष्प होनेसें शीत कालमें शीत जल करकें सींचे हूए मनुष्य शरीर बाष्पवत् श्ररु जो उकुहिका कूडे कचवरमें सें धूश्रा बाष्प निकलता है, तहांजी हम पृथिवीकायके जीव मानते हैं इन हेतुश्रोंसे जल सजीव सिद्ध होता है

प्रश्न –तेजस्कायमें जीव किस तरें सिद्ध होता है ?

उत्तर –जैसें रात्रिमें खद्योतका शरीर जीव शक्तिसें बना हूश्रा, प्रकाश वाला है, श्रैसें श्रगारादिकजी प्रकाशमान होनेसें सचेतन हैं तथा जैसें ज्वरकी उष्मा जीवके प्रयोग विना नहीं होती, श्रैसेंही श्रग्निमेंजी गरमी जीवोंके विना नहो है क्योंकि मृतकके शरीरमें ज्वर कदापि नहीं होता है श्रैसें श्रन्वय व्यतिरेक करकें श्रग्नि सचित्त जाननी यहां यह प्रयोग है कि श्रात्माके सयोगसें प्रगट नया है श्रगारादिकोंको प्रकाश परिणाम शरीरस्थ होनेसें खद्योत देह परिणामवत् तथा श्रात्मा सयोग पूर्वक शरीरस्थ होनेसे ज्वरोष्मवत् श्रगारादिकोंमें उष्णता है श्रैसेंजी मत कहना कि सूर्यके उष्मके साथ श्रनेकांतिक हेतु है, तो सूर्यादिकोंमें जो उष्मा है, सो जी श्रात्मसयोग पूर्वकही हम मानते हैं, तथा श्रग्नि सचेतन है, क्योंकि यथायोग्य श्राहारके करनेंसे, वृद्धिश्रादि विकारके उपलज होनेंसें पुरुषके शरीरवत् इत्यादि लक्षणों करके श्रग्निकों सचेतनता है

प्रश्न –वायुकायमें (पवनमें) सचेतनताकी सिद्धि कैसें करोगे ?

उत्तर –जैसें देवताका शरीर शक्तिके प्रजाव करकें, श्ररु मनुष्योंका शरीर श्रजनादि विद्यामत्रके प्रजाव करकें श्रदृश्य हो जानेसें नेत्रोंसें नहीं दिखता, तोजी विद्यमान चेतना वाला है, श्रैसें सूक्ष्म परिणाम होनेसें परमाणुकी तरें वायुकाय जो नेत्रोंसें नहीं दीखता तोजी विद्यमान चेतना वाला है तथा श्रग्नि करकें दग्ध पाषाण खमगत श्रग्निवत् प्रयोग यह है कि चेतनावान् वायु है, विना दूसरायोंके प्रेरणेसें, नियम करकें तिर्यग्ग

उत्तर –जैसें शरीरमें अस्थि अर्थात् हाड अनुगत है, सो कठिनभी है तोभी सचेतन है,ऐसेही जीवानुगत पृथिवीका शरीरभी सचेतन है. अथवा पृथिवी, अप्, तेज, वायु, वनस्पति, इनके शरीर जीव सहित है. छेद्य, भेद्य, उत्क्षेप्य, भोग्य घ्रेय, रसनीय, स्पृश्य, द्रव्य होनेसे. सास्ना विषाणादि संघातवत् पृथिवी आदिकोको छेद्यत्वादि जो दिखते है, तिनकों को इभी गोप नहीं सक्ता है अरु यहभी मत कहना कि पृथिवी आदिकोंकों जीव शरीरत्व जो साधना है, सो अनिष्ट है, क्योंकि सर्व पुद्गल द्रव्यकों हम द्रव्य शरीर मानते है, अरु जीव सहित तथा जीव रहित जो विशेष है सो ऐसे है शस्त्र करके अनुपहत जो पृथिवी आदिक है सो हाथ पगके संघातवत् संघात न होनेसे कदाचित् सचेतन है, ऐसेही कदाचित् शस्त्रोपहत होनेसे हाथादिकोकी तरे अचेतनभी है, सो अचेतनही है

प्रश्न –प्रश्रवणवत् अर्थात् मूत्रकी तरें जीवके लक्षण न होनेसें जल जीव नहीं है

उत्तर –हेतु असिद्ध होणेसे यहभी कहना ठीक नहीं है तथाहि हाथीका शरीर कलल अवस्थामें (अधुना उत्पन्न होयेको) द्रवपणा अरु सचेतन पणा देखते हैं, ऐसेंही जलमेंभी जानना तथा अंडेमें रस मात्र है परंतु अवयव कोइ उत्पन्न हूआ नहीं औ व्यक्त (हाथ पगादिक) भी नहीं, तोभी सचेतन है, इस उपमासें जलभी सचेतन है यह इसमें प्रयोग है शस्त्र करकें अनुपहत हूआ द्रवरूप होनेसें हस्तिशरीरके उपादानभूत कललवत् जल सचेतन है इस हेतुमें विशेषणके उपादानसें अर्थात् महणेसें प्रश्रवण दूधादिकोंमें व्यभिचार नहीं तथा अनुपहत द्रव होनेसें अंडेमें रहे कललवत् सात्मक जल है तथा हिमादि किसीक अवस्थामें अप्काय होनेसें इतर उदकवत् सचेतन है तथा किसी जगे भूमि खननेंसें स्वाभाविक संभव होनेसें मैंडकवत् सचेतन जल है, अथवा आकाशमें उत्पन्न हूआ जल बादलादि विकारके हुवा स्वत ही अर्थात् आपही उत्पन्न हो करकें पडनेंसें मत्स्यवत् सचेतन है तथा शीतकालमें बहुत शीतके पडते हूये नदी आदीकोंमें अल्पके हूआं अल्प अरु बहुतके हुआं बहुत,उष्मा देखते हैं,सो उष्मा सजीव हेतुकही है अल्पबहुत मिलित मनुष्योंके शरीरोंसें जैसें अल्प बहुत उष्म होता है जलमें सीत स्प

नहीं वेठ सक्ता है ऐसेंही जीव पुद्गल स्थित तो आपही होते है, परंतु अपेक्षा कारण अधर्मास्तिकाय है ॥ इति अधर्मास्तिकाय ॥

३ तीसरा आकाशास्तिकाय द्रव्य है, इसका स्वरूपभी धर्मास्तिकायवत् जानना, परंतु इतना विशेष है कि यह द्रव्य लोकालोक सर्वव्यापी है, अरु अवगाह दान लक्षण है, जीवपुद्गलके रहनेमें अवकाश दाता है, यह तीनों द्रव्य आपसमें मिले हूये हैं जहा लगि आकाशमें धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय है,तहां लगि लोक है,अरु जहां केवल एकला आकाशही है, और कोइ वस्तु नहीं, तिसका नाम अलोक है इति आकाश द्रव्यं

४ चउथा पुद्गलास्तिकाय द्रव्य है, पुद्गल नाम परमाणुओंकाभी है,अरु जो परमाणुओंका घट पटादि कार्य है, उसकोंभी पुद्गलही कहते हैं, एक परमाणुमें एक वर्ण है, एक रस है, एक गंध है, दो स्पर्श है, औ कार्यही जिनका लिंग है, वर्णसें वर्णांतर, रससे रसांतर, गंधसें गंधांतर, स्पर्शसें स्पर्शांतर हो जाते हैं यह परमाणु द्रव्यरूप करकें अनादि अनंत है, पर्यायस्वरूप करकें सादि सांत है, इन परमाणुओंका जो कार्य है, सो कोइक प्रवाहसें तो अनादि अनंत है, अरु कोइ सादि सांतभी है, जो यह जड दीखता है, सो सर्व इन परमाणुओंका कार्य है सूकी हुइ वनस्पति सर्व अरु अग्नि आदिक शस्त्रों करकें परिणामांतरकों प्राप्त हूये पृथिव्यादिक सर्व पुद्गल हैं, समुच्चय पुद्गल द्रव्यमें पांच वर्ण, पांच रस, दो गंध, आठ स्पर्श, पांच संस्थान, उसमें काला, नीला, रक्त, पीत, शुक्ल, यह पांच तो वर्ण है तीक्ष्ण, कडुआ, कषाय, खाटा, मीठा, यह पांच रस है सुगंध, दुर्गंध, यह दो प्रकारकी गंध है खरखरा अर्थात् कठोर, सुकोमल, हलका, भारी, शीत, उष्ण, चीकणा, रूखा, यह आठ स्पर्श है इनसे अधिक जो वर्णादि हैं, सो सर्व इनहीके मिलनेसें हो जाते हैं इन पुद्गलोमें अनंत शक्तियां अनंत स्वभाव हैं १ द्रव्य, २ क्षेत्र, ३ काल, ४ भाव, इत्यादि तिस तिस निमित्तोंके मिलनेसे विचित्र परिणाम हो जाते हैं इति पुद्गलद्रव्य ॥ ४ ॥

५ पांचमा कालद्रव्य है, सो प्रसिद्ध है यह पाच द्रव्य अजीव है, सो निमित्त जैन श्वेतांबराचार्य श्रीसिद्धसेनदिवाकरकृत सम्मतितर्क ग्रंथमें पांच लिखे हैं सो कहते हैं, १ काल, २ स्वभाव, ३ नियति, ४ पूर्वकृत

ति होनेसे, गवाश्वादिवत् तिर्यग्गतिके नियम करनेसें, परमाणुके साथ व्यभिचार नही ऐसे वायु शस्त्र करकें अनुपहत सचेतन है

५ अरु वनस्पतिमें तो प्रत्यक्ष प्रमाणसें जीव सिद्धही है इस वास्ते यहां विस्तारसे नहीं लिखा आगमभी सर्वज्ञका कथन करा हूआ पृथिवी, जल, अग्नि, पवन अरु वनस्पतिमे जीवका होनां कहता है अरु जो कोइ द्वींद्रिय, त्रींद्रिय, चतुरिंद्रिय अरु पचेंद्रियमें जीव नहीं मानते हैं, तो तिन मूढोके न माननेसें कुछ हानी नहीं यह सक्षेपसे जीवोंका स्वरूप लिखा है जब विस्तारसे देखना होवे, तब जैनमतके सिद्धांत देख लेने ॥ इति प्रथम जीवतत्त्व संपूर्ण ॥

अथ दूसरा अजीव तत्त्व लिखते है अजीव उसकों कहते है, कि जो जीवके लक्षणोंसें विपरीत होवे, जो ज्ञानसें रहित होवे,औ जो रूप,रस, गध, अरु स्पर्शवाला होवे, नर अमरादि भवमें न जावे,अरु ज्ञानावरणीयादिक कर्मका कर्त्ता न होवे, अरु तिनोके फलका भोगने वाला न होवे, जडस्वरूप होवे, तिसकों अजीव कहते हैं, सो अजीव द्रव्य पांच प्रकारके हैं उसका नाम कहते हैं, १ धर्मास्तिकाय, २ अधर्मास्तिकाय, ३ आकाशास्तिकाय, ४ पुद्गलास्तिकाय, ५ काल

१ तिनमें जो धर्मास्तिकाय है, सो लोकव्यापी है, औ नित्य है, अवस्थित है, अरूपी है, असख्य प्रदेशी है, जीव अरु पुद्गलकी गतिमें उपष्टंभक है, यद्यपि जीव अरु पुद्गल स्वशक्तिसें चलते हैं, तोभी चलनेंमें धर्मास्तिकाय अपेक्षा कारण है जैसें मछी जलमें तरती तो अपनी शक्तिसें है, परंतु अपेक्षा कारण जल है ऐसेंही जीव पुद्गलकों गति सहायक धर्मास्तिकाया है जहां लगि यह धर्मास्तिकाया है, तहां लगि लोककी मर्यादा है जे कर धर्मास्तिकाया न मानीयें, तो लोकालोककी मर्यादा न रहेगी अरु जहां लगि धर्मास्तिकाया है, तहां लगि जीव पुद्गल गति करते हैं इसका पूरा स्वरूप जैनमतके ग्रंथ पढेबिना नहीं जान सक्ता है ॥ इति ॥ १ ॥

२ दूसरा अधर्मास्तिकाय द्रव्य है इसका सर्व स्वरूप धर्मास्तिकायकी तरें जाननां परंतु इतना विशेष है, कि यह द्रव्य, जीव पुद्गलकों स्थिति सहायक है जैसें पथिक जन जब चलता चलता थक जाता है, तब किसी वृक्षादिककी छायामें बैठता है,सो बैठता तो वो आपही है,परंतु आश्रयबिना

प्रति एक वर्ष तांइ दीये है इसी कारणसें जैनमतमें प्रथम दानधर्म है तथा जैनमतके शास्त्रमें औरन्नी केई तरेंसें पुण्यका उपार्जन लिखा है

अथ पुण्यका फल बेतालीस प्रकार करके जोगनेंमें आता है, सो बेंतालीस प्रकार लिखते है १ जिसके उदयसें जीव शाता जोगता है, सो शातावेदनीय, २ जिसके उदयसें जीव क्षत्रियादि उच्च कुलमें उत्पन्न होता है, सो उच्चगोत्र, ३ जिसके उदयसें जीव मनुष्य गतिमें उत्पन्न होता है, सो मनुष्यगति, ४ जिसके उदयसें जीव देवगतिमें उत्पन्न होता है, सो देवगति, ५ जिसके उदयसें जीव अपांतराल गतिमें नियतदेश अनुश्रेणी गमन करता है, अरु नियत मर्यादापूर्वक अगोका विन्यास, अर्थात् स्थापन करनेवाली नामकर्मकी प्रकृतिकों आनुपूर्वी कहते हैं, उसमें जो मनुष्य गतिमें आने वाली जीवके उदयमें है, सो मनुष्यानुपूर्वी, ऐसेही ६ देवानुपूर्वी, ७ जिसके उदयसें जीव पंचेंद्रिय पणा पाता है, सो पंचेंद्रिय जाति अथ पांच शरीर कहते हैं ८ जिसके उदयसें जीव औदारिक वर्गणाके पुजलोंकों ग्रहण करके औदारिक शरीरकी रचना करता है, अर्थात् औदारिक शरीर पणे परिणाम करता है, सो औदारिक शरीर नामकर्मकी प्रकृति है, ऐसेही ए वैक्रियक, १० आहारिक, ११ तैजस, १२ कार्मण, इन पांचो शरीरोंकी प्रकृतियोंका अर्थ कर लेनां तथा अगोपांग तीन है, उसमें अग सो शिर प्रमुख, उपांग सो अंगुली प्रमुख हैं, शेष अगोपांग हैं, यथा १ शिर, २ गती, ३ पेट, ४ पीठ, ६ दो बाहु, ८ दो साथलां, यह आठ अंग हैं, तथा अगुल्यादि उपांग है, शेष नखादि अगोपांग है, जिसके उदयसें जीवकों आदिके तीन शरीरोंमें अगोपांगकी उत्पत्ति होवें, तिसका नाम तिन शरीरके अगोपांग है सो यह है, १३ औदारिक अगोपांग, १४ वैक्रिय अंगोपांग, १५ आहारक अगोपांग १६ जिसके उदयसें जीव आदिका सहनन जिसका नाम वज्रऋषजनाराच है, तहां वज्र नाम कीलिका है, अरु ऋषज नाम परिवेष्टन पट्ट अर्थात् उपर लपेटनेका हाड, तथा नाराच सो मर्कटवध इन तीनो रूपों करकें जो उपलक्षित है, तिसकों वज्रऋषजनाराच सहनन कहते हैं हाडके सचय सामर्थ्यका नाम सहनन है, यह सहनन औदारिक शरीर वालोमेंही होता है, १७ जिसके उदयसे जी

कर्म, ५ पुरुषाकार. इन पांचोमेंसूं एककों माने, तो वो मिथ्याज्ञानी मिथ्यादृष्टि है, अरु इन पांचोके समवायकों माने, तो सम्यक्ज्ञान अरु म्यक्दृष्टि है, इन पांच निमित्तोमेंसूं १ काल, २ स्वभाव, ३ नियति, इन नो निमित्तोंका स्वरूप क्रियावादीके मतमें लिख आये है अरु चउथा कृत कर्म, इनका स्वरूप आगें कर्मोके स्वरूपमें लिखेंगे अरु पांचमा पुरुषा र, सो जीवके उद्यमका नाम है. इन पांचों निमित्तोसें जगत्की प्रवृ निवृत्ति हो रही है, इन निमित्तोंहीसे नरकादि गतियोमें जीव जाते हैं, रु सुख दुःखका फल भोगते है, इन निमित्तोंके विना फलका दाता ई रादिक कोइभी नहीं, जे कर कोइ वादी इन पांचो निमित्तोंके समवाय ईश्वर माने, तब तो हमभी ईश्वर कर्त्ता मान लेवेंगे, क्योंकि जैनमतकी त्वगीतामें लिखा है, कि अनादि जो द्रव्यमें द्रव्यत्व शक्ति है, सोइ सर्व दार्थोंको उत्पन्न करती है,औ लयभी करती है, सो शक्ति चैतन्याऽचैत दि अनत स्वभाव वाली है, तिसकों कर्त्ता ईश्वर माननेंसे जैनमतकी हानी नहीं है ॥ इति अजीवतत्त्व संपूर्ण ॥ २ ॥

३ अथ पुण्यतत्त्व लिखते हैं प्रथम तो पुण्य उपार्जन करनेका नव कार हैं, "उक्त च स्थानांगसूत्रे ॥ अन्नपुण्णे पाणपुण्णे वत्थपुण्णे लेणपुण्णे सयणपु मणपुण्णे वयपुण्णे कायपुण्णे नमोक्कारपुण्णे इति सूत्रं ॥" व्याख्या –१ पात्र तांइ अन्नका दान करनेसे जो तीर्थंकर नामादि पुण्य प्रकृतिका बंध हो तिसका नाम अन्न पुण्य है ऐसेही २ पीनेंकों जल देवे, ३ वस्त्र देवे, ४ र नेकों स्थान देवे, ५ सोने बैठनेकों आसन देवे, ६ गुणिजनकों देख कर नमें तोष धरे, ७ बचन करके गुणिजनोंकी प्रशंसा करे, ८ काया कर पर्युपासन अर्थात् सेवा करे, ९ गुणिजनकों नमस्कार करे यह बात ण्यकी जो कही, सो कुछ जैनीयोंकेही देनेसें नहीं, किंतु किसी मत वाले कोइ क्यों न हो, कोइभी अनुकंपा करकें जिसकों दान देवेगा, वो पु उपार्जेगा, परंतु इतना विशेष है, कि पात्रकों जो दान देना है, सो पु अरु मोक्ष इन दोनोंकाही हेतु है, अरु जो अनुकंपा करकें सर्वजनों देवेगा, सो केवल पुण्यही उपार्जेगा जैनमतके किसी शास्त्रमें पुण्य करन निषेध नहीं क्योंकि जैनमतके ऋषभदेवादि चोवीश तीर्थंकर भये हैं, नोंनेंभी दीक्षा लेनेसें पहिलां एक क्रोड, आठ लाख, सोनइये दिन दि

र नामकर्म, ३४ जिसके उदयसे जीवके शिर प्रमुख अवयव शुन होते हैं, सो शुननामकर्म, ३५ जिसके उदयसें जीव सौजाग्यवान् होता है, सो सुजगनामकर्म, ३६ जिसके उदयसे जीवका स्वर कोकिलावत् रम णिक होवे, सो सुस्वर नामकर्म, ३७ जिसके उदयसें जीवका उपादेय वचन होवे, जो कुछ कहे, सो हो जावे, सो आदेय नामकर्म, ३८ जिस के उदयसे जीवकी विशिष्ट कीर्त्ति (यश) जगत्में विस्तरे, सो यशोनाम कर्म, ३ए जिसके उदयसे जीवकों चोशठ इंद्र पूजा करते है, अरु उपदे श द्वारा धर्म तीर्थका कर्त्ता होवे, सो तीर्थंकर नामकर्म, ४० तिर्यंचोंका आयु, ४१ मनुष्यायु, ४२ देवायु आयु उसकों कहते हैं कि जिसके उद यसें तिर्यंचादि नवमें जीव जाता है,जिस्से यह पूर्वोक्त तीन आयुकी जीव कों प्राप्ति होती है, सो तीन आयुकी प्रकृति जाननी यह बैतालीस प्रका र करकें पुण्य फल नोगनेमें आता है ॥ इति पुण्यतत्त्व संपूर्ण ॥ ३ ॥

४ अथ चौथा पापतत्त्व लिखते हैं पाप उसकों कहते हैं, कि जो आत्माका आनद रस पीवे, यह पाप जो है, सो पुण्यसें विपरीत नरका दि फलका प्रवर्त्तक होनेसें अशुन है, आत्माके साथ सबध है, कर्मपुद्ग लरूप है, यद्यपि बधतत्त्वके अंतर्नूतही पुण्य पाप है, तोनी न्यारे जो कहे हैं, सो पुण्य पाप विषे नानाविध परमतनेद निरासार्थ है, सो परम त यह है, सो कहते है कोइक मत वालोंका यह कहना है, कि एक पु ण्यही है, परंतु पाप नहीं तथा कोइक मतवाले कहते है, कि एक पाप ही है, परतु पुण्य नहीं तथा कोइक कहते हैं कि पापपुण्य दोनो आपस में अनुविद्ध स्वरूप हैं, मेचक मणि सरीखे, सो मिश्र सुख दुःख फलके हेतु हैं, इस वास्ते साधारण पुण्य पाप एक वस्तु है कोइक ऐसें कहते हैं कि मूलसेंती कर्मही नहीं है, सर्व जगत्में स्वनावसेंही विचित्रता सिद्ध है यह सर्व पूर्वोक्त मत मिथ्या हैं, क्योंकि सुख दुःख दोनो न्यारे न्यारे अ नुनवमें आते है, तिस वास्ते तिनके कारणनूत पुण्य पापनी स्वतंत्रही अंगीकार करणे योग्य हैं, परंतु एकिला पाप वा एकिला पुण्य वा मिश्रित मानने ठीक नहीं

अथ कर्मानाववादी नास्तिक अरु वेदांतिक कहते हैं,कि पुण्य पाप नो

वको आदिके समचतुरस्र सस्थानकी प्राप्ति होवें, तहां सम है चारों अस्र जिसके तुल्य शरीर लक्षण युक्त प्रमाण सहित, ऐसा आद्य सस्थान सुंदराकार मनोहर होवे, सो समचतुरस्र सस्थान नाम कर्मकी प्रकृति जाननी अब वर्ण, रस, गंध, स्पर्श, यह चारो कहते है तिनमें जिसके उदयसें १७ वर्ण कृष्णादिक, १९ रस तिक्तादिक, २० गंध सुरभ्यादिक, २१ स्पर्श मृडुआदिक, यह चारो शुभ होवे, सो वर्णादि चार प्रकृति जाननी. २२ जिस कर्मप्रकृतिके उदयसे जीवका शरीर न तो भारी होवे, जिसको जीव उठा न सके, अरु नतो हलका होवे, जो पवन करकें उड जावे, तिसका नाम अगुरु लघु है, तिसकी प्राप्ति होने, सो अगुरु लघु नामकर्म, २३ जिसके उदयसे प्राणी परकों हणे, अरु शरीरकी आकृति ऐसी होवे जिसके देखनेंसें दूसरोंको अभिभव होवे, सो पराघात नाम कर्म, २४ जिसके उदयसें उच्छ्वासन लब्धि अर्थात् उच्छ्वास लेनेकी शक्ति, आत्माकों होती है, सो उच्छ्वास नामकर्म, २५ जिसके उदयसें जीव प्रकाश अरु आतप शरीर पावे है, तिसका नाम आतप नामकर्म, २६ जिसके उदयसें जीव, उष्ण प्रकाशरूप उद्योत वाला शरीर पाता है, सो उद्योत नामकर्म, २७ जिस कर्मके उदयसें जीव विहायनाम आकाशका है, तिसमें जो गति सो विहायोगति, सो राजहंस सरखी गति होवे, सो सुविहायोगति नामकर्म, २८ जिसके उदयसें जीवके शरीरके अंगोपांगादिकोंको नियतस्थानमें स्थापने वाला सूत्रधार (कारीगर) समान अर्थात् नसा, जाल, माथेकी खोपडीके हाड, आंख, कानके पडदे, केश, नखादि सर्व शरीरके अवयवोंकों रचनेवाला निर्माण नामकर्मकी प्राप्ति होवे, सो निर्माण नामकर्म, २९ जिसके उदयसें जीवकों त्रस पणेकी प्राप्ति होवे, उष्णादि करकें तप्त हूआ विवक्षित स्थानसें छायादिकमें जानां, औ वो इंद्रियादिक पर्यायका जो फल भोगनां पावे, सो त्रस नामकर्म, ३० जिसके उदयसे जीव बादर अर्थात् स्थूल शरीर वाला होता है, सो बादर नामकर्म, ३१ जिस कर्मके उदयसें जीव ६ पर्याप्ति पीछें कही है वो पूर्ण करता है, सो पर्याप्तनामकर्म, ३२ जिसके उदयसें प्रत्येक एक एक जीवके एक एक शरीर होता है सो प्रत्येक नामकर्म, ३३ जिसके उदयसें जीवकों हाडादि अवयव स्थिर निश्चल होते है, सो स्थिर

दिक पक्ष हिंसादिक क्रियाकाभी श्लाघा मासभक्षी निर्दय आदि दृष्ट फलही है, तो फेर काहेको अदृष्ट धर्माधर्मका फल कल्पना करना? क्योंकि लोक जो हैं सो बाहुल्यता करकें दृष्ट फलमेंही प्रवृत्त होते हैं, खेती वणिज्यादि हिंसादिक क्रियामें बहुत लोक प्रवृत्त होते हैं, अरु अदृष्ट दान फलादि क्रियामें थोडे लोक प्रवृत्त होते है इस वास्ते कृषि हिंसादि अशुभ क्रियायोका अदृष्टफल पापरूप हम नहीं मानते

उत्तरपक्ष—जे कर तुमारा कहना ठीक होवे, तव तो परभवमें फलके अभावसें मरणके अनंतरही सर्व जीव विना यत्नके मोक्ष हो जावेंगे, तव तो प्राय संसार, शून्य हो जावेगा, तब संसारमें दुःखी कोइभी न होवेगा, दानादि शुभक्रियाके करने वाले तथा तिसका शुभ फल भोगने वाले ही रहने चाहियें, परंतु संसारमें दुःखी बहुत दीखते है, अरु सुखी थोडे दीखते हैं, तिस करकें जाना जाता है कि जे कृषी, वाणिज्य, हिंसादिक्रिया निबंधन अदृष्टपाप रूप फल, यह दुःखित जीवोंको है, अरु सुखी जीवोंकों दानादि अदृष्ट धर्मका फल है

वादी कहता है कि जो सुखी है, वो हिंसादि क्रियासें है, अरु जो दुःखी है, वो धर्म दानादिकके फलसें है ऐसें क्यों न हो जावे?

उत्तर—ऐसें नहीं होता है, क्योंकि अशुभक्रिया हिंसादिकके करने वालेही बहुत हैं, अरु शुभक्रिया दानादिकके करने वाले थोडे हैं, यह कारणानुमान है अथ कार्यानुमान कहते हैं कि जीवोंकों आत्मत्वके अविशेषभी हूआ नर पश्वादिकोंकी देहोंमें कार्य होनेसें विचित्रताका कारण है, जैसे घटका दण्ड, चक्र, चीवरादि सामग्री संयुक्त कुंभकार तथा ऐसे भी मत कहना कि दीखते जो है माता, पिता, सोइ इस देहके कारण है नतु पुण्य पाप, ऐसेभी मत कहना क्योंकि माता, पिता, एक सरीखेभी है, तोभी पुत्रोंके देहमें विचित्रता देखते हैं, सो विचित्रता अदृष्ट (शुभाशुभ कर्मके) विना नहीं हो सक्ती है, इस वास्ते जो शुभ देह है, सो पुण्यका कार्य है, अरु जो अशुभ देह है, सो पापका कार्य है, यह कार्यानुमान है सर्वज्ञके वचन प्रमाणसें पुण्य पापकी सत्ता सिद्ध है, विशेषार्थ पुरुषने विशेषावश्यककी टीका देख लेनी

पाप अठारह प्रकारसें बंधाता हैं, सो ब्यासी प्रकारसें भोगनेमें आता

है, सो आकाशके फूल सदृश असत् जानने, परंतु सत् नही, तो फेर पुण्य पापके फल नोगनेके स्थान नरक स्वर्ग क्यों कर माने जावे?

उत्तर –पुण्य पापके अन्नावसे सुख इःख निर्हेतुक होनेसे उत्पन्न होने चाहियें, सो प्रत्यक्ष विरोध है, सोइ दिखाते हैं, मनुष्यपणा सदृश है, तो नी कोइ स्वामी है, कोइ दास है, कोइ अपणाही उदर नर सक्ते है, कोइ अपणानी उदर नही नर सक्ते है, कोइ देवताकी तरें निरंतर सुख नोग विलास करते है, कितनेक नारकीकी तरें इःख नोग रहे है, इस वास्ते अनुनूयमान सुख इःखाके निबंधननूत पुण्य पाप जरूर मानने चाहियें जब पुण्य पाप माने, तब तिनोके उत्कृष्ट फल नोगनेके स्थान जो नरक स्वर्ग है, सोनी माने गये, जे कर न मानोगे, तब अर्द्ध जरतीय न्यायका प्रसंग होवेगा, आधा शरीर बूढा,आधा जुवान इसमें यह प्रयोग अर्थात् अनुमाननी है, सुख इःख कारण पूर्वक है, अंकुरवत् कार्य होनेसें इसीवास्ते जे सुख इःखके कारण हैं, सो मानने चाहियें जैसे अंकुरका बीज

पूर्वपक्ष –नीलादिक जे मूर्त्त पदार्थ हैं, जैसें वे नीलादिक स्वप्रतिनासि अमूर्त्त ज्ञानके कारण हैं, ऐसेंही अन्न, फूल माला, चंदन, स्त्रीयादिक मूर्त्त दृश्यमानही सुख अमूर्त्तोंके कारण होवेंगे सर्प विष, कंटकादिक सुखोंके कारण हैं, तो फेर काहेकों अदृष्ट पुण्य पापोंकी कल्पना करते हो?

उत्तरपक्ष –यह तुमारा कहना अयुक्त है, क्योंकि इस कहनेमें व्यनिचार है, तथाहि ॥ दो पुरुषोंके पास तुल्य साधननी है, तोनी फलमें बडा नेद दिखता है, तुल्य अन्नादिके नोगनेमेंनी किसीकों आल्हाद अर्थात् हर्ष दिखता है अरु दूसरेकों रोगोत्पत्ति देखते हैं,यह फलनेद अवश्य सकारण है, नहीं तो नित्य सत् नित्य असत् होना चाहियें, क्योंकि जो वस्तु कार्य कबे होवे, कबे न होवे, सो कारणके बिना नहीं होता है, अथवा कारणानुमानसें कार्य पुण्य पाप जाने जाते हैं, तहां कारणानुमान यह है, कि दानादि शुनक्रियाका अरु हिंसादि अशुनक्रियाका फलनूत कार्य कारण होनेसें है.कृष्यादि क्रियावत् जो इन क्रियायोंका फलनूत कार्य है, सो पुण्य पाप जानने जैसें खेती करनेवालेकी क्रियाका फल शालि, यव, गेहु, आदिक है

पूर्वपक्ष –जैसें कृष्यादि क्रियाका दृष्ट फल शाल्यादिक है, तैसें दाना

दिक पशु हिंसादिक क्रियाकाजी श्लाघा मासनही निर्दय आदि दृष्ट फ लही है, तो फेर काहेको अदृष्ट धर्माधर्मका फल कल्पना करना? क्योंकि लोक जो हैं सो बाहुल्यता करकें दृष्ट फलमेंही प्रवृत्त होने हैं, खेती ब णिज्यादि हिसादिक क्रियामें बहुत लोक प्रवृत्त होते हैं, अरु अदृष्ट दान फलादि क्रियामें थोडे लोक प्रवृत्त होते है इस वास्ते कृपि हिसादि अ शुज क्रियायोका अदृष्टफल पापरूप हम नहीं मानते

उत्तरपक्ष—जे कर तुमारा कहना ठीक होवे, तब तो परजवमें फलके अजावसें मरणके अनतरही सर्व जीव विना यत्नके मोक्ष हो जावेंगे, त ब तो प्राय ससार, शून्य हो जावेगा, तब ससारमें फु खी कोइजी न होवे गा, दानादि शुजक्रियाके करने वाले तथा तिसका शुज फल जोगने वाले ही रहने चाहियें, परतु ससारमें फु खी बहुत दीखते हैं, अरु सुखी थोडे दीखते हैं, तिस करकें जाना जाता है कि जे कृषी,वाणिज्य, हिसादिक्रि या निबधन अदृष्टपाप रूप फल, यह फु खित जीवोंकों है, अरु सुखी जीवोंकों दानादि अदृष्ट धर्मका फल है

वादी कहता है कि जो सुखी है, वो हिसादि क्रियासें है, अरु जो फु खी है, वो धर्म दानादिकके फलसें है असे क्यों न हो जावे?

उत्तर—असें नहीं होता है, क्योंकि अशुजक्रिया हिसादिकके करने वालेही बहुत हैं, अरु शुजक्रिया दानादिकके करने वाले थोडे हैं, यह कारणानुमान है अथ कार्यानुमान कहते हैं कि जीवोंकों आत्मत्वके अ विशेपजी हूआ नर पश्वादिकोंकी देहोंमें कार्य होनेसें विचित्रताका कारण है, जैसे घटका दम, चक्र, चीवरादि सामग्री सयुक्त कुजकार तथा असे जी मत कहना कि दीखते जो है माता, पिता, सोइ इस देहके कारण है नतु पुण्य पाप, असेजी मत कहना क्योंकि माता, पिता, एक सरीखेजी है, तोजी पुत्रोंके देहमें विचित्रता देखते हैं, सो विचित्रता अदृष्ट (शुजा शुज कर्मके) विना नहीं हो सक्ती है, इस वास्ते जो शुज देह है, सो पु ण्यका कार्य है, अरु जो अशुज देह है, सो पापका कार्य है, यह कार्या नुमान है सर्वज्ञके वचन प्रमाणसें पुण्य पापकी सत्ता सिद्धही है, विशे पार्थि पुरुपने विशेपावश्यककी टीका देख लेनी

पाप अगरह प्रकारसें बधाता हैं, सो ब्यासी प्रकारसे जोगनेमें आता

हैं, सो आकाशके फूल सदृश असत् जानने, परन्तु सत् नहीं, तो फेर पुण्य पापके फल भोगनेके स्थान नरक स्वर्ग क्यों कर माने जावे?

उत्तर –पुण्य पापके अभावसे सुख दुःख निर्हेतुक होनेसें उत्पन्न होने चाहियें, सो प्रत्यक्ष विरोध है, सोइ दिखाते है, मनुष्यपणा सदृश है, तो भी कोइ स्वामी है, कोइ दास है, कोइ अपणाही उदर भर सक्ते है, कोइ अपणाभी उदर नहीं भर सक्ते है, कोइ देवताकी तरें निरंतर सुख भोग विलास करते हैं, कितनेक नारकीकी तरें दुःख भोग रहे हैं, इस वास्ते अनुभूयमान सुख दुःखोंके निबंधनभूत पुण्य पाप जरूर मानने चाहियें जब पुण्य पाप माने, तब तिनोंके उत्कृष्ट फल भोगनेके स्थान जो नरक स्वर्ग है, सोभी माने गये, जे कर न मानोगे, तब अर्द्ध जरतीय न्यायका प्रसंग होवेगा, आधा शरीर बूढा, आधा जुवान इसमें यह प्रयोग अर्थात् अनुमानभी है, सुख दुःख कारण पूर्वक हैं, अंकुरवत् कार्य होनेसें इसीवास्ते जे सुख दुःखके कारण हैं, सो मानने चाहियें जैसें अंकुरका बीज

पूर्वपक्ष –नीलादिक जे मूर्त्त पदार्थ हैं, जैसें वे नीलादिक स्वप्रतिभासि अमूर्त्त ज्ञानके कारण हैं, ऐसेंही अन्न, फूल माला, चंदन, स्त्रीयादिक मूर्त्त दृश्यमानही सुख अमूर्त्तोंके कारण होवेंगे सर्प विष, कंटकादिक दुःखोंके कारण हैं, तो फेर काहेकों अदृष्ट पुण्य पापोंकी कल्पना करते हो?

उत्तरपक्ष –यह तुमारा कहना अयुक्त है, क्योंकि इस कहनेमें व्यभिचार है, तथाहि ॥ दो पुरुषोंके पास तुल्य साधनभी है, तोभी फलमें बडा भेद दिखता है, तुल्य अन्नादिके भोगनेमेंभी किसीकों आल्हाद अर्थात् हर्ष दिखता है अरु दूसरेकों रोगोत्पत्ति देखते हैं, यह फलभेद अवश्य सकारण है, नहीं तो नित्य सत् नित्य असत् होना चाहियें, क्योंकि जो वस्तु कार्य कदे होवे, कदे न होवे, सो कारणके बिना नहीं होता है, अथवा कारणानुमानसें कार्य पुण्य पाप जाने जाते हैं, तहां कारणानुमान यह है, कि दानादि शुभक्रियाका अरु हिंसादि अशुभक्रियाका फलभूत कार्य कारण होनेसें है कृष्यादि क्रियावत् जो इन क्रियायोंका फलभूत कार्य है, सो पुण्य पाप जानने जैसें खेती करनेवालेकी क्रियाका फल शालि, यव, गेहु, आदिक है

पूर्वपक्ष –जैसें कृष्यादि क्रियाका दृष्ट फल शाल्यादिक है, तैसे दाना

जो आवरण, सो ज्ञानावरण, सो तो पूर्वे लिख आये हैं अरु जो दर्शन का आवरण है, सो दर्शनावरण इनके नव भेद हैं, तिनमें जो आदिके चार भेद है, सो मूलसेही दर्शन लब्धियोंके आवरक होनेसे आवरण शब्द करकें कहे जाते हैं जैसे १ चक्षुदर्शनावरण, २ अचक्षुदर्शनावरण, ३ अवधिदर्शनावरण, ४ केवलदर्शनावरण अरु निद्रादि जे पांच है, सो दर्शनावरण क्षयोपशम करकें लब्ध आत्मलाभका दर्शन लब्धियोंका आवरक है, इसका भावार्थ यह है कि चक्षु करकें सामान्यग्राही जो बोध, सो चक्षुदर्शन, सो जिसके उदय करके तिसकी लब्धिका विघात करे, सो चक्षुदर्शनावरण ऐसेंही अचक्षु करके चक्षु वर्जके शेष चार इंद्रिय तथा पांचमा मन, इन करके जो दर्शन, सो अचक्षुदर्शन, तिसका जो आवरण, सो अचक्षुदर्शनावरण, तथा रूपी पदार्थोका जो मर्यादापूर्वक देखनां, सामान्यार्थका ग्रहण करनां, सो अवधिदर्शन, तिसका जो आवरण, सो अवधिदर्शनावरण तथा वर, प्रधान, क्षायक होनेसें केवल अनत ज्ञेयके होनेसे जो अनत दर्शन, सो केवलदर्शन, तिनका जो आवरण,सो केवलदर्शनावरण अरु जो चैतन्यकों सर्व तरसें अतिकुत्सित पणा करे, सो निद्रा दर्शन उपयोग सामान्य ग्रहण रूप, तिसका विघ्न करने वाली, सो निद्रा जाननी तिस निद्राके पांच भेद हैं १ निद्रा, २ निद्रा निद्रा, ३ प्रचला, ४ प्रचलाप्रचला, ५ स्त्यानार्द्धि तहां १ निद्रा उसकों कहते हैं, कि जो चपटी बजानेसें जाग उठे,सो सुखप्रतिबोधनिद्रा, जिसके उदयसें ऐसी निद्रा आवे तिसका नाम निद्रा है. तथा २ अतिशय करकें जो निद्रा होवे, उसका नाम निद्रानिद्रा है, जैसेकि बहुत हलानेसें दुखे जागे, कपडे खैंचनेसें जागे, जिसके उदयसे ऐसी निद्रा आवे, तिस कर्मप्रकृतिका नाम निद्रानिद्रा है तथा ३ जो बैठेकों खडेकों जो निद्रा आवे,तिसका नाम प्रचला है, जिस कर्मके उदयसें ऐसी निद्रा आवे, तिस कर्मका नाम प्रचला है, तथा ४ जो चलतेकों निद्रा आवें, तिसका नाम प्रचलाप्रचला है, जिस कर्मके उदयसें ऐसी निद्रा आवे, तिस कर्मकी प्रकृतिका नामभी प्रचलाप्रचला है, तथा ५ स्त्याना नाम है पिंडीभूतका सो पिंडीभूत है ऋद्धि आत्माकी शक्ति जिस निद्रामें सो स्त्यानार्द्धि, तिस निदमें वासुदेवके बलसें आधा बल होता है, जिस कर्म

है, सो भेद यह है, कि पांच ज्ञानावरण, पांच अंतराय, नव दर्शनावरण, मोहनीकी छवीश प्रकृति, नामकर्मकी चउत्तीस प्रकृति, एक अशातावेदनी, एक नरकायु, एक नीचगोत्र, यह सब मिल कर ब्यासी भेद हूये इनका विवरा लिखते हैं

अथ ज्ञानावरण कर्मकी पाच प्रकृति. प्रथम ज्ञान पांच प्रकारका है, उसमें मतिज्ञान, औ श्रुतज्ञान, ए दो अभिलाप छावितार्थ ग्रहणरूप ज्ञान हैं, तथा तीसरा इंद्रियोंकी अपेक्षा बिना आत्माकों साक्षात् अर्थके ग्रहणे वाला ज्ञान, सो अवधिज्ञान, चउथा मनमें चिंतित अर्थका साक्षात् करनेवाला ज्ञान, सो मन पर्यवज्ञान, पांचमा केवल संपूर्ण निःकलंक जो ज्ञान, सो केवल ज्ञान इन पांचों ज्ञानोंका जो आवरण सो ज्ञानावरण है, १ मतिज्ञानावरण, २ श्रुतज्ञानावरण, ३ अवधिज्ञानावरण, ४ मन पर्यव ज्ञानावरण, ५ केवलज्ञानावरण उसमें १ जिसके उदयसें जीव निर्म्मति नि प्रतिभा होता है, सो मतिज्ञानावरण, २ जिसके उदयसें पठन करते जीवकों कुछभी न आवे, सो श्रुतज्ञानावरण, ३ जिसके उदयसे अवधि ज्ञान न होवे, सो अवधिज्ञानावरण, ४ जिसके उदयसें मन पर्यवज्ञान न होवे, सो मन पर्यवज्ञानावरण, ५ जिसके उदयसें केवलज्ञान न होवे, सो केवल ज्ञानावरण यह पांच प्रकृति पापरूप है

अथ अंतराय कर्मकी पांच प्रकृति कहते हैं १ जिसके उदयसें देनेवाली वस्तुभी है, गुणवान् पात्रभी है, दानका फलभी जाना है, परंतु दान नहीं दे सक्ता है,सो दानांतराय,२ जिसके उदयसें देने योग्य वस्तुभी है, अरु दाताभी बहुत प्रसिद्ध है, तथा मांगने वालाभी मांगनेमें बडा कुशल है,तोभी मांगने वालेकों कुछभी न मिले,सो लाभांतराय,३ जिसके उदयसें एक वार भोगने योग्य वस्तु जो आहारादिक, सो विद्यमानभी है, तोभी भोग नहीं सका, सो भोगांतराय, ४ जिसके उदयसें वारंवार भोगने योग्य वस्तु जो शयन अंगनादि, सो विद्यमानभी है, तोभी भोग नहीं सका, सो उपभोगांतराय, ५ जिसके उदयसें अनुपहत पुद्गलवालाभी शक्ति विकल हो जाता है, सो वीर्यांतराय यह पांच प्रकृति पापरूप है

अथ दर्शनावरण कर्मकी नव प्रकृति लिखते हैं इहा जो सामान्य बोध है,तिसका नाम दर्शन है,अरु जो विशेष बोध है,सो ज्ञान है,तहां ज्ञानका

था संज्वलनका चार कषाय कहते है, क्रोध, पाणीकी लकीर समान, मान, तिनिशलताका स्थन समान, माया, बासकी छिल्लक समान, लोन, हरिद्रके रंग समान, यह चारो एक पक्षकी स्थिति वाले है, यह सोला कषायका स्वरूप लिखा अथ नवनो कषाय कहते है

स्त्रीवेद, पुरुपवेद, नपुसकवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, नय, जुगुप्सा यह नव नोकपाय मोहनीयकी प्रकृति है नोशब्द सहकारी अर्थमें हैं कपायोके सहचारि जो होवे, उनकों नोकपाय कहते हैं अब इन नव प्रकृतिका स्वरूप लिखते हैं १ जिसके उदयसे स्त्री, पुरुपकी अनिलाषा करती है, जैसें पित्तके उदयसें मीठी वस्तुकी अनिलापा होती है, फुफक अग्नि समान स्त्रीवेदक उदय है, जैसें फुफक अग्नि फोलनेसें वृद्धिमान् होती है, ऐसेंही स्त्रीके स्तन कक्षादिके स्पर्शनेसें स्त्रीवेदका प्रवल उदय होता है, तथा जिसके उदयसें पुरुप, स्त्रीकी अनिलापा करता है, सो पुरुपवेद जानना जैसे कफकें उदयसें खाटी वस्तुकी अनिलाषा होती है, यह पुरुपवेदका विकार असा है कि जैसी तृणकी अग्नि क्योंकि तृणकी अग्नि एक वारही प्रज्वलित होती है, अरु तत्काल शांतनी हो जाती है, असें पुरुपवेदनी एक वारही तत्काल उदय हो जाता है, फेर शांतनी तत्काल हो जाता है तथा जिसके उदयसे स्त्री, अरु पुरुष इनदोनोकी अनिलाषा उत्पन्न होवे, सो नपुसक वेद है, जैसें पित्त अरु कफकें उदयसें खट मीठी वस्तुकी अनिलाषा होती है यह नपुसक वेदका उदय असा है कि जैसा मोटे नगरके दाहकी अग्नि, यह तीन वेद हैं तथा जिसके उदयसें सनिमित्त निर्निमित्त हसना आवे, सो हास्यनामा मोहकर्मकी प्रकृति है, तथा जिसके उदयसें रमणिक वस्तुओमें रमे, खुशी माने, सो रतिनामा मोहकर्मकी प्रकृति है तथा इस्सें जो विपरीत होवे, सो अरतिनामा मोहकर्मकी प्रकृति है तथा जिसके उदय करकें प्रियवियोगादिमें विकल मन, शोचन, रुदन, परिदेवनादि करता है, सो शोकनामा मोहकर्मकी प्रकृति है, तथा जिसके उदयसें सनिमित्त अथवा विना निमित्तके नयन्नीत होवे, सो नयनामा मोहकर्मकी प्रकृति है, तथा गदादि मलिन वस्तुके देखनेसें जो नाक चढाना है, तिसका जो हेतु है,

कें उदयसें ऐसी निंद आवे, तिसका नाम स्त्यानार्द्धिकर्म है, इस निद्रा में कितनेक कार्यभी कर लेता है, परंतु उसकों कुछ खबर नहीं रहती है

अथ मोहकर्मकी प्रकृति लिखतेहैं मोहे तत्त्वार्थ श्रद्धानको विपरीत करे, सो मोहनीय है उसमें १ मिथ्यात्वही जो मोह, सो मिथ्यात्व मोहनीय कहीयें, मोह कर्मकी उत्तरप्रकृति मिथ्यात्व है, यद्यपि यह मिथ्यात्व १ अभिग्रहिक, २ अनभिग्रहिक, ३ सांशयिक, ४ अभिनिवेशिक, ५ अनाभोगादि अनेक प्रकारसें है, तोभी यथावस्थित वस्तुतत्त्वके अश्रद्धानसें सर्वभेदोंका एकही मिथ्यात्वरूप गिना जाता है यह प्रथम मिथ्यात्व मोह कर्मकी प्रकृति है, अरु सोला भेद, कषाय मोहनीयके हैं क्योंकि यह क्रोधादिकभी तत्त्वश्रद्धानसें भ्रष्ट कर देते हैं, सो सोला भेद ऐसे हैं, १ अनंतानुबंधी क्रोध, २ अनंतानुबंधी मान, ३ अनंतानुबंधी माया, ४ अनंतानुबंधी लोभ ऐसेही अप्रत्याख्यानी क्रोध, मान, माया, लोभ ऐसेंही प्रत्याख्यानी क्रोध, मान, माया, लोभ ऐसेंही सज्वलन, क्रोध, मान, माया, लोभ यह सर्व सोलह भेद कषायमोहनीयके हैं

जे क्रोधादिक अनंत संसारके मूल कारण हैं, अरु अनंतभवानुबंधि जिनका शील है, उसमें जिसका स्वभाव ऐसा है, कि जैसी पथ्थरकी रेखा, जिसके साथ क्लेश हो जावे, फेर जहां लगि जीवे, तहां लगि रोष न छोडे, सो अनंतानुबंधि क्रोध है, तथा मान, पथ्थरके स्थंभ सरिखा कदापि नमे नहीं, तथा माया, बांसकी जड समान, कदापि सरल न होवे, तथा लोभ, कृमीके रंग समान, कदापि दूर न होवे, ऐसें क्रोध, मान, माया, अरु लोभ करकें संयुक्त जो परिणाम है, तिसका नाम अनंतानुबंधि क्रोधादिक कर्म प्रकृति है तथा अप्रत्याख्यान यहां नञ् अल्पार्थ वास्ते है, सो थोडाभी प्रत्याख्यान जिसके उदय होनेसें नहीं होता है, उसकों अप्रत्याख्यान कहते हैं इसका स्वरूप कहते हैं क्रोध, पृथिवीकी रेखा समान, मान, हाडके स्थंभ समान, माया, मेषके सींग समान, लोभ, कर्दमके दाग समान, एक वर्ष तांइ रहता है तथा जिसके उदयसें सर्व विरतिपणा जीवकों न आवे, सो प्रत्याख्यानावरण कषाय है उसमें क्रोध, रेणुकी रेखा समान, मान, काष्ठके स्थंभ समान, माया, गौके मूतने समान, लोभ, खजनके रंग समान चार मास जिसकी रहनेकी स्थिति है त

४ कुब्ज, ५ हुमक, यह पांच संस्थान इनका स्वरूप लिखते हैं तहा १ न्यग्रोधवत् वडवृक्षकी तरें परिमंमल, न्यग्रोधपरिमंमल जैसें वडवृक्ष उपरि संपूर्ण अवयववाला होता है, अरु हेठें तैसे नहीं होता है, तैसेंही यह संस्थान नाभिके उपरि तो विस्तार बाहुल्य संपूर्ण लक्षणवाला है, अरु नाभिके हेठे संपूर्ण लक्षण नहीं, सो न्यग्रोधपरिमंमल संस्थान दूसरा है २ तथा सादि आदि इहां उचपणा नाभिसें हेठला देहका विभाग, सो लक्षणों करकें पूर्ण, अरु नाभिसे उपरि लक्षण विसवादी होवे, तिसका नाम सादिसंस्थानहै तथा ३ हाथ, पग, शिर, ग्रीवा, यथोक्त लक्षणादि युक्त, अरु शेष उदरादिरूप कोष्ठ शरीरमध्य, लक्षणादि रहित, सो वामननामा संस्थान है ४ तथा उर उदरादि, लक्षण युक्त होवे, अरु हाथ पगादि लक्षणों रहित होवे, सोकुब्जसंस्थान हैं, ५ तथा जिसके शरीरका एक अवयवभी सुंदर न होवे, सो हुमसंस्थान जान लेनां यह पांचसंस्थान

२२ जिसके उदयसें वर्णादि चार अप्रशस्त होवे, सो कहते हैं कि जो अति बीभत्स दर्शन, कृष्णादि वर्ण वाला प्राणी होता है, सो अप्रशस्त वर्णनाम सो वर्ण, कृष्णादि भेदों करके पांच प्रकारका है, तिनो करकें जो जीव युक्त होवे, सो अप्रशस्त वर्णनाम ऐसेंही जिसके उदयसें कुथित मृतमूशकादिवत् दुर्गंधता प्राणीयोंके शरीरमें होवे, सो अप्रशस्तगंधनाम तथा जिसके उदयसे प्राणीयोंकी देहमें रसनेंद्रियकों दुःखदायी स्वभाववाला कौहीतोरीकी तरें तिक्त कटुकादि ऐसा असार रस होवे, सो अप्रशस्तरसनाम तथा जिसके वशसें स्पर्शेंद्रियकों उपतापका हेतु ऐसा कर्कशादि स्पर्शविशेष, जीवोंके देहमें होवे, सो अप्रशस्तस्पर्शनाम यहवर्णादिचार

२३ तथा जिसके उदयसें अपणेही शरीरके अवयवो करकें प्रतिजिह्वा, गल, वृंद, लंबक, चोर दांतादिक शरीरके अंदर वर्द्धमान हो करके शरीरहीकों पीडा देते हैं, तिसका नाम उपघातनाम तथा २४ जिसके उदयसें जीवोंकों खर उटादिककी तरें चलनां, अप्रशस्त होवे, सो कुविहायोगति नाम तथा २५ जिसके उदयसें पृथिवी आदिक एकेंद्रिय स्थावरकायमें प्राणी उत्पन्न होता है, अरु स्थावरनामसें कहे जाते हैं, सो स्थावरनाम. २६ जिसके प्रभावसें लोकव्यापि सूक्ष्म, पृथिवी आदि जीवोमें जीव उत्पन्न होता है, सो सूक्ष्मनाम २७ जिसके उदयसें आहार पर्याप्ति आ

सो जुगुप्सानामा मोहकर्मकी प्रकृति है. यह नव नोकषाय मोह कर्मकी प्रकृति हैं, यह सर्व पैंतालीस भेद हुये

अथ नामकर्मकी चवत्तिस प्रकृति पापरूप हैं, उसका नाम कहते हैं १ नरक गति, २ तिर्यंचगति, ३ नरकानुपूर्वी, ४ तिर्यंचानुपूर्वी, ५ एकेंद्रिय जाति, ६ द्वींद्रियजाति, ७ त्रींद्रियजाति, ८ चतुरिंद्रियजाति, १३ पांच संहनन, १८ पांच संस्थान, १९ अप्रशस्त वर्ण, २० अप्रशस्तगंध, २१ अप्रशस्त रस, २२ अप्रशस्त स्पर्श, २३ उपघात, २४ कुविहायोगति, २५ स्थावर, २६ सूक्ष्म, २७ अपर्याप्त, २८ साधारण, २९ अथिर, ३० अशुभ, ३१ असुभग, ३२ दुस्वर, ३३ अनादेय, ३४ अयश कीर्ति

इनका स्वरूप ऐसे हैं १ नरकगति उसकों कहते हैं कि जिसके उदय सें नारकी नाम पडे, अरु नरकगतिमें ले जावे, २ ऐसेंही तिर्यंचगतिभी जान लेनी, तथा ३ जिसके उदयसें नरकगतिमें जाते हूये जीवकों दो समयादि विग्रहगति करकें अनुश्रेणीमें नियत गमन परिणति होवे, सो नरकगतिके सहचारी होनेसें नरकानुपूर्वी कहियें ४ ऐसेंही तिर्यंचानुपूर्वी भी जान लेनी तथा ५ जिसके उदयसें एकेंद्रिय जो पृथिवी, जल, अग्नि, पवन, बनस्पति इनमें जीव उत्पन्न होता है, सो एकेंद्रिय जाति ६ ऐसेही द्वींद्रिय जाति, ७ त्रींद्रियजाति, ८ चतुरिंद्रिय जाति

सथाआद्य संहनन वर्जके शेष, ऋषभनाराच, नाराच, अर्द्धनाराच, कीलिका, सेवार्त्त, यह पांचो, संहननोंके नाम हैं इनका स्वरूप ऐसा है कि "ऋषभ परिवेष्टनपट्ट नाराच उभयतोमर्कटबंध" दोनो हाडोंकों दोनों पासें मर्कटबंधन बांधके पट्टेकी आकृति समान हाडकी पट्टी उपर वेष्टन जिसके है, सो दूसरा ऋषभनाराच संहनन है तथा वज्र ऋषभ करकें हीन दोनों पासें मर्कटबंध युक्त, तीसरा नाराच नामक संहनन है, तथा एक पासें मर्कटबंध अरु दूसरे पासें कीलि करकें वींध्या हूआ हाड, यह चउथा अर्धनाराचनामा संहनन है, तथा ऋषभ अरु नाराच, इन करकें वर्जित मात्र कीलि करके बींधे हूये दोनों हाड, ऐसा जो हाडका संचय, सो पांचमा किलिका नामा संहनन है, तथा दोनो हाडका स्पर्श पर्यंत लक्षण है जिसमें, अरु मूठी चांपी करानेमें आर्त्त (पीडित) सो सेवार्त्त नामा संहनन है

तथा १८ आद्य संस्थान वर्जके १ न्यग्रोध परिमंडल, २ सादि, ३ वामन,

जगत्में होता है, सो निमित्तके विना नहीं होता है, यह जो निल्ल, को ल, धांगड, धाणक, गधीले, चमाल, थोरी, वाघरी, सासी, कजर प्रमुख अ सभ्य जातिके लोक हैं, सो जगलोमें गामोंके वाहिर रहते हैं, अनेक प्रका रके क्लेश सहते हैं, काले, डुर्गंधवाले, रूपमें बुरे शरीर पाते है, सुंदर खा नेकों नहीं मिलता है, यह सब इनके निमित्त है? अथवा निमित्त नहीं? जे कर कहोगेकि विनाही निमित्तके होते हैं, तब तो तुम नास्तिक मती हो, इस नास्तिकमतीका खमन हम पूर्व लिख आये हैं,जे कर कहोगेकि सनि मित्तक हैं तब तो अैसे असभ्य जातिके कुलमें उत्पन्न होनेका कारणजी जरुर चाहियें जिसके उदयसें अैसे कुलमें उत्पन्न होता है, तिसकाही नाम नीचगोत्र है, इस नीचगोत्रके प्रनावसें औरजी बहुत पाप प्रकृतियों का उदय है, जिस्सें वे डुखादि क्लेश पाते हैं बुद्धिहीन, जालमस्वनाव, निर्दयता, कुत्सित आहार, पशुओंकी तरें जंगलोमें वास, धर्मकर्मसे परा ङ्मुख, सत्सग रहित, गम्यागम्यके विवेक रहित, नक्ष्यानक्ष्य पेयापेया विचार शून्य, इन सबका मुख्य कारण नीचगोत्र है, जैसेंही धनवान् और निर्धन ए दोनें एक सरीखे सर्वथा नहीं हो सके हैं, तैसें नीचगोत्र वाले उचगोत्र वालोंके सदृश नहीं हो सक्के हैं

जे कर कहोगे कि विलायतमें सर्व एक सरीखे हैं, तो इस वातमें क्या आश्चर्य है? जहां उच नीच पणा नहीं, तहां सर्व जीवोने एक सरीखा गोत्रकर्मका बंध करा है, इस वास्तेही सर्व सरीखे हुये हैं, परंतु जहां उं च नीचपणां माना जायगा, तहां अवश्यमेव उच नीच गोत्रका व्यवहा र जरुर होवेगा, अरु जो हीन जातियोंकों बुरे जानते हैं, सो बुद्धिमान् नहीं, क्योंकि बुराइ तो खोटे कर्मोंके करनेसें होती है, जे कर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, हो कर खोटे कर्म, जीवहिंसा, जूठ, चोरी, परस्त्रीगमन, पर निंदा, विश्वासघात, कृतघ्न, मांसनक्षण, मदिरापान, इत्यादिक जो कुकर्म करेगा, हम उनकों जरुर बुरा मानेंगे, अरु नीच जातिवाला है, सोनी जे कर सुकर्म करेगा, दया, सत्य, चोरीका त्याग, परस्त्रीत्याग, इत्यादि करेगा, तो हम अवश्य उसकों अछा कहेंगे, तो फेर हमारी समज किसी रीति सें बुरी है अरु जो उसके साथ खाते नहीं है, यह कुलरूढी है, अरु जो नीच जातिवालोंकी निंदा (जुगुप्सा) करते हैं, वे अज्ञानी हैं, निंदा जु

दिक पूर्वोक्त पर्याप्ति पूरी न होवे, सो अपर्याप्तनाम २८ जिसके उद यसें अनंत जीवोंका साधारण एक शरीर होवे, सो साधारण नाम १९ जिसके उदयसें जिह्वादि अवयव, शरीरमें अस्थिर होवे, सो अस्थिर नाम ३० जिसके उदयसे नाभिके हेठले अवयव अशुभ होवे, सो अशुभ नाम क्योंकि किसीकों हाथ लग जावे, तो रोष नहीं करता, परंतु पग लगनेसे क्रोध करता है, इस वास्ते अशुभनाम है ३१ जिसके उदयसें जीवकों जो जो देखे, तिस तिसकों वो जीव अनिष्ट लगे, उद्वेगकारी होवे, सो असुभगनाम ३२ जिसके उदयसे कठोर, भिन्न, हीन, दीन, स्वर वाला जीव होवे, सो दुस्वरनाम ३३ जिसके उदयसें चाहो युक्तियुक्तभी बोले, तोभी तिसका कहनां कोइ न माने, सो अनादेय नाम ३४ जिसके उदयसें जीव, ज्ञान विज्ञान दानादिक गुण युक्तभी है, तोभी जगत्में उसकी यश (कीर्त्ति) नहीं होती बलके उलटी निंदा जगत्में होती है, सो अयश कीर्त्तिनाम ॥ इति नामकर्मकी चउत्तीस पापप्रकृति कही

जिसके उदयसें जात्यादि करकें विकल जीव होता है, सो नीचगोत्र जाननां नीचगोत्र उसकों कहते हैं, कि जो अधम कैवर्त्त,चांडालादि, "कुल गूयते सशब्द्यतेऽनेन हीनोयमजातिरित्यादि शब्दैरिति गोत्र कुल नीचमिति विशेषणाऽन्यथानुपपत्त्या नीचैर्गोत्रमित्यर्थ "

प्रश्न – यह जो तुम नीच गोत्रके उदयसें नीच कुल कहते हो, तिनों के साथ खान, पान, नहीं करते हो, तिनोंकी छूत मानते हो, अरु निंदा जुगुप्साभी करते हो, यह तुमारी बडी अज्ञानता है, क्योंकि मनुष्यत्व धर्म करकें सर्व सरीखे हैं, एक सरीखे हाथ पगादि अवयव हैं, तो फेर एककों उंच माननां, तथा एककों नीच माननां, यह केवल ब्राह्मण, और जैनीयोनें बुरी रसम,भारतवर्षमें जारी कर रक्खी है, इस बातमें क्या युक्तिका अंग है? क्योंकि भारत वर्षीयोंकों वर्जके और सर्व द्वीप द्वीपांतरमें तथा भारतवर्षमेंभी सर्व विलायतादिकमें कोइभी उच नीच नहीं गिनते हैं, सर्व निवाले प्यालेमें एक है, यह भि केवल तुमारी मूढता अर्थात् अंध परंपरा है, वास्तवमें उंच नीच कोइभी नहीं

उत्तर –यह तुमारा कहनां बहुत वे समझका है, क्योंकि तुम हमारे कहेका अभिप्राय नहीं जानते, हमारा अभिप्राय तो यह है, कि जो इस

जगत्में होता है, सो निमित्तके विना नहीं होता है, यह जो भिल्ल, को ल, धांगड, धाणक, गधीले, चमाल, थोरी, बाघरी, सांसी, कजर प्रमुख अ सभ्य जातिके लोक है, सो जगलोंमें गामोंके बाहिर रहते हैं, अनेक प्रका रके क्लेश सहते हैं, काले, दुर्गंधवाले, रूपमें बुरे शरीर पाते है, सुंदर खा नेकों नहीं मिलता है, यह सब इनके निमित्त है? अथवा निमित्त नहीं? जे कर कहोगेकि विनाही निमित्तके होते हैं, तब तो तुम नास्तिक मती हो, इस नास्तिकमतीका खमन हम पूर्व लिख आये हैं, जे कर कहोगेकि सनि मित्तक हैं तब तो ऐसे असभ्य जातिके कुलमें उत्पन्न होनेका कारणजी जरुर चाहियें जिसके उदयसें ऐसे कुलमें उत्पन्न होता है, तिसकाही नाम नीचगोत्र है, इस नीचगोत्रके प्रनावसें औरजी बहुत पाप प्रकृतियों का उदय है, जिस्सें वे दुखादि क्लेश पाते हैं बुद्धिहीन, जालमस्वनाव, निर्दयता, कुत्सित आहार, पशुओंकी तरें जंगलोंमें वास, धर्मकर्मसे परा ङ्मुख, सत्सग रहित, गम्यागम्यके विवेक रहित, नक्ष्यानक्ष्य पेयापेया विचार शून्य, इन सबका मुख्य कारण नीचगोत्र है, जैसेंही धनवान् और निर्द्धन ए दोनें एक सरीखे सर्वथा नहीं हो सके हैं, तैसें नीचगोत्र वाले उचगोत्र वालोंके सदृश नहीं हो सक्ते हैं

जे कर कहोगे कि विलायतमें सर्व एक सरीखे हैं, तो इस बातमें क्या आश्चर्य है? जहां उच नीच पणा नहीं, तहां सर्व जीवोने एक सरीखा गोत्रकर्मका बंध करा है, इस वास्तेही सर्व सरीखे हुये हैं, परंतु जहां उं च नीचपणां माना जायगा, तहां अवश्यमेव उच नीच गोत्रका व्यवहा र जरुर होवेगा, अरु जो हीन जातियोंकों बुरे जानते हैं, सो बुद्धिमान् नहीं, क्योंकि बुराइ तो खोटे कर्मोंके करनेसें होती है, जे कर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, हो कर खोटे कर्म, जीवहिंसा, जूठ, चोरी, परस्त्रीगमन, पर निंदा, विश्वासघात, कृतघ्न, मांसनक्षण, मदिरापान, इत्यादिक जो कुकर्म करेगा, हम उनकों जरुर बुरा मानेंगे, अरु नीच जातिवाला है, सोनी जे कर सुकर्म करेगा, दया, सत्य, चोरीका त्याग, परस्त्रीत्याग, इत्यादि करेगा, तो हम अवश्य उसकों अछा कहेंगे, तो फेर हमारी समझ किसी रीति सें बुरी है अरु जो उसके साथ खाते नहीं है, यह कुलरूढी है, अरु जो नीच जातिवालोंकी निंदा (जुगुप्सा) करते हैं, वे अज्ञानी हैं, निंदा जु

गुप्सा तो किसीकीनी करनी न चाहियें अरु जो तिनकी नूत मानते हैं, वोनी कुलारूढी है, अरु जो मनुष्यत्व धर्म करकें सरीखे है, तोनी जैसें माता, वहिन, बेटी, नार्या, यह सब स्त्रीत्व स्वरूप करक समान हैं, तोनी जैसें अगम्य गम्यका विनाग है, तैसेंही उच नीचकानी विनाग है, यह व्यवहार ब्राह्मण, अरु जैनोने नहीं बनाया है, किंतु अछे बुरे कर्मोंके उदयसें है, यह परस्पर जातिका आहार न खानेका व्यवहार मिश्रदेशमेंनी था, इस वास्ते उच नीच गोत्रके प्रनावसेंही उच नीच जाति होती है

तथा आयु कर्ममेंसू नरकायुकी प्रकृति पापमें गिनी जाती है,नरक शब्दकी व्युत्पत्ति ऐसे है, " नरान् प्रकृष्टपापफलनोगाय गुरुपापकारिण प्राणिनोनरानित्युपलक्षणत्वात् कायंति शब्दयतीति नरकास्तेष्वायुस्तद्भव प्रायोग्यसकलकर्मप्रकृतिविपाकानुनवकारण प्राणधारण यत्तन्नरकायुष्क तद्विपाकवेद्यकर्म्मप्ररुतिरपि नरकायुष्कमिति ॥ "

तथा वेदनीकर्मकी अशातावेदनी पाप प्रकृतिमें गनी जाती है, सो अशाता नाम दुःखका है, जिसके उदयसें जीव दुःख नोगता है, तिसका नाम अशातावेदनी है

यह ज्ञानावरणी पांच, अंतराय पांच, दर्शनावरणी नव,मोहनी छवीस, नामकर्मकी चौत्तीस, नीचगोत्र एक, नरकायु एक, तथा अशातावेदनी एक, सब मिल कर व्यासी नेदें पाप फल नोगनेमें आता है ॥ इति पाप तत्त्वसंपूर्ण॥

अथ आश्रवतत्त्व लिखते हैं मिथ्यात्वादि आश्रवके हेतु हैं १ असत् देव, २ असत् गुरु, ३ असत् धर्म, इनों विषे सत् देव, सत् गुरु, अरु सत् धर्म, ऐसी जो रुचि, तिसका नाम मिथ्यात्व है तथा हिंसादिकसें जो न निवृत्तनां, तिसका नाम अविरति है, तथा प्रमाद मद्यादि, तथा कषाय क्रोधादय, अरु योग मन वचन कायाका व्यापार, ये मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय, अरु योग, यह पांच पुनर्बंधक जीवके ज्ञानावरणीयादिक कर्मोंके बंधके हेतु हैं, इसकों जैन मतमें आश्रव कहते हैं आश्रवें कर्म जिनोसेंती सो आश्रव तब तो मिथ्यात्वादि विषयादिक मन,वचन,कायाका व्यापारही शुनाशुन कर्मबंधका हेतु होनेसें आश्रव होय यह तात्पर्य है

प्रश्न —बंधके अनाव होये कैसें आश्रवकी उत्पत्ति है ? जे कर कहोगे कि आश्रवसें पहिलां बंध है, तबतो वो बंधनी आश्रवहेतु विना नहीं

हो सक्ता है, क्योंकि जो जिसका हेतु है, सो तिसके अभाव हूया नहीं हो सक्ता है, जे कर होवेगा, तब अतिप्रसंग दूषण होवेगा

उत्तर—यह कहनां असत् है, क्योंकि आश्रवकों पूर्वबध अपेक्षया कार्य पणा है, अरु उत्तरबधापेक्षया कारणत्व है, ऐसेही बधकोंभी पूर्वोत्तर आश्रवकी अपेक्षा करकें कार्यत्व कारणत्व जाननां, बीजांकुरकी तरें बधाश्रव दोनोंका परस्पर, कार्य कारण भावका नियम है, यहां इतरेतर दूषण नहीं है, प्रवाहापेक्षा करकें अनादि होनेसे

यह आश्रव पुण्य पापका बधहेतु होने करके दो प्रकारें हैं, यह दोनों भेदोंके मिथ्यात्वादि उत्तर भेदोंके उत्कर्षापकर्ष, अर्थात् अधिक न्यून होनेसें अनेक प्रकार हैं इस शुभाशुभ मन वचन कायके व्यापार रूप आश्रवकी सिद्धि अपणी आत्मामें स्वसवेदनादि प्रत्यक्षसे है, अरु दूसरोंमें वचन काय व्यापारकी प्रत्यक्षसें सिद्धि है, औ शेषकी तिसके कार्य प्रभव अनुमानसें जाननी तथा आप्तप्रणीत आगमसें जाननी.

अथ आश्रवके उत्तर भेद बैंतालीस हैं, सो लिखते हैं पांच इंद्रिय, चार कषाय, पांच अव्रत, पच्चीश क्रिया, तीन योग, यह बैंतालीस भेद हैं

जीवरूप तलावमें कर्मरूप पाणी जिस करकें आवे, सो आश्रव है, तहां इंद्रिय पांच हैं, तिनका स्वरूप कहते हैं, १ स्पर्शीयें स्वविषय स्पर्श लक्षण, जिस करकें सो स्पर्शेंद्रिय, २ "रस्यते आस्वाद्यते रसोऽनयेति" आस्वादियें रस लीजीयें जिस करकें सो रसना (जिव्हा) इंद्रिय, ३ सूंघीयें गध जिस करकें सो घ्राणेंद्रिय (नासिकेंद्रिय,) ४ चक्षु (लोचन,) ५सुणियें शब्द जिस करके सो श्रोत्रेंद्रिय यह पांच इंद्रिय मूलभेदकी अपेक्षासें पांच कारण आश्रवके हैं

"क्रुध्यति कुप्यति" सचेतन अचेतन वस्तुमें क्रोध जो करे, सनिमित्त, निर्निम्मित्त येन जिस करकें प्राणी, सो क्रोधवेदनीय कर्म है, तिसका उदय भी उपचारसें क्रोध है ऐसेही मान, माया, अरु लोभमेंभी कह देनां इसमें मान आठ प्रकारका है, तिसका नाम कहते हैं १ जातिमद, २ कुलमद, ३ बलमद, ४ रूपमद, ५ ज्ञानमद, ६ लाभमद, ७ तपोमद, ८ ऐश्वर्यमद १ जातिमद, उसकों कहते हैं जो अपणी माताके पक्षका अभिमान करेकि मेरी माता ऐसे बडे घरकी बेटी है, इस तरें आपकों उंचा माने,

अरु दूसरोंकों निंदे, इसका नाम जातिमद है, २ कुलमद सो है, कि जो अपने पिताके पक्षका अभिमान करे, जैसेकि मेरे पिताका बडा उंच कुल है, इस तरें आपको बडा माने, औरोको निंदे, तिसका नाम कुलमद है, ३ जो अपणे बलका अभिमान करे, अरु दूसरोंके बलकों निंदे, सो बल मद, ४ जो अपने रूपका अभिमान करे, दूसरोके रूपकू निंदे, सो रूपम द, ५ जो अपने आपकों बडा ज्ञानी जाने, अरु दूसरोंकों तुछमति जाने, सो ज्ञानमद, ६ जो अपणे आपकों बडा नसीबे वाला समझे, अरु दूस रोंकों हीण पुण्यी समझे, सो लाभमद, ७ जो तप करकें अभिमान करेकि मेरे समान तपस्वी कोइ नहीं, सो तपोमद, ८ जो अपणी ऐश्वर्यताका अभिमान करे, दूसरोंकों घासतू समझे, सो ऐश्वर्यमद इस प्रकारसें मान के आठ भेद हैं तथा तीसरी माया, सो "मयति गछति" अर्थात् जावे, तिस तिस विकारोंकों परवचनेके अर्थें जीव, उसकों माया (कपट) कहते हैं तथा जिस करकें परधनमें गृद्धी होवे, तिसकों लोभ कहते हैं, इन चारोंकों कषाय कहते हैं यह चार कषाय हैं

अथ पांच अव्रत कहते हैं, तहां पांच इंद्रिय, ६ मनोबल, ७ वच नबल, ८ कायबल, ९ उश्वासनिश्वास, १० आयु, यह दस प्राण हैं इ न दश प्राणोंके योगसें जीवकोंभी प्राण कहियें हैं तिन प्राणोंका जो व ध (हननां) अर्थात् मारनां सो प्रथम प्राणवध अव्रत जाननां तथा २ झूठ बोलनेका नाम मृषावाद है तथा ३ दूसरोंकी वस्तु चुराय लेनी, ति सका नाम अदत्तादान है, तथा ४ स्त्री पुरुषका जो जोडा, तिसका नाम मिथुन है, इन दोनोंके मिलनेसें जो कर्म, सो मैथुन (अब्रह्म सेवन) त था ५ " परिगृह्यते " सर्व ओरसें अंगीकार करियें, चार गतिके निबंधन कर्म जिस करके, सो परिग्रह, इन पांचोंके चार चार भेद हैं, सो कहते हैं

१ एक द्रव्यें हिंसा है, परंतु भावें नहीं, २ एक द्रव्यें हिंसा नहीं, परंतु भावें है, ३ एक द्रव्येंभी हिंसा है, अरु भावेंभी हिंसा है, ४ एक द्रव्येंभी हिंसा नहीं, अरु भावेंभी हिंसा नहीं, यह प्रथम अव्रतके चार भेद कहे तिसमें प्रथम भंगका स्वरूप ऐसें है कि साधुकी समाचारी प्रतिलेखना क रनेसें, मार्गमें विहार करनेसें, नदी आदिकके लंघनेसें, नावमें बेठ कर नदी उतरनेसे, नदीमें साध्वी आदिकके काढनेसें, वर्षा वर्षतामें शोच जानेसें,

ग्लानि रोगीकी लघुशंकाको मेघ वर्षतामें गेरनेसें, गुरुके शरीरमें वाय तथा थकेवा दूर करके मूठी चापी करनेसे, जो हिंसा होती है, सो सर्व द्रव्यहिंसा है, तथा श्रावकको जिनमंदिर वनानेसे, जिनपूजा करनेसें, सधर्म्मिवत्सल करनेसे, तीर्थयात्रा जानेसे, रथोत्सव, अठाइ उत्सव, प्रतिष्ठा अरु अंजनशलाका करनेसें, तथा भगवान्के सन्मुख जानेसें, गुरुके सन्मुख जानेसें, इत्यादि कर्त्तव्यसें जो हिंसा होवे सो सर्व द्रव्यहिंसा है, परंतु भावहिंसा नहीं. इसका फल अल्प पाप, अरु बहुत निर्ज्जरा है यह भगवती सूत्रमें लिखा है, यह हिंसा साधु आदि करते हैं परंतु उनका परिणाम उस अवसरमें खोटे नहीं है, इस वास्ते द्रव्यहिंसा है

प्रश्न–यज्ञादिमें जो गोमेध प्रमुख जीव मारे जाते हैं, यहभी द्रव्यहिंसा क्यों नहीं ? इसका उत्तर, मीमांसक मत खंडनमें लिख आये हैं, सो देख लेनां यह प्रथम भंग

दूसरे भंगमें द्रव्यहिंसा नहीं परंतु भाव हिंसा है, तिसका स्वरूप कहते हैं, कि जो पुरुष उपरसें तो शांतिरूप बना हूआ है परंतु परिणाम अंतःकरण जिसका खोटा है, वो ऐसा चाहता है कि मेरे शत्रुके घरमें आग लग जावे, मरी पड जावे, नदीमें डूब जावे, चोरी हो जावे, वंदीखानेमें पडे, तथा वेष वदलके भला मानस बनके ठग बाजी करे, तथा अगलेका बुरा करनेके वास्ते अनेक प्रकारसें उसकों विश्वास करावे, तथा फकीरीका वेष करकें लोकोसें धन एकठा करे, इत्यादि तथा साधुके गुण तो उसमें नहीं हैं, परंतु लोकोंमें अपने आपको गुणी प्रकट करे, इत्यादिक काममें द्रव्य हिंसा तो नहीं करता, परंतु भावसें तो वो पुरुष, हिंसक है, इसका फल संसारमें भ्रमण करने सीवाय और कोइ फल नहीं यह दूसरा भंग

तीसरे भंगमें प्रकट इंद्रियोकी विषयमें गृध्र हो कर जीवहिंसा कसाइ, (खटिक) वागुरी अहेडी, (शिकार मारनां) विश्वासघात, इत्यादि करके जीवहिंसा करनी, अरु मनमें आनंद माननां, इसका फल दुर्गति है, यह द्रव्येंभी हिंसा है, अरु भावेंभी हिंसा है, यह तीसरा भंग

चौथा भंगमें द्रव्येंभी हिंसा नहीं, अरु भावेंभी हिंसा नहीं, उसको हिंसा कहनां यह भंग शून्य है, इस भंग वाला कोइभी जीव नहीं ॥इति॥

ऐसेंही फूठकेभी चार भेद है तिसका स्वरूप कहते है १ साधु, र स्तेमें चला जाता है, तिसके आगें हो कर एक जगली गौआंका तथा मृ गादि जानवरोका टोला निकल जावे, तिसके पीछें शिकारी बदूक प्रमुख शस्त्र लीयां चला आता है, उनके मारने वास्ते वो शिकारी साधुकों पूछे कि तुमने अमुक जीव जाते देखे है? तव साधु मौन कर जावे, जे कर मौन करेभी पीछा न छोडे, साधुकों मारे, तब साधु कह देवे, मै नहीं देखे, यद्यपि यह द्रव्ये फूठ है, परंतु भावें फूठ नहीं, क्योंकि जो कोइ इंद्रियोंकी विषय वास्ते तथा अपने लोभ वास्ते फूठ बोले, तब भावत फूठ होवे, परं तु यह तो जीवोकी दया वास्ते फूठ बोले है वास्तवमें यह फूठ नहीं इसी तरें और जगेंभी समझ लेनां यह प्रथम भग

तथा दूसरा भगमें कोइ पुरुष मुखसें तो कुछ नहीं बोलता, परंतु दूसरों के ठगने वास्ते मनमें अनेक विकल्प करता है, यह दूसरा भग तथा तीस रे भंगमें तो द्रव्येंभी फूठ बोलता है, अरु भावेंभी फूठ बोलता है, तिस का अभिप्रायभी महा छल कपट करनेका है, क्योंकि मुखसेंभी फूठ बोलता है, अरु चित्तमेंभी दुष्टता संयुक्त है, यह तीसरा भंग तथा चौथा भंग तो पूर्ववत् शून्य है इति फूठ स्वरूप

अथ चोरीका यही चार भग कहते हैं तहां प्रथम भंगमें जैसें कोइ स्त्री शीलवान् है, औ कोइ दुष्ट राजा उसका शीलभग करा चाहाता है, त ब कोइ धर्मज्ञादि पुरुष रात्रिमें अथवा दिनमें उस स्त्रीके शीलकी रक्षा वा स्ते उस राजसें बाहिर ले जावे, तो व्यवहारमें उस राजाकी उसने आज्ञा भगरूप चोरी करी है, परंतु वास्तवमें वो चोर नहीं इसी तरें और जगा मेंभी जान लेनां यह प्रथम भंग दूसरे भंगमें चोरी तो नहीं करता, परंतु चोरी करनका मन उसका है, तथा जो भगवान् वीतराग सर्वज्ञकी आ ज्ञा भंग करने वाला है, सोभी भावचोर है यह दूसरा भग तथा तीसरे भगमें चोरीभी करता है, अरु मनमेंभी चोरी करनेका भाव है, यह तीस रा भंगहै अरु चउथा भग तो पूर्ववत् शून्य है इति अदत्तादान भंग

ऐसेंही मैथुनके चार भग कहते हैं जो साधु, जलमें डूबती साध वीकों देख कर काढनेके वास्ते पकडे, तथा धर्मी गृहस्थ छतसें गिरती अपनी बहिन बेटीकों पकडे, तथा बावरी होइ दौडतीकों पकडे, यह द्र

व्यें मैथुन है, परतु नावें नहीं यह प्रथम नंग. तथा इव्यें तो मैथुन नहीं सेवता है, परतु मैथुन सेवनेकी बडी अनिलाषा करता है,सो नावें मैथुन है यह दूसरा नग तथा तीसरे नंगमें तो इव्यें अरु नावें मैथुन सेवता है. अरु चौथा नंग पूर्ववत् शून्य है ॥ इति मैथुन स्वरूपं ॥

ऐसेही परिग्रहका चार नग कहते है, १ जैसे कोइ मुनि कायोत्सर्ग कर रहा है, उसके गलेमें कोइ हारादिक आनूपण गेर देवे, वो इव्यें तो परिग्रह दीखता है, परंतु नावे परिग्रह नहीं है, यह प्रथम नग तथा दूसरा इव्यें तो उसके पास कौडी एकनी नही है, परंतु मनमें धनकी बडी अनिलापा रखता है, सो नावपरिग्रह है तथा तीसरेमें धननी पास है, अरु अनिलाषानी है, सो इव्यनाव करकें परिग्रह है, तथा चौथा नग पूर्ववत् शून्य है इन सर्व नगोमें दूसरा अरु तीसरा नग निश्चय करकें अविरतिरूप है यह पांच प्रकारकी अविरति

अथ पच्चीस क्रियाका नाम अरु स्वरूप कहते हैं १ काया (देह) करकें जो होवे, सो कायिकीक्रिया, २ आत्माकों नरकादिमें जाने वास्ते जीव अधिकारी करे, इस करकें सो अधिकरण परोपघात करनेसें वागुरादि गल कूटपाशा करके जो उत्पन्न होवे, सो अधिकरणकी क्रिया, ३ अधिक जो होवे दोप सो प्रदोष कहियें क्रोधादिक, तिनमें जो उत्पन्न होवे, सो प्रदोषक्रिया, ४ जीवकों परिताप देनेसें जो उत्पन्न होवे, सो पारितापनिकी क्रिया, ५ प्राणीयोंके विनाश करनेकी जो क्रिया, सो प्राणातिपातकी क्रिया, ६ पृथिवीआदिक कायाका उपघात करनां यह जिसका लक्षण है, ऐसें जो शुष्क तृणादि छेद, लेखनादि, तिनमें जो क्रिया होवे, सो आरंनकी क्रिया, ७ जो विविध उपायो करके धन उपार्जन तथा धनरक्षण करणेमें मूर्छाके परिणाम, उसका नाम परिग्रह है, तिनमें जो उत्पन्न होवे क्रिया, सो परिग्रहकी क्रिया, ८ मायाही है हेतु प्रत्यय जिसका मोक्षके साधनोंमें माया प्रधान प्रवृत्ति, सो माया प्रत्ययकीक्रिया, ९ मिथ्यात्वही है,प्रत्यय कारण जिसका सो मिथ्या दर्शन प्रत्ययकी क्रिया,१० संयमके विघातकारक कषायोंके उदयसें प्रत्याख्यानका न करनां, सो अप्रत्याख्यानकी क्रिया, ११ रागादि कलुषितका जो जीव अजीवको देखनां,

सो दृष्टिकी क्रिया, १२ राग, द्वेष, मोह सयुक्त चित्तसें जो स्त्री आदिकोंके शरीरका स्पर्श करना, सो स्पृष्टिकाक्रिया, १३ पूर्वें अगीकार करे हूये पापोपादान कारण अधिकरणकी अपेक्षा जो क्रिया उत्पन्न होवे, सो प्रातीत्यकी प्रत्ययक्रिया, यह तात्पर्यार्थ १४ "समतात्" सर्व ओरसे "उपनिपात" आगमन आवणां, स्त्री आदिक जीवोंका जिस स्थानमें भोजनादिकमें, सो समतोपनिपात, तहां जो क्रिया उत्पन्न होवे, सो सामतोपनिपातिका क्रिया, १५ जो परोपदेशित पापमें चिर काल प्रवृत्ते, उस पापकी जो भावसें अनुमोदना करे, सो नैसृष्टिकी क्रिया, १६ अपणे हाथ करकें जो करे, जैसें कोइ पुरुष वडे अभिमान करकें क्रोधित चित्त हूआ थका जो काम उसके नौकर कर सक्ते हैं, उस कामकों अपने हाथसें करे, सो स्वाहस्तिकीक्रिया, १७ भगवत् अर्हतकी आज्ञा उल्लघन करकें अपणी बुद्धिसें जीवाजीवादि पदार्थोंके प्ररूपण द्वारा जो क्रिया, सो आज्ञापनिका क्रिया, १८ दूसरायोंके अण होये खोटे आचरणका प्रकाश करणां, उनकी पूजाका नाश करनां, तिस करनेसें जो उत्पन्न होवे, सो वैदारणिका क्रिया, १९ आभोग नाम है उपयोगका, तिस्सें जो विपरीत होवे, सो अनाभोग है, तिस करकें उपलक्षित जो क्रिया, सो अनाभोग क्रिया विना देखे, विना पूंजे देश अर्थात् भींत भूम्यादिकमें शरीरादिकका निक्षेप करणां, सो अनाभोग क्रिया, २० अपणी अरु परकी जो अपेक्षा करणी, तिसका नाम अवकांक्षा है, इस्सें जो विपरीत तिसका नाम, अनवकांक्षा है, सोइ है कारण जिसका सो अनवकांक्षा प्रत्यय क्रिया तात्पर्य यह है कि जिनोक्त कर्त्तव्य विधियोमें किसी विधियोंमें जो अपनेकों अरु और जीवोंकों हितकारी है, तिन विधियोंमें प्रमादके वश हो कर आदर न करनां, सो अनवकांक्षा प्रत्ययकी क्रिया, २१ "प्रयोग" दौडना चलनादि कायाका व्यापार, अरु हिंसाकारी कठोर झूठ बोलनादि वचनव्यापार, पराभिद्रोह, ईर्ष्या अभिमानादि मनोव्यापार, इन तीनोंका जो करणां, सो प्रयोगक्रिया, २२ जिस करकें विषय ग्रहण करियें, सो समादान इंद्रिय हैं, तिसकी जो क्रिया देश सर्व उपघातरूप व्यापार, सो समुदान क्रिया, २३ प्रेम नाम है माया अरु लोभका, तिन करकें जो होवे, सो प्रेमप्रत्यय क्रिया, २४ द्वेष नाम है क्रोध अरु मा

नका,तिन करकें जो होवे,सो द्वेषप्रत्ययिकी क्रिया, २५ चलनेसें जो क्रिया होवे, सो ईर्यापथक्रिया यह क्रिया वीतरागकों होती है

अथ इन पच्चीश क्रियाका व्याख्यान करते हैं १ प्रथम कायिकी क्रिया दो प्रकारकी है, एक अनुपरता कायिकी क्रिया, दूसरी अनुपयुक्त कायिकी क्रिया, उसमें प्रदुष्ट मिथ्यादृष्टि जीवके मन बचनकी अपेक्षा रहित पर जीवोंके पीडाकारी असा जो कायाका उद्यम, सो प्रथम भेद है, तथा प्रमत्त सयतके विना उपयोग अनेक कर्त्तव्यरूप कायाका व्यापार, सो दूसरा भेद, यह कायिकी क्रियाका स्वरूप कह्या २ दूसरी अधिकरणकी क्रिया दो प्रकारें है एक सयोजना,दूसरी निवर्त्तना,उसमें विष,गरल,फांसी, धनु, यन्त्र, तलवार, आदि शस्त्रोंकों जीवोके मारणे वास्ते जो इनका "सयोजन" अर्थात् मिलाप करणा, जैसे धनुष अरु तीरका मिलाप करनां, इसी तरें सर्व जाननां. यह प्रथम भेद तथा तरवार, तोमर, शक्ति, तोप, बंदुक, इनका जो नवे सिरसें बनानां, यह दूसरा भेद यह दूसरी क्रिया का स्वरूप कह्या ३ जिन निमित्तोंसें क्रोध उत्पन्न होवे, सो निमित्त जीव अजीव हैं, उसमें जीव तो प्राणी, अरु अजीव खूंटा, कांटा, पत्थर, कंकरादि, इनके उपर द्वेष करे, यह तीसरी प्रदोषक्रिया, ४ तथा अपणे हाथों करके अरु परके हाथो करके, जीवकों ताडनां (पीडा देनी) सो परितापना, इस परितापनाके दो भेद हैं,एक तो "स्व" (अपणे आपको) पीडा देनी, जैसें पुत्र कलत्रादिके वियोगसें दुःखी हो कर अपणे हाथों करी छाती शिरका कूटनां, यह प्रथम भेद तथा पुत्र शिष्यादिकोको ताडनां (पीटना) यह दूसरा भेद, यह चौथी पारितापनिकी क्रिया तथा ५ पांचमी प्राणातिपातकी क्रियाके दो भेद हैं, एक तो अपणे आपकी घात करणी, जैसेकि जान बूझ कर पर्वतसें गिरके मर जानां, भर्त्ताके साथ सती होनेके वास्ते अग्निमें जल मरनां, पाणीमें डूबके मरनां, विष खा के मरनां, शस्त्र सें मरनां, इत्यादि स्वप्राणातिपात यह महापाप रूप क्रिया, यह प्रथम भेद तथा दूसरी मोह, लोभ, क्रोधके वश हो कर पर जीवकों स्व अथवा परहाथ करकें मारणां यह पांचमी क्रिया, ६ जीव, अजीवका आरंभ करणा, सो आरंभकी क्रिया, ७ जीव अजीवका परिग्रह करणां, सो परिग्रहकी क्रिया, ८ माया करणी, सो माया प्रत्ययकी क्रिया, ९ वि

सो दृष्टिकी क्रिया, १२ राग, द्वेष, मोह संयुक्त चित्तसें जो स्त्री आदिकोंके शरीरका स्पर्श करना, सो स्पृष्टिकाक्रिया, १३ पूर्व अंगीकार करे हूये पापोपादान कारण अधिकरणकी अपेक्षा जो क्रिया उत्पन्न होवे, सो प्राती त्यकी प्रत्ययक्रिया, यह तात्पर्यार्थ १४ "समतात्" सर्व ओरसें "उपनिपात" आगमन आवणां, स्त्री आदिक जीवोंका जिस स्थानमें भोजनादिकमें, सो समतोपनिपात, तहां जो क्रिया उत्पन्न होवे, सो सामतोपनिपातिका क्रिया, १५ जो परोपदेशित पापमें चिर काल प्रवृत्ते, उस पापकी जो भावसें अनुमोदना करे, सो नैसृष्टिकी क्रिया, १६ अपणे हाथ करकें जो करे, जैसें कोइ पुरुष वडे अभिमान करकें क्रोधित चित्त हूआ थका जो काम उसके नौकर कर सक्ते हैं, उस कामको अपने हाथसें करे, सो स्वाहस्तिकी क्रिया, १७ भगवत् अर्हतकी आज्ञा उल्लंघन करकें अपणी बुद्धिसें जीवाजीवादि पदार्थोंके प्ररूपण द्वारा जो क्रिया, सो आज्ञापनिका क्रिया, १८ दूसरायोंके अण होये खोटे आचरणका प्रकाश करणां, उनकी पूजाका नाश करनां, तिस करनेसे जो उत्पन्न होवे, सो वैदारणिका क्रिया, १९ आभोग नाम है उपयोगका, तिस्सें जो विपरीत होवे, सो अनाभोग है, तिस करकें उपलक्षित जो क्रिया, सो अनाभोग क्रिया बिना देखे, बिना पूंजे देश अर्थात् भींत भूम्यादिकमें शरीरादिकका निक्षेप करणां, सो अनाभोग क्रिया, २० अपणी अरु परकी जो अपेक्षा करणी, तिसका नाम अवकांक्षा है, इस्सें जो विपरीत तिसका नाम, अनवकांक्षा है, सोइ है कारण जिसका सो अनवकांक्षा प्रत्यय क्रिया तात्पर्य यह है कि जिनोक्त कर्त्तव्य विधियोमें किसी विधियोंमें जो अपनेकों अरु और जीवोंकों हितकारी है, तिन विधियोमें प्रमादके वश हो कर आदर न करनां, सो अनवकांक्षा प्रत्ययकी क्रिया, २१ "प्रयोग" दौडना चलनादि कायाका व्यापार, अरु हिंसाकारी कठोर झूठ बोलनादि वचनव्यापार, पराभिद्रोह, ईर्ष्या अभिमानादि मनोव्यापार, इन तीनोंका जो करणां, सो प्रयोगक्रिया, २२ जिस करकें विषय ग्रहण करियें, सो समादान इंद्रिय हैं, तिसकी जो क्रिया देश सर्व उपघातरूप व्यापार, सो समुदान क्रिया, २३ प्रेम नाम है माया अरु लोभका, तिन करकें जो होवे, सो प्रेमप्रत्यय क्रिया, २४ द्वेष नाम है क्रोध अरु मा

अथ संवरतत्त्व लिखेते हैं पूर्वोक्त आश्रवका जो रोकने वाला सो सबर है, तिस संवरके सत्तावन भेद हैं, सो कहते हैं पाच समिति, तीन गुप्ति, दश प्रकारका यतिधर्म, बारह भावना, बावीश परीसह, पाच चारित्र यह सब मिल कर सत्तावन भेद हूये इनमेंसू पांच समिति, तीन गुप्ति, दशविध यतिधर्म, बारह भावना, इनका स्वरूप गुरु तत्त्वमें लिख आये है तहांसें जान लेना इहां नहीं लिखते

अथ बावीश परीषहका स्वरूप लिखते हैं १ क्षुधापरीषह, सो क्षुधा नाम भूखका है, शेष वेदनासें अधिक भूखकी वेदना है, सो जब क्षुधा लगे, तब अपनी प्रतिज्ञासे न चले, अरु आर्त्तध्यानभी न करे, सम्यक् परिणामोंसें क्षुधा सहे, सो क्षुत्परीषह, २ ऐसेंही पिपासा जो तृषा तिसका परीषहभी जान लेनां, ३ शीतपरीषह, सो बडा भारी जब शीत पडे, तबभी अकल्पनिक वस्त्रकी वांछा न करे, जैसें जीर्ण वस्त्र होवे, उनोंहीसें शीत सहे, अरु अग्निसेंभी न तापे, इसी रीतीसें सम्यक् शीत परीषह सहे ४ ऐसेही उष्णपरीषहभी सहै, ५ दंशमशकपरीषह, सो दश मशक जब काटे, तब उस स्थानसें चले जानेकी इछा न करे, तथा दश मशकके दूर करने वास्ते धूमादि यत्नभी न करे, तथा तिनके दूर निवारण वास्ते पंखाभी न करे, ऐसा पुरुष, दश मशक परीषह सहे, ६ अचेलपरीषह, जो सर्वथा वस्त्रोंका अभाव, तिसका नाम अचेल परीषह नहीं, किंतु आगम में जो वस्त्रादिक रखनेका प्रमाण कह्या है, तिस प्रमाण रखनां सो परिग्रह नहीं है, परिग्रह तो उसकों कहते हैं कि जो मूर्छा करकें रखे॥ उक्त च॥ जंपि वत्थं च पायं च, कबल पाय पुछणं॥ सोपि संजम लज्जट्ठा, धारिंति परिहरंति य॥ १॥ न सो परिग्गहो वुत्तो, नाइ पुत्तेण ताइणा॥ मुछापरिग्गहो वुत्तो, इइ वुत्त महेसणत्ति॥२॥ चेल नाम वस्त्रका है, सो शीर्ण अर्थात् फटे हूये अरु जीर्णभी होवे, तोभी अकल्पनिक न लेवे, सो अचेलपरीषह, ७ अरतिपरीषह, संयम पालनेकों जो अरति संयममें उत्पन्न होवे, तिसको सहे, इसके सहनेका उपाय दशवैकालिककी प्रथम चूडामें अठारह वस्तुके चिंतनरूप करनेसे अरतिदूर हो जाती है ८ स्त्रीपरीषह, सो स्त्रीयोंके अंग प्रत्यंग संस्थान सूरति, हसनां, मनोहर पणां, विभ्रमादि चेष्टायोंकों मनमें चिंतवना न करे, मोक्ष मार्गमें अर्गलसमान स्त्रीयोंकों जान करकें

परीत वस्तुका श्रद्धान सोइ है, निमित्त जिसका सो मिथ्यात्व दर्शन प्रत्ययकी क्रिया, १० जीवके हननेका तथा अजीव मद्य मांसादि पीने खानेका जिसके त्याग नहीं, ऐसा जो असयती जीव, तिसकों अप्रत्याख्यानकी क्रिया, ११ घोडा, रथ,प्रमुख जीव तथा अजीवोंके देखने वास्ते जानां, सो दृष्टिकीक्रिया,१२ जीव, अजीव, स्त्री, पूतली, आदिकका राग करके स्पर्श करनां, सो स्पृष्टिका क्रिया, १३ जीव, अजीवकी अपेक्षा जो कर्मका बध होवे, सो प्रातीत्यकी क्रिया, १४ जीव सो पुत्र, भाइ, शिष्यादिक, अरु अजीव सो भूषण, घर, हाटादि इनकों लोक सर्व दिशोंसें देखने आवे, देखके प्रशंसा करे, तब तिन वस्तुओंका स्वामी हर्षित होवे, सो सामंतोपनिपातिका क्रिया, १५ जीव मनुष्यादि अरु अजीव इटका टुकडा,इनोंकों फेंके सो नैसृष्टिकी क्रिया, १६ अपने हाथों करी जीवकों तथा अजीवकों (प्रतिमादिकों) ताडे, बांधे, सो स्वहस्तकी क्रिया,१७ जीव अजीवकी मिथ्या प्ररूपणा करणी, तथा जीव अजीवकों मंत्रसें मगावा लेनां, सो आज्ञापनिका क्रिया, १८ जीव अजीवकों विदारणां,सो वैदारणिका क्रिया, १९ विना उपयोगकु जो वस्तु लेवे, तथा भूमिकादि उपर छोडे, सो अनाभोगक्रिया, २० इस लोकमें औ परलोकमें जो विरुद्ध ऐसा जो चोरी, परदारागमनादिक है, उनकों सेवे, मनमें डरे नहीं, सो अनवकांक्षा प्रत्यय क्रिया, २१ मन, बचन, कायाका जो सावद्य (सपाप) व्यापार, सो प्रयोग क्रिया, २२ अष्टविध कर्म परमाणुओंका जो ग्रहणां, सो समुदान क्रिया, २३ राग जनक बीणादिकका जो शब्दादि सो प्रेम प्रत्यय क्रिया २४ अपणे उपर तथा पर उपर द्वेश करनां, सो द्वेषप्रत्ययिकीक्रिया, २५ केवल योगोंसें जो क्रिया, सो केवलीकों ईर्यापथ क्रिया यह पच्चीस क्रियाका स्वरूप संक्षेप मात्र लिखा है यद्यपि इन क्रियाओंमें कितनीक क्रिया आपसमें एक सरखी दीखती हैं, तोभी एक सरखी नहीं है, इनका अछी तरें स्वरूप देखनां होवे, तो गधहस्तीभाष्य देख लेनां

अथ योग तीन है, सो लिखते हैं १ मनका व्यापार, सो मनोयोग, २ वचनका व्यापार, सो वचनयोग, ३ कायाका व्यापार, सो काययोग, यह सर्व मिल कर बैंतालीस भेद आश्रव तत्त्वके हूये हैं इन बैंतालीस भेदों सें जीवकों शुभाशुभ कर्मकी आमदनी होती है इति आश्रवतत्त्व संपूर्ण ॥

ज शरीरमें लगनेसे कठिन मैल लग जाता है, अरु उष्ण कालकी तप्तसे प्रगट हूआ है दुर्गंध तिस करकें उत्पन्न हूआ है उद्वेग, तोजी स्नानादि शरीरकी विभूषा साधु न करे, यह मलपरीषह है, १९ सत्कारपरीषह, सो जक्त लोकोने वस्त्रान्न पानादिक करकें साधुकों बहुत सत्कारजी किया, तोजी मनमें अजिमान न करणां, तथा और और साधुओंकी जक्त लोक पूजा जक्ति करते हैं, अरु जैनमतके साधुकी कोइ बातजी नहीं पूछता, तोजी मनमें विषाद न करे, यह सत्कारपरीषह है, २० प्रज्ञापरीषह, सो बहुत बुद्धि पा कर अजिमान न करे, तथा अल्पबुद्धि होवे तदा "मैं महा मूर्ख हू, सर्वके पराजवका स्थान हू," ऐसी ताप दीनता मनमें नहीं लावे, सो प्रज्ञापरीषह, २१ अज्ञानपरीषह, सो ज्ञान चौदहपूर्व पाठी, एकादशांगपाठी, तथा उपांग, छेद, प्रकर्ण, शास्त्रोका पाठी, ज्ञानका समुद्र मै हू ऐसा गर्व न करे अथवा में आगम ज्ञान रहित हू, धिक् है, मुजे निरक्षर कुक्षिजरको ? ऐसी दीनताजी न करे, ऐसें विचारे कि निकेवल ज्ञानावरणका क्षयोपशमके उदयसें मेरा यह स्वरूप है, स्वकृतकर्म का फल है, जांतों जोगनेसें दूर होवेगा, वा तपोनुष्ठानसें दूर होवेगा ? ऐसें विचारि अज्ञान परीषह सहे, २२ शास्त्रोंमें देवता अरु इंद्र सुनते हैं, परंतु सांनिध्य कोइजी नहीं करता, इस वास्ते क्या जाने देवता इंद्र है ? वा नहीं ? तथा मतांतरकी ऋद्धि वृद्धि देख कर जिनोक्त तत्त्वमें समोह करनां, ऐसी विकलता जो मनमें न लावे, सो दर्शनपरीषह यह बावीस परीषह जो साधु जीते, सो सवरी कहा जाता है, इन परीषहोंका विस्तार देखनां होवे, तो श्रीशांतिसूरिकृत उत्तराध्ययन सूत्रकी बृहद्वृत्ति, तथा तत्त्वार्थ सूत्रकी वृत्ति देख लेनी

अथ पांच प्रकारका चारित्र लिखते हैं १ सामायिक चारित्र, २ छेदोपस्थापनिका चारित्र, ३ परिहारविशुद्धि चारित्र, ४ सूक्ष्मसपराय चारित्र, ५ यथाख्यात चारित्र, यह पांच प्रकारका चारित्र है इन पांचोके धारक साधु जी जैनमतमें पांच प्रकारके हैं, इस कालमें प्रथम दो चारित्रके धारक साधु है, अरु तीन चारित्र व्यवछेद गये हैं, इन पांचोंका विस्तार पूर्वक देखनां होवे तदा देवाचार्यकृत नवतत्त्व प्रकरणकी टीका, तथा ज

तिनोमें कामकी बुद्धि करके, नेत्रोसें देखे नहीं ए चर्या नाम है चलने का चलनां घर रहित ग्राम नगरादिमें अनियतवास ममत्व रहित मास कल्पादि करणा, सो चर्यापरीषह है, १० निषद्यापरीषह, सो निषद्या यह रहनेके स्थानका नाम है, सो स्थान, स्त्री, पण्डक विवर्जित होवे, तिस स्थानमें रहतेकों इष्टानिष्ट जो उपसर्ग होवे, तोनी अपणे चित्तमें चलायमान न होवे, सो निषद्यापरीषह, ११ 'शेरते' शयन करियें इस विषे सा शय्या, संस्तारक, वसति, तहां संस्तारक सो सोनेका आसन, कोमल, कठिन, ऊंचा, नीचा, धूल, कूडा, कंकर वाली जगामें होवे, तथा वो स्थान, शीत गर्मी वाला होवे, तोनी मनमें उद्वेग न करे, दुःख सहन करे, सो शय्यापरीषह, १२ आक्रोश परीषह, सो अनिष्ठ बचन कोइ कहे, तब ऐसें विचारे, जे कर यह पुरुष सच्ची बातके वास्ते अनिष्ट वचन कहता है, तो मुझकों कोप करनां ठीक नहीं, क्योंकि यह पुरुष मुझे शिक्षा देता है, फेर ऐसा काम न करुंगा, जे कर इस पुरुषका मेरे पर झूठा कोप है, तोनी मुझकों कोप करनां युक्त नहीं, ऐसें चिंतन करके आक्रोशपरीषह सहे, १३ वध नाम है हाथादि करकें ताडनां, (मारनां,) तिसका सहनां सो इसी रीतीसें कि यह जो मेरा शरीर है, सो अवश्य विध्वंस होवेगा, इस शरीरके संबंधसें जो मेरेकों दुःख होता है, सो मेरे करे हूये कर्मका फल है इस बुद्धसें वधपरीषह सहे, १४ याचना नाम मांगनेका है, सर्वही वस्त्र अन्नादिक साधुकों मांगनेसेंही मिलता है, इस बुद्धिसें याचना परीषह सहे, १५ साधुकों किसी वस्तुकी इच्छा है, अरु वो वस्तु गृहस्थके घरमेंनी बहुत है, साधु मांगनेकों गया, परंतु गृहस्थ देता नहीं, तब साधु मनमें विषाद न करे, अरु देने वालेका बुरानी नहीं चिंतवे, दुर्वचननी न बोले, समता करे, आज नहीं मिला, तो कलकों मिल जायगा, इस तरें अलाभपरीषह सहे, १६ रोग (ज्वर अतिसारादि) जब हो जावे, तब गच्छके बाहिर जो साधु होवे, सो तो कोइनी औषधि न खावे, अरु जो गच्छवासी साधु होवे, सो गुरु लाघवता विचार करकें रोग परीषह सहे, अरु जो रीति शास्त्रमें औषध करनेकी कही है, तिस रीतिसें करे, सो रोगपरीषह सहे, १७ तृणस्पर्श परीषह, सो दर्भादिक कठोर तृणका स्पर्श सहे, १८ मलपरीषह, सो साधुके शरीरमें पसीना आनेसें रजका पु

रे ईश्वरभी कर्मफल भोगने वास्ते नरककुंडमें जा गिरेगा, अरु जीव भी कैसे काहेसे बनेगा? जीवका उपादान कारण कोइ नहीं. जे कर कहोगे कि ईश्वर जीवका उपादान कारण है, तब तो कारणके समान कार्यभी होनां चाहियें जैसा ईश्वर निर्मल, निःपाप, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी है, तैसाही जीव होवे, परंतु तैसा है नहीं अरु जो ईश्वर जीवोंका उपादान कारण होवे, तब तो ईश्वरही जीव बन कर नाना क्लेश जन्म मरण गर्भावासादि दुःखोंका भोगने वाला हूआ, तब ईश्वरने यह अपने पगमें आप कुहाडा क्यों मारा? जो पूर्णानंद पद छोड कर संसारकी विटंबनामें फसा? फेर अपने आपकों निःपाप करने वास्ते वेदादि शास्त्र द्वारा केइ तरेंका तप जपादिक क्लेश करनां बताया? इस वास्ते यह सर्व कहनां महा मूर्खोंका है, इस वास्ते यह दूसरा विकल्पभी मिथ्या है

३ तीसरा विकल्प, जीव और कर्म यह दोनों एक साथ उत्पन्न हूये, यहभी मिथ्या है, क्योंकि जो वस्तु समकालमें उत्पन्न होती है, सो आपसमें कारण कार्य रूप नहीं होती है, जब कर्म, जीवके करे सिद्ध न हूये, तब कर्मफलभी जीव नहीं भोगेगा, यह प्रत्यक्ष विरोध है, क्योंकि जीव तो कर्म भोक्ते दीखते हैं, अरु कर्म तथा जीवका उपादान कारण कोइ नहीं इस वास्ते यह तिसरा विकल्पभी मिथ्या है

४ चौथा विकल्प, जीव तो है परंतु जीवके कर्म नहीं यहभी मिथ्या है, क्योंकि जब जीवके कर्म नहीं, तो जीव दुःख सुख क्यों भोक्ता है? कर्म के बिना संसारकी विचित्रता कदापि न होवेगी? इस वास्ते यह चौथा विकल्पभी मिथ्या है

५ पांचमा विकल्प, जीव अरु कर्म, यह दोनोही नहीं, यहभी मिथ्या है, क्योंकि जब जीवही नहीं, तब यह कौन कहता है, जो जीव अरु कर्म नहीं है, ऐसा कहने वाला जीव है? कि दूसरा कोइ है? इस वास्ते यह स्ववचनविरोध है, तो यह पांचमा विकल्पभी मिथ्या है यह पांच विकल्प मिथ्यात्वरूप हैं, अरु सत्य विकल्प छहा है, सो यह है

६ छहा विकल्प, जीव अरु कर्म, यह दोनों अनादि अपश्चानुपूर्वी है.

प्रश्न—जब जीव अरु कर्म यह दोनों अनादि हैं, तब तो जीवकी तरें कर्मका नाश कदापि न होनां चाहियें?

गवती अरु पन्नवणासूत्रकी वृत्ति देख लेनी. यह सर्व मिल कर सत्तावन नेद आश्रवके रोकने वाले हैं. इति संवरतत्त्व संपूर्ण ॥

अथ निर्जरातत्त्व लिखते है निर्जरा उसकों कहते है, जो बांधे हूये कर्मोंकों खेरु करे, जिस करके निर्जरा होती है, तिसका नाम तप है सो तप बारह प्रकारका हैं, उसका स्वरूप गुरुतत्त्वमें संक्षेप करके लिख आये हैं, तहांसें जान लेनां अरु जे कर विस्तार देखनां होवे, तदा नव तत्त्वप्रकरणवृत्ति तथा श्रीवर्द्धमानसूरिकृत आचारदिनकर शास्त्र, तथा श्रीरत्नशेखरसूरिकृत आचारप्रदीप, तथा नगवतीसूत्र, अरु उववाई शास्त्र देख लेनां ॥ इति निर्जरातत्त्व संपूर्ण ॥

अथ बंधतत्त्व लिखते है, बंध चार प्रकारका होता है, १ प्रकृतिबंध, २ स्थितिबंध, ३ अनुनागबंध, ४ प्रदेशबंध बंध कहते है जीवके प्रदेश, अरु कर्मपुद्गल,ये दोनों दूध अरु पाणीकी तरें परस्पर मिल जावे,उसकों बंध कहते हैं अथवा बंध नाम बंदीवानका है, जैसें बंधुआ कैदमें स्वतंत्र नहीं रहता, ऐसें आत्मानी ज्ञानावरणीयादि कर्मोंके वश हो जाता है, स्वतंत्र नहीं रहता है, इस कर्मके बंधमें ७ विकल्प है, सो कहते हैं

१ कोइक वादी कहता हैं, कि निर्मलजीव पुण्य पापके बंध रहित था, पीछेसें पुण्य पापका बंध हूआ है, यह प्रथम विकल्प यह विकल्पमिथ्या है, क्योंकि निर्मल जीव कर्मका बंध नहीं कर सक्ता है, अरु कर्मके विना संसारमें उत्पन्ननी नहीं हो सक्ता है, जे कर निर्मल जीव कर्मका बंध करे, तब तो मोक्षस्थ जीवनी कर्मका बंध कर लेवेगा, जब मोक्षस्थ जीवकों कर्मबंध हूआ,तब मोक्षका अनाव हो जावेगा, जब मोक्ष नहीं, तब तो मोक्षोपायके शास्त्र अरु शास्त्रोंके बनाने वाले मिथ्यावादी हो जावेंगे, तब तो नास्तिकमती बन जायेंगे,अरु निर्मल आत्मा संसारमें शरीरके अनावसें कर्मनी काहेसें करेगा? इस वास्ते यह प्रथमविकल्प मिथ्या है.

२ दूसरा विकल्प कर्म पहिले थे,अरु जीव पीछेसें बना है, यहनी मिथ्या है, क्योंकि जीवोंके विना वो कर्म किसनें करे थे, कारणकि कर्त्ताके बिना कर्म हो नहीं सके हैं, अरु प्रथम कर्मोंका फल इस जीवकों नहीं होवेगा, क्योंकि वो कर्म जीवके करे हूए नहीं हैं, जे कर कर्मके करे विनानी कर्मका फल होवे, तब तो अतिप्रसंग दूषण होवेगा, अरु बिना कर्मके क

स्वनाव वात हरणेका वा पित्त हरणेका वा कफ हरणेका इत्यादि होता है, ऐसेंही प्रकृति स्वनाव कर्मोंका, किसी प्रकृतिका ज्ञानावरण करनेका स्वनाव, कीसी प्रकृतिका दर्शन आवरण करनेका स्वनाव होता है,सो प्रकृतिवध, २ कोइ लड्डु एक दिन रहके बिगड जाता है,कोइ दो, तिन, चार, पाच, ठ, सात, आठ, नव, दश, इग्यारह, बारह, तेरह, चौदह दिन, कोइ पक्ष, मासादि रहता है, पीछें बिगड जाता है ऐसेंही कर्मस्थितिनी कोइ घडी, पहर, दिन, पक्ष, मास,यावत् सीत्तेर कोटाकोटी सागरोपम लग रह कर फल दे कर, चली जाती है, यह दूसरा स्थितिबंध ३ जैसें लड्डुमें रस है किसीमें कडुवा, किसीमें कषायेला,किसीमें मीठा, ऐसेंही कर्मोंमें रस है किसीमें डु ख रूप, किसीमें सुख रूप, जो जो अवस्था जीवकी ससारमें होती है, सो सर्व कर्मके अनुनागसें होती है, यह तीसरा अनुनाग वध तथा ४ जैसे लड्डुका तोल, मान,कोइ तोला,कोइ ठ टाकादि होता है, ऐसें ही कर्मप्रदेशोंकी गिणती किसी कर्ममें थोडी, किसीमें अधिक, होती है, यह चोथा प्रदेश वध यह दृष्टांत कर्मग्रथमें है

अथ बंधके हेतु लिखते हैं एक तो मिथ्यात्व सो तत्त्वार्थ श्रद्धान रहित होनां, डुसरा पापोसें निवर्त्त होनेके परिणाम रहित होनां, सो अविरतिपणां, तीसरा कष नाम ससारका है, तथा कर्मका है, तिसका जो आय नाम लाल सो कषाय, क्रोध, मान, माया, लोन रूप चौथा योग सो मन, वचन, कायाका व्यापार, यह चारों, बंधके मूलहेतु हैं

अब उत्तर हेतु सत्तावन लिखते हैं उसमें प्रथम तो मिथ्यात्व पांच प्रकारका हैं १ अनिग्रह मिथ्यात्व, २ अननिग्रह मिथ्यात्व, ३ अनिनिवेश मिथ्यात्व, ४ सशयमिथ्यात्व, ५ अनानोग मिथ्यात्व

१ प्रथम अनिग्रह मिथ्यात्व है, सो जो जीव ऐसा जानता है कि जो कुछ मैनें समजा है, सो सत्य है, औरोंकी समज ठीक नहीं है, सच्च जूठकी परीक्षा करनेका मनजी नहीं है, सच्च जूठका विचारनी नहीं करता है, यह मिथ्यात्व दीक्षित शाक्यादि अन्यमत ममत्व धारीयोंकों होती है, वो अपने मनमें ऐसें जानते है, कि जो मत, हमने अगीकार कीया है, वो सत्य है, और मत सर्व जूठ हैं, ऐसें जिसके परिणाम होवे, सो अनिग्रह मिथ्यात्व

उत्तर'—कर्म जो अनादि कहे हैं, सो प्रवाह अनादि है, इस वास्ते उसका क्षय हो जाता है

प्रश्न —यह जो तुम बंध कहते हो, सो निर्हेतुक है ? अथवा सहेतुक है ? जे कर कहोगे कि निर्हेतुक है, तब तो " नित्य सत्त्व " होवेगा, वा " नित्य असत्त्व " होवे गा, क्योंकि जिस वस्तुका हेतु नहीं, वो आकाशवत् नित्य सत्त्व होती है, अथवा खरशृंगवत् नित्य असत् होती है, निर्हेतुक होनेसें मोक्षका अभाव हो जावेगा, जे कर कहोगेकि सहेतुक है, तो हमकों कहो कि इस बंधके क्या हेतु है ?

उत्तरपक्ष —इस बंधके मूल हेतु चार हैं, अरु उत्तर हेतु सत्तावन हैं, यहां प्रथम चार प्रकारका बंध कहते हैं, तिसमें प्रथम तो प्रकृतिबंध है, सो प्रकृति कौनसी है ? अरु उसका बंध क्या है ? तहां मूल प्रकृति आठ हैं, उसमें १ मत्यादि ज्ञानका जो आवरण आच्छादन, सो ज्ञानावरण, २ सामान्य बोध चक्षु आदिका जो आवरण सो दर्शनावरण, ३ सुख दुःख वेदीयें (भोगीयें) सो वेदनीय, ४ मोहे जीवकों विचित्रताकों प्राप्ति करे, सो मोह,५ सर्वथा जो कर्म चला जावे "एति याति चेत्यायु " जिसके उदयसें जीव जीता है सो आयु, ६ नमावे जो शुभाशुभ गत्यादि रूप करकें आत्माकों, सो नामकर्म, ७ गोत्र शब्दकी व्युत्पत्ति ऐसें है "गां वाचां त्रायतइति गोत्रं" जिसके उदयसें जीव उच नीच कुलका कहाता है, सो गोत्र, ८ अंतर कहियें विचाले लाभादिके जो हो जावे, एतावता दान लाभादिक जीवमें होतांकों न होने देवे, सो अंतराय, यह आठ स्वभावरूप कर्म जो जीवके साथ क्षीर नीरकी तरें मिथ्यात्वादि हेतुओंसें बंध जावे, तिसका नाम प्रकृतिबंध है २ इनहीं आठ प्रकृतियोंकी स्थिति अर्थात् काल मर्यादा, जैसी कि यह प्रकृति इतना काल तक आत्माके साथ रहेगी, पीछेसें न रहेगी, जिस करकें ऐसी स्थिति होवें, सो स्थिति बंध ३ इनही आठ प्रकृतियोंमें तीव्र, मंद, रसका जो करनां, सो अनुभागबंध, ४ कर्मप्रदेशका जो प्रमाण यथा इतने परमाणु इस प्रकृतिमें है, उन परमाणुओंका जो आत्माके साथ बंध सो प्रदेशबंध

इसका बंध इस तरें चार प्रकारें है सो भव्य जीवोंके सुबोधके वास्ते चार प्रकारके बंधमें लड्डुका दृष्टांत लिखते हैं, जैसें एक लड्डु है, तिसका

शास्त्रके अर्थ वताने वाला गुरु पूरा चाहियें, सो नही है इत्यादि निमि त्तोंसें सशयमिथ्यात्व होता है

५ पांचमा अनाजोग मिथ्यात्व, सो जिन जीवोंकों उपयोग नहीं कि धर्म, अधर्म, क्या वस्तु है? ऐसा जो विकलेंद्रियादि जीव, तिनकों अना जोगमिथ्यात्व होता है यह मिथ्यात्वके पांच जेद हैं यह पांच मिथ्या त्वमें औरजी मिथ्यात्वके अनेक जेद हैं सोजी इन पांचोंके अतर्जूत हैं, सो जेद इस प्रकारसें हैं

१ प्रथम प्ररूपणा मिथ्यात्व, सो जिनवाणी रूप जो सूत्र, निर्युक्ति, जाष्य, चूर्णी, टीका, इनसें विपरीत प्ररूपणा करे

२ दूसरी प्रवर्त्तना मिथ्यात्व, सो जो काम,मिथ्यादृष्टि जीवों धर्म जान करकें करते हैं,उनकी देखा देखीसें उनकी करणी करें,३ तीसरी परिणाम मिथ्यात्व, सो मनमें परिणाम विपरीत कदाग्रह रहे,शुद्ध शास्त्रार्थ माने नहीं

४ चौथा प्रदेशमिथ्यात्व, सो मिथ्यात्वके पुञ्ज जो सत्तामें है, उन का नाम प्रदेश मिथ्यात्व है इन चारों जेदोंकें अनेक जेद हैं, उसमेसू कितनेक लिखते है

१ धर्म जो वीतराग सर्वज्ञने कहा है, तिसको अधर्म माने, २ अरु जो हिंसा प्रवृत्ति प्रमुख आश्रवमयी अशुद्ध अधर्म हैं, उसकों धर्म माने, ३ जो सत्यमार्ग है, उसकों मिथ्यात्व कहे, ४ जो विषयीयोंका मार्ग है, उ सकों सत् मार्ग कहे, ५ जो साधु सत्तावीश गुणों करी बिराजमान है, उ सकों असाधु कहे, ६ जो आरंज परिग्रह विषय कषाय करकें जरा हूआ है, अरु उपदेश ऐसा देता है, कि जिसके सुननेसें लोकोंकों कुवासना, कुचपणा, कुबुद्धि उत्पन्न होवे, ऐसा गुरु पञ्चरकी नौका समान ऐसे जो अन्यलिंगी कुलिंगी तिनकों साधु कहे, ७ षट्कायोंके जीवोंकों अजीव माने, ८ काष्ठ, सोनां, जो अजीव है, उनकों जीव माने, ९ मूर्त्ति पदार्थोंकों अमू र्त्ति माने, १० अमूर्त्ति पदार्थोंकों मूर्त्ति माने, यह दश जेद मिथ्यात्वके हैं

तथा दूसरे ६ जेद मिथ्यात्वके हैं, सो कहते हैं १ लौकिक देव, २ लौकिक गुरु, ३ लौकिक पर्व, ४ लोकोत्तर देव, ५ लोकोत्तर गुरु, ६ लोको त्तर पर्व

१ प्रथम लौकिक देवगत मिथ्यात्व जो है, सो जो देव, राग द्वेष करकें जरा हूआ है, एक उपर महेरवान होता है, एकका विनाश करता है, स्त्री

२ दूसरा अनभिग्रह मिथ्यात्व, सो सर्व मतोंको अच्छा माने,सर्वमतोंसें मोक्ष है, इस वास्ते किसीकों बुरा न कहना, सर्वकों नमस्कार करनी, यह मिथ्यात्व, जिनोंने कोइ दर्शन ग्रहण नहीं करा, अैसे जो गोपाल बालकादि तिनकों है, क्योंकि यह अमृत अरु विषकों एक सरिखे जानने वाले हैं.

३ तीसरा अभिनिवेश मिथ्यात्व, सो जो पुरुष जान करकें झूठ बोले, प्रथम तो अज्ञानसें किसी शास्त्रार्थको भूल गया, पीछें जब कोइ विद्वान् क हे कि तुम इस बातमें भूलते हो, तब झूठे मतका कदाग्रह ग्रहण करे, जात्यादि अभिमानसें कहना न माने, उलटी स्वकपोलकल्पित कुयुक्तियों बना करकें अपने मनमाने मतकों सिद्ध करे, वादमें हार जावे, तोभी न माने, अैसा जीव अतिपापी, अरु बहुल ससारी होता है अैसी मि थ्यात्व, प्राय जो जैनी (जैनमतकों) विपरीत कथन करता है, उसमें हो ती है, जैसें गोष्टमाहिलादिक हूये हैं, इस वार्त्ताकों भाष्यकार श्रीअभय देवसूरि नवांगीवृत्तिकारक नवतत्त्वप्रकरणकी भाष्यमें कहता है, "त था च भाष्यकार ॥ गोठामाहिलमाई ए, जं अनिनिविसि तु तयं ॥" आ दि शब्दसें बोटिक शिवभूतिकों अभिनिवेशिक मिथ्यात्व जानना

४ चौथा सशय मिथ्यात्व, सो जिनोक्त तत्त्वमें शका करणी, क्या यह जीव असख्य प्रदेशी है? वा नहीं है? इस तरें सर्व पदार्थोंमें शका कर णी, तिससेंति जो उत्पन्न होवे, सो सांशयिक मिथ्यात्व "तदाह भाष्य कृत् ॥ सांशयिक मिथ्यात्व तवझेषया शका सदेहोजिनोक्ततत्वेष्विति ॥" सशय मिथ्यात्वके होनेके कारण श्रीजिनभद्रगणिक्षमाश्रमण ध्यानशतकमें लिखते हैं, कि एक तो जैनमत स्याद्वादरूप अनततनयात्मक है,इस वास्ते सम झना कठिन है, तथा सप्तभगीके सकलादेशी, विकलादेशी भगोंका स्वरूप, अष्टपक्ष, सात सौ नय, चार निक्षेप, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, तथा १ उ त्सर्ग, २ अपवाद, ३ उत्सर्गापवाद, ४ अपवादोत्सर्ग,५ उत्सर्गोत्सर्ग, ६ अपवादापवाद, यह षड्भगी तथा १ विधिवाद, २ चारित्रानुवाद, ३ वि धिवाद, ४ यथास्थितवाद, इत्यादि अनततनयापेक्षा जैनमतके शास्त्र कथन कीये हूये हैं, जब तांइ जिस अपेक्षा शास्त्रोमें कथन है वो अपेक्षा न समझे, तब तांइ जैनशास्त्रका यथार्थ अर्थ समझना कठिन है इनके स मझनेके वास्ते बडी निर्मल बुद्धि चाहियें सो थोडे जीवोंकों है, तथा

ग्रना करुंगा, ऐसें नावोंसें वीतरागकों माने, इस वास्ते यह मिथ्यात्व है, जो पुरुष चिंतामणिका दातासेंती काचका टुकडा मागे, वो युक्त नहीं जिसकों अपणे कर्मोदयका स्वरूप मालुम नहीं, वोही जीव ऐसा होता है, यह लोकोत्तरदेवगत मिथ्यात्व है.

५ पांचमा लोकोत्तरगुरुगत मिथ्यात्व, सो जो साधुका वेष रक्खे, अरु आप निर्गुणी होवे, जिनवाणीका उछापक होवे, अपणे मन कल्पितका उपदेश देवे, सूत्रका सच्चा अर्थ तोडे, ऐसा लिंगी उत्सूत्रका प्ररूपक तिसकों गुरु जान कर मान, सन्मान करे. तथा जो साधु गुणी, तपस्वी, आचारी बहुक्रियावत, तिसकी इस लोक इछा करकें सेवा करे, बहुमान करे, मनमें ऐसें जाणे कि इनकी बहुत सेवा करुगा, तब इनकी मेहरवानगीसे धन, ऋद्धि, स्त्री, पुत्रादि मुऊकों मिलेंगे, यह लोकोत्तर गुरुगत मिथ्यात्व है

६ बहा लोकोत्तरपर्वगत मिथ्यात्व, सो प्रभुके पांच कल्याणिककी तिथि तथा दूसरे पर्वके दिन, तिन दिनोमें धनादिके वास्ते जप, तप, धर्मकरणी करे, सो लोकोत्तरपर्वगत मिथ्यात्व है इत्यादि मिथ्यात्वके अनेक विकल्प हैं, परंतु वो सब पूर्वोक्त अनिग्रहादि मिथ्यात्वमेंही अतर्भूत हैं यह पांच प्रकारका मिथ्यात्व कह्या, यह प्रथमबध हेतु कह्या

अब बारह प्रकारकी अविरति कहते हैं पांच इंद्रिय, बठा मन, अरु बै काय, यह बारह प्रकार हैं तिसका स्वरूप इस तरेसें है, पांच इंद्रियोंकों अपणे अपणे विषयमें प्रवृत्तावें, सो पांच अव्रत, अरु बठा किसी पापकी वस्तुसें मनका निरोध न करनां सो अव्रत है, तथा षड्विध जीवनिकायकी हिंसामें प्रवृत्त होवे,यह बारह प्रकारें अविरति है,यह दूसरा बधहेतु कह्या

तीसरा कषायबध हेतु है, उनके सोला कषाय, अरु नव नोकषाय, मिल कर पच्चीस भेद हैं अनतानुबधि क्रोध, मान, माया, अरु लोभ, ऐंसेंही अप्रत्याख्यान क्रोधादि चार, तथा प्रत्याख्यान क्रोधादि चार, अरु सज्वलन क्रोधादि चार, एव सोलह कषाय, इनके सहचारी नव नोकषाय है, उसका नाम कहते हैं १ हास्य, २ रति, ३ अरति, ४ शोक, ५ भय, ६ जुगुप्सा, ७ स्त्रीवेद, ८ पुरुषवेद, ९ नपुंसकवेद इन सर्वका व्याख्यान पीछें लिख आये हैं, इनसें कर्मका बध होता है, यही ससार स्थितिका मूल कारण है यह तीसरा बध हेतु कह्या

के नोगविलासमें मग्न है, अरु अनेक प्रकारके शस्त्र जिसके हाथमें हैं, अपनी ठकुराइमें अनिमानी है, हाथमें माला जपता है, सावध नोग पंचेंड्रियका वध चाहाता है, ऐसे देवकों जो पुरुष परमेश्वर माने, अथवा परमेश्वरका अंश अवतार माने, और पूजे, तिसके कहे हूये शास्त्रसें हिंसाकारी यज्ञादि करे, अनेक तरेंके पाप, धर्मके नामसे प्रवृत्त करे, इस लौकिक देवके अनेक नेद हैं सो मिथ्यात्व सित्तरी प्रमुख ग्रथोंसें जानने. यह प्रथम लौकिक देवगत मिथ्यात्व है

२ दूसरा लौकिक गुरुगत मिथ्यात्व, सो जो अगरह पाप सेवे हैं, नव प्रकारका परिग्रह राखे, गृहस्थाश्रम सेवे, स्त्री, पुत्र, पुत्रीके परिवार वाला होवे, तथा कुलिंगी मन कल्पित नवा नवा वेष बना कर स्वकपोलकल्पित चलावे, अरु आम्बरी होवे, बाह्य परिग्रह तो त्याग दीया है, परंतु अन्यंतर ग्रथि ठोडी नहीं, गुरु नाम धरावे, मम्लीसें विचरे, जिसकी अनादि नूल मिटी नहीं, औ जिसकों शुद्ध साध्यकी पीछाण नहीं, तिसकों गुरु माने, तिसका बहुमान करे, तिस्सें मोक्ष जाणी दान देवे, उसकों परम पात्र जाणे, सो लौकिक गुरुगत मिथ्यात्व है

३ तीसरा लौकिक पर्वगत मिथ्यात्व, सो १ अजापडवा, २ प्रेतदूज, ३ गुरुतीज, ४ गणेशचौथ, ५ नागपंचमी, ६ फीलणाछठ, ७ सीयलसातम, ८ बुधाष्टमी, ९ नोलीनवमी, १० विजयदशमी, ११ व्रतएकादशी, १२ वत्सद्वादशी, १३ धनतेरस, १४ अनतचौदश, १५ अमावास्या, १६ सोमवतीअमावास्या, १७ रक्षाबंध, १८ होली, १९ आहोइ, २० दसहरा, २१ सोमप्रदोष, २२ लोढी, २३ आदित्यवार, २४ उत्तरायण, २५ सक्रांति, २६ ग्रहण, २७ नवरात्र, २८ श्राद्ध, २९ पीपलकों पाणी देनां, ३० गधेकों माताका घोडा मानके पूजणां, ३१ गोत्राटी, ३२ अन्नकूट, ३३ अनेक समशान, कबरोंका मेला इत्यादि यह लौकिक पर्वगत मिथ्यात्व है

४ चौथा लोकोत्तर देवगतमिथ्यात्व, सो देव श्रीअरिहंत, धर्मका आकर, विश्वोपकार सागर, परमपूज्य, परमेश्वर, सकल दोष रहित, शुद्ध, निरंजन, तिनकी स्थापनारूप जो प्रतिमा, तिसके आगें इस लोकके पौजलिक सुखकी आशासें मनमें कल्पना करे, जे कर मेरा यह काम हो जावेगा, तो मैं बडी नारी पूजा करुगा, छत्र चढाउगा, दीपमालाकी रोशनी करुगा, रात जा

स वस्तुका जो नाम बोलते हैं, उस देशमें वो नाम सत्य है, जैसें कोकण देशमें पाणीकों पिच्च कहते हैं, कोइ देशमें बडा पुरुषकों बेटा कहते हैं, वा बेटेको काका कहते हैं, किसी देशमें पिताको नाइ, सासुकों आइ,इत्यादि कहते हैं, सो जनपदसत्य १ दूसरा सम्मतसत्य, सो जैसें पकसे उत्पन्न हूआ मैंमक, सिवाल, कमल, तोजी पकज शब्द करकें कमलही पूर्वे विद्वानोंनें सम्मत कीया है,परतु मैंमक, सिवाल नहीं २ तीसरा स्थापनासत्य, सो जिसीकी प्रतिमा होवे, तिसको उसके नामसें कहनां,जैसे महावीर, पार्श्वनाथजी अर्हंतकी प्रतिमा होवे, उस प्रतिमाकों महावीर, पार्श्वनाथ कहे, तो सत्य है, परंतु उसकों पछर कहे, सो मृषावादी है, जैसे स्याही और कागजका नाम, स्थापना करनेसें ऋग्, यजु, साम, अथर्व, कहे जाते हैं, आचारांगादि अग कहे जाते है, तथा काष्ठके आकार विशेषकों किवाड कहे जाते हैं, ईट, पछर, चूनेको स्थंज कहना, पुस्तकमें त्रिकोणादि चित्र लिखकें उसकों आर्यावर्त्त, जारतवर्ष, जबूद्वीपादि कहनां तथा ककार, खकार, स्याहीकी स्थापनाकों कहनां इस स्थापनासे पुरुषको कबुक सिद्धि जरुर होती है, नहीं तो नाना प्रकारकी स्थापना, पुरुष, किस वास्ते करते हैं? इस वास्ते श्रीमहावीर तथा श्रीपार्श्वनाथजीकी स्थापनारूप प्रतिमाको श्रीमहावीर पार्श्वनाथजी कहनां,यह स्थापना सत्य है इसमें इतना विशेष है,कि जो देव शुद्ध है, उसकी स्थापनाजी शुद्ध है, अरु जो देव शुद्ध नहीं, उसकी स्थापनाजी शुद्ध नहीं, परंतु उस स्थापनाकों उनका देव कहनां, यह बात सत्य है ४ चौथा नामसत्य, सो किसीने अपने पुत्रका नाम कुलवर्द्धन रक्खा है, अरु जिस दिनसें वो पुत्र जन्मा है, उस दिनसें उस कुलका नाश होता चला जाता है, तोजी उस पुत्रकों कुलवर्द्धन नामसें पुकारे, तो सत्य है ५ पांचमा रूपसत्य,सो चाहे गुणोसें ज्रष्टजी है, तोजी साधुके वेषवालेकों साधु कहे, तो सत्य है, ६ छठा प्रतीतसत्य, अर्थात् अपेक्षासत्य, सो जैसें मध्यमाकी अपेक्षा अनामिकाकों छोटी कहनां ७ सातमा व्यवहारसत्य, सो जैसे पर्वत जलता है, रस्ता चलता है ८ आठमा जावसत्य,सो जैसें तोतेमें पांच रंग हैं, तोजी तोता हरे रंगका कहनां ९ नवमा योगसत्य, सो जैसें दंमके योगसें दंमी कहना १० दशमा उपमासत्य, सो जैसें मुख,चंद्रवत् कहनां यह दश प्रकारका सत्य है

चौथा योगनामा बंधहेतु हैं. सो योग, मन, वचन, अरु काया, यह तीन प्रकारका है. इन तीनोंके पंदरा नेद हैं. तहां प्रथम मनोयोग चार प्रकारका है, और वचन योग चार प्रकारका है, अरु काययोग सात प्रकारका है, ये सब मिलकर पंदरा नेद है

मन नाम अंत करणका है, सो चार प्रकारें है. १ सत्यमनोयोग, २ असत्यमनोयोग, ३ मिश्रमनोयोग, ४ व्यवहारमनोयोग मन क्या वस्तु है? कायाके व्यापारसें पुजल ग्रहणा करके उन पुजलोकों जब मनोयोग करकें काढता है, तिसका नाम द्रव्यमन कहते हैं, अरु उन पुजलोंके संयोगसे जो ज्ञान उत्पन्न हो ता है, तिसका नाम नावमन है उस ज्ञान करकें जो व्यवहार सिद्ध होता है, तिस व्यवहार करके मननी सत्यादि व्यपदेशकों प्राप्त होता है, अरु उपचार करकें द्रव्यमननी ज्ञायक है, मनमें जो सत्य व्यवहारका धारण करता, सो सत्यमन, सो व्यवहार यह है कि पापसें निवृत्तनां वचनके उच्चारण बिना जो चितवन करनां कि मुनि है, जीवादि पदार्थ सत् हैं, इत्यादि मन शब्द करकें इहां मनोयोग नोइंडियावरण कर्मके क्षयोपशमसें उत्पन्न हुआ जो मनोज्ञान, उस करके परिणत आत्माकों बलाधान करने वाला मनोवर्गणाके संबधसें उत्पन्न हूआ वीर्यविशेष, सो इहां मन जाननां इसी मनके चार नेद हैं औसेंही वचनयोग, सो वचनकी वर्गणा अर्थात् परमाणुका समूह, उस वचन वर्गणा करकें उत्पन्न नइ सामर्थ्यविशेष, आत्माकी परिणति, सो वचनयोग जाननां

मनके चार नेदमेंसू सत्यमनोयोगका स्वरूप उपर लिख आये हैं, सो प्रथम नेद अरु दूसरा मृषामन, सो धर्म नहीं, पाप नहीं, नरक, स्वर्ग, कुछ नहीं इत्यादिक जो वचन निरपेक्ष चितवना करनी, सो जाननां तीसरा मिश्रमन, सो सच्च, अरु जूठ, इन दोनोंका चितन, जैसें गोवर्गकों देख कर मनमें चितन करनां कि यह सर्व गौवां हैं, यह मिश्र इस वास्ते है कि उस गोवर्गमें बलदनी है, इत्यादि मिश्रवचन चोथा " हे ग्राम गछ " इत्यादि चितन करनां, सो व्यवहारमन, इसी तरें जब वचन योगसें पूर्वोक्त चारोंका उच्चारण करे, तब वचन योगनी चार प्रकारका जान लेनां यह चार मनके अरु चार वचनके एव आठ नेद हूवे

अब सत्यवचन दश प्रकारका है, १ जनपद सत्य, सो जिस देशमें जि

जीवके वीर्यका परिणाम सामर्थ्य, सो काययोग है, जैसे अग्निके संयोग से घटकी रक्तता होती है, तैसेही आत्माको कायके करण सबधसे वीर्य परिणाम है, इस काययोगके सात नेद हैं १ औदारिककाययोग, २ औदारिकमिश्रकाययोग, ३ वैक्रियकाययोग, ४ वैक्रियमिश्रकाययोग, ५ आहारककाययोग, ६ आहारकमिश्रकाययोग, ७ कार्मणकाययोग इसमेंसूं प्रथमके दो काययोग तो मनुष्य, अरु तिर्यचमें होते हैं, अगले दो स्वर्गवासी देवताओंमें होते हैं, अरु अगले दो चौदह पूर्वपाठी साधुमें होते हैं, अरु जीव जब काल करकें परनवमें जाता है, तब रस्तेमें कार्मण शरीर होता है, तथा समुद्घात अवस्थामें केवलीमें होता है, अरु जो तैजस शरीर, आहार पाचन करनेमें समर्थ युक्त है, सो कार्मण योगके अतरनूत होनेसें पृथग् ग्रहण नहीं कीया है यह सप्तविध काययोग हैं यह सब मिल कर बधतत्त्वके उत्तर नेद सत्तावन्न हूये हैं ॥ इति बधतत्त्व सपूर्ण

अथ मोक्षतत्त्व लिखते है तहां प्रथम मोक्ष किसकों कहते हैं? ॥ यडुक्त ॥ जीवस्य कृत्स्नकर्मक्षयेण यत्स्वरूपावस्थान तन्मोक्ष उच्यते ॥ नावार्थ — जीवके सपूर्ण ज्ञानावरणादि कर्मोंके क्षय होने करकें जो स्वरूपमें रहनां है, सो मोक्ष कहते है वो जो मोक्ष है, सो जीवका धर्म है अरु धर्म धर्मीका कथचित् अनेद होनेसें धर्मी जो सिद्ध, तिनकी जो प्ररूपणा, सो नी मोक्ष प्ररूपणा है, क्योंकि मोक्ष जो है, सो जीवपर्याय है, सो जीव पर्याय कथचित् सिद्ध जीवसें अजिन्न है, सर्वथा जीवकी पर्याय जीवसें निन्न नहीं हो सक्ती है ॥ तडुक्त ॥ श्लोक ॥ इव्यं पर्यायवियुतं, पर्यायाइव्यवर्जिता ॥ क्क कदा केन किं रूपा, दृष्टा मानेन केन वेति ॥ १ ॥ नावार्थ — इव्य पर्यायों करके रहित अरु पर्यायों इव्य वर्जित अर्थात् रहित, किसी जगे, किसी अवसरमें, किसी प्रमाणसें, किसीने कोइ रूप देखा है?

अब सिद्धोंका स्वरूप नव द्वारोंसें सूत्रकार अरु नाष्यकार कहते हैं १ सत्पद प्ररूपणा, २ इव्यप्रमाण, ३ क्षेत्र, ४ स्पर्शना, ५ काल, ६ अतर, ७ नाग, ८ नाव, ९ अल्पबहुत्व इन नव द्वारों करकें सिद्धोंका स्वरूप लिखते हैं १ प्रथम सत्पद प्ररूपणा द्वार, सो जो सत्ता विद्यमानता, तिसका कहने वाला पद, सो सत्पद सिद्ध है, वा नहीं सिद्ध है? सो गति आदि चौद पदोमें कहनां यथा "पचविधा" १ पांच प्रकार गति है,

अब दश प्रकारके झूठ कहते हैं. १ क्रोधनिश्रित सो क्रोधके वश हो कर जो वचन बोले, सो असत्य, २ ऐसेही मानके उदयसे बोले, सो असत्य, ३ ऐसें मायाके उदयसें बोलें, सो असत्य, ४ लोभके, ५ रागके, ६ द्वेषके उदयसें बोले, सो असत्य, ७ हास्यके वश बोले, ८ भयके वश बोले, ९ विकथा करे, सो असत्य १० जिस बोलनेमें जीवकी हिंसा होवे, सो असत्य यह दश प्रकारका असत्य बचन है

अब दश प्रकारका मिश्रवचन कहते है १ उत्पन्न मिश्रित, सो विना ख बर कह देनां कि इस नगरमें आज दश बालक जन्मे हैं, इत्यादि २ विगत मिश्रित, सो जैसें विना खबरके कहनां कि इस नगरमें आज दश मनुष्य मरे हैं ३ उत्पन्नविगतमिश्रित, सो जैसें बिना खबरके कहनां कि इस न गरमें आज दश जन्मे हैं, अरु दशही मरे हैं ४ जीवमिश्रित, सो जीवा जीवकी राशिकों कहनां कि यह जीव है ५ अजीवमिश्रित, सो अन्नकी रा शिको कहनां कि यह अजीव है ६ जीवाजीवमिश्रित, सो जीवाजीव दो नोंकी मिश्रजापा बोले ७ अनतमिश्रित, सो मूली आदिकोंके अवयवोंमें किसी जगे अनत जीव हैं, किसी जगे प्रत्येक जीव हैं, उनकों प्रत्येक काय कहे ८ प्रत्येकमिश्रित, सो प्रत्येक जीवोंको अनतकाय कहे ९ अ द्धामिश्रित,सो दो घडीके तडकेमें कहे कि दिन उग्या है १० अद्धामिश्रित, सो घडी एक रात्रि गया,दिनका उदय कहे यह दश प्रकारका मिश्रवचन है

अब व्यवहार बचनके बारह भेद कहते हैं १ आमत्रण करनां,कि हे भगवन्! २ आज्ञापना, सो यह काम कर, तथा यह वस्तु लाव ३ या चना, सो यह बस्तु हमकों दीजीयें ४ पृछना, सो अमुक गामका मार्ग कौन सा है? ५ प्रज्ञापना, सो धर्म ऐसें होता है ६ प्रत्याख्यानी,सो यह काम हम नहीं करेंगे ७ इछानुलोम, सो यथासुख ८ अनभिगृहीता,सो मुझकों खबर नहीं ९ अभिगृहीता, सो मुझे खबर है १० सशय, सो क्यों कर खबर नहीं है? ११ प्रगट अर्थ कहे १२ अप्रगट अर्थ कहे यह बारह प्रकारका व्यवहारवचन है

औ कायायोगके सात भेद हैं प्रथम कायायोग उसकों कहते हैं, कि आत्माके निवासभूत पुजलद्रव्य घटित बूढेकों दुर्बलकों अवष्ट भभत जैसें लाठी आदि है, तिसकी तरें विषम काममें जिसके योगसे

णा नहीं, क्योंकि यह सर्व शरीरादिकके हूयें होते है, सो शरीरादिक सिद्धोंको है नहीं ए चक्षु, अचक्षु, अवधि, अरु केवल, इन चारो दर्शनमें सू आदिके तीनो दर्शनमें सिद्धपणा नहीं, परंतु केवलदर्शनमें केवल ज्ञानवत् जान लेना १० कृष्ण, नील, कापोत, तेज, पद्म, अरु शुक्ल, यह छै प्रकारकी लेश्यायोमें सिद्धपणा नहीं, क्योंकि लेश्या जो है, सो जवस्थ जीवकी पर्याय है, सिद्ध तो अलेशी है ११ नव्य, अनव्य, इन दोनोमें सिद्धपणा नहीं, क्योंकि नव्यजीव उसकों कहते हैं, कि जिसकों सिद्धपदकी प्राप्ति होवेगी, अरु सिद्धोंनें तो नवीन कोइ सिद्ध पदवी पावणी नहीं है, इस वास्ते नव्य पणा सिद्धोमें नहीं अरु अनव्यजीव उसकों कहते हैं, कि जिसमें सिद्ध होनेकी योग्यता किसी कालमेंनी न होवे, अैसा सिद्धका जीव नहीं है, क्योंकि उसमें अतीतकालमें सिद्ध होनेकी योग्यता थी, इस वास्ते सिद्ध अनव्यनी नहीं सिद्ध जो है, सो नोनव्य नोअनव्य है, यह आप्त वचननी है १२ क्षायिक, क्षायोपशम, उपशम, सास्वादन, अरु वेदक यह सम्यक्त्व पांच प्रकारका है इनका विपक्षी एक मिथ्यात्व, दूसरा सम्यक्त्व मिथ्यात्व, सो मिश्र है, तिनमेंसू क्षायिक वर्जित चार सम्यक्त्व अरु मिथ्यात्व, तथा मिश्र, इनमें सिद्धपद नहीं, क्योंकि यह सर्व क्षायोपशमिकादि नाव वर्त्ती है, अरु क्षायिक सम्यक्त्वमें सिद्ध पद है, क्षायिक सम्यक्त्वनी दो तरेंकी है एक शुद्ध, दूसरी अशुद्ध, तहां शुद्ध अपाय, सत् द्रव्य रहित नवस्थ केवलीयोंके है, अरु सिद्धोंके शुद्ध जीव स्वनावरूप सम्यक् दृष्टि है, सादि अपर्यवसान है, अरु अशुद्ध अपाय सहचारिणी श्रेणिकादिकोंकी तरें सम्यक् दृष्टि होना, यह क्षायिक सादि सपर्यवसाना है तहां अशुद्ध क्षायिकमें सिद्ध पद नहीं क्योंकि उसके अपाय सहचारी हैं अरु शुद्ध क्षायिकमें तो सिद्ध सत्ताका विरोध नहीं, क्योंकि सिद्ध अवस्थामें शुद्ध क्षायिक जाती नही रहती है अपाय, मतिज्ञानांशका नाम है अरु सत् द्रव्य शुद्ध सम्यक्त्वके दलियों का नाम हैं, इन दोनोका अनाव होनेसें क्षायिक सम्यक्त्व होता है, १३ सञ्ज्ञा यद्यपि तीन प्रकारकी है १ हेतुवादोपदेशिनी, २ दृष्टिवादोपदेशिनी, ३ दीर्घकालिकी तोनी दीर्घकालिकी सञ्ज्ञा करकें जो सञ्ज्ञी है, सोही व्यवहारमें प्राय ग्रहण कीये जाते हैं, सञ्ज्ञा होवे जिनके सो सञ्ज्ञी

१ नरकगति, २ तिर्यग्गति, ३ मनुष्यगति, ४ देवगति, ५ सिद्धगति तहां सिद्धगति वर्जके शेष चार गतिमें सिद्ध नही यद्यपि १ कर्मसिद्ध, २ शिल्पसिद्ध, ३ विद्यासिद्ध, ४ मंत्रसिद्ध, ५ योगसिद्ध, ६ आगमसिद्ध, ७ अर्थसिद्ध, ८ यात्रासिद्ध, ९ अभिप्रायसिद्ध, १० तप सिद्ध, ११ कर्मक्षयसिद्ध ऐसें अनेक तरेंके सिद्ध आवश्यककी निर्युक्तिकारने कहे हैं तोभी इहां जो कर्मक्षय करकें सिद्ध हूआ है, तिसका अधिकार है, इनहींकों मोक्षपर्याय है, औरोंकों नहीं २ इंद्रिय स्पर्शनादि पांच है, एक इंद्रिय, दो इंद्रिय, तीन इंद्रिय, चार इंद्रिय, पांच इंद्रिय इन पांचों प्रकारोमें सिद्ध पणा नहीं, क्योंकि सर्वथा शरीरके परित्यागनेसें सिद्ध होता है, जहां शरीर नहीं, तहां इंद्रियभी कोइ नहीं इसी वास्ते सिद्ध अतींद्रिय हैं. ३—१ पृथिवीकाय, २ अप्काय, ३ तेज काय, ४ पवनकाय, ५ वनस्पतिकाय, ६ त्रसकाय इन छही कायोंके जीवोंमें सिद्धपणा नहीं क्योंकि सिद्ध जो हैं, सो अकाय (काय रहित हैं) ४ काय, बचन, अरु मन भेद करकें योग तीन है उसमें केवल काययोग वाले एकेंद्रिय जीव हैं, अरु काय बचन योग वाले द्वींद्रियादि असज्ञी पंचेंद्रिय पर्यंत जीव हैं, अरु काय, बचन, मन योग वाले सज्ञी पंचेंद्रिय पर्याप्त जीव हैं, इन तीनों योगोमें सिद्धपणेकी सत्ता नहीं, क्योंकि सिद्ध अयोगी हैं, अरु अयोगी पणां तो काय बचन अरु मनके अभावसें होता है ५ स्त्री, पुरुष, नपुंसक, इन तीनों वेदोमें सिद्ध पदकी सत्ताका अभाव है, क्योंकि सिद्ध जो हैं, सो पूर्वोक्त हेतुसें अवेदी हैं ६ क्रोध, मान, माया, लोभ, इन चारों कषायोंमें सिद्ध पणां नहीं है, क्योंकि सिद्ध अकषायी हैं, सो अकषायिपणा कर्मके अभावसें होता है, ७ मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन पर्यायज्ञान, केवल ज्ञान यह पांच प्रकारका ज्ञान है अरु मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान, विभंगज्ञान, यह तीन अज्ञान हैं उसमें आदिके चारों ज्ञानोमें अरु तीनों अज्ञानोमें सिद्धपणा नहीं है, एक केवलज्ञानमें सिद्धपणां हैं, सो केवलज्ञान, इहां सिद्धावस्थाका जाननां, परंतु सयोगी अवस्थाका नहीं ८ सामायिक, छेदोपस्थापनीय, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसंपराय, अरु यथाख्यात यह पांच चारित्र, तथा इनके विपक्षी देश संयम, अरु असंयम तहा पांचविध चारित्रमें तथा दोनो विपक्षोमें सिद्धपणा मोक्षप

॥ अथ षष्ठ परिछेद प्रारंभः ॥

यह षष्ठ परिछेदमें चौदह गुणस्थानका स्वरूप किंचित् मात्र लिखते है यह जैन मतमें भव्य जीवोंकों सिद्धिसौधके चढने वास्ते गुणोंकी जो श्रेणी है, सोही निसरणी है, तिस गुण निसरणीमें पगधरणरूप गुणोसें गुणांतरकी प्राप्तिरूप जो स्थान, अर्थात् भूमिका है, सो चौदह हैं, तिनके नाम कहते हैं १ मिथ्यात्व गुणस्थानक, २ सास्वादन गुणस्थानक, ३ मिश्र गुणस्थानक, ४ अविरतिसम्यक्दृष्टि गुणस्थानक, ५ देशविरति गुणस्थानक, ६ प्रमत्तसंयत गुणस्थानक, ७ अप्रमत्तसंयत गुणस्थानक, ८ अपूर्वकरण गुणस्थानक, ९ अनिवृत्तबादर गुणस्थानक, १० सूक्ष्मसंपराय गुणस्थानक, ११ उपशांतमोह गुणस्थानक, १२ क्षीणमोह गुणस्थानक, १३ सयोगीकेवली गुणस्थानक, १४ अयोगीकेवली गुणस्थानक यह चौदह गुणस्थानक अर्थात् गुणरूप भूमिकाके नाम हैं

तहां प्रथम मिथ्यात्व गुणस्थानकका स्वरूप कहते हैं, उसमेंभी प्रथम व्यक्त, अव्यक्त, मिथ्यात्वका स्वरूप कहते हैं जो स्पष्टचैतन्यसंज्ञी पंचेंद्रिय जीवोंकी अदेव, अगुरु औ अधर्म, इन तीनोंमें क्रम करकें देव, गुरु, औ धर्मकी बुद्धि होवे, सो व्यक्तमिथ्यात्व है अरु उपलक्षणसें जीवादि नव पदार्थोंमें जिसकी श्रद्धा नहीं,अरु जिनोक्त तत्त्वसे जो विपरीत प्ररूपणा करणी, तथा जिनोक्त तत्त्वमें संशय करणां, तथा जिनोक्त तत्त्वमें दूषणोंका आरोप करणां, इत्यादि तथा आभिग्राहिकादि जो पांच मिथ्यात्व हैं, तिनमें एक अनाभोगिकमिथ्यात्व तो अव्यक्त मिथ्यात्व है, शेष चार भेद, व्यक्त मिथ्यात्वके है तथा ‘ अधम्मे धम्मसन्ना इत्यादि” दश प्रकारकी जो मिथ्यात्व है, सो सर्व व्यक्त मिथ्यात्व है अरु अपर जो अनादि कालसें मोहनीय प्रकृतिरूप मिथ्यात्व सत् दर्शनरूप आत्माके गुणका आच्छादक जीवके साथ सदा अविनाभावि है, सो अव्यक्तमिथ्यात्व है

अथ मिथ्यात्वकों गुण स्थानक किसी रीतीसें कहते हैं? सो लिखते हैं अनादि अव्यक्त मिथ्यात्व अव्यवहार राशिवर्त्ती जीवमें सदा होती है, परंतु व्यक्त मिथ्यात्वकी जो बुद्धि है, तिस बुद्धिकी जो प्राप्ति है, सोइ मिथ्यात्व गुणस्थानक है

जैसेंकि यह करा है, यह करुंगा, यह में कर रहा हों, ऐसा जो त्रिकाल विषय मनोविज्ञानवाले जीव है, तिनकों सज्ञी कहते है इनसें जो विपरीत होवे, सो असज्ञी जानने यह सज्ञी तथा असज्ञी, इन दोनोहीमें सिद्ध पद नहीं क्योंकि सिद्ध तो नोसज्ञी नोअसज्ञी हैं, १४ ओज आहार, लोम आहार, प्रक्षेप आहार, ये आहार, तीन प्रकारका है इन तिनों आहारोमें सिद्ध नहीं यह प्रथम सत्पद प्ररूपण द्वार कह्या

दूसरा द्रव्य प्रमाण द्वार लिखते हैं गिणती करियें तो सिद्धोंके जीव अनत हैं तीसरा क्षेत्र द्वार, सो आकाशके एक देशमें सर्व सिद्ध रहते हैं, वो आकाशका देश कितना बडा है? सो कहते हैं, कि धर्मास्तिकायादिक पांच द्रव्य, जहां तक हैं, तहां तक लोक है, ऐसा जो लोक सबधि आकाश, तिसके असख्यमे भागमें सिद्ध रहेते हैं चौथा स्पर्शना द्वार, सो जितने आकाशमें सिद्ध रहते हैं, स्पर्शना उससें किंचित् अधिक है पांचमा काल द्वार, सो एक सिद्धके आश्री सादि अनतकाल है, अरु सर्व सिद्धाश्रित अनादि अनतकाल जानना छठा अतर द्वार, सो सिद्धोंके विचाले अतर नहीं, सर्व सिद्ध मिलकें एकही रूपवत् रहने हैं सातमा भाग द्वार, सो सिद्ध जे हैं ते सर्व जीवोंके अनतमे भागमें हैं आठमा भाव द्वार, सो सिद्धोंकों क्षायिक पारिणामिक भाव है, शेष भाव नहीं नवमा अल्प बहुल द्वार, सो सर्वसें थोडे अनतर सिद्ध हैं, अनतर सिद्ध उनकों कहते हैं कि जिनकों सिद्ध हुआ, एक समय हुआ है, तिनसें परंपर सिद्ध अनत गुणे हुए हैं, छै मास सिद्ध होनेमें उत्कृष्ट अतर होता है यह अल्प बहुत्व द्वार कह्या यह मोक्षतत्त्वका स्वरूप सक्षेपमात्र लिखा है, जे कर विशेष करकें सिद्धोंका स्वरूप देखना होवे, तदा नदीसूत्र, प्रज्ञापन्नसूत्र, सिद्धप्राभृतसूत्र, सिद्धपंचाशिका, देवाचार्यकृत नवतत्त्व प्रकरणकी वृत्ति देख लेनी तथा आगें चतुर्दश गुणस्थानमेंभी सिद्धोंका कछुक स्वरूप लिखेगे ॥ इतिश्री तपगच्छीयमुनिश्रीबुद्धिविजयशिष्य मुनि आनदविजय आत्मारामविरचिते जैनतत्त्वादर्शे नवतत्त्व स्वरूपनिर्णयनामा पंचम परिच्छेद सपूर्ण ॥ ५ ॥

तिसे अनादिकाल उद्भव मिथ्याकर्मके उपशम होनेसें, ग्रंथिभेद करण कालसें पीछें औपशमिक सम्यक्त्व होता है, यह सामान्य स्वरूप है, अरु विशेषस्वरूप ऐसे है कि औपशमिक सम्यक्त्व दो प्रकारका है, एक तो अंतरकरणौपशमिक सम्यक्त्व, अरु दूसरा स्वश्रेणिगत, अर्थात् उपशमश्रेणिगत औपशमिक सम्यक्त्व है तहां अपूर्व करण करकेंही करा है, ग्रंथिभेद जिसने, अरु मिथ्यात्व कर्म पुद्गल राशिके तीन पुंज करे हैं जिसने, सो तीन पुंज यह हैं, १ अशुद्ध, २ अर्द्धशुद्ध, ३ शुद्ध इसमें अशुद्ध पुंज जो है, सो मिथ्यात्वमोहनीय है, अरु अर्द्ध शुद्ध जो है, सो मिश्रमोहनीय है, तथा शुद्धपुंज जो है, सो सम्यक्त्व मोहनीय है इनका स्वरूप पीछें लिख आये हैं, यह तीन पुंज जिसने नहीं करे हैं, अरु उदय आया मिथ्यात्व क्षय कीया है, तथा जो मिथ्यात्व उदय नहीं आया, तिसकों उपशमाया है, अंतर करणमें अंतर्मुहूर्त्तकाल लगें सर्वथा मिथ्यात्वके अवेदककों, अंतर करणमें औपशमिक सम्यक्त्व होता है, यह एक भेद तथा औपशम श्रेणिप्रतिपन्नकों मिथ्यात्व अनंतानुबंधीके उपशम हूआ स्वश्रेणिगत औपशमिक सम्यक्त्व होता हैं,सो दूसरा भेद ये दोनो प्रकारकी जो उपशम सम्यक्त्व है, सो सास्वादन उत्पत्तिमें मूल कारण है

अथ सास्वादनस्वरूप लिखते हैं औपशमिक सम्यक्त्ववाला जीव शांत हूये अनंतानुबंधी चारों कषायोमें एकभी क्रोधादिकके उदय हूयां थकां औपशमिकरूप गिरिशिखर तुल्यसें " परिच्युतो भ्रष्टो " अर्थात् गिरा सो जहां लगि मिथ्यात्वरूप भूतलकों नहीं प्राप्त हूआ, तहां लगि एक समयसें ले कर षट्आवलिकाप्रमाण सास्वादन गुणस्थानकवर्त्ती होता है,

प्रश्न –व्यक्तबुद्धिप्राप्तिरूप प्रथम अरु मिश्रादि गुणस्थानोकों उत्तरोत्तर चढण रूपोंकों तो गुणस्थानपणा युक्त है, परंतु सम्यक्त्वसें पडने वाले सास्वादनकों गुणस्थानपणा कैसें संभवे ?

उत्तर –मिथ्यात्व गुणस्थानककी अपेक्षा सास्वादनभी ऊर्ध्व आरोहणरूप होनेसें गुणस्थान है, क्योंकि मिथ्यात्व गुण अभव्य जीवोंकोंभी होता है, अरु सास्वादन तो भव्य जीवोंहीकों हो सक्ता है, भव्य जीवोमेंभी जिसका अर्द्ध पुद्गलपरावर्त्त शेष संसार है, तिनहीकों होता है इस वास्ते सास्वादनकोंभी मिथ्यात्व गुणस्थानसें आरोहरूप गुणस्था

प्रश्न – मिथ्यात्व गुणस्थानमें सर्व जीवोंके स्थान मिलते हैं, यह जैनशास्त्रका कथन है, तो फेर कैसे व्यक्त मिथ्यात्वकी बुद्धिकों गुणस्थान रूपता कहते हो ?

उत्तर –सर्वभाव सर्व जीवोने पूर्वं अनंत वार पाया है, इस वचनके प्रमाणसें जो प्राप्तव्यक्त मिथ्यात्वबुद्धिवाले जीव, व्यवहार राशिवर्त्ती हैं, सोही प्रथम गुणस्थानवाले जीव कहे जाते हे, नतु अव्यवहार राशि वर्त्ती जीव ? क्योंकि वो अव्यक्तमिथ्यात्व वाले हैं, इस वास्ते दोष नहीं

अथ मिथ्यात्व रूप दूषणका स्वरूप कहते हे जैसे जीव मनुष्यादिक प्राणी मदिरेके उन्मादसें हित, वा अहित, यह कुछभी नष्टचैतन्य होनेसें नहीं जानता है, तैसेंही मिथ्यात्व करकें मोहित जीव धर्माधर्म सम्यक् नहीं जानता है ॥यदाह ॥श्लोक॥ मिथ्यात्वेनालीढचित्ता नितांतं, तत्त्वातत्त्वं जानते नैव जीवा ॥ किं जात्यंधाः कुत्रचिद्वस्तुजाते, रम्यारम्यं व्यक्तमासादयेयु ॥ १ ॥ इति ॥ अथ मिथ्यात्वकी स्थिति कहते हैं, अभव्य जीवोकी अपेक्षा मिथ्यात्व जो है, अरु सामान्य प्रकारें अव्यक्त मिथ्यात्व, इनकी अनादि अनंत स्थिति है, सोइ स्थिति भव्य जीवोंकी अपेक्षा अनादि सांत है, यह स्थिति सामान्यप्रकार करकें मिथ्यात्वको अपेक्षा दिखलाइ है, जे कर मिथ्यात्व गुणस्थानककी स्थिति विचारियें, तदा भव्य जीवोकी अपेक्षा अनादि सांत है तथा सादि सांतभी हैं, अरु अभव्य जीवोकी अपेक्षा अनादि अनंत है, जब मिथ्यात्व गुणस्थानकमें जीव वर्त्तता है तब एक सौ वीश बंध प्रायोग्य कर्मप्रकृतियोंमेंसू १ तीर्थंकर नाम कर्मकी प्रकृति, २ आहारकशरीर, ३ आहारकोपांग, यह तीन प्रकृति नहीं बांधता है शेष एक सौ सत्तरां प्रकृतिका बंध करता है, तथा एक सौ बावीश कर्म प्रकृति जो उदय प्रायोग्य है, तिनमेंसू १ मिश्रमोहनीय, २ सम्यक्त्वमोहनीय, ३ आहारक, ४ आहारकोपांग, ५ तीर्थंकर नाम, यह पांच कर्मप्रकृति वर्जके शेष एक सौ सत्तरां प्रकृतिका उदय हे, अरु एक सौ अडतालीस कर्म प्रकृतिकी सत्ता है ॥ इति ॥ १ ॥

अथ दूसरा सास्वादन गुणस्थानकका स्वरूप कहते हैं उसमें प्रथम तो यह गुणस्थानकका कारणभूत उपशम सम्यक्त्व है, तिसका स्वरूप कहते हैं, जीवमें अनादिकालसंभूत (उत्पन्न) मिथ्याकर्मकी उपशां

वें आयु बांधा है, अरु पीछें उनको मिश्रगुण स्थानक हूआ है,वो जब मरे गा, तब जीस गुणस्थानकमें आयु बाधा है, तिसी गुणस्थानमें जा कर मरता है, औं गतिनी उसकी उसी मरण वाले गुणस्थानकके अनुसारें होती है, तथा मिश्रगुणस्थानक वाला जीव, १ नरकगति, २ नरकायु, ३ नरकानुपूर्वी, ६ स्त्यानर्द्धित्रिक, ७ डुर्नग, ८ डुस्वर, ए अनादेय, १३ अनतानुबंधी चार, १७ मध्यके चार सस्थान, २१ मध्यके चार सहन न, २२ नीचगोत्र, २३ उद्योतनाम, २४ अप्रशस्तविहायोगति, २५ स्त्रीवेद यह पच्चीश प्रकृतिका बधव्यवछेद करता है तथा मनुष्यायु, देवायु, यह दोनो नहीं बांधता है, यह सत्तावीश प्रकृति बिना शेष चोह त्तर प्रकृतिका बध करता है ४ तथा अनतानुबधी चार, ५ स्थावरनाम, ६ एकेंडिय,ए विकलत्रिक, इनके उदयके व्यवछेद होनेसे अरु मनुष्यानुपूर्वी, तथा तिर्यगानुपूर्वी, इन दोनोके उदय न होनेसें एक सौ प्रकृतिका उदय वेदता है, अरु पूर्वोक्त १४७ प्रकृतिकी सत्ता है ॥ इति मिश्रगुणस्थानक ॥३॥

अथ चौथा अविरतिसम्यग्दृष्टि गुणस्थानकका स्वरूप लिखते हैं तहां प्रथम सम्यक्त्व प्राप्तिका स्वरूप कहते हैं, कि नव्य सज्ञी पचेंडिय जीव कों यथोक्ततत्त्व यथावत् सर्ववित् प्रणीत तत्त्वोंमें जीवादि पदार्थोंमें नि सर्गसें अर्थात् पूर्वनव अन्यासविशेष करकें उत्पन्न नइ अत्यतनिर्मल गु णात्मक रूप स्वनाव,इन स्वनावसें अथवा गुरुके उपदेश श्रवण करणेसे रु चि नावना प्रगट उत्पन्न होती है, सो सम्यक्त्व, सम्यक्श्रद्धान लक्षण कहते हैं ॥ यदाह ॥ श्लोक ॥ रुचिर्जिनोक्ततत्त्वेषु, सम्यक् श्रद्धानमु च्यते ॥ जायते तन्निसर्गेण, गुरोरधिगमेन वा ॥ १ ॥ अथ अविरति सम्य ग्दृष्टिपणा जैसें होता है, तैसें कहते हैं दूसरी कषाय अप्रत्याख्यान, जिन का नाम है, ऐसे जे क्रोध, मान, माया, लोन, तिनके उदय करकें, वर्जित हुआ विरतिपणा इसी वास्ते केवल सम्यक्त्व मात्र जहां होवे, सो चौथे गुणस्थान वालोंको अविरति सम्यग्दृष्टिनामक गुणस्थानक होता है इस का तात्पर्य यह है,कि जैसें कोइ पुरुष, न्यायोपपन्न धन नोग विलास सौंद र्यशालिकुलमें उत्पन्ननी हूआ है, परंतु उरत जूआ आदि व्यसन सेवन करने लगा, इत्यादि अनेक अन्याय करे है, सो अपराध करनेसें उसकों राजदम मिला है, सो खमित करा है जिनोने अनिमान, ऐसे जो दम

नत्व हो सत्ता है. तथा सास्वादन गुणमें वर्त्तता हुआ जीव, १ मिथ्यात्व, ४ नरकत्रिक, ८ एकेंद्रियादि जाति चार, ९ आतपनाम, १० स्थावरनाम, ११ सूक्ष्मनाम, १२ अपर्याप्तनाम, १३ साधारणनाम, १४ हुंडकसंस्थान, १५ सेवार्त्तसंहनन, १६ नपुंसकवेद, यह सर्व सोला प्रकृतिका बंध व्यवछेद करता है, शेष एक सौ एक प्रकृतिका बंध करता है, तथा ३ सूक्ष्म त्रिक, ४ आतप, ५ मिथ्यात्वोदय, ६ नरकानुपूर्वी, यह छे प्रकृतिका उदय व्यवछेद होनेसे १११ कर्मप्रकृति वेदता है, तथा तीर्थंकरनामकी सत्ता विना १४७ प्रकृतिकी सत्ता है ॥ इति दूसरे सास्वादन गुणस्थानकका स्वरूप ॥२॥

अथ तीसरे मिश्रगुणस्थानकका स्वरूप लिखते हैं दर्शनमोहनीय प्रकृतिरूप मिश्र मोहकर्मके उदयसें जीवविषये जो समकाल समरूप करके सम्यक्त्व मिथ्यात्वके मिलनेसें मिश्रितभाव अंतरमुहूर्त्त यावत् मिश्र गुणस्थान कहते है, जो जीव, सम्यक्त्वमिथ्यात्व दोनोंके एकत्र मिलनेसें मिश्रभावमें वर्त्ते है, सो मिश्रगुणस्थानस्थ होता है, क्योंकि मिश्रपणा जो है, सो दोनोंके मिलनेसें एक रूप जात्यंतर है अथ दोनों भावोंके एकत्व जात्यंतर होनेमें दृष्टांत लिखते हैं कि जैसें घोडी और गधा इन दोनोके संयोगसें जात्यंतर खच्चर उत्पन्न होता है, अथवा जैसें गुड और दहींके मिलनेसे जात्यंतर रस शिखरणी रूप उत्पन्न होता है, तैसें ही जिस जीवकों सर्वज्ञ असर्वज्ञके कहे दोनो धर्मोंमें समबुद्धिसें एक सरीखी श्रद्धा उत्पन्न होवे, सो जात्यंतर भेदात्मक होनेसें मिश्रगुणस्थानक होता है जब यह मिश्रगुणस्थानस्थ जीव होता है, तब परभवका आयु नहीं बांधता है, अरु मिश्रगुणस्थानकमें वर्त्तता हूआ जीव, मरताभी नहीं है, भातो सम्यक्दृष्टि हो कर चौथे सम्यक्दृष्टि गुणस्थानकमें आरोह कर मरता है, अथवा कुदृष्टि हो कर मिथ्यादृष्टि गुणस्थानकमें पीछा आ कर मरता है, परंतु मिश्रगुणस्थानमें वर्त्तमान नहीं मरता है यह मिश्रकी तरें बारहवा क्षीणमोह, अरु तेरहवा सयोगी, इन दोनो गुणस्थानोंमेंभी जीव नहीं मरता है, शेष इग्यारह गुणस्थानोमें काल कर जाता है, अरु मिथ्यात्व, सास्वादन, अविरति सम्यक्दृष्टि, यह तीन गुणस्थानक जीवके साथ परभवमें जाते है शेष इग्यारह गुणस्थानक नहीं जाते हैं तथा जिन जीवोने मिथ्यात्वादि गुणस्थानोमें पू

हते हैं, २ तथा जिन अप्राप्त पूर्व अध्यवसाय विशेष करके तिस ग्रंथिकों ग्रंथि घन निविड राग द्वेष परिणतिरूपकों कहते हैं तिस ग्रंथिके नेदनेका जो आरंन, तिसकों अपूर्वकरण कहते हैं,३ तथा जिन अध्यवसायविशेष करके अनिवृत्त, ग्रंथिनेद करके अति परम आनंद जनक सम्यक्त्व पाता है, तिसका नाम अनिवृत्ति करण है, यह तीनों करणका स्वरूप श्रीजिन न द्रगणिक्षमाश्रमण आचार्य, आवश्यककी छुहांनोनिधि गंधहस्ती महा नाष्यमें लिखते हैं तीन पथिकके दृष्टांतसें तीनों करणका स्वरूप दिखाते हैं जैसे तीन पथिक उजाडके रस्ते चले जाते थे, तहां चलते चलते वि काल वेला हो गइ, औ सूर्य अस्त हो गया, वे पथी, मनमें बहुत मरने लगे, इतनेमें उस वखत तहां तत्काल दो चोर आ पहुचे, तिन चोरोंकों देख कर तिनमेंसू एक पथिक तो मरता हूआ पीछेकों दौड गया, अरु ए क पथिककों चोरोने पकड लीया, अरु एक पथिक तिन चोरोसें लड निड मार पीट करकें अगले नगरमें पहुंच गया, यह तो दृष्टांत है. इसका दा र्ष्टांत असें हैं, कि उजाड जो है, सो मनुष्य नव है, तिसमें कर्मोंकी जो स्थिति है, सो दीर्घ रस्ता है, औ जो गांव है,सो नयका स्थानक है,अरु राग द्वेष यह दोनो चोर हैं अब जो पुरुष पीछेको दौडा है, तिसकी तो स्थिति संसारमें रहणेकी अधिक हो जाती है,अरु जो पुरुष,पकडा गया, वो गांवके पास जा कर खडा हो गया, सो रागद्वेष, चोरोनें पकड ली या, वोनी दुखी है, अरु जिसने सम्यक्त्व पा लिया, सो गाममें पहुच गया, तातें सुखी नया यह दृष्टांत तीनो करणके साथ जोड लेना

अथ कीडीयोंके दृष्टांत करके तीनों करणोंका स्वरूप लिखते हैं, जैसें कीडीयों बिलमेंसू निकलके एक खूटेके तले न्रमण करती हैं, एकैके की डीयां उस खूटेके उपरि चढती हैं,अरु कितनिक खूटेके उपर चड कर पं ख लग जानेसें उम गइ हैं यह तीनों करणनी इसी तरें जान लेने तब तो जीव यथाप्रवृत्ति करण करकें ग्रंथिदेशकों प्राप्त होता है, अरु अपूर्व क रण करकें ग्रंथिका नेद करता है, ग्रंथिनेद करके कोइक जीव मिथ्यात्व के पुजल राशिको विनज्य (वांट) करकें १ मिथ्यात्व मोह, २ मिश्रमो ह, ३ सम्यक्त्व मोह रूप तीन पुंज करता है, जब अनिवृत्तिकरण कर कें विशुद्ध मानके उदय हूये अरु मिथ्यात्वके क्षय हूये ? उदय नहीं,हूये

पाशिक कोटवाल तिनों करकें विडंब्यमान अपने व्यसन जनित कुत्सित कर्मकूं विरूप जानता हूआ अपणे कुलके सुंदर सुख संपदाकी अभिला षा करताभी है, परंतु कोटवालोंसे छूटके सुखका अभ्यासभी नहीं कर स क्ता है, तैसेंही यह जीवभी अविरतिपणेंकों खोटे कर्मका फल जानता है, विरतिके सुंदर सुखकी अभिलाषाभी करता है, परंतु कोटवाल समा न दूसरी कषायके पाशों छूटनेका उत्साहभी नहीं कर सक्ता है, ओ अ विरति सम्यग्दृष्टि गुणस्थानकका अनुभव करता है

अथ चौथे गुणस्थानककी स्थिति कहते हैं, इस अविरति सम्यग्दृष्टि गुणस्थानककी स्थिति उत्कृष्टी तो तेत्तीस सागरोपम प्रमाण कछुक अधि क है, सो सर्वार्थ सिद्धादि विमानवासीयोंकी स्थिति मनुष्यायु अधिक है, तथा यह सम्यक्त्व, जब जीवका अर्द्ध पुद्गलपरावर्त्त शेष संसार रहता है, तब जीवकों आता है, दूसरोंकों नहीं आता है

अथ सम्यग्दृष्टिका लक्षण कहते हैं, १ दुःखी जीवके दुःख दूर कर णेकी जो चिंता, तिसका नाम कृपा है, २ किसी कारणसें क्रोध उत्पन्न भी हो गया है, तोभी तीव्र अनुशय अर्थात् तीव्र वैर नहीं रखता है, ति सका नाम प्रशम है, ३ सिद्धिसौधके चढने वास्ते सोपानसमान सम्य ग् ज्ञानादि साधनोमें उत्साह लक्षण मोक्षाभिलाष, तिसका नाम संवेग है, ४ अत्यंत कुत्सिततर अर्थात् अत्यंत बुरा संसाररूप बंदीखानेसें निकलने वास्ते परम वैराग्य रूप दरवाजेमें जो आ जानां है, तिसका नाम निर्वेद है, ५ श्रीसर्वज्ञ प्रणीत समस्त भावोंकी अस्तित्वका चिंतनां तिसका नाम आस्तिक्य है, यह पांच लक्षण जिस जीवमें होवें, वो भ व्यजीव सम्यग् दर्शन करकें अलंकृत होता है

अथ सम्यग्दृष्टि गुणस्थानकवर्त्ती जीवोंकी कौनसी गति है? सो क हते हैं इहां जीवपरिणामविशेषरूपकों करण कहते हैं, सो करण, तीन प्रकारका होता है, १ यथाप्रवृत्तिकरण, २ अपूर्वकरण, ३ अनि वृत्तिकरण तहां पर्वतकी नदीके जल करकें आलोड्यमान पाषाणकी तरें घचनां (घोलनां) न्याय करकें जीव आयु वर्जके शेष कर्मोंकी स्थिति किंचित् ऊनी एक कोटाकोटी सागर प्रमाण स्थिति करता हूआ जिन अ ध्यवसाय विशेष करके ग्रंथिदेश तक आता है, सो यथाप्रवृत्तिकरण क

देशविरति हो सक्ता है, तिनमें जघन्य देशविरति आकुट्टि स्थूलहिंसादि त्याग मद्य मांसादि परिहार, अरु परमेष्टि नमस्कारका स्मरण करणा॥य दाह ॥श्लोक॥ आउट्टि थूल हिंसाइ, मद्य मसाइचायउ ॥ जहन्नो सावउ होइ, जो नमुक्कार धारउ ॥ १॥ तथा मध्यम देशविरति "अक्षुद्रादि न्याय संपन्न विभव इत्यादि"धर्म योग्यता गुणों करि आकीर्ण गृहस्थ उचित षट्कर्म धर्ममें तत्पर , द्वादश व्रतका पालक, सदाचारवान्, अैसा होवे, तो मध्यम श्रावक जाननां तथा उत्कृष्टदेशविरति, सचित्त आहारका वर्जक, प्रतिदिन एकाशन करे, ब्रह्मचारी होवे, महाव्रत अंगीकार करनेकी इछावाला होवे, गृहस्थका धंदा जिसने त्यागा है, अैसा जो होवे, सो उत्कृष्ट देशविरति यह तीन प्रकारकी विरति जिसकों होवे, उसकों श्राद्ध, अर्थात् श्रावक कहते हैं देशविरतिकी उत्कृष्टी स्थिति देशोन कोटिपूर्वकी है

अथ देशविरति गुणस्थानकमें ध्यानका संभव कहते हैं यह गुणस्थान में १ अनिष्टयोगार्त्त, २ इष्टवियोगार्त्त, ३ रोगार्त्त, ४ निदानार्त्त यह चार पाद रूप आर्त्तध्यान तथा १ हिंसानंदरौद्र, २ मृषानंदरौद्र, ३ चौर्यानंद रौद्र, ४ संरक्षणानंदरौद्र यह चार पादवाला रौद्र ध्यान है वे देशविरतिके आर्त्तध्यान मंद होता है, जैसें जैसे देशविरति अधिक अधिकतर होती है, तैसें तैसें आर्त्त रौद्र ध्यान, मंद मंदतर होता जाता है,अरु धर्म ध्यान तो जैसे जैसें देशविरति अधिक होती है, तैसे तैसे अधिक अधिक होता है, मध्यमरूपही रहता है, परंतु उत्कृष्ट धर्मध्यान नहीं होता है जेकर उत्कृष्ट धर्मध्यान हो जावे, तब सर्व विरति हो जायगा, वो पांचमे गुणस्थान संबंधी धर्मध्यान कैसा है? जिसमें षट् कर्म, एकादश प्रतिमा, अरु श्रावक व्रत पालनेका संभव है

उक्त षट् कर्मका नाम कहते हैं १ तीर्थंकर अर्हंत भगवंत वीतराग सर्वज्ञकी प्रतिमाद्वारा पूजा करे, २ गुरुकी सेवा करे, ३ स्वाध्याय, ४ संयम, ५ तप,६ दान, यह षट्कर्म है ॥यदुक्तं॥ देवपूजा गुरूपास्ति ,स्वाध्याय संयमस्तप ॥ दानं चेति गृहस्थानां, षट् कर्माणि दिने दिने ॥ १ ॥

प्रतिमा जो है,सो अभिग्रहविशेषकों कहते हैं,सो नाममात्र यह है॥गाथा॥ दसण वय सामाइय, पोसह पडिमा अबंभ सचित्ते॥आरंभ पेस उद्दिठ,वज्जए समणभूए य ॥१॥ इनका विस्तार देखनां होवे, तदा पंचाशकनामा शास्त्रके

के उपशांत हूये, क्षायोपशमिक सम्यक्त्वकों प्राप्ति होता है जब जीवों कों क्षायोपशमिक सम्यग् दर्शन उत्पन्न होता है, तब जीवोंके मनुष्यगति देवगतिकी सपत् होती है तथा अपूर्व करण करकेंही कृत तीन पुंज वाले जीवकों चौथे गुणस्थानसेंही क्षपकपणेकों जब आरंभ करता है, तब अनतानुबधी चार, मिथ्यामोह, मिश्रमोह, अरु सम्यक्त्व मोहरूप तीनों पुंजोंके क्षय हूये,क्षायिक सम्यक्त्व होता है, तब वो क्षायिक सम्यग्दृष्टि जे कर अबद्धायु है, तब तो तिसी भवमें मोक्ष रूप होवेगा अरु जे कर आयु बांध कर पीछें क्षायिकसम्यक्त्ववान् हूआ है, तब तो तीसरे भवमें मोक्ष होता है अरु जे कर असख्यात वर्ष जीवने वाले मनुष्य, तिर्यचका आयु बांध कर पीछेसें क्षायिकसम्यक्त्व पावे, तब चौथे भवमें मोक्ष होता है

अथ अविरति गुणस्थानकवर्त्ती जीवका कृत्य लिखते हैं व्रत नियम तो उसके कोइभी नहीं होता है, परंतु देवमें अर्थात् भगवान् श्रीवीतराग में, अरु उक्तलक्षण गुरुमें, तथा श्रीसघमें, क्रम करके भक्ति, पूजा, नमस्कार, वात्सल्यादि कृत्य करता है तथा प्रभावक श्रावक होनेसें शासनकी उन्नति,शासनकी प्रभावना करता है तथा अविरति सम्यग्दृष्टि गुणस्थानक वाला जीव, १ तीर्थंकर नामकर्म, २ मनुष्यायु, ३ देवायु यह तीन प्रकृति तीसरे गुणस्थानसें अधिक बांधता है इस वास्ते सत्तत्तर प्रकृतिका बंध करता है, तथा मिश्र मोहके व्यवच्छेद होनेसें अरु आनुपूर्वी चार, अरु सम्यक्त्वमोहके उदय होनेसें एक सौ चार कर्म प्रकृतिकों वेदता है अरु क्षायिक सम्यक्त्व वालेकों १३८ प्रकृतिकी सत्ता होती है ,अरु उपशम सम्यक्त्व वालेकों चौथे गुणस्थानकसें ले कर इग्यारहमे गुणस्थानक पर्यंत १४८ कर्मप्रकृतिकी सत्ता है अरु क्षायिकसम्यक्त्व वालेकों जिस जिस गुण स्थानमें जितनी जितनी कर्मप्रकृतिकी सत्ता है, सो आगें चल कर लिख देवेंगे ॥ इति अविरति सम्यग्दृष्टि गुणस्थानकका स्वरूप ॥ ४ ॥

अथ पचम गुणस्थानकका स्वरूप लिखते हैं जीवकों सम्यग् तत्त्वावबोध करकें उत्पन्न हूआ वैराग्य, तिस वैराग्यसे सर्वविरतिकी वांछा करता भी है, तोभी सर्वविरतिघातक प्रत्याख्यान नाम कषायके उदयसे सर्व विरति अगीकार करणेकों सामर्थ्य नहीं, किंतु जघन्य, मध्यम, उत्कृष्टरूप

देशविरति हो सक्ता है, तिनमें जघन्य देशविरति आकुट्टि स्थूलहिंसादि त्याग मद्य मांसादि परिहार, अरु परमेष्टि नमस्कारका स्मरण करणा॥यदाह ॥श्लोक॥ आउट्टि थूल हिंसाइ, मद्य मसाइचायउ॥ जहन्नो सावउ होइ, जो नमुक्कार धारउ ॥ १॥ तथा मध्यम देशविरति "अक्षुद्रादि न्याय संपन्न विभव इत्यादि" धर्म योग्यता गुणों करि आकीर्ण गृहस्थ उचित षट्कर्म धर्ममें तत्पर , द्वादश व्रतका पालक, सदाचारवान्, ऐसा होवे, तो मध्यम श्रावक जानना तथा उत्कृष्टदेशविरति, सचित्त आहारका वर्जक, प्रतिदिन एकाशन करे, ब्रह्मचारी होवे, महाव्रत अंगीकार करनेकी इच्छावाला होवे, गृहस्थका धंदा जिसने त्यागा है, ऐसा जो होवे, सो उत्कृष्ट देशविरति यह तीन प्रकारकी विरति जिसकों होवे, उसकों श्राद्ध, अर्थात् श्रावक कहते हैं देशविरतिकी उत्कृष्टी स्थिति देशोन कोटिपूर्वकी है

अथ देशविरति गुणस्थानकमें ध्यानका संभव कहते हैं यह गुणस्थानमें १ अनिष्टयोगार्त्त, २ इष्टवियोगार्त्त, ३ रोगार्त्त, ४ निदानार्त्त यह चार पाद रूप आर्त्तध्यान तथा १ हिंसानंदरौद्र, २ मृषानंदरौद्र, ३ चौर्यानंद रौद्र, ४ संरक्षणानंदरौद्र यह चार पादवाला रौद्र ध्यान है वे देशविरतिके आर्त्तध्यान मंद होता है, जैसें जैसें देशविरति अधिक अधिकतर होती है, तैसें तैसें आर्त्त रौद्र ध्यान, मंद मंदतर होता जाता है,अरु धर्म ध्यान तो जैसे जैसें देशविरति अधिक होती है, तैसें तैसे अधिक अधिक होता है, मध्यमरूपही रहता है, परंतु उत्कृष्ट धर्मध्यान नहीं होता है जेकर उत्कृष्ट धर्मध्यान हो जावे, तब सर्व विरति हो जायगा, वो पांचमे गुणस्थान संबधी धर्मध्यान कैसा है? जिसमें षट् कर्म, एकादश प्रतिमा, अरु श्रावक व्रत पालनेका संभव है

उक्त षट् कर्मका नाम कहते हैं १ तीर्थंकर अर्हंत भगवंत वीतराग सर्वज्ञकी प्रतिमाद्वारा पूजा करे, २ गुरुकी सेवा करे, ३ स्वाध्याय, ४ संयम, ५ तप,६ दान, यह षट्कर्म हैं ॥यदुक्त॥ देवपूजा गुरूपास्ति ,स्वाध्याय संयमस्तप ॥ दानं चेति गृहस्थानां, षट् कर्माणि दिने दिने ॥ १ ॥

प्रतिमा जो है,सो अभिग्रहविशेषकों कहते हैं,सो नाममात्र यह है॥गाथा॥ दंसण वय सामाइय, पोसह पडिमा अबंभ सचित्ते॥आरंभ पेस उद्दिठ,वज्जए समणभूए य ॥१॥ इनका विस्तार देखना होवे, तदा पंचाशकनामा शास्त्रके

प्रतिमा पचाशकमें देख लेनां अरु श्रावकके व्रत बारह है, सो आगें चल कर लिखेंगे. यह षट् कर्म, एकादश प्रतिमा, बारह व्रत इनके पालनमें मध्यम धर्म ध्यान होता है, तथा देशविरति गुणस्थानस्थ जीव, अप्रत्याख्यान चार कषाय, नरकगति, नरकायु, नरकानुपूर्वी, यह नरक त्रिक आय सहनन तथा औदारिक शरीर, औदारिक अगोपांग, यह औदारिक द्विक यह सब मिल कर दश कर्मप्रकृतिका बध, व्यवछेद होनेसें सतसठ कर्मप्रकृतिका बध करता है तथा अप्रत्याख्यान चार, मनुष्यानुपूर्वी, तिर्यचानुपूर्वी, नरकत्रिक, देवत्रिक, वैक्रियद्विक, दुर्भग, अनादेय, अयश कीर्ति यह सतरां कर्मप्रकृतिका उदय व्यवछेद करनेसें सत्तासी कर्म प्रकृतिका फल नोक्ता है अरु एक सौ अडत्तीस प्रकृतिकी सत्ता है॥ इति देशविरतिगुणस्थान ॥५॥

अथ पांचमे गुणस्थानक उपरांत जो गुणस्थान है, तिनमेंसू तेरहवा गुणस्थान वर्जके शेष सर्वगुणस्थानोमें पृथक् पृथक् अंतर मुहूर्त्तमात्र स्थिति है

अथ छठा प्रमत्तसयत गुणस्थानकका स्वरूप लिखते हैं सर्व विरति साधु, यह छठे प्रमत्त गुणस्थानकमें होता है, वो साधु कैसा है? कि अहिंसादि पांच महाव्रतका धारक है, वो साधु किस करकें प्रमत्त होता है? कि प्रमादके होनेसें प्रमत्त होता है, सो प्रमाद पांच प्रकारका है॥

॥यदाह॥ गाथा॥ मज्ज विसय कसाया, निद्दा विगहा य पंचमी नणिया॥ ए ए पंच पमाया, जीव पाडति संसारे॥१॥ नावार्थ—मद्य, विषय, कषाय, निद्रा, अरु विकथा, यह पांच प्रमाद हैं, सो जीवकों संसारमें गेरते हैं, जो साधु, इन पांचो प्रमादों करकें सयुक्त होवे, अरु सज्वलनकी चौथी कषायका उदय होवे, तब महामुनि महाव्रती साधु अवश्य अतर मुहूर्त्त काल लगि सप्रमाद होनेसें प्रमादी होता है जे कर अतरमुहूर्त्तसें उपरांतनी सप्रमादी होवे, तदा प्रमत्त गुणस्थानसेंनी नीचें गिर पडता है अरु जे कर अंतर मुहूर्त्तसें उपरांतनी प्रमाद रहित होवे, तदा फेर अप्रमत्त गुणस्थानमें चढता (आरोहता) है

अथ प्रमत्तसयत गुणस्थानमें ध्यानका संनव कहते हैं यह गुणस्थानमें मुख्य तो आर्त्तध्यान, उपलक्षणसें रौद्रध्यानकानी सनव है, क्योंकि नोकषाय, हास्यादि षट्कके होनेसें तथा आज्ञादि आलबन युक्त धर्मध्यानकी गौणता है, १ आज्ञा, २ अपाय, ३ विपाक, ४ सस्थान इन

चारोंके चिंतनलक्षण आलंबनों करके संयुक्त धर्मध्यान होता है इहां धर्मध्यानके चार पाद हैं॥ उक्तं च ॥ आज्ञापायविपाकानां, संस्थानस्य विचिंतनात् ॥ इत्थं वा ध्येयभेदेन, धर्मध्यानं चतुर्विधं ॥ १ ॥ आज्ञा उसकों कहते हैं, कि जो कुछ सर्वज्ञ अर्हंत भगवंतने कहा है, सो सर्व सत्य है, अरु जो बात, मेरी समझमें नहीं आती है, वो मेरी बुद्धिकी मंदता है, तथा दुःषम कालके प्रभावसें, संशय मिटाने वाले गुरुके अभावसें, इत्यादि निमित्तोसें मेरी समझमें नहीं आता है, परंतु अर्हंत भगवंतके कहे हुवे वाक्य सत्य है, क्योंकि उनकें मृषा बोलनेका कोइभी निमित्त नहीं है, ऐसा जो चिंतन करनां, सो आज्ञा विचयनामा प्रथम भेद है तथा राग, द्वेष, कषायादिको करके जो अपाय (कष्ट) उत्पन्न होते है, तिनका जो चिंतन करनां, सो अपायविचयनामा दूसरा भेद है तथा क्षण क्षण प्रति जो कर्मफलोदय विचित्ररूप उत्पन्न होता है, सो विपाकविचयनामा तीसरा भेद है, तथा यह लोक अनादि अनंत है, अरु उत्पाद,व्यय,ध्रुव रूप सर्व पदार्थ हैं, तथा पुरुषाकार लोकका संस्थान है, ऐसा जो चिंतन करनां,सो संस्थानविचयनामा चौथा भेद है इत्यादि आलंबना युक्त धर्मध्यानकी गौणता, प्रमत्त गुणस्थानमें है, परंतु सप्रमाद होनेसे मुख्यता नहीं

अथ जे कर कोइ प्रमत्त गुणस्थानमें निरालंबन धर्मध्यान कहे, तिसका निषेध करते हैं जिनभास्कर (जिनसूर्य) ऐसें कह गये हैं, कि जो साधु जहां लगि प्रमाद संयुक्त होवे, तहां लगि तिस साधुको निरालंबन ध्यान नहीं होता है, क्योंकि इहां प्रमत्त गुणस्थानमें मध्यमधर्मध्यानकी भी गौणताही कही है, परंतु मुख्यता नहीं तिस वास्ते प्रमत्तगुणस्थानमें उत्कृष्ट निरालंब धर्मध्यानका संभव नहीं

अथ जो यह अर्थ न माने, तिसको कहते हैं, जो साधु, प्रमाद युक्तभी आवश्यक सामायिकादि षडावश्यकसाधक अनुष्ठानका परिहार करकें निश्चल निरालंबन ध्यानाश्रित होवे, वो साधु, मिथ्यात्वमोहित मिथ्याभाव करके मूढ हुआ थका जैनागम श्रीसर्वज्ञप्रणीत शास्त्र नहीं जानता, क्योंकि वो साधु व्यवहार तो छोड बैठा है, अरु निश्चयकों प्राप्त नहीं हुआ है अरु जो जिनागमके जानने वाले हैं, सो तो व्यवहारपूर्वक निश्चयकों साधते हैं ॥ यदाह ॥ जइ जिणमयं पवज्जह, ता मा विवहार निछए मु

यह ॥ विवहारनउ छेए, तित्थुछेउ जउ जणिश्रो ॥ १ ॥ अर्थ —जे कर जिनमतकों अंगीकार करते हो, श्रो जैनमतमें साधु होते हो, तो व्यवहार निश्चयका त्याग मत करो,क्यों कि व्यवहार नयके उछेद होनेसे तीर्थका उछेद हो जायगा,इस बात उपर यह दृष्टांत है,कि जैसे कोइक पुरुष अपने घरमें सदा बाजरेकी रोटी खाता है, किसीने उसकों निमंत्रण करकें अपूर्व मिष्टान्नाहार कराया, तब तो वो उस स्वादका लालुपी हो कर अपणे घरकी बाजरेकी रोटी नि स्वाद जान कर खाता नहीं, वस ऽ प्राप्य मिष्टान्नकी अनिलाषा करता है, तब तो वो अपणे घरका कदन्न तो खाता नहीं, अरु मिष्टान्नजी मिलता नहीं, तब वो उनयभ्रष्ट होता है तैसें यह जीवजी कदाग्रहरूप नूतके लगनेसें प्रमत्तगुणस्थान साध्यस्थूलमात्र पुण्यपुष्टिका कारण षडावश्यकादि कष्टक्रिया नहीं करता, अरु कदाचित् प्रमत्तगुणस्थानमें जिसका लान है, ऐसा जो निर्विकल्प मनोजनित समाधिरूप निरालंबन, ध्यानांशरूप, अमृत आहारतुल्य पाया है तब तो तिस करिकें उत्पन्न हूआ जो परमानंद सुखस्वाद, तिस करकें प्रमत्त गुणस्थानगत षडावश्यकादि कष्टक्रिया कर्म,कदन्न समान कर सम्यक्आराधन न करे, अरु मिष्टान्न तुल्य निरालंबन ध्यानांश सो तो प्रथम संहननके अनावसें प्राप्त नहीं होता है,तब तो षडावश्यकके न करनेसें उनयभ्रष्ट हो जाता है,क्योंकि निरालंबन ध्यानका मनोरथही पंचम कालके महामुनि ऋषियोने करा है ॥ तथाच पूर्वमहर्षय ॥ चेतोवृत्तिनिरोधनेन करण, ग्राम विधायोद्धश ॥ तत्संहृत्य गतागतं च मरुतो, धैर्यं समाश्रित्य च ॥ पर्यंकेन मया शिवाय विधिवत् स्थित्वैकनूनृद्दारीमध्यस्थेन कदाचिदर्पितदृशा, स्थातव्यमतर्मुख ॥१॥ चित्ते निश्चलतां गते प्रशमिते, रागादिनिद्रामदे ॥ विद्राणेऽक्षकदंबके विघटिते, ध्वांते भ्रमारंजके ॥ आनंदे प्रविजृंजिते पुरपते, ज्ञाने समुन्मीलिते ॥ मां रक्ष्यंति कदा वनस्थमनितो, दृष्टाशया श्वापदा ॥ २ ॥ तथा श्रीसूरप्रनाचार्या ॥ चित्तावदातैर्नवदागमानां, वा जैपजैरांगरुज निवर्त्य ॥ मया कदा प्रौढसमाधिलक्ष्मी इत्यादि " तथाश्री हेमचंद्र सूरय ॥ वनपद्मासनासीन, क्रोडस्थितमृगार्जक ॥ कदा घ्रास्यति वक्त्रे मां, चरतो मृगयूथपा ॥ १ ॥ शत्रौ मित्रे तृणे स्त्रैणे,सुवर्णेऽश्मनि मणौ मृदि ॥ मोक्षे जवे नविष्यामि, निर्विशेषमति कदा ॥२॥ इन श्लोकोका थोडासा अर्थजी

लिख देते हैं, चित्तकी वृत्ति निरोध करकें, इंद्रिय समूह औ इंद्रियोंके विषयोंकों दूर करके, तिस पीछें पवनकी अर्थात् श्वासोच्छ्वासकी गतागति को रोक करके, अरु धैर्यकों अवलंबकें, पद्मासनसें बैठ करकें,शिवके वास्ते विधि संयुक्त किसी पर्वतकी गुफामें बैठ करके,एक वस्तु उपरि दृष्टि रख कर, मुझको अंतर्मुख रहना योग्य है ॥१॥ चित्तके निश्चल हूयां उता राग, द्वेष, कषाय, निद्रा, मदके शांति हूया,अरु इंद्रिय समूहके दूर हूयां, अरु भ्रमारजक अंधकारके दूर होया, अरु आनंदके प्रगट वृद्धिमान् भये,ज्ञानके प्रकाश भये, ऐसी जीवकों अवस्थामें मेरेको वनमें रहेकों दुष्टाशयवाले सिंह कब रक्षा करेंगे? ॥२॥ तथा श्रीसूरप्रभाचार्यजी कहते हैं, कि हे भगवन्! तुमारा आगमरूप भेषज करकें, राग रूप रोग निवर्त्त करके,निर्मल चित्त करकें कब वो दिन आवेगा कि जिस दिन मैं समाधि रूपी लक्ष्मीकू देखुगा? इत्यादि तथा श्रीहेमचंद्रसूरिजी कहते हैं कि वनमें पद्मासन बैठे हुवे मेरी गोदमें मृगका बच्चा बैठे, अरु हिरणोंका स्वामी वडा हरण मेरे मूखकों सूघे, अरु में अपणी समाधिमें स्थित रहूं॥१॥ तथा शत्रुमें मित्रमें, तृण अरु स्त्रीमें, सुवर्ण अरु पाषाणमें, मणि अरु मट्टिमें, मोक्ष अरु संसारमें, निर्विशेषमति, मै कब होवूंगा? ॥ ४ ॥ ऐसेंही मंत्री वस्तुपालने तथा परमतमें भर्तृहरिनेभी मनोरथही करा है ऐसें स्वसमय परसमयमें प्रसिद्ध जो पुरुष हूये हैं, तिनोंने परमात्मतत्त्वसंवित्तिमें मनोरथही करा है, अरु मनोरथ जो लोकमें करते हैं, सो दुःप्राप्य वस्तुकाही करते हैं, परंतु जो वस्तु, सुखेन मिल जावे, तिसका मनोरथ कोइभी नहीं करता है, जो सदा मिष्टान्न खाता है, अरु वडा भारी राज्य भोगता है, वो कभी मिष्टान्न खानेका अरु राज्य भोगनेका मनोरथ नहीं करता है, तिस वास्ते सर्व प्रकारसे प्रमत्त गुणस्थानस्थ विवेकी जनोनें परम संवेग आरूढ अप्रमत्त गुणस्थानकका स्पर्श कराभी है, तोभी परम शुद्ध परमात्मतत्त्वसंवित्तिका मनोरथ करणा, परंतु षट्कर्म षडावश्यकादि व्यवहार क्रिया जो है, उसका परिहार न करना अरु जो मूढ, योगग्रह करकें ग्रस्त हैं, अरु सदाचार व्यवहारसे पराङ्मुख हैं, तिनका योगभी किसी कामका नहीं है,अरु उनका यह लोकभी नहीं अरु परलोकभी नहीं क्योंकि वो जीव जडात्मा है ॥ यत ॥ योगिन सम्मतामेतां,

प्राप्य कल्पलतामिव ॥ सदाचारमयीमस्या, वृत्तिमातत्त्ववतां बहि ॥ १ ॥ ये तु योगग्रहग्रस्ता, सदाचारपराङ्मुखा ॥ एष तेषां च योगोपि, न लो कोपि जडात्मनां ॥ २ ॥ तिस वास्ते साधुकों जो दूषण दिन रात्रिमें लगता है, तिसके छेदने वास्ते अवश्यमेव षडावश्यकादि क्रिया करे, जहां लगि उपरिले गुणस्थानों करि साध्य जो निरालंबन ध्यान है, तिसकों न प्राप्ति होवे, तहां लगि करे तथा प्रमत्त गुणस्थानस्थ जीव, चार प्रत्याख्यानके बंध, व्यवछेद होनेसें त्रेशठ प्रकृतिका बध करता है, तथा तिर्यग्गति, तिर्यगानुपूर्वी, नीचगोत्र, उद्योत, अरु प्रत्याख्यान चार, यह आठ प्रकृतिके वदय वछेद होनेसे अरु आहारक तथा आहारकोपां ग, यह दो प्रकृतिके उदय होनेसें एकासी प्रकृति वेदता है, अरु एक सौ अडत्तीस प्रकृतिकी सत्ता है ॥ इति प्रमत्तगुणस्थानक षष्ठ ॥ ६ ॥

अथ सप्तम अप्रमत्त गुणस्थानकका स्वरूप लिखते हैं पांच महाव्रत धारी साधु, पांच प्रमाद रहित, अप्रमत्त गुणस्थानस्थ होता है, अरु सं ज्वलनकी चारों कषायोंका वदय मद होवे, तथा नोकषायोंकाजी उदय मद होवे. तात्पर्य यह है कि सज्वलन कषाय तथा नोकषायोंका जैसा जैसा मदोदय होता है, तैसें तैसें साधु अप्रमत्त होता है ॥ यदाह ॥ श्लोक ॥ यथा यथा न रोचते, विषया सुलभाअपि ॥ तथा तथा समायाति, स विचौतत्त्वमुत्तम ॥ १ ॥ यथा यथा समायाति, सविचौतत्त्वमुत्तम ॥ तथा तथा न रोचते, विषया सुलभाअपि ॥२॥ अर्थ –जैसें जैसें अप्रमत्तगुण स्थान वाला जीव मोहनीय कर्मके उपशम करणेमें तथा क्षय करणेमें निपुण होता है,तथा जैसें सद्ध्यानका आरंज करता है,सोइ स्वरूप कहते हैं

दूर करे हैं, सर्व प्रमाद जिसने अैसा जो जीव, तथा पांच महा व्रतका धारक, अरु अष्टादश सहस्र जो शीलांगलक्षण, तिनों करकें सयुक्त, सदागमका अभ्यासी, ज्ञानवान् ध्यान एकाग्रता रूप,अैसा ज्ञान ध्यानरूप जि सके पास धन है,इसी वास्ते "मौनी" मौनवान् है क्योंकि मौनवानही ध्यान रूप धनवान् हो सक्ता है, तिस पीछें ज्ञान ध्यान मौनवान्, उपशम कर णेंके अर्थे अथवा क्षय करणेंके अर्थे सन्मुख हूआ थका अैसा पवित्र मुनि सप्तोत्तर मोहकों पूर्वोक्त सम्यक्त्व मोह, मिश्रमोह, मिथ्यात्वमोह, अरु अनतानुबधी चार यह सात प्रकृतिके विना शेष इक्कीस प्रकृतिरूप मो

हनीय कर्मके उपशम करणेके सन्मुख तथा क्षय करणेके सन्मुख जब होता है,तब सालंबन ध्यान त्यागके निरालंबन ध्यानमें प्रवेश करनेका आरंभ करता है यह निरालंबन ध्यानमें प्रवेश करने वाले योगी, तीन तरेंके होते हैं १ यथाप्रारंभका , २ तन्निष्ठा , ३ निष्पन्नयोगा ॥ यदाह ॥श्लोक॥ सम्यग् नैसर्गिकीं वा, विरतिपरिणतिं, प्राप्य सासंर्गिकीं वा ॥ क्वाप्येकांते निविष्टा , कपि च पलचल, न्मानसस्तंभनाय ॥ शश्वन्नासाग्रपाली, घनघटितदृशो, धीरवीरासनस्थो ॥ ये नि पापा समाधे, र्विदधति विधिना, रंभमारंभकास्ते ॥१॥ कुर्वाणो मरुतासनेंद्रियमन , क्षुत्तर्पनिद्राजय ॥ योंत जल्पति रूपणानिरसरु, तत्त्व समन्यस्यति ॥ सत्त्वानामुपरि प्रमोदकरुणा, मैत्रिनूंश मन्यते ॥ ध्यानाधिष्ठितचेष्टयाऽभ्युदयते, तस्येह तन्निष्ठता ॥ २ ॥ उपरतबहिरंतर्जल्पकल्लोलमाले, ललदविकलविद्यापद्मिनीपूर्णमध्ये ॥ सततममृतमत मानसे यस्य हंस , पिबति निरुपलेप सोऽत्र निष्पन्नयोगी ॥ ३ ॥

अथ अप्रमत्त गुणस्थानमें ध्यानका संभव कहते हैं सर्वज्ञका कहा हूआ धर्म ध्यान मैत्र्यादि अनेक भेदरूप है ॥ यदाह ॥ श्लोक ॥ मैत्र्यादिभिश्चतुर्भेद, य दाज्ञादि चतुर्विध ॥ रूपस्थादि चतुर्धा वा, धर्मध्यान प्रकीर्त्तितम् ॥ १ ॥ तत्र ॥ मैत्रीप्रमोदकारुण्य, माध्यस्थानि नियोजयेत् ॥ धर्मध्यानमुपस्कर्तुं, तद्धि तस्य रसायन ॥ २ ॥ आज्ञापायविपाकानां, संस्थानस्य विचिंतनात् ॥ इत्थ वा ध्येयभेदेन, धर्मध्यान प्रकीर्त्तितं ॥ ३ ॥ तथा १ पिंडस्थध्यान अपणे अंग अंगीका स्वरूप, २ वाणीव्यापाररूप पदस्थध्यान, ३ संकल्पित आत्मरूप रूपस्थ ध्यान, ४ कल्पनासे रहित रूपातीत ध्यान, ऐसा जो जिनेश्वरका कहा हूआ धर्मध्यान, सो अप्रमत्त गुणस्थानमें मुख्यवृत्ति करके प्रधानपणे होता है तथा रूपातीतपणे करकें शुक्लध्यानभी अंशमात्र करकें गौणपणे है इहां अप्रमत्त गुणस्थानमें आवश्यक क्रियाका जो अभाव है, तोभी शुद्ध है, यह वार्त्ता कहते हैं

इस पूर्वोक्त अप्रमत्त गुणस्थानकमें सामायिकादि षट् आवश्यक, सोभी नहीं है, "कोर्थ " सामायिकादि ते आवश्यक व्यवहार क्रियारूप, इस गुणस्थानमें नहीं, परंतु निश्चय सामायिकादि सर्व कुछ है, क्योंकि सामायिकादि सर्व आत्माके गुण हैं, " आया सामाइए, आया सामाइयस्स अट्ठे " अ

र्यात् आत्माही सामायिक है, अरु आत्माही सामायिकका अर्थ है, यह आगमके बचनसे है

प्रश्न – किस वास्ते अप्रमत्त गुणस्थानमें व्यवहार क्रियारूप षट् आवश्यक नहीं ?

उत्तर – अप्रमत्त गुणस्थानमें निरतर ध्यानके सत् योगसे निरंतर ध्यानहीमें प्रवृत्त होता है, इस वास्ते स्वाभाविकी सहज नित्य सकल्प विकल्प मालाके अभावसें एक स्वभावरूप निर्मल आत्मा होती है, इस गुणस्थानमें वर्त्तमान जो जीव है, वो भावतीर्थ स्नान करकें परम शुद्धिकों प्राप्त होता है ॥ यदाह ॥ दाहोवसमं तएहाइ, छेयण मलप्पवाहण चेव ॥ तिहिं अत्थेहिं निउत्त, तम्हा तं दव्वउ तित्थ ॥ १ ॥ कोहमि उ निग्गहिए, दाहस्सोवसण हवइ तित्थ ॥ लोहमि उ निग्गहिए, तएहाइ छेयए जाण ॥ २ ॥ अठविर्य कम्मरय, बहुएहिं भवेहि सचिय जम्हा ॥ तव सयमेण धोयइ, तम्हा तं भावउ तित्थ ॥ ३ ॥ अर्थ –दाह उपशांत करे, तृषाका छेद करे, शरीरकी मलकों दूर करे, इन पूर्वोक्त तीनो अर्थो करकें जो नियुक्त होवे, ऐसे जो गगा मागधादि, तिसकों इस वास्ते द्रव्यतीर्थ कहते हैं ॥ १ ॥ तथा क्रोधके निग्रह करणेसें दाह उपशम होती है, अरु लोभके निग्रह करणेसें तृषा छेद होती है,ऐसें जानना अरु आठ प्रकारकी कर्मरज बहुत भवों करकें जो सची है,सो तप सयम करकें जो धोवे, तिस वास्ते तिसकों भाव तीर्थ कहते हैं ॥ अन्यच्च ॥ श्लोक ॥ रुद्धप्राणप्रचारे, वपुषि नियमिते, सवृतेऽक्षप्रपंचे ॥ नेत्रस्पदे निरस्ते, प्रलयमुपगतें, तर्विकल्पेंद्रजाले ॥ भिन्ने मोहांधकारे, प्रसरति महसि, क्वापि विश्वप्रदीपे ॥ धन्यो ध्यानावलबी, कलयति परमानदसिंधौ प्रवेश ॥ १ ॥ अर्थ – प्राण, श्वासोश्वास का प्रचार आना जाना जिसने रोका है, औ जिसने शरीरकों वश कीया है, औ जिसने नेत्रका टपकारना बद कीया है, औ पांच इंद्रियकों अपणे अपणे विषयसें रोका है,तथा अतर विकल्परूप इंद्रजालके लय हूये,मोह रूप अधकारके नष्ट हूयां, अरु त्रिभुवन प्रकाशक ज्ञान प्रदीपके, प्रगट हूये धन्य वो ध्यानावलबी पुरुष है,सो परमानदरूप समुद्रमें प्रवेश करता है

यह अप्रमत्त गुणस्थानस्थ जीव, १ शोक, २ रति, ३ अरति, ४ अस्थिर, ५ अशुभ, ६ अयश, ७ अशातावेदनी इन सातो प्रकृतियोंका बध

व्यवछेद करता है, अरु १ आहारक, २ आहारकोपाग, यह दो प्रकृतिका बध करता है इस वास्ते ऊणसठ प्रकृतिका बध करता है अरु जे कर देवायु न बाधे, तब अठावन प्रकृतिका बध करता है, तथा स्त्यानर्द्धित्रिक, अरु आहारक द्विकोदयका व्यवछेद करे, तब छिहत्तर प्रकृतिका फल वेदता है, अरु १३८ प्रकृतिकी सत्ता है॥ इति अप्रमत्त गुणस्थानक सप्तम॥७॥

अथ आठवा अपूर्वकरण, नवमा अनिवृत्तिबादर, दसवा सूक्ष्मसपराय, इग्यारवा उपशात मोह, बारहवा क्षीणमोह. यह पाच गुणस्थानोंका नामार्थ सामान्य प्रकारसें लिखते हैं

जो अप्रमत्तसयत सातमे गुणस्थान वर्त्ती दिखलाया है, सोइ संज्वलन कषाय चार, नो कषाय छे, इनके मद उदय हूये प्राप्त अप्राप्तपूर्व अत्यत परमाल्हादरूप अपूर्व पारिणामिक आठवा गुणस्थान है, इसका नाम अपूर्वकरण इस वास्ते कहते है कि इस गुणस्थानकमें अपूर्व आत्मगुणकी प्राप्ति होती है

तथा देखा, सुना, औ अनुजव्या, जो जोग, तिनकी कांक्षारूप सकल्प विकल्प रहित निश्चल परमात्मैकतत्त्वरूप प्रधानपरिणतिरूप जावोंकी निवृत्ति नहीं, इस वास्ते इसका नाम अनिवृत्ति गुणस्थान कहते हैं अरु इसका नाम जो अनिवृत्तिबादर कहते हैं, सो इहा अप्रत्याख्यानादि जो द्वादश बादर कषाय हैं, तिनका, अरु नव नोकषायोंका शमक, उपशम करने वास्ते अरु क्षपक, क्षय करणेके वास्ते उद्यमी होता है, इस कारणसें इसका नाम अनिवृत्तिबादर कहते हैं यह नवमा गुणस्थान है

तथा सूक्ष्म परमात्मतत्त्वजावनाबल करकें सत्तावीश प्रकृतिरूप मोहके उपशांत हूये, तथा क्षय हूये, एक सूक्ष्म खंमीजूत लोजकी अस्तित्व जहां है, सो सूक्ष्मसपराय नामक गुणस्थानक है, सपराय नाम कषायका है, इस वास्ते सूक्ष्मसपराय दशमा गुणस्थानकका नाम कह्या

तथा उपशामकही उपशम मूर्त्तिरूप सहजस्वजाव बल करकें सकल मोह कर्मके उपशांत करनेसें उपशांत मोहनामक एकादशम गुणस्थान होता है

तथा क्षपककोही क्षपकश्रेणि मार्ग करकें दशमे गुणस्थानसेंही निकपाय शुद्धात्मजावना बल करकें सकल मोहके क्षय करणेसे क्षीणमोह

नामक बारह्वा गुणस्थान होता है यह पाचों गुणस्थानोंका सामान्य प्रकारें नामार्थ कहा.

अथ अपूर्वकरणादि अशसेंही दोनो श्रेणिका आरोह कहते हैं तहां अपूर्वकरणस्थानमें आरोह समयमें अपूर्वकरणके प्रथम अशसेंही उप शमक, उपशमश्रेणिमें चढता है, अरु क्षपक, क्षपकश्रेणिमें चढता है

अथ प्रथम उपशमश्रेणिके चढनेंकी योग्यता कहते हैं. इहां उपशम क मुनि, शुक्लध्यानका प्रथम पाया, जिसका आगें स्वरूप लिखेंगे उसकों ध्याता हूआ उपशमश्रेणिकों अगीकार करता है कैसा वो मुनि है? कि पूर्वगत श्रुतका धारक, निरतिचार, चारित्रवान्, आदिके तीन सहनन यु क्त, ऐसा मुनि उपशमश्रेणि करता है

उपशमश्रेणिवाला मुनि जे कर अल्प आयुवाला होवे, तब काल कर के " अहमिंद्र " अर्थात् पाच अनुत्तर विमानमें उत्पन्न होता है, परंतु जिसके प्रथम सहनन होवे, वो अनुत्तर विमानमें उत्पन्न होता है, क्योंकि अपर सहनन वाला अनुत्तर विमानमें उत्पन्न नहीं होता है, सेवार्त्त स हननवाला चौथे महेंद्र स्वर्ग तक जा सक्ता है, अरु कीलिकादि चार सहनन वालोंके दो दो देवलोककी वृद्धि कर लेनी, अरु प्रथम सहनन वाला तो मोक्ष तक जाता है, अरु जिसकी आयु जे कर सात लव अ धिक होती, तो मोक्ष जाता, सोइ सर्वार्थसिद्ध विमानमें उत्पन्न होता है ॥ यदाह ॥ गाथा॥ सत्त लवा जइ आउं, पहुप्पमाण तउ हु सिझंता ॥ तित्ति यमित्तं न हुय, तत्तो लव सत्तमा जाया ॥१॥ सव्वठ सिद्धनामे, उक्कोसठिइ विजयमाईसु ॥ एगावसेस गब्भा, हवति लव सत्तमा देवा ॥ २ ॥

प्रश्न –उपशमश्रेणिवाला मोक्षके योग्य कैसें हो सक्ता है ?

उत्तर –सात जो लव है,सो एक मुहूर्त्तका इग्यारवा हिस्सा है,तब तो लवसत्तमावशेष आयुवालाही खंडित उपशमश्रेणि करने वाला पराङ्मु ख सातमे गुणस्थानमें आ करकें फेर क्षपकश्रेणिमें चढ कर सात लवके विचहीमें क्षीणमोह गुणस्थानमें हो कर अत कृत केवली हो कर मोक्ष हो जाता है,इस वास्ते दूपण नहीं तथा जो पुष्टायु उपशमश्रेणि करता है,सो अखंडित श्रेणि करकें, चारित्र मोहनीयका उपशम करक इग्यारवे गुण स्थानमें पहुच कर उपशमश्रेणि समाप्ति करके गिर पडता है

अथ औपशमकही अपूर्वादि गुणस्थानोमें जो करता है, सो कह ते हैं. संज्वलनका लोभ वर्ज्जके शेष वीश प्रकृति मोहनीय कर्मकी अपूर्वकरण, अरु अनिवृत्तिवादर, इन दोनो गुणस्थानोंमें उपशम करता है तिसके पीछें क्रम करकें सूक्ष्म सपराय गुणस्थानमें सज्वलनके लोभकों सूक्ष्म करता है तिस पीछें क्रम करकें उपशांतमोह गुणस्थानमें ति स सूक्ष्म लोभका सर्वथा उपशम करता है, तथा इहां उपशांतमोह गुण स्थानमें जीव, एक प्रकृति, शातावेदनीय रूप बांधता है अरु उणसठ प्रकृति वेदता है, तथा १४० प्रकृतिकी उत्कृष्टी सत्ता है

अथ उपशातमोह गुणस्थानकमें, जैसा सम्यक्त्व चारित्र भाव लक्ष ण तीन है, सो कहते हैं. यह गुणस्थानमें उपशम सम्यक्त्व अरु उप शम चारित्र होता है, अरु इहा भावभी उपशमही होता है, परतु क्षा यिक भाव तथा क्षायोपशमिक भाव नहीं होता है

अथ उपशांतमोह गुणस्थानसे जैसे पड जाता है, तैसें कहते है उ पशमी मुनि तीव्र मोहोदय अर्थात् चारित्र मोहनीयका उदय पा करकें उपशांतमोह गुणस्थानसें पड जाता है, फेर मोहजनित प्रमादसें पतित होता है जैसें पानीमें मल हेठ वैठ जाते हैं, तिस करकें उपरसे निर्म ल हो जाता है, फेर कोइ निमित्त पा कर मलीन हो जाता है ॥ यदाह ॥ सुय केवलि आहारग, उज्जुमइ उवसतगावि हु पमाय ॥ हिंमति भवमण तं, तं अणतरमेव चउ गइया ॥ १ ॥ अर्थ –१ श्रुतकेवली, २ आहार क शरीरी, ३ ऋजुमति, ४ उपशांतमोह वाला यह सर्व प्रमादके वशसें अनत भव करते हैं, प्रमादके वशसे चार गतिमें वास करते हैं

अथ उपशमक जीवोंकों गुणस्थानोमें चढनां, अरु पडनां जिस तरें होता है, सो कहते हैं अपूर्वकरण गुणस्थानसें अनिवृत्तिवादर गु णस्थानमें जाता है, अरु अनिवृत्तिवादरगुणस्थानसें सूक्ष्मसपराय गुण स्थानमें जाता है, अरु सूक्ष्मसपराय वाला उपशांतमोह गुणस्थानमें जाता है तथा अपूर्वकरणादि चारो गुणस्थानसे उपशम श्रेणिवाला पडा हुआ, प्रथम मिथ्यात्व गुणस्थानमें आ जाता है, अरु जे कर चरमशरीरी होवे,तब सातमे गुणस्थान तक आ करकें फेर सातमे गुणस्थानसे क्षपकश्रे णि मांडता है, परंतु एक वार जिसने उपशमश्रेणि करी होवे, सो क्षपक

नामक बारहवा गुणस्थान होता है यह पाचों गुणस्थानोंका सामान्य प्रकारें नामार्थ कहा·

अथ अपूर्वकरणादि अशसेंही दोनो श्रेणिका आरोह कहते हैं तहां अपूर्वकरणस्थानमें आरोह समयमें अपूर्वकरणके प्रथम अशसेंही उपशमक, उपशमश्रेणिमें चढता है, अरु क्षपक, क्षपकश्रेणिमें चढता है

अथ प्रथम उपशमश्रेणिके चढनेंकी योग्यता कहते हैं. इहां उपशमक मुनि, शुक्लध्यानका प्रथम पाया, जिसका आगें स्वरूप लिखेंगे उसकों ध्याता हूआ उपशमश्रेणिकों अगीकार करता है कैसा वो मुनि है? कि पूर्वगत श्रुतका धारक, निरतिचार, चारित्रवान्, आदिके तीन सहनन युक्त, ऐसा मुनि उपशमश्रेणि करता है

उपशमश्रेणिवाला मुनि जे कर अल्प आयुवाला होवे, तब काल करके "अहमिंद्र" अर्थात् पाच अनुत्तर विमानमें उत्पन्न होता है, परतु जिसके प्रथम सहनन होवे, वो अनुत्तर विमानमें उत्पन्न होता है, क्योंकि अपर सहनन वाला अनुत्तर विमानमें उत्पन्न नहीं होता है, सेवार्त्त सहननवाला चौथे महेंद्र स्वर्ग तक जा सक्ता है, अरु कीलिकादि चार सहनन वालोंके दो दो देवलोककी वृद्धि कर लेनी, अरु प्रथम सहनन वाला तो मोक्ष तक जाता है, अरु जिसकी आयु जे कर सात लव अधिक होती, तो मोक्ष जाता, सोइ सर्वार्थसिद्ध विमानमें उत्पन्न होता है ॥ यदाह ॥ गाथा॥ सत्त लवा जइ आउं, पहुप्पमाण तउं हु सिज्झता ॥ तित्तियमित्तं न हुय, तत्तो लव सत्तमा जाया ॥१॥ सव्वठ्ठ सिद्धनामे, उक्कोसठ्ठिइसु विजयमाईसु ॥ एगावसेस गब्भा, हवति लव सत्तमा देवा ॥ २ ॥

प्रश्न –उपशमश्रेणिवाला मोक्षके योग्य कैसें हो सक्ता है ?

उत्तर –सात जो लव है,सो एक मुहूर्त्तका इग्यारवा हिस्सा है,तब तो लवसत्तमावशेष आयुवालाही खडित उपशमश्रेणि करने वाला पराङ्मुख सातमे गुणस्थानमें आ करकें फेर क्षपकश्रेणिमें चढ कर सात लवके विचहीमें क्षीणमोह गुणस्थानमें हो कर अत कृत केवली हो कर मोक्ष हो जाता है,इस वास्ते दूषण नहीं तथा जो पुष्टायु उपशमश्रेणि करता है,सो अखडित श्रेणि करकें, चारित्र मोहनीयका उपशम करकें इग्यारवे गुणस्थानमें पहुच कर उपशमश्रेणि समाप्ति करके गिर पडता है

ती हैं ॥ यदाह ॥ अभ्यासेन जिताहारो, ऽभ्यासेनैव जितासनः॥ अभ्यासेन जितश्वासोऽ भ्यासेनैवानितत्रुटि ॥ १ ॥ अभ्यासेन स्थिरं चित्त, मभ्यासेन जितेंद्रिय ॥ अभ्यासेन परानंदोऽभ्यासेनैवात्मदर्शन ॥ २ ॥ अभ्यासवर्जि तैर्ध्यानै, शास्त्रस्थै फलमस्ति न ॥ नवेन्नहि फलैस्तृप्ति, पानीयप्रतिबिंबितै. ॥३॥ तिस वास्ते अभ्याससेंही विशुद्ध (निर्मल) तत्त्वानुयायि बुद्धि होती है

अथ अष्टम गुणस्थानमें शुक्लध्यानका आरंभ कहते हैं क्षपक साधु यह आठमे गुणस्थानमें "शुक्लसद्ध्यान" शुक्ल नामक प्रधान ध्यानका प्रथम पाद पृथक्त्व वितर्क सप्रविचार नाम है, तिसका स्वरूप आगें लिखेंगे ऐसा ध्यान ध्याता है, सो कैसा साधु है? "आद्यसंहननसमन्वित", वज्ररूषभनाराचनामा प्रथम संहननयुक्त है

अथ ध्यान करने वालेका स्वरूप लिखते हैं योगींद्र क्षपक मुनींद्र, व्यवहारापेक्षय, ध्यान करने योग्य होता है,क्या करके? निविड दृढ पर्यंकासन करकें, कथंभूत? निश्चल आसन करकें, क्योंकि आसनजयही ध्यानका प्रथम प्राण है ॥ यदाह ॥ आहारासणनिद्दा, जयं च काऊण जिणवरमएण ॥ झाइज्ज नियं अप्पा,भवइठ जिणवरिंदेण ॥१॥ तत्र पर्यंकासन, जंघाके अधोभागमें पग उपर करनेसें होता है, तथा केईक सिद्धासन कहते हैं, तिसका स्वरूप ऐसा है कि ॥श्लोक॥ योनिं वामपदाऽपरेण निबिडं, सपीमध शिश्न हनु ॥ न्यस्योरस्यचलेंद्रिय स्थिरमना, लोलां च ताल्वांतरे ॥ वश स्थैर्यतया सुनिश्चलतया, पश्यन् भ्रुवोरंतरं॥ योगी योगविधिप्रसाधनकृते, सिद्धासन साधयेत् ॥ १ ॥ अथवा आसनका कोइ नियम नहीं, चाहो कोइ आसन होवे, जिस आसनमें चित्त स्थर हो जावे, सोइ आसन ठीक है, सो कैसा योगींद्र है कि नासिकाके अग्रमें दीनी है सत् नेत्रकी दृष्टि, ऐसे प्रसन्न नेत्र है जिसके, क्योंकि नासाग्रन्यस्तलोचनवालाही ध्यानका साधक होता है ॥ यदाह ॥ ध्यानदंडकस्तुतौ ॥ नासावंशाग्रभाग, स्थित नयनयुगो, मुक्तताराप्रचार ॥ शेषाक्षक्षीणवृत्ति, स्त्रिभुवनविवरो, द्भ्रांतयोगैकचक्षु ॥ पर्यंकातंकशून्य, परिगलितघनोच्छ्वासनि श्वासवात ॥ सद्ध्यानारंभमूर्त्ति, श्चिरमवतु जिनो, जन्मसंभूतिभीते ॥ १ ॥ फेर कैसा है योगींद्र? किंचित् उन्मीलित अर्द्धविकसित है नेत्र जिसके, क्योंकि योगीयोंके समाधि समयमें अर्द्धविकसित नेत्र होते हैं ॥यदाह॥ गंभीरस्तंभमूर्त्ति, र्व्यपगतक

श्रेणि कर सक्ता है, अरु जिसने एक नवमें दो वार उपशमश्रेणि करी होवे सो क्षपकश्रेणि तिस नवमें नहीं कर सक्ता है ॥यदाह॥ गाथा ॥ जीवो हु एक जम्ममि, इक्क सिं उवसामगो ॥ खयति कुज्जा नो कुज्जा, दोवारे उवसामगो॥१॥

अथ उपशमश्रेणि वालेके नवोंकी सख्या कहते हैं इस ससारमें बहुत नवोंमें चार वार उपशमश्रेणि होती है, अरु एक नवमें दो वार होती है ॥ यदाह ॥ उवसमसेणि चउक्क, जायइ जीवस्स आनव नूण ॥ तो पुण दो एगनवे, खवगे स्सेणी पुणो एगा ॥ १ ॥ उपशमश्रेणिकी स्थापना इस अगले यंत्रसें जान लेनी इस यंत्रकी सवादक यह गाथा है ॥ गाथा ॥ अणदसण पुसिङ्घी, वेयछक्क च पुरिसवेयं च ॥ दो दो एगंतरिए, सरिसे सरिस उवसमेइ॥१॥ अर्थ —प्रथम अनतानुबधी क्रोध, मान, माया, अरु लोन इन चारोंको उपशम करता है, पीछें मिथ्यात्व मोह, मिश्रमोह, अरु सम्यक्त्व मोह, यह तीनोंका उपशम करता है, पीछें नपुसकवेद, पीछें स्त्रीवेद, फेर हास्य, रति, अरति, नय, शोक, जुगुप्सा, यह छे प्रकृतिका उपशम करता है फेर पुरुषवेद, फेर अप्रत्याख्यानी क्रोध अरु प्रत्याख्यानी क्रोध, फेर सज्वलनका क्रोध, फेर अप्रत्याख्यानी अरु प्रत्याख्यानी मान, फेर सज्वलनका मान, फेर अप्रत्याख्यानी अरु प्रत्याख्यानी माया, फेर संज्वलनकी माया, फेर अप्रत्याख्यानी अरु प्रत्याख्यानी लोन, फेर सज्वलनका लोन, उपशांत करता है ॥ इति उपशमश्रेणि स्वरूपं ॥

अथ क्षपकश्रेणिका स्वरूप लिखते हैं जिस क्षपकश्रेणिमें चढ कर योगी (क्षपक मुनि) कर्म क्षय करणेमें प्रवृत्त होता है, अप अष्टम गुणस्थानकसें पहिलें जो कर्मप्रकृति क्षपक मुनि क्षय करता है, सो लिखते हैं चरमशरीरी, अबद्धायु, अल्पकर्मी, क्षपकके चौथे गुणस्थानमें नरकायु क्षय हो जाता है, नरक योग्य आयुका बध नहीं करता है, तथा पांचमे गुणस्थानमें तिर्यगायु क्षय होता है, अरु सातमे गुणस्थानमें देवायु क्षय हो जाता है, तथा इहां सातमे गुणस्थानमें दर्शनमोहसप्तकनी क्षय हो जाता है, तिस पीछें क्षपक साधुके एक सौ अडत्तीस कर्मप्रकृतिकी सत्ता रहती है, तब आठमे गुणस्थानकों प्राप्ति होता है, कथनूतो ? उत्कृष्ट धर्मध्यान रूपातीत लक्षण विषे कीया है, अन्यास जिसनें, जो वार वार सेवन करना उसकों अन्यास कहते हैं, तिस अन्यास करकेंही तत्त्वप्राप्ति हो

है, तव द्वादश अंगुल पर्यंत वारुणमंडल प्रचार अमृतमय पवन आक र्षण करके इसका नाम पूरक ध्यानकर्म कहते हैं.

अथ रेचक प्राणायाम कहते हैं तव पूरक ध्यानके अनंतर साधक योगी योगसामर्थ्यसें अरु प्राणायाम अभ्यासके वलसे रेचकनामा पवन नाभिकम लोदरसें हलुवे हलुवे बाहिर काढता है,तिसका नाम रेचकध्यान कहते है ॥यदाह॥ वज्रासन स्थिरवपु स्थिरधी सचित्त,मारोप्य रेचक समीरणजन्म चक्रे॥ स्वांतेन रेचयति नाडिगतं समीरं,तत्कर्म रेचकमिति प्रतिपत्तिमेति ॥१॥

अथ कुंभकध्यान कहते है. योगी कुंभकनामा पवन नाभिपंकजकुंभक ध्यान अर्थात् कुंभककर्म प्रयोग करकें कुंभवत् (घटाकार) करकें अतिशय क रके स्थिर करता है ॥ यदाह ॥ चेतसि श्रयति कुंभकचक्र,नाडिकासु निवि डीकृतवात ॥ कुंभवत्तरति यज्जलमध्ये, तद्वदंति किल कुंभककर्म ॥ १ ॥

अथ पवनके जितनेसें मन जीत्या जाता है, यह बात कहते हैं क्यों कि जहां मन है, तहा पवन है,अरु जहा पवन है, तहां मन वर्त्तता है॥ यदाह ॥ दुग्धांबुवत्समिलितौ सदैव, तुल्यक्रियौ मानसमारुतौ हि ॥ याव न्मनस्तत्र मरुत्प्रवृत्ति, यावन्मरुत्तत्र मन प्रवृत्ति ॥ १ ॥ तत्रैकनाशादपरस्य नाश, एकप्रवृत्तेरपरप्रवृत्ति ॥ विध्वस्तयोरेंद्रियवर्गशुद्धि, स्तद्ध्वंसनान्मोक्षप दस्य सिद्धि ॥२॥ इस प्रकार करकें पूरक, रेचक, कुंभकके क्रम करकें प वनोंका आकुंचन निर्गमन, साध्य करके वायुका समूह, अरु चित्तका एका ग्रपणा चिंतन करके समाधिविषे निश्चलपणेकों धारण करता है, क्योंकि पवनके जीतनेसेंही मन निश्चल होता है ॥यदाह॥ प्रचलति यदि, क्षोणी चक्र, चलंत्यचला अपि ॥ प्रलयपवन, प्रेंखालोला, श्चलति पयोधय ॥ प वनजयिन , स्वावष्टंभ, प्रकाशितशक्तय ॥ स्थिरपरिणते, रात्म ध्याना, च्चलति न योगिन ॥ १ ॥

अथ भावकीही प्रधानता कहते हैं इहां क्षपकश्रेणि आरोहविषे जो प्राणायामका क्रम प्रौढि पवनका अभ्यासक्रम कह्या है, सो प्रागल्भता अ र्थात् रूढि करकें जो प्रसिद्ध है, सो दिखलाया है, परंतु जो प्राणायाम ही करे, तो क्षपकश्रेणि चढे,ऐसा कुछ नियम नहीं, क्योंकि क्षपकका भा वही केवल क्षपकश्रेणिका कारण है, परतु प्राणायामादि आडंवर नहीं चर्पटिनापि ॥ नासाकंद नाडीवृंद, वायोश्चार प्रत्याहार ॥ प्राणायामो वी

रण, व्याप्टतिर्मदमंदं ॥ प्राणायामोल्लाट,स्थलनिहितमना, वत्सनाता ग्रदृष्टि ॥ नाऽस्युन्मीलन्निमीलन्, न्नयनमतितरा, बद्धपर्यंकबंधो ॥ ध्याने प्र ध्याय शुक्ल, सकलविदनवद्य स पायाज्जिनो व ॥ १ ॥ फेर कैसा योगींद्र है? "मानस" (मन) चित्त अंत करण विकल्परूप वावरके बंधनसें दूर करा है, क्योंकि विकल्पही दृढ कर्मबंधनका हेतु है ॥ यदाह ॥ शुभा वा अ शुभा वापि, विकल्पा यस्य चेतसि ॥ स स्व बध्नात्यय स्वर्ण, बधना तेन क र्मणा ॥ १ ॥ वरं निद्रा वरं मूर्छा, वर विकलतापि वा, नत्वार्तरौद्रदुर्लेश्या, विकल्पाकुलितं मन ॥ २ ॥ फेर कैसा है योगी? ससारके छेद करने वा स्ते उद्यम है जिसके क्योंकि नवछेदक ध्यानार्थी उत्साह वालोंकेही योग सिद्धि होती है ॥ यदाह ॥ उत्साहान्निश्चयाद्धैर्यात्,संतोषात्तत्त्वदर्शनात् ॥ मुनेर्जनपदत्यागात्, षड्भिर्योग प्रसिध्येदिति ॥१॥ तथा मुनि योगींद्र अ निल (पवनकों) ऊर्ध्व प्रचारासि दशम द्वार गोचरकों प्राप्त करता है, क्या कर कें प्राप्त करता है? कि अपान द्वार मार्ग करकें गुदाके रस्ते पवन अपणी इच्छासें निकलतेकों निरुद्ध (सकोच) करकें,मूलबंध युक्ति करकें करता है सो मूलबंध यह है, कि ॥ श्लोक ॥ पार्ष्णिजागेन सपीड्य, योनिमाकुंच येद्गुद ॥ अपानमूर्ध्वमाकृष्य, मूलबधो निगद्यते ॥ १ ॥ यह आकुंचनक र्मही प्राणायामका मूल है ॥ यडुक्त ॥ ध्यानदंडस्तुतौ ॥ संकोच्यापानरंध्र, हुतवहसदृश, तंतुवत्सूक्ष्मरूपं ॥ धृत्वा हृत्पद्मकोशे, तदनु च गलके, तालु नि प्राणशक्तिं ॥ नीत्वा शून्यातिशून्यां, पुनरपि खगतिं, दीप्यमान समता, ल्लोकालोकावलोकां, कलयति स कलां, यस्य तुष्टो जिनेश ॥ १ ॥

अथ पूरक प्राणायाम कहते हैं योगी पूरक ध्यानके योगसें अतिप्रयत्न करकें (कोष्ठ) सकल देहगत नाडीसमूहकों पवन करकें पूरता है, क्या करकें? द्वादशांगुल पर्यंत पवनकों आकर्षण करकें, वारां आंगुल प्रमाण बाहिरसें सर्व औरसें खैंच करके पूरता है इहां यह तात्पर्यार्थ है कि पवन आका श तत्त्वके वहते हूये नासिकाके अंदरही पवन होता है, अरु अग्नितत्त्व के वहते हूये चार अंगुल प्रमाण बाहिर ऊर्ध्वगति स्फुरत होता है, अरु वायु तत्त्वके वहते हूयें छै अंगुल प्रमाण बाहिर तिर्यग् फिरता है, अरु पृथिवी तत्त्वके वहते हूये आठ अंगुल प्रमाण बाहिर मध्यम नागमें रह ता है, अरु जल तत्त्वके वहते हूये बारह अंगुल प्रमाण नीचेकों बहता

है, तब द्वादश अंगुल पर्यंत वारुणमंडल प्रचार अमृतमय पवन आक र्षण करके इसका नाम पूरक ध्यानकर्म कहते हैं.

अथ रेचक प्राणायाम कहते हैं तब पूरक ध्यानके अनंतर साधक योगी योगसामर्थ्यसे अरु प्राणायाम अभ्यासके बलसे रेचकनामा पवन नाभिकम लोदरसें हलुवे हलुवे बाहिर काढता है,तिसका नाम रेचकध्यान कहते हैं ॥यदाह॥ वज्रासन स्थिरवपु स्थिरधी सचित्त,मारोप्य रेचक समीरणजन्म चक्रे॥ स्वांतेन रेचयति नाडिगतं समीरं,तत्कर्म रेचकमिति प्रतिपत्तिमेति ॥१॥

अथ कुंभकध्यान कहते है योगी कुंभकनामा पवन नाभिपंकजकुंभक ध्यान अर्थात् कुंभककर्म प्रयोग करकें कुंभवत् (घटाकार) करकें अतिशय क रकें स्थिर करता है ॥ यदाह ॥ चेतसि श्रयति कुंभकचक्र,नाडिकासु निबि डीकृतवात ॥ कुंभवच्चरति यज्जलमध्ये, तद्वदति किल कुंभककर्म ॥ १ ॥

अथ पवनके जितनेसें मन जीत्या जाता है, यह बात कहते हैं क्यों कि जहां मन है, तहां पवन है,अरु जहां पवन है, तहां मन वर्त्तता है॥ यदाह ॥ दुग्धाम्बुवत्संमिलितौ सदैव, तुल्यक्रियौ मानसमारुतौ हि ॥ याव न्मनस्तत्र मरुत्प्रवृत्ति, र्यावन्मरुत्तत्र मन प्रवृत्ति ॥ १ ॥ तत्रैकनाशादपरस्य नाश, एकप्रवृत्तेरपरप्रवृत्ति ॥ विध्वस्तयोरेंद्रियवर्गशुद्धि, स्तद्ध्वंसनान्मोक्षप दस्य सिद्धि ॥२॥ इस प्रकार करकें पूरक, रेचक, कुंभकके क्रम करकें प वनोंका आकुंचन निर्गमन, साध्य करके वायुका संग्रह, अरु चित्तका एका ग्रपणा चिंतन करके समाधिविषे निश्चलपणेकों धारण करता है, क्योंकि पवनके जीतनेसेंही मन निश्चल होता है ॥यदाह॥ प्रचलति यदि, क्षोणी चक्र, चलत्यचला अपि ॥ प्रलयपवन, प्रेंखालोला, श्चलंति पयोधय ॥ प वनजयिन , स्वावष्टंभ, प्रकाशितशक्तय ॥ स्थिरपरिणते, रात्म ध्याना, च्चलति न योगिन ॥ १ ॥

अथ भावकीही प्रधानता कहते हैं इहां क्षपकश्रेणि आरोहविषे जो प्राणायामका क्रम प्रौढि पवनका अभ्यासक्रम कह्या है, सो प्रागल्भता अ र्थात् रूढि करकें जो प्रसिद्ध है, सो दिखलाया है, परंतु जो प्राणायाम ही करे, तो क्षपकश्रेणि चढे,ऐसा कुछ नियम नहीं, क्योंकि क्षपकका भा वही केवल क्षपकश्रेणिका कारण है, परंतु प्राणायामादि आडंबर नहीं चर्पटिनापि ॥ नासाकंद नाडीवृंद, वायोश्चार प्रत्याहार ॥ प्राणायामो बी

जग्रामो, ध्यानाभ्यासोमंत्रन्यास ॥ १ ॥ हृत्पद्मस्थं भ्रूमध्यस्थ, नासाग्र स्थ श्वासांत स्थ ॥ तेज शुद्धं ध्यान बुद्ध , ॐकाराख्यं सूर्यप्रनाख्यं ॥२॥ ब्रह्माकाशं शून्याभ्यास, मिथ्याजल्पं चिताकल्पं ॥ कायाक्रांतं चित्तभ्रांतं, त्य क्त्वा सर्वं मिथ्यागर्वं ॥ ३ ॥ गुर्वादिष्टं चित तमिष्टं ॥ देहातीतं जावोपेतं ॥ त्यक्त्वा देह नित्यानंद, शुद्ध तत्त्व जानीहि त्वं ॥४॥ अन्यच्च ॥ ॐकाराऽभ्यस न विचित्रकरणै , प्राणस्य वायोर्ज्ञया, तेजश्चितनमात्मकायकमले, शून्यांत रालंबन ॥ त्यक्त्वा सर्वमिदं कलेवरगतं, चितामनोविभ्रम ॥ तत्त्व पश्यत ज ल्पकल्पनकला, तीतं स्वनावस्थितं ॥ १ ॥ यह सर्व रूढि करकें रूपकश्रेणि के आम्बर है,परंतु तत्त्वमें मरुदेवादिवत् जावही प्रधान है

अथ आद्य शुक्लध्यानका नाम कहते हैं मन, बचन, अरु कायाके योग वाले मुनिके प्रथम शुक्ल ध्यानका पाद होता है,सो कैसा है ? कि वितर्क कर कें सहित जो वर्त्ते, सो सवितर्क अरु सहविचार करकें जो प्रवर्त्ते, सो सविचा र तथा सह पृथक्त्वेन वर्त्तते इति सपृथक्त्व इन तीनो विशेषणों करके संयु क्त होनेसें सपृथक्त्व,सवितर्क,सप्रविचार नामक प्रथम शुक्लध्यानका नाम है

अथ विशेषण तीनोंका स्वरूप कहते हैं, यह पूर्वोक्त प्रथम शुक्लध्यान त्रयात्मक क्रमोत्क्रम करकें गृहीत विशेष तीन रूप हैं,तहां श्रुतचिता रूप वितर्क है, तथा अर्थ शब्द योगांतरमें जो संक्रमण करना है, सो विचार है, अरु द्रव्य गुण पर्यायादि करकें जो अन्यपणा है, सो पृथक्त्व है

अथ इन तीनोंका प्रगट अर्थ कहते हैं, तसमें प्रथम वितर्कका स्वरूप कहते हैं, जिस ध्यानमें अंतरंग ध्वनिरूप वितर्कविचार रूप होवे, सो सवितर्कध्यान है, क्योंकि स्वकीय निर्मल परमात्मतत्त्व अनुनवमय अंतरंगनावगत आगमके अवलंबनसें यह सवितर्क ध्यान है

अथ सविचार कहते हैं जिस ध्यानमें सपूर्वोक्त वितर्क विचाररूप अर्थसें अर्थांतरमें संक्रम होवे, शब्दसें शब्दांतरमें संक्रम होवे, योगसें योगांतरमें संक्रम होवे, सो ध्यान, सविचारससंक्रमण कहते हैं

अथ पृथक्त्वका स्वरूप कहते हैं जिस ध्यानमें वो पूर्वोक्त वितर्क सवि चार अर्थ व्यंजन योगांतर संक्रमणरूपनी शुद्धात्मकी तरें द्रव्यसे द्रव्यांत रमें जाता है, अथवा गुणोंसें गुणांतरमें जाता है, अथवा पर्यायोंसें पर्या यांतरमें जाता है, तहां जो सहजात है, सो गुण है,जैसे सुवर्णमे स्निग्ध

ता पीतता है अरु जो क्रमनूत है, सो पर्याय है, जैसें सुवर्णमें मुज्ञा कुमलादिक तिन इव्य गुण पर्यायांतरोमे जिस ध्यानमें अन्यत्व पृथक्त्व है, सो सपृथक्त्व है

अथ आद्य शुक्लध्यान करकें जो शुद्धि होती है, सो कहते है योगी समाधिवान् ऐसा पूर्वोक्त त्रयात्मक पृथक्त्व वितर्क सप्रविचाररूप जो प्रथम शुक्लध्यान है, उसका ध्याता हूआ परम प्रकृष्ट शुद्धिकों प्राप्त होता है, सो कैसी शुद्धिकों प्राप्त होता है? कि जो शुद्धि मुक्तिरूप लक्ष्मीके मुखके दिखलाने वाली है, तिस शुद्धिकों प्राप्त होता है

अथ इसहीका विशेष स्वरूप कहते है यद्यपि यह शुक्लध्यान प्रतिपाति (पतनशील) उत्पन्न होता है, तोनी अतिविशुद्ध होनेसें औ अति निर्मल होनेसे अगले गुणस्थानमें चढनां चाहता है, एतावता अगले गुणस्थानकों दौडता है, तथा अपूर्वकरण गुणस्थानस्थ जीव निज्ञाद्विक, देवद्विक, पंचेंज्यि जाति, प्रशस्त विहायोगति, त्रसनवक, वैक्रिय, आहारक, तैजस, कार्मण, वैक्रियोपांग, आहारकोपांग, आद्य संस्थान, निर्माण, तीर्थकरनाम, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, पराघात, उच्छ्वास यह बत्तीस कर्म प्रकृतिका व्यवछेद होनेसें छवीश कर्मप्रकृतिका बंध करता है तथा अंतिम तीन संहनन अरु सम्यक्त्व मोह, इन चारके उदय व्यवछेद होनेसें बहत्तरी कर्मप्रकृति वेदता है अरु १३८ कर्मप्रकृतिकी सत्ता है ॥ इति क्षपक श्रेणिवालेका आठमा गुणस्थानका स्वरूप ॥

अथ क्षपक अनिवृत्तिनामक नवमे गुणस्थानकमें आरोहण करता हूआ जौनसी कर्मप्रकृति जहां जैसे क्षय करता है, सो कहते है पूर्वोक्त आठमे गुणस्थानसें अनंतर क्षपक मुनि अनिवृत्तिनामक नवमे गुणस्थानमें चढता है, तब तिस नवमे गुणस्थानके नव नाग करता है, तिहां प्रथम नागमें सोलां कर्म प्रकृति क्षय करता है, सो यह है १ नरकगति, २ नरकानुपूर्वी, ३ तिर्यग्गति, ४ तिर्यंचानुपूर्वी, ५ साधारणनाम, ६ उद्योतनाम, ७ सूक्ष्म, ८ द्वींज्यि जाति, ए त्रींज्यि जाति, १० चतुरिंज्यि जाति, ११ एकेंज्यिजाति, १२ आतप नाम, १५ स्त्यानर्द्धि त्रिक, अर्थात् निज्ञानिज्ञा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानर्द्धि, यह त्रिक, १६ स्थावर नाम यह सोलां कर्म प्रकृतिका नवमे गुणस्थानकके प्रथम नागमें क्षय करता हैं,

तथा अप्रत्याख्यानकी चोकडी, अरु प्रत्याख्यानकी चोकडी, यह आठ मध्यकी कषायकों दूसरे नागमें क्षय करता है, तीसरे नागमें नपुंसकवेद, अरु चौथे नागमें स्त्रीवेद क्षय करता है, तथा पांचमे नागमें हास्य, रति, अरति, नय, शोक, अरु जुगुप्सा, यह छै प्रकृतिका क्षय करता है शेष छठे नागसें ले कर नवमे नाग तांइ चारों नागमें क्रमसे शुद्ध हूवा थका ध्यानकी अति निर्मलतासें क्रम करके छठे नागमें पुरुषवेद, सातमे नागमें सज्वलनका क्रोध, आठमे नागमें सज्वलन मान, नवमे नागमें सज्वलनकी मायाकों क्षय करता हैं, तथा यह गुणस्थानमें वर्त्तता हुआ मुनि, हास्य, अरति, नय, जुगुप्सा इन चरोंके व्यवछेद होनेसें वावीस प्रकृतिका बध करता हैं. अरु हास्य षट्कके उदय व्यवछेद होनेसें छासठ प्रकृतिकों वेदता है, तथा नवमे अंशमें माया पर्यंत प्रकृतियोंके क्षय करणेसें पैंत्तीस प्रकृतिके व्यवछेद होनेसें एक सौ तीन प्रकृतिकी सत्ता है ॥ इति क्षपकके नवमे गुणस्थानकका स्वरूप

अथ क्षपकके दशमे गुणस्थानका स्वरूप लिखते हैं पूर्वोक्त नवमे गुणस्थानकसें अनंतर क्षपकमुनि सूक्ष्मसपरायनामक दशमे गुणस्थानमें चढता है क्या करता हुआ चढता है? कि क्षणमात्रसें सज्वलनके स्थूल लोनकों सूक्ष्म करता हुआ चढता है, तथा सूक्ष्म सपराय गुणस्थानस्थ जीव, पुरुषवेद तथा सज्वलन चतुष्कके बध व्यवछेद होनेसें सतरां प्रकृतिका वंध करता है, अरु तीन वेद, तथा तीन सज्वलन कषायके उदय व्यवछेद होनेसें साठ प्रकृति वेदता है, मायाकी सत्ता व्यवछेद होनेसें एक सौ दो प्रकृतिकी सत्ता है ॥ इति क्षपकस्य दशम गुणस्थान ॥

अथ क्षपककों इग्यारहवा गुणस्थानक नहीं होता है, किंतु दशमे गुणस्थानसें क्षपक, सूक्ष्मलोनांशोंकों सूक्ष्मकृत लोनखंडोंकों क्षय करता हूआ वारहमे क्षीणमोह गुणस्थानमें जाता है इहां क्षपकश्रेणि समाप्त करता है उसका क्रम यह हैं, कि प्रथम अनतानुवधी चार क्षय करता है, फेर मिथ्यात्व मोहनीय, फेर मिश्रमोहनीय, फेर सम्यक्त्व मोहनीय, फेर अप्रत्याख्यान चार कपाय, तथा प्रत्याख्यान चार कपाय एव आठ क्षय करता है फेर नपुसकवेद, फेर हास्यषट्क, फेर पुरुष वेद, फेर सज्वलन क्रोध, फेर सज्वलन मान, फेर सज्वलन माया, फेर सज्वलन लोन क्षय करता है

अथ तहां बारहमे गुणस्थानमें शुक्लध्यानके दूसरे अंशको आश्रित करता है, यह बात कहते है अथानतर सो क्षपकक्षीणमोहरूप हो करकें क्षीणमोह गुणस्थानकके मार्गमें परिणतिमान् हो करकें, प्रथम शुक्लध्यानकी रीति करकें दूसरे शुक्लध्यानकों आश्रित होता है, कथभूत क्षपक? बीतराग विशेष करकें "इतो (गतो) रागो यस्मात् स वीत राग" फेर कैसा है क्षपकमुनि? महायति, यथाख्यातचारित्री फेर कैसा है मुनि? कि शुद्धतर भाव करकें सयुक्त ऐसा क्षपक, दूसरे शुक्ल ध्यानकों आश्रित होता है

अथ सोइ शुक्लध्यान सनाम विशेषण कहते हैं, सो क्षपक क्षीणमोह गुणस्थानवर्त्ती, दूसरा शुक्लध्यान एक योग करकें ध्याता है ॥ यदाह ॥ एक त्रियोगभाजा, माद्य स्यादपरमेकयोगवतां ॥ तनुयोगिनां तृतीय, नि योगानां चतुर्थ हि ॥ १ ॥ कैसा ध्यान है? कि "अपृथक्त्व पृथक्त्व व र्जितं अविचारं विचार रहितं सवितर्कगुणान्वितं वितर्क मात्र गुण सयुक्त" दूसरा शुक्लध्यान ध्याता है

अथ अपृथक्त्वका स्वरूप कहते हैं तत्त्वज्ञाता एकत्व अर्थात् अ पृथक्त्वज्ञानकों धारण करता है,सो एकत्वपणा क्या है? जो निजात्मद्रव्य एक केवल अपणा द्रव्य विशुद्ध परमात्मद्रव्य है,अथवा तिसही परमात्म द्रव्यका एक केवल पर्याय,अथवा एक केवल गुण,इस प्रकारसें एक द्रव्य, एक गुण, एक पर्याय, निश्चल, चलन वर्जित जहां ध्यावे, सो एकत्व है

अथ अविचारपणा कहते हैं इस कालमें सद्ध्यानकोविद अर्थात् शुक्लध्यानका जो जाननहारा है, सो पूर्वमुनिप्रणीत शास्त्राम्नायविशेष सें है, परंतु शुक्ल ध्यानका अनुभवी इस कालमें कोइ नहीं ॥यदाहु॥ श्रीहेमचद्र सूरिपादा ॥ श्लोक ॥ अनविछित्याम्नाय , समागतोऽस्येति कीर्त्यते ऽस्माभि ॥ दुष्करमप्याधुनिकै , शुक्लध्यान यथाशास्त्र ॥ १ ॥ जिनसद्ध्या नकोविदोनें शास्त्राम्नायसें शुक्ल ध्यानका रहस्य जान्या है, तिनोनें अविचार विशेषण सयुक्त दूसरे शुक्लध्यानका स्वरूप कह्या है, सो क्या है? जो पूर्वोक्त स्वरूपोमें व्यंजन अर्थयोगोमें एतावता शब्दार्थ योग रूपोमें परावर्त्त विवर्जित शब्दसे शब्दांतर, इत्यादि क्रमसें रहित चितन श्रुतानुसारेंही क रियें है, सो अविचार है

अथ सवितर्क कहते हैं, सवितर्क एक गुणसंयुक्त दूसरा शुक्लध्यान किससेंति होता है? तहां कहे हैं, कि भावश्रुतके आलंबनसें होता है सूक्ष्म अंतर्जल्परूप भावगत अवलंबनमात्र चिंतनसें होता है

अथ शुक्लध्यानजनित समरसी भाव कहते हैं इस पूर्वोक्त प्रकार करके एकत्वविचार सवितर्करूप तीन विशेषण संयुक्त दूसरा शुक्लध्यान कह्या,तिस दूसरे शुक्लध्यानमें वर्त्तता हुआ ध्यानी समरसी भावको धारण करता है, सो यह समरसी भाव जो है,सो तदेकशरण मान्या है,कारणकि आत्मा जो अपृथक्त्व करकें परमात्मामें लीन करीयें, सोइ समरस भावका धारण करणा है, समरस किससेति करे? कि आत्माके अनुभवसें करे

अथ क्षीणमोहगुणस्थानके छेहडे क्या करता है? सो कहते हैं इस पूर्वोक्त ध्यानके योगसें औ दूसरे शुक्लध्यानके योगसें प्लुष्यत कर्मेंधनोत्कर दह्यमान है, कर्मरूप इंधनका समूह, ऐसा योगींद्र अंतके प्रथम समय अर्थात् बारहवे गुणस्थानकके दूसरे चरम समयमें निद्रा अरु प्रचला, इन दो प्रकृतिका क्षय करता है

अथ अंत समयमें जो करता है, सो कहते हैं क्षीणमोह गुणस्थानके अंत समयमें १ चक्षुदर्शन, २ अचक्षुदर्शन, ३ अवधिदर्शन, ४ केवलदर्शन यह चार दर्शनावरणीय तथा पंचविध ज्ञानावरण, तथा पंचविध अंतराय, यह चौदह प्रकृतिका क्षय करकें क्षीणमोहांश हो करके केवल स्वरूप होता है तथा क्षीणमोह गुणस्थानस्थ जीव, दर्शनचतुष्क, अरु ज्ञानांतरायदशक, उच्चैर्गोत्र, यशनाम यह सोलां प्रकृतिका बंधव्यवछेद होनेसें एक शातावेदनीका बंध करता है, तथा १ संज्वलनका लोभ, २ ऋषभनाराचसंघयण, इनके उदय विछेद होनेसें सतावन प्रकृति वेदता है तथा संज्वलनके लोभकी सत्ता दूर होनेसें एक सौ एक प्रकृतिकी सत्ता है इति क्षपकस्य द्वादश गुणस्थानकस्वरूपं ॥ १२ ॥

अथ क्षीणमोहांत प्रकृतियोंकी संख्या कहते हैं चौथे गुणस्थानसें लेकर क्षय होती हुइ त्रेसठ प्रकृति, क्षीणमोहमें संपूर्ण नइ है, सो कहते हैं एक प्रकृति चौथे गुणस्थानमें क्षय हुइ, एक पांचमें, आठ सातमें, छत्तीस नवमें, सतरे बारहमें यह सर्व त्रेसठ नइ तथा शेष पंचासी

प्रकृति पुराणे वस्त्रकी तरें (अत्यंत जीर्णवस्त्रसमान) तेरहवे सयोगी केवली गुणस्थानमें रहती है.

अथ सयोगी केवलीके जो जाव होता है, अरु जो सम्यक्त्व चारित्र होता है, सो कहते हैं तिस केवल आत्मा जगवतको इहां सयोगी गुणस्थानमें जाव तो क्षायिक शुद्ध (निर्मल) होता है, औ सम्यक्त्व परम प्रकृष्ट क्षायिक होता है, तथा चारित्र क्षायिक यथाख्यातनामक होता है, इसका तात्पर्य्य यह है, कि उपशम अरु क्षायोपशमिक यह दो जाव नहीं होते हैं

अथ तिस केवलात्मकों केवल कहते हैं तिस केवल रूप सूर्यके प्रकाश करकें चराचर जगत् हस्तामलक उपमावत् (हस्त तलेमें ग्रहण करा आमलेकी तरें) प्रत्यक्ष (साक्षात्कार) करके जासन करते हैं. इहां प्रकाशमान सूर्यकी उपमा जो कही है, सो व्यवहार मात्र कही है, नतु निश्चयसेंति कही है,कारण कि निश्चय करकें तो केवलज्ञानका अरु सूर्यका बडा अंतर है

अथ जिसने तीर्थकरनाम उपार्ज्या है, तिसका विशेष कहते हैं विशेष करकें अर्हत् जक्ति प्रमुख वीश पुण्यके स्थानक जो जीव, आराधन करता है, सो तीर्थकरनामकर्म उपार्जन करता है सो बीश स्थानक यह है॥ गाथा ॥ अरिहत सिद्ध पवयण,गुरु थेर बहुस्सुए तवस्सीसु ॥ वछलयाइ एसु, अनिरकण णो वउग्गेय ॥ १ ॥ दंसण विणए आव, स्सए सीलवए निरइयारे ॥ खणलवच्चियाए, वेयावच्चे समाहीयं ॥ २ ॥ अपुव नाण गहण, सुयजत्ती पवयण पजावणया ॥ एएहि कारणेहिं, तिच्चयरत्त लहइ जीवो ॥ ३ ॥ इनका अर्थ आगें लिखेंगे, तिस वास्ते इहां सयोगी गुणस्थानमें तीर्थकर कर्मोदयसें वो केवली (त्रिजगत्पति) त्रिज्जुवनपति जिनेंद्र होता है जिन, सामान्य केवलीयोंकों कहते हैं, तिनमें जो इंद्रकी तरें होवे, सो जिनेंद्र जानना

अथ तीर्थकरकी महिमा कहते हैं, सो जगवान् तीर्थकर पूर्वोक्त चउत्तीस अतिशय करकें सयुक्त होता है, औ सर्व देवता जिसकों नमस्कार करते हैं, तथा सकल देव मानवोनें जिसको नमस्कार करा है, सो सर्वोत्तम, औ सकल शासनोमें प्रधान, ऐसा तीर्थप्रवर्त्तन प्रगट करता हूआ उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि लग विद्यमान रहता है

अथ सो तीर्थंकर नामकर्म जैसें वेदनेमें आता है, तैसे कहते हैं तिस तीर्थंकरनें सो तीर्थंकर नामकर्म जोगीयें हैं, क्या करनेसें ? सो कहते हैं पृथ्वीमंमलमें जव्यजीवोंके प्रतिबोधनेसें, देशविरति औ सर्वविरति करनेसें, तीर्थंकर नामकर्म वेदनेमें आता है. जे कर तीर्थंकर नामकर्म का उदय न होवे, तब कृतकृत्य होनेसें जगवान्कों उपदेश देनेका क्या प्रयोजन है ? इस वास्ते जे वादी जगवान्कों नि शरीरी नैरुपाधिक मुख रहित सर्वव्यापी मानते हैं, सो देहादिकके अजावसें धर्मका उपदेशक न हीं हो सक्ता है, जे कर उपाधि रहित सर्वव्यापी परमेश्वरजी उपदेशक होवे, तब तो अब इस कालमें अस्मदादिकोंकों क्यों नहीं उपदेश करता है ? क्योंकि पूर्वकालमें अग्नि आदिक ऋषियोंकों उसने प्रेरा, तथा ब्रह्मा वि द्वारा चार वेदका उपदेश करा, तथा मूसा, ईसा द्वारा जगत्कों उप देश करा, तो फेर अब क्यों नहीं उपदेश करता ? परोपकारीके क्या ढील है ? जे कर कहोगेकि इस कालमें सर्व जीव उपदेश मानने योग्य नहीं है, इस वास्ते उपदेश नहीं देता, तब तो पूर्वकालमेंजी सर्व जीवोने परमेश्वर का उपदेश नहीं माना है प्रथम तो कालासुर प्रमुख अनेक जीवोनें न हीं माना, दूसरा अजाजीलने नहीं माना, औ यहूदानें, तथा कितनेक इसराइलियोंनें नहीं माना, इस वास्ते पूर्वकालमेंजी परमेश्वरकों उपदेश देनां योग्य नहीं था जे कर कहोगेकि उसकी ओदी जाने क्यों कर उप देश दीया अरु अब किस वास्ते उपदेश नहीं देता तो फेर तुम क्यों कर कहते हो कि परमेश्वरके मुख नहीं ? इस वास्ते यही सत्य है, कि जो तीर्थंकर नामकर्मके वेदने वास्ते जगवान् उपदेश करते हैं, अरु जिस वखत उपदेश करते हैं उस वखत देहधारी होते है इत्यल प्रसगेन ॥ के वली केवलज्ञानवान् पृथ्वीमंमलमें उत्कृष्ट आठ वर्ष कणा पूर्वकोटि प्र माण विचरता है, औ देवताओंके करे हूए कंचनकमलोंके ऊपरि पग र ख कर चलता है, अरु आठ प्रत्याहार करकें संयुक्त अनेक सुरासुर कोटि ससेवित विचरता है यह स्थिति सामान्य प्रकारें केवलीयोंकी कही है, अरु जिनेंद्र तो मध्यस्थिति वाला होता हैं

अथ केवलि समुद्घातकरण कहते है "असौ" वो केवली जब वेद नीय कर्मसेंती आयु कर्मकी स्थिति थोडी जानता है, तब तिसके तुल्य

करने वास्ते केवली, समुद्घात करता है, तिस समुद्घातका स्वरूप कहते हैं, तहा प्रथम समुद्घात पदका अर्थ कहते हैं यथास्वभावस्थित आत्मप्रदेशोंको वेदनादि सात कारणों करकें समतात् उद्घातन स्वभावसें अन्यभावपणे परिणमन करना, तिसका नाम समुद्घात है. सो समुद्घात सात प्रकारें है १ वेदनास०, २ कषायस०, ३ मरणस०, ४ वैक्रियस०, ५ तेज स०, ६ आहारकस०, ७ केवलिस०, इन सातों समुद्घातोंमेंसू केवलिसमुद्घात इहा ग्रहण करणी तिस केवलिसमुद्घातके अर्थे केवली भगवान् आयु अरु वेदनी कर्मके सम करने वास्ते प्रथम समयमें आत्मप्रदेशों करके ऊर्ध्वलोकांत लगि दम्म (दम्माकार) भावे आत्मप्रवेश करता है दूसरे समयमें पूर्व, पश्चिम, दिशामें आत्मप्रदेशों करकें कपाटाकार करता है, तीसरे समयमें उत्तर, दक्षिण, आत्मप्रदेशोंका मथानाकार करता है, चौथे समयमें अतर पूर्ण करनेसें सर्व लोकव्यापी होता है इस तरें केवली, चौथे समय विश्वव्यापी होता है

अथ इहांसें निवृत्ति कहते हैं इस प्रकार करके केवली आत्मप्रदेशोंको विस्तार करनेके प्रयोगसे कर्मलेशको सम करता है सम करके पीछे तिस समुद्घातसे उलटा निवर्त्तता है, सो अैसें है, कि केवली चार समयमें जगत् पूर्ण करकें पांचमे समय पूर्णसें निवर्त्तता है छठे समयमें मथानपणा दूर करता है, सातमे समयमें कपाट दूर करता है, आठमे समयमें दम्म उपसंहार करता हूआ स्वभावस्थ होता है ॥ यदाहुर्वाचकमुख्या ॥ दम्म प्रथमे समये, कपाटमथ चोत्तरे तथा समये ॥ मथानमथ तृतीये, लोकव्यापी चतुर्थे तु ॥ १ ॥ संहरति पंचमे त्व, तराणि मथानमथ पुन षष्ठे ॥ सप्तमेके तु कपाट, संहरति तथाऽष्टमे दंम ॥२॥

अथ केवली समुद्घात करता हूआ जैसा योगवान्, अरु अनाहारक होता है, सो कहते हैं केवली समुद्घात करता हूआ प्रथम अरु अंत समयमें औदारिककाय योगवाला होता है, दूसरे, अरु छठे समयमें मिश्रौदारिककाय योगी होता है, मिश्रपणा इहां कार्मण करकें औदारिकका है, तथा तीसरे, चौथे, अरु पांचमे समयोंमें केवल कार्मणकाय योगवाला होता है, जिन समयोंमें केवली केवल कार्मण काययोग वाला होता है, तिनही समयोंमें अनाहारक होता है

अथ जौनसा केवली समुद्घात करता है, अरु जौनसा नहीं करता है, सो कहते हैं जिसकी छै महिनेसें अधिक आयु शेष है, जे कर उसकों केवल ज्ञान होवे,वोतो निश्चय समुद्घात करे, अरु जिसकी छै म हीनेके भीतर आयु होवे, उसकों जो केवल ज्ञान होवे, तो भजना है. वो केवल समुद्घात करेभी, अरु नहींभी करे॥ यदाह ॥ छम्मासाऊ सेसा, उ प्पन्न जेसि केवलं नाण॥ ते नियमा समुग्घाइय,सेसा समुग्घाय भइयव्वा ॥

अथ समुद्घातसें निवृत्त हो करकें जो कुछ करता है, सो कहते हैं वो मन, बचन, अरु काययोगवान् केवली, केवल समुद्घातसें निवृत्त हो कर योग निरोधनके वास्ते शुक्लध्यानका तीसरा पाद ध्याता है सोइ तीस रा शुक्लध्यान कहते हैं तिस अवसरमें तिस केवलीकों तीसरा सूक्ष्मक्रिया निवृत्तिक नाम शुक्लध्यान होता है सो कंपनरूप जो क्रिया है, तिसकों सूक्ष्म करता है

अथ मन, बचन, कायाके योगोंकों जैसें सूक्ष्म करता है, सो कहते हैं सो केवली, सूक्ष्मक्रियानिवृत्तिनामक तीसरा शुक्लध्यान ध्याता, अचिंता त्मवीर्यकी शक्ति करकें बादरकाययोग स्वभावमें स्थित करकें बादर बचन योग, बादर मनोयोग, यह युगलकों सूक्ष्म करता है,तिस पीछें बादरकाय योगकों सूक्ष्म करता है, फेर सूक्ष्मकाययोगमें क्षण मात्र रह करकें तत्का ल सूक्ष्म बचन, मनोयोग, यह युगलका अपचय करता है तिस पीछें सू क्ष्म काययोगमें क्षण मात्र रह कर प्रगट सो केवली निजात्मानुभव सूक्ष्म क्रिया चिद्रूपकों स्वयमेवही अपणे स्वरूपका अनुभव करता है,(जानता है)

अथ जो सूक्ष्मक्रियावाले शरीरकी स्थिति है, सोइ केवलीयोंका ध्यान होता है, ऐसी बात कहते हैं जिस प्रकार करकें छद्मस्थ योगीयोंके म नके स्थिरताकों ध्यान कहते हैं, तैसेंही शरीरकी निश्चलताकों केव लीयोंके ध्यान होता है अथ शैलेशीकरणका आरंभ करने वाला सूक्ष्म काययोगी जो कुछ करता है, सो कहते हैं केवलीके ह्रस्वाक्षर पांचके उ च्चारण करण मात्र काल जितना आयु शेष रहता है, तब शैलवत् निश्च लकायको चौथा ध्यानाऽपरिपातरूप शैलेशीकरण होता है तिस पीछें सो केवली शैलेशीकरणारंभी सूक्ष्मरूप काय योगमें रहता हुआ शीघ्रही अयोगी गुणस्थानमें जाणेकी इछा करता है

अथ सो नगवान केवली सयोगी गुणस्थानके अंत्य समयमें औदारिकद्विक, अस्थिरद्विक, विहायोगतिद्विक, प्रत्येक त्रिक, संस्थान षट्क, अगुरुलघुचतुष्क, वर्णादिचतुष्क, निर्माण, तैजस, कार्मण, प्रथम संहनन, स्वरद्विक, एकतर वेदनीय यह तीस प्रकृतिका उदय विछेद होता है. तब तो इहा अंगोपांगके उदय व्यवछेद होनेसे अंत्यांग संस्थानावगाहनासें तीसरे नाग ऊणी अवगाहना करता है, किस कारणसे ? अपने प्रदेशोंकों घनरूप करनेसें चरम शरीरके अंगोपांगमें जो नासिकादि छिद्र हैं, तिनकों पूर्ण करता है, तब स्वात्मप्रदेशोंका घनरूप हो जाता है, तिस वास्ते स्वप्रदेशोंका घनरूप होनेसें तीसरा नाग ऊना होता है सयोगी गुणस्थानस्थ जीव, एकविध बंधक उपांत्य समय तांइ अरु ज्ञानांतराय, दर्शन चतुष्कोदय व्यवछेद होनेसें बैंतालीस प्रकृति वेदता है, तथा १ निद्रा, २ प्रचला, १२ ज्ञानांतराय दशक, १६ दर्शनचतुष्क रूप सोलां प्रकृतियोंकी सत्ता व्यवछेद होनेसें पचासी प्रकृतिकी सत्ता है ॥ इति सयोगी गुणस्थान ॥ १३ ॥

अथ अयोगी गुणस्थानककी स्थिति कहते हैं तेरहवे गुणस्थानके अनंतर चौदहवे अयोगी गुणस्थानमें रहते हूए जिनेंद्रकी लघु पंचाक्षर उच्चारणमात्र "अ इ उ ऋ लृ" ये पांच वर्ण उच्चारण करतां जितना काल लगता है, तितनी स्थिति है यह अयोगी गुणस्थानमें ध्यानका संनव कहते हैं इहां अनिवृत्ति नामक चौथा ध्यान होता है, इस चौथे ध्यानका स्वरूप कहते हैं जिस ध्यानमें सूक्ष्मकाययोग रूप क्रियानी "समुछिन्ना" सर्वथा निवृत्त हूइ है, सो समुछिन्नक्रियं नाम "चतुर्थं" चौथा ध्यान कहते हैं,कैसा वो ध्यान है ? कि मुक्ति महिलका द्वार (दरवाजे) समान है

अथ शिष्यके करे दो प्रश्न कहते हैं, शिष्य पूछता है कि हे प्रनु ! देहके होतें हूआं अयोगी क्यों कर हो सक्ता है ? यह प्रथम प्रश्न, तथा जेकर सर्वथा काय योगका अनाव हो गया है, तब देहके अनावसें ध्यान क्यों कर घटेगा ? यह दूसरा प्रश्न है

अथ आचार्य इन दोनों प्रश्नोंका उत्तर देते हैं, आचार्य कहता है, कि नो शिष्य ! अत्र अयोगी गुणस्थानमें सूक्ष्म काययोगके होतेंनी अयोगी कहते हैं,किस वास्ते ? कि १ काययोगके अति सूक्ष्म होनेसें सूक्ष्मक्रिया रूप होनेसे अरु वो काययोग शीघ्रही क्षय होनेवाला है, तथा कायके

कार्य करणेमें असमर्थ होनेसे कायके होतेन्नी अयोगी है, तथा शरीराश्र य होनेसें ध्यानन्नी है, इस वास्ते विरोध नहीं किसके? कि अयोगी गुण स्थानवर्त्ती नगवत् परमेष्ठिके कैसे परमेष्ठी नगवत्के? कि निज शुद्धात्म चिद्रूप तन्मयपणे उत्पन्न, निर्जर, परमानंद बिराजमानके विरोध नहीं

अथ ध्यानका निश्चय व्यवहारपणा कहते हैं तत्त्वसें निश्चय नयके मतसें आत्माही ध्याता, आत्माही करणरूप है, आत्माही कर्मरूपताप न्नकों ध्याता है, तिससेंती अन्य जो कुछ उपचाररूप अष्टांग योग प्रवृ त्तिलक्षण, सो सर्वही व्यवहार नयके मतसें जानना

अथ अयोगी गुणस्थान वर्त्तीका उपांत्य समयका कृत्य कहते हैं के वल चिद्रूपमय आत्मस्वरूपका धारक योगी, अयोगी, गुणस्थानवर्त्तीही स्फुट प्रगट उपांत्य समयमें शीघ्र युगपत् समकाल बहत्तरि कर्मप्रकृति क्षय करता है, सो यह है, कि देह पांच, अर्थात् शरीर पांच, बंधन पांच, संघात पांच, अंगोपांग तीन, संस्थान छे, वर्णपंचक, रसपंचक, संहनन षट्क, अथिर षट्क, स्पर्शाष्टक, गंध दो, नीचगोत्र, अगुरुलघुचतुष्क, देवगति, देवानुपूर्वी, खगतिद्विक, प्रत्येकत्रिक, सुस्वर, अपर्याप्तनाम, निर्माणनाम, दोनोमेंसू कोइन्नी एक वेदनी यह सर्व बहत्तर कर्म प्रकृति, मुक्तिपुरीके द्वारमें अर्गलनूत है, सो उपांत्यसमय द्विचरम समयमें क्षय करता है

अथ अयोगी अंत समयमें जौनसी प्रकृति क्षय करकें जो कुछ करता है, सो कहते हैं सो अयोगी अंत समयमें एकतर वेदनी, आदेयत्व, प र्याप्तत्व, त्रसत्व, बादरत्व, मनुष्यायु, यशनाम, मनुष्यगति, मनुष्यापूर्वी, सौनाग्य, उच्चगोत्र, पंचेंद्रियत्व, तीर्थकरनाम यह तेरां प्रकृति क्षय करकें उसी समयमें सिद्धपर्यायकों प्राप्त होता है सो सिद्ध परमेष्ठी, सनातन नगवान् शाश्वत लोकांतके पर्यंतकों जाता है तथा अयोगी गुणस्थान स्थ जीव अबंधक है, तथा एकतर वेदनी, आदेय, यश, सुनग, त्रसत्रि क, पचेंद्रियत्व, मनुष्यगति, मनुष्यायु, उच्चगोत्र, तीर्थंकरनाम, यह बार ह प्रकृति वेदता है अंतके दो समयसे पहिलां पंचासीकी सत्ता रहती है, उपांत्य समयमें तेरह प्रकृतिकी सत्ता रहती है, अरु अंत समयमें सत्ता रहित होता है॥ इति अयोगी चतुर्दश गुणस्थान स्वरूपं ॥१४॥

आशंका –" नि कर्म " (कर्म रहित) आत्मा, तिस समयमें लोकांत में कैसें जाता है ? इत्याशंक्याह

समाधान –सिद्ध, कर्म रहितकी ऊर्ध्वगति होती है, "कस्मात् " किस हेतुसे होती है ? तत्राह ॥ पूर्व प्रयोगसें अचिंत्य आत्मवीर्य करके उपांत्य दो समयमें पचासी कर्म प्रकृतिके क्षय करने वास्ते पूर्वे जो व्यापार प्रारंभ कीया था, तिससेंतो ऊर्ध्वगति होती है, यह प्रथम हेतु है तथा कर्मकी संगति रहित होनेसें ऊर्ध्वगति होती है, यह दूसरा हेतु है तथा गाढतर बंधनों करकें रहित होनेसें ऊर्ध्वगति होती है, यह तीसरा हेतु है तथा कर्म रहित जीवका ऊर्ध्वगमन स्वभाव है, यह चौथा हेतु है यह चार हेतु, चार दृष्टांत करके सहित कहते हैं १ जैसें कुंभकारका चक्र पूर्व प्रयोगसे फिरता है, तैसें आत्माकी पूर्वप्रयोगसें ऊर्ध्वगति होती है, २ तथा जैसे माटीके लेपसें रहित होने करकें तूंबेकी जलमें ऊर्ध्वगति होती है, तैसेंही अष्टकर्मरूप लेपकी संगतिसें रहित धर्मास्तिकाय रूप जल करकें आत्माकी ऊर्ध्वगति होती है, ३ तथा जैसें एरंडफल बीजादि बंधनोसें छुटा हूआ ऊर्ध्वगतिगामी होता है, तैसेंही कर्मबंधके विछेद होनेसें सिद्धकीभी ऊर्ध्वगति होती है ४ तथा जैसें अग्निका ऊर्ध्व ज्वलन स्वभाव है तैसेंही आत्माकाभी ऊर्ध्वगमन स्वभाव है

अथ अधो अरु तिर्यग्गति कर्म रहितको नहीं होती है, यह बात कहते हैं सिद्धकी आत्मा, कर्म गौरवके अभावसें नीचेकों नहीं जाती, तथा प्रेरक कर्मके अभावसें आत्मा, तिर्यग्भी नहीं जाती है, तथा कर्म रहित सिद्ध, लोकके उपरभी धर्मास्तिकायके न होनेसें नहीं जाता, क्योंकि ? लोकमेंभी जीव, पुद्गलके चलनेमें धर्मास्तिकाय गतिका हेतु है मत्स्यादिकोंकों जैसें जल है सो धर्मास्तिकाय अलोकमें नहीं इस वास्ते अलोकमें सिद्ध नहीं जाते

॥ अथ सिद्धोंकी स्थिति ॥ यथा सिद्ध शिलासें उपरि लोकांतमें सिद्ध रहते हैं, सो कहते हैं ईषत् प्राग्भारानामा सिद्धशिला चौद रज्जुलोकके मस्तकके उपरि व्यवस्थित है, उसकों सिद्धोंके निकट होने करकें सिद्ध शिला कहते हैं, परंतु सिद्ध कुछ उस शिलाके उपर बैठे हूए नहीं हैं, सिद्ध तो उस शिलासें उचे लोकांतमें विराजमान हैं वो शिला कैसी है ? कि मनोज्ञा मनोहारिणी है, फेर वो शिला कैसी है ? सुरभि कर्पूरसेंभी अ

धिक सुगंधिवाली है, अरु कोमल है, सूक्ष्मम है अवयव जिसके फेर वो शिला कैसी है ? पुण्या, पवित्र, परमजासुरा, प्रकृष्ट तेजवाली है, मनुष्यक्षेत्र प्रमाण लंबी चौडी है. श्वेत छत्रके आकार है, उत्तान छत्राकार है, उसका बडा शुज रूप है, वो ईषत् प्राग्जारा नामा पृथ्वी सर्वार्थ सिद्ध विमानसें बारा योजन उपरि है, अरु वो पृथ्वी, मध्य जागमें आठ योजनकी मोटी है, तथा प्रांतमें घटती घटती मक्षीके पांखसेंजी पतली है, तिस शिलाके उपरि एक योजन लोकांत है, उस योजनका जो चौथा कोस है, उस कोसके छठे जागमें सिद्धोंकी अवगाहना है, सोइ दो हजार धनुष प्रमाण कोशके छठे जागमें तीन सौ तेत्तीस धनुष अरु बत्तीस अंगुल होता है, उतनी सिद्धोंके आत्मप्रदेशोंकी अवगाहना है

अथ सिद्धोंके आत्मप्रदेशोंकी अवगाहनाका आकार लिखते हैं जैसें कुगली (मूषा) तिसमें मोम जरकें गालियें, तिसके गलनेसें जो आकाशका आकार है, तैसा सिद्धोंका आकार है

अथ सिद्धोंके ज्ञान दर्शनका विषय लिखते हैं त्रैलोक्योदरवर्त्ती चउदह रज्ज्वात्मक लोकमें जो गुणपर्याय करके संयुक्त वस्तु है, तिन जीवाजीव पदार्थोंको सिद्धमुक्त जानते है, सामान्य रूप करके देखते हैं, विशेष रूप करकें जानते हैं, क्योंकि वस्तु जो है,सो सर्व सामान्य विशेषात्मक हैं

अथ सिद्धोंके आठ गुण कहते हैं १ जिस हेतुसें सिद्धोंको ज्ञानावरण कर्मके क्षय होनेसें केवलज्ञान प्रगट हुआ है, तथा २ सिद्धोंको दर्शनावरण कर्मके क्षय होनेसें दर्शन अनंता हूआ है, तथा ३ सिद्धोंको शुद्ध, सम्यक्त्व चारित्र क्षायिकरूप हूये हैं, किस हेतुसें हुये हैं ? कि दर्शन मोहनीय औ चारित्र मोहनीयके क्षय होनेसे हूये हैं, तथा ४ सिद्धोंको अनंत अक्षयसुख अरु ५ अनंत वीर्य शक्ति हूये हैं, किस हेतुसें हूये हैं ? कि वेदनी कर्मक्षय होनेसें अनंत सुख हूये हैं, अंतराय कर्मके क्षय होनेसें अनंत वीर्य प्रगट हुआ है तथा ६ सिद्धोंकी अक्षयगति हुइ है, किस हेतुसें ? कि आयु कर्मके क्षय होनेसें हुइ है,तथा ७ नामकर्मके क्षय होनेसें अमूर्त्तपणा सिद्धकों प्रगट जया है, तथा ८ गोत्रकर्मके क्षय होनेसे सिद्धोंकी अनंतावगाहना है

अथ सिद्धोंका सुख कहते है, जो सुख, चक्रवर्त्तीकी पदवीका, अरु जो

सुख, इंद्रादि पदवीका है, तिनसेंजी सिद्धोंका सुख अनंत गुणा है, कैसा वो सुख है ? कि क्लेश रहित है "अविद्यास्मिता" राग, द्वेष, अनिनिवेश, ए क्लेश हैं, सो जिनमें नहीं है, फेर कैसा है सुख ? "अव्ययं न व्येति स्वस्वनावसेंती इति अव्ययं"

अथ तिन सिद्ध नगवतोंने जो पाया है, तिसका सार कहते हैं सिद्ध नगवतोंने परम पद पाया है, सो कैसा परम पद पाया है ? जो आराधकों कों आराध्य है, सो पद पाया है, तथा जो पद, साधकोंने सम्यग् दर्शनज्ञान चारित्रादि करकें साधीयें हैं, तथा जो पद, ध्यायकोंकों ध्येय है, तथा जो पद, सदाही नानाविध ध्यानोपाय करकें ध्याइयें है, तथा जो पद, अनव्य जीवोंकों सदा डुर्लन है, अरु कितनेक नव्य जीवोंकोंजी डुर्लन है, अरु डुर्नव्योंकों कष्टसें प्राप्त होता है, अैसा डुर्लन पद, तिन सिद्ध नगवतोंने पाया है सो पद कैसा है ? कि तत्परम पद है, चिदानदमय चिद्रूप परमानद रूप है

अथ मुक्तिका स्वरूप कहते हैं कोइक वादी अत्यंताऽनावरूप मोक्ष मानते हैं, सो बौद्धोंकी मोक्ष है अरु कोइ वादी जडमयी, ज्ञान अनावमयी मोक्ष मानते है, सो नैयायिक वैशेषिक मत वाले हैं अरु कोइक वादी मोक्ष हो कर फेर ससारमें अवतार लेनां, फेर मोक्षरूप हो जानां, अैसी मोक्ष मानते है, सो आजीवका मतवाले हैं ? अरु कोइ तो क्लिष्ट कर्म करकें विषय सुखमय मोक्ष मानते हैं वे कहते हैं, कि मोक्षमें नोग करने वास्ते बहुत अप्सरा मिलती हैं, औ खाने पीनेकों बहुत वस्तु मिलती है, तथा पान करनेकों बहुत अछी मदिरा मिलती है, औ रहनेकों सुदर बाग मिलता है, इत्यादि तथा कोइक वादी कहते हैं कि मोक्ष, जीवकी कदापि नहीं होती है, यह जैमिनी मुनिका मत है तथा कोइ खरड ज्ञानी अैसें कहते हैं कि जो वेदोक्त अनुष्ठान करता है, वो सर्वथा उपाधि रहित तो नहीं होता, परंतु शुन पुण्यफलसें सुदर देह पा कर ईश्वर के साथ मिल कर कितनेक कल्पों लगि सुख नोग करता है, जहां इछा होवे, तहां वह कर चला जाता है फेर ससारमें जन्म लेता है, फेर पूर्ववत् सुखनोग करता है, इसी तरें अनादि अनतकाल लगि करता रहेगा, परंतु एक जगे स्थित न रहेगा, अैसी मोक्ष कहता हैं अरु सर्वज्ञ अर्हंत परमेश्वरनें तो सत्रूप, ज्ञानदर्शनरूप, तथा असारनूत जो यह ससार

है, तिस्सें सारनूत, निस्सीम आत्यतिक सुखरूप, अनंत, अतींद्रियानंद अनुनवस्थान,अप्रतिपाति,स्वस्वरूपावस्थानरूप, मोक्ष कही है ॥ यह बृहद्गछीय श्रीवज्रसेनसूरिके शिष्य श्रीहेमतिलकसूरिपट्टप्रतिष्ठित श्रीरत्नशेखरसूरिने चौदह गुणस्थानकका स्वरूप लिखा है, तिसके अनुसारें जाषामय किंचित् गुणस्थानकस्वरूप, मैंनें लिखा है

प्रश्न –हे जैन ! तुमने सर्ववादीयोंकी कही हुइ मोक्षकों तो अनुपादेय समझी, अरु अर्हतकी कही हुइ मोक्ष, उपादेय समझी, इनमें क्या हेतु है ?

उत्तर –हे जव्य ! इन सर्व वादीयोंकी मोक्ष, पीछें पट् दर्शनके निरूपणमें लिख आये हैं, सो जान लेनी क्यों कि इन वादीयोंकी कही मोक्ष ठीक नहीं, कारण कि जब अत्यंताऽजावरूप मोक्ष होवे, तब तो आत्माहीका अजाव हो गया, तो फेर मोक्षफल किसकों होवेगा ? ऐसा कौन है जो आत्माके अत्यताजाव होनेमें यत्न करे ? तथा जो ज्ञानाजावकों मोक्ष मानते हैं, सोजी ठीक नहीं क्यों कि जब ज्ञानही न रहा,तब तो पाषाण जी मोक्षरूप हो गया, तो ऐसा कौन प्रेक्षावान् है, जो अपणी आत्माकों जड पाषाण तुल्य बनानां चाहे ? तथा जो सर्व व्यापी आत्माकों मोक्ष मानते हैं, अर्थात् जब आत्माकी मोक्ष होती है, तब आत्मा सर्व व्यापी मोक्षरूप होती है, यह जी कहनां प्रमाणानजिज्ञ पुरुषोंका है, क्योंकि आत्मा किसी प्रमाणसेंजी सर्वलोकव्यापी सिद्ध नहीं हो सकी है, इसकी विशेष चर्चा देखनी होवे, तदा स्याद्वादरत्नाकरावतारिका देख लेनी तथा जो मोक्ष हो कर फेर ससारमें जन्म लेनां, फेर मोक्ष होनां, यह तो मोक्षजी काहेकी ? यह तो जांमोंका सांग हूआ, इस वास्ते यहजी ठीक नहीं अरु जो मोक्षमें स्त्रीयोंके जोग मानते हैं, सो विपयके लोलुपी हैं, तथा जो खरडज्ञानीने मोक्ष कही है, सो अप्रामाणिक है,किसी प्रमाणसें सिद्ध नहीं है इस वास्ते जो अर्हंत सर्वज्ञने मोक्ष कही है, सो निर्दोष है इति सक्षेपसें ज्ञानस्वरूप कह्या ॥ इति श्रीतपगछीये मुनिश्री ६ गणि मणिविजय तच्छिष्य मुनि श्रीबुद्धिविजय तच्छिष्य मुनि आत्माराम आनंदविजयविरचिते जैनतत्त्वादर्शे धर्मतत्त्वनिरूपणाधिकारे चतुर्दश गुणस्थान ज्ञाननिर्णयनामा षष्ठ परिछेद सपूर्ण ॥ ६ ॥

॥ अथ सप्तम परिछेद प्रारंभः ॥

यह परिछेदमें सम्यग्दर्शनका स्वरूप लिखते हैं इन सम्यग् दर्शनका स्वरूप कछुक उपर लिखभी आये है, तोभी भव्य जीवोंके जानने वास्ते कछुक सम्यक्त्वका स्वरूप लिखते हैं यह सम्यक्त्वके दो भेद हैं एक व्यवहारसम्यक्त्व, अरु दूसरा निश्चयसम्यक्त्व, जो यथार्थतत्त्वरूप विज्ञानपूर्वक रुचि है, तिसका नाम सम्यक्त्व कहते हैं सो सम्यक्त्व, तीन तत्त्वकी यथार्थ रुचि होनेसें होता है, सो तीन तत्त्व यह हैं, कि एक देव तत्त्व, दूसरा गुरुतत्त्व, तीसरा 'धर्मतत्त्व इनकेविषे श्रद्धा (प्रतीति) जो पुरुष करे, सो सम्यक्त्ववान् होता है तिस श्रद्धाके दो भेद हैं एक व्यवहार, दूसरा निश्चय इन दोनों श्रद्धायोंमें प्रथम व्यवहार श्रद्धाका स्वरूप लिखते हैं

व्यवहारश्रद्धामें देव तो श्री अरिहंत जिसका स्वरूप, प्रथम परिछेदमें लिख आये हैं, सो सर्व इहां जान लेनां तथा तिस अरिहंतके चार निक्षेप अर्थात् स्वरूप है, सो कहते हैं १ नामनिक्षेप, २ स्थापनानिक्षेप, ३ द्रव्यनिक्षेप, ४ भावनिक्षेप इन चारोंका स्वरूप विस्तार पूर्वक देखनां होवे, तदा विशेषावश्यक देख लेनां तिनमें प्रथम, नाम अर्हत, सो "नमो अरिहंताण" ऐसा कहनां, इस पदका जाप करकें अनेक जीव संसार समुद्रकों तर गये हैं तथा दूसरा स्थापनानिक्षेप, सो अरिहंतकी प्रतिमा समस्त दोषके चिन्होंसें रहित, सहज, सुभग, समचतुरस्रसंस्थानवाली, पद्मासन, तथा कायोत्सर्गमुद्रारूप जो जिनबिंब, तिसकों देख कर, तिसकी सेवा, पूजा करके अनंत जीव मोक्षकों प्राप्त हूये हैं

प्रश्न—अरिहंतकी प्रतिमाकों पूजणी, तथा उसकों नमस्कार करणी, औ स्थापना, निक्षेप, मान कर मुक्तिकी दाता समझणी, यह भि केवल मूर्खताइके चिन्ह है, क्यों कि प्रतिमा जडरूप क्या दे सक्ती है?

उत्तर—हे भव्य? तू किसी शास्त्रकों परमेश्वरका रचा हूआ मानता है, या नहीं? जे कर तू शास्त्रकों परमेश्वरका वचन मानता है, अरु उस शास्त्रकों सच्चा संसार समुद्रसें पार उतारने वाला मानता है, तब जिनप्रतिमाके माननेमें क्यों लज्जा करता है? क्योंकि जैसा शास्त्र जडरूप है, उसमें स्याही अरु कागज रूप वर्जके और कछभी नहीं है, तैसी जि

नप्रतिमाजी है, जे कर कहोगे कि कागजों उपर स्याहीके अक्षर संस्थानसयुक्त लिखे जाते हैं, उनके वाचनेंसें परमेश्वरका कहना मालुम हो जाता है, तब इसी तरें परमेश्वरकी मूर्त्ति देखनेसेंजी परमेश्वरका स्वरूप मालुम होता है

प्रश्न—प्रतिमाके देखनेंसें अर्हंत स्वरूप तो स्मरण होता है, परंतु प्रतिमाकी नक्ति करनेसें क्या लान्न है?

उत्तर—शास्त्रके श्रवण करनेसें परमेश्वरके वचन तो मालुम हो गये, तो नी नक्त जन जैसें शास्त्रकों उच्चस्थानमें रखते हैं, कोइ शिर ऊपर ले कर फिरते हैं, कितनेक गलेमें लटका रखते हैं, औ कितनेक मजी उपर, कितनेक चौकी आदि उपर शास्त्रोंकों सुंदर सुंदर रुमालोमें लपेटके रखते हैं, औ नमस्कारादि करते हैं, असेंही जिनप्रतिमाकी नक्ति, पूजाजी जान लेनी

प्रश्न—जैसें पत्थरकी गायसें दूधकी गरज पूरी नहीं होती है, असें प्रतिमासेंजी कोइ गरज पूरी नहीं होती, तो फेर प्रतिमाकों काहेकों मानना चाहियें?

उत्तर—जैसें कोइ पुरुष मुखसें गौ, गौ, सच्ची गौ कहता है, उस कहनेंसें उसका वरतन क्या दूधसें नर जाता है? अर्थात् नहीं नरता है असें परमेश्वरके नाम लेनें और जाप करनेंसेंजी कुछ नहीं मिलता इस वास्ते परमेश्वरका नामजी न लेना चाहियें

प्रश्न—परमेश्वरका नाम लेनेसें तो हमारा अंतःकरण शुद्ध होता है

उत्तर—असेंही श्रीजिनप्रतिमाके देखनेसेंजी परमेश्वरके स्वरूपका बोध होता है, तातें अंतःकरणकी शुद्धि इहांजी तुल्यही है

प्रश्न—परमेश्वरके नाम लेनेसें पुण्य है, तो फेर प्रतिमा काहेकों पूजनी?

उत्तर—नामसें असें शुद्धपरिणाम नहीं होते, जैसें स्थापना देखनेसें होते हैं क्योंकि? जैसें किसी सुंदर यौवनवती स्त्रीका नाम लेनेसें राग जागता है, अरु जब उस सुंदर यौवनवती स्त्रीकी मूर्त्ति प्रगट सर्वाकार वाजी सन्मुख देखीयें, तब अधिकतर विषयराग उत्पन्न होता है, इसी वास्ते श्रीदशवैकालिकसूत्रमें लिखा है, "चित्तन्निर्त्ती न निज्झाए नारी वासुअलंकियं" अर्थात् स्त्रीके चित्रामकी नींत देखेसेंजी विकार उत्पन्न होवेगा यह वात तो प्रगट (प्रसिद्ध) है, कि रागीकी मूर्त्ति देखनेसे राग उत्पन्न हो

ता है, तथा कोक शास्त्रोक्त स्त्री पुरुषके विषय सेवनके चौरासी चिन्ह दे खनेसें तत्काल विकार उत्पन्न होता है, ऐसेही निर्विकार स्थापनारूप शांतमुद्रा, श्रीवीतरागकी देखनेसें निर्विकार शांतिभाव उत्पन्न होता है, ऐसा नाम लेनेसें नहीं होता है

प्रश्न —जैसे किसी स्त्रीके भर्त्तारका नाम देवदत्त है, सो जब देवदत्त मर गया, तब तिसकी स्त्रीने अपने भरतार देवदत्तकी मूर्त्ति बनाइ है, उस मूर्त्तिसें उस स्त्रीका सुहाग तथा संतानोत्पत्ति तथा काम इछा नहीं होती है, इसी तरें भगवान्की मूर्त्तिसेंभी कुछ लाभ नहीं है

उत्तर —देवदत्तकी स्त्री देवदत्तके मरे पीछें आसन बिछाय कर देवदत्त के नामकी माला फेरे, तब उस स्त्रीका सुहाग नहीं रहता, तथा भरतार का नाम लेनेंसे संतानोत्पत्तिभी नहीं होती? तथा कामेछाभी पूरी नहीं होती? इसी तरें जो कहेंगे तब तो भगवान्के नाम लेनेसेंभी कुछ सिद्धि नहीं होगी इस दृष्टांतसें तो भगवान्का नामभी न लेनां चाहियें

प्रश्न —प्रतिमा तो कारीगर बनाता है, उस कारीगरकोंभी पूजना चाहियें?

उत्तर —वेदादि शास्त्रकोंभी लिखारी लिखते हैं, उनकोंभी पूजनां चाहियें? तथा साधुके मात पिताकोंभी साधुसे अधिक पूजनां चाहियें

प्रश्न —स्थापना कोइभी इस कालमें बुद्धिमान् नही मानता है

उत्तर —बुद्धिमान् तो सर्व मानते हैं, परंतु मूर्ख नहीं मानते हैं

प्रश्न —कौनसें बुद्धिमान् स्थापना मानते है? तिनोंका नाम लेनां चाहियें

उतर —प्रथम तो सांसारिक विद्यावाले सर्व बुद्धिमान, भूगोल, खगोल, द्वीप, अर्थात् युरोपखंडमें विलायत प्रमुखका चित्र सर्व, स्थापनारूप मानते हैं, और बनाते हैं, तथा जो ककार आदि अक्षर हैं, वे सर्व पुरुषके (ईश्वरके) शब्दकी स्थापना करते हैं, तथा जैनीयोंके मतमें एक सौ आठ मणिये, मालामें रखते हैं, परंतु अधिक न्यून नहीं रखते हैं, इसका हेतु यह है, कि जैन, बारह गुण तो अरिहंत पदके मानते है, अरु आठ गुण, सिद्ध पदके मानते हैं, तथा छत्तीस गुण, आचार्यपदके मानते हैं, तथा पच्चीस गुण, उपाध्याय पदके मानते हैं, तथा सत्ताइस गुण, मुनि साधु पदके मानते हैं यह सर्व मिल कर एक सौ आठ गुण होते हैं इस वास्ते जैनीयोंके मतमें मालामें जो मणिये हैं, सो एकेक मणिया एकै

क गुणकी स्थापना है यह मालाभी स्थापना है, इसी तरें दूसरे मतोंमेंनी जो माला तसबी है, सो सर्व किसीनकिसी वस्तुकी स्थापना है नहीं तो एक सो आठ तथा एक सौ एकका नियम न चाहियें तथा पादरी लोकोंकीनी गपी हूइ पुस्तकोंके उपर ईशामसीहकी मूर्त्ति उस वखतकी गपी हूइ है, जिस अवसरमें मसीहकों शूली उपर देनेकों ले जाते थे,उस मूर्त्तिके देखनेंसें ईशामसीहकी अवस्था सर्व मालुम होती है, बस, स्थापनाका यही तो प्रयोजन है, कि जो उसके देखनेसे असली वस्तुका स्वरूप याद (स्मरण) हो जाता है आश्चर्य तो यह है कि अब (इस कालमें) कितनेक तुच्छबुद्धिवाले अपनी बनाई पुस्तकमें यज्ञशाला तथा यज्ञोपकरणकी स्थापना अपणे हाथोंसें करके अपणे शिष्योंकों जनाते हैं, जो यज्ञोपकरण इस आकृतिके चाहियें, फेर कहते हैं कि हम स्थापनाकों नहीं मानते हैं अब विचार करना चाहियें कि इनसेंनी कोइ अधिक मूर्ख जगत्में है ? जो आप तो स्थापना करते हैं अरु फेर कहते हैं कि हम स्थापनाकों नहीं मानते हैं, इस वास्ते जो पुरुष अपने शास्त्रके उपदेशककों देहधारी मानेगा, वो अवश्य उसकी मूर्त्तिकूनी मानेगा, अरु जो अपणे शास्त्रके उपदेष्टाकों देह रहित मानते हैं, वेनी थोडी बुद्धि वाले हैं क्योंकि जिसके देह नहीं, वो शास्त्रका उपदेष्टा कदापि नहीं हो सका है, कारण कि देह रहित होना अरु शास्त्रका उपदेश देने वालाभी होना, इस वातमें कोइनी प्रमाण नहीं है अरु निराकार सर्वव्यापी परमेश्वरका ध्याननी कोइ नहीं कर सक्ता है जैसें आकाशका ध्यान नहीं हो सक्ता है इस वास्ते अठारह दूषणसें रहित जो परमेश्वर है, तिसकी मूर्त्ति अवश्य माननी पूजनी चाहियें सो ऐसा देव तो अर्हंतही है, इस वास्ते अर्हंतकी प्रतिमा माननी चाहियें परंतु किसी दुर्बुद्धिके कुहेतुओंसे गेडनी न चाहियें ॥ इति स्थापना निक्षेप दूसरा

अव तीसरा द्रव्यनिक्षेप, सो जिस जीवने तीर्थंकर नामकर्मका निकाचित वध कीना है, तिस जीवमें नावि गुणोंका आरोप अर्थात् ऐसा आगेंकों तीर्थंकर नगवान् होवेगा ? ऐसा वर्त्तमानमें आरोप करकें वंदन (नमस्कार) पूजन करकें, अनेक जीव, मोक्षको प्राप्ति हूये है

चौथा नावनिक्षेप, तो जो वर्त्तमान कालमें सीमधर प्रमुख तीर्थंकर

केवलज्ञानसंयुक्त समवसरणमें विराजमान नव्यजीवोंके प्रतिबोधक चतुर्विध संघके स्थापक, सो नाव अर्हंत इनके चरण कमलकी सेवा करकें अनेक जीव मोक्ष होते हैं, यह नावनिक्षेप है यह चार निक्षेप करकें संयुक्त, असा जो अरिहंत देवाधिदेव, महा गोप, महा माहण, महा निर्यामक, महा सार्थवाह, महा वैद्य, महा परोपकारी, करुणासमुद्र, इत्यादि अनेक उपमा लायक सो नव्य जीवोंके अज्ञानांधकार दूर करणेंकों सूर्य समान, प्रमाण करकें अविरोधि जिसके बचन हैं, औ मुनिमनमोहन, योगीश्वर, चिदानंद घनरूप, असें अरिहंतकों में देव, अर्थात् परमेश्वर करिके मानता हूं, तिसकी सेवा करुं, तिसकी आज्ञा शिर धरुं, असा जो माने, सो प्रथम व्यवहारशुद्ध देवतत्त्व है

दूसरा निश्चयशुद्ध देवतत्त्व कहते हैं जो शुद्धात्मस्वरूपकों अनुनव करनां, सो शुद्धात्मस्वरूपही निश्चयदेवतत्त्व है, कैसा है वो आत्मस्वरूप? कि पांच वर्ण, दो गंध, पांच रस, आठ स्पर्श, शब्द, क्रिया, इनोंसें रहित, तथा योगसें रहित, अतींद्रिय, अविनाशी, अनुपाधि, अवधी, अक्लेशी, अमूर्त्ति, शुद्धचैतन्य, ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि अनंत गुणोंका नाजन, सच्चिदानंदस्वरूपी असी मेरी आत्मा है, सोइ निश्चयदेव है

अथ दूसरा गुरुतत्त्व कहते हैं तिसकेनी दो नेद हैं, एक शुद्धव्यवहारगुरु, दूसरा शुद्ध निश्चयगुरु उसमें शुद्धव्यवहारगुरुका स्वरूप तो गुरुतत्त्वनिरूपण परिछेदमें लिख आये हैं, तहांसें जान लेनां, असें साधुकों गुरु करके माने असें गुरुकी आज्ञासें प्रवर्त्ते, असें मुनिकों पात्र बुद्धि करकें शुद्ध अन्नादिक देवे इति व्यवहार शुद्धगुरुतत्त्व। तथा निश्चय गुरुतत्त्व तो शुद्धात्म विज्ञानपूर्वक है, जो हेयोपादेय उपयोगयुक्त परिहार प्रवृत्तिज्ञान, सो निश्चयगुरुतत्त्व है

अथ तीसरा धर्मतत्त्व कहते हैं धर्मतत्त्वकेनी दो नेद हैं, एक व्यवहारधर्मतत्त्व, दूसरा निश्चयधर्मतत्त्व तिनमें जो व्यवहाररूप धर्म है, सो दयामुख्य है क्यों कि जो सत्यादि व्रत हैं, सो सर्व दयाकी रक्षा वास्ते हैं, इस वास्ते दयाका स्वरूप लिखते हैं यह दयाके आठ नेद हैं, सो कहते हैं १ द्रव्यदया, २ नावदया, ३ स्वदया, ४ परदया, ५ स्वरूपदया, ६ अनुबंधदया, ७ व्यवहारदया, ८ निश्चयदया

१ तहां ड्व्यदया उसकों कहते हैं, कि जो यत्न पूर्वक सर्व काम करणां, यह तो जैनमतवालेके कुलका धर्म है, सर्व जैन लोक, पाणी अनके पीते हैं, औ अन्न शोधके खाते हैं, जे कर कोइ जैनी बल (कपट) करता है, फूव बोलता है, औ विश्वासघात करता है, वो पापी जीव है, सो जैनमतकों कलंकित करता है, वो सर्व उस जीवकाही दोष है, परंतु उसमें जैनधर्मका कुछ दोष नहीं है, जैनधर्म तो असा पवित्र है, कि जिसमें कोइनी अनुचित उपदेश नहीं है, यह बात सर्व सुज्ञ जनोंकों विदित है, इस वास्ते जो काम करणां, सो यत्नपूर्वक जीवरक्षा करके करणां, सो ड्व्यदया है

२ दूसरी नावदया है, सो दूसरे जीवोंके गुणप्राप्ति वास्ते तथा डुर्गति पडतेकों रक्षण वास्ते, अंत करणमें अनुकंपा बुद्धि सयुक्त जो परजीवकों हितोपदेश करनां, सो नावदया है

३ तीसरी स्वदया है, सो अपणी आत्मा अनादि कालसें मिथ्यात्व अशुद्ध उपयोग, अशुद्ध श्रद्धानपूर्वक अशुद्ध प्रवृत्ति, कषायादि नावशस्त्रों करी समय समयमें आत्माके ज्ञानादि गुणोंकी घातरूप नावप्राणोंकी हिंसा होती है, असें जिनवचन सुननेसें पूर्वोक्त नाव शस्त्रोंका त्याग करकें स्वसत्तामें प्रवृत्ति करकें शुद्धोपयोग धारकें विषय कषायोंसें दूर रहनां, अरु शुन, अशुन कर्मफलके उदयमें अव्यापक रहनां, अर्थात् सुखडुःखमें हर्ष विषाद न करणां, प्रतिक्षण अशुन कर्मके निदान दूर करणेकी जो चिंता, तिसका नाम स्वदया है इस स्वदयाकी रुचि वाला जीव अपनी परिणति शुद्ध करने वास्ते जिनपूजा, तीर्थयात्रा, रथयात्रा प्रमुख शुन प्रवृत्ति करे, जिन गुण गावे, बहुमान करकें असत् प्रवृत्तिसें चित्तकों हटा करकें तत्त्वालंबी करे, पुजलावलंबीपणां हटावे, इस शुनाश्रवमें यद्यपि देखनेमें कितनेक जीवोंकी हिंसा दीख पडती है, तोनी आत्माकी अशुद्ध परिणति मिटनेसें आत्मा गुणग्राही हो जाती है, जब गुणग्राही नइ, तब ज्ञानवान् हो गइ इस वास्ते सर्व साधक जीवोंकों यह स्वदया परम साधन है, इस स्वदयाके वास्ते साधुनी नवकल्पी विहार करते हैं, औ उपदेश देते हैं, चर्चा करते है, तथा पूजन, प्रतिलेखन करते हैं, यद्यपि नदी नाले उतरने पडते हैं, तहां योगोंकी चपलतासे आश्रव होता है, तोनी चेत

न स्वरूपानुयायी रहता है, जिनाज्ञा पालता है, औ कषायस्थान मंद करता है, स्वछंदता दूर करता है, तथा धर्मप्रवृत्तिकी वृद्धि करता है, यह स्वदयाके वास्ते शुनाश्रव साधुजी अपणे कल्प प्रमाणे आचरण करता है, परंतु यह आश्रव साधकदशामें बाधक नहीं है ॥ इति स्वदया ॥

४ चोथी परदया, सो जो छे कायके जीवोंकी रक्षा करणी, जहां स्वदया है, तहां परदया तो नियम करकें है, अरु जहां परदया है, तहां स्वदया की जजना है, अर्थात् होवेजी, नहींजी होवे

५ पांचमी स्वरूपदया, सो जो इहलोक परलोकके विषयसुख वास्ते तथा लोकोंकी देखा देखी करकें जीवरक्षा करे, यह स्वरूप दया है इस दयासें विषय सुख तो मिल जाते हैं, परंतु मेंहुक चर्णवत् संसारकी वृद्धि हो जाती है, यह देखनेमें तो दया है, परंतु जावें हिंसाही है

६ उठी अनुबंधदया, सो श्रावक बडे आम्बरसें मुनिकों वंदना करनेकों जावे, तथा उपकार बुद्धिसें दूसरे जीवोंकों सन्मार्गमें लाने वास्ते आक्रोश (ताडनादि) करे, कोइकों शिक्षा देवे यहां देखनेमें तो हिंसा है, परंतु अंतमें स्वपरकों लाजका कारण है, इस वास्ते ये दया है जैसें साधु, आचार्य, अपणे शिष्य शिष्यणीयोंकों शिक्षा देता है, किसीकों जूल याद कराता है, तथा किसीकों अनुचित कामसें मना करता है, किसीकों एक वार कहता है, अरु किसीकों वारंवार शिक्षा देता है, किसी उपर क्रोध जी करता है, शासनके प्रत्यनीककों अपणी लब्धिसें दम देता है, इत्यादि कामोमें यद्यपि हिंसा दीखती है, तोजी फल दयाका है इति अनुबंधदया

७ सातमी व्यवहारदया, सो विधिमार्गानुयायी जीवदया पाले, सर्व क्रिया कलाप उपयोग पूर्वक करे, सो व्यवहार दया है

८ आठमी निश्चयदया, सो शुद्ध साध्य उपयोगमें एकत्व जाव, अजेदोपयोग साध्यजावमें एकताध्यान, सो जावदया. इस दयासेंती उपरिले गुणस्थानोंमें जीव चढता है, तिस वास्ते उत्कृष्ट है इत्यादि अनेक प्रकारसें दयाके स्वरूप, विज्ञानपूर्वक सूत्र, निर्युक्ति, जाष्य, चूर्णी, वृत्ति, इस पंचांगीसम्मत प्रत्यक्षादि प्रमाणपूर्वक नैगमादिनय, नामादि निक्षेप, सप्तजंगी, ज्ञाननय, क्रियानय, तथा निश्चयव्यवहारनय, तथा द्रव्यार्थिक, पर्यायार्थिक, इत्यादि उनय जावमें यथावसरें अर्पित, अनर्पित नयनिपु

१ तहां द्रव्यदया इसकों कहते हैं, कि जो यत्न पूर्वक सर्व काम करणां, यह तो जैनमतवालेके कुलका धर्म है, सर्व जैन लोक, पाणी छानके पीते हैं, औ अन्न शोधके खाते हैं, जे कर कोइ जैनी छल (कपट) करता है, झूठ बोलता है, औ विश्वासघात करता है, वो पापी जीव है, सो जैनमतकों कलंकित करता है, वो सर्व इस जीवकाही दोष है, परंतु इसमें जैनधर्मका कुछ दोष नहीं है, जैनधर्म तो ऐसा पवित्र है, कि जिसमें कोइभी अनुचित उपदेश नहीं है, यह बात सर्व सुज्ञ जनोंकों विदित है, इस वास्ते जो काम करणां, सो यत्नपूर्वक जीवरक्षा करकें करणां, सो द्रव्यदया है

२ दूसरी भावदया है, सो दूसरे जीवोंके गुणप्राप्ति वास्ते तथा दुर्गति पडतेकों रक्षण वास्ते, अंत करणमें अनुकंपा बुद्धि संयुक्त जो परजीवकों हितोपदेश करनां, सो भावदया है

३ तीसरी स्वदया है, सो अपणी आत्मा अनादि कालसें मिथ्यात्व अशुद्ध उपयोग, अशुद्ध श्रद्धानपूर्वक अशुद्ध प्रवृत्ति, कषायादि भावशस्त्रों करी समय समयमें आत्माके ज्ञानादि गुणोंकी घातरूप भावप्राणोंकी हिंसा होती है, ऐसें जिनवचन सुननेसें पूर्वोक्त भाव शस्त्रोंका त्याग करकें स्वसत्तामें प्रवृत्ति करकें शुद्धोपयोग धारकें विषय कषायोंसें दूर रहनां, अरु शुभ, अशुभ कर्मफलके उदयमें अव्यापक रहनां, अर्थात् सुखदुःखमें हर्ष विषाद न करणां, प्रतिक्षण अशुभ कर्मके निदान दूर करणेकी जो चिंता, तिसका नाम स्वदया है इस स्वदयाकी रुचि वाला जीव अपनी परिणति शुद्ध करने वास्ते जिनपूजा, तीर्थयात्रा, रथयात्रा प्रमुख शुभ प्रवृत्ति करे, जिन गुण गावे, बहुमान करकें असत् प्रवृत्तिसें चित्तकों हटा करकें तत्त्वाजयी करे, पुद्गलावलंबीपणा हटावे, इस शुभाश्रवमें यद्यपि देखनेमें कितनेक जीवोंकी हिंसा दीख पडती है, तोभी आत्माकी अशुद्ध परिणति मिटनेसें आत्मा गुणग्राही हो जाती है, जब गुणग्राही भइ, तब ज्ञानवान् हो गइ इस वास्ते सर्व साधक जीवोंकों यह स्वदया परम साधन है, इस स्वदयाके वास्ते साधुभी नवकल्पी विहार करते हैं, औ उपदेश देते हैं, चर्चा करते है, तथा पूजन, प्रतिलेखन करते हैं, यद्यपि नदी नाले उतरने पडते है, तहां योगोंकी चपलतासे आश्रव होता है, तोभी चेत

हैं, सो मेरे ज्ञानमें ज्ञेय रूप है, परतु मै इन सर्वसें अन्य हू, ये मेरे न
हीं हैं, मैं इनका नहीं, मैं इनका साथीजी नहीं, औ मैं अपणे स्वरूपका
स्वामी हू, मेरा स्वजाव सम्यग् दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप है, वर्णरहित, त
था गंधरहित, रस रहित, चैतन्य गुण, अनत, अव्यावाध, अनत दान, ला
न, जोग, उपजोग वीर्यादिक अनत गुण स्वरूप है तिनकी श्रद्धा जासन
पूर्वक गुणस्वादिक रूप चिदानद घन मेरा स्वजाव है, ऐसा जो मेरा पू
र्णानंद स्वजाव, तिसके प्रगट करणे वास्ते सर्वशुद्ध व्यवहारनय निमित्तमात्र
है, परंतु मुख्य तो मेरा स्वजाव जो है, तिसहीमें जो रमणता करणी, सोइ शुद्ध
साधन है सोइ धर्म है,यह निश्चय धर्म स्वरूप जानना॥इति धर्मतत्त्व तीसरा॥

इन तीनो तत्त्वोंकी जो श्रद्धा, निश्चल परिणतिरूप, तिसकों सम्यक्त्व
कहते हैं अरु जिस जीवकों इतना वोध न होवे, वो जीव जे कर ऐसें
मनमें धारे, पक्षपात न करे, "त सव निस्सक, ज जिणेहि पवेइयं इत्यादि"
जो जिनेश्वर देवोने कह्या है अर्थ, सो सर्व नि शकित सत्य है, ऐसी त
त्त्वार्थ श्रद्धाकोंजी सम्यक्दर्शन सम्यक्त्व कहते हैं, इस्सें जो विपरीत हो
वे, तिसकों मिथ्यात्व कहते हैं, इस मिथ्यात्वका स्वरूप नव तत्त्वमें लिख
आये हैं, तहांसें जान लेना, इस मिथ्यात्वकों त्यागे, तिसकों सम्यक्त्व क
हते हैं इति व्यवहारसम्यक्त्व स्वरूप सपूर्ण ॥

अथ निश्चय सम्यक्त्वका स्वरूप लिखते हैं जो पूर्वे निश्चय देव, गुरु,
और धर्मका स्वरूप कह्या है, सोइ निश्चयसम्यक्त्व है चार अनतानुवधी,
सम्यक्त्व मोह, मिश्रमोह, अरु मिथ्यात्व मोह, इन सातों प्रकृतिका उप
शम करे, तथा क्षयोपशम करे, तथा क्षय करे, तिस जीवकों निश्चय स
म्यक्त्व होती है परंतु निश्चय सम्यक्त्व परोक्ष ज्ञानविषय नहीं केवली
जान सक्ता है, जो इसके निश्चय सम्यक्त्व है, इस सम्यक्त्वके प्रगट जये
जीव नरक अरु तिर्यंच इन दोनों गतिका आयु नहीं बांधता है॥ इति नि
श्चय सम्यक्त्वं सपूर्ण ॥

अथ सम्यक्त्वकी करणी लिखते हैं, नित्य योगवाइके मिले, अरु श
रीरमें कोइ विघ्न न होवे, तव जिनप्रतिमाका दर्शन करिकें पीछेंसे जोजन
करे, जे कर जिनप्रतिमाका योग न मिले, तो पूर्वदिशि तरफ मुख करकें व
र्तमान तीर्थंकरोंका चैत्यवदन करे, अरु जे कर रोगादि कोइ विघ्नसें दर्शन

एतासें मुख्य गौण नावें अनयनयसम्मत, शुद्धस्याद्वादशैली विज्ञानपूर्वेक, श्रीसिद्धांतोक्त दान, शील, तप, नावनारूप शुन प्रवृत्ति, तिसका नाम शुद्ध व्यवहारधर्म कहियें हैं

तथा दूसरा निश्चयधर्म, सो अपणी आत्माकी आत्मताकों जाणे, औ वस्तुके स्वनावकों जाणे कि जो मेरी आत्मा है, सो शुद्ध चैतन्यरूप, असख्यातप्रदेशी, अमूर्त्ति, स्वदेहमात्रव्यापी, सर्व पुजलोंसें निन्न असंग, अलिप्त, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, सुख, वीर्य, अव्याबाध, सत्चिदानदादि अनत गुणमयी, अविनाशी, अनुपाधि, अविकारी, ऐसी मेरी आत्मा है, सो इ उपादेय है इससें विलक्षण जो परपुजलादिक सो मेरे नहीं तिस पुजलके पांच विकार हैं, १ शब्द, २ रूप, ३ रस, ४ गध, ५ स्पर्श. इन पांचोंके उत्तर नेद अनेक हैं इस लोकाकाशमें जो उद्योत, तथा अधकार, तथा जो शब्द है, तथा सर्व रूपी वस्तुकी जो ग्राया, रत्नकी कांति, शीत, धूप, नानाप्रकारके रूप, रंग, संस्थान, औ नाना प्रकारके सुगध, डुर्गध, नाना प्रकारके रस, तथा सर्व ससारी जीवोंकी देह, नाषा, औ मनके विकल्प, दश प्राण, ६ पर्याप्ति, हास्य, रति, अरति, नय, शोक, जुगुप्सा, औ खुशी, उदासी, कदाग्रह, दंग, लडाइ, क्रोधादि चार कषाय, तथा शाता, अशाता, उंच, नीच, निद्रा, विकथा, तथा सर्व पुण्यप्रकृति, सर्व पापप्रकृति, तथा रीऊ, मोज, खीजना, खेद, तथा ६ लेश्या, लानालान, यश, अपयश, मूर्ख, चतुरता, स्त्री, पुरुष, नपुसक वेद, कामचेष्टा, गति, जाति, कुल इत्यादि आठ कर्मका विपाक फल, यह सर्व बातों जीवके अनुनवसें सिद्ध हैं, अरु सूक्ष्मपुजल, इंद्रिय अगोचर है, सो परमाणु आदि लेकें अनेक तरेंका है, इस पूर्वोक्त पुजलके सयोगसें जीव चारों गतिमें नटकता है यह पुजल, मेरी जाति नहीं, इस पुजलका मेरे साथ कोइ वास्तव सबध नहीं, औ यह पुजल सर्व त्यागने योग्य है, जो इस पुजलका ससर्ग है, सोइ ससार है, तथा इस पुजलकी सगतिसें ज्ञान, दर्शन, चारित्रादि गुण विगड जाते हैं, जो यह पुजल, द्रव्यकी रचना है, सो मेरी आत्माका स्वनाव नहीं, तथा धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, काल, यह चारों द्रव्य ज्ञेय रूप है, इनसेंनी मेरा स्वरूप अन्य है, अरु और जो ससारी जीव है, सो सर्व अपणी अपणी स्वनाव सत्ताके स्वामी

हैं, सो मेरे ज्ञानमें ज्ञेय रूप है, परंतु मै इन सर्वसें अन्य हूं, ये मेरे न हीं हैं, मैं इनका नहीं, मैं इनका साथीनी नहीं, औ मैं अपणे स्वरूपका स्वामी हू, मेरा स्वजाव सम्यग् दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप है, वर्णरहित, त था गंधरहित, रस रहित, चैतन्य गुण, अनंत, अव्याबाध, अनंत दान, ला न, जोग, उपजोग वीर्यादिक अनंत गुण स्वरूप है तिनकी श्रद्धा जासन पूर्वक गुणस्वाविक रूप चिदानंद घन मेरा स्वजाव है, ऐसा जो मेरा पू र्णानंद स्वजाव, तिसके प्रगट करणे वास्ते सर्वशुद्ध व्यवहारनय निमित्तमात्र है, परंतु मुख्य तो मेरा स्वजाव जो है, तिसहीमें जो रमणता करणी, सोइ शुद्ध साधन है सोइ धर्म है, यह निश्चय धर्म स्वरूप जानना॥इति धर्मतत्त्व तीसरा॥

इन तीनो तत्त्वोंकी जो श्रद्धा, निश्चल परिणतिरूप, तिसकों सम्यक्त्व कहते हैं अरु जिस जीवकों इतना बोध न होवे, वो जीव जे कर ऐसें मनमें धारे, पक्षपात न करे, "तं सव्व निस्संक, जं जिणेहिं पवेइयं इत्यादि" जो जिनेश्वर देवोने कह्या है अर्थ, सो सर्व निःशंकित सत्य है, ऐसी त त्त्वार्थ श्रद्धाकोंजी सम्यक्दर्शन सम्यक्त्व कहते है, इस्सें जो विपरीत हो वे, तिसकों मिथ्यात्व कहते हैं, इस मिथ्यात्वका स्वरूप नव तत्त्वमें लिख आये हैं, तहांसें जान लेना, इस मिथ्यात्वकों त्यागे, तिसकों सम्यक्त्व क हते हैं इति व्यवहारसम्यक्त्व स्वरूपं संपूर्ण ॥

अथ निश्चय सम्यक्त्वका स्वरूप लिखते हैं जो पूर्वे निश्चय देव, गुरु, और धर्मका स्वरूप कह्या है, सोइ निश्चयसम्यक्त्व है चार अनंतानुबंधी, सम्यक्त्व मोह, मिश्रमोह, अरु मिथ्यात्व मोह, इन सातों प्रकृतिका उप शम करे, तथा क्षयोपशम करे, तथा क्षय करे, तिस जीवकों निश्चय स म्यक्त्व होती है परंतु निश्चय सम्यक्त्व परोक्ष ज्ञानविषय नहीं केवली जान सक्ता है, जो इसके निश्चय सम्यक्त्व है, इस सम्यक्त्वके प्रगट नये जीव नरक अरु तिर्यंच इन दोनों गतिका आयु नहीं बांधता है॥ इति नि श्चय सम्यक्त्वं संपूर्ण ॥

अथ सम्यक्त्वकी करणी लिखते हैं, नित्य योगवाइके मिले, अरु श रीरमें कोइ विघ्न न होवे, तब जिनप्रतिमाका दर्शन करिकें पीछेंसे जोजन करे, जे कर जिनप्रतिमाका योग न मिले, तो पूर्वदिशि तरफ मुख करकें व र्तमान तीर्थंकरोंका चैत्यवंदन करे, अरु जे कर रोगादि कोइ विघ्नसे दर्शन

न होवे, तो जिसका आगार है, उनका नियम नहीं टूटता है, अरु भगवान्के मंदिरमें मोटी दश आशातना न करे, यह दश आशातनाका नाम कहते हैं १ तंबोल पान, फल, प्रमुख सर्व खानेकी वस्तु भगवान्के मंदिरमें न खावे, २ पाणी, दूध, छास, अर्क प्रमुख पीवे नहीं, ३ जिनमंदिरमें बैठके भोजन न करे, ४ जूती प्रमुख मंदिरके अंदर न ल्यावे, ५ स्त्रयादिकसें मैथुन सेवे नहीं, ६ जिनमंदिरमें शयन न करे, ७ जिनमंदिरमें थूके नहीं, ८ जिनमंदिरमें लघुशंका न करे, ९ जिनमंदिरमें दिशा न जावे, १० जिनमंदिरमें जूआ, चोपट, सतरंज प्रमुख न खेले, ये दश आशातना टाले, तथा उत्कृष्टी चौरासी आशातना वर्जे, तथा एक मासमें इतना फूल सेरादि चढाउ, अेक मासमें इतना आदि घृत देउं, (चढाउं) एक वर्षमें इतना अंगलूहणां चढाउं, वर्षमें इतना केशर, इतना चंदन, इतना भीमसेनी बरास, कपूर प्रमुख भगवान्की पूजा वास्ते खरच करु, अपने धनके अनुसारें वर्ष प्रति धूप अगरबत्ती, कपूर, चढाउं वर्षमें अष्ट प्रकारी सत्तरे प्रकारी इतनीवां पूजा कराउं तथा करुं, औ वर्षमें इतना रूपैया साधारण द्रव्यमें खरचु, वर्षप्रति पूजावास्ते इतना द्रव्य खरचूं, दिन दिन प्रति एक नवकरवाली, अर्थात् माला, पंच परमेष्ठिमंत्रकी मोक्षनिमित्त जाप करुं, जेकर कोइ दिन न जपणां हो जावे, तो अगले दिन दूणा जाप करुं, परंतु रोगादि कारणें आगार है, दिन प्रति समर्थ होतें नमस्कार सहित, अर्थात् दो घडी दिन चढे तक चार आहारका प्रत्याख्यान करु, रात्रिमें डुविहार प्रत्याख्यान करुं, औ रस्ते चलते रोगादि कारणसें न होवे, तो आगार वर्ष प्रति इतना साधर्मिवात्सल्य करु, (साधर्मि जिमावु) इस रीतीसें सम्यक्त्व पालु, अरु सम्यक्त्वके पांच अतिचार टालु, सो पांच अतिचार कहते है

१ प्रथम शंका अतिचार, सो जिनवचनमें शंका करणी, क्यों कि जिन वचन बहुत गंभीर हैं, अरु तिनका यथार्थ अर्थ कहने वाला इस कालमें कोइ गुरु नहीं, अरु शास्त्र जो है, सो अनंतनयात्मक है, तिसकी गिणती, तथा संज्ञा, विचित्र तरेंकी है, कहीक जगें तो कोडी शब्द क्रोडका वाचक है, अरु किसी जगें रूढी वस्तुका वाचक है, क्योंकि श्रीजिनभद्रगणि क्षमाश्रमण सर्वसंघका सम्मत आचार्य, संघयण नामा पुस्तकमें तथा विशे

पणवती ग्रंथमें लिखने हैं, कि कोइक आचार्य कोडी शब्दकों एक क्रोड का वाचक नहीं मानते है, किंतु सज्ञांतर मानते हैं, क्यो कि अब वर्त्तमान कालमेंनी वीशकों कोडी कहते हैं, तथा सौराष्ट्र देश अर्थात् सोरठ देशमें अब वर्त्तमान कालमेंनी पांच आनेको एक कोडी कहते हैं, यह जैसे कोडी शब्दमें मतांतर हैं, असेंही शत सहस्र शब्दनी किसी सज्ञाका वाचक होवे तो कुछ दोष नहीं तथा शत्रुंजय तीर्थमें जहा मुनि मोक्ष गये हैं, तहांनी पांच कोडी आदि शब्दोंकी कोइ सज्ञा विशेष है असेंही छप्पन कुल कोडी यादव कहते हैं, तीहांनी यादवोंके छप्पन कुलोंकी कोडी कोइ सज्ञा विशेष है, इसी तरें सर्व जगें शास्त्रोमें चक्रवर्त्तीकी सेना तथा कोणिक चेटक राजाओंकी सेनामें जो कोडी, अरु शत सहस्र शब्द हैं, सो सज्ञाविशेषके वाचक सनव होते हैं, इस वास्ते सर्व शब्दोंका सर्व जगे एक सरीखा अर्थ मानना युक्त नहीं, इस कथनमें पूज्यश्री जिननइगणि क्षमाश्रमण पूरे साक्षी देने वाले हैं

तथा कितनेक नव्य जीवोंने सामान्य प्रकारें असा सुण रक्खा है, जो पांचमे आरेमें उत्कृष्ट एक सौ वीश वर्षका आयु है, जब वो जीव कीसी अंग्रेजके मुखसें सुनते हैं, तथा और किसीके मुखसें सुनते हैं, कि डेढ सौ तथा दो सौ, तथा अढाइ सौ वर्षकी आयुवालेनी नोटानादि किसी देशमें मनुष्य होते हैं, तब दृढ श्रद्धावाले नोले जीव तो कदापि किसीका कहना नहीं मानते हैं, चाहो बडी आयु वाला मनुष्य उनके सन्मुखनी खडा कर दो, तोनी वे झूठही मानेंगे, क्योंकि वे जानते हैं, कि जो हमारे जिनेंद्र देवका कथन है, सो कदापि झूठा नहीं है, परंतु जिनकों जैनमतकी दृढ श्रद्धा नहीं है, वे कुछ सांसारिक विद्यामें निपुन है, चाहो जैनमत वालेही हैं, उनके मनमें अवश्य शका पड जायगी, क्यों कि उनोंनेंनी सर्व जैन मतके शास्त्र सुने नहीं हैं, शास्त्रमें जो कथन है, सो सापेक्षिक है, बाहुल्यता करकें कह्या हूआ है, सो कथचित् जो अन्यथा होवे, तो आश्चर्य नहीं क्यों कि बहुत शास्त्रोंमें लिखा है, कि ज्योतिषचक्र, अर्थात् तारा मंमल है, सो सर्व तारे मेरु पर्वतकों प्रदक्षिणा देते हैं, ये बात सर्व जैनी मानते हैं, परंतु ध्रुवका तारा कहींनी नहीं जाता है, अरु ध्रुवके पास जो तारे सप्त ऋषि रूढिमें प्रसिद्ध हैं, जिनकों बालक मजी पहरेदार

कुत्ता, और चोर कहते है, तथा औरजी,कितनेक तारे ध्रुवके पार्श्ववर्त्ती हैं, वे सर्व ध्रुवकी प्रदक्षिणा देते हैं, परंतु मेरुपर्वतकी प्रदक्षिणा नहीं देते हैं, यह बात हमने आंखोंसें देखी है, अरु औरोंकों दिखा सकते हैं, तो फेर प्रथम जो शास्त्रकारने कहा था कि सर्व तारे मेरुकी प्रदक्षिणा देते हैं यह कहनां जैनी, क्यों कर सत्य मानते हैं?

इसका समाधान ऐसा है, कि प्रथम जो कथन है, सो बाहुल्यताकी अपेक्षा है, क्योंकि बहुत तारा मंमल ऐसा है, जो मेरु पर्वतकी प्रदक्षिणा देता है, अरु कितनेक ऐसे हैं जो ध्रुवकेही आस पास चक्र देते हैं, यह समाधान, पूज्यश्री जिनजद्रगणि क्षमाश्रमणजीनें संघयण, तथा विशेषणवती ग्रंथमें लिखा है, कि मेरु पर्वतके चारों ओर चार ध्रुव हैं, अरु इन चारों ध्रुवोंके पास ऐसे ऐसे तारे हैं, जो सदा इन चारों ध्रुवोंकेही आस पास चक्र देते हैं इस्सें यह सिद्ध हूआकि जो शास्त्रका कहनां है सो बाहुल्यतासें अरु किसी अपेक्षा करकें संयुक्त है, अरु किसी जग्गे स्थूल व्यवहार नयके मतसें कथन है, परंतु सूक्ष्म, अधिक न्यूनताकी विवक्षा नहीं करी है, इसी तरें सौ वर्षसें अधिक आयु जो पंचम कालमें कही है, सो बाहुल्यताकी अपेक्षा तथा आर्यखंम अर्थात् मध्यखंमकी अपेक्षा है, जे कर किसी पुरुषकी १५०, २००, २५०, इत्यादि वर्षोंकी आयु हो जावे, तो मनमें जिनवचनकी शका न करणी कि क्या जाने जिनवचन सत्य हैं कि जूठ हैं? ऐसा विकल्प मनमें नहीं करनां, क्योंकि शास्त्रका आशय अतिगंनीर है, अरु ऐसा गीतार्थ कोइ गुरु नहीं है, जो यथार्थ बतला देवे

इस आयुके कहनेका यह समाधान है,कि जगवान् श्रीमहावीरके निर्वाण पीछें (५८५) वर्षके लग जग जैनमतका आचार्य श्रीआर्यरक्षित सूरि साढे नव पूर्वका पाठक जिनोके पास शक्रइंद्र, निगोद जीवोंका स्वरूप सुनने आया था, तब शक्रइंद्रने प्रथम वृद्धब्राह्मणका रूप करकें श्रीआर्यरक्षित सूरिकों पूछा, कि हे जगवन्! में वृद्ध हो गया हों, जे कर मेरी आयु थोडी होवे, तो मुझे बता दीजीयें, जो मैं अनशन करु, तब श्रीआर्यरक्षित सूरिजीने दशमे पूर्वके यवका अध्ययनमें उपयोग दे कर देखा, तो तिसकी आयु सौ वर्षसे अधिक जानी, फेर उपयोग दे कर

देखा, तो दोसें वर्षसें अधिक आयु जानी, फेर उपयोग दीया, तो तीन सें वर्षसें अधिक आयु जानी, तव आचार्य श्रीआर्यरक्षितसूरिजीने विचार कीया, जो यह भारत वर्षका मनुष्य नहीं है ये कथानक, आवश्यकसूत्रकी सामायिकअध्ययनकी उपोद्घात निर्युक्तिमें है, इस कथानकसे औसा निकलता है, जो भारत वर्षके मनुष्यकी आयु तीन सौ वर्षकी होवे, तो आश्चर्य नहीं, क्यों कि श्रीआर्यरक्षितसूरिजीने जो तीन सौ वर्षसे जब अधिक आयु देखी, तव कह्या, ये भारत वर्षका मनुष्य नहीं इसी कहनेसे कथंचित् तीन सौ वर्षकी आयु भारत वर्षकी होवे, तो क्या आश्चर्य है ?

तथा कितनेक जीवोंके मनमें औसीभी शंका होवे, तो उसका क्या समाधान है ? भरत खंम जैनमतवाले कहा तक मानते हैं ? जो कुछ इस कालमें लोकोंके देखने वा सुननेमें आता है, कि अमेरिकादि देश वे सर्व जैनलोक भारत वर्ष मानते हैं, रूस, वा चीनादि देश इन सर्वकों भारत वर्ष कहते हैं अरु अमेरिकादि विलायतादि सर्व मुलकोंके बीचमें जो समुद्र पडा है, सो रूषभ देव अरु भरत चक्रवर्त्तीके समयमें नहीं था, किंतु जगती बाहिर जो महासमुद्र है, सोइ था, इस कारणसे अर्थात् समुद्रके अंदर आ जानेसें असली भरत क्षेत्रका स्वरूप विगड गया, कहीं समुद्र हो गया, और कहीं द्वीपें वन गये

इस विषे जैनमतका शत्रुंजय महात्म्यनामा जो ग्रंथ है, तिसमें लिखा है कि दूसरा सगरनामा चक्रवर्त्ती हूआ है, वो इस समुद्रकों भारतवर्षमें जंबूद्वीपके दक्षिणदिशिके विजयंत नामक दरवाजेके रस्तेसे ल्याया है, तिसके आनेसें बर्बरादि अनेक हजारो देश तो जलमें डूब कर समुद्रकी भूमिका वन गये, अरु जो उच्चस्थल थे, वे द्वीप और विलायतादि देशो वन गये, पीछेसें असली देशोका नाम नष्ट होनेसें वहुत देशोंके नाम कल्पित रखे गये, अरु भरतखंम कुछ औरका और वन गया, कितनेक देशोंके चारों ओर समुद्र फिर गया, अरु कितनेक देशोंके उत्तर खंमोमें वर्फके पड जानेसे, और समयके वदलनेसें, सर्वथा पानी जम गया, अरु समुद्रके साथ मिल गया, तव तो चारों ओर समुद्रही दीखने लगा है, तिस लिये आना जाना वंद हो गया, अरु हमारे शास्त्रकार तो प्रथम आरेमें तथा रूषभ देव अरु भरतचक्रवर्त्तीके समयमें जो इस भारत वर्षका हाल था, सोइ सदासे लि

खते चले आये, परंतु नरत क्षेत्रके बिगड तिगडके औरका और बन ज नेसें किसीने विस्तार पूर्वक वृत्तांत ठीक ठीक नहीं लिखा, अरु जे कर लि खाजी होवेगा, तोजी जैनमतके उपर बडी बडी विपत्तीयों पडीयों है, नसें लाखों क्या, बलकि क्रोडों ग्रंथ नष्ट हो गये है, इस वास्ते हम ठी ठीक सर्व वृत्तांत बता नहीं सक्के हैं, परंतु जितनेक जैन मतके ग्रंथ मेरे बां नेमें आये हैं, उनमेंसूं जो मुझे ठीक पडी है, सो मैं इस ग्रंथमें लिखता हूं

इस वास्ते सर्वक्षेत्र अदल बदल हो गये हैं, गंगा सिंधु असलस्थान वहनेमें रह गइ, क्योंकि अगला प्रवाह तो, समुद्रने रोक लीया, अरु पी सें पाणी आनां बंद हो गया, फेर जिस पर्वतसें अधिक नदीकी प्रवृत्ति इ, वो नदी, उसी पर्वतसें निकलती लोकोनें मान लीनी, इस वास्ते गंग अरु सिंधुमें क्षुल्लक हेमवत पर्वतसें जल आनां बंद हो गया, नाममा गंगा सिंधु रह गइ, औ नगरीयोंमें वनिता नगरीकी कल्पना पर अयोध्य बनाइ गइ, अरु काबलके परें तक्षिला अर्थात् बाहुबलकी नगरीकी कल्प ना करी गइ, इस समयमें वो तक्षिलाजी नहीं रही उसका नाम गजन प्रसिद्ध है, क्योंकि जैनीयोंकी श्रद्धा अनुसारें प्रथम आरेकों अरु ऋष देव तथा नरत राजाके समयके व्यतीत होनेमें असंख्य वर्ष व्यतीत ह गये हैं, तो फेर नदी, पर्वत, देश, नगरोंके उलट पलट हो जाने क्या आश्चर्य है ?

औ समुद्रका देशों उपर फिर जानां, तो तौरेत ग्रंथसेंजी ठीक ठी सिद्ध होता है, अरु पुराणादि ग्रंथोमेंजी लिखा है, जो कोइ ऐसा सम यजी था कि समुद्रमें पाणी नहीं था, पीछेसें आया है, इस वास्ते शत्रुंज य माहात्म्यमें जो लिखा है कि नरत क्षेत्रमें समुद्रका पाणी सगर चक्रवर्ती ल्याया है, सो कहनां ठीक है

तथा विजयसेन सूरि श्रीतपगच्छका आचार्य, अपने प्रश्नोत्तरोंमें लिख ते हैं, कि मागध, वरदाम, अरु प्रनासक नामक तीन जो तीर्थ हैं, सो ज गतीके बाहिरले समुद्रमें है, इस्सेंजी यही सिद्ध होता है, कि नरतचक्रव र्ती जब षट् खंम साधने, अरु मागधादि तीर्थोंको साधनेको गये थे, तब यह समुद्रका पानी रस्तेमें नहीं था, अरु शास्त्रकारोने तो सर्व शास्त्रोंकी

शेजो श्रीपक्रजदेवके कथानुसार रक्ती है, इस वास्ते चक्रवर्त्यादिकोंका क थन जरतचक्रवर्त्तीके सरीखा कह दीया है,

तथा इस कालमें कितनेक विद्यानोनें जूगोलके हिसाबसें जो क्रुतब ब नाये है, अरु उनके अनुसारें शरद तथा गरम देशोंका विजाग कीया है, यद्यपि उनके देखने सुनने मूजब तथा उनके अनुमानके अनुसारें वर्त्त मान समयमें अैसाही होवेगा, परतु सदा अैसाही था, यह कहनां ठीक नहीं क्योंकि जूगोलहस्तामलक पुस्तकमें लिखा है, कि रूपदेशकी उत्तर के पासें जहां बरफके सिवाय और कुछजी नहीं है, तहां गरमीके दिनोमें वर्फके गलनेसें तथा किसी जगे वर्फके करार गिर पडनेसें उसके हेठसें एक कि समके हाथी निकलते हैं, सोजी सेंकडो हजारों निकलते हैं, जिनका नाम उस देशवाले मेंमाथ कहते हैं, अब वडा आश्चर्य तो इन मेंमाथोंके देख नेसें ये आता है, कि ये जानवर गरम मुलकोंके रहनेवाले हैं, अरु यह शरद मुलकमें कहांसे आये? अरु इनके खाने वास्तेजी कुछ नहीं, इस कालमें जो एकजी हाथी उस मुलकमें जा कर बांधीयें, तो थोडेसें काल में मर जायगा, नहीं तो ये लाखो मेंमाथ इस मुलकमें क्यों कर जाते होयंगे? और क्या खाते होयगे? इसमें यही कहनां पडेगा कि किसी समयमें ये मुलक गरम होवेगा, पीछें पवनकी तसीर वदलनेसें शरद मु लक हो गया, इस वृत्तांतसें यह सिद्ध होता है, कि जो शरद मुलक हैं, वे गरम हो सक्ते हैं, अरु जो गरम मुलक हैं, वे किसी कालमें शरद हो जाते हैं, इस वास्ते जूगोलके अनुसारें जो शरदी गरमीकी व्यवस्था क ल्पना करनी है, वे हमेशांके वास्ते डुरस्त नहीं, क्या जाने देशोंकी क्या क्या व्यवस्था वदल चूकी है? और क्या क्या बदलेगी? इसका पूरा स्वरूप तो सर्वज्ञ जान सक्ता है

तथा इस पृथ्वीकों जूगोल कहते हैं अरु यहजी कहते हैं कि सू र्य नहीं फिरता, किंतु पृथ्वी, सूर्यके इर्द गिर्द घूमती है, यह बात कुछ इंग्रेजोहीने नहीं निकाली है, किंतु इंग्रेजोसें पहिलेंजी इस बातके मा नने वाले जारत वर्षमें थे, क्यों कि जैनमतका शीलंगाचार्य जो विक्र मके ७०० वर्षमें हूआ है, वे आचार्य आचारांगसूत्रकी वृत्तिमें लि खते हैं, कि कितनेक अैसाजी मानते हैं, जो जूगोल फिरता है, अरु सू

ये स्थिर रहता है, परतु यह मत जैनीयोंका नहीं है, उनके शास्त्र
जो प्रगट लिखा है कि सूर्य चलता है, अरु पृथ्वी स्थिर रहती
औ सूर्यके भ्रमण करनेंके एक सौ चौरासी मण्डल आकाशमें हैं,
मण्डलोंमें प्रवेश करनां, अरु दिनमानका रात्रिमानका घटनां, वधनां,
मौसमोंका बदलनां, ग्रहणका लगनां, सूर्यके अस्त उदय होनेमें
तोंका विवाद, इत्यादि बात सर्व सूर्यप्रज्ञप्ति वा चन्द्रप्रज्ञप्ति शास्त्रो
पढनेसें अच्छी तरेंसें मालुम पड जाती है

अरु जो पृथ्वीके गोल होनेमें समुद्रके जहाजकी ध्वजा प्रथम दीख
है, इत्यादि कहते हैं, सो कहनेवालोंकी समझमें ऐसी आती होवेगी,
रंतु हमारी समझमें तो नहीं आती है, हम तो ऐसे समझते हैं, कि
मारे नेत्रोंमें ऐसी ही योग्यता है, कि जिस्सें वस्तु गोलादि दीख पड
है, क्योंकि जब हम सूधी सडक पर खडे होते हैं, तब हमारे पगोंकी
गें सडक चौडी मालुम पडती है, अरु जब दूर नजरसें देखते हैं, तब
ही सडक सकुचित मालुम पडती है, अरु आकाशमें पक्षीकों जब शिर
उपर उडता देखते हैं, तब हमकों उंचा दूर दीख पडता है, अरु ज
वसी जानवरकों थोडीसी दूर जातेकों देखते हैं तब धरतीसें बहुत नि
ट देखते हैं, इतनी दूरमें पृथ्वीकी इतनी गोलाइ नहीं हो सक्ती है, त
आकाशकों जब देखते हैं तब तंबूसा दिखलाइ देता है, इसमें जो को
यह बात कहे कि धरतीकी गोलाइके सबबसें आकाशभी गोल दीखत
है, यह कहनां ठीक नहीं, क्योंकि पृथ्वीकी इतनी दूर इतनी गोलाइ नहीं
हो सकि है, इस वास्ते नेत्रोंमें जिस वस्तुके जाननेकी जैसी योग्यता है
वैसी वस्तु दीखती है, यह कहनां ठीक मालुम होता है

तथा यह पृथ्वी, भरतखण्डादिककी बहुत जगें उची,नीची, मालुम ह
ती है, क्योंकि श्रीहेमचन्द्रसूरि प्रमुख आचार्य पद्मप्रभचरित्रादि ग्रथों
लिखते है, कि लकासेंति इतने योजन पश्चिम दिशिकों जाइयें, तब आ
योजन नीचें पातालंलका है, जे कर ये प्रमाण योजन होवें, तब तो क्या
जाने अमेरिकाही पतालंलका होवे? अरु नीची जगा होनेसें बुद्धिमान
कों पृथ्वी गोल मालुम पडती हावेगी, इसी पाताल लकाकी तरें और ज
गेंभी धरती उची नीची होवे, तो क्या आश्चर्य है? क्योंकि पश्चिम महावि

देहकी धरती एक हजार योजन उंची लिखी है, इसी तरें और जगेंजी ऊंची नीची धरतीके सबबसें कुछ औरका और दीख पडे, तो जैनमती कों श्रीअर्हत भगवतके कहनेमें शका न करनी चाहियें

तथा कितनेक पुस्तकोमें लिखा देखा और सुनाभी है, जो अमेरिकादि मुलकोमें ऐसी विद्या निकाली है, कि जिस करकें वो दो हजारादि वर्ष पहिलें जो मनुष्य मर गये थे, उनकों बुलाते हैं, अरु उनसें उस वख्तका सर्व हाल पूछते हैं, अरु वे सर्व अपणी व्यवस्था बतलाते हैं, परंतु परोक्ष शब्द उनका सुणाइ देता है, वे प्रत्यक्ष नहीं दीखते हैं, तथा अनेक तरेंके तमासे दीखाते है, कि जिनके देखनेसें अल्पबुद्धियोंकी बुद्धि अस्त व्यस्त हो जाती है, तब उनके मनमें अनेक शका कखा उत्पन्न हो जाती हैं. जिसके सबबसें अर्हतकथित धर्ममें अनादर हो जाता है, क्योंकि उन जीवोनें नतो पूरे जैनमतके शास्त्र पढे है, औ न सुने हैं, इस वास्ते उनके मनकों जलद अधीरज हो जाती है, परंतु अपणे घरकी सर्व पुस्तकों विना वांचे, विना सुने, तुछ बातके वास्ते एकवारगी जिनधर्ममें शका न लानी चाहियें, क्योंकि यह पूर्वोक्त सर्ववृत्तांत इंद्रजालकी पूर्णविद्या जिसकों आती होवे, वो दिखा सक्ता हैं, मैंने किसी ग्रथमें ऐसा लिखा देखा है, जो कुमारपाल राजाके समयमें एक बोधिदेव नामक ब्राह्मण था, उसने राजा कुमारपालकी श्रद्धा जैन मतसें हटानेके वास्ते कुमारपालसें जो प्रथम उनके वशके मूलराज आदि सात राजाओं हो गये थे, उसकों नरककुंभमें पडे हूए, विलाप करते हूए, अरु ऐसें कहते हूए, दिखपडे, कि हे पुत्र! जिस दिनसें तूनें जैनधर्म अगीकार कीया है, उस दिनसे हम तेरे सात पुरुषों नरक कुंभमें जा पडे हैं, जे कर तू हमारा भला चाहे, तो जैनधर्म छोड दे, ऐसी बात देख कर राजा कुमारपाल चित्तमें घबराया, तब जा कर अपने गुरु श्रीहेमचद्राचार्यकों पूछा, कि महाराज! यह क्या वृत्तांत है? तब श्रीहेमचद्र आचार्यजीने कहा कि हे राजेंद्र! ये सर्व इंद्रजालकी विद्या है, आउ मैंभी तुमकों कुछ तमासा दिखाऊ? तब राजा कुमारपालकों मकानके अदर ले मकानमें ले जा कर चउवीस तीर्थंकर समवसरणमें जूदे जूदे बैठे हैं, अरु कुमारपालके वेंही सात पुरुषों तीर्थकरोंकी सेवा करते हैं, अरु राजा कुमारपा

नकों कहते हैं, कि हे पुत्र! तूं बडा पुण्यात्मा है, कि जिसने जैनधर्म अ गीकार कीया है, जिस दिनसें तूने जैनधर्म अगीकार कीया है, उस दिन सें हम नरककुंमसें निकल कर स्वर्गवासी हूए हैं, इस वास्ते तू धर्ममें ह ढ रहियो तद पीछें श्री हेमचंद्रसूरि,राजा कुमारपालकों बाहिर लाये,पीछें राजाने पूछी कि महाराज! यह क्या तमासा आश्चर्यकारी है? तब श्रीहेम चंद्रसूरि कहते नये कि हे राजा! ये इंद्रजालकी विद्या जिसकों आती होवे, वो कर सक्ता है, क्योंकि इंद्रजाल विद्याके सत्ताईस पीठ, है, जिनमेंसूं सत्त रे पीठ संसारमें प्रचलित हैं, परंतु सत्ताईस पीठ मैं जानता हू, और कोइ नी नारत वर्षमें नहीं जानता है, अरु जिन गुरुवोने हमकों ये विद्यादी नी थी, उनोने अैसी आज्ञानी करी है, कि आगेकों तुमनें किसीकों ये विद्या न देनी, क्यों कि इस विद्यासें बडे अनर्थ उत्पन्न हो जायगे, क्योंकि इस कालमें जीव तुच्छबुद्धिवाले हैं, इस लिये उनकों ये विद्या जरेगी नहीं, इसी वास्ते हमारे आचार्योनें योनिप्राभृत शास्त्र विछेद कर दीया है, उसी योनिप्राभृतके अनुसार यह इंद्रजाल रचा हूआ है, इस योनिप्रा भृतका कथन व्यवहारनाष्यचूर्णीमें लिखा है, कि उस योनिप्राभृ तमें तंत्रविद्या है, जिस्सें सर्प, घोडे, हाथी, वगैरे जिदे जानवर वस्तु वोंके मिलानेंसें बन जाते हैं, तथा सुवर्ण, मणि, रत्नप्रमुख बन जाते हैं, उन मसालोंमें अैसी मिलन शक्ति है, कि चाहे सो बना लो? इस वास्ते कोइ आज नवी वस्तु देख कर जैनधर्मसें चलायमान न होनां चाहियें तत्त्वार्थकी महानाष्यमें सामतनद्र आचार्यनी लिखते हैं, कि इंद्रजालिया तीर्थंकरकें समान बाह्य सिद्धि सर्व बना सक्ता है, इ स वास्ते कोइ बातका चमत्कार देखकें जिन वचनोमें शंका कदापि न करनी

तथा कितनेक जैनमत वालोंकों यहनी आश्चर्य है, कि जदा आर्याव र्त्तमें दो प्रहर दिन होता है, तदा अमेरीकामें अर्द्धरात्रि होती है अरु ज दा अमेरीकामें दो प्रहर दिन होता है, तदा आर्यावर्त्तमें अर्द्धरात्रि होती है, कितनेक लोकोनें घडीयोके हिसाबसे तथा तारकी खबरोंसे इस बात का निश्चय अछी तरेसें करा बतलाते है, इस बातका उत्तर मै यथार्थ नहीं दे सक्ता हू, मेरी श्रद्धा अैसी नहीं है कि पूर्व आचार्योके अनुसार विना समाधान कर सकू? क्योंकि मेरी कल्पनासे कुछ जैनमत सत्य नहीं

हो सक्ता है, जैनमत तो अपणे स्वरूपसेंही सत्य बनेगा, जे कर मेरी क
ल्पनाही सत्यका कारण होवे, तब तो किसी पूर्वाचार्योंकी अपेक्षा न रहे
गी, तब तो जिसके मनमें जो अर्थ अच्छा लगे, सो अर्थ कर लेवेगा जैसें
वर्त्तमानमें किसी पाखमी मस्करीने ऋग्वेदादि वेदों उपर स्वकपोलकल्पित
अर्थ बनाये हैं, सो हमने वाचनी लीये है, उनोनें वेद मंत्रादिकोंके उपर
जो नाष्य बनाया है,उसमें मत्रोंके अर्थोंमें ऐसा लिखा है कि "अग्निबोट"
अर्थात् धूयेकी कलसें चलनेवाले जहाज तथा रेलगाडीके चलनेकी विधि,
तथा पृथ्वी गोल है, अरु सूर्यके चारों ओर घूमती है, अरु सूर्य स्थिर है,
इत्यादि जो अंग्रेजोने अपनी बुद्धिके बलसें विद्या उत्पन्न करी है, इन स
र्व विद्यायोंका वेदोमेंनी कथन है, अपने शिष्योंकों वेदका महत्त्व ज
नानेके वास्ते स्वकपोलकल्पित अर्थ बना लीये हैं, अरु पूर्वे जो म
हीधरादि पंमितोने वेदोंके उपर दीपिका तथा नाष्य रचे हैं, उनकी नि
दा अर्थात् मूर्खता प्रगट करी है, वे मूर्ख थे, उनकों वेदका अर्थ न
हीं आता था

प्रश्न –पिछले अर्थ छोड कर जो नवीन अर्थ बनाये गये, इनका
क्या कारण है ?

उत्तर –प्रथम तो वेदोंके प्राचीन नाष्य और दीपिका माननेसें वेदोंकी
सत्यता, अरु ईश्वरोक्तता, तथा प्राचीनता सिद्ध नहीं होती इसी वास्ते
ईशावास्य उपनिषद् वर्जके सर्व उपनिषदों, और सर्व ब्राह्मण नाग, त
था सर्व स्मृति, पुराणादि शास्त्र, नाष्य, दीपिकादि, मानने छोड दीये, उनो
ने यह विचार कीया है कि इन सर्व पूर्वोक्त ग्रथोंके माननेसें हमारा मत
दूसरे मतवाले खंमित कर देवेंगे, क्योंकि ये पूर्वोक्त सर्व ग्रथ युक्ति प्रमा
णसे विकल हैं, अरु प्राचीनोनें जो अर्थ करे हैं, उनमें बहुत अर्थ ऐसें
हैं, कि जिनोंके सुननेसें श्रोता जनोंकोंनी लज्जा उत्पन्न होती है, क्योंकि
महीधरकृत दीपिका जो वेदकी टीका है उसमें मत्रादिकोंके जो अर्थ
लिखे हैं, उनमें लिखा है कि यज्ञपत्नी घोडेका लिंग पकडके अपनी
योनिमें प्रक्षेप करे इत्यादि अर्थ है, सो मैं आगें लिखुगा इत्यादि अर्थोंके
छोडने वास्ते अरु वेदोंके खमन न होने वास्ते स्वकपोलकल्पित नाष्य
बना कर मानु अंग्रेजोके चाल चलन, और इंजिलके मतानुसार अर्थ बना

ये गये है, परंतु उसकों बुद्धिमान् तो कोइनी मानता नहीं है, अरु जो मानते हैं, वो कुछ जानते नही है, क्योंकि जब पूर्वसे ऋषि, मुनि, पंमित झूठे हैं, अरु उनके बनाये हूये अर्थ असत्य हैं, तो अबके बनाये हूये कदापि सत्य नहीं हो सकेंगे? जो जडमेंही झूठ है, वे नवीन रचनासें कदापि सत्य न होवेंगे, इस वास्ते अपनी बुद्धिका विचार सत्य माननां, अरु प्राचीन उन वेदोंके मानने वालोंका सप्रदाय अर्थकों झूठा माननां इस्सें अधिक निर्विवेकी और अन्यायशिरोमणि कौन है? क्योंकि जब प्राचीनोंके बनाये अर्थ झूठे ठहरेंगे, तब तिनके बनाये नये वेदनी झूठेही ठहरेंगे, इस वास्ते जो मतधारी है, यातो उनको अपणे प्राचीनोंके कथन करे हूये अर्थ माननें चाहियें, नहीं तो उस मतको अरु उस मतके शास्त्रोंकों छोड देनां चाहियें इसी वास्ते मेरी ऐसी श्रद्धा है, कि जो जैन मतमें प्रामाणिक अरु पंचांगीकारक आचार्य लिख गये हैं, उनके अनुसारही हमकों कथन करनां चाहियें, परंतु स्वकपोलकल्पित नहीं जे कर कोइ स्वकपोलकल्पित मानेगा, वो जैनमती कदापि नहीं बन सकेगा, अरु उसकी कल्पनानी सर्वथा सत्य नहीं होवेगी? क्योंकि जब सर्व मतोंके पूर्वाचार्य झूठे ठहरेंगे, तब नवी कल्पना करने वाले क्यों कर सच्चे बन वेंगे? इस वास्ते पूर्वोक्त प्रश्नका उत्तर पंचांगीके प्रमाणसें नहीं दे सका हू, क्यों कि १ शास्त्र बहुत विछेद हो गये है, तथा २ आर्यरक्षित सूरिके समयमें चारों अनुयोग तोडके पृथक्त्वानुयोग रचा गया है, तथा ३ स्कंधिल आचार्यके समयमें बारह वर्ष काल पडा था, उसमें शास्त्र कवसें नूल गये थे, फेर सर्व साधुओंका दक्षिण मथुरामें समाज करकें जिस जिस आचार्य, साधुके जिस जिस शास्त्रका जो जो स्थल, कंठ रह गया, सो सो स्थल एकत्र करकें लिखा गया, ४ पीछें देवर्द्धि गणि क्षमाश्रमण प्रनृति आचार्योंनें पत्रोंके उपरि एक क्रोड ग्रंथ लिखा, शेष छोड दीये, ५ प्रनावक चरित्रमें लिखा है, कि सर्व शास्त्रोंकी टीका लिखी थी, वो सर्व विछेद हो गइ, ६ तथा पीछेसें ब्राह्मणोने तथा बौद्धोने ग्रंथोंका नाश किया, ७ तथा मुसलमानोने तो सर्वमतोंके शास्त्र मट्टीमें मिलाय दीये, तिनमेंसें जो रह गये, वे नंमारोंमें गुप्त रहनेसें गल गये, तथा जो अब नंमारोंमें है, वे सर्व हमने वांचे नहीं है, तो फेर इतने उपद्रव जैन शा

स्रोंमें वीतनेंसें हम क्योंकर सर्व शंकायोंका समाधान कर सके? इस वास्ते जिनमतमें शका न करनी चाहियें. हमनें सर्वमतोंके शास्त्र देखे हैं, परंतु जैनमत समान अति उत्तम मत कोइ नहीं देखा है, इस वास्ते इस मतमें दृढ रहना चाहियें, १ शका अतिचार उसकों कहते हैं, कि जो जिनवचनोंमें शका करे, जैसेंकि ए वार्त्ता जिनेश्वर देवकी कही सत्य है, वा नहीं? यह प्रथम अतिचार है

२ दूसरा आकङ्का अतिचार, सो अन्यमत वालोंका अज्ञान कष्ट देख कर तथा किसी पाखमीके पास किसी विद्यामत्रका चमत्कार देख कर तथा पूर्व जन्मके अज्ञान कष्टके फल करके अन्यमत वालोंकों सुखी अरु धनवान् देख कर मनमें विचारें जो अन्यमत वालोंका धर्म अरु ज्ञान अछा है, जिसके प्रभावसें वे धनी, अरु पुत्र आदि परिवार वाले होते हैं, इस वास्ते मेंभी इनहीका धर्म करु, कि जिस कर के मैंभी धनी, अरु पुत्रादि परिवार वाला हो जाउगा, यह आकांक्षा अतिचार, उन जीवोंको होता है, कि जिनको जिनधर्मका अछी तरेसें वोध नहीं है, क्योंकि जैनधर्मवालेभी सर्व दरिद्री अरु पुत्रादि परिवारसें रहित नहीं हैं, तैसें ही अन्यमत वालेभी सर्व धनी अरु परिवारवाले नहीं है, इस वास्ते सर्व अपने अपने पूर्व जन्म जन्मांतरके करे हूए पुण्य पापके फल हैं, क्योंकि जे जीव, मनुष्य जन्ममें सात कुव्यसनी हैं, अरु कसाइ, वागुरी (वुच्चड) प्रमुख कितनेक धनी (धनवाले) अरु पुत्रादि परिवारवाले हैं, अरु कितनेक इस अवस्थासें विपरीत हैं, इस वास्ते यही सत्य है कि पूर्व जन्ममें करे हूए सुकृत दुष्कृतका फल है, प्राय इस जन्मके कृत्योंका फल नहीं है, सर्व मतोंवाले राजा हो चुके है, अरु रंकभी बहुत हैं, इस वास्ते अन्यमतकी आकाङ्क्षा न करे, जे कर करे, तो दुसरा अतिचार

३ तीसरा वितिगिछा नामक अतिचार है, सो कोइ जीव अपणे पूर्व जन्मके करे हुये पापोंके उदयसें दुःख पाता है, तव ऐसा विचार करे, जो मैं धर्म करता हूं, तिसका फल मुझे कव मिलेगा? अर्थात् मिलेगा कि नहीं? अरु जो धर्म नहीं करते ह, वो सुखी हैं, अरु हम तो धर्म करते है, तोभी दुःखी हैं,इस वास्ते कौन जाने धर्मका फल होवेगा कि नहीं होवेगा? तथा साधुके मलिन वस्त्र तथा मलिन शरीर रखत देख कर मनमें

ये गये है, परंतु उसकों बुद्धिमान् तो कोइनी मानता नहीं है, अरु जो मानते हैं, वो कुछ जानते नहीं है, क्योंकि जब पूर्वले ऋषि, मुनि, पंमित झूठे हैं, अरु उनके बनाये हूये अर्थ असत्य हैं, तो अबके बनाये हूये कदापि सत्य नहीं हो सकेंगे ? जो जडमेंही झूठ है, वे नवीन रचनासें कदापि सत्य न होवेंगे, इस वास्ते अपनी बुद्धिका विचार सत्य माननां, अरु प्राचीन उन वेदोंके माननें वालोंका सप्रदाय अर्थकों झूठा माननां इस्सें अधिक निर्विवेकी और अन्यायशिरोमणि कौन है ? क्योंकि जब प्राचीनोंके बनाये अर्थ झूठे ठहरेंगे, तब तिनके बनाये नये वेदनी झूठेही ठहरेंगे, इस वास्ते जो मतधारी है, यातो उनको अपणे प्राचीनोंके कथन करे हूये अर्थ माननें चाहियें, नहीं तो उस मतको अरु उस मतके शास्त्रोंकों गेड देनां चाहियें इसी वास्ते मेरी ऐसी श्रद्धा है, कि जो जैन मतमें प्रामाणिक अरु पंचांगीकारक आचार्य लिख गये हैं, उनके अनुसारही हमकों कथन करनां चाहियें, परंतु स्वकपोलकल्पित नहीं जे कर कोइ स्वकपोलकल्पित मानेगा, वो जैनमती कदापि नहीं बन सकेगा, अरु उसकी कल्पनानी सर्वथा सत्य नहीं होवेगी ? क्योंकि जब सर्व मतोंके पूर्वाचार्य झूठे ठहरेंगे, तब नवी कल्पना करने वाले क्यों कर सच्चे बन बेठेंगे ? इस वास्ते पूर्वोक्त प्रश्नका उत्तर पचांगीके प्रमाणसें नहीं दे सक्ता हू, क्यों कि १ शास्त्र बहुत विछेद हो गये हैं, तथा २ आर्यरक्षित सूरिके समयमें चारों अनुयोग तोडके पृथक्त्वानुयोग रचा गया है, तथा ३ स्कंधिल आचार्यके समयमें बारह वर्ष काल पडा था, उसमें शास्त्र कंठसें नूल गये थे, फेर सर्व साधुओंका दक्षिण मथुरामें समाज करकें जिस जिस आचार्य, साधुके जिस जिस शास्त्रका जो जो स्थल, कंठ रह गया, सो सो स्थल एकत्र करकें लिखा गया, ४ पीछें देवर्द्धि गणि क्षमाश्रमण प्रभृति आचार्योंनें पत्रोंके उपरि एक क्रोड ग्रंथ लिखा, शेष गेड दीये, ५ प्रजावक चरित्रमें लिखा है, कि सर्व शास्त्रोंकी टीका लिखी थी, वो सर्व विछेद हो गइ, ६ तथा पीछेसे ब्राह्मणोने तथा बौद्धोने ग्रंथोंका नाश किया, ७ तथा मुसलमानोने तो सर्वमतोंके शास्त्र मट्टीमें मिलाय दीयें, तिनमेंसें जो रह गये, वे नंमारोंमें गुप्त रहनेसें गल गये, तथा जो अब नंमारोंमें है, वे सर्व हमने वांचे नहीं है, तो फेर इतने उपद्रव जैन शा

जायंगे कि जिनोके किसी बातका नियम नहीं, हाथी, घोडे, रेल प्रमुख की असवारी करनी, तथा जो फल हैं, सो सर्व नक्षण करने, धन रखणा, मकान बांधणे, खेती करणी, गौ, नैंस, हाथी, घोडे, रथ, शस्त्र रखने, छल बलसे लोकों पासों धन ले लेना, स्त्रीयोंसें विषय सेवन करनां, अन्न खाना, मांसनक्षण करनां, मदिरा पीनां, नांगके रगडे, चरसकी चिलमें उडानां, पगोंकों तथा शरीरकों वेश्याकी तरें माजना, चित्तमें बडा अनिमान रखना, दंम पेले, गस्त करने जाना, इत्यादि अनेक साधुओंके अनुचित काम करनें, फेर श्रीश्री स्वामीजी महाराज बन बैठनां, हम महंत हैं, हम गद्दीधर हैं, हम नट्टारक हैं, हम श्रीपूज्य हैं, हम जगत्का उद्धार करते हैं, हम बडे अद्वैत ब्रह्मके वेत्ता हैं, हम शुद्ध ईश्वरकी उपासना बताते हैं, मूर्त्तिपूजन पाखमका नाश करते हैं

अब नव्य जीवोंको विचार करनां चहियें कि यह पूर्वोक्त कुगुरु क्या जलके स्नान करनेसें संसारसमुद्रसे तर जायंगे? अरु जो जीवहिंसा, फूठ, चोरी, स्त्री, अरु परीग्रह, इन पाचोंके त्यागी, शरीरमें ममत्व रहित, प्रतिबंध रहित, काम क्रोधके त्यागी, महातपस्वी, मधुकर वृत्तिसें निक्षा लेने वाले इत्यादि अनेक गुण सुशोनित हैं, वे क्या जलमें स्नान न करनेसें पातकी हो जावेंगे? कदापि न होवेंगे इस वास्ते साधुकों देख कें जुगुप्सा न करनी, जे कर करे, तो तीसरा अतिचार लागे ॥

चौथा मिथ्यादृष्ठिकी प्रशंसारूप अतिचार है, मिथ्यादृष्टि उसकों कहते हैं, जो जिनप्रणीत आज्ञासें बाहिर है, क्यों कि सर्वज्ञके कहे हूए वचनकों तो वो मानता नहीं, अरु असर्वज्ञोके कहे हूए शास्त्रोंकों सच्चा मानता है, उन शास्त्रोंमें जो अयोग्य बातें कही हैं, उनके छिपाने वास्ते स्वकपोलकल्पित नाष्य, टीका, अर्थ, बना करकें मूर्खलोकोंकों बहकाते गल्ल बजाते फिरते हैं, औ जिनके नियमधर्म कोइ नहीं, रूपए पइसोंकों मार जानते हैं, धूर्त्तपणेंसे सच्चा बन कर मूर्खोंकों मिथ्यात्व जालमें फसाते हैं, असे मिथ्यादृष्टि होते हैं, उनकी प्रशंसा करनी, तथा जो अज्ञानी जिनाज्ञासें बाहिर हैं, उनकों कहनां कि ये बडे तपस्वी हैं? महापुरुष है? बडे पंमित हैं? इनके बराबर कौन है? इनोंने धर्मकी वृद्धि वास्ते अवतार लीया है? तथा मिथ्यादृष्ठि कोइ व्रत यज्ञादि करे, तब ति

जुगुप्सा करे, कि यह साधु अछे नहीं है, जो मलिन वस्त्र तथा मलिन शरीर रखते हैं, इस वास्ते यह ससारसे क्यो कर तरेंगे ? जे कर उष्ण जलसें स्नान कर लेवे, तो कौनसा महाव्रत जग हो जाता है ?

उत्तर –जे कर धर्मका फल न होवे, तो ससारकी विचित्रता कदापि न होवे, इस वास्ते धर्मका फल अवश्यमेव है, तथा जो साधु मलिन वस्त्र रखते हैं, उनका तो यह कारण है कि सुदर वस्त्र रखनेसें मन शृगाररसकू चाहाता है, अरु स्त्रीयोंजी सुदर वस्त्र वालोंको देख कर उनसें जोग करनेकी इछा करती हैं, इस वास्ते शील पालनें वाले साधुओंकों शृगार करनां अछा नहीं, अरु स्नान जो है, सो कामका प्रथमांग है, इस वस्ते साधुओंकों उचित नहीं, अरु कोइ कारण पडवेसें साधु हाथ पगादिकोंकू धोय लेवे, तो कुछ दूषण नहीं अरु साधुओंकों आपणा शरीर उपर ममत्वजी नहीं है, अरु शुचिमात्र स्नान तो साधु करते हैं, परंतु शरीरके सुख वास्ते तथा शरीरके चमकाने (दमकानेके) वास्ते नहीं करते हैं, क्योंकि जैनीयोंकी ये श्रद्धा नहीं है, जो जलमें स्नान करनेसें पाप दूर हो जाते हैं, परतु जलस्नानसें शरीरकी मैल दूर हो जाती है, शरीरकी तप्त मिट जाती है, आलस्य दूर हो जाता है, परंतु पाप दूर नहीं होते हैं, जे कर जलस्नानसें पाप मिट जावें, तो अनायास करकें सर्वकी मोक्ष हो जावेगी ? ऐसा कौन है, जो जलसे स्नान नहीं करता है ? अरु जो साधुकों मैला समजनां, यही बडी मूर्खता है, क्योंकि शरीरके मैले होनेसें आत्मा मैला नहीं होता है, मैला तो पाप करनेसें होता है, अरु जगत् व्यवहारमें स्त्रीसें सजोग करनेसें और किसी मलिन वस्तुका स्पर्श करनेसें, मैलापनां मानते हैं, अरु साधु तो इन सर्व वस्तुओंका त्यागी है, इस वास्ते मैला नहीं, बलके साधुओंकों धन्यवाद देनां चाहियें जो तप्त पडती है, लो चलती है, पसीना वहता है, तोजी साधु नगे पांय, अरु नगा शिर करकें चलते हैं, औ रातकों उत्ते हूये मकानमें सोते हैं, पखा करते नहीं तथा कोमल शय्या (पल्यंकादि) पर सोते नहीं औ रात्रिको जल पीते नहीं, दिनमेंजी उष्ण जल पीते है, यह तो बडा जारी तप है, परतु जो कोइ साधु तो वन रहे है, अरु जब गरमी लगती है, तब महिषकी तरे जलमें जा पडते है, ऐसे सुखशीलिये तो तर

जीविकाके वास्ते कोइ विरुद्ध आचरण करनां पडे, तो दूषण नहीं. एक तो यह छै वस्तुके आगारोंकों छै छंडी कहते हैं. तथा चार आगार और नी है, सो कहते हैं

१ "अन्नथ्थणाजोगेणं" अस्यार्थ कोइ कार्य अजाण पणे उपयोग दीयां विना औरका और हो जावे, अरु जब याद आ जावे, तब वो कार्य फेर न करे, यह प्रथम आगार

२ "सहस्सागारेण" सो अकस्मात् कोइ काम करे, अपणे मनमें जानता है, यह काम मैंनें नहीं करणां, परतु योगोंकी चपलतासें तथा नित्य बहुत अन्यासतेती जानता हूआनी विरुद्ध कार्य हो जावे, तो सम्यक्त्वमें नंग नहीं यह दूसरा आगार

३ "महत्तरागारेण" सो कोइ मोटा लान होता है, परतु सम्यक्त्वमें दूषण लगता है, तथा कोइ मोटा ज्ञानीकी आज्ञासें कमवेशी करनां पडे, तो यहनी आगार है यह तीसरा आगार

४ चौथा "सव्वसमाहिवत्तिआगारेण" सो सर्व समाधिव्यत्ययसें कोइ बडा सन्निपातादि रोगोंके विकयसेंती बावरा हो जावे, तथा अतिवृद्ध हो जानेंसें स्मृतिनंग हो जावे, तथा रोगादिक आये मनमें आर्त्तध्यान हो जानेंसें, तथा सर्पादिके मंक मारणेसें, इत्यादि असमाधिमें यह आगार है इस्सें सम्यक्त्व तथा व्रत नंग नहीं होता है, परंतु किसी मूर्खके कहे सुनेंसें आर्त्तध्यानमें प्राण त्यागने योग्य नहीं, कितनेक जिनमतके अनन्निज्ञोंका यह नी कहनां है, कि चाहो कुछ हो जावे, तोनी जो नियम लीया है, उसकों कनी तोडनां न चाहियें, परंतु यह कहनां सर्वथा ठीक नहीं. क्यों कि जब पहिलांहि आगार रखके गये, तो फेर व्रतनंग क्यों कर हूआ ? अरु जो आर्त्तध्यानमें मरजाते हैं, अरु आगार नहीं रखते हैं, वे जिनमार्गकी शैलीके अजान हैं, इस वास्ते छै छंडी, अरु चार आगार, सर्व बारोही व्रतोमें जाननें, अरु साधुके सर्वप्रत्याख्यानोंमें अनशन पर्यंत यही चार आगार जानने ॥ इतिश्री तपगछीये गणिश्रीमणिविजय तच्छिष्य मुनिश्री बुद्धिविजय तच्छिष्य मुनि आत्माराम अनदविजयविरचिते जैनतत्त्वादर्शे सम्यग्दर्शननिर्णयनामा सप्तमपरिछेद सपूर्ण ॥ ७ ॥

सकी प्रशंसा करे कि तुम बडा अच्छा काम करते हो, तुमारा जन्म सफल है, इत्यादि प्रशंसा करे, सो चौथा अतिचार है

५ पांचमा मिथ्यादृष्टिकी परिचयकरनी सो अतिचार है, सो मिथ्या दृष्टिके साथ बहुत मेल (मिलाप) रखे, एक जगें भोजन सवास करे, इत्यादि है, क्योंकि बहुत मिथ्यादृष्टिके साथ मेल रखनेसें मिथ्यादृष्टिकी वासना लग जानेसें धर्मसें भ्रष्ट हो जाता है, इस वास्ते मिथ्यादृष्टिका बहुत परिचय करनां ठीक नहीं यह पांचमा अतिचार है.

अब जब गृहस्थकों सम्यक्त्व देते हैं, तब उसकों गुरु ६ आगार बत जाते हैं जे कर ये ६ कारणोंसें तुमकों कोइ अनुचित कामभी करणां प डे, तो तुमकों ये ६ आगार रखाये जाते हैं, जिनसें तुमारा सम्यक्त्व क लंकित न होवेगा, सो ६ आगार कहते हैं

१ प्रथम "रायाभिओगेण" सो राजा उस नगरका स्वामी जे कर वो राजा कोइ अनुचित काम जोरावरीसें करावे, तो सम्यक्त्वमें दूषण नहीं.

२ दूसरा "गणाभिओगेण" गणनाम ज्ञाति तथा पंचायत, वे कहे, जो यह काम तुम जरूर करो, नहीं तो ज्ञाति, तथा पंचायत तुमकों बडा दंड देवेंगी, उस वखत जे कर वो काम करनां पडे, तो सम्यक्त्वमें अतिचार नहीं

३ तीसरा "बलाभिओगेण" सो बलवत चोर म्लेछादि तिनोंके वश पड नेंसें वो कोइ अपनी जोरावरीसें अनुचित काम करवावें, तोभी दूषण नहीं

४ चउथा "देवाभिओगेण" सो कोइ दुष्ट देवता क्षेत्रपालादि व्यंतर श रीरमें आवेश करकें अनुचित काम करावे, तो भग नहीं तथा कोइ देव तो मरणांत दुःख देवे, तब मनमें धैर्य न रहे, तब मरणांत कष्ट जानके कोइ विरुद्ध काम करनां पडे, तो सम्यक्त्वमें अतिचारभग नहीं

५ पांचमा "गुरुनिग्गहेण" गुरु सो माता, पितादि उनके आग्रहसें कु छ अनुचित करणां पडे, तथा गुरु कहियें, धर्माचार्यादि, तथा जिनमंदिर, सो कोइ अनार्य गुरुकों संकट देता होवे, तथा जिनमंदिरकों तोडता हो वे, जिनप्रतिमाकों खंडन करता होवे, सो गुरु निग्रह है तिनोंकी रक्षा वास्ते कोइ अनुचित काम करणां पडे, तो सम्यक्त्वमें दूषण नहीं

६ छठा "वित्तिकंतारेण" वृत्ति जे दुष्कालादि आपदा आ पडे, तब आजीविकाके वास्ते किसी मिथ्यादृष्टिके अनुसार चलनां पडे, तथा आ

र्पहिंसा है तीसरी प्रमादहिंसा, सो आकुट्टी अर्थात् जानके काम जोगमें तीव्र अभिलापासे कामका जोस चढाने वास्ते त्रस जीवकी हिंसा करे, किसी जीवकों मारके गोली माजुम प्रमुख बना करकें खावे, सो आकुट्टी प्रमादहिंसा है चौथी कल्पहिंसा, सो अपणा घरका काम काज, रधण, पीसणादि करते त्रस जीवकी हिंसा हो जावे, सो प्रमादहिंसा है इन चारो हिंसायोमें प्रथम हिंसा तो बिलकुल नहीं करणी, तिस वास्ते यहा सकल्प करकें आकुट्टी, तथा दर्प्प करकें त्रस जीव हणनेका त्याग करे, जैसें यह कीडी जाती है, इसकों मै मारु? असे सकल्प करकें हणे,हणावे, तिसकों आकुट्टीसकल्प कहते हैं असें सकल्प कर कें निरपराधी जीवोंको विना कारणके न हणुं न हणाउ, अरु सांसारिक आरज रंधनादि करते, तथा पुत्रादिकके शरीरमें कीडे आदिक जीव उत्पन्न होवे, तदा औषधादि करते यत्नसें करे तथा घोडा, बलद, प्रमुखकों चाबकादि मारणां पडे उसका आगार रक्के, तथा पेटमें कृमी, गमोला, तथा पगमें नहरवा, अर्थात् वाला, तथा हरस, चम, जू, प्रमुख अपणे शरीरमें उपजे, तथा मित्रादिक स्वजनादिकके शरीरमें उपजे, तिसके उपचार करणेकी जयणा रक्के, क्योंकि साधुको तो त्रस, अरु स्थावर, सूक्ष्म, अरु बादर, सर्व जीवोंकी हिंसा नवकोटी विशुद्ध प्रमादके योगोंसें सर्व हिंसाका त्याग है, इस वास्ते साधुकों तो वीस विश्वा दया है, अरु गृहस्थसें तो सवा विश्वा दया पल सक्की है, तिसका स्वरूप लिखते है

॥ गाथा छद ॥ जीवा सुहुमा थूला, सकप्पा आरजा नवे डुविहा ॥ सवराह निरवराहा, साविरका चेव निरविरका ॥ १ ॥ अर्थ —जगत्में जीव दो प्रकारके हैं एक थावर, दुसरा त्रस, तिनमें थावरोंके दो भेद हैं एक सूक्ष्म, दूसरा बादर, तिनोंमें सूक्ष्मजीवोंकी तो हिंसा होतीही नहीं है, क्यों की अति सूक्ष्म जीवोंके शरीरकों बाह्य शस्त्रका घाव नहीं लगता है, परतु इहा तो सूक्ष्म शब्द, थावर जीव, पृथ्वी, पाणी, अग्नि, पवन, वनस्पतिरूप जो बादर पांच थावर हैं, तिनका वाचक है, अरु स्थूलजीव सो द्वींद्रिय त्रींद्रिय, चतुरिंद्रिय, पंचिद्रिय, जानना, इन दोनो भेदोंमें सर्व जीव आ गये, तिन सर्वकी त्रिकरणशुद्धसें साधु, रक्षा करता है, तिस वास्ते साधुके वीस विश्वा दया हैं, अरु श्रावकसें तो पांच थावरकी दया पलती

॥ अथ अष्टम परिछेद प्रारंभ ॥

इस परिछेदमें चारित्रका स्वरूप लिखते हैं चारित्र धर्मके दो भेद हैं एक सर्वचारित्र, एक देशचारित्र, उसमें सर्वचारित्र धर्म तो साधुमें होता है, तिसका स्वरूप गुरुतत्त्व परिछेदमें लिख आये है तहांसें जान लेनां अरु देश चारित्रके बारह भेद हैं, सो गृहस्थका धर्म है, सो बारह व्रतोंका किंचित् स्वरूप लिखते हैं तिनमें प्रथम स्थूलप्राणातिपात व्रतका स्वरूप लिखते है

१ प्रथम प्राणातिपातविरमणव्रतके दो भेद हैं एक द्रव्यप्राणातिपात, दूसरा भावप्राणातिपात व्रत, तिनमें द्रव्य पाणातिपात व्रत ऐसें है, कि पर जीवोंकों अपणी आत्मा समान जान करके तिनके दश द्रव्यप्राणोंकी रक्षा करे, सो द्रव्यप्राणातिपात विरमणव्रत कहियें ये व्यवहार दयारूप है, तथा दूसरा भावप्राणातिपात, सो अपणा जीव कर्मके वश पडा हूआ दुःख पाता है, अपणे जे भाव, प्राण, ज्ञान, दर्शन, चारित्रादिक, तिनका मिथ्यात्व कषायादिक अशुद्ध प्रवर्त्तनसें प्रतिक्षण घात हो रही है, सो अपणे जीवकों कर्मशत्रुसें छुडाने वास्ते उपाय करणां, सो उपाय यह है, क आत्मरमणता करे, परभाव रमणता त्यागे, शुद्धोपयोगमें प्रवर्त्ते, कर्मके उदयमें अव्यापक रहे, एक स्वभावमग्नता, यही समस्त कर्मशत्रुके उछेद करनेकों अमोघ शस्त्र हैं एतावता सकल परभाव इष्टता दूर करी, स्वरूप सन्मुख उपयोग रखे, तिसका नाम भावप्राणातिपात विरमणव्रत कहियें, इसीका नाम भाव दयाहै इहां स्थूल नाम मोटा दृष्टिगोचर हाले, चाले, ऐसा जो त्रस जीव तिसकों संकल्प करकें न हणूगा

इहा हिंसा चार प्रकारकी है एक आकुट्टी, सो निषेध वस्तुकों उत्साहसे करे, जैसें संपूर्ण फलका भडथा करनां, श्रावककों निषेध है, अरु जिसने जितने फल खानेमें रखे हैं, उन फलोंमेंसूभी किसी फलका भडथा नहीं करनां, अरु जो मनमें उत्साह धरके भडथा करे, तो आकुट्टी हिंसा होवे दूसरी दर्प्पहिंसा, सो चित्तके उछरंगसे (उन्मत्तपणेसें) मनमें गर्व धरकें दौड करे, जैसे गाडी घोडा प्रमुख दोडते है, यह आकुट्टी द

नोंके दूर करणे वास्ते कीडायोंकी जगामें औषधि लगानी पडती है, अरु इन जीवोने श्रावकका कुछ अपराधनी नहीं करा है, क्योंकि वो बिचारे अपने कर्मोंके वशसें ऐसी योनिमें उत्पन्न हूयें हैं, कुछ श्रावकका बूरा करनेकी नावनासें उत्पन्न नहीं हूवे है, तो उनकी हिंसानी श्रावकसें त्या गी नहीं जाती है, इस वास्ते फेर अर्ध जाता रहा शेष सवा विश्वाकी द या रह गइ, यह सवा विश्वा दयानी शुद्ध श्रावक होवे, सो पाल सक्ता है, एतावता सकल्पसें निरपराध त्रस जीवोंकों कारण विना हणुं नहीं, यह प्रतिज्ञा जहां लगि अपणी शक्ति रहे, तहां लगि पाले, निर्ध्वंसपणा न करे, सदा मनमें यह नावना रखे, कि मत मेरेसें कोई जीव मर जाय ?

तथा घरमें आरंन करतेनी यत्न करे, तथा लकडी जलाने वास्ते लेवे, तब सडी हूई न लेवे, परंतु आगेंकों जिसमें जीव न पडे, ऐसी पक्की, सू की लकडी लेवे, और रसोईकी वखत लकडीकों जटका कर जीव रहित करके जलावे, तथा घी, तेल, मीठ प्रमुख रस नरी वस्तुके वासणका मुख बांध कर यत्नसें राखे, उघाडा न रखे, तथा चूलेके उपर अरु पाणीके स्थान उपर चंद्रुवा अर्थात् छत, उपर कपडा ताणे, तथा खानेकों जो अ न्न ल्यावे, सो नींजा हूआ न ल्यावे, शुद्ध नवा अन्न खानेकों ल्यावे, कदापि एक वर्षके उपरांतका अन्न ल्यावे, तो जिसमें जीव न पडे होवे, सो ल्यावे, तथा पाणीके छानने वास्ते बहुत गाढा दृढ वस्त्र रखे, एक प्रहर पीछें पाणी कों फेर छान लेवे, जो जीव निकले, सो जीव जिस कूवेका पाणी होवे, उसी में गल देवे, तथा वर्षा ऋतुमें बहुत जीवोंकी उत्पत्ति हो जाती है, तिस वास्ते गाडी, रथकी अस्वारी न करे, क्योंकि जहां चक्र फिरता है, तहां असंख्य जीवोंका विध्वंस होता है, हरिकाय, बहुबीजा फल, त्रस स युक्त फल, न खावे, तथा खाटमें माकड प्रमुख जीव पड जाते हैं, इस वास्ते धूपमें न रखे, दूसरी खाट बदल लेवे, तथा सड्या हूवा अन्न धू पमें न रखे, जूठा पाणी, अन्नके संसर्गवाला मोरीमें न गेरे, क्योंकि मोरीमें बहुत जीव उत्पन्न हो जाते हैं, अरु मोरीके सड जानेसें घरमें बिमारी हो जाती है, तथा चैत्रवदि एकमसें ले कर पत्तोंवाला शाक, आठ मास तक न खावे, क्योंकि पत्रशाकमें बहूत त्रस जीव उत्पन्न हो जाते हैं, एक तो त्रस जीवोंकी हिंसा होती है, अरु दूसरा उन त्रस जी

नहीं है, सचित्त आहारादि करणसें अवश्य हिंसा होती है इस वास्ते दश विश्वा दया दूर हो गई, शेष दश विश्वा रह गइ, एतावता एक त्रस जीवकी दया रहे, अस त्रस जीवकेजी दो जेद हैं, एक सकल्पसें हननां, दूसरा आरंजसें हननां, तिनमें आरंज हिंसाका श्रावककों त्याग नहीं है, किंतु संकल्प हिंसाका त्याग है, अरु आरंज हिंसामें तो यत्न है, परंतु त्याग नहीं है, क्योंकी आरंज हिंसा तो श्रावकसें होती है, इस वास्ते दश विश्वामेंसू पांच विश्वा फेर जाता रह्या, एतावता संकल्प करकें त्रस जीवकी हिंसाका त्याग है, फेर इसकेजी दो जेद हैं, एक सापराधी है, दूसरा निरपराधी है, तिनमें जो निरपराधी जीव हैं, उसकों नहीं हननां, अरु सापराधी जीवकू हननेकी जयणा है, जिस वास्ते सापराधी जीवकी दया सदा सर्वथा श्रावकसे नहीं पलती है, क्योंकि घरमेंसें चोर चोरी करकें वस्तु लीये जाता है, सो बिना मारे कूटे छोडता नहिं, तथा श्रावककी स्त्रीसें कोइ अन्य पुरुष अनाचार सेवता देखनेमें आवे, तिसकों मारणां पडे, तथा कोइ श्रावक, राजा है, तथा राजाका आदेशसेंती युद्ध करनेकों जावे, तब प्रथम तो श्रावक शस्त्र चलावे नहीं, परंतु जब शत्रु शस्त्र चलावे मारणेकों आवे, तब तिसकों मारणां पडे, तथा सिंहादि जनावर खानेकों आवे, तब उसकों मारणां पडे, तब सकल्पसेंजी हिंसाका त्याग नहीं इस वास्ते पांच विश्वामेंसूजी अर्द्ध जाते रहे, पीछे अढाइ विश्वा दया रह गइ, मात्र निरपराधी त्रस जीव दृष्टिगोचर आवे, तिसकों न मारु ? यह नियम रहा, इसकेजी दो जेद हैं एक सापेक्ष, दूसरा निरपेक्ष, इनमेंजी सापेक्ष निरपराधी जीवकी श्रावकसें दया नहीं पलती है, क्योंकि श्रावक जब आप घोडा, घोडी, बैल, रथ, गाडी प्रमुखकी अस्वारी करकें घोडादिककों हांकता है, तव घोडे आदिककों चावकादि मारता है, यहां घोडे तथा बैलादिकोंनें कुछ इसका अपराध नहीं करा है, उसकी पीठ ऊपर तो चढ रहा है,अरु यह जानता नहीं कि इस विचारे जीवकी चलनेकी शक्ति है, कि नहीं है ? जब वे जीव हलवे चलते हे, तथा नहीं चलते हें, तब अज्ञानके उदयसें उनकों गालीयां देता है, मारताजी है, यह निरपराधीकोंजी दुःख देता है, तथा अपणे शरीरमें, तथा आपणा पुत्र, पुत्री, न्याती, गोतीके मस्तकमें तथा कर्णादि अवयवमें तथा अपणे मुखके दांतमें कीडा पडे, ति

अरु कदापि अग्निका नय हूआ तो जलदि छूट नहीं सकते है, तब मर नी जाते हैं, इस वास्ते कठिन बधनजी अतिचार है, इस हेतुसें जनावर कों ढीले बधनसें बांधनां चाहियें अरु कोइ गुनेगार मनुष्य होवे, उस कोंजी निर्दय हो कर गाढा वंध न बांधना चाहियें, यह दूसरा अतिचार है

३ तीसरा छविछेद अतिचार है सो बैल प्रमुखका कान, नाक, छिदा वे, नथ गेरे, खस्सी करे, यह तीसरा अतिचार है

४ चउथा अतिजारारोपण अतिचार है, सो बैल प्रमुखके उपर जितना जार लादनेकी रीती है, तिस्सें अधिक जार लादे, तब अतिजारा रोपण अतिचार होता है, श्रावकको तो सदा जिस बैल, रासज, गाडी प्रमुखमें जार लादते होवे, उस्सेंजी पांच सेर, दश सेर, जार कम लादनां चाहिये, तो व्रत शुद्ध रहे, तिसमेंजी जे कर कोइ जानवरकी चल नेकी शक्ति कम होवे, तब विवेकी होवे, सो तिस जारकोंजी थोडा कर देवें, अरु जानवर दुर्बल होवे, तो तिसकी घास दाणेकी खबर लेवे, पर तु मनमें ऐसा विचार न करे कि, सर्व लोक जितना जार लादते हैं, तिन के बराबर मैंजी लादता हू, यह तो व्यवहार शुद्ध है ऐसा न बिचारे, अधिक बोझ होवे, तो और जाडा कर लेवे, श्रावकोंका यह व्यवहार है

५ पाचमा अतिचार जात पाणीका व्यवछेद करनां,सो जो बलद घोडेके खाने योग्य होवे, सो बद कर देवे, अथवा उसमेंसू कछुक काढ लेवे, अरु खानेका समय लघा कर पीछें खानेकों देवे, तो अतिचार लगे, तथा किसीकी आजीविका नोकरी बद करे, वोजी इसी अतिचारमें है श्रावक तो दासी, दास, कुटुव, चौपाये, बैलादि, इन सर्वके खाने पीनेकी खबर ले कें पीछे आप जोजन करे अरु उपलक्षणसें हिंसाकारी मत्र, तंत्रादि किसीकों करे, वेजी अतिचार जानने यह पांच अतिचार, श्रावक जान तो लेवे, परतु करे नहीं यहा बारह व्रतोंके सर्व अतिचार जग होने के सजवासजवकी विशेष चर्चा देखनी होवे, तव धर्मरत्न प्रकरणकी टीका श्रीदेवेंद्रसूरिकृत है, सो देख लेनी, इहां तो नि केवल अतिचारही मै लिखू गा ॥ इति श्रावक प्रथम व्रत सपूर्ण ॥

अथ दूसरा स्थूलमृषावाद विरमणव्रतका स्वरूप लिखते है स्थूल नाम है, मोटेका उस मोटे झूठका विरमण (त्याग) करना, क्योकि झूठ

वोंके खानेसें अनेक रोग (बिमारीयां) उत्पन्न हो जातीयां हैं, अरु शीत कालमें एक मास तथा उष्णकालमें बीस दिन, तथा वर्षा ऋतुमें पंदरह दिनके उपरांतकी बनी हुइ मिठाई (पकान्न) न खावे, क्योंकि उसमें त्रस स्थावर जीव उत्पन्न होते हैं, अरु खानेवालेकों रोगोत्पत्तिनी हो जाती है, तथा वासी अन्न, रोटी प्रमुख न खावे, क्योंकि इनमें जीवोत्पत्ति होती है अरु रोगनी हो जाता है, बुद्धि मंद हो जाती है, तथा घरमें सावरणी अर्थात् बुहारी, कोमल शण प्रमुखकी रक्खे, जिस्सें जीव न मरे, तथा स्नान, बहुत जलसें न करे, अरु रेतली नूमिकामें स्नान करे, तथा मोटी परातमें बैठकें स्नान करे, अरु स्नानका पाणी मैदानमें थोडा थोडा करकें गेर देवे, मोरी उपर बैठके स्नान न करे, तथा जहां पर्य्यंत थोडे पापवाला व्यापार मिले, तहां लग महापापकारी व्यापार नोकरी आदिक न करे, तथा किसीका वृक्ष तोडे नहीं, घरमें जूठे अन्नका पाणी दो घडी उपरांत न रक्खे, क्योंकि उसमें जीव उत्पन्न हो जाते हैं, तथा जो वस्तु उठावे, तथा रक्खे, तब पहिलां उस जगाकों नेत्रोंसें देख लेवे, पूज लेवे, पीछेसें वस्तु रक्खे, मोटी मोरीमें जल गेरे नहीं, तथा दीवा बत्ती जलावे, तो फानसादि यत्नसें जीवरक्षा करे, तथा जिस पात्रसें पाणी पीवे, वो पात्र, फेर जलमें जूठा न डबोवे, क्योंकि मुखकी लाल लगनेंसें जीव उत्पन्न होते हैं, अरु बहुतोंकी जूठ खाने पीनेसें बुद्धि संक्रमण हो जाती है, अरु केइक रोग ऐसें हैं कि जिस रोगीका जूठा खावे, पीवे, उस रोगीका रोग, खाने पीनेवालेकों लग जाता है, सो रोग यह है कि कुष्ट, क्षय, रेजस, शीतला वगरे इस वास्ते वस्तु जूठी न करनी, अरु बहुतोंके साथ एकठा खावे नहीं, अरु मटकेसें पाणी काढने वास्ते दम्नीदार काठका चट्टू रक्खे इत्यादि शुद्ध व्यवहारमें प्रवर्त्ते, तो श्रावकके दया,सवा विश्वा होवे, इसी रीतीसें प्रथम व्रत श्रावकके शुद्ध है, इस व्रतके पांच अतिचार हैं, अर्थात् पांच कलंक हैं,तिनको वर्जे,सो लिखते है

१ प्रथम वधअतिचार सो क्रोधके उदयसें, अरु बलके अनिमानसें, निर्दय हो कर गाय,घोडा,प्रमुखकों कूटे,मारके चलावे,सो प्रथम अतिचार.

२ दूसरा वधअतिचार सो गाय, बलद, बछडा प्रमुख जीवोंकों कठिन जबरा बंधनसें बांधे, वो जीव कठिन बंधनसें अति दुःख पाते है,

अरु कदापि अग्निका जय हूआ तो जलदि बूट नहीं सकते है, तब मर जी जाते है, इस वास्ते कठिन बधनजी अतिचार है, इस हेतुसें जनावर कों ढीले बधनसें बांधना चाहियें अरु कोइ गुनेगार मनुष्य होवे, उस कोंजी निर्दय हो कर गाढा वंध न बांधना चाहियें, यह दूसरा अतिचार है

३ तीसरा छविछेद अतिचार है सो वैल प्रमुखका कान, नाक, छिदा वे, नथ गेरे, खस्सी करे, यह तीसरा अतिचार है

४ चउथा अतिजारारोपण अतिचार है, सो वैल प्रमुखके उपर जितना जार लादनेकी रीती है, तिस्सें अधिक जार लादे, तब अतिजारा रोपण अतिचार होता है, श्रावकको तो सदा जिस वैल, रासज, गाडी प्रमुखमें जार लादते होवे, उस्सेंजी पांच सेर, दश सेर, जार कम लादना चाहिये, तो व्रत शुद्ध रहे, तिसमेंजी जे कर कोइ जानवरकी चल नेकी शक्ति कम होवे, तब विवेकी होवे, सो तिस जारकोंजी थोडा कर देवें, अरु जानवर डुर्वल होवे, तो तिसकी घास दाणेकी खबर लेवे, परं तु मनमें ऐसा विचार न करे कि, सर्व लोक जितना जार लादते हैं, तिन के बराबर मैंजी लादता हू, यह तो व्यवहार शुद्ध है ऐसा न विचारे, अधिक बोझ होवे, तो और जाडा कर लेवे, श्रावकोंका यह व्यवहार है

५ पांचमा अतिचार जात पाणीका व्यवछेद करना, सो जो बलद घोडेके खाने योग्य होवे, सो बंद कर देवे, अथवा उसमेंसूं कछुक काढ लेवे, अरु खानेका समय लघा कर पीछें खानेकों देवे, तो अतिचार लगे, तथा किसीकी आजीविका नौकरी बंद करे, वोजी इसी अतिचारमें है श्रावक तो दासी, दास, कुटुंब, चौपाये, वैलादि, इन सर्वके खाने पीनेकी खबर ले कें पीछे आप जोजन करे अरु उपलक्षणसें हिंसाकारी मंत्र, तंत्रादि किसीकों करे, वेजी अतिचार जानने यह पांच अतिचार, श्रावक जान तो लेवे, परंतु करे नहीं यहा बारह व्रतोंके सर्व अतिचार जग होने के सजवासजवकी विशेष चर्चा देखनी होवे, तब धर्मरत्न प्रकरणकी टीका श्रीछेवेंद्रसूरिकृत है, सो देख लेनी, इहां तो नि केवल अतिचारही मैं लिखूं गा ॥ इति श्रावक प्रथम व्रत संपूर्ण ॥

अथ दूसरा स्थूलमृषावाद विरमणव्रतका स्वरूप लिखते है स्थूल नाम है, मोटेका उस मोटे झूठका विरमण (त्याग) करना, क्योंकि झूठ

वोंके खानेसें अनेक रोग (बिमारीयां) उत्पन्न हो जातीयां है, अरु शीत कालमें एक मास तथा उष्णकालमें वीस दिन, तथा वर्षा ऋतुमें पंदरह दिनके उपरातकी बनी हुइ मिठाई (पक्वान्न) न खावे, क्योंकि उसमें त्रस स्थावर जीव उत्पन्न होते हैं, अरु खानेवालेकों रोगोत्पत्तिभी हो जाती है, तथा वासी अन्न, रोटी प्रमुख न खावे, क्योंकि इनमें जीवोत्पत्ति होती है अरु रोगभी हो जाता है, बुद्धि मंद हो जाती है, तथा घरमें सावरणी अर्थात् बुहारी, कोमल शण प्रमुखकी रक्खे, जिस्सें जीव न मरे, तथा स्नान, बहुत जलसें न करे, अरु रेतली भूमिकामें स्नान करे, तथा मोटी परातमें बैठकें स्नान करे, अरु स्नानका पाणी मैदानमें थोडा थोडा करकें गेर देवे, मोरी उपर बैठके स्नान न करे, तथा जहां पर्य्यंत थोडे पापवाला व्यापार मिले, तहां लग महापापकारी व्यापार नौकरी आदिक न करे, तथा किसीका वृक्ष तोडे नहीं, घरमें जूठे अन्नका पाणी दो घडी उपरांत न रक्खे, क्योंकि उसमें जीव उत्पन्न हो जाते हैं, तथा जो वस्तु उठावे, तथा रक्खे, तब पहिलां उस जगाकों नेत्रोंसें देख लेवे, पूज लेवे, पीछेसें वस्तु रक्खे, मोटी मोरीमें जल गेरे नहीं, तथा दीवा बत्ती जलावे, तो फानसादि यत्नसें जीवरक्षा करे, तथा जिस पात्रसें पाणी पीवे, वो पात्र, फेर जलमें जूठा न डबोवे, क्योंकि मुखकी लाला लगनेंसें जीव उत्पन्न होते हैं, अरु बहुतोंकी जूठ खाने पीनेसें बुद्धि संक्रमण हो जाती है, अरु केइक रोग ऐसें हैं कि जिस रोगीका जूठा खावे, पीवे, उस रोगीका रोग, खाने पीनेवालेकों लग जाता है, सो रोग यह है कि कुष्ट, क्षय, रेजस, शीतला वगरे इस वास्ते वस्तु जूठी न करनी, अरु बहुतोंके साथ एकठा खावे नहीं, अरु मटकेसें पाणी काढने वास्ते डमीदार काठका चट्टू रक्खे इत्यादि शुद्ध व्यवहारमें प्रवर्त्ते, तो श्रावकके दया,सवा विश्वा होवे, इसी रीतीसें प्रथम व्रत श्रावकके शुद्ध है, इस व्रतके पांच अतिचार हैं, अर्थात् पांच कलंक हैं,तिनकों वर्जे,सो लिखते हैं

१ प्रथम वधअतिचार सो क्रोधके उदयसे, अरु वलके अभिमानसे, निर्दय हो कर गाय,घोडा,प्रमुखको कूटे,मारके चलावे,सो प्रथम अतिचार

२ दूसरा बंधअतिचार सो गाय, बलद, वछडा प्रमुख जीवोंकों कठिन जबरा बंधनसे बांधे, वा जीव कठिन बंधनसे अति दुःख पाते हैं,

के त्यागी जीव तो षट् दर्शनमेंभी हो सक्ते है, परंतु भावमृषावादका त्यागी तो एक श्रीजिनेंद्रदेवके मतमेंही मिलेगा, जो जीव श्रद्धारुचि शुद्ध धारेगा, सोइ होवेगा अब इस मृषावादके पांच मोटे भेद हैं, सो श्रावककों अवश्य वर्जने चाहियें, सो कहते हैं

१ प्रथम कन्यालीकझूठ, सो अपणे मिलापीकी कन्या है, उसकी सगाइ होने लगी होवे, तब कन्याके लेने वाले पूछे कि यह कन्या कैसी है? तब वो मिलापीकी प्रीतिसें उस कन्यामें जो दूषण होवे, सो छिपावे, गुण न होवे, तोभी अधिक गुणवाली कह देवे, कि यह कन्या निर्दोष है, ऐसी कुलवान्, लक्षणवान्, साक्षात् देवांगना समान तुमकों मिलनी मुशकिल है, ऐसा कह देवे, अरु जे कर मिलापीके साथ द्वेष होवे, तदा वो कन्या जो निर्दोष लक्षणवती होवे, तोभी कहे कि इस कन्यामें अछे लक्षण नहीं है, विडालनेत्री है, इसके साथ जो संबध करेगा, वो पश्चात्ताप करेगा, ऐसे अणहोये दूषण बोल देवे, यह कन्यालीक झूठ है प्रथम तो व्रतधारी श्रावक किसीकी सगाइ झगडेमें पडे नहीं, अरु जे कर आपणा संबधी मित्रादिक होवे वो पूछे, तब यथार्थ कहे, कि भाइ! तुम अपणा निश्चय कर लो, क्योंकि जन्मपर्यंतका संबध है, ऐसे कहे, परंतु झूठ न बोले यह कन्यालीकमें उपलक्षणसेंती सर्व दो पगवालेका झूठ न बोले

२ दूसरा गवालीक झूठ सो सर्व चौपद जो हाथी, घोडा, बलद, गाय, भैंस, प्रमुख संबधी झूठ न बोले

३ तीसरा भूम्यालीक झूठ सो दूसरेकी धरतीको अपनी कहे, तथा औरकी भूमिको औरकी कहे, तथा घर, हवेली, वाडी, बाग, (बगीचा) वृक्षादिक, संबधी तथा सर्व परीग्रह संबंधीभी झूठ न बोले.

४ चौथा थापणमोसाका झूठ है कोइ पुरुष श्रावकको प्रतीत वाला जान कर, उसके पास विना साक्षी तथा लिखत करे विना कोइ वस्तु रख गया है, फिर वो मांगनें आवे, तब नामुकर जावे, कहे कि मैं तुमकों जानताही नहीं, तुम कौन हो? ऐसा झूठ बोलके उसकी वस्तु रख लेवे, यहभी श्रावकनें नहीं करनां

५ पांचमा झूठी साक्षी भरनी सो दो जणे आपसमें झगडते है, तिसमें झूठे पासों धन ले कर अथवा उसके मुहलाह जैसें झूठी गवाही देनी,

बोलनेसें जगत्में उसकी अप्रतीति हो जाती हैं, अपयश होता है, धर्मकी निंदा होती है, तथा अपणे मतलब वास्ते जो कम वेस करनां इसका जो त्याग, सो मृषावादविरमणव्रत कहते हैं. तिस मृषावादके दो भेद हैं, एक द्रव्यमृषावाद, दूसरा भावमृषावाद, तिनमें जो जान कर तथा अजान पणेसें फूठ बोले, सो द्रव्यमृषावाद है, तथा सर्व परभाव वस्तुकों अर्थात् पुद्गलादि जड वस्तुकों आत्मत्व बुद्धि करके अपणा कहे, तथा राग, द्वेष, कृष्णादि लेश्यासें आगमविरुद्ध बोले, शास्त्रका सचा अर्थ कुयुक्तिसें नष्ट करे, उत्सूत्र बोले, उसकों भावमृषावाद कहते हैं

यह व्रत सर्वव्रतोमें मोटा है, इसके पालनेमें बहुत शुद्ध उपयोग अरु हुस्यारी चाहियें, क्यों कि प्रथमव्रतमें तो जीव मात्रके जाननेसें दया पल सक्ती है अरु दूसरोंकी वस्तुकों बिना दीये न लेनेसें अदत्तविरमण तीसरा व्रत पल जाता है, तथा स्त्री मात्रका संग त्यागनेसें चौथा व्रत पलता है, तथा नवविध परिग्रहके त्यागनेसें परिग्रहव्रतभी पलजाता है, इसी तरें एकेक द्रव्यके जाननेसें यह चारो व्रत पाले जाते हैं, अरु मृषावाद विरमणव्रत तो जहां लगि षट्द्रव्यकी गुणपर्यायसें तथा द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी अच्छी तरेंसे पिछाण न होवे, सम्मति प्रमुख द्रव्यानुयोगके शास्त्र न पढे, बहुत निपुन ज्ञानवान् न होवे, तहां तलक पालनां कठिन है, क्योंकि एक पर्यायमात्रभी विरुद्ध भाषण करनेसें यह व्रत भंग हो जाता है, इसी वास्तेही साधुओंको बहुत बोलणा शास्त्रमें निषेध करा है, अरु जे पूर्वोक्त चारो महाव्रतोमेंसू एक महाव्रत जेकर भंग हो जावे, तब तो चारित्र भंग होवे, अरु नहींभी भंग होवे, क्योंकि जे कर एकही कुशील सेवे, तो सर्वथा चारित्र भंग होवे,शेष व्रतो खंडनसें देशभंग होवे, परंतु सर्वथा भंग नहीं होवे, यह व्यवहार भाष्यमें कहा है परंतु उस का ज्ञान, दर्शन, भंग नहीं होवे, अरु जब मृषावादविरमणव्रत भंग होवे, तब तो ज्ञान, दर्शन, अरु चारित्र, यह तीनोही जडामूलसें जाते रहते है अरु मर करके दुर्गतिमें जाता है, अनंत संसारी दुर्लभ बोधी हो जाता है, इस वास्ते जे कर यह व्रत पालनां होवे, तो षट्द्रव्य के गुण पर्याय जाननेमें अति उद्यम करे, जे कर बुद्धिकी मंदता होवे, तब गीतार्थके कहने प्रमाण श्रद्धा प्ररूपणा करे, क्योंकि द्रव्यमृषावाद

हो जावे, तो राजदंम, अपयश, अप्रतीति होवे, इस वास्ते श्रावक अद त्तादानका त्याग करे इस अदत्तादान व्रतके दो नेद हैं सो कहते हैं

प्रथम इव्य अदत्तादानविरमण व्रत सो पूर्वोक्त प्रकारसें दूसरायोंकी वस्तु पडी विसरी लेवे नहीं, सो इव्य अदत्तादान विरमणव्रत जाननां

दूसरा नावअदत्तादानविरमण व्रत सो पर जो पुजल इव्य, तिसकी जो रचना वर्ण, गध, रस, स्पर्शादि रूप, तेवीस विषय, तथा आठ कर्म की वर्गणा, यह सर्व पराइ वस्तु हैं,सो वस्तु तत्त्वज्ञानमें जीवकों अग्राह्य है, तिसकी जो उदय नाव करके वांछा करणी, सो नाव चोरी है तिस कों जिनागमके सुननेसें त्यागनां, पुजलानंदी पणा मिटाना, सो नाव अ दत्तादानविरमणव्रत कहीयें जो जो कर्मप्रकृतिका बध मिटा है, सो नाव अदत्तविरमणव्रत कहियें सामान्य प्रकारसें अदत्तके चार नेद हैं

प्रथम किसीकी वस्तु, विना दीयें ले लेनी, इसका नाम स्वामीअदत्त है दूसरा सचित्त वस्तु अर्थात् जीववाली वस्तु फूल, फल, बीज, गुछा, पत्र, कंद, मूलादिक, तथा बकरा, गाय, सुअरादिक, इनकों तोडे, छेदे, नेदे, काटे, सो जीवअदत्त कहियें क्योंकि फूलादि जीवोने अपणे शरीरके छेदने नेदनेकी आज्ञा नहिं दीनी है, जो तुम हमकों छेदो, नेदो, इस वास्ते इसका नाम जीव अदत्त है तीसरा जो वस्तु, तीर्थंकर अर्हंतनें निषेध करी है, तिसका जो ग्रहण करणां, जैसे साधुकों अशुद्ध आहार लेनेका निषेध है, अरु श्रावककों अनक्ष्य वस्तु ग्रहण करणेका निषेध है, सो इन पूर्वोक्तकों ग्रहण करे, तो इसका नाम तीर्थंकर अदत्त है चौथा गुरु अदत्त सो जैसें कोइ साधु शास्त्रोक्त निर्दोष आहार व्यवहार शुद्ध ल्यावे, पीछें उस आहारकों जो गुरुकी आज्ञा विना खावे, सो गुरु अदत्त है

यह चारो अदत्त, संपूर्ण तो जैनका यतिही त्याग सक्ता है, गृहस्थसे तो एक स्वामी अदत्तही त्यागा जाता है, इस वास्ते इसीकी यहां मुख्यता है, तिस वास्ते पराइ वस्तु पूर्वोक्त प्रकारसें लेनी नहीं, जे कर ले लेवे, तो चोर नाम पडे, राजदंम होवे, अपयश, अप्रतीति होवे, इस वास्ते न लेनी चाहियें अरु जिस वस्तुकी बहुत मनाइ नहीं है, लेनेसें चोर नाम नहीं पडता है, तिसकी जयणा करे, अरु किसीकी गिरी पडी वस्तु मिल जावे, पीछें जे कर जान जावे कि यह वस्तु अमुककी है, तब तो उसकों

यहनी काम श्रावकने नहीं करनां, इस व्रतके पांच अतिचार श्रावक वर्जे.

१ प्रथम सहसाभ्याख्यान अतिचार सो विना विचारे किसीकों कलंक देनां कि तू व्यभिचारी है, फूग है, चोर है, इत्यादि कहनां, जे कर श्रावक तो किसीका प्रगट कोइ अवगुण देखे, तोभी अपणे मुखसें न कहे, तो फेर कलंक देणां, वो तो महापाप है, सो कैसें करे ?

२ दूसरा रहसाभ्याख्यान अतिचार है सो केइ पुरुष एकांत बैठ कें कुछ मता करते हैं, उनकों देखकें कहे, कि तुम राजविरुद्ध मता करते हो, ऐसें कह कर उनकी भंडी करे, राजदंड दिलावे, ए दूसरा अतिचार है

३ तीसरा स्वदार मंत्रभेद अतिचार है, सो अपणी स्त्रीने कोइ ग्रनी बात अपणे पतिसें कही है,वो बात लोकोमें प्रगट करे, उपलक्षणसें भाइ प्रमुखकी कही बात प्रगट करे, क्योंकि लज्जनीय बातके प्रगट होनेंसें स्त्री आदिक कूपा दिकमें डूब मरती है

४ चौथा मृषाउपदेश अतिचार है सो दूरासयोंकों झूठी वस्तुके करनेका उपदेश करे, तथा विषय सेवनेंके चौरासी आसन सिखावे, तथा दूसरा योंकों दुःखमें पडनेका उपदेश करे, तथा वीर्यपुष्ट होनेकी औषधि बत लावे, जिस्सें वो बहुत विषय सेवे, जिस्सें विषय कषाय उत्पन्न होवे,ऐसा उपदेश करे यह सर्व मृषाउपदेशनामा चौथा अतिचार है

५ पाचमा कूटलेखकरण अतिचार है सो किसीके नामका झूठा पत्र वही बना लेनां, अगले अंकको तोडके और बना देनां, तथा अक्षर खुरच गेरनां, जूठी मोहर छाप बना लेनी, इत्यादिक कूट लेख अतिचार हें, यह पांच अतिचार अरु पांच प्रकारका पूर्वोक्त झूठ, सो नरकादि गति के कारण जान कर श्रावक वर्जे ॥ इति दूसरा व्रत

३ अथ तीसरा स्थूल अदत्तादानविरमणव्रत लिखते हें प्रथम मोटी चोरी भींत फोडी कुंजल देकर अथवा एकलेकों, रस्तेमें छल बल करकें ठग लेनां, जबर दस्तिसें किसीकी वस्तु खोस लेनी, नजर बचाके किसीकी वस्तु उठा लेनी, अरु कोइ वस्तु धर गया है, जब वो मांगने आवे तब, नामुकर जावे, तथा हीरा, मोती, पन्ना प्रमुख झूठे सच्चेका अदल बदल कर देवे, इत्यादि अदत्तादान अर्थात् चोरीका स्वरूप है इसके करनेसें परलोकमें खोटी नरकादि गति प्राप्त होती है अरु इस लोकमेंभी प्रगट

क्यो कि जो चोरीकी वस्तु जानके लेता है, वो लेने वालाज्ञी चोर है, जे कर जैनमतके शास्त्रोमें सात प्रकारके चोर लिखे हैं ॥ यदाह ॥ चौरश्चौरापको मत्री, नेदज्ञ क्राणकक्रयी ॥ अन्नद स्थानदश्चैव, चौर सप्तविध स्मृत ॥ १ ॥ यह प्रथम अतिचार है

२ दूसरा प्रयोगअतिचार सो चोरी करने वलोकों प्रेरणा करणी कि – अरे! तुम चुप चाप निर्व्यापार आज कल क्यो बेठ रहे हो ? जे कर तुमारे पास खरची नहीं होवे, तो मैं देता हूं, अरु तुमारी ल्याइ हुइ वस्तु मै बेच देऊगा, तुम चोरी करणे वास्ते जाउ इत्यादि वचनो करकें चोरोकों प्रेरणा करणी, यह दूसरा अतिचार है

३ तीसरा तत्प्रतिरूपकव्यवहार अतिचार सो सरस वस्तुमें नीरस वस्तु मिला करकें वेचे, जैसे केशरमें कसुंनादि मिला करकें वेचे, घीमें ठाठादि, हिंगमें गुदादि, खोटी कस्तूरी खरी करकें वेचे, अफयूनमें खोट मिलाने, पुराणा वस्त्र रंगा कर नवेके जाव वेचे, रूइको पाणीसें जिजो कर वेचे, दूधमें पाणी मिलायकें वेचे, इत्यादि करे, तो तीसरा अतिचार लगे

४ चौथा राजविरुद्धगमन अतिचार है सो अपणे गामके वा देशके राजाने आज्ञा दीनी है, जो फलाणे गाममें जाणां नहीं इत्यादि जो राजाकी आज्ञा है, उसका उल्लघन करनां, वैरी राजाके देशमें अपने राजाके हुकुम विना जानां, सो चौथा अतिचार है

५ पांचमा खोटा तोला, मापा, करणेका अतिचार है सो कूट तोला, मापा, करणा, कमती तोलसें तो देणां, अरु अधिक तोलसें ले लेणां, यह पांचमा अतिचार है यह पांचो अतिचारको वर्जे ॥इति तृतीयव्रतं सपूर्ण॥

४ चौथा मैथुनसेवनेका त्याग करना तिसका नाम मैथुनत्याग व्रत कहते हैं तिस मैथुनके दो नेद हैं, एक द्रव्यमैथुनत्याग,दूसरा नाव मैथुनत्याग, उसमें द्रव्यमैथुन तो परस्त्री तथा परपुरुषके साथ सगम करनां, सो पुरुष स्त्रीका त्याग करे, अरु स्त्री पुरुषका त्याग करे, रतिक्रीडा कामसेवनका त्याग करे तिसकों द्रव्यब्रह्मचारी तथा व्यवहारब्रह्मचारी कहियें.

दूसरा नाव मैथुन है सो एक चेतन पुरुषके विषयविलास परपरिणतिरूप, तथा तृष्णा ममता रूप, इत्यादि कुवासना, सो निश्चय परस्त्रीकों मिलनां तिसके साथ लाल पाल कामविलास करनां, सो नावमैथुन जान

दे देवे, जे कर उस वस्तुके स्वामीकों न जाने, अरु अपणा मन दृढ रहे, तो लेवे नहीं, अरु कदाचित् बहुमोली वस्तु होवे, अरु मनदृढ न रहे, तो उस वस्तुकों ले कर अपने पास कितनेक दिन रक्खे, जे कर उसका मालक कोइ जान पडे, तो उसकों दे देवे, जे कर उसका स्वामी कोइ मालम न पडे,तो धर्मखातेमें उस धनको लगा देवे,जेकर लोभ अधिक होवे, तो अर्द्ध धर्ममें लगा देवे तथा अपणी जमीनकूं खोदतां तिसमेंसूं धन निकल आवे, तो रखनेका आगार है, परंतु इसमेंभी अर्द्धा भाग अथवा चौथा हिस्सा धर्ममें लगावे, तथा दूसरेकी जगा मोलसें लीनी होवे, उसमेंसू खोदतां जे कर धन निकल आवे, जे कर मनमें सतोष होवे, तब तो उस मकान वालेकों वो धन दे देवे, जे कर लोभ होवें, तब आधा धर्ममें लगावे, अरु आधा अपने पास रक्खे, तथा कोइ पुरुष अपने पास धन रक्ख कर, पीछेंसें मर गया होवे, अरु उसका कोइ वारस न होवे, तब श्रावक उस धनको भले पंचके आगें जाहर करे, जो कुछ पंच कहे, सो करे, कदापि देश कालकी विषमतासें उस धनकों जाहेर करते कोइ राजसबधी क्लेष उठता मालुम पडे, कोइ दुष्ट राजा लोभके वशसें कहे कि तेरे घरमें औरभी ऐसा धन है इत्यादि होवे, तब तो मौन करकें उस धनको धर्मस्थानमें लगा देवे.

तथा घरकी चोरी सो यह है कि – घरकी सर्व वस्तुओंका मालक माता पिता है, तिनके पूछे विना धन वस्त्रादि लेनेकी जयणा रक्खे, अथवा जिस के साथ प्रेम होवे, तथा जो सबधी होवे, जिसके घरमें जाने आनेका अरु खाने पीनेका व्यवहार होवे, उसके विना पूछे कोइ फलादि वस्तु खानेमें आवे, उसका आगार रक्खे, परतु जे कर उस वस्तुके खानेसें मालककों का मन दुखे, तो न लेवे इसी रीतीसे तीसरा अदत्तव्रत पाले यह व्यवहार शुद्ध अदत्तादान विरमणव्रत है

अरु निश्चयसेंतो तो जितना अवधपरिणाम हुआ है, गुणस्थान की वृद्धि होनेसे वध व्यवछेद हुआ, सो निश्चय अदत्तविरमणव्रत कहिये है इस व्रतके पाच अतिचार है, उसको वर्जे सो कहते है

१ प्रथम तेनाहृत अतिचार है,सो चोरकी चोराइ वस्तु तिसको तेनाहृत कहते है सो वस्तु न लेवे, एतावता चोरीकी वस्तु जाण कर कें न लेवे,

साथ विषय सेवनेसें मेरा व्रतभंग नहीं होवेगा? ऐसा विचार करकें कुमारी तथा विधवा स्त्रीके साथ भोग विलास करे, तो प्रथम अतिचार लग जावे, तथा स्त्रीभी व्रत धारक हो कर कुमारे पुरुषसें तथा रंडे पुरुषसें व्यभिचार सेवे, तब तिस स्त्रीकोंभी अतिचार लगे

२ दूसरा इत्वरपरिगृहीतागमन अतिचार है तिसका स्वरूप कहते हैं इत्वर नाम थोडे कालका है, सो थोडेसे काल वास्ते किसी पुरुषने धन खरच कें वेश्यादिकोंको अपनी करकें रक्की है, इहां कोइ अज्ञानके उदयसें मनमें ऐसा विचार करे कि मेरे तो परस्त्रीका त्याग है, अरु इस वेश्यादिककों तो मैने अपणी स्त्री बना करकें थोडेसे काल वास्ते रक्की है, तो इसके साथ विषय सेवनेसें मेरा व्रतभंग नहीं होवेगा? ऐसे अज्ञानके विचारसें उसके साथ संगम (विषय सेवन) करे, तो दूसरा अतिचार लगे अरु स्त्रीकोंभी जब अपणी सोकणकी वारीके दिनमें अपने भर्तारसे विषय सेवे, वो अपणे मनमें ऐसा विचार करे, कि अपणे पतिके साथ विषय सेवनेसें, मेरा व्रतभंग नहीं होवेगा, क्यों कि मैनें तो परपुरुषका त्याग करा है? यह दूसरा अतिचार इन पूर्वोक्त दोनों अतिचारोंको जो श्रावक जानता है, कि ये श्रावककों करने योग्य नहीं अरु फेर जे कर करे, तो व्रतभंग होवे, परंतु अतिचार नहीं।

३ तीसरा अनंगक्रीडा अतिचार है सो अनंग नाम कामका है, तिस काम कंदर्पको जागृत करनां, आलिंगन, चुंबन प्रमुख करनां, नेत्रोंका हाव, भाव, कटाक्ष, हास्य, ठठा, मस्करी प्रमुख परस्त्रीसें करे, सो दिलमें शोचता है कि मैंनें तो परस्पर एक शय्या उपरि विषय सेवनेका त्याग करा है, परंतु पूर्वोक्त अनंगक्रीडा तो नहीं त्यागी है, परंतु वो मूढमति यह नहीं जानता है, कि ऐसा काम करने वालेका व्रत कदापि न रहेगा, अरु मनसें उस जीवने महापाप उपार्जन कर लीया, निश्चय नयके मतसें उसका व्रतभंगभी हो गया, तथा अपणी स्त्रीसें चौरासी आसनोसे भोग करे, तथा पंदरा तिथिके हिसाबसें स्त्रीके अंगमर्दनादि कर कें काम जगावे, तथा परम कामाभिलाषी होनेसें जब अपनी स्त्रीका भोग न मिले, तब हस्तकर्म करे, स्त्रीभी काम व्याप्त हो कर गुह्यस्थानमें कोइ वस्तु संचार करकें हस्तकर्म करे, तब स्त्रीकोंभी अतिचार है, तिस वास्ते श्रावकको जे

नां तिसकों जिनवाणीके उपदेशसें, तथा गुरुकी हितशिक्षासें ज्ञान हुआ, तब जातिहीन जान करकें अनागत कालमें महा दुःखदायी जान कर पूर्वकालमें इसकी संगतसें अनंत जन्म मरणका दुःख पाया, इस वास्ते इस विजातीय स्त्रीकों तजनां ठीक है, अरु मेरी जो स्वजाति स्त्री परम भक्त, उत्तम, सुकुलिनी, समतारूप सुंदरी, तिसका संग करनां ठीक है अरु विभाव परिणतिरूप परस्त्रीनें मेरी सर्वविभूति हर लीनी है, तो अब सद्गुरुकी सहायसेंती ए दुष्ट परिणामरूप जो स्त्री, संग लगी हूई थी, तिसका थोडा थोडा निग्रह करु, त्यागनेका भाव आदरु, जिस्सें शुद्धस्वभाव घटरूप घरमें आ जावे, तथा स्वरूप तेजकी वृद्धि होवे, असी समझ पा करकें परपरिणतिमें मग्नता त्यागे, औ कर्मके उदयमें व्यापक न होवे, शुद्ध चेतनाका संगी होवे, सो भाव मैथुनका त्यागी कहियें इहां द्रव्यमैथुनके त्यागी तो षट् दर्शनमें मिल सक्ते हैं, परंतु भावमैथुनका त्यागी तो श्रीजिनवाणी सुननेसें भेदज्ञान जब घटमें प्रगट होता है, तब भवपरिणतिसें सहज उदासीन रूप भाव मैथुनका त्यागी जैनमत मेंही होता है इहां स्थूल परस्त्रीगमन व्रत सो परस्त्रीका त्याग करनां, परपुरुषकी विवाहिता स्त्री, तथा परकी रक्खी हूइ स्त्री, तिसके साथ अनाचार न सेवनां, असा जो प्रत्याख्यान करनां, सो परदारगमन विरमणव्रत है अरु जो अपणी स्त्री है, तिसमें संतोष करुं, असा जो व्रत धारण करे, तिसकों स्वदारसंतोष व्रत कहियें

देवांगना तथा तिर्यंचणी इनके साथ तो कायासें मैथुन सेवनका निषेध है, तथा वर्त्तमान स्त्री वर्जके और स्त्रीसें विवाह न करे, तथा दिनमें अपणी स्त्रीसेंभी संभोग न करे, क्योंकि दिनसंभोगसे जो संतान उत्पन्न होता है, सो निर्बल होता है, जे कर कामाधिक होवे, तो दिनकीभी मर्यादा कर लेवे, इसी तरें स्त्रीभी पर पुरुषका त्याग करे, इसी रीतिसें चौथा व्रत पाले, इस व्रतके पांच अतिचार है, उसको वर्जे, सो लिखते है

१ प्रथम अपरिगृहीतागमन अतिचार सो विना विवाही स्त्री (कुमारी) तथा विधवा इनको अपरिगृहीता कहते है, क्योंकि इनका कोइ भर्तार नहीं है, जे कर कोइ अल्पमति विषयाभिलाषी मनमे विचारे, कि मेंने तो परस्त्रीका त्याग करा है, अरु एतो किसीकीभी स्त्रीयां नहीं है, इनके

साथ विषय सेवनेसें मेरा व्रतजंग नहीं होवेगा ? असा विचार करकें कुमारी तथा विधवा स्त्रीके साथ जोग विलास करे, तो प्रथम अतिचार लग जावे, तथा स्त्रीजी व्रत धारक हो कर कुमारे पुरुषसें तथा रंमे पुरुषसें व्यजिचार सेवे, तब तिस स्त्रीकोंजी अतिचार लगे

२ दूसरा इत्वरपरिगृहीतागमन अतिचार है तिसका स्वरूप कहते हैं इत्वर नाम थोडे कालका है, सो थोडेसे काल वास्ते किसी पुरुषने धन खरच कें वेश्यादिकोंको अपनी करकें रक्खी है, इहां कोइ अज्ञानके उदयसें मनमें असा विचार करे कि मेरे तो परस्त्रीका त्याग है, अरु इस वेश्यादिककों तो मैने अपणी स्त्री बना करकें थोडेसे काल वास्ते रक्खी है, तो इसके साथ विषय सेवनेसें मेरा व्रतजग नहीं होवेगा ? असे अज्ञानके विचारसें उसके साथ सगम (विषय सेवन) करे, तो दूसरा अतिचार लगे अरु स्त्रीकोंजी जब अपणी सौकणकी वारीके दिनमें अपने जर्तारसे विषय सेवे, वो अपणे मनमें असा विचार करे, कि अपणे पतिके साथ विषय सेवनेसें, मेरा व्रतजग नहीं होवेगा, क्यों कि मैंने तो परपुरुषका त्याग करा है ? यह दूसरा अतिचार इन पूर्वोक्त दोनों अतिचारोंको जो श्रावक जानता है, कि ये श्रावककों करने योग्य नहीं अरु फेर जे कर करे, तो व्रतजग होवे, परतु अतिचार नहीं

३ तीसरा अनगक्रीडा अतिचार है सो अनग नाम कामका है, तिस काम कदर्प्पको जागृत करनां, आलिंगन, चुबन प्रमुख करनां, नेत्रोंका हाव, जाव, कटाक्ष, हास्य, उठा, मस्करी प्रमुख परस्त्रीसें करे, सो दिलमें शोचता है कि मैंनें तो परस्पर एक शय्या उपरि विषय सेवनेका त्याग करा है, परंतु पूर्वोक्त अनगक्रीडा तो नहीं त्यागी है, परतु वो मूढमति यह नहीं जानता है, कि असा काम करने वालेका व्रत कदापि न रहेगा, अरु मनसें उस जीवने महापाप उपार्जन कर लीया, निश्चय नयके मतसें उसका व्रतजगजी हो गया, तथा अपणी स्त्रीसें चौरासी आसनोसे जोग करे, तथा पदरा तिथिके हिसाबसें स्त्रीके अगमर्द्दनादि कर कें काम जगावे, तथा परम कामाजिलाषी होनेसे जब अपनी स्त्रीका जोग न मिले, तब हस्तकर्म करे, स्त्रीजी काम व्याप्त हो कर गुह्यस्थानमें कोइ वस्तु सचार करकें हस्तकर्म करे, तब स्त्रीकोंजी अतिचार है, तिस वास्ते श्रावकको जे

नां तिसकों जिनवाणीके उपदेशसें, तथा गुरुकी हितशिक्षासें ज्ञान हूआ, तब जातिहीन जान करकें अनागत कालमें महा दुःखदायी जान कर पूर्वकालमें इसकी संगतसें अनंत जन्म मरणका दुःख पाया, इस वास्ते इस विजातीय स्त्रीकों तजनां ठीक है, अरु मेरी जो स्वजाति स्त्री परम भक्त, उत्तम, सुकुलिनी, समतारूप सुंदरी, तिसका संग करनां ठीक है अरु विभाव परिणतिरूप परस्त्रीनें मेरी सर्वविभूति हर लीनी है, तो अब सद्गुरुकी सहायसेंती ए दुष्ट परिणामरूप जो स्त्री, संग लगी हूई थी, तिसका थोडा थोडा निग्रह करूं, त्यागनेका भाव आदरूं, जिस्सें शुद्धस्वभाव घटरूप घरमें आ जावे, तथा स्वरूप तेजकी वृद्धि होवे, ऐसी समझ पा करकें परपरिणतिमें मग्नता त्यागे, औ कर्मके उदयमें व्यापक न होवे, शुद्ध चेतनाका संगी होवे, सो भाव मैथुनका त्यागी कहीयें इहां द्रव्यमैथुनके त्यागी तो षट् दर्शनमें मिल सक्ते हैं, परंतु भावमैथुनका त्यागी तो श्रीजिनवाणी सुननेसे भेदज्ञान जब घटमें प्रगट होता है, तब भवपरिणतिसें सहज उदासीन रूप भाव मैथुनका त्यागी जैनमतमेंही होता है इहां स्थूल परस्त्रीगमन व्रत सो परस्त्रीका त्याग करनां, परपुरुषकी विवाहिता स्त्री, तथा परकी रक्खी हूइ स्त्री, तिसके साथ अनाचार न सेवनां, ऐसा जो प्रत्याख्यान करनां, सो परदारगमन विरमणव्रत है अरु जो अपणी स्त्री है, तिसमें संतोष करुं, ऐसा जो व्रत धारण करे, तिसकों स्वदारसंतोष व्रत कहियें

देवांगना तथा तिर्यंचणी इनके साथ तो कायासें मैथुन सेवनका निषेध है, तथा वर्त्तमान स्त्री वर्जके और स्त्रीसें विवाह न करे, तथा दिनमें अपणी स्त्रीसेंभी संभोग न करे, क्योंकि दिनसंभोगसें जो संतान उत्पन्न होता है, सो निर्बल होता है, जे कर कामाधिक होवे, तो दिनकीभी मर्यादा कर लेवे, इसी तरें स्त्रीभी पर पुरुषका त्याग करे, इसी रीतिसें चौथा व्रत पाले, इस व्रतके पांच अतिचार है, उसको वर्जे, सो लिखते है

१ प्रथम अपरिगृहीतागमन अतिचार सो विना विवाही स्त्री (कुमारी) तथा विधवा इनको अपरिगृहीता कहते है, क्योंकि इनका काइ भर्तार नहीं है, जे कर काइ अल्पमति विषयाभिलाषी मनमें विचारे, कि मैंने ता परस्त्रीका त्याग करा है, अरु एतो किसीकीभी स्त्रीयां नहीं है, इनके

साथ विषय सेवनेसें मेरा व्रतभंग नहीं होवेगा? असा विचार करकें कुमारी तथा विधवा स्त्रीके साथ भोग विलास करे, तो प्रथम अतिचार लग जावे, तथा स्त्रीभी व्रत धारक हो कर कुमारे पुरुषसे तथा रंडे पुरुषसें व्यभिचार सेवे, तब तिस स्त्रीकोंभी अतिचार लगे

२ दूसरा इत्वरपरिगृहीतागमन अतिचार है तिसका स्वरूप कहते हैं इत्वर नाम थोडे कालका है, सो थोडेसे काल वास्ते किसी पुरुषने धन खरच कें वेश्यादिकोंको अपनी करकें रक्की है, इहा कोइ अज्ञानके उदयसें मनमें असा विचार करें कि मेरे तो परस्त्रीका त्याग है, अरु इस वेश्यादिककों तो मैने अपणी स्त्री बना करकें थोडेसे काल वास्ते रक्की है, तो इसके साथ विषय सेवनेसें मेरा व्रतभग नहीं होवेगा? असे अज्ञानके विचारसें उसके साथ सगम (विषय सेवन) करे, तो दूसरा अतिचार लगे अरु स्त्रीकोंभी जब अपणी सौकणकी वारीके दिनमें अपने भर्तारसे विषय सेवे, वो अपणे मनमें असा विचार करे, कि अपणे पतिके साथ विषय सेवनेसें, मेरा व्रतभग नहीं होवेगा, क्यों कि मैंने तो परपुरुषका त्याग करा है? यह दूसरा अतिचार इन पूर्वोक्त दोनों अतिचारोंको जो श्रावक जानता है, कि ये श्रावकको करने योग्य नहीं अरु फेर जे कर करे, तो व्रतभग होवे, परतु अतिचार नहीं

३ तीसरा अनगक्रीडा अतिचार है सो अनग नाम कामका है, तिस काम कदर्पको जागृत करनां, आलिंगन, चुबन प्रमुख करनां, नेत्रोंका हाव, भाव, कटाक्ष, हास्य, ठठा, मस्करी प्रमुख परस्त्रीसें करे, सो दिलमें शोचता है कि मैंनें तो परस्पर एक शय्या उपरि विषय सेवनेका त्याग करा है, परंतु पूर्वोक्त अनगक्रीडा तो नहीं त्यागी है, परंतु वो मूढमति यह नहीं जानता है, कि असा काम करने वालेका व्रत कदापि न रहेगा, अरु मनसें उस जीवने माहापाप उपार्जन कर लीया, निश्चय नयके मतसे उसका व्रतभगभी हो गया, तथा अपणी स्त्रीसें चौरासी आसनोसे भोग करे, तथा पंदरा तिथिके हिसावसें स्त्रीके अगमर्दनादि कर कें काम जगावे, तथा परम कामाभिलाषी होनेसें जब अपनी स्त्रीका भोग न मिले, तब हस्तकर्म करे, स्त्रीभी काम व्याप्त हो कर गुह्यस्थानमें कोइ वस्तु सचार करकें हस्तकर्म करे, तब स्त्रीकोंभी अतिचार है, तिस वास्ते श्रावकको जे

सें तैसें करके कामेच्छा घटानी चाहियें क्यों कि विषयके घटानेंसें अरु वीर्यके रखनेसें बुद्धि, आरोग्य, दीर्घायु, बल प्रमुखकी वृद्धि होती है, अरु अधिक काम सेवनेसे मन मलिन, पापवृद्धि, राजयक्ष्मा, (क्षय) भ्रम, मूर्छा, क्लम, स्वेदादि रोग उत्पन्न होते हैं, इस वास्ते श्रावककों अत्यंत विषय मग्न होनां न चाहियें केवल जिस्सें वेदविकार शांत हो जावें, तितनांही मैथुन करनां चाहियें अरु जब काम उत्पन्न होवे, तब स्त्री संबंधि काम सेवन की जगाकों जाजरू समान मलमूत्रसे भरी हुई विचारे, मलीन वस्तु है, मुखमें दुर्गंध भरी है, नाकमें सिघाणकी दुर्गंध है, कानोंमें मैल है, पेटमें विष्टा, मूत्र, भरा है, नसायोंमें खाये पीयेका रस, रुधिर, हाड, चाम, चर्बी, वाय, पित्त, कफ, भरा है, महा अशुचिका पूतला है, जिस अंगमें वास लेवेगा, उहां महा दुर्गंध उछलती है, अनित्य अशाश्वत है, सडन, पतन, विध्वंसन हो जानां, यह इसका स्वभाव है, तो फेर हे मूढ जीव! स्त्रीकों देखकर क्यों कामाकुल होता है? ऐसें विचारसें कामकों शांत करे, ए तीसरा अतिचार है

४ चौथा परविवाह करण अतिचार है सो अपणी पुत्र पुत्री विना, यश के वास्ते, पुण्यके वास्ते, और लोकोंके विवाह करावे, सो चौथा अतिचार

५ पांचमा तीव्रानुराग अतिचार है सो जे पुरुष स्त्री उपर तीव्र अभिलाष धरे, पराइ स्त्रीकों देख कर मनमें बहुत चाहना धरे, उस स्त्रीके देखे विना क्षणमात्र रहि न सके, चलतां, फिरतां, उस स्त्रीहीमें चित्त रहे, अथवा देहमें कामकी वृद्धि वास्ते अफयून, माजूम, भांग, हरताल, पारा प्रमुख खावे, तीव्रकामसे प्रीति करे, तब पांचमा अतिचार लगे, अथवा स्त्रीभी कामकी वृद्धि करने वास्ते अनेक उपाय करे, बहुत हाव भाव विषय लालसा करे, तब पांचमा अतिचार लगे, यह पांच अतिचार श्रावक जाने, परंतु आदरे नहीं. इन पांचो अतिचारोंका विशेष स्वरूप धर्मरत्न प्रकरणकी टीकासें जानना ॥ इति चतुर्थव्रतं समाप्त ॥

५ अथ पांचमा स्थूलपरिग्रहपरिमाण व्रत लिखते है परिग्रहके दो भेद हैं, एक तो बाह्यपरिग्रह अधिकरण रूप, सो द्रव्यपरिग्रह नव प्रकारका है दूसरा भाव परिग्रह, सो चौदह अभ्यंतर ग्रंथिरूप जो परभावका ग्रहण समस्त प्रदेश सहित सकपाई पणे बंध, सो भावपरिग्रह है, अरु

शास्त्रमें मूर्छाकों मुख्य वृत्ति करकें भावपरिग्रह कहा है, तिनमेंसूं चौद ह प्रकारका जो अभ्यंतर परिग्रह है, सो लिखते हैं १ हास्य, २ रति, ३ अरति, ४ भय, ५ शोक, ६ जुगुप्सा, ७ क्रोध, ८ मान, ९ माया, १० लो भ, ११ स्त्रीवेद, १२ पुरुषवेद, १३ नपुंसकवेद, १४ मिथ्यात्व यह चौदह प्रकारकी अभ्यंतर ग्रंथि है, इहां संसारमें इस जीवकों केवल अविरतिके बलसें इछा, आकाश समान अनंती है कदापि भरणेमें आती नहीं, अ विरतिके उदयसें इछा अरु इछासेंती कर्मबंधनमें पडा हूआ, चार गतिमें भ्र मण करता है सो कोई पुण्यके उदयसें मनुष्य भवादि सकल सामग्रीका योग पा कर, सद्गुरुकी संगतिसें श्रीजिनवाणी सुणी, तब चेतना जाग्रत भई, तब विचार करा कि अहो में समस्त परभावसे अन्य हूं! अवधि, अ छेद्य, अभेद्य, अदाह्यधर्मी हूं! परंतु इछाके वश हो कर समस्त छेदन, भे दन परिभ्रमणादि दुःखोंकों भोगने वाला परधर्मी बन रहा हूं! ईस वास्ते समस्त परभावका मूल जो इछा है, तिसकों दूर करे तब समस्त परभाव त्यागरूप चारित्र आदरे, साधुवृत्ति अंगी कार करे अरु जिस जीवके इछा प्रबल होनेसें एक साथ सर्व परिग्रह त्यागनेका सामर्थ्य न होवे, अरु दो षसें भरे, तब गृहस्थ, धर्मइछा परिमाण रूप व्रत आदरे, सो इछा परिमा णव्रत नव प्रकारका है, सो कहते हैं —

१ प्रथम धन इछा परिमाण व्रत है सो धन चार प्रकारका है प्रथम गणिम धन, सो नालिकेर प्रमुख, जो गिणतीसें वेचनेमें आवे दूसरा धरि म धन, सो गुड प्रमुख जो तोलके वेचनेमें आवे तीसरा परिछेद्य धन, सो सोना, रूपा, जवाहिर प्रमुख जो परिक्षासें वेचनेमें आवे चोथा मेयधन, सो दूधादि वस्तु जो मापके वेचनेमें आवे, यह चार प्रकारका धन है इसका जो परिमाण करे, सो धनपरिमाण व्रत है

२ दूसरा धान्य परिमाण व्रत सो धान्य चौवीस प्रकारका है १ शालि, २ गेहूं, ३ जुवार, ४ बाजरी, ५ जव, ६ मूग, ७ मुठ, ८ उडद, ९ तूट, १० चोला, ११ मटर, १२ तूअर, १३ किसारी, १४ कोद्रवा, १५ कगणी, १६ चणा, १७ वाल, १८ मेथी, १९ कुलथ, २० मसूर, २१ तिल, २२ मग्नवा, २३ कूरी, २४ वरटी यह खाने वास्ते तथा व्यवहार वास्ते उपयो गी हैं तथा १ धनीया, २ नींमी, ३ सोवा, ४ अजवयन, ५ जीरा यह

सें तैसें करके कामेछा घटानी चाहियें क्यों कि विषयके घटानेंसें अरु वीर्यके रखनेसें बुद्धि, आरोग्य, दीर्घायु, बल प्रमुखकी वृद्धि होती है, अरु अधिक काम सेवनेसे मन मलिन, पापवृद्धि,राजयक्ष्मा, (क्षय) भ्रम, मूर्छा, क्लम, स्वेदादि रोग उत्पन्न होते हैं, इस वास्ते श्रावककों अत्यंत विषय मग्न होनां न चाहियें केवल जिस्सें वेदविकार शांत हो जावें, तितनांही मैथुन करनां चाहियें अरु जब काम उत्पन्न होवे, तब स्त्री सबंधि काम सेवन की जगाकों जाजरू समान मलमूत्रसे नरी हूई विचारे, मलीन वस्तु है, मुखमें डुर्गंध नरी है, नाकमें सिघाणकी डुर्गंध है, कानोंमें मैल है, पेटमें विष्टा, मूत्र, नरा है, नसायोंमें खाये पीयेका रस, रुधिर, हाड, चाम, चर्बी, वाय, पित्त, कफ, नरा है, महा अशुचिका पूतला है, जिस अंगमें वास लेवेगा, उहां महा डुर्गंध उछलती है, अनित्य अशाश्वत है, सडन, पतन, विध्वसन हो जानां, यह इसका स्वनाव है, तो फेर हे मूढ जीव! स्त्रीकों देखकर क्यों कामाकुल होता है? ऐसें विचारसें कामकों शांत करे, ए तीसरा अतिचार है

४ चौथा परविवाह करण अतिचार है सो अपणी पुत्र पुत्री विना, यशके वास्ते, पुण्यके वास्ते, और लोकोंके विवाह करावे, सो चौथा अतिचार

५ पांचमा तीव्रानुराग अतिचार है सो जे पुरुष स्त्री ऊपर तीव्र अनिलाष धरे, पराइ स्त्रीकों देख कर मनमें बहुत चाहना धरे, उस स्त्रीके देखे विना क्षणमात्र रहि न सके, चलतां, फिरतां, उस स्त्रीहीमें चित्त रहे, अथवा देहमें कामकी वृद्धि वास्ते अफयून, माजूम, नांग, हरताल, पारा प्रमुख खावे, तीव्रकामसे प्रीति करे, तव पांचमा अतिचार लगे, अथवा स्त्रीनी कामकी वृद्धि करने वास्ते अनेक उपाय करे, बहुत हाव नाव विषय लालसा करे, तव पांचमा अतिचार लगे, यह पांच अतिचार श्रावक जाने, परंतु आदरे नहीं. इन पांचो अतिचारोंका विशेष स्वरूप धर्मरत्न प्रकरणकी टीकासें जानना ॥ इति चतुर्थव्रतं समाप्त ॥

५ अथ पाचमा स्थूलपरिग्रहपरिमाण व्रत लिखते हैं परिग्रहके दो नेद है, एक तो बाह्यपरिग्रह अधिकरण रूप, सो इव्यपरिग्रह नव प्रकारका है दूसरा नाव परिग्रह, सो चौदह अन्यतर ग्रंथिरूप जो परनावका ग्रहण समस्त प्रदेश सहित तकपाई पणे बंध, सो नावपरिग्रह है, अरु

र इतने विग्घे धरती रखुंगा, तथा घर, खिडकी वध, अरु खुल्ली डुकान, तवेला, वखारी, तथा परदेश संबधी डुकानकी जयणा, तथा इतना जाडे देणे वास्ते घरकी रखनेकी जयणा, तथा जाडे लीयें हूये घरकों समराव णेकी जयणा, तथा कुटुंब सबधि घर बनानेमें उपदेशकी जयणा, तथा अपणा सबधी अरु गुमास्ता परदेश गया होवे, पीछेसें तिसके घर प्रमुख समरावणेकी जयणा, तथा आजीविकाके वास्ते किसीकी चाकरी करनी प डे, तब उसके घर प्रमुखके समरावणेकी जयणा, तथा कुपदपरिमाणमें तावा, पीतल, रांग, लोहखम, कांसी, जरत, सर्व मिलीके धातुके वर्त्तन, त था और घाट, तथा बूटा, इतने मण रखणेकी जयणा, तथा डुपद परिमा णमें श्रावकने दासी, दासको मोल दे कर नहीं लेना, परतु पगारवाले (नौकर) गिणतीमें इतने रखने चाहियें, तथा गुमास्ता रखनेकी जयणा, तथा चौपद परिमाणमें गाय, भैंस, बकरी प्रमुख रखनेका परिमाण करे अब यह इछा परिमाण व्रतके पांच अतिचार है, सो लिखते हैं

१ प्रथम तो धनपरिमाण अतिक्रम अतिचार इस रीतिसें होता है सो जब इछा परिमाणसें धन अधिक हो जावे, तब लोजसज्ञासें दिलमें ऐसा मनसुवा करे कि जो मेरा पुत्र बडा हो गया है, तिसकोंनी धन चाहियें है, अरु मैंनेजी पुत्रकों धन देनाही है? ऐसा कुविकल्प करकें पुत्रके नामके पांच हजारादि रूपक जूदे रखे, तथा अन्न प्रमुख अपणे नियम परिमाण घरमें पडा है, तब अधिक रखनेंकी इछासें दूसरायोंके घरमें रख छोडे, जब चाहियें तब ले आवे, अरु अज्ञानसें ऐसा विचारे कि मैंने तो इछा परिमाणसें अधिक अपने घरमें रखनेका नियम करा है, अरु यह तो दूसरोंके घरमें रखा है, इस वास्ते मेरे नियममें दूषण नहीं, तथा व्रत लेनेके वखतमें कच्चे मणके हिसावसें अन्न रखा है, अरु जब परदेशांतरमें गया, तब पक्के मणका उहां तोल जान कर अन्ननी पक्के मणकें हिसावसें रखे, ऐसे विचार वालेकों प्रथम अतिचार लगता है

२ दूसरा क्षेत्रपरिमाण अतिक्रम अतिचार है सो जब इछा परिमाणसेंती अधिक घर हाटादिक हो जावे, तब विचली जित तोडके दो तिनादि घरादिकोंका एक घरादि बनावे, तथा दो तीनादि खेंतोकी विचली मौली तोडकें एक बना लेवे, अरु मनमें यह विचारे कि मैंने तो गिणती रखी है, सो तो

नी धान्यकी जातिमें है, परंतु ये औषध्यादिकमें काम आते हैं. तथा १ सामक, २ मणकी, ३ जुरट, ४ चेकरीया, ये मारवाड देशमें प्रसिद्ध हैं और जो अडक धान्य, विना बोयां ऊगता है, जिसकों लोक काल [illegible] लमें खाते हैं, यह सर्व जातिका अन्न, तिसका परिमाण करे

३ तीसरा क्षेत्रपरिग्रह व्रत है सो बोनेका खेत, तथा बाग (बगीचादिक) जाननां, इस क्षेत्रके तीन भेद हैं, उसमें एक क्षेत्र तो ऐसा है, कि जो वर्षाके पाणीसें होता है, दूसरा कूपादिकके जल सींचनेसें होता है, तीसरा तो यह पूर्वोक्त दोनो प्रकारसे होता है, इनका परिमाण करे

४ चौथा वास्तुक परिमाण व्रत है सो घर, हाट, हवेली प्रमुख तिनकेभी तीन भेद हैं एक तो भूहरा प्रमुख, दूसरा उछ्रित सो उची हवेली, एक मजली, दो मजली, तीन मजली, यावत् सातभूमि तक, तीसरी हेठ भूहरा प्रमुख, उपर एक दो आदि मजल, तिसका परिमाण करे

५ पांचमारूप्यपरिग्रहपरिमाण व्रत है सो सिक्के विनाका काचा रूपा तिसका तोलका परिमाण करे

६ छठा सुवर्णपरिग्रह परिमाण व्रत है सो विना सिक्केका सोना, तिसके तोलका परिमाण करे

७ सातमा कूपद परिग्रह परिमाण व्रत है सो त्रांबा, पीतल, रांग, कांसु, सींसा, भरत, लोहाप्रमुख सर्व धातुके बर्त्तनोंके तोलका परिमाण करे

८ आठमा द्विपद परिग्रहपरिमाण व्रत है सो दासी, दास, अथवा पगारदार गुमास्ता प्रमुख रखणां, तिनकी गणतीका परिमाण करे

९ नवमा चौपदपरिग्रह परिमाण व्रत है सो गाय, महीषी, घोडा, बलद, बकरी, भेड प्रमुख, तिनकी गिणतीका परिमाण करे

अथ अपनी इच्छा परिमाणसे परिग्रह किस तरें रखे? सो कहते हैं रूपा घडा हूआ अरु अनघडा तथा नगद रूपक इतना रखु, तथा सोनाभी घडा अनघडा असर्फी तथा जवाहीर इतना रखु, इस रीतिसे परिमाण करे, उपरांत पुण्योदयसे धन वधे, तो धर्मस्थानमें लगावे, तथा वर्ष दिनमें इतने इस भांतके वस्त्र पहिरू, तथा एक वर्षमें इतना अन्न मे घरखरच वास्ते रखु, अरु इतना वणिज वास्ते रखु, तिसका सरूप सातमे व्रतम लिखेगे तथा क्षेत्रपरिमाणमें क्षेत्र, वाडी, बगीचा प्रमुख सर्व भिन्न क

तहां दिशिप्रमाण व्रत. सो चारों दिशि, तथा चारों विदिशि, तथा ऊर्ध्व, अरु अधो, इन दश दिशिका परिमाण करे, तिसके दो भेद है एक व्यवहारसें, सो अपणी कायासें दशों दिशिमें जानेका, तथा मनुष्य भेजनेका, तथा व्यापार करनेका परिमाण करे, उसको व्यवहार दिशि परिमाण व्रत कहियें

दूसरा निश्चयसें सो जो कुछ नरकादि गतिमें गमन है, सो सर्व कर्मका धर्म है जिसके वश पडके यह जीव चारो गतिमें भटकता है, परानुयायी चेतना हो रही है, इसी वास्ते जीव परभावानुसारी गतिभ्रमण करता है, परंतु जीव तो शुद्ध चैतन्य, अगतिस्वभाव, तथा निश्चल स्वभाव है, अैसा श्री जिनवाणीके उपदेशसें समझके चेतना शुद्धस्वरूपानुयायी होवे, तव अपणा अगति स्वभाव जानिके सर्व क्षेत्रसें उदास रहे, समस्त क्षेत्रसें अप्रतिवधक भावसें वर्त्ते, सो निश्चयसें दिक्परिमाण व्रत कहियें यह दशों दिशिका परिमाण करें, तिसके दो भेद है

प्रथम जलमार्ग सो जहाज नावों करकें इतने योजन अमुक दिशिमें अमुक वदर, तथा अमुक द्वीप तक जाऊ, जे कर पवन, तथा वर्षातके वशसें और दूर किसी वदरमें ले जावे तो आगार, अर्थात् व्रतभग न होवे, अथवा अजाण पणे कर कें भूल चूकसें किसी वदरमें चला जाऊ, उसकाभी आगार है

दूसरा स्थलका मार्ग सो जिस जिस दिशिमें जितने जितने योजन तक जानेका परिमाण करा है, तहा तक जाणेकी जयणा, जे कर चोर, म्लेछ, पकडके नियम क्षेत्रसें बाहिर ले जावे, तिसका आगार है, तथा ऊर्ध्व दिशिमें बारा कोश तक जाणेकी जयणा रक्खे, तथा अधोदिशिमें आठ कोश तक जाणेकी जयणा, परतु जो उचा चढके फेर नीचा उतरें, वो अधोदिशिमें नहीं, तथा जितनें क्षेत्रका परिमाण करा है, तिस्सें बाहिरका कोइ पिछाण वाले पुरुषका पत्र आवे, सो बांच कर उसका उत्तर लिखना पडे, तिसका आगार है, परंतु मैं अपणी तरफसें विना कारण पत्र प्रमुख नहीं लिखुगा, तथा परदेशकी विकथा सुननेका आगार, इस व्रतके पांच अतिचार हैं सो कहते है

मेरा नियम अखंमित है, बडा कर लेनेमें क्या दूषण है? ऐसें करे, तो दूसरा अतिचार लगे

३ तीसरा रूप्यसुवर्णप्रमाण अतिक्रम अतिचार है सो जब इसा परिमाणसेंती अधिक होवे, तब अपणी स्त्रीकें पेणे चारी तोलके बनवावे, तथा अपणे आजरण तोलमें चारी बनवावे, यह तीसरा अतिचार है

४ चौथा कुपदपरिमाण अतिक्रम अतिचार है सो त्रांबा, पीतल, कांसी प्रमुखके बर्त्तन राठ वगैरें जो गिणतीमें रखे हैं, सो जब घरमें सपदा होवे, तब गिणतीमें तो उतनेही रखे, परतु तोलमें वजनदार दूगणे तिगुणे बनवावे, अरु मनमें ऐसा विचारे जो मेरा व्रत तो अखमित है? क्योंकि बर्त्तनोकी गिणती तो मेरे तितनीही है? तथा कच्चे तोल परिमाणें रखे थे, फेर पक्के तोल परिमाण रख लेवे,सो चौथा अतिचार है

५ पांचमा द्विपदचतुष्पद प्रमाणातिक्रम अतिचार है सो दास, दासी, घोडा, गाय, बलद प्रमुख अपणे परिमाणसें जब अधिक हो जावे, तब वेच गेरे, अथवा गर्भ ग्रहण अवेरी करावे, जितने गिणतीमें हैं, उनमेंसे प्रथम वेचके फेर गर्भ ग्रहण करावे, अथवा जाइ पुत्रके नामकें कर रखे, तो पांचमा अतिचार लगता है इति पंचमव्रतं सपूर्ण ॥

६-७-८ अथ उठा, सातमा, अरु आठमा, इन तीनो व्रतोंकों गुणव्रत कहते हैं तिनमें उठे व्रतमें दिशांका विचार है, इस वास्ते इसका नाम दिक्परिमाण व्रत कहते हैं तिसका स्वरूप लिखते हैं

पूर्वे जो पांच अणुव्रत कहे हैं तिनकों इन तीनो व्रतो करकें गुण वृद्धि होती है, इस वास्ते इनका नाम गुणव्रत है, क्योंकि जब दिशिपरिमाणव्रत कीया, तब तिस क्षेत्रसे वाहिरले सर्व जीवोंको अजयदान दीया, यह पहिले प्राणातिपात व्रतकों गुण पुष्टि जइ, तथा वाहिरले जीवोके साथ कूठ वोलनां मिट गया, यह मृपावाद व्रतको पुष्टि जइ, तथा वाहिरले क्षेत्रकी वस्तुकी चोरीका त्याग हूआ, यह तीसरे व्रतकों पुष्टि जइ, तथा वाहिरले क्षेत्रकी स्त्रीयोंके साथ मैथुन सेवनेका त्याग हूआ यह चौथे व्रतकी पुष्टि जइ, तथा नियम वाहिरके क्षेत्रमें क्रय विक्रयका निषेध जया, यह पाचमे व्रतकी पुष्टि जइ, इस वास्ते पांचो अणुव्रतोंकों यह तीन व्रत गुणकारी है

तहां दिशिप्रमाण व्रत सों चारो दिशि, तथा चारों विदिशि, तथा ऊर्ध्व, अरु अधो, इन दश दिशिका परिमाण करे, तिसके दो भेद हैं एक व्यवहारसें, सो अपणी कायासें दशों दिशिमें जानेका, तथा मनुष्य भेजनेका, तथा व्यापार करनेका परिमाण करे, उसकों व्यवहार दिशि परिमाण व्रत कहियें

दूसरा निश्चयसें सो जो कुछ नरकादि गतिमें गमन है, सो सर्व कर्मका धर्म है जिसके वश पडकें यह जीव चारो गतिमें भटकता है, परानुयायी चेतना हो रही है, इसी वास्ते जीव परभाववानुसारी गतिभ्रमण करता है, परंतु जीव तो शुद्ध चैतन्य, अगतिस्वभाव, तथा निश्चल स्वभाव है, ऐसा श्री जिनवाणीके उपदेशसें समझकें चेतना शुद्धस्वरूपानुयायी होवे, तब अपणा अगति स्वभाव जानिके सर्व क्षेत्रसें उदास रहे, समस्त क्षेत्रसें अप्रतिबधक भावसें वर्त्ते, सो निश्चयसें दिक्परिमाण व्रत कहियें यह दशों दिशिका परिमाण करें, तिसके दो भेद है

प्रथम जलमार्ग सो जहाज नावों करकें इतने योजन अमुक दिशिमें अमुक बंदर, तथा अमुक द्वीप तक जाऊ, जे कर पवन, तथा वर्षातके वशसें और दूर किसी बंदरमें ले जावे तो आगार, अर्थात् व्रतभग न होवे, अथवा अजाण पणे कर कें भूल चूकसें किसी बदरमें चला जाऊ, उसकाभी आगार है

दूसरा स्थलका मार्ग सो जिस जिस दिशिमें जितने जितने योजन तक जानेका परिमाण करा है, तहां तक जाणेकी जयणा, जे कर चोर, म्लेच्छ, पकडके नियम क्षेत्रसें बाहिर ले जावे, तिसका आगार है, तथा ऊर्ध्व दिशिमें बारा कोश तक जाणेकी जयणा रक्खे, तथा अधोदिशिमें आठ कोश तक जाणेकी जयणा, परंतु जो उचा चढके फेर नीचा उतरें, वो अधोदिशिमें नहीं, तथा जितनें क्षेत्रका परिमाण करा है, तिस्सें बाहिरका कोइ पिछाण वाले पुरुषका पत्र आवे, सो बांच कर उसका उत्तर लिखना पडे, तिसका आगार है, परतु मैं अपणी तरफसें विना कारण पत्र प्रमुख नहीं लिखुगा, तथा परदेशकी विकथा सुननेका आगार, इस व्रतके पांच अतिचार हैं सो कहते है

१ प्रथम ऊर्ध्वदिशापरिमाणातिक्रम अतिचार है सो अनाभोगसे अथ वा वे सुरतिसें अधिक चला जावे, तो प्रथम अतिचार

२ दूसरा अधोदिशिपरिमाणातिक्रम अतिचार पूर्ववत्

३ तीसरा तिर्यग्दिशिपरिमाणातिक्रम अतिचार उपर वत् जे कर निय म नंगके नयसें गुमास्ता नेजे, तोभी अतिचार लगे

४ चौथा एक दिशिमें सौ योजन रखे हैं, अरु एक दिशिमें पचास योजन रखे हैं, पीछें जब एकही दिशिमें मौढसौ योजन जानां पडे, तब दूसरी तरफके पचास योजनभी उसी तरफ जोड लेवे, अरु अज्ञानसें ऐसा विचारे कि मेरे नियमकेही पचास योजन हैं, इस वास्ते मेरे व्रतका नंग नहीं

५ पांचमा स्मृतिअंतर्धान अतिचार सो अपणे नियमके योजनकों भूल जावे, क्या जाने पूर्वदिशिके सौ योजन रखे हैं? कि पचास योजन रखे हैं? इत्यादि ऐसा संशयके हूए फेर पचास योजनसें अधिक जावे, तो पांचमा अतिचार लग जावे, यह पांच अतिचार वर्जे॥ इति षष्ठव्रतं संपूर्ण

७ अथ सातमा भोगोपभोग व्रतका स्वरूप लिखते हैं यह दूसरा गुण व्रत है इस व्रतके अंगीकार करणेसें सचित वस्तु खानेका त्याग करे, अ थवा परिमाण करे, तथा जिसमें बहुत हिंसा होवे, ऐसा व्यापार न करे, तथा जिस काममें अवश्य हिंसा बहुत करनी पडे, तिसका त्याग करे, अनक्ष्य त्यागे, अरु चौदह नियमभी इस व्रतमें गिणे जाते हैं, इस वास्ते यह व्रत पूर्वोक्त पांचही अणुव्रतोकों गुणकारी है, इस व्रतके दो भेद हैं, सो कहते है

१ प्रथम व्यवहार सो नक्ष्यानक्ष्यका ज्ञान करी त्यागे, दूसरा आश्रव संवरका ज्ञान कर के खान पानादिक जो इंद्रिय सुखका कारण है, उसमें अपणी शक्ति प्रमाण बहुत आरंभ छोडके अल्पारंभी होनां, सो व्यवहार भोगोपभोगविरमण व्रत है

२ दूसरा निश्चयसें, तो श्रीजिनवाणी सुण कर वस्तु तत्त्वस्वरूप जान कर विचारे कि जो जगत्में परवस्तु है, सो सर्व हेय है, इस वास्ते तत्त्व वेत्ता पुरुष परवस्तुको न खावे, न अपणे पास रखे, तब शुद्ध चैतन्य भाव धार के परम शांतिरूप हो कर जो वस्तु सडे, पडे, गिरे, जाती रहे,

तव परवस्तु जान कर असा विचार करे कि यह पुजलकी पर्याय है, सर्व जगत्की जूठ है, असी वस्तुका नोगोपनोग करणां, सो तत्त्ववेत्ताकों उचित नहीं, असे ज्ञानसें परनावकों त्यागे, स्वगुणकी वृद्धि करे, असा ज्ञान पा कर आत्माकों स्वस्वरूपानंदी करे, चिद्विलासका अनुनवी होवें, सो निश्चय नोगोपनोगविरमण व्रत कहियें

अथ नोगोपनोग शब्दका अर्थ कहते हैं जो आहार, पुष्प, विलेप नादि, एक वार नोगनेमें आवें, सो नोग कहियें अरु जो नुवन, वस्त्र, स्त्रीयादि वार वार नोगनेमें आवे, सो उपनोग कहियें अरु कर्माश्रयी इस व्रतके अनेक नेद हैं, सो आगे लिखुगा

तथा श्रावककों उत्सर्ग मार्गमें तो निरवद्य आहार लेनां लिखा है, जे कर शक्ति न होवे, तव सचित्तका त्यागी होवे, जेकर यहनी न कर सके, तो बाईस अनक्ष्य अरु बत्तीस अनतकाय इनका तो जरूर त्याग करे, तिनमें प्रथम बाईस अनक्ष्य वस्तुका नाम लिखते हैं

१ वडके फल, २ पीपलके फल, ३ पिलखणके फल, ४ कवरके फल, ५ गूलरके फल, यह पांचतो फल अनक्ष्य हैं, क्योंकि इन पांचों फलोंमें बहूत सूक्ष्म कीडे त्रस जीव नरे हूये होते हैं, जिनोंकी गिणती नहीं हो सक्ती है, इस वास्ते धर्मात्मा जीव, इन पांचों फलोंकों न खावे, जे कर दौर्भिक्ष्यमें अन्न न मिले, तोनी विवेकी पूर्वोक्त पाच फल नक्षण न करे

६ मदिरा, ७ मांस, ८ मधु, ९ माखण, इन चारोंमें तद्वर्ण असंख्य जीव उत्पन्न होते हैं, अरु यह चारों विगय, महाविगय हैं सो महाविकारकी करनेवाली हैं, तिनमें प्रथम मदिरा त्यागने योग्य है, क्योंकि मदिराके पीनेमें जो दूषण है, सो हेमचंद्रसूरिकृत योगशास्त्रके दश श्लोकोंके अर्थसे लिखते हैं

१ मदिरा पीनेसें चतुर पुरुषकी बुद्धि नष्ट हो जाती है, जैसे दुर्नागी पुरुषकों सुंदर स्त्री ठोड जाती है, तैसें इस पुरुषकों बुद्धी ठोड जाती है, २ मदिरापानी पुरुष, अपणी माता, बहिन, बेटीकों अपणी नार्याकी तरें समज के जोरा जोरीसे विषयनी सेवन कर लेता है, अरु अपणी नार्याकों अपणी माता समजता है, मदिरा पीनेवाला ऐसा निर्लज्ज और महा पापके करने वाला होता है, ३ मदिरापानी, अपनेको अरु परकोनी नहीं

१ प्रथम ऊर्ध्वदिशापरिमाणातिक्रम अतिचार है सो अनाभोगसें अथवा बे सुरतिसें अधिक चला जावे, तो प्रथम अतिचार

२ दूसरा अधोदिशिपरिमाणातिक्रम अतिचार पूर्ववत्

३ तीसरा तिर्य्यग्दिशिपरिमाणातिक्रम अतिचार ऊपर वत् जे कर नियम भंगके भयसें गुमास्ता भेजे, तोभी अतिचार लगे

४ चौथा एक दिशिमें सौ योजन रक्खे हैं, अरु एक दिशिमें पचास योजन रक्खे हैं, पीछे जब एकही दिशिमें डेढसौ योजन जानां पडे, तब दूसरी तरफके पचास योजनभी उसी तरफ जोड लेवे, अरु अज्ञानसें ऐसा विचारे कि मेरे नियमकेही पचास योजन हैं, इस वास्ते मेरे व्रतका भंग नहीं

५ पांचमा स्मृतिअंतर्धान अतिचार सो अपणे नियमके योजनकों भूल जावे, क्या जाने पूर्वदिशिके सौ योजन रक्खे हैं? कि पचास योजन रक्खे हैं? इत्यादि ऐसा संशयके हूए फेर पचास योजनसें अधिक जावे, तो पांचमा अतिचार लग जावे, यह पांच अतिचार वर्जे॥ इति षष्ठव्रतं संपूर्ण

७ अथ सातमा भोगोपभोग व्रतका स्वरूप लिखते हैं यह दूसरा गुणव्रत है इस व्रतके अंगीकार करणेसें सचित वस्तु खानेका त्याग करे, अथवा परिमाण करे, तथा जिसमें बहुत हिंसा होवे, ऐसा व्यापार न करे, तथा जिस काममें अवश्य हिंसा बहुत करनी पडे, तिसका त्याग करे, अभक्ष्य त्यागे, अरु चौदह नियमभी इस व्रतमें गिणे जाते हैं, इस वास्ते यह व्रत पूर्वोक्त पांचही अणुव्रतोंकों गुणकारी है, इस व्रतके दो भेद हैं, सो कहते है

१ प्रथम व्यवहार सो भक्ष्याभक्ष्यका ज्ञान करी त्यागे, दूसरा आश्रव संवरका ज्ञान कर के खान पानादिक जो इंद्रिय सुखका कारण है, उसमें अपणी शक्ति प्रमाण बहुत आरंभ छोडके अल्पारंभी होनां, सो व्यवहार भोगोपभोगविरमण व्रत है

२ दूसरा निश्चयसें, तो श्रीजिनवाणी सुण कर वस्तु तत्त्वस्वरूप जान कर विचारे कि जो जगत्मे परवस्तु है, सो सर्व हेय है, इस वास्ते तत्त्ववेत्ता पुरुष परवस्तुका न खावे, न अपणे पास रक्खे, तब शुद्ध चैतन्य भाव धार के परम शांतिरूप हो कर जो वस्तु सडे, पडे, गिरे, जाती रहे.

सर्व पापोंका मूल है, ४३ मदिरा पीने वाला निश्चय नरक गतिमें जावेगा, ४४ मदिरा सर्व आपदाका स्थान है ४५ मदिरा अकीर्त्तिका कारण है,४५ मदिरा नीच म्लेछ लोक पीते हैं, ४७ गुणीजन लोक जो हैं,सो मदिरा पीनेवालेकी निंदा करते हैं, ४८ मदिरा पछेमें लग जानेंसें तत्काल मरजाता है,४ए मदिरा पीने वालेके मुखसें महादुर्गंध आती है, ५० मदिरा सर्व शास्त्रोंमें निंदित है, ५१ मदिरा पीनेवाला ईश्वरका जक्त नहीं इत्यादि मदिरा पीनेमें अनेक दोष हैं,इस वास्ते श्रावक मदिरा न पीवे, यह छठा अजक्ष्य

सातमा अजक्ष्य मांस है यह मांस जक्षण करनेमें जो दूषण है, सो लिखते हैं जो पुरुष मांस खानेकी इछा करता है, वो पुरुष, दयाधर्मरूपी वृक्षकी जड काटता है, क्योंकि जीवके मारे विना मांस कदापि नहि हो सक्ता है, जे कर कोइ कहेगा कि हम मांसजी खा लेवेगा, अरु प्राणीयोंकि दयाजी करेंगा,ऐसे कहने वालेकों हम उत्तर देते हैं,कि सदा सर्वदा जो मांसके खानेवाले हैं, अरु वो अपने मनमें दयाधर्मी बना चाहता है, वो पुरुष अग्निमें कमल लगाना चाहता है, क्योंकि जब उसने मांस खाया, तब प्राणीयोंकी दया उसके मनमें कदापि नहीं हो सक्ती है, जैसे अबका खानेवाला आम्रफल देखता है, तब उसकी मनसा आंब खानेहीकों दोडती है, तैसें मांसाहारी किसी गौ, जेडी, बकरी, प्रमुखकों देखता है, तब उन जीवोंका मांस खानेकी तर्फ उसकी सुरती दौडती है, ऐसे पुरुषकों दयाधर्म, क्यों कर सजवे ? जे कर कोइ कहेगा कि जीवके मारने वाला सौकरिक अर्थात् कसाइ है, तिस पासों बना बनाया मांस ल्या कर खावे, तो क्या दोष है ? ऐसे मूढमतिकों उत्तर देते हैं, कि जो मांस खानेवाला है, वोजी जीवका हिंसक है, क्यों कि जगवतने शास्त्रोंमें सात जनोंकों घातक (हिंसक) अर्थात् कसाइही कहा है, उसका नाम कहते हैं एक जीवके मारने वाला, दूसरा मांस वेचने वाला, तीसरा मांस रंधने वाला, चौथा मांस जक्षण करने वाला, पांचमा मांस खरीदने वाला, छठा मांसकी अनुमोदना करने वाला, सातमा पितरोंके, देवताओंकों, अतिथिकों, मांस देने वाला, यह सात साक्षात् परंपरा करकें घातक अर्थात् जीववधके करने वाले है, मनुजीजी मनुस्मृतिमें कहते हैं ॥श्लोक॥ अनुमता विशसिता, निहता क्रयविक्रयी॥ संस्कृता चोपहर्त्ता च, खादकश्चेति

जानता, ४ मदिरापानी, अपणे स्वामीकों अपणा किंकर जानता है, अरु अपणेकों स्वामी जानता है, एसी निर्लज्ज बुद्धिवाला होता है, ५ मदिरा पीने वाले पुरुषकों चौकमें लेटा हूआ देख कर मुदरि जान कर, कुत्ते उसके मुदमें मूत जाते हैं, ६ मदिराके रसमें मग्न पुरुष चौकमें नंगा मादर जात, निर्लज्ज हो कर, सो जाता है ७ मदिरा पीने वालेने जो अगम्य गम्य, चोरी, यारी, खून प्रमुख कुकर्म करे हैं वो सर्व लोकोंके आगें प्रकाश देता है ८ मदिरा पीनेसें शरीरका तेज, कीर्त्ति,यश,तात्कालिकी बुद्धि, यह सब नष्ट हो जाते हैं ९ मदिरापानी जूत लगेकी तरें नाचता है, १० मदिरा पीने वाला कीचड और गदकीमें लोटता है, ११ मदिरा पीनेसें अंग शिथिल हो जाते हैं, १२ मदिरा पीनेसें इंद्रियोंकी तेजी घट जाती है, १३ मदिरा पीनेसें बडी मूर्छा आजाती है,१४ मदिरा पीनेवालेका विवेक नष्ट हो जाता है, १५ सयम नष्ट हो जाता है,१६ ज्ञान नष्ट हो जाता है, १७सत्य नष्ट हो जाता है, १८ शौच नष्ट हो जाता है,१९ दया नष्ट हो जाती है,२० क्षमा नष्ट हो जाती है,जैसें अग्निसें तृण जस्म हो जाते हैं, तैसें पूर्वोक्त गुणजी उसका नष्ट हो जाते हैं, २१ मदिरा है, सो चोरी, अरु परस्त्रीगमनादिकोंका कारण है, क्योंकि मदिरा पीनेवाला कौनसा कुकर्म नहीं कर सक्ता है ? २२ मदिरा, आपदा तथा वध, बधनादिकोंका कारण है, २३ मदिरेके रसमें बहुत जीव उत्पन्न होते हैं, इस वास्ते दया धर्मिकों मदिरा न पीनी चाहिये २४ मद्य पीने वाला दीयेकों अणदीया कहता है, २५ लीयेकों नहीं लीया कहता है, २६ करेकों न करा कहता है, २७ मद्यपी, घरमें तथा बाहिर, पराये धनकों निर्जय हो कर लूट लेता है, २८ मदिरेके उन्मादसे बालिका, यौवनवती, वृद्धा, ब्राह्मणी, चांमालिनी प्रमुख स्त्रीयोसें जोग कर लेता है, २९ मद्यप थरराट शब्द करता है, ३० गीत गाता है, ३१ लोटता है, ३२ दौडता है, ३३ क्रोध करता है, ३४ रोता है, ३५ हसता है,३६ स्तंजवत् हो जाता है, ३७ नमस्कार करता है ३८ भ्रमता है, ३९ खडा रहता है, ४० नटकी तर अनेक नाटक करता है, ४१ असी वो कौनसी दुर्दशा है जो मदिरा पीने वालेको नहीं होती है ? शास्त्रोंमें सुणते है कि सांब कुमारने मदिरा पी कर द्वैपायन रूषिकों सताया, तब द्वैपायनने द्वारकाको दग्ध कीया, ४२ मदिरा पीनी,वो

अथ निरुक्त बल करकेनी मांस त्यागने योग्य है, सो कहते हैं ॥ श्लोक ॥ मासन्नक्षयितामुत्र, यस्य मांसमिहाद्म्यहं ॥ एतन्मांसस्य मांसत्वे, निरुक्त मनुरब्रवीत् ॥ १ ॥ अस्यार्थ – जिसका मांस में खाता हूं, वो जीव मुफकों परनवमें नक्षण करेगा, यह निरुक्तसें मनुजी मांस का अर्थ कहते हैं, मांसनक्षण वालेको महा पाप लगता है, जो पुरुष मांस नक्षणमें लपट है, वो पुरुष जिस जिस जीवकों जलचर मत्स्यादि कों, स्थलचर मृग, सूअर प्रमुखकों, खेचर तित्तर लाल वटेरे प्रमुखकों देखता है, तिस तिसकों मारकें खानेकी बुद्धि करता है, फाकनकी तरें सर्वकों खाया चाहता है, मांस खानेवाला उत्तम पदार्थोंका परिहार करके नीच पदार्थके लेनेमें उद्यत होता है, जैसें काग, पचामृत छोड कर विष्टेमें चांच देता है, तिसी तरें जान लेना इसका नाम तो निर्विवेकता है, ॥ श्लोक ॥ ये नक्षयंति पिशितं, दिव्यनोज्येषु सत्स्वपि ॥ सुधारस परित्यज्य, नुंजते ते हलाहल ॥ १ ॥ अर्थ – सकल धातुओंके वृद्धि करने वाला दिव्य नोजन विद्यमान हूआ, सर्व इंडियोंके आल्हादजनक दूध, क्षीर, किलाट, कूर्चिका, रसाल, दधि आदिक, मोदक, मदक, मफिका, खाजे, पापड, घेवर, श्फरिका, खमवडे, पूरणवडे, गुडपापडी, इक्षुरस, गुड, मिसरी, शाक्ष, आंब, केले, अनार, नालियर, नारंगी, सतरे, खजूर, अक्षोट, राजादनखिरणी, फनस, अलूचे, बदाम, पिस्तां इत्यादि अनेक दिव्य नोजनोंकों छोड के मूढमति, विस्त्रगंधि, सूगवाला, वमनका करनेवाला, ऐसा बिनत्स्य मांसकों नक्षण करता है, वो जीव, जीवितव्यकी वृद्धि वास्ते अमृत रस छोड कर जीवितांतकारी, हालाहल विष नक्षण करता है, बालक जे होता है, सोनी पत्थरकों छोड कर सुवर्णकों ग्रहण करता है, अरु जे मांसाहारी पुरुष है, वो जे मांससेंनी अधिक पुष्टताके करने वाला ऐसे दिव्य नोजन हैं, तिनकों छोड के मांस खाता है, तो वो बालकसेंनी अज्ञानी है

और तरेंसें मांसनक्षणमें दूषण लिखते हैं जे निर्दय पुरुष है, उसकों धर्म नहीं, क्योंकि धर्मका मूल दया है, ये बात सर्व सत जन मानते हैं, अरु मांसाहारीकों दया तो है नहीं, मांस खाने वालेकों पूर्वे कसाइ कहा है, इस वास्ते मांसाहारीके धर्म नहीं

घातका ॥ १ ॥ अस्यार्थ – १ अनुमोदक केतां अनुमोदन करने वाला, २ विशसिता केतां मारे हुये जीवके अंगका विनाश करने वाला, ३ निहंता केतां मारने वाला, ४ मांसका वेचनेवाला, ५ मांसका रांधने वाला, ६ मांसका परोसने वाला, ७ मांसका खाने वाला यह सातों घातकी हैं, अर्थात् जीवके वध करने वाले हैं, दूसरा श्लोकभी मनुस्मृतिका लिखते हैं ॥श्लोक ॥ अकृत्वा प्राणिनां हिंसां,मांसनोत्पद्यते क्वचित् ॥ नच प्राणिवध स्वर्ग, स्तस्मान्मांस विवर्जयेत् ॥ २ ॥ अस्यार्थ – जितना चिर जीवकों न मारे, तहां तक मांस नही होता है, अरु जीववधसें स्वर्ग नहीं अपितु नरक गति होती है, इस वास्ते मांस खाना वर्जे ॥ २ ॥

अब मांस खाने वालेकोंही वधकपणा है, यह बात कहते हैं दूसरा जीवोंका मांस जो अपने मांसकी पुष्टाइके वास्ते खाते हैं, वास्तवमें वेही कसाइ हैं, क्यों कि जे कर खानेवाले न होवे, तो काहेकों कोइ जीवकोंभी मारे ? जो पर प्राणीयोंकों मार करके अपणेकों सप्राण करते हैं, वे जीव थोडीसी जिंदगीके वास्ते अपणा नाश करते हैं, एक अपणे जीवने वास्ते क्रोडों जीवोंकों जो दुःख देता है, तो वो क्या सदा काल जीता रहेगा ? जिस शरीरमें सुंदर मिष्टान्न, विष्टा हो जाता है, अरु दूध प्रमुख अमृत वस्तुओं मूत्र हो जातीयां है, तिस शरीरके वास्ते कौन बुद्धिमान् जीववध अरु मांस भक्षण करे ?

जे केइ महामूढ, निर्विवेकी, लिख गये हैं, कि मांसभक्षण करनेमें दूषण नहीं, वेभी म्लेछ थे, क्यों कि वे लिखते हैं ॥ श्लोक ॥ न मांसभक्षणे दोषो, न मद्ये न च मैथुने ॥ प्रवृत्तिरेषा भूताना, निवृत्तिस्तु महाफला ॥ १ ॥ इस श्लोकके कहने वालोने व्याध, गृध्र, भेडीये, श्वान, (कुत्ते), व्याघ्र, गीदड, काग प्रमुख हिंसक जीवोको अपना धर्मोपदेश गुरु माने है, क्योकि जे कर ये पूर्वोक्त गुरु न होते तो इनको मांस खाने कौन सिखाता ? विना गुरुके उपदेशके पुज्यजन उपदेश नहीं देते हैं, इस श्लोक बनाने वालोंकी अज्ञानता देखिये, वे कहते हैं कि मांस खानेमें, मदिरा पीनेमें, अरु मैथुन सेवनेमें पाप नहीं, परंतु निवृत्तिस्तु महाफला इनमें जो निवृत्ति करे तो महाफल है, यह स्ववचन विरोध है, क्योंकि जिसके करनेमें पाप नहीं, उसके त्यागनेमें धर्मफल कदापि नहीं हो सक्ता है

अथ निरुक्त वल करकेभी मांस त्यागने योग्य है, सो कहते हैं ॥ श्लोक ॥ मांसभक्षयितामुत्र, यस्य मांसमिहाद्म्यहं ॥ एतन्मांसस्य मांसत्वे, निरुक्त मनुरब्रवीत् ॥ १ ॥ अस्यार्थ – जिसका मांस में खाता हूं, वो जीव मुझकों परभवमें भक्षण करेगा, यह निरुक्तसें मनुजी मांस का अर्थ कहते हैं, मांसभक्षण वालेकों महा पाप लगता है, जो पुरुष मांस भक्षणमें लपट है, वो पुरुष जिस जिस जीवकों जलचर मत्स्यादि कों, स्थलचर मृग, सूअर प्रमुखकों, खेचर तित्तर लाल वटेरे प्रमुखकों देखता है, तिस तिसकों मारकें खानेकी बुद्धि करता है, डाकनकी तरें सर्वकों खाया चाहता है, मांस खानेवाला उत्तम पदार्थोंका परिहार करके नीच पदार्थके लेनेमें उद्यत होता है, जैसें काग, पंचामृत छोड कर विष्टेमें चांच देता है, तिसी तरें जान लेना इसका नाम तो निर्विवेकता है, ॥ श्लोक ॥ ये भक्षयंति पिशितं, दिव्यभोज्येषु सत्स्वपि ॥ सुधारस परित्यज्य, भुंजते ते हलाहलं ॥ १ ॥ अर्थ – सकल धातुओंके वृद्धि करनेवाला दिव्य भोजन विद्यमान हूआं, सर्व इंद्रियोंके आल्हादजनक दूध, क्षीर, किलाट, कूर्चिका, रसाल, दधि आदिक, मोदक, मदक, मण्डिका, खाजे, पापड, घेउर, इन्दरिका, खमणवडे, पूरणवडे, गुडपापडी, इक्षुरस, गुड, मिसरी, डाक्ष, आंब, केले, अनार, नालियर, नारंगी, सतरे, खजूर, अक्षोट, राजादनखिरणी, फनस, अलूचे, बदाम, पिस्तां इत्यादि अनेक दिव्य भोजनोंकों छोड के मूढमति, विस्रगंधि, सूगवाला, वमनका करनेवाला, ऐसा बिभत्स्य मांसकों भक्षण करता है, वो जीव, जीवितव्यकी वृद्धि वास्ते अमृत रस छोड कर जीवितांतकारी, हालाहल विष भक्षण करता है, बालक जे होता है, सोभी पत्थरकों छोड कर सुवर्णकों ग्रहण करता है, अरु जे मांसाहारी पुरुष है, वो जे मांससेंभी अधिक पुष्टताके करनेवाला ऐसे दिव्य भोजन हैं, तिनकों छोड के मांस खाता है, तो वो बालकसेंभी अज्ञानी है

और तरेंसें मांसभक्षणमें दूषण लिखते हैं जे निर्दय पुरुष है, उसकों धर्म नहीं, क्योंकि धर्मका मूल दया है, ये बात सर्व सत जन मानते है, अरु मांसाहारीकों दया तो है नहीं, मांस खाने वालेकों पूर्वे कसाइ कहा है, इस वास्ते मांसाहारीके धर्म नहीं

प्रश्न.—मांसाहारी आपने आपकों अधर्मी क्यों बनाता है ?

उत्तर — मांसके स्वादमें लुब्ध हूआ वो धर्म,दया,कुछ नहीं जानता है, जें कर कदाचित् जानजी जाता है, तोजी आप मांसलुब्ध है, इस्सें मांसकों त्याग करनेकूं समर्थ नहीं, इस वास्ते वो मनमें विचार करता है, कि मेरे समानही सर्व हो जावे, ऐसा जान कर औरोंकोंजी मांसजक्षण न करनेका उपदेश नहीं करता है

अब मांस जक्षण करनेवाले महामूढ हैं, यह बात कहते हैं कितनेक मूढमति आप तो मांस नहीं खाते हैं, परंतु देवता, पितर, अतिथि, इनकों मांस चढा देते हैं, क्यों कि उनके शास्त्रकारक कहते हैं ॥ श्लोक ॥ क्रीत्वा स्वयं वा उत्पाद्य, परोपहृतमेव वा ॥ देवान् पितॄन् समन्यर्च्य,खादन् मांस न डुष्यति ॥ १ ॥ यह श्लोक मृगपक्षीयोंके विषयमें है, इसका अर्थ कहते है कसाईकी डुकान विना व्याध, शकुनिकादिकोंसें अर्थात् शिकारी और जानवरोंके मारने वालोंसें मांस मोलसें ले कर देवता, अतिथि, पितरोंकों देना चाहियें क्यों कि वे लिखते हैं कि कसाईकी डुकानके मांससें देवता पितरोकी पूजा नहीं होती है, तातें आप मांस उत्पन्न करकें पितृ आदिकोंकू देवे तो पितृआदि प्रसन्न होते हैं, सो इस प्रकारसू मांस उत्पन्न करे, कि ब्राह्मण तो मांग कर मांस ल्यावे, औ क्षत्रिय शिकार मारकें मांस ल्यावे, अथवा किसीने मांस जेट करा होवे, उस मांससें देवता पितरोंकी पूजा करकें फेर मांस खावे, तो दूषण नहीं, यह सर्व महामूढ और मिथ्यादृष्टियोंका कहनां है, क्योंकि दयाधर्मी आस्तिकमत वालोंकों तो मांस दृष्टिसेंजी देखनां योग्य नहीं, तो फेर देवता पितरोंकी पूजा मांससें करनी, यह तो धर्मीकों स्वप्नेमेंजी न होवेगी, इस वास्ते देवताओंकों मांस चढानां यह बुद्धिमानोका काम नहीं, कारण के देवता तो बडे पुण्यवान् है, कवल आहार करते नहीं है, तो फेर जुगुप्सनीय मांस क्यों कर खावे ? जो कहते है कि देवता मांस खाते है, वे महा अज्ञानी है, अरु पितर जो है, वेतो अपणे अपणे पुण्य पापके प्रजावसें अधो ऊ री गतिको प्राप्त हो गये है, अपणे करे हूये कर्मोका फल जागते है, पुत्रके करे हुए कर्मका उनको कुछजी फल नहीं लगता है, तब मांस दानरूप पापका तो क्या कहना है ? पुत्रादिकोंका सुकृत करनी तिनको नही।

मिलता है, क्योंकि आंवके सींचनेसें केलेमें फल नहीं फलता है, अरु अतिथिकी नक्ति वास्ते जो मास देना है, सोतो नरकपातका हेतु अरु म हा अधर्मका कारण है, यहा कोई असें कहे कि जो वात श्रुति स्मृतिमे है, वो माननी चाहियें.

उत्तर —यह कहना ठीक नहीं है, जो वात श्रुतिमें अप्रामाणिक है, वो बुद्धिमान् कदापि नहीं मानेंगे, क्योंकि श्रुतिमें हम असे सुनते हैं, " व चांसि नूयासि यथा पापघ्नो गोस्पर्शो द्रुमाणां च पूजागादीनाच पूजागा दीनां च वध स्वर्ग्य ब्राह्मणनोजनं पितृप्रीणन मायावीन्यधिदेवतानि व न्हौ हुतं देवप्रीतिप्रद" असा कथन जो श्रुतियोंमें है, तिसको युक्ति कुश ल पुरुष कदापि नहीं मानेंगे, तिस वास्ते यही महा अज्ञान है, कि जो मांस करकें देवताओंकी पूजा करणी कितनेक कहते हैं कि जैसें मत्रों क रकें सस्कृत अग्नि, दाह नहीं करती है,तैसेंही मत्रों करकें मांसनी सस्कार करा हूआ दोषके वास्ते नहीं होता है, यह कथन मनुजीका है ॥श्लोक॥ असस्कृतान् पशून्मत्रै, नांद्याद्विप्र कथचन ॥ मत्रैश्चसस्कृतानद्या, ठाश्वतं विधिना स्थित ॥ १ ॥ अर्थ —मत्रों करकें असस्कृत पशुओंका मांसकों ब्राह्मण न खावे, अरु जो मत्रों करकें सस्कृत पशु हैं, तिनका मांस खावे, तो शाश्वतोनित्यो वैदिक जानना

उत्तर – मत्र करकें जो मांस पवित्र कीया है, वो मांसकों धर्मी पुरुष कदापि नक्षण न करे, क्योंकि मत्र जैसें अग्निका दाह शक्तिकों रोकता है, तैसें नरकादि प्रापण शक्ति जो मांसकी है, उसको नहीं दूर कर सक्के, जे कर दूर कर देवें तब तो सर्व पाप करकें पीछें पापका हनने वाला मत्रके स्मरण मात्रसेंही सर्व पाप दूर हो जाने चाहियें, तब तो जो वेदोंमें पाप का निषेध करा है, सो सर्व निरर्थक हूआ, क्यों कि सर्व पापोका मत्रके स्मरणसेंही नाश हो गया, इस वास्ते यहनी अज्ञोंहीका कहना है,

तथा कोइ कहते हैं कि जैसें थोडासा मद्य पीनेसें नशा नहीं चढता है, तैसें थोडासा मांस खानेमेंनी पाप नहीं लगता है

उत्तरः— बुद्धिमान् यवमात्रनी मांस न खावे, क्यों कि थोडानी विष दुःखदायी होता है, तैसें थोडानी मांस खाना सोनी दोषके तांइ है

अब मांस खानेमें अनुत्तर दूषण कहते हैं, तत्काल इस मांसमें संमूर्छिम जीव उत्पन्न होते हैं, अरु अनंत निगोद रूप जीव तिनका संतान वार वार होना तिस करके दूषित हैं, यदाहु आमासु अपकासु, अविपच्चमाणासु मंसपेसीसु ॥ सयय चिय उववाओ, भणिओ निगोय जीवाण ॥ १ ॥ अर्थ—कच्ची तथा अपक्क ऐसी जो मांसकी पेसी बोटी रंधती है, तिसमें निरंतर निगोदके जीव उत्पन्न होते हैं, इस वास्ते मांसका खाना जो है, सो नरकमें जाने वालोंको पूरी खरची है,इस कारण के लीये बुद्धिमान् पुरुष जो है सो मांस कदापि न खावे

अथ यह मांस खाना किन्होने कथन करा है,तिनोका नाम लिखते हैं. १ मांस खानेके लोभीयोने, २ मर्यादा रहितोने, ३ नास्तिको ने, ४ थोडी बुद्धि वालोंने, ५ खोटे शास्त्रोंके बनाने वालोंने, ६ वैरीयोंने, मांस खाना कहा है तथा मांसाहारीसें अधिक कोइ निर्दयी नहीं तथा मांसाहारीसें अधिक कोइ नरककी अग्निका इंधन नहीं गदगी खा कर जो सूअर अपणे शरीरकों पुष्ट करता है, सो अच्छा है, परंतु जीवकों मारके जो निर्दयी हो कर मांस खाता है, सो अच्छा नहीं है

प्रश्न – सर्व जीवोंका मांस खाना तो सर्व कुशास्त्रोंमें लिख दीया है, परंतु मनुष्यका मांस खाना तो कहीं किसी शास्त्रमें नहीं लिखा है, इसका क्या हेतु होगा ?

उत्तर –अपने मांसकी रक्षा वास्ते मनुष्यका मांस खाना नहीं लिखा, क्यों कि वे कुशास्त्रोंके बनाने वाले जानते थे कि जो मनुष्यका मांस खाना लिखेंगे,तो मनुष्य कबी हमकोंही न खा लेवे ? इस शंकासें नहीं लिखा, तो जो पुरुषमांसमें अरु पशुमांसमें विशेष नहीं मानता है,तिस समान कोइ धर्मी नहीं,अरु तिसमें जो भिन्न मानके मांस खाते है इस समान कोइ पापी नी नहीं, तथा मांस जो है, तिसकी रुधिरसेंती उत्पत्ति होती है, अरु विष्टाके रससें वृद्धि होती है, तथा लहु जिसमें भरा रहता है, अरु कृमि जिसमें है, [illegible] होते है,ऐसे मांसकों कौन बुद्धिमान् खाता है ? आश्चर्य तो यह है री गतिका प्रात[illegible]चिमूल तो धर्म कहते है,अरु सप्त धातुसे जो मांस [illegible] अके करे हुए कर्मका [illegible]डको मुखमें दांतास चाबते है, अब उनका कृर्ता रूप पापका ता क्या कहना। शुचिधर्मवाले मानीये ? यह आश्चर्य है, जिन

डुष्टोंकी ऐसी समझ है, कि अन्न और मांस यह दोनो एक सरीखे हैं, तिनकी बुद्धिमें जीवित अरु मृत्युके देनेवाले अमृत और विषजी तुल्यही हैं,

अरु जो जडबुद्धि ऐसा अनुमान करते हैं,कि मांस खाने योग्य है,इति प्राणीका अंग होनेसें यह हेतु उदनादिवत् यह दृष्टांतसें यह मांसजी प्राणीका अंग है, इस वास्ते मांसजी खाने योग्य है,तब तो गौका मूत तथा माता, पिता, जार्या, वेटी, इनका मूत पुरिषजी क्यों नहीं पीते खाते हैं? क्योंकि यहजी प्राणीका अंग है, तथा अपनी जार्याकी तरें अपनी माता, बहिन, वेटीकों क्यों नहीं गमन करते हैं? स्त्रीत्व अरु प्राणी अंगत्व सर्व जगे बराबर है, तथा जैसें गौका दूध पीते हैं, तैसें गौका रुधिर तथा माता पितादिकोंका रुधिरजी क्यों नहीं पीते हैं? क्योंकि प्राणी अंग हेतु तो सर्व जग्गे तुल्य हैं, इस वास्ते जो अन्न और मांस इन दोनोकों तुल्य जानते हैं, वेजी महा पापीयोंके सिरदार हैं,

तथा शखकों शुचि मानते है, परंतु पशुके हाडकों कोइ शुचि नहीं मानता, इस वास्ते अन्न और मांस यद्यपि प्राणी अंग हैं, तोजी अन्न जक्ष्य है, अरु मांस अजक्ष्य है, एक पंचेंद्रिय जीवका वध करकें जो मांस खाता है, जैसी तिसकों नरकगति होती है, तैसी खोटी गति, अन्न खानेवालेकों नहीं होती है, क्योंकि अन्न मांस नहीं हो सक्ता है, मांसकी तसीरोंसें अन्नकी तसीरें और तरेंकी हैं, मांस महाविकारका करने वाला है, तैसा अन्न नहीं इत्यादि विलक्षण स्वजाव है, इस वास्ते मांस खाने वालोंकी नरकगति जान कर सत पुरुष अन्नके जोजनसें तृप्ति मानते हैं,अरु सरस पदकों प्राप्त होते हैं, यह तो मांसके दूषण श्रीहेमचंद्र सूरिकृत योगशास्त्रके अनुसार लिखे हैं अरु इस कालमेंजी युरूपियन लोक जो बुद्धिमान् हैं, उनोनेजी मांस खानेमें चौवीस दूषण प्रगट करे हैं, अरु मदिरा पीनेसें जो खरावीयां होती हैं, तिनकी तो गिणतीजी नहीं है,इस वास्ते मदिरा अरु मांस यह दोनों अजक्ष्यकों श्रावक त्यागे यह सातवा अजक्ष्य कहा

८ आठमा अजक्ष्य माखण है, क्योंकि जैन मतके शास्त्रानुसारे बाबसें बाहिर काढे माखणकों जब अंतर मुहूर्त्त अर्थात् दो घडीके लगजग काल व्यतीत हो जाता है, तब उस माखणमें सूक्ष्म जीव तद्वर्णके उत्पन्न हो जाते हैं, इस वास्ते माखण खाना वर्जित है जैन लोकोंकों बाबसे बाहिर

अब मांस खानेमें अनुत्तर दूषण कहते हैं, तत्काल इस मांसमें कृमि जीव उत्पन्न होते हैं, अरु अनत निगोद रूप जीव तिनका सतत वार वार होना तिस करके दूषित हैं, यदाहु आमासु अपक्वासु, अवि पच्चमाणासु मसपेसीसु ॥ सयय चिय उववाउ, भणिउ निगोय जीवाण ॥ १ ॥ अर्थ—कची तथा अपक्व ऐसी जो मांसकी पेसी बोटी रंधती है तिसमें निरतर निगोदके जीव उत्पन्न होते हैं, इस वास्ते मांसका खाना जो है, सो नरकमें जाने वालोंकों पूरी खरची है,इस कारण के लीये बुद्धिमान् पुरुष जो है सो मांस कदापि न खावे

अथ यह मांस खाना किन्होने कथन करा है,तिनोका नाम लिखते है १ मांस खानेके लोभीयोने, २ मर्यादा रहितोंने, ३ नास्तिको ने, ४ थोड़ी बुद्धि वालोंने, ५ खोटे शास्त्रोंके बनाने वालोंने, ६ वैरीयोंने, मांस खाना कहा है तथा मांसाहारीसें अधिक कोइ निर्दयी नहीं तथा मांसाहारीसें अधिक कोइ नरककी अग्निका इधन नहीं गदगी खा कर जो सुअर अपणे शरीरकों पुष्ट करता है, सो अच्छा है, परंतु जीवकों मारके जो निर्दयी हो कर मास खाता है, सो अच्छा नहीं है.

प्रश्न – सर्व जीवोंका मास खाना तो सर्व कुशास्त्रोंमें लिख दीया है परंतु मनुष्यका मांस खाना तो कहीं किसी शास्त्रमें नहीं लिखा है इसका क्या हेतु होगा ?

उत्तर –अपने मांसकी रक्षा वास्ते मनुष्यका मांस खाना नहीं लिखा क्यो कि वे कुशास्त्रोके बनाने वाले जानते थे कि जो मनुष्यका मांस खाना लिखेंगे,तो मनुष्य कबी हमकोंही न खा लेवे ? इस शंकासें नहीं लिखा, तथा जो पुरुषमांसमें अरु पशुमांसमें विशेष नहीं मानता है,तिस समान कोइ धर्मी नहीं,अरु तिसमें जो भिन्न मानके मांस खाते है इस समान कोइ पापी नहीं, तथा मांस जो है, तिसकी रुधिरसंती उत्पत्ति होती है, अरु विषेले रससे वृद्धि होती है, तथा लहु जिसमें भरा रहता है, अरु कृमि जिसमें उत्पन्न होते है,ऐसे मांसकों कौन बुद्धिमान् खाता है ? आश्चर्य तो यह है कि ब्राह्मण लोक शुचिमूल तो धर्म कहते है,अरु सप्त धातुसे जो मांस बना बनते है, तिस मास हाडकों मुखम दांतोंसे चबाते है, अरु उनका कृमि के समान समजीए कि शुचिधर्मवाले मानीये ? यह आश्चर्य है. भिन

डष्टोंकी ऐसी समझ है, कि अन्न और मांस यह दोनो एक सरीखे हैं, तिनकी बुद्धिमें जीवित अरु मृत्युके देनेवाले अमृत और विषन्नी तुल्यही हैं,
अरु जो जडबुद्धि ऐसा अनुमान करते हैं,कि मांस खाने योग्य है,इति प्राणीका अग होनेसें यह हेतु उदनादिवत् यह दृष्टांतसें यह मांसन्नी प्राणीका अग है, इस वास्ते मांसन्नी खाने योग्य है,तब तो गौका मूत तथा माता, पिता, नार्या, बेटी, इनका मूत पुरिषन्नी क्यों नहीं पीते खाते हैं ? क्योंकि यहन्नी प्राणीका अग है, तथा अपनी नार्याकी तरें अपनी माता, बहिन, बेटीकों क्यों नहीं गमन करते हैं ? स्त्रीत्व अरु प्राणी अंगत्व सर्व जगे बराबर है, तथा जैसें गौका दूध पीते हैं, तैसें गौका रुधिर तथा माता पितादिकोंका रुधिरन्नी क्यों नहीं पीते हैं ? क्योंकि प्राणी अग हेतु तो सर्व जग्गे तुल्य हैं, इस वास्ते जो अन्न और मांस इन दोनोकों तुल्य जानते हैं, वेन्नी महा पापीयोंके सिरदार हैं,
तथा शखकों शुचि मानते हैं, परतु पशुके हाडकों कोइ शुचि नहीं मानता, इस वास्ते अन्न और मांस यद्यपि प्राणी अग हैं, तोन्नी अन्न नक्ष्य है, अरु मांस अनक्ष्य है, एक पंचेंड्रिय जीवका वध करकें जो मांस खाता है, जैसी तिसकों नरकगति होती है, तैसी खोटी गति, अन्न खानेवालेकों नहीं होती है, क्योंकि अन्न मांस नहीं हो सक्ता है, मांसकी तसीरोंसें अन्नकी तसीरें और तरेंकी हैं, मांस महाविकारका करने वाला है, तैसा अन्न नहीं इत्यादि विलक्षण स्वनाव है, इस वास्ते मांस खाने वालोंकी नरकगति जान कर सत पुरुष अन्नके नोजनसें तृप्ति मानते हैं,अरु सरस पदकों प्राप्त होते हैं, यह तो मांसके दूषण श्रीहेमचंद्र सूरिकृत योगशास्त्रके अनुसार लिखे हैं अरु इस कालमेंन्नी युरूपियन लोक जो बुद्धिमान् हैं, उनोनेन्नी मांस खानेमें चौवीस दूषण प्रगट करे हैं,अरु मदिरा पीनेसें जो खराबीयां होती हैं, तिनकी तो गिणतीन्नी नहीं है,इस वास्ते मदिरा अरु मांस यह दोनों अनक्ष्यकों श्रावक त्यागे यह सातवा अनक्ष्य कह्या –
८ आठमा अनक्ष्य माखण है, क्योंकि जैन मतके शास्त्रानुसारे गठसे बाहिर काढे माखणको जब अंतर मुहूर्त्त अर्थात् दो घडीके लगनग काल व्यतीत हो जाता है, तब उस माखणमें सूक्ष्म जीव तद्वर्णके उत्पन्न हो जाते हैं, इस वास्ते माखण खानां वर्जित है जैन लोकोंकों गठसें बाहिर

माखण निकालके तत्काल अग्निके संयोगसें घी बनाके गालके देखके पीछेसें खाना चाहियें, क्यों कि एक तो इस रीतिसें शास्त्रोक्त जीव उत्पन्न नहीं होते हैं, तिनकी हिंसाभी नहीं होती है, अरु मकडी, कसारी, मच्छरादि, जानवरों के अवयव टांग प्रमुखभी घी गाणेसें निकल जाते हैं, अरु माखण काम कीभी वृद्धि करता है, तब मनमें खोटे विकल्प उत्पन्न होते हैं, इस वास्तेभी श्रावकको माखण न खाना चाहियें, तथा एक जीवके वध करनेसेंभी जब पाप होता है, तब तो पूर्वोक्त रीतीसें माखन तो जीवोंकाही पिंड हो जाता है, तब माखनके खानेमें पापकी क्या गिनती है ?

प्रश्न –माखनमें तो दो घडी पीछें कोई भी जीव उत्पन्न हूआ हम नहीं देखते हैं, तो फेर माखनमे दो घडी पीछें हम क्योंकर जीव मान लेवें ?

उत्तर –जो जैनमतके शास्त्रोंको सत्य मानेगा वो तो शास्त्रकारका कथन सत्यही मानेगा, अरु जो जैनके शास्त्रोंको सत्य नहीं मानता,वो चाहो सत्य माने, चाहो न माने परंतु हम आगम प्रमाणके विना इस बातमें और प्रमाण नहीं दे सकते हैं, क्योंकि वस्तु दो तरेंकी होती है, एक हेतुगम्य,दूसरी आगमगम्य,तो माखनद्विदलादिमे जो जीव उत्पन्न होते हैं, वे हेतुगम्य नहीं किंतु आगम गम्य हैं, इस वास्ते जो आगम सर्वज्ञ जिन अर्हंत वीतरागका कह्या हूया है, उसीका कहा माननां चाहियें, जे कर कोई पुरुष किसीभी शास्त्रको न मानेगा,आंखोसे देखी वस्तुही मानेगा, तब तो नरक स्वर्गादि जो अदृष्ट हैं,उनकोंभी न माननां चाहियें,तथा परमेश्वर चौदवे तथा सातवे असमान उपरि रहता है,तथा स्वर्ग अरु नरकमें पुण्य पाप करनेसें जीव जाता है, यहभी न माननां पडेगा, इस वास्ते आगम प्रमाणभी मानना चाहियें क्योंकि सर्ववस्तु हमारी दृष्टिमे नहीं आती है

८ नवमा अभक्ष्य मधु, अर्थात् सहत है, उसका स्वरूप लिखते हैं यह सहत जो है, सो अनेक जीवोंकी घात होनेसें उत्पन्न होता है, यह तो परलोक विरोध दोष है, अरु मधु (सहत) जुगुप्सनीय (निंदने योग्य) है, मुखकी लालवत् यह इहलोक विरुद्ध दोष है, इस वास्ते श्रावकधर्मीको मधु न खाना चाहियें

अब मधु अर्थात् सहत खानेवालेको पापी पणा दिखाते हैं, ॥श्लोक॥ भक्षयन्माक्षिकं क्षुद्र, जंतुलक्षक्षयोद्भवं ॥ स्तोकजंतु निहंतृभ्य, सौनिकेभ्यो:

तिरिच्यते ॥१॥ अर्थ –क्षुद्रजंतु जो छोटे जीव अथवा हाड रहित जीव, तिनोंके लाखोंका नाश उपलक्षणसें बहुत जीवोंका जब विनाश होता है, तब मधु उत्पन्न होता है,जब मधु नक्षण करता है,तब थोडे पशु मारनेवाले कसाइसेंन्नी उसकों अधिक पाप लगता है,क्यों कि जो नक्षक है, सो न्नी घातक है,यह बात उपर लिख आये हैं तथा लोकमें यह व्यवहार है, जो जूठा नोजन नहीं खाना, अरु यह जो मधु है, सो तो महा जूठ है, क्योंकि एकेक फूलसें रस (मकरद) पी करके मक्षीयोंजो वमन करतीयों हैं सो सहत हैं मधु है इस वास्ते धर्मी पुरुषकों जूठ न खानी चाहियें यह लौकिक व्यवहारमें प्रसिद्ध है

कोइ कहेगा कि मधु तो त्रिदोषका दूर करने वाला है, इस लिये रोग दूर करने वास्ते औषधिमें नक्षण करे तो क्या दोष है? इत्यादि

उत्तर –अप्यौषधकृतेजग्ध,मधुश्वन्ननिबधन ॥ नक्षितप्राणनाशाय, कालकूटोकणोऽपि हि ॥ १ ॥ अर्थ –जो कोइ रसकी लंपटतासें मधु खावे, उसकी बात तो दूर रही, परंतु जो औषधिके वास्तेन्नी मधु खावे,सो यद्यपि रोगादि अपहारक है, तोन्नी नरकका कारण है, हि यस्मात् प्रमादके उदयसें जीवनेका अर्थी हो कर कें जो कोइ कालकूट विषका एक कणन्नी खायगा, सो जरूर प्राण नाशके तांइ होवेगा

प्रश्न –मधु तो खजूर डाक्षादि रसकी तरें मीठा है,सर्व इंडियोंकों सुखकारी है, तो फेर इसकों त्यागने योग्य क्यों कहते हो?

उत्तर – सत्य है. जो मधु मीठा है, यह व्यवहारसें है,परंतु परमार्थसें तो नरककी वेदनाका हेतु होनेंसें अत्यंत कडूआ है,

अब जो मधुकों पवित्र मान कर मदबुधि जीवों मधुकों देवस्नानमें उपयोगी समझते हैं, तिनका उपहास्य शास्त्रकार करते हैं ।।श्लोक॥ मक्षिकामुखनिष्टयूतं, जंतुघातोन्नव मधु ॥ अहो पवित्र मन्वाना, देवस्नाने प्रयुंजते ॥१॥ अर्थ –माखीयोंके मुखकी जूठ,अरु जीवघातमें अर्थात् हजारो बच्चे अरु अमोंके मारनेसें, उत्पन्न होता है वो बच्चे, अरु जब मरते हैं,तब तिनके शरीरका लहु पाणीन्नी मधु (सहत) के बिच मिल जाते हैं,तब तो मधु महा अशुचिरूप है, अहो यह शब्द उपहास्यार्थमें हैं, क्यों कि जैसे वे देवता है, तैसी तिनकों पवित्र वस्तुन्नी चढाइ जाती है यह उपहास्य है,

माखण निकालके तत्काल अग्निके सयोगसें घी बनाके छानके देखके पीछेसें खाना चाहियें, क्यों कि एक तो इस रीतिसें शास्त्रोक्त जीव उत्पन्न नहीं होते हैं, तिनकी हिंसाभी नहीं होती है, अरु मकडी, कसारी, मच्छरादि, जानवरों के अवयव टांग प्रमुखभी घी छाणणेसें निकल जाते हैं, अरु माखण काम कीभी वृद्धि करता है, तब मनमें खोटे विकल्प उत्पन्न होते हैं, इस वास्तेभी श्रावककों माखण न खानां चाहियें, तथा एक जीवके वध करनेसेभी जब पाप होता है, तब तो पूर्वोक्त रीतीसें माखन तो जीवोंकाही पिंड हो जाता है, तब माखनके खानेमें पापकी क्या गिनती है?

प्रश्न —माखनमें तो दो घडी पीछें कोई भी जीव उत्पन्न हूआ हम नहीं देखते हैं, तो फेर माखनमे दो घडी पीछें हम क्योंकर जीव मान लेवें?

उत्तर —जो जैनमतके शास्त्रोंकों सत्य मानेगा वो तो शास्त्रकारका कथन सत्यही मानेगा, अरु जो जैनके शास्त्रोंकों सत्य नहीं मानता,वो चाहो सत्य माने, चाहो न माने परतु हम आगम प्रमाणके विना इस बातमें और प्रमाण नहीं दे सकते हैं, क्योंकि वस्तु दो तरेंकी होती है, एक हे तुगम्य,दूसरी आगमगम्य,तो माखनद्विदलादिमे जो जीव उत्पन्न होते है, वे हेतुगम्य नहीं किंतु आगम गम्य हैं, इस वास्ते जो आगम सर्वज्ञ जिन अर्हंत बीतरागका कहा हूया है, उसीका कहा माननां चाहियें, जे कर कोई पुरुष किसीभी शास्त्रकों न मानेगा,आंखोसें देखी वस्तुही मानेगा, तब तो नरक स्वर्गादि जो अदृष्ट हैं,उनकोंभी न माननां चाहियें,तथा परमेश्वर चौदवे तथा सातवे असमान उपरि रहता है,तथा स्वर्ग अरु नरकमें पुण्य पाप करनेसें जीव जाता है, यहभी न माननां पडेगा, इस वास्ते आगम प्रमाणभी मानना चाहियें क्योंकि सर्ववस्तु हमारी दृष्टिमे नहीं आती है

९ नवमा अनक्ष्य मधु, अर्थात् सहत है, उसका स्वरूप लिखते है यह सहत जो है, सो अनेक जीवोंकी घात होनेसें उत्पन्न होता है, यह तो परलोक विरोध दोष है, अरु मधु (सहत) जुगुप्सनीय (निंदने योग्य) है, मुखकी लालवत् यह इहलोक विरुद्ध दोष है, इस वास्ते श्रावकधर्मीकों मधु न खानां चाहियें

अब मधु अर्थात् सहत खानेवालेकों पापी पणा दिखाते है, ॥ श्लोक॥ जक्ष्यन्माक्षिक क्षुद्र, जतुलक्षक्षयोद्भव ॥ स्तोकमतु निहत्न्म , सौनिकेभ्यो

रात्रिकों खावेगा तब नित्य रात्रकों भोजन करने वास्ते रसोइभी करनी पडेगी तिसमें जीवोंका संहार होवेगा श्रावकके कुलका आचार भ्रष्ट होजाता है सूक्ष्म त्रस जीव नजरमें नहीं आते हैं कदापि दीखभी जायें तोभी यत्न नहीं होता है जब अग्नि बलतीहै तब पासकी भीतमें रात्रिकों जो जीव आश्रित है वो तससे आकुल व्याकुल होकर अग्निमें गिर पडते हैं सर्प्पादिकोंके मुखसें लेकर भोजनमें लाल गिरे तब कुटुंबका तथा अपणी आत्माका विनाश होवे तथा पतंगीये प्रमुखपडे तथा छत्तमें अरु छपरमें रात्रिकों सर्प्प गिरली, छपकली, मकडी मच्छरादि बहुत जीव वसते हैं लेकर यें जीव भोजनमें खायें जायें तोभारी रोगोत्पन्न होजाते है. यडुक्त योगशास्त्रे ॥ मेधांपिपलिकाहंति, यूकाकुर्याज्जलोदरं ॥ कुरुते मक्षिकावांति, कुष्टरोगंच कोलिका ॥ १ ॥ कटकोदारुखंडंच, वितनोतिगलव्यथां ॥ व्यजनांतर्निपतित, स्तालुविध्यति वृश्चिक ॥ २ ॥ विलग्नश्च गलेवाल, स्वरभंगायजायते ॥ इत्यादयोदृष्टदोषा, सर्वेषां निशिभोजने ॥ ३ ॥ अर्थ –कीडी अन्नादिमें खाइ जावेतो बुद्धिकों मंद करती है तथा यूंका (जूके) खानेसें जलोदर करती है, मक्खी वमन करती है, मकडी कुष्ट रोग करती है,अरु वेरी प्रमुखका कांटा तथा काष्टका टुकडा गलेमें पीडा करता है तथा वटेरे आदिके व्यंजनमें लेकर विछु आया जावेतो तालुयोंकों वींधता है इत्यादि रात्रिभोजन करनेमें दृष्ट दोष सर्वलोकोंके देखनेमें आते हैं तथा रात्रिभोजन करता हूआं अवश्य पाक अर्थात् रसोइ करनी पडेगी तिनमें आवश्य षट्कायके जीवोंका वध होवेगा भाजन धोनेंसें जलगत जीवोंका विनाश होता है जलगेरनेसें भूमिमें कुंथु कीडा प्रमुख जीवोंकी घात होती है इसवास्ते जिसके जीव रक्षणेका आकांक्षा होवे वो रात्रि भोजन न करे

प्रश्न जहां अन्नभी रांधना न पडे भाजनभी धोनें न पडे असे जो बने बनाये लडु खज्जर शार्कादि भक्ष है तिनके खानेमें क्या दोष है?

उत्तर – श्लोक ॥ नाप्रेक्ष्यसूक्ष्मजंतूनि, निश्याद्यात्प्राशुकान्यपि ॥ अप्युत्केवलज्ञाने, नांदृतंयन्निशाशनं ॥ १ ॥ अर्थ – मोदकादि फलादि यद्यपि प्राशुक अर्थात् अचेतनभी है तोभी रातकों न खाना चाहियें किस वास्ते कि सूक्ष्मजीव कुंथ्वादि देखे नहीं जाते हैं क्योंकि केवलीभी जिनकों सदा सर्वकुछ दीखता है सोभी रात्रिमें भोजन नहीं करते हैं केवली

अहो शब्द अपहासे ॥यथा॥ करभाणां विवाहे तु, रासभास्तत्रगायना ॥ प
रस्परं प्रशंसंति, अहो रूपमहोध्वनि ॥ १ ॥ यह नवमा अनक्ष्य कहा.
१० दशमा पाणीकी बनी हूइ बरफ अनक्ष्य है,क्योंकि यह असख्य अपकाय
जीवोंका पिंम है इसके खानेसें चेतना मंद होती है अरु तत्काल मरकी
करती है कुछ बल वृद्धिभी नहीं करती है अरु वीतराग अर्हंत सर्वज्ञ प
रमेश्वरने, निषेध कराहै इस वास्ते यह अनक्ष्य है.

११ अफीम प्रमुख विषवस्तुके खानेसें पेटमें कृमि,गंमोलादिक जो जी
व होते हैं सो मरजाते हैं विष खानेसें चेतना मुरका जाती है अरु जे
कर खानेका ढबपड जाता है तो फेर छूटना मुस्किल होता है वखत
पर अमल न मिले तो क्रोध उत्पन्न होता है शरीर शिथिल होजाता है
अरु जो अमली होजाता है, उसकों व्रत नियम अंगीकार करना डुकर है
अमलीका स्वनाव बदल जाता है जब अमल खाता है,तब एक रंग होता
है अरु जब अमल उतरजाता है तब दूसरा रंग होजाता है तथा स्वतंत्र
ता छोड कर पराधीन होना पडता है इसके खानेमे स्वादभी बुरा है तथा
विष खाने वाला जहां लघुनीत बडीनीत करता है तिस क्षेत्रमें त्रस था
वर जीवोंकी हिंसा होती है सोमल, वछनाग, मीठ, तेलीया, संखीया,
हरताल, प्रमुख यें सर्व विषहीमें जानने इसके खानेका त्याग करना

१२ करकथोले (घडे) जे आकाशसे गिरते हैं यहभी अनक्ष्य है.

१३ सर्वजातकी कच्चिमट्टि अनक्ष्य हैं कच्चि सचित्तमट्टि नाना प्रका
रकी असख्य जीवात्मक जाननी मट्टी खानेसें पेटमें बहुतजीव उत्पन्न हो
जाते है तथा पांडु रोग, आम वात पित्त पथरी प्रमुख बहुत रोग उत्पन्न
होजाते है बहुत मट्टी खाने वालेका पीला रंग होजाता है तथा कितनीक
जातकी मट्टीमें मेंमक प्रमुख जीवोंकी योनी है इस वास्ते अनक्ष्य है

१४ रात्रीनोजन अनक्ष्य है रात्रिनोजन में तो प्रत्यक्षसें दूषण इस
लोकमें है अरु परलोकमें डुखका हेतु है रात्रिमें चारों आहार अ
नक्ष्य है रात्रिमें जो जैसे रंगका आहार होता है तिसमें तैसे रंगके जीव
जिनका नाम तमस्काय जीव है वो उत्पन्न होते है तथा आश्रित जीवभी
बहुत होते है तथा रात्रिमें उचित अनुचित वस्तुका नेद नहीं हो सकता
है तथा रात्रिनोजन करनेसें प्रसंग दोष बहुत लगते है सो कितनेक अ

क ॥ आयुर्वेदेपु ॥ हृन्नाभि पद्मसंकोच, श्चंडरो चिरपायत ॥ अतोनक्तंन नोक्तव्य, सूक्ष्मजीवादनादपि ॥ १ ॥ अर्थ – इस शरीमेंर दो पद्म अर्थात् कमल हैं एकतो हृदय पद्म सो अधोमुख है दूसरा नाभिपद्मसो ऊर्द्धमु ख है यह दोनो कमल सो सूर्यके अस्त होनेंसें रात्रिमें सकोंच हो जाते हैं किस कारणसे संकोच होजाते है? सूर्यके अस्त होजानेंसें सकोच हो जाते है इस वास्ते रात्रिकों न खाना चाहिये तथा रात्रिकों सूक्ष्म जीव खाये जाते हैं इस्सें अनेक रोगोत्पन्न होते हैं यह पर पक्षका सवाद कह्या

अब फेर स्वमतसें रात्रिभोजनकानिषेध कहते है श्लोक ॥ ससक्त जीवसघातं भुजानानिशिभोजनं, राक्षसेभ्योविशिष्यते, मूढात्मान कथनु ते ॥ १ ॥ अर्थ –जब रात्रिमें खाता है तब जीवोंका समूह भोजनमें पड जाता है ऐसे अधरूप रात्रिके भोजनके खानेवालोंकों राक्षसोसेंभी क्योंकर विशेष नही कहना? जब पुरुष जिनधर्मसें रहित होकर विरति नहीं करता है तब श्रृग पुछसें रहित पशु रूपही है यडक्त ॥ वासरेचरज न्यांच, य खादन्नेवतिष्ठति ॥ श्रृगपुछपरिभ्रष्ट ॥ सस्पष्टपशुरेवहि ॥ १ ॥

अब रात्रिभोजन निवृत्तिके वास्ते पुण्यवतोंकों अभ्यास विशेष दिखाते है श्लोक ॥ अन्होमुखेवसानेच, योद्दे द्देघटिकेत्यजेत् ॥ निशाभोजनदोषज्ञो, ऽश्नात्यसौपुण्यभाजन ॥१॥ अर्थ –दिन उदयमें अरु अस्त समयमें दो दो घडी वर्जनी चाहियें क्योंकि रात्रि निकट होनेंसें वर्जनी चाहिये इसी वास्ते आगममें सर्व जघन्य प्रत्याख्यान मुहूर्त प्रमाण नमस्कार सहित क हते हैं रात्रिभोजनके दूपणोंका जानकार श्रावक दो घटी जब शेष दिन रहे तब भोजन करे जेकर दो घडीसें थोडादिन रहे भोजन करे तो रात्रि भोजनके प्रत्याख्यानका उसकों फल नहीं होता है जेकर कोइ रात्रिकों नभी खावे परंतु जो उसने रात्रिभोजनका प्रत्याख्यान न करा है तो उसकोंभी कुछ फल नहीं मिलता है क्योकि उसने प्रतिज्ञा नहीं करी है जैसें रूपइये जमा करावे अरु व्याजका करार न करे उसको व्याज नहीं मिलता है इस वास्ते नियम जरुर करना चाहिये

अब रात्रिभोजन खानेका फल परलोकमें कहते हैं श्लोक ॥ उलूक काकमार्जार, गृध्रशबरशूकरा ॥ अहिवृश्चिक गोधाश्च, जायंतेरात्रिभोज नात् ॥ १ ॥ अर्थ.–उल्लु, काग, बिल्ली, गृध्रचील, वारासिंगा, सूअर, सर्प,

सूक्ष्म जीवोंकी रक्षा वास्ते अरु अशुद्ध व्यवहार दूर करने वास्ते रात्रि कों नहीं खाते हैं यद्यपि दीवेके चादणेसें कीडी प्रमुख दीख जाती है तोभी मूलगुणकी विराधना टालने वास्ते रात्रि भोजन अनाचीर्ण है

अब लौकीक मतवालोंकि सम्मति देकर रात्रिभोजनका निषेध करते है श्लोक ॥ धर्मविन्नैवभुंजीत्त, कदाचनदिनात्यये ॥ बाह्याअपि निशी भोज्यं, यदभोज्यप्रचक्ष्यते ॥ १ ॥ अर्थ – श्रुतधर्मका जानने वाला कदाचित् रात्रिभोजन न करे क्योंकि जो जिनशासनसें बाहिरले मतवाले है वेभी रात्रिभोजनको अभक्ष्य कहते हैं तिनका शास्त्रही लिखते हैं श्लोक ॥ त्रयीतेजोमयोभानु, रितिवेदविदोविदु ॥ तत्करै पूतमखिल, शुभकर्मसमाचरेत् ॥ १ ॥ अर्थ – ऋग यजु साम लक्षण तीनो वेद तिनका जो तेज है सो सूर्य है आदित्य त्रयीतनु असा सूर्यका नाम है असावेदोंके जानने वाले जानते हैं तिस सूर्यकी किरणाकरके पि – पूतं (पवित्रं) सपूर्ण शुभकर्म अगीकार करे जब सूर्योदय न होवे तब शुभकर्म न करे तिन शुभकर्मोंका नाम लिखते हैं श्लोक ॥ नैवाहुतिर्नचस्नान, नश्राद्धदेवतार्चन ॥ दानवाविहतंरात्रौ, भोजनच विशेषत ॥ २ ॥ अर्थ – आहुति सो अग्निमें घृतादि प्रक्षेप करना स्नानसो अंग प्रत्यग प्रक्षाल करना श्राद्ध पितृकर्म देवपूजा दानदेना भोजन तो विशेष करकेही नज करना इतना काम रात्रिमें न करने

तथा परमतके यहभी दो श्लोक हैं ॥ देवैस्तुभुक्तपूर्वान्हे, मध्यान्हेऋषिभीस्तथा ॥ अपरान्हेतुपितृभि, सायान्हेदैत्यदानवै ॥ १ ॥ संध्यायां यक्षरक्षोभि, सदाभुक्तकुलोद्वह ॥ सर्ववेला व्यतिक्रम्य, रात्रौभुक्तमभोजन ॥ २ ॥ अर्थ – सवेरेतो देवता भोजन करते है मध्यान्ह अर्थात् दो पहर दिन चढे ऋषि भोजन करते है अपरान्ह अर्थात् दिनके पीछले भागमें पितर भोजन करते है अरु सायान्हे विकाल वेलामें दैत्य दानव भोजन करते है सध्यामें रातदिनकी सधिमें यक्ष गुह्यक राक्षस खाते है ॥ कुलोद्वहे तियुधिष्टरस्यामत्रण ॥ सर्वदेवताओंका वखत उलंघके रात्रिको जो खाना है सो अभक्ष है यह पुराणोंके श्लोकों करके रात्रि भोजनके निषेधका तवाव कह्या

अथ वैद्यक शास्त्रकाभी रात्रिभोजनके निषेधका तबाब कहते है श्लो

का आकारभी अछा नहीं है तथा कफ रोगके करता हैं इनके अधिक खा नेसें चौथइयातप खइ रोगादि होजाते हैं और सब जातका फलतो सूकेभी खानेमें आता है परंतु यहतो सूकेभी खाने योग्य नहीं हैं क्योंकि सूके पीछे ऐसे हो जाते है कि मानों चूहोंकी खलडी है ताते यह द्रव्य अशुद्ध है इस वास्ते अनक्ष्य है इति वैंगण अनक्ष्य ॥१८॥

१९ तुछ फल जो ढींमु पीलु पेंचु तथा अत्यत कोमल फल सोभी अनक्ष्य है क्योंकि ऐसी वस्तु बहुतभी खावे तोभी तृप्ति नहीं होती है अरु खानेमें थोडा आता है और गेरना बहुत पडता है तथा फल खाया पीछें तिनकी गुठली जो मुखमें चबोलके गेरते हैं उसमें असंख्य पचेंद्रीय सम्मूर्छिम जीव उत्पन्न होते हैं तथा जो पुरुष बहुत तुछफल खाता है तिसकों तत्काल रोग होजाता है इति तुछफल अनक्ष्य ॥१९॥

२० अजाणा फल सो जिसका नाम कोइ न जानता होवे तथा न किसीने खाया होवे सो फलभी अनक्ष्य है क्योंकि क्या जाने कभी जह र फल खाया जावे तो मरण हो जावे तथा बावला होजावे ॥ २० ॥

२१ चलित रस सो जिस वस्तुका काल पूरा होगया होवे अरु स्वाद बदल गया होवे सो जब स्वाद बदल जाताहै तब तिसका कालभी पूरा होजाता है जिसमेंसें दुर्गंध आनें लगे, तार पड जावें, सो चलितरस व स्तु है यहभी अनक्ष्य है रोटी, तरकारी, खीचडी, वडा, नरमपूरी, सीरा, हलवा इत्यादि रसोइकी अनेक वस्तु जिनमें पाणीकी सरसाइ है ऐसी वस्तु एक रात उपरात अनक्ष है तथा द्विदल (दाल,) वडे, गुलगले, घु जीये जिनमें पाणीकी सरसाइ है वे चार पहर उपरात अनक्ष है जूग लीकी राब (पेंस) जो विना विदलके और उंदन गठमें रांधा है सो आठ पहर उपरांत अनक्ष्य है तथा वर्षाकालमें अढीरोतीसें जो मिठाइ बनी होवे तो पंदर दिन उपरांत अनक्ष है जेकर पंदर दिनसे पहिले बिगड जावे तो पहिलाही अनक्ष्य है ऐसी तरें सर्वत्र जान लेना तथा उष्णकालमें मिठाइकी स्थिति बीस दिनकी है अरु शीतकालमें मिठाइ की स्थिति एक मासकी है उपरांत अनक्ष्य है तथा दही शोला पहर उपरात अनक्ष्य है छाछभी दहीवत् जानलेनी इस चलित रसमें बे इंद्रिय जीव उत्पन्न होवे हैं इस वास्ते यह अनक्ष्य है ॥ २१ ॥

विछु, गोह, इत्यादि तिर्यंच योनीमें रात्रिजोजन खानेवाले मरके जाते हैं अरु जो रात्रिजोजन न करे उनकों एक वर्षमें छ महीनेका तपका फल होता है ॥ इतिरात्रिजोजन अनक्ष्य सपूर्ण ॥ १४ ॥

१५ बहुबीजा फलनी अनक्ष्य है जिसमें गिर थोडा अरु बीज बहुत होवे सो बङगण, पटोल, खसखस, पंपोटा प्रमुख फल, जिसमें जितने बीज हैं उसमें उतने पर्याप्त जीव हैं जेकर खानेमें तो थोडा आता है अरु जीवघात बहुत होती है तथा बहुबीजा फल खानेसें पित प्रमुख रोगों का हेतु होता है अरु जिनाज्ञा विरुद्ध है इति बहु बीजा अनक्ष्य ॥१५॥

१६ सधान अथाणा (आचार) तीन दिनसें उपरांतका अनक्ष्य है सो अथाणा (आचार) अबका, निंबुका, पत्रका, कर्मदाका, आदेका, जिमीकंदका, गिरमिरका इत्यादिक अनेक वस्तुका अथाणा (आचार) बनता है चाहो घीका होवे वा तेलका होवे वा पाणीका होवे सर्व तीन दिन उपरांत अनक्ष है परंतु इतना विशेष है कि – जो फल आप खट्टे हैं अथवा दूसरी वस्तुमें खट्टा अबादिकजो मेल देवे वेतो तीन दिन उपरांत अनक्ष है अरु जिस वस्तुमें खटाई नहीं है उसका अथाणा (आचार) एक रात्रिसे उपरांत अनक्ष्य है क्यों कि – इस आचार (अथाणामें) त्रस जीव उत्पन्न होते हैं अरु विल्व प्रमुखतो प्रथमही अनक्ष्य हैं तो फेर उनके अथाणे (आचारका) तो क्याही कहना हैं? आचारमें चौथे दिन निश्चय दोइन्द्रीयजीव उत्पन्न होते है तथा जूग हाथ लग जावेतो पंचेन्द्री, जीव उत्पन्न हो जाते है दूसरे मतवालोंके शास्त्रोंमेंनी अथाणा (आचार) नरकका हेतु लिखा है इति अथाणा अनक्ष्य समाप्त ॥१६॥

१७ द्विदल जिसकी दो दाल होजावें अरु घाणीमें पीले जिसमेंसु तेल न निकले ऐसे सर्व अन्नको द्विदल कहते है तिस द्विदलके साथ जो गोरस अग्नि उपर नहीं चढा है ऐसा कच्चा दही कच्चा दूध गाठ इनके साथ नहीं जीमणा अरु जेकर दही दूध गाठ गरम करी होवे फेर पीछे चाहो ठंमा हो जावे उसमें जो द्विदल मिलाकर खावे तो दोष नहीं है

१८ सर्व जातके वेंगण एकतो बहु बीजे हैं इस वास्ते अनक्ष्य हैं तिसके बीटमें सूक्ष्म त्रस जीव रहते हैं तथा वेंगण कामकी वृद्धि करते हैं मीद अधिक करते हैं कुवक बुद्धिकानी टीव करते हैं इनका नामनी बुरा है इस

इन अनक्ष्योंमें अफीम नांग प्रमुखका जिसकों पहिला अमल लगा होवे, तब तिसके रखनेकी जयणा करे, तथा रात्रिभोजनमें चउविहार, तिविहार, डुविहार एक मासमें इतने करु ऐसा नियम करे, तथा रोगादिकके कारण किसी औषधिमें कोइ अनक्ष खाना पडे,तिसकी जयणा रखे,तथा बत्तीस अनंतकाय तो सर्वथा निषेध हैं, तोनी रोगादि कारणसें औषधिमें खानी पडे, तिसकी जयणा रखे, तथा अजाण पणें किसी वस्तुमें मिली हुइ खानेमें आ जावे, तो तिसकी जयणा इति बावीश अनक्ष्य स्वरूप.

अथ चौदह नियमका विवरण लिखते हैं गाथा ॥ सचित्तदव्वविगइ, वाणेह तंबोल वब कुसुमेसु ॥ वाहण सयण विलेवण, बनदिसि न्हाण नत्तेसु ॥१॥ अस्यार्थ —श्रावकके जावजीव पाचअणुव्रतमें इछा परिमाण सो कोइ आगेंकी अनेक तरेंकी कर्म परिणतिका सनव करकें अपणे निर्वाह सामर्थ्यका उदय अतिडुस्तर विचारके इछा परिमाणमें बहुत वस्तु खुल्ली रखी है, तिनमेंसे फेर नित्यका आश्रव निवारनेके वास्ते सक्षेप करणार्थे चौदह नियमका धारण दिन प्रत्यें रखनां चाहियें, तिसका स्वरूप कहते है.

१ प्रथम सचित्त परिमाण सो मुख्यवृत्ती करकें तो श्रावककों सचित्तकों त्याग करणां चाहियें, क्योंकि अचित्त वस्तुके खानेमें चार गुण हैं, प्रथम तो अप्राशुक जलादिकका पीना वर्जनेंसे,सर्व सचित्त वस्तुका त्याग हो जाता है, जहां तक अचित्त वस्तु न होवे, तहां तक मुखमें प्रक्षेप न करे, दूसरा जीव्हा इंडिय जींती जाती है, क्योंकि कितनीक वस्तु विना रांधे स्वादवाली होती है, तिनका त्याग हूआ तीसरा अचित्त जलादि पीनेंसें काम चेष्टा मंद हो जाती है, अरु चित्तमें ऐसा खटका हरहमेश रहता है, कि मेरेकूं मतकनी सचित्त वस्तु खानेमें आ जावे ? चौथा जलादिक इव्य अचेतन करनेमें जीवहिंसा हूइ है, सोतो कर्मबंधनका कारण बन चूकी, परतु जो क्षण क्षणमें असंख्य (अनंत) जीवोंकी उत्पत्ति होती थी, सो मिट गइ तिनकी हिंसा न होवेगी, अरु जो कोइ मूढमति अपनी मन कल्पनासें ऐसा विचार करे कि अचित्त करनेमें षट् कायके जीवोंकी हिंसा होती हैं अरु सचित्त जलादिक पीनेंमें तो एक जलादिककी हिंसा है, इस वास्ते सचित्तका त्याग न करनां चाहियें ऐसा विचारके सचित्त त्यागे नहीं, सो मूर्ख जिनमतके रहस्यकों नहीं

२२ बत्तीस अनंत काय सर्व अनदय है क्योंकि सूईकेअग्रजाग ऊपर जितना टुकडा अनंतकायका आता है उस टुकडेमेंजी अनंत जीव हैं वास्ते अनदय है तिसका नाम लिखते हैं १ जूमिके अंदर जितना कंद उत्पन्न होता है, सो सर्व अनंतकाय है, २ सूरणकंद, ३ वज्रकंद, ४ हरिहलदी, ५ अड्क, ६ हरिया कचूर, ७ सौंफकी जडा, तिसकानाम विराली कंद है, ८ सतावरवेल औषधि, ९ कुआर, १० थोहरकंद, ११ गलो, १२ लसण, १३ वांसका करेला, १४ गाजर, १५ लाणा, जिसकी सज्जी बनती है, १६ लोढी पद्मनी सो लोढाकंद, १७ गिरमिर, (गिरिकरनी) कच्छ देशमें प्रसिद्ध है,१८ किसलयपत्र (कोमल पत्र) जो नवा अकूर उगता है, सर्व वनस्पतिका उगती वखतके अकूर, सो सर्व प्रथम अनतकाय होते हैं, पीछें जब बढते है, तब प्रत्येकजी हो जाते हैं, अरु अनतकायजी रहते हैं, १९ खरसूयाकंद (कसेरु) अनतकाय, २० थेग कंद विशेष है तथा थेग नामक जाजी, २१ हरे मोथ, २२ लवण वृक्षकी गल, २३ खिलोडी, २४ अमृतवेल, २५ मूली, २६ जूमिरुहा सो जूमिफोडा छत्राकार, जिनकों बालक पहबहेडे कहते हैं, तथा खुवां कहते हैं, २७ वथुवेकी प्रथम उगतेकी जाजी, २८ करुहार, २९ सूयरवल्ली जो जंगलमें बडी वेलडी हो जाती है, ३० पलककी जाजी, ३१ कोमल आंवली, जहांतक उसमें बीज नहीं पडा है, तहांतक अनतकाय है, ३२ आलुख, रतालु, पिंमालु, यह बत्तीस अनत कायका नाम सामान्य प्रकारसें कहा है, अरु विशेष नाम तो अनेक हैं, क्योंकि कोईक वनस्पति तो पचांग अनतकाय है, कोईका मूल अनतकाय है, कोईका पत्र, कोईका फूल, कोईकी गल, कोईका काष्ठ, ऐसें कोईके एकअग, कोईके दोअग, कोईके तीन अग, कोईके चार अग, कोईके पांच अग, अनत काय है यह बत्रीश अनतकाय अनदय है॥ २२ ॥

अब यह अनतकायके जानने वास्ते लक्षण लिखते है जिसके पत्र, फूल, फल प्रमुखकी नसां गूढ होवे, दीखे नहीं, तथा जिसकी सधि गुप्त होवे, जो तोडनेंसे बराबर टूटे, अरु जो जडमें काटी हुइ फेर हरि हो जावे, जिसके पत्ते मोटे दलदार चीकणे होव, जिसके पत्र अरु फल बहुत कोमल होवें, ये सर्व अनतकाय जाननी.

जावे,परतु उदर नरण न होवे,तिसकों तंबोल कहते हैं तिसका परिमाण करे

६ छठावस्त्र नियम है सो पुरुषके पांचो अंगोके वस्त्रोंका वेष पहरने का तिसकी सख्या करे, कि आजके दिनमें मेरेकों इतने ? वेप रखने हैं, तथा इतने खुल्ले वस्त्र उढने है, तथा रात्रिकों पहेरनेका वस्त्र तथा स्नान समय पहरनेका वस्त्रकी वेषमे गिणती नहीं तथा समुच्चय वस्त्रकी सख्या रख लेवें, अजाण पणे नेल सनेल हो जावे तो आगार

७ सातमां फूलोंके नोगका नियम करे,सो मस्तकमें रखनेवाले, अरु गलेमें पहरने वाले, तथा फूलोंकी शय्या, फूलोंका तकीया, फूलोंका पखा, फूलोंका चडवा, जाली प्रमुख जो जो वस्तु नोगमें आवे, फूलकी उडी सेहरा, कलगी, अरु फूल जो सूघनेमें आवे, तिनका तोल परिमाण रखनां

ए आठमा वाहन नियम करे, सो रथ, गाडी, घोडा, पालखी, उट, बलद, नाव, प्रमुख जिसके उपर बैठके जहां जाना होवें, तहां जावे, सो वाहन सर्व तीन तरेंका है, १ तरता, २ फिरता, ३ उडता, तिनकी संख्याका नियम करे कि इसतरेकी अस्वारीमें आज चढनां

ए नवमां शयन शय्याका नियम करे सो खाट, चौकी, पाट, तखत, कुरसी, पालकी, सुखासन प्रमुख जितनें रखने होवे सो मनमें धार लेवे

१० दशमां विलेपनका नियम करे सो नोगके अर्थे केसर, चदन, चोवा, अतर, फूलेल, गुलाबादिक जो वस्तु अगके लगानी होवे, तिसका नाम मनमें धार लेवे, तथा अगलूहणानी इसीमें रख लेनां इसमें इतना विशेष है कि देवपूजा, देवदर्शन, इत्यादि धर्म करणी करतां हाथमे धूप, अगरवत्ती लेनी पडे, तथा अपणें मस्तकमें तिलक करनां पडे, तथा नगवानकी प्रतिमाकों तिलक करनां पडे, तिसका श्रावककों नियम नहीं है

११ इग्यारवां ब्रह्मचर्यका नियम करे, सो दिनमे अरु रात्रिमें इतनी वार स्त्रीसें मैथुन सेवनां, उपरात स्त्रीसेंनी नहीं सेवनां, अरु हास्य विनोद आलिंगन चुबनादिक करनेका नांगा राखे

१२ बारहवा दिशिका नियम करे, सो अमुक दिशिमें आज मैंने इतने कोस उपरात नहीं जानां, इसमें आदेश, उपदेश, माणस नेजना, चिट्ठी लिखनी, ये सर्व नियम आ गये, जैसें पाल सके, तैसे नियम करे

१३ तेरहवां स्नानका नियम करे,सो आजके दिनमें तैलमर्दनपूर्वक तथा

जानता, क्योंकि सचित्तके त्यागनेसें आत्मदमनता, औत्सुक्य निवारण ता, विषय कषायकी मंदता होती है, अरु जिसमें स्वदयागुण बहुत है, सोभी वो नहीं जानते इस वास्ते सचित्त त्यागनेमें बहुत लाभ है

२ दूसरा द्रव्य नियम सो धातुका वा शिला, काष्ठ, मट्टीका पात्र प्रमुख तथा अपणी अंगुली प्रमुख विना जो मुखमें खावे सो द्रव्य कहते है, "परि णामांतरापन्न द्रव्यमुच्यते" तिनमें खीचडी तो मोदक, पापड, वडा, प्रमुख बहुत द्रव्यसे बनते हैं, तोभी परिणामांतरसें १ एकही द्रव्य है, तथा एकही गेहूंकी बनी रोटी, पोली, गूगरी, बाटी प्रमुख है, तोभी यह सर्व भिन्न द्रव्य है, क्योंकि नामांतर स्वादांतर रूपांतर परिणामांतरसें द्रव्यांतर हो जाते हैं, तथा कोइक आचार्य और तरेंभी द्रव्यका स्वरूप कहते हैं, परंतु जो उपर लिखा है, सो बहुत वृद्ध आचार्योंको यही सम्मत है इस वास्ते द्रव्योंका परिमाण करे कि आजमें इतने द्रव्य खाऊंगा १

३ तीसरा विगय नियम सो विगय दश प्रकारका है, तिनमें १ मधु,२ मांस, ३ माखन, ४मदिरा, यह चार तो महाविगय हैं, इन चारोंका त्याग तो बावीश अभक्ष्यमें लिख आये हैं, शेष छै विगय रही, तिसका नाम क हते हैं १ दूध, २ दही, ३ घृत, ४ तैल, ५ गुल, ६ सर्वजातका पकवा न्न, इस छै विगयमेंसें नित्य एक, दो, तीनादि विगयका त्याग करे, अरु ए केक विगयके पांच पांच निवीताभी विगयके साथ त्यागना चाहियें, जे कर निवीता त्यागनेकी मनमें न होवे, तब प्रत्याख्यान करनेके अवसर में मनमें धारे कि मेरे विगयका त्याग है, परंतु निवीताका त्याग नहीं

४ चौथा उपानह सो जूता पहिरनेका नियम करे, पगरखी, खडावा, मोजा, बूट, प्रमुख सर्वका नियम करे,क्योंकि यह सर्व जीवहिंसाके अधिक रण हैं, तिनमें श्रावकने जिनपूजादि कारण विना खडावां तो कदापि नही पहरनी, क्योंकि इनके हेठ जो जीव आ जाता है, वो जीता नहीं रहता है, अरु गृहस्थ लोकोंको जुते विना सरता नहीं इस वास्ते मर्यादा कर लेवे, फेर दूसरेके जूतेमें पग न देवे चूक हो जावता आगार.

५ पांचमा तंबोल सो चौथा स्वादिम नामा आहार है, उसका नियम करे, उत्तम पान, सोपारी, लवंग, एलायची, तज दालचीनी, जातिफल, जावत्री, पीपलामूल, पीपर,प्रमुख करियाणेकी चीज, जिस्से मुख शुद्ध हो

३ तीसरा साडीकर्म सो गाडी, वहिल तथा अस्वारीका रथ, नावों, जहाज, तथा हल, दताल, चरखा, घाणीका अग, तथा धूंसरा, चक्की, उखली, मूशल, प्रमुख वना करकें वेचे, यह सर्व शकटकर्म हैं

४ चौथा जाडीकर्म सो गाडा, वलद, उंट, भैस, गधा, खच्चर, घोडा, नाव, रथ प्रमुखसें दूसरोका वोझ वहे भाडे करी आजीविका करे

५ पांचमा फोडीकर्म सो आजीविका वास्ते कूप, वावडी, तलाव, खोदावे, हल चलावे, पत्थर फोडावे, खान खोदावे, इत्यादिक स्फोटिक कर्म है इन पांचों कर्मोंमें वहूत जीवोंकी हिंसा होती है इस वास्ते इन पांचोकों कुकर्म कहते हैं अब पांच कुवाणिज्य लिखते है

१ प्रथम दतकुवाणिज्य, सो हाथीका दांत, उल्लूके नख, जीन, कलें जा, पक्षीयोका रोम, तथा गायका चमर, हरणके सींग, बारासिंगेके सींग, कुम जिस्सें रेसम रंगते हैं, इत्यादिक जो त्रस जीवका अगोपां ग वेचना है, सो सर्व दतकुवाणिज्य है जब इन वस्तुओंके लेने वास्ते आगरमें जावे, तब भिल्लादिक लोक तत्काल हाथी, गैंडा, प्रमुख जी वोकी हिंसामें प्रवर्त्त होते हैं, महा पाप अनर्थ करे, तहां जानेंसे अ पणा परिणामभी मलिन हो जाते हैं, कदाचित् लोभपीडित हो कर भिल्ल व्याधोंकों कहनां पडेकि, हमकों मोटा भारी दांत चाहीता है, तब वो लोक तत्काल हाथीकों मारकें वैसा दांत ल्यावेगे, इस वास्ते जे कर वस्तु लेनी पडे, तव व्यापारीके पाससें लेवे, परतु आगरमें जाकर न लेवे, क्योंकि आगरमें जा कर एक चमर लेवे, तो एक गाय मरे इस वास्ते विचार करकें वाणिज्य करे यह प्रथम दत कुवाणिज्य है

२ दूसरा लाखकुवाणिज्य सो लोहा, धावडी, नील, सज्जीखार, सा वन, मनसिल, सोहागा, इत्यादि तथा लाख, ये सर्व लाख कुवाणिज्य हैं, प्रथम तो त्रस जीवोंका समूहहीसे लाख वनती है, अरु पीछें जब रग काढते हैं, तब तिसकों अन्नसें सडाते हैं, तब त्रस जीवकी उत्पत्ति होती है, अरु महा दुर्गंध रुधिर सरीखा वर्ण दीखता है, तथा धावडीमें त्रस जीव उपजते हैं, कुंथुयेभी वहुत होते हैं, अरु यह मदिरेके अग है, तथा नीलको जब प्रथम सडाते हैं, तब त्रस जीव उत्पन्न होते हैं, पीछेंभी नीलके कुंभमें त्रसजीव वहुत उत्पन्न होते हैं, अरु नीला वस्त्र पहि

विनमर्दनपूर्वक कितनी वखत स्नान करनां, सो धार लेवें, इसमें वेव ॥ जाके वास्ते नियमसें अधिक स्नान करनां पडे, तो व्रतभंग नहीं

१४ चौदहवां भात पाणीका नियम सो चार आहारमेंसुं स्वादिमका तो तंबोलके नियममें परिमाण रख्या है, शेष तीन आहार हैं, तिनमें प्रथम अशन, सो भात,रोटी,कचौरी,सीरा प्रमुख, तिसका परिमाण करे, कि आजके दिनमें इतना सेर मेरेको खाना है उपरांत त्याग है यहां घरमें बहुत परिवार होवें तिसके वास्ते बहुत अशनादि कराने पडे, तिसकी जयणा रखे, तथा औरोंके घरमें पंचायत जीमें तहां जाना पडे, उहां बहुत आदमीउकी रसोई बना रखी है, उसका दूषण नियम धारीको नहीं, क्योंकि नियम धारीने तो अपणेही खानेकी मर्यादा करी है,परंतु न्यातिके खानेकी मर्यादा नहीं करी है,इस वास्ते अपणे खानेका परिमाण करे कि इतने सेर उपरात मैं आज नहीं खावगा,तथा दूसरा पाणीतिसके पीनेका परिमाणकरे, कि इतने कलसो उपरांत पाणी मैंने आज नहीं पीनां, तथा तीसरा स्वादिम, सो मिठाई अथवा मिष्टान्न मोदकादिक तिनका परिमाण करे, यह चौदह नियम हैं, इहां अधिक भाव वाला श्रावक होवे, सो सचित्तादि परिमाणमें द्रव्यका परिमाण जूदा जूदा नाम ले कर रखे, तो बहुत निर्जरा होवे ॥ इति चैादह नियमका स्वरूप सपूर्ण ॥

अथ पदरा कर्मादानका स्वरूप लिखते हैं यह पंदरह व्यापार श्रावकको निषेध है, सो करणां नहीं, क्यों कि इनके करणेसें बहुत पाप लगता है, जे कर श्रावककी आजीविका न चलती होवे तो परिमाण कर लेवे सो पंदराकर्मादानका नाम कहते है

१ प्रथम इंगालकर्म, सो कोयले बना कर वेचने इंट बनाकर वेचने, भाडे खिलोने बनापका करके वेचे, लोहारका कर्म, सोनारका कर्म, बगडीकार, सीसकार, कसाल, भडीयारा, भडभूंजा, हलवाइ, धातुगालक,इत्यादि जा व्यापार अग्नि करके होवे, सो सर्व इंगालकर्म है इसम पाप बहुत लगता है, अरु लाभ थोडा होता है, इस वास्ते यहकर्म श्रावक न करे.

२ दूसरा वनकर्म सो छेद्या अनछेद्या वन वेचे, वगीचेके फल पत्र वेचे फल, फूल, कदमूल, तृण, काष्ठ, लकडी, वगारिक वेचे, तथा जो हरि वनस्पति वेचे, सह सर्व वनकर्म है

३ तीसरा साडीकर्म सो गाडी,वहिल तथा अस्वारीका रथ,नावों,जहाज, तथा हल, दताल, चरखा, घाणीका अग, तथा धूंसरा, चक्की, उखली, मूशल, प्रमुख बना करकें वेचे, यह सर्व शकटकर्म हैं

४ चौथा जाडीकर्म सो गाडा, बलद, उट, नैस, गधा, खच्चर, घोंडा, नाव, रथ प्रमुखसें दूसरोका बोफ वहे जाडे करी आजीविका करे

५ पांचमा फोडीकर्म सो आजीविका वास्ते कूप, वावडी, तलाव, खोदावे, हल चलावे, पत्थर फोडावे, खान खोदावे, इत्यादिक स्फोटिक कर्म है इन पांचों कर्मोंमें बहुत जीवोंकी हिंसा होती है इस वास्ते इन पांचोकों कुकर्म कहते हैं अब पांच कुवाणिज्य लिखते है

१ प्रथम दतकुवाणिज्य, सो हाथीका दांत, उल्लूके नख, जीन, कर्ले जा, पक्षीयोंका रोम, तथा गायका चमर, हरणके सींग, बारासिंगेके सींग, कुम जिस्सें रेसम रंगते हैं, इत्यादिक जो त्रस जीवका अगोपां ग वेचना है, सो सर्व दतकुवाणिज्य है जब इन वस्तुओके लेने वास्ते आगरमें जावे, तब निल्लादिक लोक तत्काल हाथी, गैंमा, प्रमुख जी वोकी हिंसामें प्रवर्त्त होते हैं, महा पाप अनर्थ करे, तहां जानेंसे अ पणा परिणामनी मलिन हो जाते हैं, कदाचित् लोनपीडित हो कर निल्ल व्याधोंकों कहना पडेकि, हमकों मोटा नारी दांत चाहीता है, तब वो लोक तत्काल हाथीकों मारकें वैसा दात ल्यावेंगे, इस वास्ते जे कर वस्तु लेनी पडे, तब व्यापारीके पाससें लेवे, परंतु आगरमें जाकर न लेवे, क्योंकि आगरमें जा कर एक चमर लेवे, तो एक गाय मरे इस वास्ते विचार करकें वाणिज्य करे यह प्रथम दत कुवाणिज्य है

२ दूसरा लाखकुवाणिज्य सो लोहा, धावडी, नील, सज्जीखार, सा बन, मनसिल, सोहागा, इत्यादि तथा लाख, ये सर्व लाख कुवाणिज्य हैं, प्रथम तो त्रस जीवोंका समूहहीसे लाख बनती है, अरु पीछे जब रंग काढते हैं, तब तिसकों अन्नसें सडाते हैं, तब त्रस जीवकी उत्पत्ति होती है, अरु महा दुर्गंध रुधिर सरीखा वर्ण दीखता है, तथा धावडीमें त्रस जीव उपजते हैं, कुथुयेनी बहुत होते हैं, अरु यह मदिरेके अग हैं, तथा नीलको जब प्रथम सडाते हैं, तब त्रस जीव उत्पन्न होते है, पीछेनी नीलके कुममें त्रसजीव बहुत उत्पन्न होते है, अरु नीला वस्त्र पहि

रनेसें उसमें जू लीखादि त्रसजीव उत्पन्न होते हैं, तथा हरताल मनसिलको पीसती वखत जो यत्न न करे, तो मरवी प्रमुख अनेक जीव मर जाते हैं.

३ तीसरा रस कुवाणिज्य. सो मदिरा, मांस, इत्यादि वस्तुका व्यापार महा पापरूप है, तथा दूध, दहीं, घृत, तेल, गुड, खांड प्रमुख जो ढीली वस्तु है, इसका जो व्यापार करनां सो रसकुवाणिज्य है इसमें अनेक जीवोंकी घात होती है वास्ते यह व्यापार श्रावक न करे.

४ चौथा केशकुवाणिज्य है सो द्विपद जो मनुष्य, दास, दासी प्रमुख, खरीद, कर वेंचनें, तथा चौपद जो गाय, घोडा, भैंस प्रमुख खरीदके वेचनें तथा पंखीयोंमें तीत्तर, मोर, तोता, मैनां, बटेरा प्रमुख वेचे, इस वाणिज्यमें पाप बहुत है इस वास्ते यह व्यापार श्रावक न करे

५ पांचमा विष कुवाणिज्य सो शखीया (सोमल) वछनाग, अफीम, मनसिल, हरताल, चरस, गांजा प्रमुख तथा शस्त्र जो धनुष, तलवार, कटारी, छुरी, बरछी, फरसी, कुहाडी, कुशी, कुदाल, पेसकबज, बंदूक, ढाल, गोली, दारु, बक्तर, पाखर, जिलम, तोप प्रमुख जिन करके संग्राम करते हैं, तथा हल, मूशल, उखल, दंताली, कर्वत, दात्री, गोला, हवाइ, पटाका, कुहक, शतघ्नी प्रमुख सर्व हिंसादीका अधिकरण है इनका जो व्यापार करनां, सो सब विषवाणिज्य है. इसमें बहुत हिंसा होती है, ये पांच कुवाणिज्य हैं अब पांच सामान्य कर्म कहते हैं

१ प्रथम यन्त्रपीलन कर्म सो तिल सरसों, इक्षुआदि पीलाय करके वेचना, यह सर्व जीवहिंसाके निमित्तरूप यन्त्रपीलन कर्म है

२ दूसरा निर्लांछन कर्म सो बैल घोडाको खस्सी करणां, घोडे, बलद, ऊंट प्रमुखको दाग देनां, कोतवालकी नौकरी, जेलखानेका दरोगा ठेका लेनां, मसूल इजारे लेनां, चोरोंके गाममें वास करनां, इत्यादि जो निर्दयपणेका काम है, सो सर्व निर्लांछन कर्म है

३ तीसरा दावाग्निदान कर्म सो कितनेक मिथ्यादृष्टि अज्ञानी जीव धर्म मानके वनमें आग लगा देते है, वो अपने मनमें जानते हैं कि नया घास उत्पन्न होवेगा तब गौ चरगी, निष्पादिक लोक सुखसे रहेंगे, अन्न उपजेगा, इत्यादि कार्य अज्ञानपणेसे धर्म जाणके करे, आग लगानेसे लाखों जीव मरजाते हैं, इस वास्ते आग न लगानी चाहिये

४ चौथा शोषणकर्म. सो, बावडी, तलाव, सरोवर, इनका जल अप णे खेतमें देवे, जब पाणीकों बहार काढे, तब लाखों जीव जल रहित त डफडके मर जाते हैं, इस वास्ते सर्वपाणी शोषण न करनां.

५ पांचमा असतीपोषण कर्म. सो कुतूहलके वास्ते कुत्ते, बिल्ले, हिंसक जीवोंकों पोपे, तथा दुष्ट भार्या, अरु दुराचारी पुत्रकों मोहसें पोषण करे, साचा झूठ जाणे नही, जो मनमें आवे सो करे, तिनकों राजी रखे, तथा वेचणे वास्ते दुराचारी दास दासीको पोषे, सो असती कर्म कहियें तथा माछी, कसाई, वागुरी, चमार प्रमुख बहु आरंभी जीवोंके साथ व्या पार करे, तिनकों द्रव्य तथा खरची प्रमुख देवे, यहभी दुष्ट जीवोंका पोषण है, जे कर अनुकंपा करकें श्वान (कुत्ते) प्रमुख किसी जीवकों पुण्य जान कर देवे, तो उसका निषेध नहीं, तथा अपणे महेल्लमें जो जीव होय तिनकी खबर लेनी पडे, तथा अपणे कुटुंबका पोषण करना पडे, इसमें पूर्वोक्त दोष नहीं क्योंकी यह लोकनीति राजनीतिका रस्ता है, यह पांच सामान्य कर्म कह्या इति पदरा कर्मादान संपूर्ण.

अब यह सातमें भोगोपभोग व्रतका पांच अतिचार लिखते हैं

१ प्रथम सचित्त आहार अतिचार, सो मूलभांगेमें तो श्रावक सर्व स चित्तका त्याग करे, जेकर नही करे, तो परिमाण कर लेवे, तहां सर्व स चित्तके त्यागी तथा सचित्तके परिमाणवाले जो अनाभोगादिकसें सचि त्त आहार करे, तथा जल, तीन उकाली आजानेसें शुद्ध प्राशुक होता है, तिनमें एक उकाला, दो उकालाका पाणी तो मिश्र उदक कहा जाता है, तिस पाणीकों अचित्त जाणके पीवे तथा सचित्त वस्तु अचित्त होनेमें देर है, उस वस्तुकों अचित्त जान कर खावे, तो प्रथम अतिचार लागे

२ दूसरा सचित्त प्रतिबद्धाहार अतिचार सो जिसके सचित्त वस्तुका नियम है, सो तत्काल खैरकी गोंदसें गूंद उखेडके खावे, गूंद तो अचित्त है परंतु सचित्तके साथ मिला हूआ था सो दूषण लगता है, तथा पक्का हूआ अब खिरणी वेर प्रमुखकों मुखसें खावे, अरु मनमें जानता है कि मैं तो अचित्त खाता हू, सचित्त गुठलीकों तो गेर देउगा, इसमें क्या दोष है? ऐसा विचार करके खावे तब दूसरा अतिचार लागे

३ तीसरा अपक्वौषधि भक्षण अतिचार सो बिना गल्या आटा, अ

रनेसें उसमें जू लीखादि त्रसजीव उत्पन्न होते हैं, तथा हरताल मनसिलको पीसती वखत जो यत्न न करे, तो मक्खी प्रमुख अनेक जीव मर जाते हैं.

३ तीसरा रस कुवाणिज्य. सो मदिरा, मांस, इत्यादि वस्तुका व्यापार महा पापरूप है, तथा दूध, दहीं, घृत, तेल, गुड, खांड प्रमुख जो ढीली वस्तु है, इसका जो व्यापार करनां सो रसकुवाणिज्य है इसमें अनेक जीवोंकी घात होती है वास्ते यह व्यापार श्रावक न करे.

४ चौथा केशकुवाणिज्य है सो द्विपद जो मनुष्य, दास, दासी प्रमुख, खरीद, कर वेंचनें, तथा चौपद जो गाय, घोडा, भेंस प्रमुख खरीदके वेचनें तथा पंखीयोंमें तीत्तर, मोर, तोता, मैनां, बटेरा प्रमुख वेचे, इस वाणिज्यमें पाप बहुत है इस वास्ते यह व्यापार श्रावक न करे

५ पांचमा विष कुवाणिज्य सो शखीया (सोमल) वछनाग, अफीम, मनसिल, हरताल, चरस, गांजा प्रमुख तथा शस्त्र जो धनुष, तलवार, कटारी, छुरी, बरछी, फरसी, कुहाडी, कुशी, कुदाल, पेसकबज, बंदूक, ढाल, गोली, दारु, बक्तर, पाखर, जिलम, तोप प्रमुख जिन करके संग्राम करते हैं, तथा हल, मूशल, उखल, दंताली, कर्वत, दात्री, गोला, हवाइ, पटाका, कुहक, शतघ्नी प्रमुख सर्व हिंसाहीका अधिकरण है इनका जो व्यापार करनां, सो सब विषवाणिज्य है. इसमें बहुत हिंसा होती है, ये पांच कुवाणिज्य हैं अब पांच सामान्य कर्म कहते हैं

१ प्रथम यन्त्रपीलन कर्म सो तिल सरसों, इक्षुआदि पीलाय करके वेचना, यह सर्व जीवहिंसाके निमित्तरूप यन्त्रपीलन कर्म है

२ दूसरा निर्लांछन कर्म सो बैल घोडाको खस्सी करणां, घोडे, बलद, ऊंट प्रमुखको दाग देनां, कोतवालकी नोकरी, जेलखानेका दरोगा ठेका लेनां, महसूल इजारे लेनां, चोरोंके गाममें वास करनां, इत्यादि जो निर्दयपणेका काम है, सो सर्व निर्लांछन कर्म है

३ तीसरा दावाग्निदान कर्म सो कितनेक मिथ्यादृष्टि अज्ञानी जीव धर्म मानके वनमें आग लगा देते हैं, वो अपने मनमें जानते हैं कि नया घास उत्पन्न होवेगा तब गौ चरगी, भिल्लादिक लोक सुखसे रहेंगे, अन्न उपजेगा, इत्यादि कार्य अज्ञानपणेसें धर्म जाणके कर, आग लगानेंसे लाखो जीव मरजाते है, इस वास्ते आग न लगानी चाहिये.

रूप धन व्यवहार है, तिस व्यवहारके वास्ते जो पाप करना पडे, सो अर्थदंम है तीसरा अपणा स्वजन कुटुंब परिवारादिकके वास्ते अवश्य जो जो पाप सेवना पडे, सो सो सब अर्थ दंम है चौथा पांच प्रकारकी इंड्रियोंके नोग वास्ते जो पाप करे, सोनी अर्थ दंम है, इन पूर्वोक्त चारों प्रयोजनो विना जो पाप करे,सो अनर्थदंम जाननां तिसके चार नेद हैं, सो कहते हैं प्रथम अपध्यान अनर्थदंम, दूसरा पापोपदेश अनर्थदंम, तीसरा हिंसप्रदान अनर्थदंम, चौथा प्रमादाचरित अनर्थदंम है इनमेंसूं प्रथम जो अपध्यान अनर्थदंम है, उसके फेर दो नेद है, एक आर्त्तध्यान दूसरा रौड्ध्यान,तिनमें फेर आर्त्तध्यानके चार नेद हैं, सो पृथक् पृथक् कहते हैं

१ प्रथम अनिष्टार्थ संयोगार्त्तध्यान. सो इंड्रिय सुखका विघ्नकारी ऐसे अनिष्ट शब्दादिकके संयोग होनेकी चिंता करे कि मत मेरेकों अनिष्ट शब्द मिले

२ दूसरा इष्टवियोगार्त्तध्यान सो हमकों नवविध परिग्रह अरु परिवार जो मिला है, इसका वियोग मत होवे, ऐसी चिंता करे, अथवा इष्ट जो माता, पिता, स्त्री, पुत्र, मित्र प्रमुख हैं, इनके विदेश गमनसें तथा मरण होनेसें बहुत चिंता करे, खाए पीए नहीं, वियोगके डुःखसें आत्मघात करनेका विचार करे, अथवा सर्वदिन क्रोधहीमें रहे, तथा घरमें यह कुपूत है; यह नाई वेदिल है, मेरे पिताका मेरे उपर मोह नहीं है, यह स्त्री मुझकों बहुत खराब मिली है, सो मेरे उपर दिल नहीं देती है, इसका कोई उपाय होवे तो अच्छा है, अरु स्त्री मनमें विचारे कि मुझे शोकन खराब करती है, मेरे पतिकों नूलाती है, क्या जाने किसी दिन पतिसें मुझे दूर करेगी? इस वास्ते इस रांमका कुछ उपाय करनां चाहियें, तथा सेवक ऐसा विचार करे कि –मेरे स्वामीके आगें फलाना मेरा डुश्मन गया है,सो जरूर मेरी खोटी कहेगा, मेरी रीत नांतकों अदल बदल कर देवेगा, मेरे स्वामीकों जूठ साच कह कर मेरी नौकरी बुडा देवेगा, तब मैं क्या करूंगा? इसका कुछ उपाय करनां चाहियें, तिसके निग्रह वास्ते यंत्र, मंत्र, कामन, मोहन, वशीकरण करे,तिसकों फूगा कलंक देवे, बलिदान देने वास्ते त्रस जीवकों मारे, यह सब अपने शत्रुके निग्रह वास्ते करें तथा मूठ चलाके मारा चाहे, परंतु वो मूर्ख यह नहीं विचारता कि –जे कर तू अपणे दिलसे सच्चा है, तो तुझे क्या फिकर है? अरु जहां तक अगलेका पु

ग्निका संस्कार जिसकों करा नहीं, ऐसा कच्चा आटा खावे, क्योंकि श्री सिद्धांतमें आटा पीस्यां पीछे विना छाण्यां कितनेही दिन मिश्र रहता है सो कहते हैं श्रावण, नाद्रव मासमें अनछान्या आटा पीस्या पीछे पांच दिन मिश्र रहता है, आश्विन और कार्त्तिक मासमें चारदिन मिश्र रहता है, मगसिर और पोष मासमें तीन दिन मिश्र रहता है, माघ अरु फागुण मासमें पांच प्रहर मिश्र रहता है, चैत्र अरु वैशाख मासमें चार प्रहर मिश्र रहता है, ज्येष्ठ अरु आषाढ मासमें तीन प्रहर मिश्र रहता है, पीछें अचित्त हो जाता है, सो मिश्र खावे, तो तीसरा अतिचार लागे

४ चौथा डुपक्कौषधि नक्षण अतिचार सो कछुक कच्चा, कछुक पक्का जैसें सर्व जातके पोंक अर्थात् सिट्टे जो मक्की, जवार, बाजरे, गेहूं प्रमुखके बीजोंसें नरें हूए होते है, इनकों अग्निका संस्कार कर्या, कछुक कच्चे पक्के हो जावे तिनकों अचित्त जान कर खावे, तो चौथा अतिचार लागे

५ पांचमा तुछौषधि नक्षण अतिचार सो तुछ नाम इहां असारका है, जिसके खानेसें तृप्ति न होवे, तिसके खानेमें पाप बहुत है, जैसें च णाका फूल खावे, तथा बेरकी गुठलीमेंसें गिर निकालके खावे, तथा वाल, समा, मूग, चवलाकी फली खावे, इसके खानेसें प्रसंग दूषणनी लग जाते है, क्योंकि कोइ बनस्पति अतिकोमल अवस्थामें अनंतकाय नी होती है, तिसके खानेंसें अनंतकायका व्रतनंग हो जाता है, यह पां चमा अतिचार कह्या ॥ इति सप्तम नोगोपनोग व्रतं संपूर्ण ॥ ७ ॥

अथ आठमा अनर्थदंम विरमणव्रतका स्वरूप लिखते हैं प्रथम अर्थ दंम उसकों कहते हैं, कि जो अपणे प्रयोजनके वास्ते करे, सो धन, धान्य, क्षेत्रादि नवविध परिग्रहमें हानी वृद्धि होवे, तब करे, क्योंकि धनवृद्धिके निमित्त संसारी जीवकों बहुत पापके कारन सेवने पडते है, तब असत्य भी बोले विना रह्या नहीं जाता है, पापके उपकरणनी मेलने पडते है, अरु कोई मनसूवा करनां पडता है, तब अनेक विकल्प रूप आर्त्तध्यान करना पडता है, क्योंकि धनादिक परिग्रह आजीविकाके अर्थे है, तिस वास्ते धनकी वृद्धि वास्ते जो जो पाप करता है, सो सो सर्व अर्थ दंम है दूसरा जब धनकी हानि होती है, तब धनहानि दूर करणे वास्ते अनेक विकल्प रूप पाप करता है, सोनी अर्थ दंम है, क्योंकि संसारके सुखका कारण

जावे तो ठीक है मुझे बहूत नफा मिल जावे, इत्यादि अनागत कालकी अपेक्षा अनेक कुविकल्प शेखशिल्लीकी तरें चिंते, इसका नाम अग्रशोच नामा आर्त्तध्यान है इति आर्त्तध्यानका संक्षेप स्वरूप लिखा ॥

अथ रौद्रध्यानका स्वरूप कहते हैं? प्रथम हिंसानंद रौद्र. सो त्रस स्थावर जीवोंकी हिंसा करकें मनमें आनंद माने, तथा बहूत पाप करकें सुंदर हाट, हवेली, बाग प्रमुख बनावे, उसको देखकें जब लोक प्रशंसा करे, तब मनमें सुख माने कि मैंनें कैसी हिकमतसें बनाया है, मेरे समान अकल किसीमेंनी नहीं है, तथा रसोइ प्रमुख खानेकी वस्तु बनावे, तब बहुत मसाले काले, नक्ष्य वस्तुकों अनक्ष्य सदृश बनाके खावे, तथा मानके उदयसें ऐसी जमणवार (ज्योंनार) करे, कि जिसको सर्व लोक सराहें, तथा राजाओंकी लडाइ सुन कर खुसी माने, एक राजाका पक्षी बन कर महिमा करें, दूसरेकी निंदा करे, तथा अमुक योद्धेनें एक तरवारसें सिंहादिक मारा है, वाह रे सुनट! ऐसी प्रशंसा करे, तथा अपणे डुश्मनकों मरा सुन कर राजी होवे, मुख मरोडे, मूठ उपर हाथ फेरे, हाथ घसे, अरु मुखसें कहे कि ये हरामखोर मेरे पुण्यसें मर गया, ऐसी ऐसी खोटी चिंतवणा करकें कर्म बांधे, परंतु ऐसा न विचारे कि – दूसरा कोइ किसीका मारणे वाला नहीं है, उसकी आयु पूरी हो गइ इस वास्ते मर गया, एक दिन इसीतरें तूंनी मर जायगा कूठा अभिमान करना ठीक नहीं, ऐसा विचार न करे, सो हिंसानंद रौद्रध्यान कहियें

२ दूसरा मृषानंद रौद्रध्यान सो कूठ बोलके खुशी होवे अरु मनमें ऐसा चिंते कि मैंने कैसीकबात बनाके करी किसीकोंनी खबर न पडी, मैं बडा अकलवत हूं? मेरे समान कौन है? मेरे सन्मुख कौन जवाब करनेकूं समर्थ है? बोलना है, सो करामात है, बोलना किसीकों आता है, इस अवसरमें जेकर मैं ना होता, तो देखते क्या होता? ऐसा मनमे फूले और अपने डुश्मनकों संकटमें गेरकें मनमें आनंद माने अरु कहे कि देखा मैंनें कैसी हिकमत करी? राज दरबारमें लोकोंकी चुगली करकें स्थानभ्रष्ट करे, मनमें खुसी माने इत्यादि मृषानंद रौद्र है

३ तीसरा चौर्यानंद रौद्र सो नद्रक जीवोंसे कूड कपटकी वार्ता बनाकरकें बहु मूली वस्तु थोडे दाममें ले लेवे, तथा पराया धन, लेखेसें अधि

ण्योदय है, तहां तक तूं यंत्र, मंत्रसें उसका कुछ बुरा नहीं कर सकता है ये सर्व ससारी जीवकी मूर्खता है, यह सर्व अनर्थदंम हैं तथा प्रथम छ पणी आतुरतासेंति मनमें कुविकल्प करे,कि मेरे वैरीके कुलमें अमुक अव रवस्त उत्पन्न हूआ है,सो मेरेकों दुःख देवेगा,इसकी राजदरबारमें आबरू जावे, अरु दंम होवे, तो ठीक है, तथा इसका कोई छिद्र मिले तो सरका रमें कह कर इसकों गामसें निकलवाय देउ तो ठीक है, ऐसा विचार मू ढ अज्ञानी करता है, तथा यहां चोर बहुत पडते हैं, सो पकडे जाय, फांसी दीये जाय, तो बडा अछा काम होवे, तथा अमुक पुरुष, मेरे ऊप र हो कर चलता है, इस हरामजादेका कुछ बदोबस्त करना चाहियें, जुं फेर कदापि शिर न उठावे, इत्यादि खोटे विकल्प करके अनर्थदंम करे, क्योंकि किसिकी चितवणासें दूसरोंका बिगाड नहीं होता है, जे कुछ हो ना है, सो तो सब पुण्य पापके अधीन है, तो फेर तू काहेकों बिछावत् मनोरथ करता है ? क्यों कि – यह विना प्रयोजनके पाप लगता है, सो अनर्थदंम है, ये दूसरा आर्त्तध्यानका भेद कहा

३ तीसरा रोगनिदानार्त्त ध्यान सो मेरे शरीरमें किसी वखत रोग होता है, वो न होवे तो अछा है, लोकोको पूछे कि अमुक रोग क्यों कर न हो वे ? तब कोइ कहेकि अमुक अमुक अनक्ष्य वस्तु खानेसें नहीं होता है,तब अनक्ष्नी खा लेवे, तथा जब शरीरमें रोग होवे, तब बहुत हाय हाय श ब्द करे, बहुत आरंन करे, घडी घडीमें ज्योतिषीकों पूछे, कि मेरा रोग क ब जायगा ? तथा वैद्यको वार वार पूछे, तथा मेरे ऊपर किसीने जादु करा है ? ऐसी शका करे, अरु रोग दूर करने वास्ते कुल विरुद्ध, धर्मविरुद्ध करे, तथा अनक्ष्य खानेमें तत्पर होवे, रोग दूर करनेके वास्ते औषधि, ज डी, बूटी, मत्र, यत्र, तंत्र, सीखे तथा सीखे हूए किसी वखत मेरेकाम आ वेगा, यह रोगनिदानार्त्तनामाआर्त्तध्यानका तीसरा भेद है

४ चौथा अग्रशोचनामा आर्त्तध्यान. सो अनागत कालकी चिंता करे, कि आवता वर्षमें यह विवाह करुगा, तथा ऐसी हाट, हवेली बनाउंगा, कि जिसकों देख कर सर्व लोक आश्चर्य करे, तथा अमुक वेग्रम बगीचा लगाना है, जिसके आगे सर्व बाग निकम्मे होजाय सर्व ग्रमनको जाती जले, तथा अमुक वस्तुका मेंने सौदा करा है,सो वस्तु आवेगी मरेको हो

जावे तो ठीक है मुझे बहूत नफा मिल जावे, इत्यादि अनागत कालकी अपेक्षा अनेक कुविकल्प शेखशील्लीकी तरें चिंते, इसका नाम अग्रशोच नामा आर्त्तध्यान है इति आर्त्तध्यानका सक्षेप स्वरूप लिखा ॥

अथ रौद्रध्यानका स्वरूप कहते हैं? प्रथम हिंसानद रौद्र. सो त्रस स्थावर जीवोंकी हिंसा करकें मनमें आनद माने, तथा बहूत पाप करकें सुंदर हाट, हवेली, बाग प्रमुख बनावे, उसकों देखकें जब लोक प्रश सा करे, तब मनमें सुख माने कि मैनें कैसी हिकमतसें बनाया है, मेरे समान अकल किसीमेंजी नहीं है, तथा रसोइ प्रमुख खानेकी वस्तु बना वे, तब बहुत मसाले माले, नक्ष्य वस्तुकों अनक्ष्य सदृश बनाके खावे, तथा मानके उदयसें ऐसी जमणवार (ज्योंनार) करे, कि जिसकों सर्व लोक सराहैं, तथा राजाओंकी लडाइ सुन कर खुसी माने, एक राजा का पक्षी बन कर महिमा करे, दूसरेकी निंदा करे, तथा अमुक योद्धेनें एक तरवारसें सिंहादिक मारा है, वाह रें सुनट! ऐसी प्रशसा करे, तथा अपणे डुश्मनकों मरा सुन कर राजी होवे, मुख मरोडे, मूछ उपर हाथ फेरे, हाथ घसे, अरु मुखसें कहे कि ये हरामखोर मेरे पुण्यसें मर गया, ऐसी ऐसी खोटी चिंतवणा करकें कर्म बांधे, परंतु ऐसा न विचा रेकि – दूसरा कोइ किसीका मारणे वाला नहीं है, उसकी आयु पूरी हो गइ इस वास्ते मर गया, एक दिन इसीतरें तूंजी मर जायगा झूठा अनि मान करना ठीक नहीं, ऐसा विचार न करे, सो हिंसानद रौद्रध्यान कहियें

२ दूसरा मृषानद रौद्रध्यान सो झूठ बोलके खुशी होवे अरु मनमें ऐसा चिंते कि मैंने कैसीकबात बनाके करी किसीकोंजी खबर न पडी, मैं बडा अकलवत हू? मेरे समान कौन है? मेरे सन्मुख कौन जवाब करनेकू समर्थ है? बोलना है, सो करामात है, बोलना किसीकों आता है, इस अवसरमें जेकर मैं ना होता, तो देखते क्या होता? ऐसा मन में फूले और अपने डुश्मनकों सकटमें गेरकें मनमें आनद माने अरु कहे कि देखा मैनें कैसी हिकमत करी? राज दरबारमें लोकोंकी चुगली करकें स्थानभ्रष्ट करे, मनमें खुसी माने इत्यादि मृषानद रौद्र है

३ तीसरा चौर्यानद रौद्र सो नद्रक जीवोंसें कूड कपटकी बातां बना करकें बहु मूली वस्तु थोडे दाममें ले लेवे, तथा पराया धन, छलेसें अधि

क लेवे, तथा चोरी करकें किसीकी वहीमें अधिका उठा लिख के आप पैसा खाय जावे, अनेक कपटकी कलासें शेठकों राजी कर लेवे, पीछें विचारे कि मैं कैसा चतुर हूं, कि पैसाजी खाया, अरु सेठके आगें सच्चाजी वन गया? तथा व्यापार करे, तब खोटी झूठी सौगंद खावे, मीठा बोल कर दूसरोंकों विश्वास उपजा कर न्यून अधिक देवे, लेवे, अरु मनमें राजी होके कहेकि मेरे समान कमाऊ कौन है? तथा चोरी करकें मनमें आनंद मानें कि मैने कैसी चोरी करी, कि जिसकी किसकों खबरजी नहीं पडी? तथा झूठे खत पत्र बनाकर सरकारसें फते पावे, तब मनमें बडा आनंदित होवे, जो में बडा चलाक हूं, मैनें हाकमकोंजी धोखा दीया, इत्यादि चौर्यानंद, सो रौद्र ध्यानका तीसरा भेद है

४ चौथा सरक्षणानंद रौद्र सो परिग्रह, धन, धान्य, बहूत बढावे, पीछें औरजी इछा करे, पाप कुटुंबके पोषणे वास्ते परिग्रहकी वृद्धि करे, बहुत कुबुद्धि करे, जैसे तैसे कामकों अंगीकार करे, लोक विरुद्ध, राजविरुद्ध, कुलविरुद्ध, धर्मविरुद्धादिक कामकी उपेक्षा न करे, अैसे करतां पूर्व पुण्योदयसें पाप परिग्रह पावे, धन बहुत हो जावे, तब मनमें बहुत खुशी माने कि इतना धन मैने एकिलाने पैदा कीया है,अैसा और कौन हुस्यार है, जो पैदा कर सके? अैसा अहंकार करे, अहंकारमें मग्न रहे, रातदिन मनमें चिंता रहे, कि मत कजी मेरा धन नष्ट हो जावे, रातकों पूरा सो वेजी नहीं, हाट हवेलीके ताले टटोलता रहे, सगे पुत्रकाजी विश्वास न करे, लोकोंको कुबुद्धि सिखावे,इत्यादि सरक्षणानुबंधी रौद्रध्यान है,ये आर्त अरु रौद्र मिलकर प्रथम अपध्यानार्थदंडके जेद है, सो न करनां चाहियें.

२ अब दूसरा पापकर्मोपदेश अनर्थदंड कहते है सो हरेक अवसरमें कर सवधि तथा दाक्षिण्यता वर्जीके पापोपदेश करे, जैसे तुमारे घरमें बछडे बडे हो गये है, इनको वधीया करके समारो, नाकमें नथ गेरो, घोडेकों चाबक असारकों देवो, यो ईसकों फेरके सिखावे, तथा तुमारे खेतमें घा ठ बहुत हो रहा है, उसका काटना तथा जलाना चाहियें, इत्यादि जो पापकारी काम है, तिसका विना प्रयोजन अज्ञानपणेसे उपदेश करे, यह दूसरा पापकर्मोपदेश अनर्थदंड है.

३ तीसरा हिंस्रप्रदान अनर्थदंड, सो हिंसाकारी वस्तु गाडी,हल, शस्त्र

तलवारादि, अग्नि, मूशल, उखल, धनुष, तरकस, चकु, छुरी, दात्र प्र मुख दूसरोंकों दाक्षिणता विना, मागे विना, देवे सो हिंसप्रदान.

४ चौथा प्रमादाचरण अनर्थदंम सो कुतूहलसे गीत, नाटक, तमाशा, मेला प्रमुख सुनने देखने जानां, इंद्रियोंकी विषय पोषणी, इहां कुतूहल कह नेसें जिनयात्रा, संघ, अष्टाह्मिमहोत्सव, रथयात्रा, तीर्थयात्रा, इनके देखने वास्ते जावे, तो प्रमादाचरण नही, किंतु यह तो सम्यक्त्व पुष्टिके कारण हैं, तथा कामशास्त्र वात्सायनादिकोंके कर्म तिनमें अत्यंत गृद्धि वार वार उसका अन्यास करनां तथा जूआ खेलनां, मद्य पीनां, शिकार मारने जाना, तथा जलक्रीडा (तलाव प्रमुखमें कूदनां) जल उगालनां, तथा वृक्षशाखाके साथ रस्सा बांधकर झूलना (हिचनां) हिंमोले (झुलानां) हिंचना, तथा लाल, तीत्तर, वटेरे, कूकडे, मिंढे, नैंसें, हाथी, बुलबुल, इनकों आपसमें लडानां तथा अपणे शत्रुके बेटे पोतेसें वैर रखनां, वैर लेनां, तथा नक्तकथा सो "मांस, कुलमाष, मोदक, उदनादि बहूत अछा नोजन है, जो खाते हैं, उ नकों बडा स्वाद आता है, अरु हमनी यह खायंगें" इत्यादि कहनां, तथा स्त्री कथा, सो स्त्रीयोंके पहननेकी तथा अंगप्रत्यंग हावनावादि कथन रूप, तथा "कर्णाटी सुरतोपचारकुशला, लाटी विदग्धा प्रिये" इत्यादि तथा स्त्री के रूपोत्पादन, कुच कठन करणां, योनिसकोच, इत्यादि स्त्री कथा करणी ति था देशकथा सो जैसें दक्षिण देशमें अन्न, पाणी, अरु स्त्रीयोंसें संनोग करनां बहूत अछा है इत्यादि तथा पूर्वदेशमें विचित्र वस्तु गुड, खांम, शालि, मद्यादि प्रधान चीजें होती हैं, तथा उत्तरदेशके लोक सूरमे हैं, घोडे वडे शीघ्र चलने वाले अरु दृढ होते हैं, तथा गेहू प्रमुख धान्य बहु त होता है, तथा केशर, मीठी डाख, दाडिम, कौठादि जहां सुलन हैं इत्यादि तथा पश्चिम देशमें इंद्रियकों सुखकारी सुख स्पर्शवाले वस्त्र हैं, इत्यादि तथा राजकथा सो जैसें हमारा राज बडा सूरमा है, बडा धनवा न् है, अश्वपति तुरक इत्यादि है यह जैसें चार अनुकूल कथा कही, ऐसें ही चारो प्रतिकूल कथानी जान लेनी, तथा ज्वरादिरोग अरु मार्गका थ केवा, यह दोनों वर्जके संपूर्ण रात्रिकों सो रहनां (निद्रा लेनी) यह स वे पूर्वोक्त प्रमादाचरणकों श्रावक वर्जे, तथा देशविशेषमेंनी प्रमाद न क रनां, तथा जिनमंदिरमें कामचेष्टा, हांसी, लडाइ, हसना, थूकनां, निंद

लेनां, चोर परदारिकादिकी खोटी कथा करनी, चार प्रकारका आहार खानां, यह चौथा अनर्थदंड है इस व्रतके पांच अतिचार कहते हैं

१ प्रथम कंदर्पचेष्टा सो मुखविकार, भ्रूविकार, नेत्रविकार, हाथकी संज्ञा बतावे, पगकों विकारकी चेष्टा करके औरोकों हसावे, किसीकों क्रोध उत्पन्न हो जावे, कुबका कुब हो जावे, अपणी लघुता होवे, धर्मकी निंदा होवें, ऐसी कुचेष्टा करे, सो प्रथम कंदर्पचेष्टा अतिचार है

२ दूसरा मुखसेंती मुखरता करे, असबंध वचन बोले, जिस्सें दूसरों का मर्म प्रगट होवे, कष्टमें गेरे, अपणी लघुता करे, वैर वधे, ढीठ, लबाड, चुगल खोरु, इत्यादि नाम धरावे, लोकोमें लज्जनीय होवे, इसी तरें बहुत वाचालपणा करणां, सो दूसरा मुखारिवचन अतिचार

३ तीसरा भोगोपभोगातिरिक्त अतिचार है, सो यहां स्नान, पान, भोजन, चंदन, कुंकुम, कस्तूरी, वस्त्र, आभरणादिक अपणे शरीरके भोगसें अधिक करणे, सो अनर्थदंड है इहां वृद्ध आचार्योंकी यह संप्रदाय है, कि – तेल, आमले, वही प्रमुख, जे कर स्नानके वास्ते अधिक ले जावे, तो तद लोल्यता करकें स्नान वास्ते बहुत लोक तलाव आदिकमें जायगे, तहां पाणीके पूरे, तथा अप्कायके जीवोंकी बहुत विराधना होवेगी, इस वास्ते श्रावककों ऐसे स्नान न करनां चाहियें क्योंकि श्रावकके स्नानका यह विधि है कि – श्रावकने प्रथम तो घरमेंही स्नान करनां चाहियें तिसके अभावसें तेल, आमले, आकदिसे घरमेंही शिर घस करकें मैल गेर करकें तलावके कांठे उपरि बैठके अंजलिसे पाणी शिरमें भाल करकें स्नान करनां, तथा जिस फूलादिकमें जीवोंकी संसक्ति जाने, तिनकों परिहरे, ऐसे सर्व जगे जान लेनां यह तीसरा भोगाधिक आरंभ अतिचार है

४ चौथा कौकुच्य अतिचार. सो जिसके बोलने करनेसें अपणी तथा औरोंकी चेतना, कामक्रोधरूप हो जावे, तथा विरहकी वात संयुक्त कथा, दोहा, साखी, वैत, फूलना, कवित, छंद, परजराग, श्लोक, शृंगाररसकी भरी हुइ कथा कहनी, यह चौथा काममर्म कथन अतिचार है.

५ पांचमा संयुक्ताधिकरण अतिचार सो उखलके साथ मूसल, हलके साथ फाला, गाडीसें जुग, धनुषसें तीर, इत्यादि इहां श्रावकने संयुक्त अधिकरण नहीं रखनां, क्योंकि संयुक्त रखनेसे कोइ ले लेवे, तो फेर ना

नहीं करी जाती है, अरु जब अलग अलग होवे, तब उसकों सुखसें उ त्तर दे सकेगा, ये पांचमा अतिचार कहा ॥ इति अष्टमव्रतं संपूर्ण ॥

अथ नवमा सामायिकव्रतका स्वरूप लिखते हैं इन पूर्वोक्त आगें व्र तोंकों तथा आत्मगुणोंकों पुष्टिकारक अविरति कषायमें तादात्म्यजावसें मिली अनादि अशुद्धता रूप विजाव परिणति, तिसके अन्यासकों मिटाने वास्ते अरु आत्मअनुजव करने वास्ते तथा सहजानंद स्वरूपरस प्रगट कर ने वास्ते यह नवमा शिक्षाव्रत है, अर्थात् शुद्ध अन्यासरूप नवमा सामायिक व्रत लिखते हैं दो घडी काल प्रमाण समतामें रहना, राग द्वेषरूप हेतुओंमें मध्यस्थ रहणां, तिसकों पंमित सामायिक व्रत कहते हैं, (सम) नाम है राग द्वेषरहित परिणाम होनेसें जो ज्ञान दर्शन चारित्ररूप मोक्ष मार्ग, तिसका "आय" नाम लान होवे प्रशमसुख रूप इनका जो इक केतां जाव सो सामायिक है, मन, वचन, कायकी खोटी चेष्टा एतावता आर्त्तध्यान तथा रौद्रध्यान त्यागके अरु सावद्य मन, वचन, काया, पाप चिंतन, पापोपदे श, पापकरणरूप वर्जके श्रावक सामायिक करे. इहां आवश्यक शास्त्रमें लिखा है, कि जब श्रावक सामायिक करता है, तब साधुकी तरें हो जाता है, इस वास्ते श्रावक सामायिकमें देवस्नात्र, पूजादिक, न करे, क्यों कि जावस्तवके वास्ते इव्यस्तव करनां है, सो जावस्तव सामायिकमें प्राप्त हो जाता है, इस वास्ते श्रावक सामायिकमें इव्यस्तव रूप जिनपूजा न करे, सामायिक करने वाला मनुष्य बत्तीस दूषण वर्जके सामायिक करे, सो बत्तीस दूषणमें प्रथम कायाके बार दूषण कहते हैं

१ सामायिकमें पग उपर पग चढा करके उंचा आसन (पालठी) ल गाकर बैठे, सो प्रथम दूषण है, कारण कि गुरुविनयकी हानि कारक होने तें यह अजिमानका आसन है, इस वास्ते जिस बैठनेंसें विनयगुण रहे, औ उद्धता मालुम न होवे, तथा अजयणा न होवे, असे आसन उपर बैठे

२ दूसरा चलासन दोप सो आसन स्थिर न रक्खे, वार वार आगें पीछें हलावे, चपलाइ करे, मुख्य मार्ग तो यह है, कि श्रावक एक जगे एकही आसन उपर सामायिक पुरा करे, अमिग पणेसें रहे, कदापि रोग निर्बल तादि कारण करकें एक आसन उपर टिका न जाय, फिरनां पडे, तो उ

पयोग संयुक्त जयणा पूर्वक चरवलासें जहां तहां पूजना प्रमार्जना करके आसन फिरावे, यह पूर्वोक्त विधि न करे, तो दूसरा दूषण लगे

३ तीसरा चलदृष्टि दोष है सो सामायिक करे, पीछे नासिका ऊपरदृष्टि राखे, अरु मनमें शुद्ध उपयोग राखे, मौन पणेसें ध्यान करे, अरु सामायिकमें शास्त्राभ्यास करना होवे, तो यत्नपूर्वक मुख आगें मुखवस्त्रिका दे कर, दृष्टि पुस्तक ऊपर रख कें पढे, अरु सुणे, तथा जब कायोत्सर्ग करे, तब चार अंगुल पीछें पग चौडा राखे, ऐसी योग मुद्रासें खडा हो कर दोनो बाहु प्रलंबित करे, दृष्टि नासिका ऊपर रक्खे, अथवा सज्जे (दहिने) पगके अंगूठे ऊपर रक्खे, यह शुद्ध सामायिक करनेकी विधि है, इस विधिकों छोडके चपल पणेसे चकितमृगकी तरें चारोंदिशि आंखे फिरावे, सो तीसरा दोष है

४ चौथा सावद्यक्रियादोष सो क्रिया तो करे, परंतु तिसमें कछुक सावद्य क्रिया करे, अथवा सावद्य क्रियाकी संज्ञा करे, सो चौथा दोष

५ पांचमा आलंबन दोष सो सामायिकमें भींतादिकका आलंबन, अर्थात् पीठ लगा कर बैठे, यह विना पूजी भींतमें अनेक जीव बैठे हूए होते हैं, सो मर जाते हैं, तथा आलंबनसें नींदभी आ जाती है

६ छठा आकुंचन प्रसारण दोष सो सामायिक करकें विना प्रयोजन हाथ, पग, संकोचे, लांबा करे, सामायिकमें तो महोटे कारण विना हलना नहीं, जरूरी काममें चरवलासे पूजन प्रमार्जन करकें हलावे

७ सातमा आलस दोष सो सामायिकमें अंगमें आलस मोडे, अंगुलीयोंके कडाके काढे, कमर वांकी करे, ऐसी प्रमादकी बाहुल्यतासें व्रतमें अनादर होता है, कायामें अरति उत्पन्न हो जाती है, जब उठे, तब आलस मोड कर अतिअशोभनिक उठे यह सातमा आलस दोष

८ आठमा मोटन दोष सो सामायिकमें अंगुली प्रमुख टेढी करी कडाका काढे ए पण प्रमादकी प्रबलतासें होता है

९ नवमा मल दोष सो सामायिक ले करकें खाज करे, मुख्यवृत्ति तो सामायिकमें खाज नहीं करणी, परंतु जब लाचार होवे, तब चरवला प्रमुखसें पूजन प्रमार्जन करके हलने हलवे खाज करे यह मैलो दं

१० दशमा विमासण दोष सो सामायिकमें गलेमें हाथ दे कर बैठ

११ इग्यारवा निद्रा दोष. सो सामायिकमें नींद लेवे

१२ बारमा शीत प्रमुखकी प्रबलतासें अपणे समस्त अंगोपांग वस्त्र करकें ढांके, यह बारां दोष कायासे उत्पन्न होते हैं, इनकों सामायिकमें वर्जे. अब वचनके दश दोष है सो लिखते हैं

१ प्रथम कुबोल दोष सो सामायिकमें कुवचन बोले

२ दूसरा सहसात्कार दोष सो सामायिक ले करकें विना विचारे बोले

३ तीसरा असदारोपण दोष सो सामायिकमें दूसरोंकों खोटी मति देवे

४ चौथा निरपेक्ष वाक्य दोष सो सामायिकमें शास्त्रकी अपेक्षा विना बोले

५ पांचमा संक्षेप दोष सो सामायिकमें सूत्र, पाठ, संक्षेप करे, अक्षर पाठ हीना कहे यथार्थ कहे नहीं, सो पांचमा दोष है

६ छठा कलह दोष सो सामायिकमें साधर्मीयोंसें क्लेश करे, सामायिकमें तो कोइ मिथ्यात्वी गालीया देवे, उपसर्ग करे, कुवचन बोले, तोभी तिसके साथ लडाइ नहीं, करनी चाहियें, तो फेर अपने साधर्मीके साथ तो विशेष करके लडाइ करणीही नहीं, जेकर करे, तो छठा दोष लगे

७ सातमा विकथा दोष सो सामायिकमें बैठके देशकथादि चार विकथा करे, सामायिकमें तो स्वाध्याय अरु ध्यानही करनां चाहियें

८ आठमा हास्य दोष सो सामायिकमें दूसरोंकी हांसी करे, मस्करी करे

९ नवमा अशुद्धपाठ दोष सो सामायिकमें सामायिकका सूत्रपाठ शुद्ध न उच्चारे, हीनाधिक उच्चारे, यद्वा तद्वा सूत्र पढे

१० दशमा मुणमुण दोष सो सामायिकमें प्रगट स्पष्ट अक्षर न उच्चारे, दूसरोंकों तो जैसा मच्छर नणनणाट करता होवे, ऐसा पाठ मालुम पडे, पद अरु गाथाका कुछ ठिकाना मालम न पडे गडबड करकें उतावलसें पाठ पूरा करे, यह दश दोष वचनके हैं अब मनके दश दोष लिखते हैं

१ प्रथम अविवेक दोष सो सामायिक करकें सर्वक्रिया करे, परंतु मनमें विवेक नहीं निर्विवेकतासे करे, मनमें ऐसा विचारे कि सामायिक करनेसें कौन तरा है? इसमें क्या फल है? इत्यादि विकल्प करे

२ दूसरा यशोवांछा दोष सो सामायिक करकें यश कीर्त्तिकी इछा करे

३ तीसरा धनवांछा दोष सो सामायिक करनेसें मुजे धन मिलेगा

४ चौथा गर्वदोष सो सामायिक करकें मनमें गर्व करे कि मुझे

लोक धर्मी कहेंगे, मैं कैसें सामायिक करता हू, मूर्ख लोक क्या समजे।

५ पांचमा जय दोष. सो लोकोंकी निंदासें मरता हूआ सामयिक करे, क्योंकि लोक कहेंगे कि देखो श्रावकके कुलमें उत्पन्न हूआ है, बडा पुरुष कहनेमें आता है,परंतु धर्म कर्मका नामजी नहीं जानता,धर्म तो दूर रहा, परंतु हररोज सामायिकजी नहीं करता, ऐसी निंदासें मरता हुआ करे

६ ठठा निदान दोष सो सामायिक करकें निदान करे कि इस सामायिकके फलसें मुझे धन, स्त्री, पुत्र, राज्य, जोग, इन्द्र, चक्रवर्त्तिका पद मिले.

७ सातमा संशय दोष सो क्या जाने सामायिकका फल होवेगा कि नहीं होवेगा ? जिसको तत्त्वकी प्रतीत न होवे, सो यह विकल्प करे

८ आठमा कषाय दोष सो सामायिकमें कषाय करे,अथवा क्रोध करकें तुरत सामायिक करकें बैठ जाय सामायिकमें तो कषाय त्याग नां चाहियें

९ नवमा अविनय दोष. सो विनय हीन सामायिक करे

१० दशमा अबहुमान दोष सो सामायिक बहुमान जक्तिजाव उत्साह पूर्वक न करे यह दश मनके दोष कहे अरु पूर्वोक्त बारह कायाके तथा दश वचनके मिल कर बत्तीस दूषण रहित सामायिक करे, इस सामायिक व्रतके पांच अतिचार टाले, सो पांच अतिचार कहते हैं

१ प्रथम कायडु प्रणिधान अतिचार सो शरीरके अवयव हाथ, पग प्रमुख, बिना पूंजे प्रमार्जे हलावे, जींतके पीठ लगा कर बैठे.

२ दूसरा मनोडु प्रणिधान अतिचार सो मनमें कुव्यापार चिंतन क्रोध, लोज, द्रोह, अजिमान, ईर्ष्या, व्यासंग, संभ्रमचित्त सहित सामायिक करे.

३ तीसरा वचन डु प्रणिधान अतिचार सो सामायिकमें सावद्य वचन बोले, सूत्राक्षर हीन पढे सूत्रका स्पष्ट उच्चार न करे

४ चौथा अनवस्था दोषरूप अतिचार सो सामायिक वखत स्थिर न करे,जेकर करेजी तोजी वे मर्यादासें आदर बिना उतावलसें करे

५ पांचमा स्मृतिविहीन अतिचार सो सामायिक करी, कि नहीं ? सामायिक पारीकि नहीं ? ऐसी जूल करे इति नवम सामायिक व्रत संपूर्ण ॥

अथ दशमा दिशावकाशिक व्रत लिखते हैं छठे व्रतमें जो दिशाका परिमाण करा है,सो जावज्जीव तहां तक है,उसमें तो क्षेत्र बहुत बड़ा रख्या है, तिसका तो रोज काम पडता नहिं, इस वास्ते दिन दिन प्रति संक्षेप

करे, जैसें आजके दिन दश कोश वा पंदरा कोश वा पांच कोश, अथवा नगरके दरवाजे तक, वा कोश, अर्द्धकोश,बाग बगीचे तक, घरका हद्द तक जानां आनां है,उपरात नियम करना,सो दिशावकाशिकव्रत है ए छठे व्रत का संक्षेपरूप है, उपलक्षणसें पांच अणुव्रतादिकका सक्षेप थोडे कालका सोजी इसी व्रतमें जान लेनां, यह व्रत चार मास, एक मास, वीश दिन,पांच दिन अहोरात्रि, अथवा एक दिन, एक रात्रि, तथा एक मुहूर्त्तमात्रजी हो सक्ता है, इसका नियम असे करे कि मैं अमुक ग्रामादिकमें काया कर कें जाउगा, उपरांत जानेका निषेध है, इस व्रत वाले प्राणीके देश परदेशका जिनके व्यापार होवे, सो असें कहे कि मुजकों काय करके इतने क्षेत्र उपरांत जाना नहि, परतु दूर देशका कागज प्रमुख लिखा हूआ आवे, सो वांचु अथवा कोइ मनुष्य जेजनां पडे, उसका आगार है परदेशकी बात सुननेका आगार है,अरु जिसका दूरका व्यापार नहि होवे, सो चीठी खत, पत्रजी न वांचे, अरु आदमीजी न जेजे, तथा चित्तकी वृत्तिसें जे कर सकल्प विकल्प न होवे,तो परदेशकी बातजी न सुने. जेकर नहि रहा जावे, तो आगार रक्खे, परंतु जान करके दोष न लगावे यह देशावकाशिक व्रत सदा सवेरके वखत चौदह नियमकी यादगिरीमें उपयोगसें रक्खे, अरु रात्रिकों जूदा रक्खे, यह व्रत जैसें गुरुमुखसें धारे, तैसें करे (पाले) अरु इस व्रतके पांच अतिचार टाले, सो कहते हैं

१ प्रथम आणवण प्रयोग अतिचार सो नियमकी जूमिकासें बाहिरकी कोइ वस्तु होवे, तिसकी गरज पडे,तब बिचारे की मेरे तो नियमकी जूमिकासें बाहिर जानेका नियम है, तब कोइ जाता होवे, तदा तिसकों कह करके वो वस्तु मगवा लेवे, अरु मनमें यह विचारेकी मेरा व्रतजी जग नहि हूआ, अरु वस्तुजी आ गइ, यह प्रथम अतिचार है

२ दूसरा पेसवण प्रयोग अतिचार सो दूसरे आदमीके हाथ नियमसें बाहिरली जूमिकामें कोइ वस्तु जेजे, सो दूसरा अतिचार है

३ तीसरा सद्दाणुवाय अतिचार सो नियमकी जूमिकासें बाहिर, कोइ आदमी जाता है, तिस्सें कोइ काम है, तब तिसकों खुखारादि शब्द करकें बोलावे, फेर कहे कि अमुक वस्तु ले आनां, तब तीसरा अतिचार लगे

४ चौथा रूपानुपाती अतिचार सो कोइक पुरुष उसके नियमकी जूमि

लोक धर्मी कहेंगे, मैं कैसें सामायिक करता हू, मूर्ख लोक क्या समझे

५ पांचमा जय दोष. सो लोकोंकी निंदासें मरता हूआ सामयिक करे, क्योंकि लोक कहेंगे कि देखो श्रावकके कुलमें उत्पन्न हूआ है, बमा पुरुष कहनेमें आता है, परंतु धर्म कर्मका नामजी नहीं जानता, धर्म तो दूर रहा, परंतु हररोज सामायिकजी नहीं करता, अैसी निंदासें मरता हूआ करे.

६ उठा निदान दोष. सो सामायिक करकें निदान करे कि इस सामायिकके फलसें मुजे धन, स्त्री, पुत्र, राज्य, जोग, इंद्र, चक्रवर्त्तिका पद मिले.

७ सातमा संशय दोष सो क्या जाने सामायिकका फल होवेगा कि नहीं होवेगा? जिसको तत्त्वकी प्रतीत न होवे, सो यह विकल्प करे

८ आठमा कषाय दोष सो सामायिकमें कषाय करे, अथवा क्रोध करकें तुरत सामायिक करकें बैठ जाय सामायिकमें तो कषाय त्याग नां चाहियें

९ नवमा अविनय दोष. सो विनय हीन सामायिक करे

१० दशमा अबहुमान दोष सो सामायिक बहुमान जक्तिजाव उत्साह पूर्वक न करे. यह दश मनके दोष कहे अरु पूर्वोक्त बारह कायाके तथा दश वचनके मिल कर बत्तीस दूषण रहित सामायिक करे, इस सामायिक व्रतके पांच अतिचार टाले, सो पाच अतिचार कहते हैं

१ प्रथम कायदु प्रणिधान अतिचार सो शरीरके अवयव हाथ, पग अप्रमुख, विना पूजे प्रमार्जे हलावे, जींतके पीठ लगा कर बैठे.

२ दूसरा मनोदु प्रणिधान अतिचार. सो मनमें कुव्यापार चिंतन क्रोध, लोज, डोह, अनिमान, ईर्ष्या, व्यासंग, सन्नमचित्त सहित सामायिक करे.

३ तीसरा वचन दु प्रणिधान अतिचार सो सामायिकमें सावद्य वचन बोले, सूत्राक्षर हीन पढे सूत्रका स्पष्ट उच्चार न करे

४ चौथा अनवस्था दोषरूप अतिचार सो सामायिक वखत स्थिर न करे. जेकर करेजी तोजी वे मर्यादासें आदर विना उतावलसें करे

५ पांचमा स्मृतिविहीन अतिचार सो सामायिक करी, कि नहीं? सामायिक पारीकि नहीं? अैसी जूल करे इति नवम सामायिक व्रत संपूर्ण ॥

अथ दशमा दिशावकाशिक व्रत लिखते हैं उठे व्रतमें जो दिशाका परिमाण करा है, सो जावज्जीव तहां तक है, उसमें तो क्षेत्र बहुत दूर रक्खा है, तिसका तो रोज काम पडता नहिं, इस वास्ते दिन दिन प्रति तथा

२ दूसरा शरीरसत्कार पोषध. सो सर्वथा शरीरका सत्कार, स्नान, धोवन, धावन, तैलमर्दन, वस्त्राभरणादि शृंगार प्रमुख कोइभी शुश्रूषा न करे, साधुकी तरें अपरिकार्मित शरीर रहे, तिसकों सर्वथा शरीर सत्कार पोषध कहते हैं तथा पोषधमें हाथ, पग प्रमुखकी शुश्रूषा करनी, तिसका आगार रखे, उसकों देशसत्कार पोषध कहते हैं

३ तीसरा अब्रह्मपोषध सो त्रिकरण शुद्ध ब्रह्मचर्यव्रत पाले, वो सर्वथा ब्रह्मचर्य पोषध है अरु मन, वचन, दृष्टि प्रमुखका आगार रखे, अथवा परिमाण रखे, सो देशसें ब्रह्मचर्य पोषध है

४ चौथा सर्वथा सावद्य व्यापारका त्याग सो सर्वसें अव्यापार पोषध है. अरु जे एकादि व्यापारका आगार रखे, सो देशसें अव्यापार पोषध जाननां.

एव चार प्रकारके पोषधके दो दो भेद हैं,सो प्रथम जब आगम व्यवहारी गुरु होते थे, अरु श्रावकभी शुद्ध उपयोग वाले होते थे, तब जो जो प्रतिज्ञा लेते थे, सो सो प्रतिज्ञा अखंडित तैसीही पालते थे, परंतु भूलते नहीं थे, अरु न्यूनाधिकभी नहीं करते थे, और गुरुभी अतिशय ज्ञानके प्रभावसें योग्यता जान कर देश,सर्व, पोषधका आदेश देते थे, तथा श्रावक कदाचित् भूलभी जाते थे, तो भी तत्काल प्रायश्चित्त ले लेते थे, अरु इस कालमें तो ऐसे उपयोगी जीव हैं नहीं, दुखमकालके प्रभावसें जडबुद्धि जीव बहुत हैं, इस वास्ते पूर्वाचार्योंने उपकारके अर्थे आहार पोषध तो दोनो करने, अरु शेष तीन पोषध जीतव्यवहारके अनुसारें निषेध कर दीये हैं यही प्रवृत्ति वर्त्तमान संघमें प्रचलित है,पोषध तो श्रावककों जरुर करनां चाहियें, कारणकि कर्मरूप भावरोगकी यह औषधि है, तातें जब पर्वदिन आवे, तब जरूर पोषध करे. इसका पांच अतिचार टाले, सो कहते हैं

१ प्रथम अप्पडिलेहिय दुप्पडिलेहिय सिज्जासंथारक अतिचार सो जिस स्थानमें पोषध संस्थारक करा है,तिस भूमिकी तथा संथाराकी पडिलेहणा न करे, एतावता संथारेकी जगा अछी तरें निगाह करिकें नेत्रोंसें देखे नहीं अरु कदापि देखे,तोभी प्रमादके उदयसें कुछ देखी कुछ न देखी ऐसें करे

२ दूसरा अप्पमज्जिय दुप्पमज्जिय सिज्जासंथारक अतिचार सो संथाराकों रजोहरणादिक करकें पुजे नहीं, कदापि पूजे, तोभी यथार्थ न पूजे, गड वड कर देवे, जीवरक्षा न करे, तो दूसरा अतिचार लागे

कासें बाहिर जाता है, तिसके साथ कोइ काम है, तब हाट हवेली ऊ
र चढकें उसको अपणा रूप दिखावे, तब वो आदमी उसके पास आवे,
पीछें आपणे मतलबकी उस्सें बातां करे, तब चौथा अतिचार लगे

५ पांचमा पुजलाक्षेप अतिचार सो नियमकी जूमिकासें बाहिर कोइ
पुरुष जाता है, तिसके साथ कोइ काम है, तब तिसकों ककरा मारे,
जब वो देखे, तब तिसके पास आवे, तब उसके साथ बात चीत करे,
यह पांचमा अतिचार ॥ इति दशम देशावकाशिक व्रत संपूर्ण ॥

अथ इग्यारहवा पौषधोपवास नामा व्रत लिखते हैं यह पोषधव्रतके
चार जेद हैं, उसमें प्रथम आहार पोषध है, तिसकेजी दो जेद हैं एक
देशत दूसरा सर्वत तहां देशसें तो त्रिविहार उपवास करकें पोषध करे,
अथवा आचाम्ल करकें पोषध करे, अथवा त्रिविहार एकाशनां करकें
पोपध करे, यह तीन प्रकारसें देश पोपध होता है, तिसकी विधि लिखते हैं

पोपध करनेसें पहिले अपने घरमें कह रखे कि मैं आज पोपध करुंगा,
इस वास्ते आचाम्ल अथवा एकाशना करा है, जोजनके अवसरमें आहार
करनेको आउंगा,अथवा तुमने पोपधशालामें ले आनां, पीछेसें पोषध करने
को जावे, तहां पोपध करकें देववंदन करकें, पीछे चरवला, मुखवस्त्रिका,
पूंछणा, ये तीन उपकरण साथ ले करकें चादर ओढ करकें साधुकी तरें
उपयोग संयुक्त मार्गमें यत्नसें चल कर जोजनके स्थानकमें जा करकें, इ
रियावहिया पडिक्कमे, गमनागमनकी आलोचना करे, पीछे पूंछणा उप
र बैठके आहार करनेका जाजन प्रतिलेखकें पीछें अपने लेने योग्य आहा
र लेवे, साधुकी तरें रसगृद्धिसें रहित आहार करे, मुखसें आहारकों अ
छा बूरा न कहे, आहारका जूठ गेरे नहीं, आहार करे पीछे उष्ण जल
से आहारका वरतन धो कर पी जावे, वरतन शुद्ध करके सूका करकें उ
पयोग संयुक्त पोपधशालामें आवे, पूर्वस्थानमें जा कर बैठे, परंतु मार्गमें
जाते आते किसीके साथ वात न करे, इस रीतसें स्वस्थानकमें आवे इरि
यावही पडिक्कमकें चैत्यवंदन करके धर्मक्रियामें प्रवर्त्ते,तथा आहार अपना
कोइ सधर्मी अथवा सेवक ले आवे,तोजी पूर्वोक्त रीतिसे आहार करके बरत
न पीछे दे देवे,पीछे धर्मक्रियामें प्रवर्त्ते,तिसकों देशसे पोपध कहते हैं तथा
जो चउविहार करकें पोपध करे, सो सर्वसें पोषध कहियें, यह प्रथम जेद.

गोपांग, स्तन, जघनादि देखे, यह अठारह दूषण पोषधमें वर्जे, तो शुद्ध पोषध जानना अन्यथा पांचमा अतिचार लागे इति एकादश व्रतं॥

अथ बारहवा अतिथिसंविभागव्रत लिखते हैं अतिथि उसकों कहते हैं, कि जिसने लौकिक पर्वोत्सवादि तिथियोंकों त्याग दीया है, सो अतिथि है, जैसें प्राहुणा विनातिथि आता है, एतावता तिथि देखकें नहीं आता है, ऐसेंही जो साधु अण चिंत्याही आ जावे है, सो अतिथि जाननां ऐसे मधुकर वृत्तिवालेसें जो विभाग करें, एतावता शुद्ध व्यवहार न्यायोपार्जित धन करकें अपणा उदर पूरणे योग्य जो रसोइ करी है, उत्तम कुल आचार पूर्वक पूर्वकर्म पश्चात्कर्मादि दोष रहित ऐसा शुद्ध निर्दोष आहार भक्तिपूर्वक जो देवे, सो अतिथिसंविभाग व्रत है तहां प्रथम दान देनेवालेमें पांच गुण होवे, तो वो दातार शुद्ध होता है, सो पांच गुण लिखते हैं

१ प्रथम जैनमार्गी दातारकू, शुद्ध पात्रकी प्राप्ति पा करकें अपणे घरमें मुनिका दर्शन मात्र होनेसें अंतरंगमें बहुत दिनकी चाहनाके उल्लाससें आनंदके आंसु आवे, जैसें अपणा प्यारा अति हितकारी वल्लभ विछडके परदेशमें गया है, उसकों मनसें कभी विसरता नहीं, मिलाही चाहाता है, उस मित्रके अकस्मात् मिलनेसें आनंद आंसु आवे, तैसें मुनिकों घरमें आया देखकें आनंद आंसु ल्यावे, अरु मनमें विचारे कि मेरा बडा भाग्य है, जो ऐसा मुनि मेरे घरमें आया है? अरु मैं कैसा हु? अनादिका भूल्या, द्रव्य संबल रहित, दरिद्रपीडित, ज्ञानलोचनरहित, अधभाव करि पीडित, अपार संसारचक्रमें भटकता हूआ, बहुत अकथनीय दुःख संयुक्त देख कर मेरे पर परमदया दृष्टि करकें प्रथम मेरेकों ज्ञानांजन शलाकासें ज्ञानरूप देखने वाला नेत्र खोल दीना, अरु तीन तत्त्व सेवा रूप व्यापार सिखलाया, तथा मुझकों रत्नत्रयीरूप पूंजी (रास) दे कर मेरा अनादि दरिद्र दूर करा, मुझे भले आदमीयोंकी गिणतीमें करा, ऐसे गुरु मुनिराज विना गरजके परोपकारी मेरे घरांगणमे आया, ऐसी पुष्ट भावना प्रशस्त राग भावकें उल्लाससें आनंदके आंसु आवे, यह दातारका प्रथम गुण है,

२ दूसरा जैसें संसारमें जीवको अत्यंत इष्ट वस्तुके संयोगसें रोमावली

३ तीसरा अप्पडिलेहिय दुप्पडिलेहिय उच्चारपासवण भूमि अतिचार सो लघुशंका, बडीशंका, परिठवणेकी भूमिका, नेत्रोंसें अवलोकन न करे, अरु अवलोकन करे, तोभी अलसु पलसु करकें काम चलावे. भी वयत्न विना करे, परिठवे, तो तीसरा अतिचार लागे

४ चौथा अप्पमज्जियदुप्पमज्जिय उच्चारपासवणभूमि अतिचार. सो जहां मूत्र, विष्ठा करे, उस भूमिकाकों उच्चारप्रस्रवण करनेसें पहिलां पूंजे नहीं, जे कर पूजे, तोभी यथा तथा पूजे, परंतु यत्नसें न पूजे

५ पांचमा पोसहविहिविवरीए अतिचार सो पोषधमें क्षुधा लगे' तब पारणेकी चिंता करे, जैसेंकि प्रभातमें अमुक रसोइ अथवा अमुक वस्तुका आहार करुंगा, तथा अमुक कार्य करणा है, तहां जाना पडेगा, अमुक उपर तगादा करुंगा, तथा प्रभातमें पोषध पारकें अच्छी तरें तेलम र्दन कराऊंगा, अच्छे गरम पानीसें स्नान करुंगा, तथा अमुक पोसाक करु गा, स्त्रीके साथ भोग करुगा, इत्यादि सावद्य चितवणा करे, तथा सध्या समयें पोषधके मण्डल शोधन न करे, सर्व रात्रि सूता रहे, विकथा करे, पोषधके अठारह दूषण हैं, सो वर्जे नहीं, सो अठारह दूषण लिखते हैं.

१ विना पोषेवालेका ल्याया हूआ जल पीवें, २ पोषध वास्ते सर स आहार करे, ३ पोषधके अगले दिन विविध प्रकारका सयोग मिलाय कें आहार करे, ४ पोषध निमित्त अथवा पोषधके अगले दिनमें विभू षा करे, ५ पोषध वास्ते वस्त्र धोवावे, ६ पोषध वास्ते आभरण घडावें पहिरे, स्त्रीभी नथ, ककणादि सोहागके चिन्ह वर्जके दूसरा नवा गहेना घडाकें पहिरे, ७ पोषध वास्ते वस्त्र रंगा कर पहिरे, ८ पोषधमें शरीर की मल उतारे, ९ पोषधमें विना काल निद्रा करे, १० पोषधमें स्त्रीक था करे, स्त्रीकों भली बुरी कहे, ११ पोषधमें आहार कथा करे, भोज नकों अच्छा बुरा कहे, १२ पोषधमें राजकथा करे, युद्धकी बात सुने, कहे, १३ पोषधमें देश कथा करे, अच्छा बुरा देश कहे, १४ पोषधमें लघुशंका अरु बडीशंका सो भूमिका पूज्या विना करे, १५ पोषधमें दूस रेकी निंदा करे, १६ पोषधमें स्त्री, पिता, माता, पुत्र, भाइ प्रमुखसें वार्तालाप करे, १७ पोषधमें चारकी कथा करे, १८ पोषधमें [illegible]

की कमी नहिं, किसीके साथ प्रतिबंध नहिं, पवनकी तरें अप्रतिबंध हो, तोभी मेरे उपर जरूर कृपा करणी, औसे मुखसें कहता हूआ अपणे घरकी सीमा तक पहुचावे, यह तीसरा गुण है.

४ चौथा तहांसें वंदना करकें पीछें आ कर भोजन करे, परंतु मनमें आनंद समावे नहीं, विचारे कि मेरा बडा भाग्योदय हूआ, आज कोइ भली वात होवेगी क्योंकि आज मुनि, नि स्पृही, सहजउदासी, स्वसुख विलासीकों मैं विनति करी आहार दीया, अरु आहार देतां बिचमें कोइ विघ्न न हूआ, इस वास्ते मेरा बडा भाग्य है,फेरभी कहे औसे मुनिका योग मिलेगा ? औसी अनुमोदना वारंवार करे, यह चौथा गुण है

५ पांचमा जैसें कोइ मंदभाग्यवान् व्यापार करतां थोडा थोडा कमाता है, तिसकों किसी दिन कोइ सौदेमें लाख रूपैयेकी प्राप्ति होवे, तब वो कैसा आनंदित होवे है, अरु फेर उस व्यापारकी कितनी चाहना रखता है, तिस्सेंभी अधिक साधुकों दान देनेकी चाहना श्रावक रक्के, यह पांचमा गुण है यह पांच गुणयुक्त शुद्ध दान देवे, तो अतिथि सविभाग व्रत होवे इस व्रतके पांच अतिचार वर्जे,सो लिखते हैं

१ प्रथम सचित्तनिक्षेप अतिचार सो सचित्त सजीव पृथ्वी, जल, कुंभ, चुल्हा, इधनादिकोंके उपर न देनेकी बुद्धिसें आहारकों रख छोडे अरु मनमें औसा विचारेकि ए आहार साधु तो नहीं लेवेगा, परंतु निमत्रणा करनेसें मेरा अतिथि सविभागव्रत पल जावेगा, यह प्रथमातिचार

२ दूसरा सचित्त पीहण अतिचार सो सचित्त करकें ढक छोडे, सूरण, कंद, पत्र, पुष्प, फलादि करके न देनेकी बुद्धिसें ढक छोडे

३ तीसरा कालातिक्रम अतिचार सो साधुओंके भिक्षाका काल लंघ करकें अथवा भिक्षाके कालसे पहिलां अथवा साधु आहार कर चूके तब आहारकी निमत्रणा करे, सो तीसरा अतिचार है

४ चौथा परव्यपदेश मत्सर अतिचार सो जब साधु मागे तब क्रोध करे, तथा वस्तु पासमें है, तोभी मांग्या न देवे,अथवा इस कंगालने औसा दान दीया, तो मैं क्या इस्सें हीन हू, जो न देऊ ? इस भावनासें देवे

५ पांचमा गुड, खंड प्रमुख अपणी वस्तु है, सो न देनेकी बुद्धिसे औरोंकी कहे, यह पांचमा अतिचार ॥ इति श्रीअतिथिसविभागव्रतं संपूर्ण॥

खडी होती है, तैसें बडी नक्तिके प्रनावसें मुनिकों देखकें विकस्वर होवे, हृदयमें हर्ष समावे नहीं, यह दूसरा गुण है

३ तीसरा मुनिकों देखकें बहुमान करे, जैसें किसी गरीबके घरमें रा जा आप चल कर आवे, तब वो गरीब गृहस्थ जैसा राजेका आदर क रे, अरु मनमें विचारे कि महाराजा मेरे घरमें आया है, तो मैं अमी व स्तु इनकों नेट करुं तो ठीक है, क्योंकि राजाका आवना वारंवार मेरे घ रमें कहां है? असा विचारकें जैसें वस्तु नेट करे, तैसें श्रावकजी साधु कों घरमें आया देखकें बहुत मान करे, अरु मनमें असा विचारेकि यह असा नि स्पृहीयोमें शिरोमणि, जगद्बंधु, जगत् हितकारी, जग वत्सल, निष्का मी, आत्मानंदी, करुणासागर, संसारजलधि उद्धरण, परोपकार करणमें चतुर, क्रोधादि कषाय निवारक, आप तरे परतारक, असा मुनिराज, मेरे घरमें चल कर आया, इस्सें मेरा अहो नाग्य है? असा जान कर संभ्रम संयुक्त सन्मुख जावे, त्रिकरण शुद्ध परिणामसें कहे कि हे स्वामी! दीनद याल! पधारो, मेरे गृह अंगण पवित्र करो, असा बहुमान दे कर घरमें प धरावे, मनमें विचारे कि मेरे बडा पुण्योदय है, जो साधु आहार पाणीका अनुग्रह करते हैं, क्योंकी साधुके आहार लेनेमें वही विधि है, साधु शु द्ध नात पाणी जाणे, तो लेवे, इस वास्ते मत मेरेसें कोइ दोष उपजे? असा विचार कें त्रिकरण शुद्ध बहुमान पूर्वक उपयोग संयुक्त विधिपूर्व क आहार ल्यावे, अरु मधुरस्वरसें विनति करे, कि हे स्वामी! यह शुद्ध आहार है, इस वास्ते सेवक उपर परम कृपा नजर करकें पात्र पसारकें मेरा निस्तार करो असे वचन बोलता हूआ आहार देवे, मुनिजी उस आहारकों योग्य जाण कर ले लेवे, अरु श्रावकजी जितनी दान देने यो ग्य वस्तु है, उसके सर्वकी निमंत्रणा करे, इस विधिसें दान दे कर हा थ जोडकें पृथिवी उपर मस्तक लगा कर नमस्कार करे, पीछे मीठे वचनोंसें विनति करे की हे कृपानिधान! सेवक उपर बडी कृपा करी, आज मेरा घर प वित्र हूआ, क्योंकि पुण्योदय बिना मुनिका योग कहां होता है? फेरजो हे स्वा मी! कृपा करकें अशन, पान, खादिम, स्वादिम, औषध, वस्त्र, पात्र, शय्या, संस्तारकादिसें प्रयोजन होवे, तब अवश्य सेवक उपर अनुग्रह करके पधारनां, तुम तो मुनिराज गुणवान् हो परवाह हो, तुमकों किसी बात

की कमी नहिं, किसीके साथ प्रतिबंध नहिं, पवनकी तरें अप्रतिबंध हो, तोजी मेरे ऊपर जरूर कृपा करणी, ऐसे मुखसें कहता हूआ अपणे घरकी सीमा तक पहुचावे, यह तीसरा गुण है.

४ चौथा तहांसें वंदना करकें पीछें आ कर जोजन करे, परंतु मनमें आनंद समावे नहीं, विचारे कि मेरा बडा जाग्योदय हूआ, आज कोइ जली वात होवेगी क्योंकि आज मुनि, निःस्पृही, सहजउदासी, स्वसुख विलासीकों मैं विनति करी आहार दीया, अरु आहार देतां बिचमें कोइ विघ्न न हूआ, इस वास्ते मेरा बडा जाग्य है,फेरजी कदे ऐसे मुनिका योग मिलेगा? ऐसी अनुमोदना वारंवार करे, यह चौथा गुण है

५ पांचमा जैसें कोइ मंदजाग्यवान् व्यापार करतां थोडा थोडा कमाता है, तिसकों किसी दिन कोइ सौदेमें लाख रूपैयेकी प्राप्ति होवे, तब वो कैसा आनंदित होवे है, अरु फेर उस व्यापारकी कितनी चाहना रखता है, तिस्सेंजी अधिक साधुकों दान देनेकी चाहना श्रावक रक्खे, यह पांचमा गुण है यह पांच गुणयुक्त शुद्ध दान देवे, तो अतिथि सविजाग व्रत होवे इस व्रतके पांच अतिचार वर्जे, सो लिखते हैं

१ प्रथम सचित्तनिक्षेप अतिचार सो सचित्त सजीव पृथ्वी, जल, कुंज, चुल्हा, इंधनादिकोंके ऊपर न देनेकी बुद्धिसें आहारकों रख छोडे अरु मनमें ऐसा विचारेकि ए आहार साधु तो नहीं लेवेगा, परंतु निमंत्रणा करनेसें मेरा अतिथि सविजागव्रत पल जावेगा, यह प्रथमातिचार

२ दूसरा सचित्त पीहण अतिचार सो सचित्त करकें ढक छोडे, सूरण, कंद, पत्र, पुष्प, फलादि करके न देनेकी बुद्धिसें ढक छोडे

३ तीसरा कालातिक्रम अतिचार सो साधुओंके जिक्षाका काल लंघ करके अथवा जिक्षाके कालसें पहिलां अथवा साधु आहार कर चूके तब आहारकी निमंत्रणा करे, सो तीसरा अतिचार है

४ चौथा परव्यपदेश मत्सर अतिचार सो जब साधु मागे तब क्रोध करे, तथा वस्तु पासमें है, तोजी मांग्या न देवे,अथवा इस कंगालने ऐसा दान दीया, तो मैं क्या इस्सें हीन हू, जो न देऊ? इस जावनासें देवे

५ पांचमा गुड, खंम प्रमुख अपणी वस्तु है, सो न देनेकी बुद्धिसें औरोंकी कहे, यह पांचमा अतिचार ॥ इति श्रीअतिथिसविजागव्रत संपूर्ण॥

यह सम्यक्त्वपूर्वक बारह व्रतरूप गृहस्थधर्मका स्वरूप धर्मरत्न तथा योगशास्त्रादि ग्रंथोंसें संक्षेप लिखा है जे कर विशेष देखनां होवे तो धर्मरत्नशास्त्रवृत्ति तथा योगशास्त्र देख लेना

इति तपोगच्छीये गणि श्रीमणिविजय तच्छिष्य श्रीमुनि बुद्धिविजय ष्य मुनिश्रात्माराम श्रानंदविजयविरचिते जैनतत्त्वादर्शे श्रावकव्रतनिरू पण नामा अष्टम परिच्छेद संपूर्ण ॥ ८ ॥

॥ अथ नवम परिच्छेद प्रारंभ ॥

यह परिच्छेदमें श्रावकोंका जो दिनकृत्य, रात्रिकृत्य, पर्वकृत्य, चातुर्मासिककृत्य, संवत्सरकृत्य, जन्मकृत्य, यह छै प्रकारका कृत्य हैं तिनमेंसू प्रथम दिनकृत्य विधि, श्राद्धविधि ग्रंथ तथा श्रावक कौमुदी शास्त्रके अनुसार लिखते हैं

प्रथम तो श्रावककों निद्रा थोडी लेनी चाहियें, जब एक प्रहर रात्रि शेष रहे, तब निद्रा छोडकें ऊठनां चाहियें, जेकर किसीकों बहु नींद आती होवे, तब जघन्य चौदमे ब्राह्म मुहूर्त्तमें जरूर ऊठनां चाहियें, क्योंकि सवेरे ऊठनेंसें इस लोक अरु परलोकके अनेक कार्य सिद्ध होते है, उस अवसरमें बुद्धि टीकी हुइ अरु निर्मल होती है, पूर्वापर अच्छी तरेंसे विचार कर सक्ता है, अरु ग्रंथकार ऐसेंभी कहते हैं कि जिसके नित्य सूतेके सूर्य ऊग जावे, तिसकी आयु अल्प होती है, इस वास्ते ब्राह्म मुहूर्त्तमें अवश्य सूता ऊठनां चाहियें, जब सूता ऊठे, तब मनमें विचारे कि मै श्रावक हूं, अपने घरमें तथा पर घरमें इन दोनोमसू कहां सूता था? तथा हवेली मकानमें सूता था कि चोबारे प्रमुखमें सूता था? दिनमें सूता था कि रात्रिको सूता था? इत्यादि विचार करतेंभी जेकर निद्राका वेग न मिटे तदा नाक अरु मुखका उश्वास रोके, उस करके निद्रा तत्काल दूर हो जाती है, पीछे दरवाजा अच्छी तरेंसे देखके लघुशंकादि करे तथा रात्रिमें किसीकों कुछ कहनां पडे, तब मंद स्वरसें कहे, परंतु ऊंचे स्वरसें न कहे, क्योंकि रात्रिमें ऊंचा शब्द करनेंसें छिपकली प्रमुख हिंसक जीव जाग

जाते है, फेर वो मछीयों आदिक जीवोंकी हिंसा करते हैं, तथा कसाइ जाग जावे तो गौ, वकरी, नेडी प्रमुखकों मारने वास्ते चला जावे तथा माछी, जाल ले कर मछली मारनेकों चला जावे,तथा बावरी,अहेडी, खून करनेवाला, मदिरा बनाने वाला, परस्त्री गमन करने वाला, तस्कर,लूटेरा, धाडी, धोवी, कुनार, अरु जूआरी प्रमुख, अनेक हिंसक जीव जाग कर अनेक तरेंके पाप करनेमें प्रवृत्त हो जाते हैं, यह रात्रिमें उचे शब्दसें बोलने वालोंकों सर्व पाप लगे वास्ते रात्रिमें उचे शब्दसे न बोलनां चाहियें.

जब सवेरकी बखत निद्रा छेद होवे, तब तत्त्वोंके जानने वाले श्रावककों तत्त्वविचार करना चाहियें. सो तत्त्व पांच है, तिसका नाम कहते हैं. १ पृथ्वी, २ जल, ३ अग्नि, ४ वायु, ५ आकाश, उसमें निद्रा छेद समयमें जेकर पृथ्वी तत्त्व अरु जल तत्त्व वहे, तब तो शुन है, अरु जेकर अग्नि, वायु, तथा आकाश तत्त्व वहे, तो दुःखदायक है शुक्ल पक्षकी पडिवाके दिन जेकर वामी नासिकाका स्वर चले, तो पंदरा दिन तक आनंद आरोग्य रहे, अरु कृष्ण पक्षकी एकमके दिन जेकर दक्षिण नासिकाका स्वर वहे, तो पंदरा दिन तक सुख आनंद रहे इस्सें विपर्यय होवे, तो विपर्यय फल होवे

तथा शुक्ल पक्षके प्रथम तीन दिन वामी नासिका सवेरे उठते वहे, तो शुन है आगले तीन दिन दक्षिण स्वर चले तो शुन है, फेर आगले तीन दिन वाम स्वर चले तो शुन है, ऐसेही क्रमसे पंदरा दिन तक जान लेने अरु कृष्ण पक्षकी पडिवाके दिनसें लेकर जेकर तीन दिन तक दक्षिण स्वर चले तो शुन है, आगले चौथे दिनसें लेकर तीन दिन तक वाम स्वर चले तो शुन है, फेर आगले तीन दिन दक्षिण स्वर चले तो शुन है, ऐसें पंदरा दिन तक जान लेनां तथा चंद्रस्वरमें सूर्य उगे अरु सूर्यस्वरमें सूर्य अस्त होवे तो शुन है तथा सूर्यनाडीमें सूर्य उदय होवे अरु चंद्रनाडीमें अस्त होवे, तोनी शुन है, किसी शास्त्रके मतमें रवि, मंगल, गुरु, अरु शनि, इन चार वारोंमें दक्षिण स्वरमें सूर्यनाडी दिन उगता चले, तो शुन है, अरु सोम, बुध तथा शुक्र, इन तीनो वारोंके दिन सूता, उठतां, चंद्रस्वर वामस्वर चले, तो शुन है विपर्यय चले, तो अशुन है

तथा किसीके मतमें संक्रांतिके क्रमसें सूर्य चंद्र नाडी वहे तो शुन है,

यह सम्यक्त्वपूर्वक बारह व्रतरूप गृहस्थधर्मका स्वरूप धर्मरत्न तथा योगशास्त्रादि ग्रंथोंसें संक्षेप लिखा है जे कर विशेष देखनां तो धर्मरत्नशास्त्रवृत्ति तथा योगशास्त्र देख लेनां

इति तपोगच्छीये गणि श्रीमणिविजय तच्छिष्य श्रीमुनि बुद्धिविजय प्य मुनिश्रात्माराम आनंदविजयविरचिते जैनतत्त्वादर्शे श्रावकव्रतनिरू पण नामा अष्टम परिच्छेद संपूर्ण ॥ ८ ॥

॥ अथ नवम परिच्छेद प्रारंभ ॥

यह परिच्छेदमें श्रावकोंका जो दिनकृत्य, रात्रिकृत्य, पर्वकृत्य, चातुर्मासि कृत्य, संवत्सरकृत्य, जन्मकृत्य, यह छै प्रकारका कृत्य हैं तिनमेंसू प्रथम दिनकृत्यविधि, श्राद्धविधि ग्रंथ तथा श्रावक कौमुदी शास्त्रके अनुसार लिखते हैं

प्रथम तो श्रावककों निद्रा थोडी लेनी चाहियें, जब एक प्रहर रात्रि शेष रहे, तब निद्रा छोडके उठना चाहियें, जेकर किसीकों बहु नींद आती होवे, तब जघन्य चौदमे ब्राह्म मुहूर्त्तमें जरूर उठनां चाहिये, क्योंकि सवेरे उठनेसें इस लोक अरु परलोकके अनेक कार्य सिद्ध होते हे, उस अवसरमें बुद्धि टीकी हुइ अरु निर्मल होती है, पूर्वापर अच्छी तरेसे विचार कर सक्ता हे, अरु ग्रंथकार ऐसेंभी कहते हैं कि जिसके नित्य सूतेके सूर्य उग जावे, तिसकी आयु अल्प होती हे, इस वास्ते ब्राह्म मुहूर्त्तमें अवश्य सूता उठनां चाहियें, जब सूता उठे, तब मनमें विचारे कि मै श्रावक हूं, अपने घरमें तथा पर घरमें इन दोनोंमेंसू कहा सूता था? तथा ऊंचे मकानमें सूता था कि चोबारे प्रमुखमें सूता था? दिनमे सूता था कि रात्रिकों सूता था? इत्यादि विचार करतेंभी जेकर निद्राका वेग न मिटे तदा नाक अरु मुखका उश्वास रोके, उस करके निद्रा तत्काल दूर हो जाती हे, पीछे दरवाजा अच्छी तरेसे देखके लघुशंकादि करे तथा रात्रिमें किसीकों कुछ कहना पडे, तब मंद स्वरसे कहे. परंतु ऊंचे स्वरसे न कहे. क्योंकि रात्रिमें ऊंचा शब्द करनेसे उपद्रवी प्रमुख हिंसक जीव जाग

खेती करनेके वखत, शत्रुके जीतनेमें, विद्यारंभमें, राज्याभिषेकमें इत्यादि शुभकार्यमें चंद्रनाडी वहे, तो कल्याणकारी है

प्रश्नके समय कार्यके आरंभमें पूर्ण वामी नाडी प्रवेश करती होवे, तदा निश्चय कार्यकी सिद्धि जाननी इसमें संदेह नहीं, तथा कैदसें कद छूटे गा ? रोगी कब अछा होवेगा ? अरु जो अपने स्थानसें भ्रष्ट हूआ है, तिस का प्रश्नमें तथा युद्ध करनेके प्रश्नमें, वैरीकों मिलती वखत, अकस्मात् भय हूआ, स्नान करण लगें, भोजन, पाणी पीने लगें, सोने लगें, गइ वस्तुके खोज करनेमें, मैथुन करने लगें, विवाद करणमें, कष्टमें, इतने कार्यमें सूर्य नाडी शुभ है कोइक आचार्य ऐसेभी कहते है कि विद्या रंभमें, दीक्षामें, शास्त्राभ्यासमें, विवादमें, राजाके देखनेमें, मंत्र यंत्रके साधनेमें, सूर्यनाडी शुभ है अथवा जो चंद्रादि स्वर चलता होवे, निरंतर तिस पासेंका पग उठाके प्रथम चले तो कार्य सिद्धि होवे

पापी जीवोंके शत्रुओंके चार प्रमुख जे क्लेशके करने वाले हैं, तिनके सन्मुख जो नासिका बंध होवे, सो पासा, इनके सामने करे, जो सुख लाभ जयार्थी है, उसमें प्रवेश करता हूआ पूरा स्वर, वामा पग शुक्ल पक्षमें, अरु जीमणा पग कृष्ण पक्षमें, शय्यासें उठता हूयां धरती ऊपर रखता इसविधिसें श्रावक निंद त्यागे

अरु श्रावक अत्यंत बहुमान पूर्वक मंगलके वास्ते पंचपरमेष्टि नमस्कार स्मरण-करे, शय्यामें बैठा हूआ मनमें पंचपरमेष्टि नमस्कारमंत्र स्मरण करे, परंतु वचनसें उच्चारण न करे, जेकर मुखसें उच्चार करे, तो शय्या छोड कर धरती ऊपर बैठ कर नमस्कार मंत्र पढे, ऐसे नमस्कार मंत्र हृदयमें स्मरण करता हूआ शय्यासें उठे, पवित्र भूमिका ऊपर बैठे, तथा पूर्व अथवा उत्तरदिशि सन्मुख मुख करकें खडा रह कर चित्तकी एकाग्रताके वास्ते कमलबंध कर जपादि करकें नमस्कार मंत्र पढे, तहां आठ पांखडीका कमल चिंते, उसकी कर्णिकामें अरिहंत पदका स्थापन करे, पूर्व पांखडीमें सिद्ध, दक्षिण पांखडीमें आचार्य, पश्चिम पांखडीमें उपाध्याय, उत्तर पांखडीमें साधु स्थापन करे, अरु बाकी चूलिकाके चार पद जो हैं, सो अनुक्रमें अग्न्यादि चारों कूणोंमें स्थापन करे उक्तंचाष्टमप्रकाशे योगशास्त्रे ॥ श्रीहेमचंद्रसूरिभि ॥ अष्टपत्रे सिताम्भोजे,

जैसें मेष संक्रांतिके दिन सूर्यस्वर चले, अरु वृषसंक्रांति दिन चंद्र नाडी चले, तो शुभ जाननी इत्यादि तथा किसीके मतमें चंद्रमा राशि पलटे तिस क्रम करकें अढाइ घडी तक एक नाडी वहती है इत्यादि परंतु हेमाचार्य श्री हेमचंद्रादिकोंका तो प्रथम जो लिखा है, सो मत है ज्योतिष गुरु अक्षरोंके उच्चारणेमें जितना काल लगता है तितना काल वायु नाडीकों दूसरी नाडीमें सचार करते लगता है

अब पांच तत्त्वोंकी पहिचान इसी तरें है, सो कहते हैं नासिकाकी पवन जेकर उंची जावे, तब तो अग्नि तत्त्व है, जेकर नीची जावे, तो जल तत्त्व है, तिर्छी जावे, तो वायुतत्त्व, जेकर नासिकासें निकलके सूधी तिर्छी जावे, तो पृथ्वीतत्त्व, जेकर नासिकाके दोनो पुटोंके अंदर वहे, बाहिर नहीं निकले तो आकाश तत्त्व जानना

पहिला पवन तत्त्व वहता है पीछे अग्नि तत्त्व वहता है, पीछे जल तत्त्व वहता है, पीछे पृथ्वीतत्त्व वहता है, पीछे आकाश तत्त्व वहता है क्रम इनका सदा यही है दोनोही नाडीयोंमें पांचो तत्त्व वहते हैं, उसमें पृथ्वी तत्त्व पंचाश पल प्रमाण वहता है, जल तत्त्व चालीश पल प्रमाण वहता है, अग्नितत्त्व तीस पल प्रमाण वहता है, वायुतत्त्व वीस पल प्रमाण वहता है, आकाश तत्त्व दश पल प्रमाण वहता है

पृथ्वी अरु जल तत्त्वमें शांतिकार्य करणा, अरु अग्नि, वायु, तथा आकाश इन तीन तत्त्वमें दीप्तिमान् अरु स्थिरकार्य करणा, तो फलोन्नति शुभ होवे है, तथा जीवणेका प्रश्न पूछना, जयप्रश्न, लाभप्रश्न, धन उत्पन्न करणेका प्रश्न, मेघ वर्षनेका प्रश्न, पुत्र होनेका प्रश्न, युद्धका प्रश्न, जाने आनेका प्रश्न, इतने प्रश्न जेकर पृथ्वी अरु जलतत्त्वमें करे, तो शुभ होवे, जेकर अग्नितत्त्व अरु वायु तत्त्वके वहता ये प्रश्न करे, तो शुभ नहीं, पृथ्वी तत्त्वमें प्रश्न करेतो कार्यकी सिद्धि स्थिरपणे होवे अरु जलतत्त्वमें शीघ्रकार्य होवे

जब पहला पहिला जिनपूजा करे, तथा धन कमावनेके वास्ते जावे, पाणिग्रहणकी (विवाहकी) वेला, गढ लेनेकी वेला, नदी उतरनेकी वेला, गया है सो आवेगाकि नहीं? असे प्रश्न करते वेला जीवनेके प्रश्नमें तथा घर हाट आदि लेती वेला, क्रियाणा लेता, वेचता, वर्षके प्रश्नमें, नोकरी करणेकी वेला,

मंत्रके "अरिहंत सिद्ध आयरिय उवझाय साहू" इन सोलां अक्षरका जाप करे, तथा "अरिहंतसिद्ध" इन षट् वर्ण (छै अक्षर) का जाप करे, तथा "अरिहंत" इन चार अक्षरका जाप करे, तथा आकार जो वर्ण है, सोजी मंत्र है इनके जापसें स्वर्ग मोक्षका फल होता है, अरु व्यवहार फल औसा जाननां, कि —षट्वर्णका जाप तीन सौ वार करे, तथा चार वर्णका जाप चार सौ वार करे, अरु सोलां अक्षरका जाप दो सौ वार करे, तो एक उपवासका फल होता है, तथा नाजिकमलमें स्थित तो अकार ध्यावे, अरु सि वर्ण, मस्तक कमलमें स्थित ध्यावे, तथा आकार मुख कमलमें स्थित ध्यावे, उकार हृदय कमलमें स्थित ध्यावे, तथा साकार कंठ पिंजरमें स्थित ध्यावे, सर्व कल्याणकारी यह जाप है, असिआउसा यह पांच बीज है, इन पांचों बीजोंका ॐकार बनता है

तथा और बीज मंत्रोंकाजी जाप करे, जैसें "नम सिद्धेन्य." औसा मंत्र तो जे कर इस लोकके फलकी इच्छा होवे, तब तो ॐकार पूर्वक पढनां चाहियें, अरु मोक्ष वास्ते जपे, तो ॐकाररहित पढनां चाहियें, यह जपादि करनेसें बहुत फल होता है॥ यत ॥ पुजाकोटिसम स्तोत्र, स्तोत्रकोटिसमोजप ॥ जपकोटिसम ध्यान, ध्यानकोटिसमो लय ॥ १ ॥ ध्यानकी सिद्धि वास्ते श्रीजिनजन्मदीक्षादि कल्याणक जूमिरूप तीर्थमें जावे, अथवा और कोइ विविक्त स्थान होवे, तहां ध्यान करे, ध्यानका स्वरूप देखनां होवे, तब आवश्यक सूत्रांतर्गत ध्यानशतक देख लेनां नमस्कार मंत्रका जो जाप है, सो इस लोक परलोकमें बहुत गुणकारी है, ॥ उक्तं महानिशीथे ॥ नासेइ चोर सावय, विसहर जल जलण बधण जयाइ ॥ चितिज्जतो रक्खस, रण राय जयाइ जावेण ॥ १ ॥ अर्थ — चोर, सिंह, सर्प, पाणी, अग्नि, बधन, संग्राम, राजजय, इतने जय पचपरमेष्ठि मंत्रके स्मरणसें नष्ट हो जाते हैं एकाग्रता जावसें जपे, तो यह फल होता है पंच परमेष्ठि मंत्र सर्व जगे पढनां चाहियें, नमस्कार मंत्रका एक अक्षर जपे, तो सात सागरोपमका करा हूआ पाप नष्ट होता है जे कर संपूर्ण पंच परमेष्ठिमंत्र जपे, तो पांच सौ सागरका करा हूआ पाप नष्ट हो जाता है, तथा जो पुरुष एक लक्ष वार पंच परमेष्ठि मंत्रका जाप करे, अरु यह नमस्कार नामक मंत्र जो है, तिसकी विधिसे पूजा

कर्णिकायां करस्थिति ॥ आद्यं सप्ताक्षर मंत्रं, पवित्रं चिंतयेत्तत ॥ १ ॥ सिद्धादिकचतुष्कं च, दिक्पत्रेषु यथाक्रम ॥ चूलापादचतुष्कं च, विदिक्पत्रेषु चिंतयेत् ॥ २ ॥ त्रिशुद्ध्या चिंतयन्नस्य, शतमष्टोत्तरं मुनि ॥ भुंजानोपि लभत्येव, चतुर्थतपस फलम् ॥ ३ ॥

हाथके आवर्त्त करके जो पंच मंगल मंत्र स्मरण नित्य करे, उसको पिशाचादिक नहीं छलते हैं, बंधनादि कष्टमें विपरीत शंखावर्त्तकादिक अक्षरों करके अथवा विपरीत पदों करके पंचमंगल मंत्र लक्षादि जाप करे, तो शीघ्र क्लेशादिकोंका नाश होवे, जे कर हाथ ऊपर जाप न कर सके तो सूतकी, रत्नकी, रुद्राक्षादिककी, माला ऊपर जाप करे, माला वाला हाथ, हृदयके सामने रक्खे, शरीरसे तथा शरीरके वस्त्रोंसें तथा भूमिकासें माला न लगने देनी, अंगूठेके ऊपर माला रख करकें तर्जनी अंगुलीसें नख, बिना लगाया मणका फेरे, मेरु उल्लंघन न करे, शास्त्रकार लिखते हैं कि जो अंगुलीके अग्रसें जाप करे, अरु जो मेरु उल्लंघके जाप करे, तथा जो बिखरे हूए चित्तसें जाप करे, यह तीनो जाप थोडा फल देते है, जाप करने वाला बहुतोंसें एकला अच्छा शब्द करकें जाप करनेसे मौन करकें करे, सो अच्छा है, जेकर जप करतां थक जावे, तो ध्यान करे, ध्यान करनेसे थक जावे, तो जप करे, दोनोंसें थक जावे, तो स्तोत्र पढे

श्रीपादलिप्त आचार्यकृत प्रतिष्ठाकल्प पद्धतिमें लिखा है, कि जाप तीन तरेंका है, एक मानस, दूसरा उपांशु, तीसरा भाष्य, इन तीनमें मानस उसको कहते है कि जो मनकी विचारणासें होवे, स्वसंवेद्य होवे, अरु उपांशु उसको कहते है कि जो दूसरा तो न सुणे, परंतु अंतर्जल्प रूप होवे, तथा जो दूसरोंको सुनाई देवे, सो भाष्य यह तीनों क्रम करके उत्तम, मध्यम, अरु अधम जान लेने. उत्तम मानसमें शांति होती है, एतावता शांतिके वास्ते मानस जाप करणा अरु पुष्टिके वास्ते उपांशु जाप करणा तथा आकर्षणादिकमें भाष्यजाप करणा

नमस्कार मंत्रके पांच पद, नवपद, अथवा आनानुपूर्वी, चित्तकी एकाग्रताके वास्ते गुणे, तथा जो नमस्कार मंत्रका एक अक्षर पद पृथक् करे, तो भी जाप सो लाभ है ॥ यदुक्तं योगशास्त्रे अष्टमप्रकाशे ॥ पंचपरमेष्ठि

एक तो अनुनव करी हुइ वस्तुका स्वप्न आता है, दूसरा सुणी हुइ वातका, तीसरा देखा हुआ, चौथा प्रकृति वात, पित्त, अरु कफके विकारसें, पांचमा चिंतित वस्तुका छठा सहज स्वनावसें, सातवा देवताके उपदेशसें, आठमा पुण्यके प्रनावसें, नवमा पापके प्रनावसें, इसमें आदिके छै कारणोसे, जो स्वप्न आवे, सो निरर्थक है, अरु अगले तीन कारणोंसे जो स्वप्न आवे तो सत्य होवे

रात्रिके पहिले प्रहरमें स्वप्न आवे, तो एक वर्षमें फल देवे, अरु दूसरे प्रहरमें स्वप्न आवे, तो छै महीनेमें फल देवे, तीसरे प्रहरमें स्वप्न आवे, तो तीसरे महीनेमें फल देवे, चौथे प्रहरमें स्वप्न आवे, तो एक मासमें फल देवे, सवेरे दो घडी रात्रिमें स्वप्न आवे, तो दश दिनमें फल देवे, सूर्योदयमें स्वप्न आवे, तो तत्काल फल देवे

एक जो स्वप्नमें बहुत आल जजाल देखे, तथा दूसरा जो रोगोदयसें स्वप्न आवे, तथा तीसरा जो मलमूत्रकी बाधासें स्वप्न आवे, यह तीनों स्वप्न निरर्थक हैं जे कर पहिला अशुन स्वप्न आवे, अरु पीछेसें शुन स्वप्न आवे, तो शुन फल देवे, तथा पहिना शुन स्वप्न आवे, पीछे अशुन आवे, तो अशुन फल देवे, जेकर खोटा स्वप्न आवे, तो शांति अर्थात् देवपूजा दानादिक करणा, तथा स्वप्नचिंतामणि नामक ग्रंथमेंनी लिखा है, कि अनिष्ट स्वप्न देख कर सो जावे, अरु किसीकों कहे नहीं, तो फेर वो स्वप्न, फल नहीं देता है, सूता उठके जिनेश्वरदेवकी प्रतिमा कों नमस्कार करकें जिनेश्वरका ध्यान करे, स्तुति करे, स्मरण करे, पंच परमेष्ठिमंत्र पढे, तो खोटा स्वप्न वितथ हो जाता है अरु जो पुरुष देव गुरुकी पूजा करते हैं, तथा निजशक्त्यनुसार तप करते हैं, निरंतर धर्मके रागी हैं, तिनोंकों खोटा स्वप्ननी अछा फल देता है तथा जो पुरुष, देवगुरुका स्मरण करके अरु शत्रुंजय समेतशिखर प्रमुख शुन तीर्थोंका नाम, तथा गौतमस्वामी, सुधर्मस्वामी प्रमुख आचार्योंका नाम स्मरण करकें सोवे, उसकों कदापि खोटा स्वप्न नहीं होता है

थूकना होवे, तो राखमें थूकना चाहियें, शरीरकों दृढ करने वास्ते हाथों करकें वज्रीकरण करे, अग्नितत्त्व, अरु पवनतत्त्व, जब वहता होवे, तब धाप करकें आकठ ताइ दूध पीवे, केइ आचार्य कहते हैं कि

करे, तो तीर्थंकर नाम कर्मगोत्रका बंध करे, इस बातमें संदेह नहीं, तथा आठ कोडी, अठ लाख, आठ हजार, आठ सौ, आठ वार, जो पंच परमेष्ठिमंत्रका जाप करे, वो जीव, तीसरे भवमें सिद्ध हो जाता है, इस वास्ते सूते, उठते, प्रथम नमस्कार स्मरण करणां तिसके पीछे धर्मजागरणा करणी, सो इसी तरेंकि –

यथा में कौन हूं ? क्या मेरी जाति है ? क्या मेरा कुल है ? कौन मेरा इष्ट देव है ? कौन मेरा गुरु है ? क्या मेरा धर्म है ? क्या मेरे अभिग्रह है ? क्या मेरी अवस्था है ? क्या मैने सुकृतादि करा है ? क्या मैने दुष्कृतादि नहीं करा है ? क्या मैं करने समर्थ हू ? क्या मैं नहीं कर सक्ता हूं ? मुजकों कोइ देखता है कि नहीं ? अपनी भूलकों आतमा जानता है, फेर क्यों नहीं छोडता ? तथा आज कोनसी तिथि है ? क्या अर्हंतका कल्याणिक दिन है ? आज मेरा क्या कृत्य है ? मैं किस देशमें तथा किस कालमे हू ? सवेरें उठके असे स्मरण करणेसें जीव सावधान हो जाता है, जो विरुद्ध कृत्य हैं, उसका परिहार करता है अपणे नियमका निर्वाह अरु नवीन गुणकी प्राप्ति होती है, येही धर्मजागरणा, आणंद कामदेवादि श्रावकोंने करकें प्रतिमादि विशेष धर्मकरणी करी है

तस पीछें जो श्रावक प्रतिक्रमण करनेवाला होवे, सो प्रतिक्रमण करे, अरु जो प्रतिक्रमण न करे, सोभी रागादिमय कुस्वप्न प्रद्वेषादिमय अनिष्ट फलका सूचक तिसके दूर करणे वास्ते तथा स्वप्नमें स्त्रीसें प्रसंगादि करनेका खोटा स्वप्न उपजा हुआ होवे, तब एक सो आठ उश्वास प्रमण कायोत्सर्ग करे, अन्यथा सौ उश्वास प्रमाण कायोत्सर्ग करे, चार लोगस्सका काउस्सग्ग करे यह कथन व्यवहार भाष्यमें है, तथा विवेक विलासादि ग्रंथोमें ऐसा लिखा है, कि स्वप्न देख्यां पीछे फेर नही सोवणा, अरु स्वप्न, दिनमें सद्गुरुके आगें कहना, जे कर खोटा स्वप्न आवे तो फेर सोवनां ठीक है, किसीके आगे कहनां न चाहियें, तथा समधातुवाला, प्रशांतचित्तवाला, धर्मी और नीरागी, जितेंद्रिय, इनकों जो शुभाशुभ स्वप्न आवे, सो सत्यही होता है, स्वप्न जो आता है, सो नव कारणोंसें आता है, सो नव कारण कहते है.

सो, थोवस्सवि पालणा गुणकारि ॥ गुरु लाघव च नेयं, धम्ममिश्च उ आ गारा ॥ १ ॥ अस्यार्थ – व्रतभंग करनेसें महा दूषण होता है, अरु जो पालन करे, तो थोडा व्रतभी गुणकारी है, इस वास्ते गुरु लघु जानके धर्ममें आगार भगवान्नें कहे हैं

तथा नियम असें ग्रहण करणां, सो कहते हैं प्रथम तो मिथ्यात्व त्यागणे योग्य है, तिस पीछें नित्य यथाशक्ति एक, दो, तीन वार जिन पूजा, जिनदर्शन, संपूर्ण देववंदन, चैत्यवंदन करे, असेंही गुरुका योग मिले दीर्घ, लघु वंदन करे, जेकर गुरु हाजर न होवे, तब धर्माचार्यका नाम लेके वंदना करे, तथा नित्य वर्षा ऋतुमें (चौमासेमें) पांच पर्वके दिन अष्ट प्रकारी पूजा करे, जहां लग जीवे, तहां लग नवा अन्न, नवा फल, पक्वान्नादिक देवकों चढाये विना खावे नहीं, नित्य नैवेद्य, सो पारी, बदामादि देवके आगें चढावे, तथा तीन चौमासें संवत्सरी दीवा ली प्रमुखमें चावलोंके अष्ट मंगल भरके ढोवे नित्य अथवा पर्वके दिन तथा वर्षमें खादिम, स्वादिम, सर्व वस्तु देव गुरुकों दे कर भोजन करे, प्रतिमास, प्रतिवर्ष, महाध्वजादि उत्सव आडंबर करकें चढावे, स्नात्र महोत्सव, अष्टोत्तरी पूजा, रात्रिजागरण करे, नित्य चौमासे आदिकमें कितनेक वार जिनमंदिर, धर्मशाला, प्रमार्जन करे, देहरा समरावे, पौ षधशाला लींपे, प्रतिवर्ष प्रतिमास जिनमंदिरमें अंगलूहणां तथा दीपकके वास्ते पूणी देवे, दीवे वास्ते तेल देवे, चंदन खमादि मंदिरमें देवे, पोष धशालामें मुखवस्त्रिका, जपमाला पूंछणा, चरवला, कितनेक वस्त्र, सूत, कंबली, ऊनादि देवे, वर्षमें श्रावकोंके बैठने वास्ते कितनेक पाट, चौकी प्रमुख देवे, जेकर निर्धन होवे, तो भी वर्ष दिन पीछें सूत मोरा अट्टी प्रमुख दे कर संघ पूजा करे, कितनेक साधर्मीयोंको शक्ति अनुसार भोजन देकें, साधर्मीवात्सल्यादि करे, हररोज कितनेक कायोत्सर्ग करे, स्वा ध्याय करे नित्य जघन्य नमस्कार सहित प्रत्याख्यान करे, रात्रिमें दिवस चरम प्रत्याख्यान करे, दोनों वखत प्रतिक्रमण करे, यह करणी प्रथम कर लेवे, तो पीछेंसें बारां व्रत स्वीकार करे, तिन व्रतोंमें सातमे व्रतमें सचित्त, अचित्त, अरु मिश्र वस्तुका स्वरूप अछी तरें जानना चाहियें

जैसें प्राय सर्व धान्य, अन्न, अरु धनीया, जीरा, अजवयन, सौंफ,

आव पसली पाणीकी पीवे, इसका नाम वज्रीकरण कहते हैं तथा वेरे उठके माता, पिता, पितामह, बडा भाइ प्रमुखकों नमस्कार तो तीर्थयात्रा समान फल है इस वास्ते दिन दिन प्रत्यें करणी चाहि तथा जिसने वृद्धोंकी सेवा नहीं करी है, उसकों धर्मकी प्राप्ति न होती है, वृद्ध उसकों कहते हैं कि जो शीलमें, संतोषमें, तथा ज्ञा ध्यानादिकमें बडे होवे, तिनकी सेवा अवश्य करनी चाहियें तथा सने राजाकी सेवा नहीं करी है, अरु जिसने उत्पन्न होते हुए अ शत्रुकों बंद नहीं करा, तिस पुरुषसें धर्म, अर्थ, अरु सुख दूर हैं

श्रावककों सवेरे उठ करकें चौदह नियम धारण करणे चाहियें, नका स्वरूप उपर लिख आये हैं तथा विवेकी पुरुष प्रथम सम्यक्त्व वेक द्वादश व्रत, विधि पूर्वक गुरुके मुखसें धारण करे, अरु विरति पलती है, सो अभ्याससें पलती है, इस वास्ते धर्मका अभ्यास कर चाहिये विना अभ्यासके कोइ क्रियाभी अछी तरे नहीं करी जाती ध्यान मौनादि सर्व अभ्यास करनेसें दुःसाध्य नहीं जो जीव, इस जन्म अछा वा बूरा जैसा अभ्यास करता है, सोइ प्राय अगले जन्ममें पा है, तथा पंचमी, अष्टमी, चतुर्दश्यादिकीके दिनमें तपादि नियम जो धर्मी पुरुषने अंगीकार किया है, उसमें जो तिथ्यंतरकी भ्रांत्यादि कर सचित्त जलादि पान, तंबोल भक्षण, कितनाक भोजनभी कर लीया पीछेसें ज्ञान हूआ कि आज तो तपका दिन था? तब जो कुछ मुखमें हो उनको राखादिकमें गेर देवे, प्राशुक पाणीसें मुखशुद्धि कर तप करे तरें रहे, तो नियम भंग नहीं होता है, अरु जे कर संपूर्ण भोज करा पीछें जान पडे कि आज तपका दिन है, तब अगले दिन दंडके मित्त सा तप करे समाप्ति हूआं उसके उपर पोरिसी एकाशनादि त अधिक करे, अरु जे कर तपका दिन जान कर एक दाणाभी खावे, ता तभंग हो जाता है, अरु जो व्रतका भंग जान करके करना है, सो नरक दिकका हेतु है, तथा जे कर तप करे पीछे गाढा मांदा हो जावे, अथवा भूतादि दोषसें परवश हो जावे, अथवा सर्पादिक डसे, ऐसी असमाधि तप करने समर्थ न होवे, तोभी चार आगार उच्चारण करनेमें भंग नहीं होता है, ऐसें सर्व नियमोंमें जान लेना ॥ इति ॥ नवकारसें ...

लूण, सङ्की जठीमें पकाया लूण, वनावटका खार, कुंजारकी कमाइ हूइ मट्टी, एलायची, लवग, जावत्री, सूकी मोथ, कोकणदेश प्रमुखके केले, कदलीफल, उवाले हूये सगाडे, सोपारी, इन सर्वका प्राशूक व्यवहार है, साधुजी कारण पडे ले लेवे यह वात कल्पजाष्यमेंजी लिखी है "जोयण सयं तु गतु, अणाहारे जम्ह सकति" इत्यादि इनमेंसू हरड, पीपल प्रमुख तो आचीर्ण है, इस वास्ते लेते हैं, अरु खजूर, डाख्ा प्रमुख अनाचीर्ण है, तथा उत्पलकमल, पद्म कमल, धूपमें रक्के, एक प्रहरके अन्यतरही अचित्त हो जाते हैं तथा मोगरेके फूल, जुहिके फूल, यह धूपमें वहुत चिरजी पडे रहे, तोजी अचित्त नहीं होते हैं तथा मगदतिना अर्थात् मोगरेके फूल पाणीमें गेरे रहें तो एक प्रहरके अंदरही अचित्त होजाते हैं, तथा उत्पल, नीलकमल अरु पद्मकमल, ये दोनो पाणीमें गेर रखनेसें वहुत कालमेंजी अचित्त नहीं होते हैं, "शीतयोनिकत्वात्" तथा पत्रोंका फूलोंका जिनफलोमें अजीतक गुठली वंध नहीं हुइ, तिनका तथा वथ्थुआ प्रमुख हरित वनस्पतिका, इन सबनका वृत, (मंमी) कुमलाय जावे, तव जीव रहित हूये जानने यह कथनश्रीकल्पजाष्य वृत्तिमें लिखा है

तथा श्रीपचमांगके छठे शतकके पांचमे उद्देशेमें सचित्ताचित्त वस्तुका स्वरूप ऐसा लिखा है, शालि, व्रिहि, गेहू, जव, जवजव, ये पांच धान्य की जाति कठोरमें तथा ठेके पालेमें तथा मचा, माला, कोगारविशेषोमें मुख ढांकके रक्के, लीप्या होवे, तथा चारो तर्फसें लीप्या होवे, उपर कोइ और ढकणा दीया होवे, मुद्रित लांछित करके रक्के, तो कितने काल तांइ जीवयोनि रहे? असा प्रश्न पूछनेसें जगवान् कहते हैं कि हे गौतम! जघन्य तो अंतर्मुहूर्त्त रहे, अरु उत्कृष्ट तो तीन वर्ष रहे, फेर अचित्त हो जावे तथा मटर, मसूर, तिल, मूग, उडद, वाल, कुलथी, चवला, तूयर, गोल चणे, इत्यादि धान्य सर्व उपर वत् जानना नवरं, उत्कृष्टसें पांच वर्ष उपरांत अचित्त होते हैं, तथा अलसी, कुसुंजेकी करड, कोडु, कगुनी, बरटी, राल, कोरुसक, सण, सरसों, मूलीके बीज, इत्यादि धान्यजी उपरवत् नवरं, उत्कृष्टसें सात वर्ष उपरांत अचित्त हो जाते है तथा कप्पीसके विनौले, उत्कृष्ट तीन वर्षसें उपरांत अचित्त जीव रहित हो जाते है यहजी कल्पनाजाष्यवृत्तिमें है तथा विना गण्या आटा (चून) श्रावण, जा

सोआ, राइ, खसखस प्रमुख सर्व कण, सर्व पत्र, सर्व हरे फल, तथा लूण, खारी, खारक, अर्थात् बुहारे, रक्त (लाल) रंगका सिंधालूण, सांभर का सौंचल लूण, खारा, मट्टी, खरी, हिरमची, हरे दांतण, इत्यादि सर्व व्यवहारसें सचित्त सजीव हैं तथा पाणीमें भिंजोये चणे, गेहू, आदि अन्न, तथा चणे, मूग, उडद तूअर प्रमुखकी दाल, जिसमें नकू रह गया होवे, ये सर्व मिश्र है, तथा पहिलां लूण लगा करकें अग्निकी बाष्पा दीया विना तप्त वालु (रेतके) बिना गेरें चणे, गेहू, जूवारादि भूंजे, तथा खारादि दीयां विन मसले हूये तिल, होलां, ऊबियां, सिट्टे, पहूक ईषत सेकी फली मिरच, राइ, हिंग प्रमुख करके चिर्भटादि फल, वघारे, तथा जिसके अंदर बीज सचित्त है, ऐसे पक्के हूये सर्व फल, यह सब मिश्र है तथा तिलवट, तिलकूट, जिस दिन करे उस दिन मिश्र है, अरु जेकर तिलोंमें अन्न रोटी प्रमुख गेरकें कूटे, तो एक मुहूर्त्त पीछें अचित्त होवे, तथा दक्षिण मालवादि देशोंमें बहुत गुड प्रक्षेप करनेसें उसी दिन अचित्त हो जाते है, तथा वृक्षसें तत्कालका उखडया गूंद, लाख, छिलक, तत्कालका फोडया नालियर, तथा निंबू, दाडिम, अनार, आंब, नींब, इक्षु, इनका तत्कालका काढया रस, तथा तत्कालका काढया तिलादिका तेल, तत्कालका भांग्या हूया बीज, तथा काटे हूये नलेर, सिंघाडे, सोपारी आदि, तथा बीज रहित कीया पक्व फल खरबूजादि, गाढा मर्दन करके कण काढया जीरादि, ये सर्व अंतर्मुहूर्त्त लग मिश्र है, पीछे प्राशुकका व्यवहार है, तथा औरभी प्रबल अग्निके योगविना प्राशुक करे हूये अंतर्मुहूर्त ताइ मिश्र है, पीछें प्राशुकका व्यवहार है, तथा अप्राशुक पाणी, कच्चा फल, कच्चा अन्नको जेकर बहुत मर्दनभी करे है, तोभी लवण अग्न्यादिक प्रबल शस्त्र विना प्राशुक नही होते है क्योंकि श्रीपचमांग भगवतीसूत्रके उन्नीसमे शतकके तीसरे उद्देशेमें लिखा है, कि — वज्रमयी शिला, वज्रमयी लोटा, आमले प्रमाण पृथ्वीकाय लेके एकवीश वार पीसे, तब कितनेक पृथ्वीके जीवोंको लोटेका स्पर्शभी नही हूआ है, ऐसी बनजीवोंकी सूक्ष्म काया है, तथा सौ योजनसें उपरांत आये हूये हरडां, खारक, किसमिस, लाल द्राक्षा, मेवा, खजूर, काली मिरची, पीपर, जायफल, बदाम, अखोड म वना, जरदालु, पिस्ता, सीतल, चीनी, स्फटिक समान सफेद सिंधा

श्रुंव, हलद, नाम श्ररु स्वाद भेद होनेसें अनन्तय नहीं है तथा उष्ण जल, तीन उवाले आ जावें, तब अचित्त होता है, यह कथन पिंमनिर्युक्तिमें है, चावलोंके धोवणका पाणी जब नितरके निर्मल हो जावे, तब अचित्त होता है, तथा उष्णजलकी मर्यादा प्रवचनसारोद्धारादि ग्रंथोंमें ऐसी लिखी है, सो कहते हैं त्रिदमोऽकृत उष्ण जल, उष्णकालके चारों मासमें पांच प्रहर अचित्त रहता है, यह चुल्हेसें उतारे पीछेकी मर्यादा है तथा वर्षाके चारों मासमें तीन प्रहर अचित्त अरु शीत कालके चारों मासमें चार प्रहर अचित्त रहता है, पीछें सचित्त होता है, जे कर ग्लान, बाल, वृद्धादि साधुके वास्ते मर्यादा उपरांत रखनां होवे, तब क्षारादि वस्तुका प्रक्षेप करकें रखना, फेर सचित्त नहीं होता है प्रवचनसारोद्धारके(१३६)में द्वारमें यह कथन है तथा कोकडु मोठ, मूंग अरु हरडादिककी मींजी (गिटक) यह यद्यपि अचेतन है, तोनी योनि रखने वास्ते तथा निःशूकतादिके परिहार वास्ते दांतोंसें तोडनां (भांगनां) न चाहियें इत्यादि सचित्त वस्तुका स्वरूप जानके सातमा व्रत अंगीकार करनां चाहियें

श्रावकको प्रथम तो निरवद्य (दूषण रहित) आहार खानां चाहियें ऐसें न कर सके तो सर्व सचित्त खानेका त्याग करे, ऐसेंनी न कर सके तब बावीश अनन्तय अरु बत्तीस अनंतकाय तो अवश्यमेव त्यागने चाहियें, तथा चौदह नियम धारने चाहियें ऐसें सूना उठके यथाशक्ति नियम ग्रहण करे, पीछें यथाशक्ति प्रत्याख्यान करे, नमस्कार सहित पौरुष्यादि काल प्रत्याख्यान जो है, सो जेकर सूर्य उगनेंसें पहिला उच्चारण करियें, तो शुद्ध है, अन्यथा शुद्ध नहीं अरु शेष प्रत्याख्यान सूर्योदयसें पीछेंनी हो सक्ते हैं, यह तथा नमस्कार सहित जेकर सूर्योदयसें पहिला उच्चार करा हूआ होवे, तब तिसके पूर्व हूआं तिसके बीचही पौरुषी साढ पौरुष्यादि काल प्रत्याख्यान हो सक्ता है, जे कर नमस्कार सहित सूर्योदयसें पहिलां उच्चारन न करियें, तब तो कोइनी काल प्रत्याख्यान करनां शुद्ध नहीं, अरु जे कर प्रथम नमस्कारादि प्रत्याख्यान मुष्टि सहतादि करे, तब सर्वकाल प्रत्याख्यान करे, तो शुद्ध है

तथा रात्रिमें चौविहार करे अरु दिनमें एकासना करे, पीछें यद्यपि स

इवाके महिनेमें पांच दिन तक मिश्र रहता है, पीछें अचित्त होता है, आसोज, कार्त्तिक मासमें चार दिन तक मिश्र रहता है, पीछें अचित्त हो जाता है तथा मगसिर, पौष मासमें तीन दिन मिश्र रहता है, पीछें अचित्त होता है, तथा माघ, फागून मासमें पांच प्रहर मिश्र रहता है. तथा चैत्र, वैशाख मासमें चार प्रहर मिश्र रहता है, तथा ज्येष्ठ आषाढमें तीन प्रहर मिश्र रहता है, उपरांत अचित्त हो जावे, जे कर तत्काल छान लेवे, तब अंतर्मुहूर्त्त लग मिश्र रहे, पीछें अचित्त होवे

शिष्य प्रश्न करता है, कि पीस्या हूआ आटा कितने दिनका अचित्त जोगी कों तथा श्रावकको खाना चाहियें ?

उत्तर – सिद्धांतमें हमने आटेकी मर्यादाका नियम नहीं देखा है परंतु बुद्धिमान् नवा, जीर्ण अन्न, तथा सरस नीरस क्षेत्र, तथा वर्षा शीत, उष्णादि ऋतु, तिनमें तिस आटेका पंदरा दिन मासादि कालमें वर्ण, गंध, रस स्पर्शादि विगडा देखे, तथा सुरसली प्रमुख जीव पडा देखे, तब न खावे, जे कर खावे, तो जीवहिंसा अरु रोगोत्पत्तिका कारण है

तथा मिठाइकी मर्यादा, अरु विदलका निषेध, उपर सातमे व्रतमें लिख आये है, तहांसे जान लेना तथा दहीमें सोला प्रहर उपरांत जीव उत्पन्न होते है, तथा विवेकी जीवको वेंगन, टींवरु, जामन, बिल्व, पीलू, पक्क करमदा, पका गूंदा, लसूडा पेंचु, मधुक, (महुवा) मोर, वालोल, वडे वोर, फाडीके वोर, कच्चा कौठफल, खसखस, तिल, इत्यादि न खाने चाहियें, इनमें त्रस जीव होते हैं तथा जो फल रक्त (लालरंग) देखनेमें वूरा लगे, पक्क, गोल, ककोडा, फणस, कटेल प्रमुखभी बु री जायनाके हेतु होनेसे, न खाने चाहिये तथा जो फल जिस देशमें खाना विरुद्ध होवे, जैसे कदूवा वूंवा, कूष्मांड अर्थात् काहला हलुवा (कद्दू) सोभी न खाना चाहिये, अरु अनंतकाय, कंदमूल, परभारके अचित्त करे, रांधे हूयेभी न खाने चाहियें क्योंकि एक तो निःशूकता अरु दूसरी रस लंपटता तथा वृद्ध्यादि दोषका प्रसंग होता है, इसी वास्ते न खाना, तथा उकाला हुआ सेलरा, रांध्या हूआ आइादि कंद, सूरण, वेंगनादि, यद्यपि अचित्त है, तोभी श्रावक, प्रसंग दूषण त्यागने वास्ते न खावे, तथा मूलीतो पंचांगही खाने योग्य नहीं. त्रिविक्रमादि, तथा

सुयंमि तदवि हु, तित्तीजणगंति नायरिश्च ॥ १ ॥ स्त्रीकें साथ नोग करनें सें चौविहार नग नहीं होता है, परतु बालकके तथा स्त्रीके होठ मुखमें ले कर चर्वण करे, तो नंग होवे, अरु द्विविध आहार प्रत्याख्यानमें यह नी करे तो नंग नहीं होता, प्रत्याख्यान जो है सो कवल आहारका है, परंतु रोम आहारका नहीं है, इस वास्ते लेपादि करनेंसें नग नहीं

तथा इतनी वस्तु किसी आहारमेंनी नहीं है उसका नाम लिखते हैं पंचांग नींब, गोमूत्र, गलोय, कडु, चिरायता, अतिविप, कुडेकी गल, चीड, चदन, राख, हरिद्रा, रोहणी, उपलोट, वज, त्रिफला, वांबूलकी छिल्लक, धमासा, नाहि, आसध, रींगणी, एलुवा, गुगल, हरडां, दाल, कपासकी जड, जाड, वैरी, कथेरी, करीर, इनकी जड, पुआड, बोहथोरी, आछिमजीठ, बोल, वीउकाष्ठ, कूंआर, चित्रक, कुंदरु प्रमुख जो वस्तु खानेमें अनिष्ट लगे, वो सर्व अनाहार है, यह अनाहार वस्तु रोगादि कष्टमें चौविहार प्रत्याख्यानमेंनी खा लेवे, तो नग नहीं, इस तरें आहारके नेद जानके प्रत्याख्यान करे

पीछें मलोत्सर्ग, दतधावन, जिव्हालेखन, कुरला करनां, यह सर्व देश स्नान करकें पवित्र होवे, यह कहनां अनुवाद रूप है क्योंकि यह पूर्वोक्त कर्म सवेरे उठके प्राय सर्व गृहस्थ करते हैं, इसमें शास्त्रोपदेशकी अपेक्षा नहीं स्वत ही सिद्ध है, परंतु इनकी विधि शास्त्र कहता है, उसमें प्रथम मलोत्सर्ग विधि यह है, कि मलोत्सर्ग मौनसें करनां चाहियें, सो निर्दूपण योग्य स्थानमें करे ॥ यत उक्त विवेकविलासग्रंथे ॥ मूत्रोत्सर्गं मलोत्सर्गं, मैथुन स्नानजोजने ॥ सध्यादि कर्म पूजा च, कुर्याज्जापं च मौनवान् ॥ १ ॥ अर्थ — मूतना, दिसा फिरनां, मैथुन करनां, स्नान, जोजन, सध्यादि कर्म, पूजा, जाप, यह सर्व मौनपणे करने, तथा दोनो सध्या वस्त्र पहिरके करे, तथा दिनमें उत्तरके सन्मुख मुख करकें, अरु रात्रिकों दक्षिणदिशि सन्मुख मुख करकें लघु शंका उच्चार करे, तथा सर्व नक्षत्रोंका तेज सूर्य करकें जब भ्रष्ट हो जावे, जहां तक सूर्यका आधा मांमला उगे, तहां तक सवेरेकी सध्या करणी, तथा सूर्य आधा अस्त होवे, तद पीछें दो तीन नक्षत्र जहां तक नजर न पडे, तहां तक सायंकाल कहते हैं, तथा राखका ढेर, गोवरका ढेर, गौके वैठनेंके स्थानमें, सर्पकी ववी ऊपर तथा

दित प्रत्याख्यान करें, तब तिसकों प्रतिमास एगुन तीस उपवासका फल होता है, दो वार जोजन उक्त रीतिसें करे, तो अट्ठावीस उपवासका फल होता है, क्योंकि दो घडीका काल जोजन करतां लगता है, शेष काल तपमें व्यतीत हूआ, यह कथन पद्मचरित्रमें है, प्रत्याख्यान उप योग पूर्वक पूरा हो जावे, तो पारे

अरु चार प्रकारके आहारका विजाग औसें है, एक तो अन्न, पकान्न, मण्डक, सत्तूआदि जो क्षुधा दूर करनेकू समर्थ होवे सो प्रथम अशन नामक आहार है, दूसरा गठका पाणी, तथा उष्ण जलादि, यह सर्व पानक नामक आहार है तीसरा फल, फूल, इक्षुरस, पक्कुक, सूखडी, आदिक यह सर्व खादिम नामक आहार है चौथा सूठ, हरडे, पिप्पली, काली मिरच, जीरा, अजमक, जायफल, जावत्री, असेलक, कत्था, खयरवडी, ज्येष्ठी मधु, तज, तमालपत्र, एलायची, कौठ, विडंग, विडलवण, अजमोद, कुलिंजण, पिप्पलीमूल, चीणकबाब, कचूर, मुस्ता, कटासेलिउ, कर्पूर, सौंचल, हरड, बहेडा, कुठनउ, बबूल, धव, खदिर, खेजकी गल, पान, सोपारी, हिंगुलाष्टक, हिंगु, त्रेवीसउ, पंचकूल पुष्करमूल, जवासामूल, बावची, तुलसी, कपूरिकदादिक, जीरा यह सर्व जाष्य अरु प्रवचनसारोद्धारादिक ग्रथोंके लेखसें स्वादिम नामक आहार है, अरु कल्पवृत्तिमें उनकू खादिम लिखा है कोइक अजवयनकोंजी खादिम कहते है यह मतांतर है, यह सर्व स्वादिम नामक आहार है, तथा एलायची कर्पूरादि वासित जल द्विविध आहार प्रत्याख्यानमें पीनां कल्पता है, तथा वेशण, सौंफ, सोय, कोठवडी, आमलागांठ, आंबकी गुटली, निबूके पत्र प्रमुख स्वादिम होनेसें द्विविध आहार प्रत्याख्यानमें नहीं कल्पते है अरु त्रिविध आहार प्रत्याख्यानमें तो जलही पीनां कल्पता है, तिसमजी फूकारा हूया पाणी, साकर, कर्पूर, एलायची, कत्था, खदिर, चूर्णक, मेलक, पाटलादि वासित जल, जे कर नितार अरु गालके लेवे तो कल्पे, अन्यथा नहीं

तथा शास्त्रोंमें मधु, गुड, साकर, खंडादिकों स्वादिम कहे है, अरु छास, तक्रादि, जल, तक्र, वगैरादिकों पानक कहे है तोजी द्विविध आहार प्रत्याख्यानमें नहीं कल्पते है ॥ उक्तं च नागपुरीय गच्छे। भाष्ये ॥ दुविहाहारप्रत्याख्यानमें ॥ दक्खा पाणाईय, पाण तह साइम गुडाईयं ॥ खदिर

मौन युक्त दातण करे, डुर्गंध, पोली, सूकी, खट्टी, खारी, वस्तु दांतकों न घसे, तथा, व्यतीपात, रविवार, सक्रांति दिनें ग्रहण लगेमें, नवमी, अष्टमो, पडवा, चौदश, पूर्णमासी, अमावस, इन दिनोमें दातण न करे, जे कर दातण न मिले, तब मुखशुद्धिके वास्ते बारा कुरले करे, अरु जिव्हा उल्लेखन तो सदा करे, दातणकी फाकसे जिव्हाका मैल हलवे हलवे सर्व उतारके शुचिस्थानमें दातण धो करकें आपणे मुखके सामने गेरे, तथा खांसी, श्वास, तप, अजीर्ण, शोक, तृषावाला, मुख पकेवाला, मस्तक, नेत्र, हृदय, कान, इतने रोग वाला, दातण न करे

मस्तकके केशोंको सदा समारे, जिसमें जूआं न पडे, जे कर तिलक करकें आरीसा देखे, उसमें मुख नहीं दीखे, सिर नहिं दीखे, तो पाच दिनके अंदर उसका मरना जानना अरु जिसने उपवास पौरुष्यादिक प्रत्याख्यान करा होवे, वो दांत धोया विनाजी शुद्ध है, क्योंकि तपका बडा फल है, लौकिक शास्त्रोंमेंजी उपवासादि करे, तो दातण विनाही देवपूजा करते है, इस वास्ते लौकिक शास्त्रोंमेंजी उपवासादिमें दातण करनेका निषेध है ॥ यडुक्तं विष्णुजक्तिचंद्रोदयग्रंथे ॥ प्रतिपदार्शषष्ठीषु, मध्यांते नवमीतिथौ ॥ सक्रांतिदिवसे प्राप्ते, न कुर्याद्दंतधावन ॥ १ ॥ उपवासे तथा श्राद्धे, न कुर्यात् दंतधावन ॥ दंतानां काष्ठसंयोगो, हंति सप्त कुलानि वै ॥ २ इत्यादि

तथा जब स्नान करे, तब उत्तिंग पनक कुंथुआदि जीवोंसे रहित नूमिमें करे, सो नूमि उंची, नीची, पोली, न होवे, प्रथम तो उष्ण प्राशुक जलसें स्नान करे, जेकर उष्ण जल न मिले, तब वस्त्रसें गान करकें प्रमाण संयुक्त शीतल जलसे स्नान करे, तथा व्यवहार शास्त्रमें ऐसा लिखा है, कि – नग्न हो कर तथा रोगी तथा परदेशसें आया हूआ नोजन करे पीछें आजूषण पहेरकें किसीकों विदा करकें पीछें आ करकें मगल कार्य करकें स्नान न करे, तथा अनजाने पानीमें, डुष्प्रवेश जलमें, मैले जलमें, वृक्षों करकें आछादित जलमें, शैवल करकें आछादित जलमें, स्नान न करे, तथा शीतल जलसे स्नान करकें उष्ण नोजन न खानां चाहियें अरु उष्ण जलसे स्नान करकें शीतल नोजन न खानां चाहियें तैलमर्दन सदाही करनां चाहियें तथा स्नान कर्या पीछें जिसकी कांति फीकी दीसे तथा जिसके दांत परस्पर घसे, अरु शरीरसें मृतक कैसी

जहां बहुत लोग पुरीषोत्सर्ग करते होवें, तथा उत्तम वृक्षके हेठ, रस्तेके वृक्ष हेठ, तथा रस्तेमें, तथा सूर्यके सन्मुख, तथा पाणीकी जगामें, तथा मसाणोंमें, तथा नदीके कांठे ऊपर, तथा जिस जगोकों स्त्री पूजती होवे, इत्यादि स्थानोमें मलोत्सर्ग न करे परंतु जहां बैठनेंसें कोइ मार पीट न करे, पकडके न ले जावे, धर्मकी निंदा न होवे, तथा जहां बैठनेंसें गिरे, फिसले नहीं, पोली भूमि न होवे, मालादि न होवे, त्रस जीव बीज न होवे, इत्यादि उचितस्थानमें मलोत्सर्ग करे, गामके तथा किसीके घरके समीप मलोत्सर्ग न करे, तथा जिस तर्फसें पवन आती होवे, तथा गामकी सूर्यकी पूर्वदिशिके तरफ पीठ करकें मलोत्सर्ग न करे हिगा अरु मूत्रका वेग रोकनां नहीं, क्योंकि मूत्रका वेग रोकनेंसें नेत्रोंमें हानी होती है, तथा हिगाका वेग रोकनेंसें काल हो जाता है, तथा वमन रोकनेंसे कुष्ट रोग हो जाता है, जेकर ये तीनो बात न होवेगी तो रोग तो जरुर हो जावेगा, श्लेष्मादि करके ऊपर धूलि गेर देवें, क्योंकि श्रीप्रज्ञापनोपांगके प्रथम पदमें लिखा है कि चौदह जगें सम्मूर्छिम जीव उत्पन्न होते है सो चौदह स्थानक कहते हैं, १ पुरीषमें, २ मूत्रमें, ३ मुखके थूकमें ४ नाकके मैलमें, ५ वमनमें, ६ पित्तोंमें, ७ वीर्यमें, ८ वीर्यरुधिर दोनोमें, ९ राधमें १० वीर्यका पुद्गल अलग निकल पडे उसमें, ११ जीव रहित कलेवरमें, १२ स्त्री पुरुषके सयोगमें, १३ नगरोकी मोरीमें, १४ सर्व अशुचि स्थानमें, कानकी मैल, आंखकी गीडमें, कांखकी मैल प्रमुखमें, यह सर्व चौदह बोल मनुष्यके संसर्गवाले ग्रहण करणे, अरु जब शरीरसें अलग होवे, तब जीव उत्पन्न होते हैं

तथा दातनभी निरवद्य स्थानमें करे, दातण अचित्त जाने हुए वृक्षकी कोमल करे, तथा दांतोंके दृढ करने वास्ते तर्जनी अंगुली करके दांतोंकी पीड घसे, जो दांतोंकी मैल पडे, उसके ऊपर धूलि गेर देवे, तथा दातणभी ऐसी करे जो दातण सूधी होवे, बीचमें गांठ न होवे, कूर्च अच्छा होवे, आगेसे पतली होवे, चेंटी अंगुली समान मोटी होवे, दश अंगुल लंबी होवे, ऐसी दातण कनिष्ठा अनामिकाके बीच में ग्रहण करे, पीछे दाहिनी दाढा घसे, फेर बामी घसे, तत्परायण सावधान, शांत मन होकर मांसको पीडा न देवे, उत्तर तथा पूर्व सन्मुख करके निश्चलासन.

करता है, तिसकोंनी शरीर शुद्धिके शिवाय और कुछ फल नहीं होता है, यह बात, अन्यदर्शनके शास्त्रोंमेंनी कहा है ॥ उक्त च ॥ स्कंदपुराणे काशी खंमे षष्ठाध्याये ॥ श्लोक ॥ मृदोनारसहस्रेण, जलकुंनशतेन च ॥ न शुध्यंते दुराचारा, स्नानतीर्थशतैरपि ॥ १ ॥ जायंते च म्रियंते च, जले ष्वेव जलौकस ॥ नच गछति ते स्वर्गं, मविशुद्धमनोमला ॥ २ ॥ चित्त समाधिनि शुद्ध, वदन सत्यनापणै ॥ ब्रह्मचर्यादिनि काय., शुद्धोगंगावि नाप्यसौ ॥ ३ चित्त रागादिनि क्लिष्ट, मलीकवचनैर्मुख ॥ जीवहिंसादिनिः कायो, गगा तस्य पराङ्मुखी ॥ ४ ॥ परदारापरद्व्य, परद्रोहपराङ्मुख ॥ गगाप्याह कदागत्य, मामयं पावयिष्यति ॥ ५ ॥ जलसें स्नान करनेसें असख्य जीवोंकी विराधना होती है, इस वास्ते पुण्य नहीं है, जलमें जीवोंका होना मीमांसा शास्त्रसेंनी सिद्ध होता है यडुक्त उत्तरमीमांसायां ॥ श्लोक ॥ लूतास्यतंतुगलिते, ये बिंदौ सति जंतव ॥ सूक्ष्मा भ्रमराणास्ते, नैव मांति त्रिविष्टपे ॥ १ इत्यादि

किसीके स्नान करेनी जे कर गुमडादिमेंसें राधादि श्रवे, तदा तिसनें अगपूजा फूलादिकसें आप नहीं करनी, दूसरोंसें करावे अरु अग्रपूजा तथा नावपूजा आपनी करे, तो कुछ दोष नहीं, थोडासानी अपवित्र होवे, तब देवका स्पर्श न करे, तथा स्नान करके पवित्र मृडु, गंध, काषायिकादि वस्त्र, अंगलूहणां, पोतीयां गेड करकें पवित्र वस्त्रांतर पहिरनेकी युक्तिसें पाणीके नीचे पगोसें धरतीको अस्पर्शता हूआ पवित्र स्थानमें आ करकें उत्तर सन्मुख मुख करकें अडी तरें मनोहर नवा वस्त्र जो फाटा हूआ तथा सिवाया हूआ न होवे, अरु वर्णमें धवला होवे, ऐसा वस्त्र पहिरे, तथा जिस वस्त्रकों कटिमें पहिरा होवे, तथा जिस वस्त्रसें दिसा गया होवे, तथा जिस वस्त्रसें मैथुन सेव्या होवे, तिस वस्त्रकों पहिरकें पूजादि न करे, तथा एक वस्त्र पहिनके नोजन तथा देवपूजादि न करे, तथा स्त्री, कचुकी विना पहने देवपूजा न करे, इस रीतिसें पुरुषकों दो वस्त्र तथा स्त्रीकों तीन वस्त्र विना पूजा करनी नहीं कल्पे है, देवपूजामें धोती अतिविशिष्ट धवली करनी चाहियें, निशीथचूर्णी तथा श्राद्धदिनकृत्यादि शास्त्रोंमें ऐसाही लिखा है, तथा पूजा षोडशमें ऐसानी लिखा है, कि रेशमी आदिक जो सुंदर वस्त्र लाल पीला होवे,

गध आवे, तिसका मरण तीन दिनके अंदर होगा, तथा स्नान कर्या पीछे जिसके हृदयमें, तथा दोनो पगोंमें तत्काल पाणी शोष जावे, तब है दिनोंके वीच वसका मरन जाननां मैथुन सेवकें तथा वमन करकें इन दोनोंमें कछुक देर पीछें स्नान करे, तथा मृतककी चिताके धूम लगनेसें मस्तक मुंमवा करकें, गने हूये शुद्ध जलसें स्नान करे, तथा तेलमर्दन करी स्नान कर्या पीछें उज्ज्वल वस्त्र आनरण पहिरनां पिछें प्रयाण करनेके दिनमें, सं ग्राममें जातां हूआ, विद्यामंत्र साधतां, रातकों, सांऊकों, पर्वदिनमें, नवमे दिनमें स्नान न करे, मस्तक मुंमननी न करावे, तथा पक्षमें एक वार दाढी मस्तकके केश तथा नख दूर करावे, परंतु अपणे दांतों करी तथा अपणे हाथ करकें नख न कतरे, स्नान करनेसें शरीर पवित्र चैतन्यसुख कर नाव शुद्धिका हेतु हो जाता है ॥ उक्तं च द्वितीये अष्टकप्रकरणे ॥ श्लोक ॥ जलेन देहदेशस्य, क्षण यच्छुद्धिकारण प्रायोऽन्यानुपरोधेन, द्रव्यस्नान तदुच्यते ॥ १ ॥ अस्यार्थ – देहदेश त्वचामात्रहीकी क्षणमात्र शुद्धि है, परंतु प्रनूत काल नहीं, शुद्धि जो है, सोनी प्रायें है, कुछ एकांत नहीं है, क्योंकि अतिसारादि रोग वालेंको क्षण मात्रनी शुद्धि नहीं हो सक्ती है, धोने योग्य मैलसे अन्य दूसरा मैल नासिकादि अंत र्गत जो है, सोनी स्नानसें दूर नही होता है, अथवा पाणी बिना और जीवोंकी हिंसा न करनेसे जो स्नान है, सो वाह्य स्नान है, जो पुरु ष स्नान करकें नगवानकी तथा साधुकी पूजा करे, तिसका स्नाननी अच्छा है, क्योंकि नावशुद्धिका निमित्त है, स्नान करनेमें अप्कायके जीवों की विराधनानी है, तोनी सम्यग्दर्शनकी शुद्धि रूप गुण है ॥ यदुक्तं ॥ पूयाए कायवहो, पडिकुठो सोउ किंतु जिणपूया ॥ सम्मत्त सुद्धिहेउ, त्ति नावणीयाउ निरवज्जा ॥ १ ॥ अर्थ – कोइ कहते हैं कि पूजा करनेसे जी ववध होता है, अरु जीववध तो शास्त्रमें निषेध करा है, इस वास्ते पूजा न करणी चाहियें इसका उत्तर कहते हैं, कि पूजा जो जिनराज की है, सो सम्यक्त्व निर्मल करने वाली है, इस वास्ते जिनपूजा निरव द्य है, अर्से देवपूजाके वास्ते गृहस्थको स्नान करना कहा है, तथा श रीरके चैतन्य सुखके वास्तेनी स्नान है, परंतु जो स्नान करनेसे पुण्य मा नते है, सो बात मिथ्या है. क्योंकि जो कोइ तीर्थमेंनी स्नान कर स्नान

करता है, तिसकोंभी शरीर शुद्धिके शिवाय और कुछ फल नहीं होता है, यह बात, अन्यदर्शनके शास्त्रोंमेंभी कही है ॥ उक्तं च ॥ स्कंदपुराणे काशीखंडे षष्ठाध्याये ॥ श्लोक ॥ मृदोभारसहस्रेण, जलकुंभशतेन च ॥ न शुध्यते दुराचारा, स्नानतीर्थशतैरपि ॥ १ ॥ जायंते च म्रियंते च, जलेष्वेव जलौकस ॥ नच गच्छंति ते स्वर्गं, मविशुद्धमनोमला ॥ २ ॥ चित्तं समाधिभि शुद्ध, वदनं सत्यभाषणे ॥ ब्रह्मचर्यादिभि कायः, शुद्धोगंगांविनाप्यसौ ॥ ३ चित्त रागादिभि क्लिष्ट, मलीकवचनैर्मुखं ॥ जीवहिंसादिभिःकायो, गंगा तस्य पराङ्मुखी ॥ ४ ॥ परदारापरद्रव्य, परद्रोहपराङ्मुख ॥ गंगाप्याह कदागत्य, मामयं पावयिष्यति ॥ ५ ॥ जलसें स्नान करनेसें असंख्य जीवोंकी विराधना होती है, इस वास्ते पुण्य नहीं है, जलमें जीवोका होना मीमांसा शास्त्रसेंभी सिद्ध होता है यदुक्त उत्तरमीमांसाया ॥ श्लोक ॥ लूतास्यतंतुगलिते, ये बिंदौ संति जंतव ॥ सूक्ष्मा भ्रमराणास्ते, नैव मांति त्रिविष्टपे ॥ १ इत्यादि

किसीके स्नान करेभी जे कर गुमडादिमेंसें राधादि श्रवे, तदा तिसनें अंगपूजा फूलादिकसें आप नहीं करनी, दूसरोंसें करावे अरु अग्रपूजा तथा भावपूजा आपभी करे, तो कुछ दोष नहीं, थोडासाभी अपवित्र होवे, तब देवका स्पर्श न करे, तथा स्नान करके पवित्र सुकुमाल, गंध, काषायिकादि वस्त्र, अंगलूहणां, पोतीयां छोड करकें पवित्र वस्त्रांतर पहिरनेकी युक्तिसें पाणीके भीजे पगोंसें धरतीकों अस्पर्शता हूआ पवित्र स्थानमें आ करकें उत्तर सन्मुख मुख करकें अछी तरें मनोहर नवा वस्त्र जो फाटा हूआ तथा सिवाया हूआ न होवे, अरु वर्णमें धवला होवे, ऐसा वस्त्र पहिरे, तथा जिस वस्त्रकों कटिमें पहिरा होवे, तथा जिस वस्त्रसें दिसा गया होवे, तथा जिस वस्त्रसें मैथुन सेव्या होवे, तिस वस्त्रकों पहिरकें पूजादि न करे, तथा एक वस्त्र पहिनके भोजन तथा देवपूजादि न करे, तथा स्त्री, कंचुकी विना पहने देवपूजा न करे, इस रीतिसें पुरुषको दो वस्त्र तथा स्त्रीकों तीन वस्त्र विना पूजा करनी नहीं कल्पे है, देवपूजामें धोती अतिविशिष्ट धवली करनी चाहियें, निशीथचूर्णी तथा श्राद्धदिनकृत्यादि शास्त्रोंमें ऐसाही लिखा है, तथा पूजा षोडशमें ऐसाभी लिखा है, कि रेशमी आदिक जो सुंदर वस्त्र लाल पीला होवे,

गंध आवे, तिसका मरण तीन दिनके अंदर होगा, तथा स्नान कर्या पीछे जिसके हृदयमें, तथा दोनो पगोंमें तत्काल पाणी शोष जावे, तब है दिनोंके बीच उसका मरन जाननां मैथुन सेवकें तथा वमन करकें इन दोनोंमें कबुक देर पीछें स्नान करे, तथा मृतककी चिताके धूम लगनेसें मस्तक मुंमवा करकें, छाने हूये शुद्ध जलसें स्नान करे, तथा तेलमर्दन करी स्नान कर्या पीछें उज्ज्वल वस्त्र आजरण पहिरनां पिछें प्रयाण करनेकें दिनमें, संग्राममें जाता हूआ, विद्यामंत्र साधता, रातकों, सांजकों, पर्वदिनमें, नवमे दिनमें स्नान न करे, मस्तक मुंमनजी न करावे, तथा पक्षमें एक वार दाढी मस्तकके केश तथा नख दूर करावे, परंतु अपणे दांतों करी तथा अपणे हाथ करकें नख न कतरे, स्नान करनेसें शरीर पवित्र चैतन्यसुख कर जाव शुद्धिका हेतु हो जाता है ॥ उक्त च द्वितीये अष्टकप्रकरणे ॥ श्लोक ॥ जलेन देहदेशस्य, क्षण यच्छुद्धिकारण प्रायोऽन्यानुपरोधेन, इव्यस्नान तदुच्यते ॥ १ ॥ अस्यार्थः— देहदेश त्वचामात्रहीकी क्षणमात्र शुद्धि है, परंतु प्रजूत काल नहीं, शुद्धि जो है, सोजी प्रायें है, कुछ एकांत नहीं है, क्योंकि अतिसारादि रोग वालेंको क्षण मात्रजी शुद्धि नहीं हो सक्ती है, धोने योग्य मेलसे अन्य दूसरा मैल नासिकादि अंतर्गत जो है, सोजी स्नानसें दूर नही होता है, अथवा पाणी बिना और जीवोंकी हिंसा न करनेसे जो स्नान है, सो बाह्य स्नान है, जो पुरुष स्नान करके जगवानकी तथा साधुकी पूजा करे, तिसका स्नानजी अच्छा है, क्योंकि जावशुद्धिका निमित्त है, स्नान करनेमें अप्कायके जीवोंकी विराधनाजी है, तोजी सम्यग्दर्शनकी शुद्धि रूप गुण है ॥ यदुक्त ॥ पूआए कायवहो, पडिकुठो सोउ किंतु जिणपूआ ॥ सम्मत्त सुद्धिहेउ, त्ति जावणीयाउ निरवज्जा ॥ १ ॥ अर्थ — कोइ कहते है कि पूजा करनेसे जीववध होता है, अरु जीववध तो शास्त्रमें निषेध करा है, इस वास्ते पूजा न करणी चाहिये इसका उत्तर कहते है, कि पूजा जो जिनराजकी है, सो सम्यक्त्व निर्मल करने वाली है, इस वास्ते जिनपूजा निरवद्य है, यमें देवपूजाके वास्ते गृहस्थको स्नान करनां कहा है, तथा शरीरके चैतन्य सुखके वास्तेंजी स्नान है, परंतु जो स्नान करनेसे पुन्य मानते है, सो बात मिथ्या है क्योंकि जो कोइ तीर्थमें जाय कर स्नान

जा, तिनोंसें पूजकें प्रत्याख्यान जो पूर्वें करा था, सो यथाशक्ति देवकी सा क्षीसें उच्चारण करे, तद् पीछें विधिसें बडे पंचायती मंदिरमें जा कर पूजा करे, सो इस विधिसें करे.

यदि राजादि महर्द्धिक होवे, सो तो सर्व ऋद्धि, सर्वदीप्ति, सर्वयुक्ति, सर्वसैन्या, सब उद्यमसे जिनमतकी प्रजावना वास्ते महा आमंबर पूर्वक जिनमंदिरमें पूजा करनेकों जावे, जैसें दशार्णजद्र राजा श्रीमहावीर जग वतकों वंदना करने गया था तैसें जावे

अरु जो सामान्य ऋद्धिवाला होवे, सो अनिमान रहित लोकोपहास्य त्यागके यथायोग्य आमंबर जाइ, मित्र, पुत्रादिकोंसें परिवृत हो कर जावे, ऐसें जिनमंदिरमें जा कर १ पुष्प, तंबोल, सरस, डुर्वादि त्यागे, तथा २ छूरी, पावडी, मुकुट, हाथी प्रमुख सचित्ताचित्त वस्तु शरीरके जोगकी त्यागे, तथा ३ मुकुट वर्जकें शेष आजरणादि अचित्त वस्तु न त्यागे, अरु एक वडे वस्त्रका उत्तरासंग करे, ४ जिनेश्वरकी मूर्त्ति दीखे अंजलि बांधकें म स्तक उपर चढाकें 'नमो जिणाण' ऐसा कहे, ५ मन एकाग्र करे, इस री तिसें पांच अनिगम सजालके (सांचकें)नैषेधिकी पूर्वक प्रवेश करे

जे कर राजा जिनमंदिरमें प्रवेश करे, तब तत्काल राजचिन्ह दूर करे, १ तलवार, २ छत्र, ३ असवारी, ४ मुकुट, ५ चामर ये पांचो चिन्ह रा जाके त्यागे, अग्रद्वारमें प्रवेश करतां घर व्यापारका निषेध करने वास्ते नैषेधिकी तीन करे, परंतु तीनो निस्सहीकी एक नैषेधिकी गणतीमें कर णी, क्योंकि एकही घर व्यापार एककाही निषेध कीया है तद् पीछें मूल बिंबकों नमस्कार करके सर्व कृत्य, कल्याणवांछक पुरुषनें दक्षिणके पासें करणां, इस वास्ते मूलबिंबकों दक्षिणके पासें करता हूआ ज्ञान, दर्शन, अरु चारित्र, इन तीनोके आराधनार्थ प्रदक्षिणा तीन देवे, प्रदक्षिणा देता हूआ समवसरणस्थ चाररूप संयुक्त जिनेश्वरजीकों ध्यावे, गजारेमें पूठें वामा दक्षिण दिशिमें जो बिंब होवे, तिनकों वंदे, इसी वास्ते सर्व मंदिर में चारों तर्फ समवसरणके आकारें तीन तर्फ तीन बिंब स्थापे जाते है, ऐसें करनेसें जो अरिहंतकी पीठें वसणेमें दोष था, सो दूर हो गया, पीठ किसी पासेंजी न रही, तिस पीछें चैत्यप्रमार्जनादि जो आगें लिखेगे, सो करे, पीछें सर्व प्रकारकी पूजा सामग्री प्रत्यें तथा देहराके समारनेके कामके

सोजी पूजामें पहिरे तो ठीक है, तथा “ एगसाडियं उत्तरासंगं करेइ, इत्यादि आगमके प्रमाणसें उत्तरासग अखंम वस्त्रका करे, दो टुकडे सीव्या वस्त्र न कल्पे, तथा रेशमी कपडेसें जोजनादि करे, अरु मनमें समजे कि यह तो सदा पवित्र है, तोजी तिस्सें पूजा न करे तथा जिस वस्त्रकों पहिरके पूजा करे, उसकोंजी वारंवार पहिननेंके अनुसार धोवावे, धूप देकर पवित्र करे, धोती थोडाही काल तक पहननी चाहियें, उस धोतीसें पसीना श्लेष्मादि न दूर करनां चाहियें क्योंकि उस्सें अपवित्रता हो जाती है, तथा पहिने हूए वस्त्रोंके साथ पूजाके वस्त्र छुहाने (अडाने) नहीं चाहियें, दूसरायोंकी पहनी हूइ धोती पहननी न चाहियें, तथा बाल, वृद्ध, स्त्रीके पहननेंमें आइ होवे, तो विशेष करकें न पहननी चाहियें, तथा जले स्थानसें ज्ञातगुण, सुमनुष्य पासों पवित्र जाजन आवादनसयुक्त रस्तेमें लानेकी विधिसयुक्त पाणी अरु फूल, पूजा वास्ते मगावने चाहियें अरु फूलादि लाने वालेकों अछी तरें मोल दे कर प्रसन्न करनां चाहियें, ऐसें मुखकोश बांध के पवित्रस्थानादि युक्तिसें जिसमें कोइ जीव पडा न होवे, ऐसा शोध्या हुवा केशर कर्पूरादिकसे मिश्र, चदन पते, शोध्या हूआ सुदर धूप, प्रदीप, अखम चावलादि तूत रहित प्रशसा करनें योग्य ऐसा नैवेद्य फलादि सामग्री मेलकें इस रीतें इव्यसें शुचि करके अरु जावसें शुचि तो राग, द्वेष, कषाय, ईर्ष्या रहित तथा इस लोक परलोकके सुखोंकी इछा रहित हो कर अरु कुतूहल चपलादि त्याग करकें एकाग्र चित्ततारूप जावशुद्धि करे ॥ उक्त च ॥ श्लोक ॥ मनोवाक्कायवस्त्रोर्वी, पूजोपकरणस्थिते ॥ शुद्धि सप्तविधा कार्या, श्रीअर्हत्पूजनक्षणे ॥ १ ॥

ऐसें इव्य जाव करकें शुद्ध हो कर जिनघर (देहरेमें) दक्षिणदिशा पुरुष, अरु वामा दिशा स्त्री, यत्न पूर्वक प्रवेश करे, प्रवेशके अवसरमें दक्षिण पग पहिला धरे, पीछें सुगध वाले मीठे सरस इव्यो करके पराङ्मुख वामास्वर चलते जावसें देवपूजा करे इत्यादि तीन नषेधिकी करण, तीन प्रदक्षिणा, इत्यादि विधिसें शुचि पाट उपर पद्मासनादि सुखासन पर बैठकें, चदनका जाजनसें चदन ले कर दूसरी कटोरीमें तथा हथेलीमें ले कर मस्तकमें तिलक करके हस्तकंकण, श्रीचदनचर्चित धूपित, हाथों करी जिन भई तरें पूजके आगे तिलने इ ना १ अगपूजा, २ अग्रपूजा, ३ भावपूजा,

कषाय वस्त्र, करकें एक सौ आव जिनप्रतिमाके अंग क्यों कर लूहे ? इस वास्ते जिनबिंबारोपित जो वस्तु, शोजा-रहित सुगंध रहित दीख पडे, अरु नव्य जीवोंकों प्रमोदका हेतु न होवे, तिसहीकों बहुश्रुत निर्माल्य कहते हैं यह कथन संघाचारवृत्तिमें लिखा है, चढे हूये चावलादि निर्माल्य नहीं, कोइ आचार्य निर्माल्यन्नी कहते हैं, तत्त्व केवली जाणे क्यों कर हैं?

चदन फूलादि पूजा तैसें करणी, जैसें नगवानके नेत्र मुखादि ढकें न जावे, अरु बहुत शोनिक दीखे, जिस्सें देखने वालोंकों प्रमोद पुण्यादिककी वृद्धि होवे

तथा १ अंगपूजा, २ अग्रपूजा, ३ नावपूजा, यह तीन प्रकारकी पूजा है, तिनमें जो निर्माल्य दूर करनां, प्रमार्जना करनां, अंगप्रक्षालन करनां, वालकूचीका व्यापारण, पूजना, कुसुमांजलिमोचन, पंचामृतस्नात्र, शुद्धोदकधारा देनी, धूपित स्वच्छ मृदुगंध कषायकादि वस्त्रसे अंगलूहण करनां, कर्पूर कुंकुमादि मिश्र गोशीर्ष चदन विलेपन अंगी रचनी, तथा गोरोचन कस्तूरीसें तिलक करणां, पत्र, वेल, फूल प्रमुखकी रचना करनी, बहु मोल रत्न सुवर्ण मोती रूपें पुष्पादिकें आजरण (अलंकार) पहिरावे, जैसे श्री वस्तुपालने अपने कराये हूये सवालक्ष बिंबोंके तथा श्रीशत्रुंजयजीमें सर्व बिंबोंके रत्न सुवर्णके आजरण कराये थे, तथा दमयंतीने पिछले नवमें अष्टापद पर्वतपर चौवीस अर्हतोंके तिलक कराये होते, क्योंकि प्रतिमाजीकी जितनी उत्कृष्ट सामग्री होवे, उतनेही अधिक नव्य जीवोंके शुन नावोंकी वृद्धि होती हैं तथा पहरावणी, चंद्रवादि विचित्र डुकूलादि वस्त्र पहिरावें, तथा १ ग्रथिम, २ वेष्टिम, ३ पूरिम, ४ संघातिम रूप, चतुर्विध प्रधान अम्लान विधिसे ल्याया हूआ शतपत्र, सहस्त्रपत्र, जाइ, केतकी, चंपकादि विशेष फूलों करी माला, मुकुट, सेहरा, फूलघरादिककी रचना करे तथा जिनजीके हाथमें बिजोरा, नालियर, सोपारी, नागवल्ली, मोहोर, रूपइया, लड्डु प्रमुख रखनां अरु धूपक्षेप, सुगंध, वासप्रक्षेपादि, यह सर्व अंगपूजाकी गिणतीमें है. महानाष्यमेंनी कहा है ॥ गाथा ॥ न्हवण विलेव आहरण, वछ फल गंध धूप पुप्फेहिं ॥ कीरइ जिणंगपूया, तह विही एस नायवो ॥ १ ॥ वछेण बंधिऊणना,स अहवा जहा समाहीए ॥ व

निषेध करने वास्ते दूसरी मुखमंडपादिकमें नैषेधिकी करे, पीछें मूलबिंबकों तीन प्रणाम करकें पूजा करे, भाष्यकारनेंभी ऐसा कहा है, कि निस्सही तीन करकें प्रवेश करी मंडपमें जिनेश्वरके आगें धरती उपर स्थापन करकें, हाथ गोडे करे, विधिसें तीन वार प्रणाम करे, तिस पीछें हर्षसें उल्हास हो करकें मुखकोश बांध करकें जिनप्रतिमाका निर्माल्य, फूल प्रमुख मोर पीछी करकें दूर करे, जिनमंदिरका प्रमार्जन आप करे, अथवा औरोंसें करावे, पीछें जिनबिंबकी पूजा विधिसें करे, मुखकोश आठ पुडका करे,जिस्से नासिका अरु मुखका निःश्वास निरोध होवे,वर्षातमें निर्माल्यमें कुंथुआदि जीवभी होते हैं इस वास्ते निर्माल्य अरु स्नात्र जल न्यारा न्यारा पवित्र स्थानमें गेरे, गिरावे, ऐसें आशातनाभी नहीं होती है पूजा, कलशजलसें करता हूआ ऐसी भावना ल्यावे, सो लिखते हैं

हे स्वामिन्! बालपणेमें मेरु शिखर पर सुवर्णकलशों करी इंद्र देवताने स्नान कराया था, सो धन्य थे, जिनोनें तुमारा दर्शन करा था, इत्यादि चिंतवणा करकें पीछें सुयत्नसें वालाकूचीसे जिनबिंबके अंग उपरसें चंदनादि उतारे, पीछें जलसें प्रक्षालन करकें दो अंगलूहणेसे जिनप्रतिमाकों निर्जल करे, पग, जानु, कर, मस्तकें पूजा यथाक्रमसे नव अंगमें श्रीचंदनादि करके चर्चे, (पूजे) कोई आचार्य कहते है, कि पहिला मस्तकमें तिलक करकें पीछें नवांग पूजा करणी, श्रीजिनप्रभसूरिकृत पूजाविधि ग्रंथमें ऐसा लिखा है कि— सरस सुरभि चंदन करी देवके, दाहिण जानु, दाहिण स्कंध, निलाड, वामा स्कंध, वामा जानु, इस क्रमसे पूजा करे, हृदय प्रमुखमें पूजा करे,तब नव अंगकी पूजा होती है, अंगोंमें पूजा करके पीछें सरस पांच वर्णके प्रत्यग्र फूलों करकें चंदन सुगंध वास करी पूजे, जे कर पहिला किसीने बडे मंडाणसें पूजा करी होवे,अरु अपणे पास वैसी सामग्री पूजाकी न होवे, तब पहिली पूजा उतारे नहीं, क्योंकि विशिष्ट पूजा देखनेंसे भव्योंको जो पुण्यानुबंधी पुण्य होता था, तिसको अंतराय हो जाती है,किंतु तिस वास्ते तिसी पूजाकों शोभनिक करे, यह कथन बृहद्भाष्यमें है

तथा जो पूजा उपर पूजा करणी, सो निर्माल्यका लक्षण न होनेसें निर्माल्य नहीं, जो भोगविनष्ट द्रव्य है, सोइ निर्माल्य गीतार्थोंने कहा है,आभूषण वार वार पहराये जाते हैं,परंतु निर्माल्य नहीं होते हैं,नहीं तो अंग,

है, तैसेंही मूलबिंबकी विशेष पूजा करतां आशातना नहीं होती है, जिनमंदिरमें जिनबिंबकी जो पूजा करते हैं, सो तीर्थंकरोंके वास्ते नहीं करते हैं, किंतु अपणे शुभ नावोंके निमित्त है, जिस निमित्तसें आत्माका उपादान समर जाता है, अरु दूसरोकों बोधकी प्राप्ति होती है कोइ जीव तो श्रीजिनमंदिरकों देखकें प्रतिबोध हो जाता है, अरु कोइ जीव जिनप्रतिमाका प्रशांतरूप देखकें प्रतिबोध हो जाता है, कोइ पूजाकी महिमा देखके, अरु कोइ गुरुके उपदेशसें प्रतिबोध हो जाता है इस वास्ते चैत्य जिनबिंबकी रचना बहुत सुंदर बनानी चाहियें अरु अपणी शक्ति अनुसार मुख्यबिंबकी विशेष अद्भुत शोना करनी चाहियें

तथा घर देहरासर तो अबनी पीतल ताम्र रूपामय करावनेकूं समर्थ है, जदा पीतलादिकका बनानेका सामर्थ्य न होवे, तदा दांतादि मय पीतल सिगरफकी रंगावे, कोरणी विशिष्ठ काष्ठादिमय करावे घरचैत्य तथा चैत्य समुच्चयमें दिनप्रत्यें सर्व जगें प्रमार्जन तैलादिसें काष्ठ चोपडे, जिस्सें घुण न लगे, तथा खडियासें धवला करे, श्रीतीर्थंकरके पंचकल्याणकादिकका चित्राम करावे, समग्र पूजाके उपकरण समरावे, पडदा, कनात, चंडुवादि देवे, ऐसें करे कि, जैसें जिनमंदिरादिककी अधिक अधिक शोना होवे. घर देहरेके उपर धोती प्रमुख न गेरे, घर देहरेकीनी चौरासी आशातना टाले, पीतल पाषाणादिमय जो प्रतिमा होवे, तिन सर्वकों एक अंगलूहणेसें सर्व बिंबोका पाणी लूहे, पीछें निरंतर दूसरे सुकोमल अंगलूहणेसें वार वार सर्व अंगो उपर फेरकें पाणीकी गीलास बिलकुल रहने न देवे, ऐसें करनेसे प्रतिमा उज्ज्वल हो जाती है, जहां जहां प्रतिमाके अंगोपांग पर जल रहि जावे, तहां तहां प्रतिमाके श्यामता हो जाती है, इस वास्ते पाणीकी स्निग्धता सर्वथा प्रकारें टाले, केशर बहुत अरु चंदन थोडा, ऐसा विलेपन करनेसें प्रतिमा अधिक अधिक उज्ज्वल हो जाती है

नव, पंचतीर्थी, चोवीसीका पट्टादिमें स्नात्रजलका जो प्रतिमाजीकों परस्पर स्पर्श होनेसें आशातना होती है? ऐसी आशंका न करणी चाहियें, अशक्य परिहार होनेसें १ एक अर्हंतकी प्रतिमा होवे, तिसका नाम व्यक्त है. २ एकही पाषाणादिकमें नरत ऐरवत क्षेत्रकी चोवीसी बनवावे, तिनका नाम क्षेत्रप्रतिमा है ३ ऐसेही एक सौ सित्तेर प्रतिमा माहात्म्य

ऊेयवं तु तया, देहमवि कंमुअणमाई ॥ २ ॥ अन्यत्रापि गाथा ॥ मन कहुअण वके, तह खेलविगिंचण ॥ जुइ जुत्तजणण चेव, कुअतो अनंतु णो ॥ १ ॥ देवपूजनके अवसरमें मुख्यवृत्ति तो मौनही करणी चाहियें, जे कर न कर सके तो नी पापहेतु वचन तो सर्वथाही त्यागे, नैषेधिकी कर नेसें गृहादि व्यापारका निषेध करनेंसें इस वास्ते पापकी सज्ञानी वर्जे, मू लबिंबकी विस्तार सहित पूजा करे, पीछें अनुक्रमसें सर्व और बिंबोंकी पूजा करे, द्वारबिंब समवसरण बिंबोंकी पूजानी मूलबिंबकी पूजा करा पीछें, गजारासें निकलती वखत करनी चाहियें, असा संजव है, परंतु प्रवे श करतां तो मूलबिंबकीही पूजा करणी, उचित मालुम होती है, संघा चारमें असेही लिखा है, इस वास्ते मूलनायककी पूजा, सर्व बिंबोंसें पहि लां और सविशेष करनी चाहियें ॥ उक्तमपि ॥ उचिअत्त पूआए, विसे सकरण तु मूलबिंबस्स ॥ जं पडइ तब पढम, जणस्स दिठी सहमणेण॥१॥

शिष्य प्रश्न करता है कि — चंदनादि करकें प्रथम एक मूलनायककों पूजीयें अरु दूसरे बिंबोंकी पीछें पूजा करनी, यह तो स्वामी सेवक नाव ग हुंरा, सो तो लोकनाथ तीर्थंकरमें है नहीं, क्योंकि एकबिंबकी बहुत आद रसें पूजा करणी, अरु दूसरे बिंबोंकी थोडी पूजा करणी, यह बडी नारी आशातना मुझकों मालुम पडती है ?

गुरु उत्तर कहते है — अर्हंत प्रतिमाओंमें नायक सेवककी बुद्धि ज्ञा नवंत पुरुषको नहीं होती है, क्योंकि सर्व प्रतिमाजीके एक सरीखाही परिवार प्रातिहार्य प्रमुख दीख पडते हैं, यह व्यवहार मात्र है, जो बिंब पहिलांही स्थापन कीया गया है, सो मूलनायक है, इस व्यवहारसें शेष प्रतिमाओंका नायक नाव दूर नहीं होता है

एक प्रतिमाकों वंदन करनां, पूजा करनी, नैवेद्य चढानां, यह उचित प्रवृत्तिवाले पुरुषकों आशातना नहीं है, जैसें माटीकी प्रतिमाकी पूजा फूलादि रहित उचित है, अरु सुवर्णादिककी प्रतिमाकों स्नान विलेपना दि उचित है, तथा कल्याणक प्रमुखका महोत्सव एकही बिंबका विशेष करकें कीया जाता है, परंतु वो महोत्सव दूसरी प्रतिमाओंकी आशातनाका कारण नहीं होता है, जैसें धर्मी पुरुषका पूजतां और लोकोंकी आशातना नहीं, इस प्रकारकी उचित प्रवृत्ति करतां जैसें आशातना नहीं होती।

है, तैसेंही मूलबिंबकी विशेष पूजा करतां आशातना नहीं होती है, जिनमंदिरमें जिनबिंबकी जो पूजा करते हैं, सो तीर्थंकरोंके वास्ते नहीं करते हैं, किंतु अपणे शुभ नावोंके निमित्त है, जिस निमित्तसें आत्माका उपादान समर जाता है, अरु दूसरोकों बोधकी प्राप्ति होती है कोइ जीव तो श्रीजिनमंदिरकों देखकें प्रतिबोध हो जाता है, अरु कोइ जीव जिनप्रतिमाका प्रशांतरूप देखकें प्रतिबोध हो जाता है, कोइ पूजाकी महिमा देखके, अरु कोइ गुरुके उपदेशसें प्रतिबोध हो जाता है इस वास्ते चैत्य जिनबिंबकी रचना बहुत सुंदर बनानी चाहियें अरु अपणी शक्ति अनुसार मुख्यबिंबकी विशेष अद्भुत शोना करनी चाहियें

तथा घर देहरासर तो अवश्य पीतल ताम्र रूपामय करावनेकूं समर्थ है, जदा पीतलादिकका बनानेका सामर्थ्य न होवें, तदा दांतादि मय पीतल सिंगरफकी रंगावे, कोरणी विशिष्ठ काष्ठादिमय करावे घरचैत्य तथा चैत्य समुच्चयमें दिनप्रत्यें सर्व जगें प्रमार्जन तैलादिसें काष्ठ चोपडे, जिस्सें घुण न लगे, तथा खडियासें धवला करे, श्रीतीर्थंकरके पंचकल्याणकादिकका चित्राम करावे, समग्र पूजाके उपकरण समरावे, पडदा, कनात, चंडुवादि देवे, ऐसें करे कि, जैसें जिनमंदिरादिककी अधिक अधिक शोना होवे घर देहरेके उपर धोती प्रमुख न गेरे, घर देहरेकीनी चौरासी आशातना टाले, पीतल पाषाणादिमय जो प्रतिमा होवे, तिन सर्वकों एक अगलूहणेसें सर्व बिंबोका पाणी लूहे, पीछें निरंतर दूसरे सुकोमल अगलूहणेसें वार वार सर्व अंगो उपर फेरकें पाणीकी गीलास बिलकुल रहने न देवे, ऐसें करनेसे प्रतिमा उज्ज्वल हो जाती है, जहां जहां प्रतिमाके अंगोपांग पर जल रहि जावे, तहां तहां प्रतिमाके श्यामता हो जाती है, इस वास्ते पाणीकी स्निग्धता सर्वथा प्रकारें टाले, केशर बहुत अरु चंदन थोडा, ऐसा विलेपन करनेसें प्रतिमा अधिक अधिक उज्ज्वल हो जाती है

नव, पंचतीर्थी, चोवीसीका पट्टादिमें स्नात्रजलका जो प्रतिमाजीकों परस्पर स्पर्श होनेसें आशातना होती है? ऐसी आशंका न करणी चाहियें, अशक्य परिहार होनेसें १ एक अर्हंतकी प्रतिमा होवे, तिसका नाम व्यक्त है. २ एकही पाषाणादिकमें नरत ऐरवत क्षेत्रकी चोवीसी बनवावे, तिनका नाम क्षेत्रप्रतिमा है ३ ऐसेंही एक सौ सित्तेर प्रतिमा माहात्म्य

ऊयव तु तया, देहमवि कंमुअणमाई ॥ १ ॥ अन्यत्रापि गाथा ॥ करुअण वज्ञे, तह खेलविगिंचण ॥ थुइ थुत्तजणण चेव, कुअतो अणं पुणो ॥ १ ॥ देवपूजनके अवसरमें मुख्यवृत्ति तो मौनही करणी चाहियें, जेकर न कर सके तो जी पापहेतु वचन तो सर्वथाही त्यागे, नैषेधिकी करनेसें गृहादि व्यापारका निषेध करनेसें इस वास्ते पापकी सज्ञाजी वर्जे, मूलविंबकी विस्तार सहित पूजा करे, पीछें अनुक्रमसें सर्व और बिंबोंकी पूजा करे, द्वारबिंब समवसरण बिंबोंकी पूजाजी मूलबिंबकी पूजा करां पीछें, गजारासे निकलती वखत करनी चाहियें, असा संजव है, परंतु प्रवेश करतां तो मूलबिंबकीही पूजा करणी, उचित मालुम होती है, संघाचारमें असेही लिखा है, इस वास्ते मूलनायककी पूजा, सर्व बिंबोसें पहिलां और सविशेष करनी चाहियें ॥ उक्तमपि ॥ उचिअत्त पूआए, विसेसकरण तु मूलबिंबस्स ॥ जं पडइ तत्थ पढम, जणस्स दिठी सहमणेण॥१॥

शिष्य प्रश्न करता है कि – चंदनादि करके प्रथम एक मूलनायकको पूजीयें अरु दूसरे बिंबोंकी पीछें पूजा करनी, यह तो स्वामी सेवक जाव ठहरा, सो तो लोकनाथ तीर्थंकरमें है नहीं, क्योंकि एकबिंबकी बहुत आदरसें पूजा करणी, अरु दूसरे बिंबोंकी थोडी पूजा करणी, यह बडी जारी आशातना मुजको मालुम पडती है ?

गुरु उत्तर कहते है – अर्हत प्रतिमाओंमें नायक सेवककी बुद्धि ज्ञानवत पुरुषको नहीं होती है, क्योंकि सर्व प्रतिमाजीके एक सरीखाही परिवार प्रातिहार्य प्रमुख दीख पडते है, यह व्यवहार मात्र है. जो बिंब पहिलांही स्थापन कीया गया है, सो मूलनायक है, इस व्यवहारसें शेष प्रतिमाओंका नायक जाव दूर नहीं होता है

एक प्रतिमाको वंदन करना, पूजा करनी, नैवेद्य चढाना, यह उचित प्रवृत्तिवाले पुरुषको आशातना नहीं है, जैसे माटीकी प्रतिमाकी पूजा फूलादि रहित उचित है, अरु सुवर्णादिककी प्रतिमाको स्नान विलेपनादि उचित है, तथा कल्याणक प्रमुखका महोत्सव एकही बिंबका विशेष करकें कीया जाता है, परंतु वो महोत्सव दूसरी प्रतिमाओंकी आशातनाका कारण नहीं होता है, ऐसे धर्मी पुरुषको पूजना और नाविक आशातना नहीं, इस प्रकारकी उचित प्रवृत्ति करतां जन आशातना नहीं होती।

है, " कीरइ बलि " अैसा पाठ आवश्यक निर्युक्तिमें है, तथा निशीथचूर्णी मेंभी बलि चढानी लिखी है, तथा कल्पभाष्यमेंभी लिखा है, कि जो जिन प्रतिमाके आगें चढाने वास्ते नैवेद्य करा है, सो साधुको न कल्पे, तथा प्रतिष्ठाप्राभृतसें रची श्रीपादलिप्त आचार्यकृत प्रतिष्ठापद्धतिमेंभी लिखा है, कि आरति उतारणी, मंगलदीवा करकें पीछें चार स्त्री मिल कर नैवेद्य, गीतगान, विधिसें करे ॥ तथा च माहानिशीथे तृतीये अध्ययने ॥ अरिहंताणं भगवंताणं गंध मल्ल पइव समज्जणोवलेवण विचित्त बलि वत्थ धूवईएहि पू आ सक्कारेहि पइदिणमब्भणपि कुवाणा तित्थुपण करेमोत्ति ॥ इति अग्रपूजा ॥

भावपूजा जो है, सो द्रव्यपूजाका जो व्यापार है, तिसके निषेधने वास्ते तीसरी निस्सही तीन वार करे, श्रीजिनेश्वरजीके दक्षिणके पासे पुरुष अरु वामी दिशा स्त्री रह कर आशातना टालने वास्ते जघन्य मंदिरमें भूमिके सनव हूए नव हाथ प्रमाण अरु घर देहरेमें जघन्य एक हाथ प्रमाण अरु उत्कृष्टसें तो साठ हाथ प्रमाण अवग्रह है, तिस्सें बाहिर बैठकें चैत्यवंदना, विशिष्ट काव्यों करकें करे, श्रीनिशीथमें तथा वसुदेवहिंडमें तथा अन्यशास्त्रोंमें श्रावकोंनेंभी कायोत्सर्ग थुइ आदि करी चैत्यवंदना करी है, सो चैत्यवंदनाभी तीन तरेंकी भाष्यमें कही है, सो कहते हैं एक तो जघन्य चैत्यवंदना, सो अंजलि बांध कर शिर नमा कर प्रणाम करणा, यथा 'नमो अरिहंताण' इति अथवा एक श्लोकादि पढकें नमस्कार करणा, अथवा एक शक्रस्तव पढे, तो जघन्य चैत्यवंदना होवे दूसरी मध्यम चैत्यवंदना, सो चैत्यस्तवदंडक युगल 'अरिहंत चेइयाण' इत्यादि कायोत्सर्गके पीछें एक स्तुति कहनी, यह मध्यम चैत्यवंदन है, अरु तीसरा उत्कृष्ट चैत्यवंदन सो पंचदंड, जो १ शक्रस्तव, २ चैत्यस्तव, ३ नामस्तव, ४ श्रुतस्तव, ५ सिद्धस्तव, प्रणिधान, जयवीयराय, इत्यादि यह सर्व उत्कृष्ट चैत्यवंदना है तथा कोइ आचार्यका अैसा मत है कि — एक शक्रस्तव करी जघन्य चैत्यवंदना होती है, दो तीन शक्रस्तव करी मध्यम चैत्यवंदना होती है, तथा चार अथवा पांच शक्रस्तव करी उत्कृष्ट चैत्यवंदना होती है, इसकी विधि चैत्यवंदनभाष्यसे जान लेनी यह तीन प्रकारकी चैत्यवंदना कही

अथ यह चैत्यवंदना नित्यप्रत्यें सात वार करणी, महानिशीथमें साधुकों

कहते हैं, ४ फूलकी वृष्टि करता जो मालाधर देवता है, तिसका रूप पं चतीर्थीके ऊपर बनाते हैं, जिनप्रतिमाकों न्हवण करतां पहिलां मालाध रकों पाणी स्पर्शके पीछें जिनबिंब उपर पडता है, सो दोष नहीं है, पूर्व वृद्धोंकी आचरणा है, इसी तरें चौवीसी पट्टे आदिकमेंनी जान लेनां, ग्रं थोंमेंनी असी रीति देखनेमें आती है ॥ वृहद्भाष्येप्युक्त ॥ भाष्यकारका कहना यहां लिखते हैं ? जिनराजकी ऋद्धि देखने वास्ते कोइ भक्तजन एक प्रतिमा बनवाता है, प्रगटपणे अष्ट प्रातिहार्य देवागमसुशोभित १ दर्शन, ज्ञान, चारित्रकी आराधना वास्ते कोइ तीन तीर्थी प्रतिमा बनवा ता है २ कोइ भक्त पंचपरमेष्ठिके आराधनार्थ उद्यापनमें पंचतीर्थी प्रति मा भराता है ४ चौवीस तीर्थंकरोंके कल्याणक तप उजमने वास्ते भरत क्षेत्रमें जो ऋषभादि चौवीस तर्थंकर हूए हैं, तिनके बहुमान वास्ते कोइ चौवीसी बनवाता है, कोइ भक्ति करके मनुष्य लोकमें उत्कृष्टे एक काल में एक सौ सित्तेर तीर्थंकर विहरमानकी एक सौ सित्तेर प्रतिमा बनवाता है, तिस वास्ते तीन तीर्थी, पांचतीर्थी, चौवीसी आदिकका बनानां युक्ति युक्त है, यह पूर्वोक्त सर्व अंगपूजा है

अथाग्रपूजा लिख्यते ॥ रूपेके, सुवर्णके, चावल धवला सरसव प्रमुख अक्षतों करके अष्टमंगल आलेखन करे, जैसें सेनिकराजा रोजकी रोज एक सौ आठ सोनेके यवां करी त्रिकाल भगवान्‌की प्रतिमा आगें साथीया करता था, अथवा ज्ञान, दर्शन, चारित्रकी आराधनाके वास्ते क्रमसें पट्टादिकमें चावलोंके तीन पुंज करणे, तथा एक भातप्रमुख अशन, दूसरा सक्कर गुडादि पान, तीसरा पक्वान्न फलादि खादिम, चौथा तंबोलादि स्वा दिम, इनका चढानां, तथा गोशीर्ष चंदनके रस करी पंचांगुली तलेसें मंडी ल आलेखनादि पुष्पप्रकर आरती प्रमुख करणी, यह सर्व अग्रपूजामें गिणतीमें है ॥ यत्नाष्य ॥ गाथा ॥ गंधव नट्ट वाइय, लवण जलारत्तिआइ दीवाई ॥ जं किच्च तं सव्वंपि, उयरइ अग्ग पूआए ॥१॥ नैवेद्यपूजा तो दिन दिन प्रत्यें करणी सुखाली है. अरु इसमें फलभी मोटा है, क्योंकि अन्न तालीम तथा रांधा हूआ चढावे. लौकिक शास्त्रोंमेंभी लिखा है ॥ श्लोक ॥ धूपोदहति पापानि, दीपोमृत्युविनाशकः ॥ नैवेद्य विपुलं राज्यं, सिद्धिदात्री प्रदक्षिणा ॥ २ ॥ नैवेद्यका चढाना, आरति करणा, प्रसिद्ध [illegible]

तहां पूजा पंचोपचार सहित,अष्टोपचार सहित, अरु धनवान् होवे, तदा सर्वोपचारसें पूजा करे, तहां फूल, अक्षत, गंध, धूप अरु दीपसें पूजा करे, सो पचोपचार पूजा जाननी, तथा फूल, अक्षत, गंध, दीप, धूप, नैवेद्य, फल अरु जल, यह अष्टोपचार पूजा है, सो अष्टविध कर्मकी मथने वाली है, तथा स्नात्र, विलेपन, वस्त्र, आनूषणादिक, फल, दीप, गीत, नाटक, आरति आदिक करे, सो सर्वोपचार पूजा है इति वृहद्भाष्ये॥

तथा पूजाके तीन नेद हैं एक आपही कायासें पूजाकी सामग्री ल्यावे, दूसरी वचनो करकें दूसरोसे मगवावे, तीसरी मन करके नला फूल फल प्रमुख करी पूजा करे, ऐसें काया, वचन अरु मन, यह तीनो योगों करकें करे, करावे अरु अनुमोदे, यह तीन तरेंसें पूजा है

तथा एक फल, दूसरा नैवेद्य, तीसरी शुइ, अरु चौथी प्रतिपत्ति, सो वीतरागकी आज्ञापालन रूप, यह चार प्रकारें पूजा, यथा शक्तिसें करे ललितविस्तरादिक ग्रंथोमें "पुष्पामिषस्तोत्र प्रतिपत्ति" अर्थात् फूल, नैवेद्य, स्तोत्र, अरु आज्ञा आराधनीय, ये उत्तरोत्तर प्रधान हैं ॥ इत्यागमोक्त पूजानेदचतुष्टयं ॥

तथा पूजा दो प्रकारकी है, एक इव्यपूजा, दूसरी नावपूजा, जो फूलादिकसें जिनराजकी पूजा करणी, सो इव्यपूजा है, दूसरी श्रीजिनेश्वरकी आज्ञा पालनी, सो नावपूजा है तथा पुष्पारोहण गधारोहण इत्यादि सत्तरह नेदसे तथा स्नात्रविलेपनादि एकवीश नेदें पूजा है, परंतु अगपूजा, अग्रपूजा अरु नावपूजा, यह तीनों पूजा, सर्व पूजायोंके अतर्नाव हैं, तिनमें सत्तरह नेद, पूजाके लिखते हैं

एक १ स्नात्र करनां, जिनप्रतिमाकों विलेपन करनां, २ चक्षुजोडा, वास सुगध, ३ फूल चढाने, ४ फूलकी माला चढानी, ५ पंच रंगें फूल चढाने, ६ बरास नीमसेनी प्रमुखका चूर्ण चढानां, ७ आनरण चढाने, ८ फूलोंका घर करनां, ९ फूलपगर सो फूलोंका ढेर करनां, १० आरति, मगल दीवा, ११ दीपकपूजा, १२ धूपोपक्षेप, १३ नैवेद्य, १४ शुनफल ढोकन, १५ गीतपूजा, १६ नाटक करणां, १७ वाजंत्र यह सत्तरह नेदों करि पूजा है अथ पूजाके एकवीश नेद लिखते हैं

तहां प्रथम तो पूजा करणेकी विधि लिखते हैं, १ पूजा करने वाला पू

कही है, तथा श्रावककोंजी उत्कृष्ट सात वार करणी कही है॥ यतभाष्यं॥ एक प्रतिक्रमणेमें, दूसरी मंदिरमें, तीसरी आहार करणसें पहिलां करणी, चौथी दिवसचरिम करतां, पांचमी देवसी पडिक्कमणेमें, छठी सोती व खत, सातमी सूता उठे, उस वखत यह सात वार चैत्यवंदन साधुकों करणी कही है, तथा जो श्रावक आठों प्रहरमें प्रतिक्रमण करता होवे, वोतो निश्चयें सात वार चैत्यवंदन करे, दो प्रतिक्रमणेमें दो चैत्यवंदन करे, तीसरी सोतां वखत, चौथी ऊठतां वखत, तथा तीन काल पूजा कर्यां पीछें, तीन वार, एवं सात वार श्रावक चैत्यवंदन करे, तथा जो श्रावक एकही वार पडिक्कमणां करे, सो छे वार चैत्यवंदन करे, तथा जो पडिक्कमणां न करे, सो पांच वार चैत्यवंदन करे, तथा जो सूतां ऊठतांजी चैत्यवंदन न करे, सो तीन वार करे, जे कर नगरमें बहुत जिनमंदिर होवे, तदा सातसे अधिक जी करे, तथा जे कर त्रिकाल पूजा न कर सके, तो त्रिकाल देववंदना करे, क्योंकि महानिशीथमें लिखा है, कि —जिसको गुरु प्रथम जैनमतकी श्रद्धा करावे, उसकों प्रथम ऐसा नियम देवे कि —सवेरेकी वखत जिन प्रतिमाका दर्शन करे विना पाणीजी नही पीनां, तथा मध्यान्ह कालमें जहां तक देव, (जिनप्रतिमा) अरु साधुओंको वंदना न करे, तहां तक जोजन क्रिया न करे, तथा संध्याके समय चैत्यवंदन करे विना शय्या उपर पग न देवे, ऐसा नियम करावे

तथा गीत, नृत्य, जो अग्रपूजामें कहे है, सो जावपूजामेंजी बन सके है सो गीत, नृत्य, मुख्यवृत्ति करिकें तो श्रावक आप करे, जेसें निशीथचूर्णीमें उदायनराजाकी राणी प्रजावतीका कथन है तथा पूजा करणेके अवसरमें श्रीअर्हंतकी तीन अवस्थाकी कल्पना करे, उसमें स्नान करती वखत छद्मस्थ अवस्थाकी कल्पना करे, तथा आठ प्रातिहार्यकी शोजा करतां केवली अवस्थाकी कल्पना करे, तथा पर्यंकासन कायोत्सर्गासन देखकें सिद्धावस्थाकी कल्पना करे, इसमें छद्मस्थ अवस्था तीन तरेंकी कल्पे, एक जन्मावस्था, दूसरी राज्यावस्था, तीसरी साधुपणेकी अवस्था तहां स्नानकी वखत जन्म अवस्था कल्पे, तथा माला, फूल, आजरण, पहिरानेकी वखत, राज्यावस्था कल्पे, तथा दाढी, मूछ, शिरके बालादि न देखनेसें साधु अवस्था विचारे, इनमें साधु, केवली मोक्ष अवस्थाकी वंदना क

तहां पूजा पंचोपचार सहित,अष्टोपचार सहित, अरु धनवान् होवे, तदा सर्वोपचारसें पूजा करे, तहां फूल, अक्षत, गंध, धूप अरु दीपसें पूजा करे, सो पंचोपचार पूजा जाननी. तथा फूल, अक्षत, गंध, दीप, धूप, नैवेद्य, फल अरु जल, यह अष्टोपचार पूजा है, सो अष्टविध कर्मकी मथने वाली है, तथा स्नात्र, विलेपन, वस्त्र, आभूषणादिक, फल, दीप, गीत, नाटक, आरति आदिक करे, सो सर्वोपचार पूजा है इति वृहद्भाष्ये॥

तथा पूजाके तीन भेद हैं एक आपही कायासें पूजाकी सामग्री ल्यावे, दूसरी वचनो करकें दूसरोसे मगवावे, तीसरी मन करके भला फूल फल प्रमुख करी पूजा करे, ऐसें काया, बचन अरु मन, यह तीनो योगों करकें करे, करावे अरु अनुमोदे, यह तीन तरेंसें पूजा है

तथा एक फल, दूसरा नैवेद्य, तीसरी स्तुइ, अरु चौथी प्रतिपत्ति, सो वीतरागकी आज्ञापालन रूप, यह चार प्रकारें पूजा, यथा शक्तिसें करे ललितविस्तरादिक ग्रथोमें "पुष्पामिषस्तोत्र प्रतिपत्ति" अर्थात् फूल, नैवेद्य, स्तोत्र, अरु आज्ञा आराधनीय, ये उत्तरोत्तर प्रधान हैं ॥ इत्यागमोक्त पूजाभेदचतुष्टयं ॥

तथा पूजा दो प्रकारकी है, एक द्रव्यपूजा, दूसरी भावपूजा, जो फूलादिकसें जिनराजकी पूजा करणी, सो द्रव्यपूजा है, दूसरी श्रीजिनेश्वरकी आज्ञा पालनी, सो भावपूजा है तथा पुष्पारोहण गधारोहण इत्यादि सत्तरह भेदसें तथा स्नात्रविलेपनादि एकवीश भेदें पूजा है, परंतु अगपूजा, अग्रपूजा अरु भावपूजा, यह तीनों पूजा, सर्व पूजायोंके अतर्भाव हैं, तिनमें सत्तरह भेद, पूजाके लिखते हैं

एक १ स्नात्र करनां, जिनप्रतिमाकों विलेपन करनां, २ चक्षुजोडा, वास सुगध, ३ फूल चढाने, ४ फूलकी माला चढानी, ५ पंच रंगें फूल चढाने, ६ वरास भीमसेनी प्रमुखका चूर्ण चढानां, ७ आभरण चढाने, ८ फूलोंका घर करनां, ९ फूलपगर सो फूलोंका ढेर करनां, १० आरति, मगल दीवा, ११ दीपकपूजा, १२ धूपोत्क्षेप, १३ नैवेद्य, १४ शुभफल ढोकन, १५ गीतपूजा, १६ नाटक करणां, १७ वाजंत्र यह सत्तरह भेदों करि पूजा है अथ पूजाके एकवीश भेद लिखते हैं

तहां प्रथम तो पूजा करणेकी विधि लिखते हैं, १ पूजा करने वाला पू

कही है, तथा श्रावककोंभी उत्कृष्ट सात वार करणी कही है ॥ यत्भाष्यं ॥ एक प्रतिक्रमणेमें, दूसरी मंदिरमें, तीसरी आहार करणसें पहिलां करणी, चौथी दिवसचरिम करता, पांचमी देवसी पडिक्कमणेमें, छठी सोती वखत,सातमी सूता उठे,उस वखत यह सात वार चैत्यवंदन साधुकों करणी कही है, तथा जो श्रावक आठों प्रहरमें प्रतिक्रमण करता होवे, वोतो निश्चयें सात वार चैत्यवंदन करे, दो प्रतिक्रमणेमें दो चैत्यवंदन करे, तीसरी सोता वखत, चौथी उठतां वखत, तथा तीन काल पूजा कस्यां पीछें, तीन वार, एवं सात वार श्रावक चैत्यवंदन करे,तथा जो श्रावक एकही वार पडिक्कमणां करे, सो छे वार चैत्यवंदन करे, तथा जो पडिक्कमणां न करे, सो पांच वार चैत्यवंदन करे, तथा जो सूतां उठतांभी चैत्यवंदन न करे, सो तीन वार करे, जे कर नगरमें बहुत जिनमंदिर होवे, तदा सातसे अधिक भी करे, तथा जे कर त्रिकाल पूजा न कर सके, तो त्रिकाल देववंदना करे, क्योंकि महानिशीथमें लिखा है, कि –जिसको गुरु प्रथम जैनमतकी श्रद्धा करावे, उसकों प्रथम ऐसा नियम देवे कि –सवेरेकी वखत जिन प्रतिमाका दर्शन करे विना पाणीभी नही पीनां, तथा मध्यान्ह कालमें जहां तक देव, (जिनप्रतिमा) अरु साधुओंको वंदना न करे, तहां तक भोजन क्रिया न करे, तथा संध्याके समय चैत्यवंदन करे विना शय्या उपर पग न देवे, ऐसा नियम करावे

तथा गीत, नृत्य, जो अग्रपूजामें कहे है, सो भावपूजामेंभी बन सके है सो गीत, नृत्य,मुख्यवृत्ति करिके तो श्रावक आप करे, जैसें निशीथचूर्णीमें उदायनराजाकी राणी प्रभावतीका कथन है तथा पूजा करणेके अवसरमें श्रीअर्हंतकी तीन अवस्थाकी कल्पना करे, उसमें स्नान करती वखत छद्मस्थ अवस्थाकी कल्पना करे, तथा आठ प्रातिहार्यकी रचना करतां केवली अवस्थाकी कल्पना करे, तथा पर्यंकासन कायोत्सर्गासन से उनके सिद्धावस्थाकी कल्पना करे, इसमें छद्मस्थ अवस्था तीन तरेंकी कल्प, एक जन्मावस्था, दूसरी राज्यावस्था, तीसरी साधुपणेकी अवस्था तहां स्नान करती वखत जन्म अवस्था कल्पे, तथा माला, छत्र, आभरण, पहिरावेती वखत, राज्यावस्था कल्प, तथा दाढी, मूछ, शिरके बालांके न दीखनेसें साधु अवस्था विचारे, इनने साधु, केवली मोक्ष अवस्थाकी स्तवना करे

निष्फल होवे । ३२ पद्मासन बैठकें, नासाग्र लोचन स्थापन करकें मौन धारी वस्त्रसें मुखकोश करके जिनराजकी पूजा करे

अथ इक्कीस प्रकारकी पूजाका नाम लिखते हैं १ स्नात्रपूजा, २ विलेपन पूजा, ३ आजरण पूजा, ४ फूल, ५ वासपूजा, ६ धूप, ७ प्रदीप, ८ फल, ९ अक्षत, १० नागरवेलके पान, ११ सोपारी, १२ नैवेद्य, १३ जलपूजा, १४ वस्त्रपूजा, १५ चामर, १६ छत्र, १७ वाजित्र, १८ गीत, १९ नाटिक, २० स्तुति, २१ नंडारवृद्धि यह एकवीश प्रकारकी पूजा है, जो वस्तु बहुत अछी होवे, सो जिनराजकी पूजामें चढानी चाहियें ॥ इति ॥ यह पूजा प्रकार, श्री उमास्वातिवाचककृत पूजाप्रकरणमें प्रसिद्ध है

तथा ईशानकूणमें देवघर बनाना, यह बात विवेकविलासमें है, तथा विषमासन बैठकें, पग उपर पग धरकें, उकडुआसन बैठकें, वामा पग उचा करकें तथा वामे हाथसें इतने करिकें पूजा न करे, सूके हूए फूलो सें पूजा न करे, तथा जो फूल धरतीमें गिरा होवे, तथा जिसकी पांखडी सड गइ होवे, नीच लोकोंका जिसकों स्पर्श हूआ होवे, जो शुन न होवे, जो विकसे हूए न होवे, जो कीडेने खाये हूए, सडे हूए, रातकों वासी रहे, मकडीके जाले वाले, जो देखनेमें अछा न लगे, दुर्गंधवाले, सुगधरहित, खट्टी गधवाले, मलमूत्रकी जगामें उत्पन्न हूये होवे, अपवित्र करे हूए, असें फूलोंसें जिनेश्वर देवकी पूजा न करणी तथा विस्तार सहित पूजाके अवसरमें, तथा नित्य, अरु विशेष करकें पर्वदिनमें, सात तथा पांच कुसुमांजलि चढावे, पीछें नगवान्‌की पूजा करे, तहां यह विधि करे, सो कहते है

प्रजात समय पहिलां निर्माल्य उतारे, पीछें प्रक्षाल करे, संक्षेपसें पूजा करे, आरति मंगल दीवा करे, पीछें स्नात्रादि विस्तार सहित दूसरी वार पूजाका प्रारंन करे, तब देवके आगें केसर जल संयुक्त कलश स्थापन करे, पीछें "मुक्तालंकार विका,र सार सौम्यत्वकांतिकमनीयं ॥ सहजनिज रूपनिर्जित, जगत्त्रयं पातु जिनबिंब ॥ १ ॥" यह आर्या कह कर अलंकार उतारे, पीछें "अवणयि कुसुमाहरणं, पयइ पइछिय मनोहर छाय ॥ जिणरूव मज्जणपीढ, सठियं वो सिव दिसउ ॥ १ ॥ यह कह कर निर्माल्य उतारे, पीछें प्रासुक कलश ढालन पूजा करे, कलश धो कर, धूप दे कर,

वैदिशकी तर्फ मुख करके स्नान करे, २ पश्चिम दिशकों मुख करके दातण करे,३ उत्तरदिशाके सन्मुख श्वेत वस्त्र पहिरे,४ पूर्वोत्तर मुख करके पूजा करे, ५ घरमें प्रवेश करतां वामे पासें शल्य रहित भूमिमें देहरासर करावे, ६ डेढ हाथ भूमिकासें ऊंचा देहरासर करावे, जेकर देहरासर नीची भूमिकामें करावे, तब तिसका संतान दिन दिन नीचा होता जावेगा, ७ दक्षिणदिशि तथा विदिशिके सन्मुख मुख न करे, ८ घर देहरेमें पश्चिम सन्मुख मुख करकें, पूजा करे, तो चौथी पेढीमें संतानोच्छेद होवे, ९ दक्षिण दिशिकी तर्फ मुख करी करे, तो संतान हीन होवे, १० अग्निकूणे करे, तो धन हानी होवे ११ वायुकूणे करे, तो संतान न होवे १२ नैकृत्यकूणे कुलक्षय होवे, १३ ईशानकूणे करे, तो एक जगे रहणां न होवे, १४ दोनो पग, दोनो जानु, दोनो हाथ, दोनो स्कंध, मस्तक, ये नव अंगमें क्रमसे पूजा करे, १५ चंदन विना पूजा नहीं होती है, १६ मस्तकमें, कंठमें, हृदयमें, पेटमें, तिलक करे १७ नव अंगमें, नव तिलक करकें निरंतर पूजा करे, १८ सवेरे पहिला वास पूजा करे, १९ मध्यान्हमें फूलोंसे पूजे, २० संध्याकों धूप, दीप, करके पूजा करे, २१ जो फूल, हाथसे धरतीमें गिर पडे, तथा पगोंकों लग जावे, तथा जो मस्तकसे ऊंचा चला जावे, तथा जो मैले वस्त्रसे रक्खा होवे, तथा जो नाभीसे नीचे रक्खा होवे, तथा जो दुष्ट जनोंनें स्पर्शा होवे, जो बहुत ठेकाणोंमें हत होवे, जो जीवोंने खाया होवे, ऐसा फूल, फल, भक्त जनोंने जिनपूजामें नही रखनां, २२ एक फूलके दो टुकडे न करे, २३ कलीकों छेदे नहीं, चंपक, उत्पल, फूलके भांगनेमें बडा दोष है, २४ गंध, धूप, अक्षत, फूलमाला, दीपक, नैवेद्य, पाणी, प्रधानफल, इनो करके जिनराजकी पूजा करे, २५ शांतिकार्यमें श्वेत वस्त्र पहिरके पूजा करे, २६ द्रव्यलाभके वास्ते पीत वस्त्र पहिरके पूजा करे, २७ शत्रु जीतने वास्ते काले वस्त्र पहिरके पूजा करे, २८ मांगलिकार्थ वास्ते लाल वस्त्र पहिरके पूजा करे, २९ मुक्तिके वास्ते पांच वर्णके वस्त्र पहिरके पूजा करे, ३० शांति कार्यके वास्ते पंचामृतका होम, दीवा, घी, गुड, लवणका अग्नि प्रक्षेप, शांति पुष्टिके वास्ते जानना, ३१ फाटा हूआ, बाला हूआ, छिद्र वाला, खटा हूआ, लिखा हुआ, काला, भयानक, ऐसे वस्त्र पहिरके दान, पूजा, तप, होम सामायिक प्रमुख करे तो

निष्फल होवे ।२१। पद्मासन बैठकें,नासाग्र लोचन स्थापन करकें मौन धारी वस्त्रसें मुखकोश करके जिनराजकी पूजा करे

अथ इक्कीस प्रकारकी पूजाका नाम लिखते है १ स्नात्रपूजा, २ विलेपन पूजा, ३ आजरए पूजा, ४ फूल, ५ वासपूजा, ६ धूप, ७ प्रदीप, ८ फल, ९ अक्षत, १० नागरवेलके पान, ११ सोपारी, १२ नैवेद्य, १३ जलपूजा. १४ वस्त्रपूजा, १५ चामर,१६ छत्र, १७ वाजित्र, १८ गीत, १९ नाटिक, २० स्तुति, २१ जन्मारवृद्धि यह एक्वीश प्रकारकी पूजा है,जो वस्तु बहुत अच्छी होवे, सो जिनराजकी पूजामें चढानी चाहियें ॥ इति॥ यह पूजा प्रकार, श्री उमास्वातिवाचककृत पूजाप्रकरणमें प्रसिद्ध है

तथा ईशानकूणमें देवघर बनाना, यह बात विवेकविलासमें है, तथा विषमासन बैठकें, पग उपर पग धरकें, उकडुआसन बैठकें, वामा पग उंचा करकें तथा वामे हाथसें इतने करिकें पूजा न करे, सूके हूए फूलो सें पूजा न करे, तथा जो फूल धरतीमें गिरा होवे, तथा जिसकी पांखडी सड गइ होवे, नीच लोकोंका जिसकों स्पर्श हूआ होवे, जो शुन न होवे, जो विकसे हूए न होवे, जो कीडेने खाये हूए, सडे हूए, रातकों वासी रहे, मकडीके जाले वाले, जो देखनेमें अछे न लगे, दुर्गंधवाले, सुगंधरहित, खट्टी गंधवाले, मलमूत्रकी जगामें उत्पन्न हूये होवे, अपवित्र करे हूए, असें फूलोंसें जिनेश्वर देवकी पूजा न करणी तथा विस्तार सहित पूजाके अवसरमें, तथा नित्य, अरु विशेष करकें पर्वदिनमें, सात तथा पांच कुसुमांजलि चढावे, पीछें नगवान्की पूजा करे, तहां यह विधि करे, सो कहते है

प्रनात समय पहिलां निर्माल्य उतारे, पीछें प्रक्षाल करे, संक्षेपसें पूजा करे, आरति मंगल दीवा करे, पीछें स्नात्रादि विस्तार सहित दूसरी वार पूजाका प्रारंन करे, तब देवके आगें केसर जल संयुक्त कलश स्थापन करे, पीछें "मुक्तालंकार विकार सार सौम्यत्वकांतिकमनीयं ॥ सहजनिजरूपनिर्जित, जगत्त्रयं पातु जिनबिंब ॥ १ ॥" यह आर्या कह कर अलंकार उतारे, पीछें " अवणयि कुसुमाहरण, पयइ पइछिय मनोहर छाय ॥ जिणरूव मज्जणपीढं, सठियं वो सिव दिसउ ॥ १ ॥ यह कह कर निर्माल्य उतारे, पीछें प्रासुक कलश ढालन पूजा करे, कलश धो कर, धूप दे कर,

स्नात्र योग्य सुगंध जल प्रक्षेप करे, पीछें कलश, श्रेणीबध स्थापन करे सो सुंदर वस्त्रसें ढक देने, पीछें साधारण केसर, चंदन, धूप करके हाथ पवित्र करे, मस्तकमें तिलक, हाथमें चंदनका कंकण करे, हाथ धूपन करकें श्रेणीबध स्नात्री श्रावक कुसुमांजलिका पाठ पढे, तिस कुसुमांजलिकी गाथा लिखते हैं "सयवत्त कुंद मालइ, बहुविह कुसुमाइ पंचवन्नाइ ॥ जिणनाह न्हवण काले, दिंति सुरा कुसुमांजलि हिठा ॥ १ ॥ यह कह कर देवके मस्तक उपर पुष्पारोपण करे ॥ गाथा ॥ गंधायड्डिय महुयर, मणहर जंकार सह संगीआ ॥ जिणचलणोवरि मुक्का,हरउ तुम्ह कुसुमांजलि डुरियं ॥ १ ॥ इत्यादि पाठ करकें जिन चरणों उपरि एक श्रावक कुसुमांजलि चढावे, सर्व कुसुमांजलिके पाठोमें तिलक करणां, फूल, पत्र, धूपादि सर्व, एकत्र करी चढावे, पीछें उदार मधुर स्वर करकें जिस जिनेश्वरका नाम स्थापना करा होवे, तिसही जिनेश्वरका जन्माभिषेक कलशका पाठ कहनां, पीछें घी, इक्षुरस, दूध, दहीं, सुगंधजल, ये पंचामृत करी स्नात्र करावे, स्नात्रके वीचमें धूप देवे, स्नात्रकालमेंजी जिनराजका शरीर फूलों करकें शून्य न करणा, यदाहुर्वादिवेतालश्रीशांतिसूरयश्राचार्या ॥ जहां तक स्नात्र समाप्ति न होवे, तहां तक जगवान्का मस्तक शून्य न रखना, निरंतर पाणीकी धारा अरु उत्तम फूलोंकी वृष्टि जगवान्के मस्तक उपर गेरे, तथा स्नात्र करती वखत चामर, संगीत, तूर्यायाम्बर सर्व, शक्तिसे करे

सर्व श्रावक, जब स्नात्र कर चुके, पीछें निर्मल जलकी धारा देनी, तिसका पाठ यह है ॥ श्लोक ॥ अनिषेकतोयधारा, धारेव ध्यानमंडलाग्रस्य ॥ जवजवननिजित्तागान्, जूयोपि जिन्नत्तु जागवती ॥ १ ॥ पीछें अंग लूहे, विलेपनादि पूजा पहली पूजासें अधिक करणी, सर्व प्रकारका धान्य, पकान्न, शाक, विकृतिफलादि, करके नैवेद्य ढोवे, ज्ञानादि तीना रत्नित्त तीन लोकके स्वामी जगवान्के आगे तीन पुंज जक्त जन श्रावक करके पीछें स्नात्रपूजा करे, पहिलां वडा श्रावक तीन पुंज करे, पीछें छोटा श्रावक करे, पीछें श्राविका करे, यपाकि जिनजन्ममहोत्सवमें पहिला अच्युतेंद्र अपणे देवता सयुक्त स्नात्र करता है, पीछें यथाक्रमसें इतर ६३ स्नात्र करते हैं स्नात्र जल अपणे मस्तकमें जे कर श्रावक ग्रहण करे, तो दोष नहीं ॥ यदुक्तं ॥ श्रीहेमचंद्राचार्यैः श्रीवीरचरित्रे ॥ अनिषेकज

रोरगा ॥ ववदिरें मुहुमुहु, सर्वांगं परिचिक्षिपु ॥ १ ॥ तथा श्रीपद्मचरित्रे एकुण तीसमें उद्देसेमें राजा दशरथने अपणी राणीयोंकों स्नात्रजल भेज्या है, तथा वृहद्शांतिस्तोत्रमें "शांतिपानीय मस्तके दातव्यमित्युक्त" तथा सुणते हैं कि जरासधने जब जरा विद्या छोडी, तब तिस करकें पीडित निज सेनाकों देखके श्रीनेमिनाथके कहनेसें श्रीकृष्णने धरणेंद्रकों आराध्या, धरणेंद्रने पातालमें रही श्रीपार्श्वप्रतिमा शखेश्वरपुरमें ल्या करकें तिसके स्नात्रका जल, छिकेके सेना सचेत करी, तथा श्रीजिनदेशनाके पीछें राजा प्रमुख जो चावलोंकी बली उछालते है, तिसमेंसें आधे चावल धरतीमें अणपडे देवता ले लेते हैं, तिसका अर्द्ध, उछालने वाला लेता है, अरु बाकीका चावल सर्व लोक लूट लेते हैं, उसमेंसें एक दाणाभी जे कर मस्तकमें रखे,तो सर्व रोग उपशांत हो जावे हैं,अरु छ महीने आगेकों रोग न होवे, यह कथन आवश्यक शास्त्रमें है पीछे सद्गुरुकी प्रतिष्ठी हुइ बहुत सुदर हीरागल प्रमुख वस्त्रकी मोटी ध्वजा,वडे उत्सव पूर्वक तीनादि प्रदक्षिणा करकें विधिसें देवे, सर्व सघ यथाशक्ति परिधापनका नैवेद्यप्रमुख चढावे

अथ आरति, मगलदीवा श्रीअरिहंतजीके सन्मुख करनां, सो लिखते हैं मगलदीवेके पास अग्निका पात्र स्थापन करना, तिसमें लवण जल गेरनां होवेगा, "उवणेउ मगल वो, जिणाणमुह लालि जाल सचलिआ ॥ तित्थ पवत्तण समए, तियसवि व मुक्का कुसुम वुट्ठी ॥ १ ॥" यह पढ कर प्रथम कुसुमवृष्टि करे ॥ गाथा ॥ उअह पडिभग्गपसर, पयाहिण मुणिवई करेउण ॥ पडइस लोणत्तण, लज्जिअ च लोण हु अवहमि ॥ इत्यादि पाठसें विधिपूर्वक जिनराजके तीन वार फूल सहित लवणजल उतारणादि करणां, तिस पीछें अनुक्रमें पूजा करके आरार्त्तिक धूपोपक्षेप सहित दोनों पासें अत्यंत कलशके पाणीकी धारा देते हूए श्रावक फूलोंकों विखेरे, "मरगय मणि घडिय विसा,ल थालमाणिक्क मंडिअ पईव॥ नवणयर करु खित्त,भमउ जिणारत्तिअ तुम्ह ॥१॥ इत्यादि पाठ पूर्वक प्रधान भाजनमें रखकें उत्सव सहित तीन वार उतारे, यह कहनां, त्रेशठ शिलाका चरित्रादिकमें है, मगलदीपकभी आरतिकी तरें पूजे, तव यह पाठ पढे ॥ गाथा ॥भामिज्जतो सुरा, सुरिहिं तुहनाह मगलपईवो ॥ कणयायलस्स नजई, भाणुव्व पयाहिण दिंतो ॥१॥ इति॥ यह पाठ पूर्वक मगलदीवा उतारकें, दीप्यमान जिन

चरणोंके आगें रख देनां, आरति बूजा वेनेमें दोष नहीं, आरति अरु मंगल दीवा मुख्यवृत्तिसें घृत, गुड, कर्पूरादिकसे करे, विशेष फल होनेसें यहां मुक्तालंकार इत्यादि जो गाथा है, सो श्रीहरिनद्रसूरिजीकी करी हूइ मालुम होती है, क्योंकि श्रीहरिनद्रसूरिकृत समरादित्यचरित्र नामक ग्रंथकी आदिमें "उवणेउ मंगलंवो ॥ इति नमस्कारस्य दर्शनात्" अरु यह गाथा तपगच्छमें प्रसिद्ध है इस वास्ते सर्व गाथा इहा नही लिखी

स्नात्रादिकमें समाचारि विशेषसें विविध प्रकारकी विधि देखनेसें व्यामोह न करणां, क्योंकि सर्व आचार्योंकों अर्हद्भक्तिरूप फलकी सिद्धि वास्तेही प्रवृत्त होनेसें गणधरादि समाचारीयोमेंनी बहुत नेद होता है, तिस वास्ते जो जो धर्मसें विरुद्ध न होवे, अरु अर्हत नक्तिका पोषक होवे, वो कार्य किसीकोंनी असम्मत नहीं, ऐसेही सर्वधर्म कार्यमें जाण लेनां यहां लवण, आरति प्रमुखका उतारणां, सप्रदायसे सर्व गच्छोंमें अरु परदर्शनोमेंनी करते हुवे दीखते हैं, तथा श्रीजिनप्रनसूरिकृत पूजाविधिशास्त्रमें तो ऐसे लिखा है ॥ गाथा ॥ लवणाई उत्तारण,पालित्तय सूरिमाइ पुवपुरिसेहि ॥ संहारेण अणुन्नयपि, सपयं सिठी एकारिज्जई ॥ १ ॥ अस्यार्थ – लवणादि उतारणां श्रीपादलिप्तसूरि प्रमुख पूर्व पुरुषोंने एक वार करनेकी आज्ञा दीनी है, हम इसकालमें उनके अनुसारे कराते है. स्नात्रके करणेमें सर्व प्रकार विस्तार सहित पूजा प्रनावनादिकके करणेसें परलोकमें उत्कृष्ट मोक्ष प्राप्तिरूप फल होता है, जैसें चौसठ इंद्रोने जिनजन्मस्नात्र करा है, तिसहीके अनुसारें मनुष्य करते है, इस वास्ते इस लोकमें पुण्य निर्जरा अरु परलोकमें मोक्ष फल होता है, यह कथन राजप्रश्नीय उपांगम लिखा है ॥ इति स्नात्रविधि समाप्त ॥

अब प्रतिमानी अनेक प्रकारकी है, तिनकी पूजाकी विधि सम्यक्त्व प्रकरणमें ऐसें कही है ॥ गाथा ॥ गुरु कारियाइ केइ, अन्नेसय कारियाइ तं बिंति ॥ विहिकारियाइ अन्न,पडिमाए पूयणविहाण ॥ १ ॥ व्याख्या – गुरु कहियें माता, पिता, दादा, पडदादा प्रमुख तिनकी कराइ हूइ प्रतिमा पूजनी चाहिये कोइ अैसे कहते है, तथा कोइ कहते है कि अपनी कराइ प्रतिमा हूइ पूजनी चाहिये, कोइ कहते है कि विधिसें कराइ प्रतिमा प्रतिमा पूजनी चाहियें, इसमें यथार्थ पक्ष तो यह है, कि – ममत्व रहि

त सर्वप्रतिमाकों विशेष रहित पूजना चाहियें, क्योंकि सर्व जगे तीर्थंकर का आकार देखनेंसें तीर्थंकर बुद्धि उत्पन्न होती है, जे कर असें न मानीयें, तब जिनबिंबकी अवज्ञासें डुरंत संसारमें भ्रमण रूप उसकों निश्चयही दंम होवेगा

तथा असाजी कुविकल्प न करणां कि – जो अविधिसें जिनमंदिर जिनप्रतिमा बनी है, उसके पूजनेसें अविधि मार्गकी अनुमोदनासें जगवतकी आज्ञाजंग रूप दूषण लगता है,तथाहि श्रीकल्पजाष्ये ॥ गाथा ॥ निस्सकड मनिस्सकडे, चेइए सव्वहि थुइतिन्नि ॥ वेलं च चेईआणिय, नाउं इक्कि किया वावि ॥ १ ॥ व्याख्या – एक निश्राकृत उसकों कहते हैं, कि – जो गछके प्रतिबंधसे बनी है, जैसाकि यह हमारे गछका मंदिर है, दूसरा अनिश्राकृत, सो जिस उपर किसी गछका प्रतिबंध नहीं है, इन सर्व जिनमंदिरोंमें तीन थुइ पढनी, जे कर सर्वमंदिरोंमें तीन तीन थुइ देता बहुत काल लगता जाणे, तथा जिनमंदिर बहुत होवें, तदा एक एक जिनमंदिरोंमें एक एक थुइ पढे,इस वास्ते सर्व जैनमंदिरोंमें विशेष रहित जक्ति करे

तथा जिनमंदिरमें मकडीका जाला लग जावे, तिसके उतारनेकी विधि, जिनके सपुर्द जिनमंदिर होवे, तिनकों साधु निर्भ्रंठना करे, कि –जिनमंदिरकी नोकरी खाते हो, तो सार संजाल क्यों नहीं करते हो? मकडीका जालाजी तुम नहीं उतारते हो? तथा जिनकी कोइ सार संजाल न करे, तिनको असंविग्न देवकुलिका कहते है, तिन मंदिरोंमें जो मकडीका जाला होवे, तिसके दूर करणे वास्ते सेवकोंकों प्रेरणा करे, कि तुम जिनमंदिरकों मखफलककी तरें चमक दमक वाला रक्खो, जेकर वे सेवक लोक न माने, तब निर्भ्रंठना करे, पीछे साधु जयणासें आप दूर करे, क्योंकि जिनमंदिर ज्ञानजंमारादिकको सर्वथा साधुजी उपेक्षा न करे, यह पूर्वोक्त चैत्यगमन पूजा स्नात्रादि विधि जो कही है, सो सब धनवान् श्रावककी अपेक्षा कही है, अरु जो श्रावक धनवान् न होवे, वो अपणे घरमें सामायिक करकें किसीके साथ लेणे देणेका जगडा न होवे, तद्उपयोग संयुक्त साधुकी तरें ईर्या शोधता हूआ नैषेधिकी तीन करी जाव पूजानुयायि विधिसें जावे, पूजादि सामग्रीके अजावसें इव्यपूजा करणे असमर्थ है, इस वास्ते सामायिक पारकें कायासें जो कुछ फूलगुथनादिक कृत होवे सो करे

प्रश्न — सामायिक त्यागके द्रव्यपूजा करणी उचित नहीं?

उत्तर — सामायिक तो तिसके स्वाधीन है, चाहे जिस वखत कर लेवे, परंतु पूजाका योग उसकों मिलना दुर्लभ है, क्योंकि पूजाका मंडाण तो संघ समुदायके आधीन है, कदेइ होता है, इस वास्ते पूजामें विशेष पुण्य है ॥ यदागम ॥ "जीवाण बोहि लाभो, सम्मद्दिट्ठीण होइ पियकरणं ॥ आणाजिणिंदभत्ती, तित्थस्स पभावणा चेव ॥ १ ॥ इस वास्ते अनेक गुण हैं, तातें चैत्यकार्य करे, यह कथन दिनकृत्य सूत्रमें है, दश त्रिक, पांच अभिगम, इत्यादिविधि प्रधानही सर्वदेवपूजा वंदनकादि धर्मानुष्ठानका महा फल होता है, अन्यथा अल्प फल है, तथा अविधिसें करता उपद्रवभी हो जाता है ॥ उक्तं च ॥ धर्मानुष्ठानवैतथ्या, त्प्रत्यवायो महान् भवेत् ॥ रौद्र दुःखौघजननो, दुष्प्रयुक्तादिवौषधात् ॥ १ ॥ चैत्यवंदनादि अविधिसे करतां आगममें प्रायश्चित्त कह्या है, महानिशीथके सातमे अध्ययनमें अविधिसे चैत्यवंदना करे, तो प्रायश्चित्त कह्या है, देवता, विद्या मंत्रभी विधिसेंही सिद्ध होते है

जो कोइ कहे कि विधि न होवे, तब न करणा श्रेष्ठ है? यह कहना अयुक्त है ॥ यदुक्त ॥ अविहिकया वरमकयं, असूया वयणं भणंति समयन्नू ॥ पायच्छित्तं अकए, गुरुअं वितहं कए लहुयं ॥ १ ॥ अस्यार्थ — अविधि करणेसें न करणा अच्छा है, ऐसें जो कहते है, सो असूया वचन है, यह कहने वाला जैन सिद्धांतको जानता नहीं, क्योंकि जैनशास्त्रके ज्ञाता तो ऐसें कहते है, कि — जो न करे, उसको गुरु प्रायश्चित्त आता है, अरु जो अविधिसें करे, उसको लघु प्रायश्चित्त आता है, इस वास्ते धर्म जरूर करना चाहिये और विधिमार्गकी अन्वेषणा करणी, यही तत्त्व है, यही श्रद्धावंतका लक्षण है, सर्व कृत्य करके अविधि आशातना निमित्त मिथ्यादुष्कृत दातव्य ॥

अंग अग्रादि तीनों पूजाके फल, शास्त्रमें ऐसें लिखे हैं, कि — विघ्न उपशांत करणेवाली अंग पूजा है, तथा महा अभ्युदय पुण्यका साधन वाली अग्रपूजा है, तथा मोक्षकी दाता भावपूजा है, पूजा करते हुआ संसार प्रधान नाम नामक पाठ सिद्धकर पाता है, क्योंकि पूजा करतेंभ

मन शांत होता है, अरु मन शांतसें उत्तम शुन ध्यान होता है, अरु शु नध्यानसें मोक्ष होता है, मोक्ष हूए अबाध सुख है

तथा श्रीजिनराजकी नक्ति पांच प्रकारें है ॥ श्लोक ॥ पुष्पाद्यर्चा तदाज्ञा च, तद्द्रव्यपरिरक्षण ॥ उत्सवास्तीर्थयात्रा च, नक्ति पञ्चविधा जिने ॥ १ ॥ द्रव्यपूजा आनोग अरु अनानोगसें दो प्रकारें है, तिसमें श्रीवीतराग देवके गुण जानकें वीतरागकी नावना करकें आदर सयुक्त जिनप्रतिमाकी जो पूजा, सो प्रथम आनोगद्रव्यपूजा है, इस्सें चारित्रका लान होता है, कर्मका नाश होता है, इस वास्ते बुद्धिमान् अैसी पूजा अवश्य करे तथा जो पूजाकी विधि जानता नही तथा श्रीजिनराजके गुणनी नहीं जानता सो दूसरी अनानोग पूजा है यह शुनपरिणाम पुण्यका कारण है, अरु बो धिलानका हेतु है, पापक्षय करणेका कारण है, उस पुरुषका जन्म धन्य है, आगमे कालमें उसका कल्याण है, क्योंकि यद्यपि वो वीतरागके गुण नहींनी जानता, तोनी नक्ति प्रीतिका उल्लास उसके अंदर उछलता है, अरु जिस पुरुषकों अरिहंतबिंबमें द्वेष है, वो पुरुष नारीकर्मी तथा नवा निनंदी है, जैसें रोगीकों अपथ्यमें रुचि अरु पथ्यमें द्वेष होवे, तदा मरणका समय होता है, अैसेंही जिनबिंबमें जिसकों द्वेष है, तिसकानी दीर्घ ससार जानना

इहां सर्वे जो नावपूजा है, सो श्रीजिनाज्ञाका पालनां है, सो जिनाज्ञा दो प्रकारकी है, एक अंगीकार करणां, एक त्यागनां, तहां सुकृतका अंगीकार करणां, अरु निषेधका त्याग करनां, परतु स्वीकार पक्षसें परिहार पक्ष बहुत श्रेष्ठ है, क्योंकि जो निषिद्ध आचरण करता है, उसका सुकृत नी बहुत गुणदायक नहीं होता है, जेकर दोनों बातां होवे, तदा पूर्ण फल है, द्रव्यपूजाका फल अच्युत देवलोक है, अरु नाव पूजाका फल अंतर्मुहूर्त्तमें मोक्ष है

द्रव्यपूजामें यद्यपि षट्कायकी किंचित् विराधना होती है, तोनी कूवेके दृष्टांत करकें गृहस्थकों करणे योग्य है, क्योंकि करनेवाले अरु देखनेवालोंकों गिणती रहित पुण्यबंधनेका कारण होनेसें करने योग्य है,जैसें नवे गाममें स्नान पानादिके वास्ते लोक कूवा खोदते हैं, तिनकों प्यास, श्रम, अरु कीचडसें मलिनादि होते हैं, परंतु कूवेके जल निकलनेसें तिनकी तथा

प्रश्न — सामायिक त्यागके द्रव्यपूजा करणी उचित नहीं?

उत्तर — सामायिक तो तिसके स्वाधीन है, चाहे जिस वखत कर लेवे, परंतु पूजाका योग उसकों मिलना दुर्लभ है, क्योंकि पूजाका ममाण तो सघ समुदायके आधीन है, कदेइ होता है, इस वास्ते पूजामें विशेष पुण्य है ॥ यदागम ॥ "जीवाण बोहि लाभो, सम्मद्दिठीण होइ पिअकरण ॥ आणाजिणिदभत्ति, तिछस्स पभावणा चेव ॥ १ ॥ इस वास्ते अनेक गुण हैं, तातें चैत्यकार्य करे, यह कथन दिनकृत्य सूत्रमें है, दश त्रिक, पांच अभिगम, इत्यादिविधि प्रधानही सर्वदेवपूजा वदनकादि धर्मानुष्ठानका महा फल होता है, अन्यथा अल्प फल है, तथा अविधिसें करता उपद्रवनी हो जाता है ॥ उक्तं च ॥ धर्मानुष्ठानवैतथ्या, त्प्रत्यवायो महान् नवेत् ॥ रौद्र दुःखौघजननो, दुष्प्रयुक्तादिवौषधात् ॥ १ ॥ चैत्यवदनादि अविधिसें करतां आगममें प्रायश्चित्त कहा है, महानिशीथके सातमे अध्ययनमें अविधिसें चैत्यवदना करे, तो प्रायश्चित्त कहा है, देवता, विद्या मत्रनी विधिसेंही सिद्ध होते है

जो कोइ कहे कि विधि न होवे, तब न करणा श्रेष्ठ है? यह कहना अयुक्त है ॥ यदुक्त ॥ अविहिकया वरमकयं, असूआ वयण नणंति समयन्नू ॥ पायछित्त अकए, गुरुअं वितहं कए लहुय ॥ १ ॥ अस्यार्थ — अविधि करणेसे न करणा अच्छा है, असें जो कहते है, सो असूया वचन है, यह कहने वाला जैन सिद्धांतको जानता नहीं, क्योंकि जैनशास्त्रके ज्ञाता तो ऐसे कहते है, कि — जो न करे, उसकों गुरु प्रायश्चित्त आता है, अरु जो अविधिसें करे, उसको लघु प्रायश्चित्त आता है, इस वास्ते धर्म जरूर करना चाहिये. अरु विधिमार्गकी अन्वेषणा करणी, यही तत्त्व है, यही श्रद्धावतका लक्षण है, सर्व कृत्य करके अविधि आशातना निमित्त मिथ्यादुष्कृत दातव्यं ॥

अब अग्रादि तीनों पूजाके फल, शास्त्रमें ऐसे लिखे है, कि — विघ्न उपशांत करणेवाली अंग पूजा है, तथा महा अभ्युदय पुण्यकी साधने वाली अग्रपूजा है, तथा मोक्षकी दाता भावपूजा है, पूजा करने वाला संसार उपरांत नाम नामक पाठ सिद्धपद पाता है, क्योंकि पूजा करनेसें

मन शात होता है, अरु मन शांतसें उत्तम शुन ध्यान होता है, अरु शु नध्यानसें मोक्ष होता है, मोक्ष हूए अबाध सुख है.

तथा श्रीजिनराजकी नक्ति पांच प्रकारें है ॥ श्लोक ॥ पुष्पाद्यर्चा तदाज्ञा च, तद्रव्यपरिरक्षण ॥ उत्सवास्तीर्थयात्रा च, नक्ति पचविधा जिने ॥ १ ॥ इव्यपूजा आनोग अरु अनानोगसें दो प्रकारें है, तिसमें श्रीवीतराग देवके गुण जानकें वीतरागकी नावना करकें आदर सयुक्त जिनप्रतिमाकी जो पूजा, सो प्रथम आनोगइव्यपूजा है, इस्सें चारित्रका लान होता है, क र्मका नाश होता है, इस वास्ते बुद्धिमान् ऐसी पूजा अवश्य करे तथा जो पूजाकी विधि जानता नही तथा श्रीजिनराजके गुणनी नहीं जानता सो दूसरी अनानोग पूजा है यह शुनपरिणाम पुण्यका कारण है, अरु बो धिलानका हेतु है, पापक्षय करणेका कारण है, उस पुरुषका जन्म धन्य है, आगमे कालमें उसका कल्याण है, क्योंकि यद्यपि वो वीतरागके गुण नहींनी जानता, तोनी नक्ति प्रीतिका उल्लास उसके अदर उछलता है, अरु जिस पुरुषकों अरिहतबिंबमें द्वेष है, वो पुरुष नारीकर्मी तथा नवा निनदी है, जैसें रोगीकों अपथ्यमें रुचि अरु पथ्यमें द्वेष होवे, तदा मर णका समय होता है, ऐसेंही जिनबिंबमें जिसकों द्वेष है, तिसकानी दीर्घ ससार जाननां

इहां सर्व जो नावपूजा है, सो श्रीजिनाज्ञाका पालनां है, सो जिना ज्ञा दो प्रकारकी है, एक अगीकार करणां, एक त्यागनां, तहां सुकृतका अगीकार करणां, अरु निषेधका त्याग करनां, परतु स्वीकार पक्षसें परिहार पक्ष बहुत श्रेष्ठ है, क्योंकि जो निषिद्ध आचरण करता है, उसका सुकृत नी बहुत गुणदायक नहीं होता है, जेकर दोनों वातां होवे, तदा पूर्ण फल है, इव्यपूजाका फल अच्युत देवलोक है, अरु नाव पूजाका फल अतर्मुहूर्त्तमें मोक्ष है

इव्यपूजामें यद्यपि षट्कायकी किंचित् विराधना होती है, तोनी कूवेके दृ ष्टांत करकें गृहस्थकों करणे योग्य है, क्योंकि करनेवाले अरु देखनेवालोंकों गिणती रहित पुण्यबधनेका कारण होनेसें करने योग्य है,जैसें नवे गाममें स्नान पानादिके वास्ते लोक कूवा खोदते हैं, तिनकों प्यास, श्रम, अरु कीचडसें मलिनादि होते हैं, परतु कूवेके जल निकलनेसें तिनकी तथा

औरोंकी तृषादि, पूराणा मैल, सर्व अगला पिछला दूर हो जाता है, और सर्वांगीण सुख हो जाता है, ऐसेंही द्रव्य पूजामें जान लेनां, यह कथन आवश्यक निर्युक्तिमें है, तथा और जग्गेभी लिखा है॥ गाथा॥ आरंभ पसत्ताण, गिहीणछ जीव वह अविरयाणं॥ भवअडवि निवडियाण, दव्वत्थं चेव आलंबो ॥ १ ॥ श्लोक ॥ वृत्त शार्दूलविक्रीडितं ॥ स्येयोवायुबलेन निर्वृति कर निर्वाणनिर्घातिना, स्वायत्तं बहुनायकेन सुबहुस्वल्पेन सारं परं ॥ निःसारेण धनेन पुण्यममलंकृत्वा जिनाभ्यर्चनं, योगृह्णाति वणिक् स एव निपुणो वाणिज्यकर्मण्यलम् ॥ १ ॥ यास्याम्यायतनं जिनस्य लभते, ध्यायंश्चतुर्थं फलं, षष्ठं चोत्थितउद्यतोऽष्टममथो गंतुं प्रवृत्तोऽध्वनि ॥ श्रद्धालुर्दशमं ब हिर्जिनगृहात्प्राप्तस्ततो द्वादशं, मध्ये पाक्षिकमीक्षिते जिनपतौ, मासोपवासं फलम् ॥ २ ॥ पद्मचरित्रमें तो ऐसें लिखा है, कि १ जब जिनमंदिरमें जानेका मन करे, तब एक उपवासका फल होता है, २ यदि उठे, तो बेलाका फल होता है, ३ चल पडनेका उद्यमीकों तेलेका फल होता है, ४ चल पडे, इनकू चौलेका फल, ५ किंचित् गयेकू पंचोलेका फल, ६ अर्द्ध मार्गमें गये एक पक्षके उपवासका फल होता है, ७ जिनराजके देखनेसें एक मासके तपका फल होता है, ८ जिनभुवनमें संप्राप्त हूए छमासी तपका फल होता है, ९ जिनमंदिरके दरवाजे पर स्थित हूआ एक वर्षके तपका फल होता है, १० जिनराजकों प्रदक्षिणा दीयां सौ वर्षके तपका फल होता है. ११ पूजा करे हजार वर्षके तपका फल होता है, १२ स्तुति करे, अनंतगुणा फल होता है, १३ जिनमंदिर पूजे, सौ गुणा पुण्य होता है, १४ लींपे, तो हजार गुणा पुण्य होता है, १५ फूलमाला चढाये, लाख गुणा पुण्य होता है, १६ गीत वाजित्र पूजा करे, अनंतगुणा पुण्य होता है.

पूजा दिनप्रत्ये तीन संध्यामें करणी चाहियें॥ यत ॥ जिनस्य पूजनं हंति, प्रातः पापं निशाभवं ॥ आजन्मविहितं मध्ये, सप्तजन्मकृतं निशि ॥ १ ॥ जलाहारौषधस्वाप, विद्योत्सर्गकृषिक्रिया ॥ सत्फला स्वस्वकालेषु, एवं पूजा जिनेश्वरे ॥ २ ॥ गाथा ॥ जिण पूयाण तिसंझं, कुणमाणो सोहए य सम्मत्तं ॥ तित्थयरनाम गोत्तं, पावइ सेणीय नरिंदुव्व ॥ १ ॥ जो पूएइ तिसंझं, जिणिंदरायं तया विगयदोसं ॥ सो तईय भवे सिज्झइ, अहवा सत्तट्ठमे ॥

म्मे ॥ २ ॥ सव्वायरेण नयव, पूईज्जतोवि देवनाहेहिं ॥ नो होइ पूइउं खलु, जम्हाण त गुणो नयव ॥ ३ ॥ यह गाथा सुगम हैं

तथा देव पूजादिकमें हृदयमें बहुमान अछी विधिसें नक्ति करे, तथा जिनमतमें चार प्रकारका अनुष्ठान कहा है, एक प्रीतिसहित, दूसरा नक्ति सहित, तीसरा वचन प्रधान, अरु चौथा असग अनुष्ठान, तिनमें जिसके प्रीतिका रस बढे, अरु रुज्जु नद्दक स्वनाव वाला होवे, जैसे बालकोंकों रतनमें देखके प्रीति होती है, अैसी जिसकों प्रीति होवे, सो प्रीति अनुष्ठान है, तथा बहुमान सयुक्त शुद्ध विवेकवाला होवे, अरु बाकी शेष पहिले अनुष्ठानको तरे करें, सो नक्ति अनुष्ठान है, यद्यपि स्त्रीका अरु माताका पालणां, पोषणां, सरीखा है, तोनी स्त्री उपर प्रीति राग हैं, अरु माता उपर नक्तिराग है, यह प्रीति अरु नक्तिका स्वरूप कह्या, तथा जो जिनगुणका जानकार, सूत्रोक्तविधि करकें जिनप्रतिमाकों वदना करे,सो वचनानुष्ठान है,यह अनुष्ठान चारित्रवतको निश्चय करकें होता है, तथा जो अन्यासके रससें सूत्रालोचना विनाही फलमें निस्पृह हो कर करे, सो असगानुष्ठान है जैसे कुनार चक्रकों पहिलां तो दमसे फिराता है, पीछेसें दम दूर करे, तोनी चाक फिरता है, यह दृष्टांत, वचनानुष्ठान अरु असगानुष्ठानमें है

इन चारोंमें प्रथम तो नावनाके लेशसें प्राय बालक प्रमुखोंकों होता है, आगें अधिक अधिक जान लेना यह चारों प्रकारका अनुष्ठान बहुमान विधिसयुक्त करे, तो रूपइयानी खरा अरु खरे सन समान, प्रथम नेद है दूसरा जो पुरुष, नक्तिराग बहुमान सयुक्त होवे, अरु विधि जानता न होवे, तिसका कृत्य एकांत डुष्ट नहीं, अशठ पुरुषका अनुष्ठान अतिचार सहितनी शुद्धिका कारण है, क्योंकि जो रतन अदरसे निर्मल है, उसका बाह्यमल सुखें दूर हो सकता है, यह रूपइया खरा,अरु सिक्का खोटा समान, दूसरा नेद है, तथा जो पुरुष, कपट जूगदि दोष सयुक्त है, अरु अपणी महिमा पूजाके वास्ते तथा लोकोंके ठगने वास्ते विधिपूर्वक सर्वानुष्ठान करता है, उसको वडा अनर्थ फल होता है, यह रुपइया खोटा, अरु सन खरा समान, तीसरा नेद जाननां तथा अज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीवका जो कृत्य है, सो तो रुपइयानी खोटा, अरु सननी खोटा समान, चौ

थाजेद है इस वास्ते जो देवपूजादिक करणेको बहुमान अरु विधिपूर्वक करे, उसकों संपूर्ण फल होता है

तथा उचित चिंता सो मंदिरप्रमार्जन करनां जिस जगेंसें मंदिर गिर कर बिगड गया होवे, उसका समराना, प्रतिमा प्रतिमाके परिवारकों निर्मल करणा, विशिष्ट पूजा दीपोत्सव फूल प्रमुखकी शोभा करणां, तथा आगें लिखेंगे जो आशातना सो सर्व वर्जनां, तथा अक्षत नैवेद्यादि चिंता, चंदन, केशर, धूप, दीप, तेलका संग्रह करे, विनाश न होवे, असी रीतिसे चैत्यद्रव्यकी रक्षा करे, तीन चारादि श्रावकके सामने देवद्रव्यकी उघराणी करे, देवद्रव्यकों बहुत यत्नसें अच्छी जगे स्थापन करे, देवद्रव्यके लाभ अरु खरचका नाम प्रगट पणे लिखे, आप तथा औरोंसें देवद्रव्य देवे, देवावे, देव द्रव्य किसी पासों लेहणा होवे, तहां देवके नौकरकों भेज कर जिसी रीतिसे देवद्रव्य जाय नहीं, तैसे करे,उघराणी वास्ते नौकर रखे, इसी तरे द्रव्यकी चिंता सार संभाल करे

देहरा प्रमुखकी चिंता अनेक तरेकी है, तिनमें धनाढ्यको धनसे, तथा स्वजनके बलसे, चिंता सुकर है अरु धन रहितको अपणे शरीर तथा स्वजनके बलसे साध्य है, जिसका जहां जैसा बल होवे, वो विशेष तेसा यत्न करे, जो चिंता थोडे कालमें हो सके तिसकों दूसरी निस्सही से पहिलां करे, शेषको यथायोग्य पीछे करे, असेंही धर्मशाला, गुरुज्ञानादि ककीभी यथोचित सर्व शक्तिसे चिंता करे, क्योंकि देव गुरु आदिककी सार संभाल श्रावक विना और कोइ करनें वाला नहीं, इस वास्ते श्रावकको देवादि भक्ति सार संभालमें शिथिल नहीनां चाहिये, देव गुरु प्रमुखकी भक्ति, सेवा, सार संभाल, जेकर श्रावक न करे, तो उसकी सम्यक्त्व कलंकित हो जाती है अरु जो श्रावक देव गुरुका भक्त है, उसम कदाचित् कोइ आशातनाभी हो जावे,तो भी अत्यंत दुःखदायी नहीं, इस वास्ते चत्यादि कृत्यमें नित्य प्रवृत्त होवे ॥ यथोक्तम च ॥ देवे द्रव्य कुर्वे घ.सर्व ससारिणो रति ॥ जिने जिनमते संघ, पुण्यं [illegible] ॥

देव गुरु प्रमुखकी आशातना जो है, सो जघन्यादि भेद करके तीन प्रकारे है, तहां प्रथम ज्ञानकी आशातना कहते है पुस्तक, पट्टी, टप णी, जपमालादिकको थुंकका कुछ भी भाग लग जावे, [illegible]

उच्चारे, ज्ञानोपकरण पाटी, पोथी, नवकरवाली प्रमुख पास हूए, अधो वात नि सर्गादि होवे, सो जघन्याशातना है तथा अकालमें पठनादि, उपधान विना सूत्र पढना, भ्राति करकें अर्थ अन्यथा कल्पना करणा, पुस्तकादिककों प्रमादसें पगादिकका स्पर्श करणां, नूमिमें गेरनां, ज्ञानोपकरणके पास हूए आहार मूत्रादि करनां, सो मध्यम आशातना है तथा थूक करकें अक्षर मांजे, पाटी, पोथी प्रमुख ज्ञानोपकरणकें उपर बैठनादि करे, ज्ञानोपकरण पासें हूए उच्चारादिक करे, तथा ज्ञानकी ज्ञानीकी निंदा प्रत्यनीक पणा उपघात करे, उत्सूत्र नापणादि करे, सो उत्कृष्ट आशातना है

अब देवकी आशातना कहते हैं तहां जघन्य देवाशातना सो वास, बरास, केसर प्रमुखके मब्बेकों वजावे, श्वास तथा वस्त्रके छेहडे करकें देवका स्पर्श करणां, सो जघन्य आशातना है, तथा पवित्र वस्त्र, धोती प्रमुख करे विना पूजा करे, पूजाके वस्त्र नूमिमें गेरे, इत्यादि मध्यम आशा तना है, तथा प्रतिमाकों पगसें संघट्टना, श्लेष्म अरु थूकका लगाना, प्रतिमाकों नग करणां, जिनेश्वर देवकी हेलनादि करणां, सो उत्कृष्ट आशातना है, अब देवकी जघन्य दश आशातना, अरु मध्यम चालीश आशातना तथा उत्कृष्टी चौरासी आशातना है, सो क्रम करकें कहते है

प्रथम जघन्य दश आशातना न करणी, सो लिखते हैं जिनमंदिरमें १ पान सोपारी खावे, २ पाणी पीवे, ३ नोजन करे, ४ पगरखा पहिरे, ५ स्त्रीसें नोग करे, ६ सोवे, ७ थूके, ८ मूत्रे, ९ उच्चार करे, १० जूआ खेले. जघन्यसें यह दश जिनमंदिरमें वर्जे, तो आशातना न होवे

दूसरी मध्यम चालीश आशातना वर्जे, तिसका नाम कहते हैं १ मूतनां, २ दिशा जानां, ३ जूता पहरना, ४ पानी पीनां, ५ खानां, ६ सोनां, ७ मैथुन सेवनां ८ तंबोल खानां, ९ थूकनां, १० जूआखेलनां, ११ जूआ देखे, १२ विकथा करे, १३ पालठी करी बैठे, १४ पग जूजूआ पसारे, १५ जगडा करे, १६ हांसी करे, १७ किसी उपर ईर्ष्या करे, १८ उंचे आसने बैठे १९ केश शरीरकी विनूषा करे, २० शिर पर छत्र लगानां, २१ खड्ग रखे, २२ मुकुट धरना, २३ चामर कराने, २४ स्त्रीसें कामविलास सहित हांसी करणी, २५ धरणां लगानां, २६ क्रीडा (खेल) करणा, २७

मुखकोश विना पूजा करणी, २८ मैले शरीरसें मैले वस्त्रोंसें पूजा करणी, २९ पूजा करतो मन चपल करणां, ३० शरीरके भोगके सचित्त द्रव्यकों विना उतारे मंदिरमें जाना, ३१ अचित्तद्रव्य आभूषणादि उतारके जावे, ३२ एकसाडीका उत्तरासंग न करे, ३३ भगवान्कों देखके हाथ न जोडे, ३४ शक्तिके हूये पूजा न करे, ३५ अनिष्ट फूलोंसें पूजा करे, ३६ पूजा प्रमुख आदर रहित करे, ३७ जिनप्रतिमाके निंदककों हटावे नहीं, ३८ मंदिरके द्रव्यकी सार संभाल न करे, ३९ शक्तिके हूयेभी असवारी उपर चढ के मंदिरमें जावे, ४० देहरेमें वडासें पहिला चैत्यवंदन करे, जिनेंद्रभवनमें तथा जहां प्रतिमा होवे, तिहां यह चालीश मध्यमसें आशातना टाले.

अब उत्कृष्ट चौरासी आशातनाका नाम कहते है. १ जिनमंदिरमें खेल खखार गेरे, २ जूए आदिककी क्रीडा करे, ३ कलह करे, ४ धनुष्यादि कला शिखे, ५ कुरला करे, ६ तंबोल खावे, ७ तंबोलका उगाल गेरे, ८ गाली देवे, ९ दिसा मात्रा करे, १० हस्तादि अंग धोवे, ११ केश समारे, १२ नख समारे, १३ रुधिर गेरे, १४ सुखडी प्रमुख देहरेमें खावे, १५ गुमडे आदिककी त्वचा गेरे, १६ औषधि खाकें पित्त गेरे, १७ वमन करे, १८ दांत गेरे, १९ हाथ, पग, मसलावे, २० घोडादि बांधे, २१ दांतका मैल गेरे, २२ आंखका मैल गेरे, २३ नखका मैल गेरे, २४ गालका मैल गेरे, २५ नाकका मैल गेरे, २६ माथाका मैल गेरे, २७ शरीरका मैल गेरे, २८ कानका मैल गेरे, २९ भूतादिके खीलने वास्ते मंत्र साधे, अथवा राजा प्रमुखका काम होवे, तिसका विचार करे, २० मंदिरमें विवाहादिक की पंचायत करे, २१ व्यापारका लेखा करे, ३२ राजका काम बांटके देवे, अथवा भाइ प्रमुखको धनका हिस्सा बांटके देवे, ३३ घरका भंडार मंदिरमें रखे, ३४ पगउपरि पग रखके ऊठासन करके बैठे, ३५ मंदिरकी भींतमें गोहा लगावे, गोबरका ढेर लगावे, ३६ वस्त्र सुकावे, ३७ दाल रंधे, ३८ पापडांनी सुकावे ३९ वडी बनावे, उपरांत कूलम कपर, चीभडा, शाक प्रमुख सुकाने वास्ते गेरे, ४० राजा, भाइ, सगांके वास्तेंसे भयसे भागके मंदिरमें छुप जावे, ४१ पुत्र कलत्रादिके मरणमें मंदिरमें रोवे, ४२ स्त्रीकथा, भक्तकथा, राजकथा, देशकथा, यह चार विकथा करे, ४३ बाण इक्षुरस प्रमुख घडे, तथा धनुषादि शस्त्र घडे, ४४ गाय बैलादि मंदिरमें

रक्के, ४५ शीत दूर करणेकों अग्नि तापे, ४६ धान्यादि रांधे, ४७ रूपइये परखे, ४८ विधिसे नैषेधिकी न करे, ४९ छत्र, ५० पगरखी, ५१ शस्त्र, ५२ चामर, यह चार, मंदिरके बाहिर न छोडे, ५३ मन एकाग्र न करे, ५४ तैलादिकका मर्दन करे, ५५ शरीरके नोगके सचित्त फूलादिकका त्याग न करे, ५६ हार, मुद्रा, कुंमलादि, तिनकों बाहिर छोड आवे, तो आशातना लगे, क्योंकि लोकोंमें ऐसा कहनां हो जावे, कि अर्हतके नक्त सवे कगाल निक्षाचर हैं, ऐसी तरें जिनमतकी लघुता होती है, ५७ नगवान्कों देखकें हाथ न जोडे, ५८ एक साडीका उत्तरासंग न करे, ५९ मुकुट मस्तकमें राखे, ६० मौलि शिरका लपेटनां रक्के, ६१ फूलका सेहरा रक्के, ६२ नालियर आदिकका छोत गेरे, ६३ गेंदसें खेले, ६४ पिता प्रमुखकों जुहार करे, ६५ नांम चेष्टा करे, ६६ तिरस्कारके वास्ते रेकारा तुकारा देवे, ६७ लेहणे वास्ते धरणां देवे, ६८ संग्राम करे, ६९ मस्तकके केश सुकावे, ७० पालठी मारी बैठे, ७१ काष्ठ पाडुकादि पगमें रक्के, ७२ पग पसारे, ७३ सुखके वास्ते पुड पुडी देवावे, ७४ देहरमें शरीरका अवयव धोकें कीचड कूहा करे, ७५ पगादिकके लगी हूइ धूल फाडे, ७६ मैथुन, (कामक्रीडा) करे, ७७ जूआ गेरे, ७८ नोजन जीमे, ७९ गुह्य चिन्ह ढकके न बैठे, ८० वैदकका काम करे, ८१ क्रय विक्रय रूप वाणिज्य करे, ८२ शय्या बनाकें सोवे, ८३ पानी पीनेके वास्ते जलका मटका रक्के, तथा मंदिरके पतनालेका पाणी लेवे, ८४ स्नान करनेकी जगा बनावे, यह उत्कृष्ट चौरासी आशातना जिनमंदिरमें वर्जे

अब गुरुकी तेत्तीस आशातना वर्जे, सो लिखते हैं १ गुरुके आगें चले, तो आशातना है जेकर रस्ता बतावनेके वास्ते चले, तो आशातना नहीं होती है, २ गुरुके बराबर चले, ३ गुरुके पीछें अडके चले, यह जैसें चलनेकी तीन आशातना कही हैं, ऐसेंही बैठनेकीनी तीन आशातना जान लेनी, तथा खडा होनेकीनी तीन आशातना जान लेनी, यह सर्व नव आशातना हूइ १० नोजन करतां गुरुसे पहिलां शिष्य चलु करे, ११ गमनागमन गुरुसें पहिलां आलोचे, १२ रात्रिमें कौन जागता है, ऐसें गुरुके कहेकों सुन कर जागता हूआनी शिष्य उत्तर न देवे, तो आशातना लगे, १३ जब किसीकों कुछ कहनां होवे, सो गुरुसें

पहिलाही शिष्य कह देवे, १४ दूसरे साधुवोंके आगें पहिलां असनादि आलोवे पीछें गुरु आगें आलोवे, १५ ऐसेही असनादिक पहिलां दूसरे साधुवोंकों दिखाके पीछें गुरुकों दिखावे, १६ अन्नादिककी पहिलां औरोंकों निमत्रणा करके पीछें गुरुकों निमत्रणा करे, १७ गुरुके बिना पूछे स्वेच्छासे औरोंकों स्निग्ध मधुरादि आहार दे देवे, १८ गुरुकों स्किंचित् अन्नादि दे कर पीछें यथेच्छासें स्निग्धादि आहार आप खावे, १९ गुरु बोलावें, तब बोले नहीं, २० गुरुकों बहुत कर्कश (कठोर) वचन बोले, २१ जब गुरु बोलावे, तब आसन उपर बैठाही उत्तर देवे, २२ गुरु बोलावे तब कहे, क्या कहते हो ? २३ गुरुकों तूकारा देवे, २४ गुरुने प्रेरणा करी तब गुरुकी प्रेरणाको उत्तर करकें हणे, जैसे गुरु कहे कि — हे शिष्य ! तुमने ग्लानकी वैयावृत्य क्यो नहीं करी ? तब शिष्य कहे कि तुम क्यों नही करते ? २५ गुरुकथा कहते हूए मनमें प्रसन्न न होवे, किंतु विमन होवे, २६ सूत्रादि कहते गुरुकों कहे तुमकों अर्थ याद नहीं है ? यह अर्थ ऐसें नहीं होवे है ? २७ गुरु कथा कहता है, तिस कथाकों बीचमें छेद करे, अरु कहे, में कथा करुगा ? ऐसे कहे, २८ पर्षदाकों तोडे जैसें कहेकी अब तो भिक्षाका अवसर है, इत्यादि कहे, २९ पर्षदाके विना उठ्यां गुरुकी कही कथाकों अपणी चतुराइ दिखलाने वास्ते विशेष करके कहे, ३० गुरुकी शय्या संथारकादिकों पगोंसे संघट्टा करे, ३१ गुरुकी शय्यादि उपर बैठनादि करे, ३२ गुरुसे उचे आसन उपरि बैठे, ३३ गुरुके बराबर आसन करे, यह तेत्तीस गुरुकी आशातना है

ये गुरुकी आशातनाभी तीन प्रकारकी है, एक पगादिसे संघट्टा करे, सो जघन्य आशातना, दूसरी श्लेष्म थूकादि गुरुके लवमात्र लगावे, सो मध्यम आशातना है, तीसरी गुरुका आदेश न करे, जेकर करे, तो उलटा करे, कठोर वचन बोले, गुरुका कहा न सुणे, इत्यादि उत्कृष्ट आशातना है

स्थापनाचार्यकी आशातनाभी तीन प्रकारकी है, एक तो इधर उधर हलावे पगोंसे स्पर्श करे, सो जघन्य आशातना, दूसरी भूमिपर गेरे, अवज्ञासें धरे, सो मध्यम आशातना, तीसरी स्थापनाचार्यको गमावे, तथा तोडे सो उत्कृष्ट आशातना है ऐसेंही ज्ञानोपकरण, दर्शनोपकरण, तथा चारित्रोपकरण रजोहरणादि, मुखवस्त्रिका, दंडक, दंडिका प्रमुखकी आशातना टाले

श्रावककों सर्वधर्मोपकरण चरवला मुखवस्त्रिकादि विधि पूर्वक स्वस्था नमें स्थापना प्रमुख करणी चाहियें, अन्यथा धर्मकी अवज्ञादि प्रमुख दूषणोंकी आपत्ति होवे, शास्त्रमें लिखा हैकि जो उत्सूत्र नांखे, तथा अ र्हतकी अरु गुरुकी अवज्ञादि महा आशातना करे, तो सावद्याचार्य, मरी चि, जमाली, कुलवालिकादिककी तरें अनंत जन्म मरणकी वृद्धि होवे ॥ यत ॥ उस्सुत्त नासगाण, बोहीनासो अणंत संसारो ॥ पाणच्चएवि धीरा, उस्सुत्त ता न नासंति ॥ १ ॥ तित्थयर पवयण सुयं, आयरियं गणहर म हिड्ढियं ॥ आसायंतो बहुसो,अणंत संसारिउ होइ ॥ २ ॥ अस्यार्थ सुगम ॥

ऐसेंही देव, ज्ञान, साधारण द्रव्यका तथा गुरुका द्रव्य, वस्त्र, पात्रादि कका विनाश तिनकी उपेक्षादिक जो करनी है, सोनी महा आशातना है, यदूचे ॥ गाथा ॥ चेइअ दव्व विणासे,इ सिघाए पवयणस्स उड्डाहे ॥ संजई चउत्थभंगे, मूलग्गी बोहिलाभस्स ॥ १ ॥ तथा श्रावकदिनकृत्य दर्शनशु द्धि आदि शास्त्रोंमेंनी लिखा है ॥ गाथा ॥ चेइअ दव्वं साहा,रण च जो दुहइ मोहिअमईउ ॥ धम्मं च सो न याणाइ, अहवा बद्धाउ उ नरए ॥ १ ॥ अर्थ – चैत्यद्रव्य तथा साधारण द्रव्य जो नाश करे, मोहितमति जातों वो धर्म नहीं जानता है, अथवा उसने नरकका आयु बांधा है, उसिके वास्तेही ऐसा अयोग्य काम करता है, तथा चैत्यद्रव्यका नाश, नक्षण, उपेक्षण कोइ करे, तिसकों जेकर साधु न हटावे, तो वो साधुनी अनंत संसारी हो जावे

प्रश्न – मन, वचन अरु काया करकें जिसने सावद्य त्यागा है, ऐसे यतिकों चैत्यद्रव्यकी रक्षामें क्या अधिकार है?

उत्तर – जे कर राजा तथा वजीरकों याचना करकें तिनोके पाससें घर, हाट, गामादि लेकर विधिसे नवा पेदास उत्पन्न करे, तब तेरा विवक्षित दूषण होवेगा, परंतु यथा नद्रकादि करकें जो किसीने पहिला दीया होवे, उसका नाश देखकें रक्षा करे, तब कोइ दूषण नहीं होता हैं, बलिके जि नाज्ञाकी आराधना होनेसें धर्मकी पुष्टि होती है.

नवे जिनमंदिरके बनानेसें जो पूर्वे बना हूआ है उसके प्रतिपंथि अ र्थात् शत्रुकों जो साधु हटावे, तो वो साधुकों न प्रायश्चित्त है, तथा न वो साधुकी प्रतिज्ञा नंग होती है, आगमनी ऐसाही कहता है, इस वास्ते

जिनद्रव्य जो खावे, उपेक्षा करे, वो श्रावक, आगले जन्ममें बुद्धिहीन होवे, अरु पापकर्मसें लेपायमान होता है

॥ तथा ॥ आयाण जो नंजइ, पडिवन्न धण न देइ देवस्स ॥ नस्स तं स मुविरकइ, सोवि हु परिनमइ ससारे ॥ १ ॥ अस्यार्थ – जो पुरुष मंदिरकी आमदनी नागे, अरु जो मुखसें कह कर जिनद्रव्य न देवे,सोनी संसारमें भ्रमण करे ॥ तथा ॥ जिणवयण वुड्ढिकरं,पनावगं नाणदसण गुणाण ॥ नक्क तोजिणदव्व, अणत ससारीउ होइ ॥ १ ॥ अर्थ – जो जिनमतकी वृद्धि करे, चैत्यपूजा, चैत्यसमारणा, महापूजा सत्कारादि करके ज्ञान दर्शनकी प्रनावना करे, परतु जिनद्रव्यका नाश करे, तो अनंत ससारी होवे, अरु जे कर जिनद्रव्यकी रक्षा करे, तो अल्प ससार हो जावे, देवद्रव्यकी वृद्धि करे, तो तीर्थंकर नामकर्म बांधे, परतु पंदरा कर्मादान, खोटा वणिज्य व र्जके सद् व्यवहार करकें जिनद्रव्यकी वृद्धि करे ॥ यत ॥ जिणवर आणा रहिय, वद्धारंतावि केवि जिणदव्व ॥ वुड्डति नवसमुद्दे, मूढा मोहेण अन्ना णी ॥ १ ॥ इसका अर्थ सुगम है

कोइ कहते है किश्रावक विना औरोको अधिक गहनां रखकें कालांतरमें व्याजकी वृद्धि करे,सो उचित है, असा कहनांनी ठीक है, क्योंकि सम्यक्त्व पच्चीसी आदिक ग्रंथोंमें संकाशकी कथामें तैसेंही लिखा है चैत्यद्रव्यके खानेसें बहुत कष्ट होते है, सागर श्रेष्ठीवत् यह कथा श्राद्धविधि ग्रंथसें जान लेनी ज्ञान द्रव्यनी देव द्रव्यकी तरें अकल्पनीय है, अर्थात् नाश करनां, नक्षण करनां, विगडतेकी सार सनाल न करणी असेंही साधारण द्रव्यनी संघका दीया हूयाही कल्पता है, विना दीया काममें लानां न कल्पे, संघकोंनी सात क्षेत्रमेंही साधारण द्रव्य लगानां चाहिये, मंगने वालोंको उसमेंसे देना न चाहिये, असेंही ज्ञान संबंधी कागज पत्रादि साधुको दीया हूया श्रावक अपणे कार्यमें नहीं लगानां, अपणी पोथीमेंनी न रखनां, स्थापनाचार्य अरु जपमालादि नी [illegible] ता रीनता है, तथा गुरुकी आज्ञा विना साधु साध्वीको [illegible] लानां अरु वस्त्र मुखवस्त्रिका लेनांनी नहीं कल्पता इत्यादि विचार [illegible] तिस वास्ते थोडासानी ज्ञान अरु साधारण द्रव्यका नाश न करनां चाहिये.

जो देवके नामका बोले, सो द्रव्य तत्काल देवे, क्योंकि देवद्रव्य जितना शीघ्र देवे, उतना अच्छा है, कदापि विलंब करे, तो पीछें क्या जाने धनहानि मरणादि होवे? तदा देवद्रव्यका ऋण रहजाये, और सर्व सारीका देनाभी श्रावककों शीघ्र दे देना चाहियें, तो फेर देवद्रव्यका क्या कहना है? जिस वखत माला पहराइ तथा और कुछ द्रव्य देवके भंडारेमें देना करा, उसी वखतसें वो देव द्रव्य हो चूका, उस द्रव्यसें जो लाभ होवे, सोभी देवद्रव्य है, उस द्रव्यकों श्रावकनें भोगना नहीं, इस वास्ते शीघ्र दे देना चाहियें, जे कर मासादिक पीछें देनेका कौल करे, तदा करार उपर विना माग्या जरूर दे देवे, जे कर करार उल्लंघकें देवे, तो देवद्रव्य खायेका दूषण है देवद्रव्यकी उगराहीभी श्रावक अपणी उगराहीकी तरें यत्नसें करे, जेकर देवद्रव्य लेनेमें ढील करे, अरु कदाचित् दुर्भिक्ष दरिद्रादि अवस्था आ जावे, तो फेर मिलना दुष्कर हो जावे, तथा देनेवालाभी उत्साह पूर्वक कपट रहित हो कर शीघ्र दे देवे, नहीं तो देवद्रव्यभक्षणका दोष है

तथा देव ज्ञान साधारण संबंधी हाट, खेत, वाडी, पाषाण, ईट, काष्ठ, बांस, मिट्टी, खडीया, चंदन, केसर, बरास, फूल, फूलचंगेरी, धूपपात्र, कलश, वासकूपी, छत्रसहित सिंहासन, चमर, चंद्रोदय, झालर, भेरी, चानणी, तंबू, कनात, पडदे, कंबल, चौंकी, तख्त, पाटा, पाटी, घडा, बडा उरसा, कज्जल, जल, दीवा प्रमुख चैत्यशाला, प्रनालादिकका पाणी, ये सर्व पूर्वोक्त वस्तु देवकी अपने काममें न वर्त्तनी चाहियें, टूट फूट मलीनादि हो जावे, तो महापाप होवे, देव आगें दीवा बालकें उस दीवेके चानणेमें कोइ सांसारिक काम करे, तो मरकें तिर्यंच होवे, उस वास्ते देवके दीवेसे खतपत्र भी न वांचनां चाहियें, रूपकभी न परखणा, घरका कामभी देवके दीवेसें न करणां, तथा देवके चंदन, केसरसें तिलक न करे. देवके जलसें हाथ न धोवे, स्नात्रजलभी थोडासा लेना चाहियें, तथा देवसंबंधी झल्लरी, मृदंग, भेरी प्रमुख गुरुके तथा संघके न बजावे, जे कर कोइ देवके उपकरण झल्लरी आदिकसें कोइ कार्य करनां होवे तो बहुत निकराणां देव आगें रखकें लेवे, कदाचित् कोइ उपकरण टूट जावे, तब अपणां धन खरचकें नवा बनवावे, देवका दीवा लालटेन (फानूस) प्रमुखमें जूदाही राखे,

तथा साधारण द्रव्यसें जो झल्लरी प्रमुख बनावे, तब तो सर्वधर्म कार्यमें वर्त्ते, तो दोष नहीं जैसें भावोंसें करे, सोई प्रमाण है

देवका तथा ज्ञानका घरादिकभी श्रावककों निःशूकतादि दोष होनेसें भाडे लेनां न चाहियें साधारण संबंधि घरादिक संघकी अनुमतिसें लोक व्यवहार का भाडा दे कर वरते,तो दोष नहीं,परंतु भाडा करारके दिनमें स्वयमेव दे देवे, वस मकानके समरानेमें जो धन लगे, तिसकों भाडेमें गिन लेवे, तो दोष नहीं अरु जो साधर्मी संकट (निर्धनपणेसें दुःखी) होवे, वो संघकी आज्ञासें विना भाडे दीयांभी रहे, तो दोष नहीं तथा तीर्थादिकमें अरु देहरेमें जो बहुत काल रहनां पडे, वहां सोवे, तो तहांभी लेखे अनुसार अधिक भाडा दे देवे, थोडा देवे, तो दोष है भाडा विना दीयां देव, ज्ञान, साधारण संबंधी वस्त्र नालियर सोने रूपेकी पाटी, कलश, फूल, पकान्न, सूखडी प्रमुख उजमणेमें, पुस्तक पूजामें, नंदी मांडनेमें,न मेलनी चाहियें, क्योंकि उजमणादि तो वसन अपणे नामका करा है फेर देव, ज्ञान, अरु साधारण संबंधी पूर्वोक्त वस्तु भाडे विना वर्त्ते, तो स्पष्ट दोष है

तथा घर देहरेमें अक्षत, सोपारी, फल, नैवेद्यादिकके वेचनेसे जो धन होवे, तिसके लीये फूलादिकको घर देहरेमें न चढावे, तथा पंचायती बडे मंदिरमेंभी आप न चढावे, पूजारी आगें सर्व स्वरूप कहे कि यह मंदिरही का द्रव्य है, परंतु मेरा नहीं, पूजारी न होवे, तो सब समक्ष कह देवे, ऐसे न कहे, तो दूषण है घर देहरेका नैवेद्यादि मालीकों देवे, परंतु वो मालीकी नौकरीमें न गिन लेवे, जे कर पहिलांही सामग्री नौकरीमें देणी करी लेवे, तो दोष नहीं मुख्यवृत्तिमें तो नौकरी चढावेसें अलग देनी चाहियें

घर देहरेके चढे हूए चावलादि बडे मंदिरमें भेज देवे, अन्यथा घर देहरेके द्रव्यसे घर देहरेकी पूजा होवेगी, नतु स्वद्रव्य करके होवेगी. तब [illegible] लोकमें अवज्ञादि दोष है. ऐसा करणा युक्त नहीं, क्योंकि स्वद्रव्यसेंही पूजा करणी उचित है. तथा देहरेका नैवेद्य अक्षतादि अपणे [illegible] चाहिए. [illegible] देवद्रव्यको वधारणा चाहिए. परंतु [illegible] [illegible] नहीं तो देवद्रव्यके नाश करनेका दूषण [illegible]

[illegible]

तथा देव, गुरु, यात्रा, तीर्थ अरु संघकी पूजा, साधर्मिवात्सल्य, स्नात्र, प्रभावना, ज्ञान लिखानां इत्यादिक कारणो वास्ते दूसरोंके पाससें जब धन लेवे, तब चार पांच पुरुषोंकी साक्षीसें लेवे, फेर खरचनेके अवसरमें भी गुरु संघादिकके आगें प्रगट कह देवे, कि यह धन मैने अमुकका दीया खरचा है, परंतु मेरा नहीं है

तथा तीर्थादिमें अरु पूजा स्नात्र ध्वजा चढाने आदि आवश्यक कर्त्तव्यमें दूसरोंका सीर न करे, किंतु स्वयमेवही यथाशक्ति करे, जेकर किसीने धर्म खरचमें धन दीया होवे, तब तिसका प्रगट नाम ले कर सर्व समक्ष न्याराही खरच करनां चाहियें, यदा बहुतें मिल कर यात्रा साधर्मिवात्सल्य संघपूजादि करे, तब जितना जितना जिसका हिस्सा होवे, उतना उतना प्रगट कह देवे, नहीं तो पुण्यफलकी चोरी लगे

तथा मरणांत समयमें माता, पितादिक जो धर्मका खरच करनां कहे, तथा पुत्रादि जो खरच करनां माने, सो बहुत श्रावकादिकोंके आगें कहनां चाहियें, जैसें मैं तुमारे नामसें इतने दिनोके बीचमें इतना धन खरचुगा, तुम उसकी अनुमोदना करो, पीछें, सो धन सर्व समक्ष अपणे नामसें नहीं, किंतु माता पितादिके नामसें तत्काल खरच कर देनां चाहियें, धर्मका खरच मुख्यवृत्ति करकें तो साधारण द्रव्यहीका करनां चाहियें, क्योंकि जहां जहां काम पडे, तहां तहां खरचमें लावे, सात क्षेत्रोंमें जौनसा क्षेत्र सीदाता देखे, तिसमें धन खरचकें तिसकों उपष्टंभ देवे, कोइ श्रावक निर्धन हो जावे, तोभी उसकों उसी धनसें उपष्टंभ देवे, लोकेप्युक्त ॥श्लोक॥ दरिद्रं नर राजेंद्र,मा समृद्धं कदाचन ॥ व्याधितस्यौषधं पथ्यं,नीरोगस्य किमौषधं ॥ १ ॥ इसी वास्ते प्रभावना संघ पहिरावणी, सम्यक्त्वका उन्मुलननादिकमें जो निर्धन साधर्मी हूवे, तिनकों विशेष वस्तु देनी चाहियें, अन्यथा धर्मावज्ञादि दोष होवे यह बात युक्त है, जो धनवानसें निर्धनकों अधिक वस्तु देनी चाहियें, यदा शक्ति न होवे, तदा दोनोको बरावर देवे

अपणा खरच धर्मद्रव्यसें न करणां, यात्रादिकके निमित्त जो धन काढे, सो सर्व देवादि निमित्त हो गया, जे कर वो द्रव्य अपणे भोजनमें अथवा गाडी आदिकके भाडेमें लगावेगा, तब जरूर उसकों देवद्रव्य खा

तथा साधारण द्रव्यसें जो झन्नरी प्रमुख बनावे, तब तो सर्वधर्म कार्यमें वर्त्ते, तो दोष नहीं जैसें जावोंसें करे, सोई प्रमाण है.

देवका तथा ज्ञानका घरादिकनी श्रावककों निःशूकतादि दोष होनेसें जाडे लेनां न चाहियें साधारण संबंधि घरादिक संघकी अनुमतिसें लोक व्यवहार का जाडा दे कर वरते,तो दोष नहीं,परंतु जाडा करारके दिनमें स्वयमेव दे देवे, उस मकानके समरानेमें जो धन लगे, तिसकों जाडेमें गिन लेवे, तो दोष नहीं अरु जो साधर्मी संकट (निर्धनपणेसें डुःखी) होवे, वो संघकी आज्ञासें विना जाडे दीयांनी रहे, तो दोष नहीं तथा तीर्थादिकमें अरु डेरेमें जो बहुत काल रहनां पडे, उहां सोवे, तो तहांनी लेखे अनुसार अधिक जाडा दे देवे, थोडा देवे, तो दोष है जाडा विना दीयां देव, ज्ञान, साधारण संबंधी वस्त्र नालियर सोने रूपेकी पाटी, कलश, फूल, पकान्न, सूखडी प्रमुख उजमणेमें, पुस्तक पूजामें, नदी मांमनेमें,न मेलनी चाहियें, क्योंकि उजमणादि तो उसने अपणे नामका करा है फेर देव, ज्ञान, अरु साधारण संबंधी पूर्वोक्त वस्तु जाडे विना वर्त्ते, तो स्पष्ट दोष है

तथा घर देहरेमें अक्षत, सोपारी, फल, नैवेद्यादिकके वेचनेसे जो धन होवे, तिसके लीये फूलादिककों घर देहरेमें न चढावे, तथा पचायती बडे मंदिरमेंनी आप न चढावे, पूजारी आगें सर्व स्वरूप कहे कि यह मंदिरही का द्रव्य है, परंतु मेरा नहीं, पूजारी न होवे, तो संघ समक्ष कह देवे, ऐसें न कहे, तो दूषण है घर देहरेका नैवेद्यादि मालीको देवे, परंतु वो मालीकी नौकरीमें न गिन लेवे, जे कर पहिलांही सामग्री नौकरीमें देणी कर लेवे, तो दोष नहीं मुख्यवृत्तिमें तो नौकरी चढावेसें अलग देनी चाहियें

घर देहरेके चढे हूए चावलादि बडे मंदिरमें नेज देवे, अन्यथा घर देहरेके द्रव्यसें घर देहरेकी पूजा होवेगी, नतु स्वद्रव्य करकें होवेगी, तब अनादर अवज्ञादि दोष है, ऐसा करणा युक्त नहीं, क्योंकि स्वद्रव्यसेंही पूजा करणी उचित है, तथा देहरेका नैवेद्य अक्षतादि अपणे धनकी तरें रखने चाहिये, पूरे मूलासें वेचके देव द्रव्यको वधारना चाहिये, परंतु जैसें तैसें नाशमें न जाने देवे, नहीं तो देवद्रव्यके नाश करेका दूषण लग जावेगा

तथा सौ तरें रक्षा करतांनी चोर, अग्नि, आदिकके उपद्रवसें द्रव्य नष्ट हो जावे, तो चिंता कारककों दोष नहीं.

तथा देव, गुरु, यात्रा, तीर्थ अरु संघकी पूजा, साधर्मिवात्सल्य, स्नात्र, प्रजावना, ज्ञान लिखानां इत्यादिक कारणो वास्ते दूसरोंके पाससें जब धन लेवे, तब चार पांच पुरुषोंकी साक्षीसे लेवे, फेर खरचनेके अवसरमें जी गुरु संघादिकके आगें प्रगट कह देवे, कि यह धन मैने अमुकका दीया खरचा है, परंतु मेरा नहीं है

तथा तीर्थादिमें अरु पूजा स्नात्र ध्वजा चढाने आदि आवश्यक कर्त्त व्यमें दूसरोंका सीर न करे, किंतु स्वयमेवही यथाशक्ति करे, जेकर किसीने धर्म खरचमें धन दीया होवे, तब तिसका प्रगट नाम ले कर सर्व समक्ष न्याराही खरच करनां चाहियें, यदा बहुतें मिल कर यात्रा साधर्मि वात्सल्य संघपूजादि करे, तब जितना जितना जिसका हिस्सा होवे, उतना उतना प्रगट कह देवे, नहीं तो पुण्यफलकी चोरी लगे

तथा मरणांत समयमें माता, पितादिक जो धर्मका खरच करनां कहे, तथा पुत्रादि जो खरच करनां माने, सो बहुत श्रावकादिकोंके आगें कहनां चाहियें, जैसें में तुमारे नामसें इतने दिनोके बीचमें इतना धन खरचुगा, तुम उसकी अनुमोदना करो, पीछें, सो धन सर्व समक्ष अपणे नामसें नहीं, किंतु माता पितादिके नामसें तत्काल खरच कर देनां चाहियें, धर्मका खरच मुख्यवृत्ति करकें तो साधारण द्रव्यहीका करनां चाहियें, क्योंकि जहां जहां काम पडे, तहां तहां खरचमें लावे, सात क्षेत्रोंमें जौनसा क्षेत्र सीदाता देखे, तिसमें धन खरचकें तिसकों उपष्टंन देवे, कोइ श्रावक निर्धन हो जावे, तोजी उसकों उसी धनसें उपष्टंन देवे, लोकेप्युक्त ॥श्लोक॥ दरिद्र भर राजेंद्र,मा समृद्ध कदाचन ॥ व्याधितस्यौषध पथ्यं,नीरोगस्य किमौषध ॥ १ ॥ इसी वास्ते प्रजावना संघ पहिरावणी, सम्यक्त्वका लमुंछननाविकमें जो निर्धन साधर्मी हूवे, तिनकों विशेष वस्तु देनी चाहियें, अन्यथा धर्मावज्ञादि दोष होवे यह बात युक्त है, जो धनवानसें निर्धनकों अधिक वस्तु देनी चाहियें, यदा शक्ति न होवे, तदा दोनोको बराबर देवे

अपणा खरच धर्मद्रव्यसें न करणां, यात्रादिकके निमित्त जो धन काढे, सो सर्व देवादि निमित्त हो गया, जे कर वो द्रव्य अपणे जोजनमें अथवा गाडी आदिकके जाडेमें लगावेगा, तब जरूर उसकों देवद्रव्य खा

नेका पाप लगेगा, कदाचित् अज्ञान करके चूकिके वे समजीसें इत्यादि का रणोसें कोइ श्रावकादि देवादि द्रव्यका उपजोग कर लेवे, तो तिसके प्राय श्चित्तमें जितना द्रव्य खाया होवे, उतना द्रव्य देव साधारण सबधि करे, मरण अवस्थामें शक्तिके अजावसें धर्मस्थानमें थोडाही खरचे, परतु देणा किसीका न रक्खे, देवादि द्रव्य तो विशेष करकें न रक्खे, इसी रीतिसें श्री जिनराजजीकी पूजा दृढजावोंसें करनी चाहियें ॥ इति सक्षेपतो जिनेश्वर परमेश्वर पूजनविधि सपूर्ण ॥

अब गुरु वदनाकी विधि लिखते हैं, जो ज्ञानादि पांच आचार करकें सयुक्त होवे, और शुद्ध प्ररूपक होवे, सो गुरु है, पांच आचारका स्वरूप देखनां होवे, तदा श्री रत्नशेखरसूरिकृत आचारप्रदीप ग्रथ देख लेनां

यह पूर्वोक्त गुरु आचार्यादिकके पास जो प्रत्याख्यान पूर्वे अपणे आप करा था, सो विशेष करकें विधि पूर्वक गुरु मुखसें उच्चरावे, क्योंकि प्रत्याख्यान तीन तरेंसे करा जाता है, एक आत्मसाक्षिक, दूसरा देवसाक्षिक, तीसरा गुरुसाक्षिक, तिसकी विधि यह है, कि –

मदिरमें देववदनार्थे, स्नात्रादि देखनेके अर्थे, धर्मोपदेश देनेके अर्थे, गुरु जिनमदिरमें आया होवे, तथा वस्तिमें होवे, तहां मदिरकी तरें तीन निस्सही पंचाजिगमनादि यथायोग्य विधिसें जा करकें गुरुके धर्मोपदेशसें पहिलां तथा पीछें, यथाविधिसें पचवीश आवश्यक शुद्ध द्वादशावर्त्त वदना देवे, वदनाका बडा फल कहा है, कृष्णवासुदेववत् तथा जाष्यमें वदना तीन तरेंकी कही है, एक तो मस्तक नमावणादि सो फेटा वदना, दूसरी सपूर्ण दो खमासमण पढनेसें स्तोजवदना होती है, तीसरी द्वादशावर्त्त करनेमें द्वादशावर्त्त वदना होती है, तिसमें प्रथम वदना तो सर्व सघको करणी, दूसरी वदना सर्व सदर्शनी साधुउंको करणी, अरु तीसरी वदना जो है, सो पदवीधर आचार्यादिकको करनी

जिसने सवेरेका पडिक्रमणां न करा होवे, तिसने विधि पूर्वक वदना करणी, क्योंकि जाष्यमें असही लिखा है १ जाष्याक्तविधि ईर्यापथप्रतिक्रमण करीनें कुसमिणकुसुमिणका कायोत्सर्ग करे, सो शतश्वास प्रमाण करे, जो कर स्वप्नमें स्त्रीसगम करा होवे, तदा अष्टोत्तर सौ जणा पाठ पीछे एक सौ आठ श्वासोश्वास प्रमाण कायोत्सर्ग कर, ३ पीछे चैत्यवदन कर, ४ पीछे ए

माश्रमण पूर्वक मुखवस्त्रिका प्रतिलेखे, ५ पीछें दो वंदना देवे, ६ पीछें देवसिआदिक आलोवे, ७ फेर वंदना दो देवे, ८ पीछें अप्नुष्ठिउमि कहे, ए पीछें दो वंदना करे, १० पीछें प्रत्याख्यान करे, ११ पीछें जगवन् अह इत्यादि चार क्षमाश्रमण देवे, १२ पीछें स्वाध्याय संदिसावउं कहे, फेर क्षमाश्रमण पूर्वक सझाय करू, ऐसें कहे, पीछें स्वाध्याय करे, यह सवेरकी वंदनाविधि है

तथा प्रथम १ ईर्यापथ पडिक्कमे, २ पीछें चैत्यवंदना करे, ३ पीछें क्षमाश्रमण पूर्वक मुखवस्त्रिकाका प्रतिलेखन करे, ४ पीछें दो वंदना करे, ५ पीछें दिवसचरिमका प्रत्याख्यान करे, ६ पीछें दो वंदना करे, ७ पीछें देवसि आलोउ कहे, ८ पीछें दो वंदना करे, ए पीछें अप्नुष्ठिउ कहे, १० पीछें जगवन् इत्यादि चार स्तोजवंदना करे, ११ पीछें दैवसिक प्रायश्चित्तका कायोत्सर्ग करे, १२ पीछें पूर्ववत् दो क्षमाश्रमण देकर स्वाध्याय करे, यह सध्याकी वंदन विधि है

जे कर किसी कार्य करणाविसें गुरुका चित्त और तर्फ होवे, तदा संक्षेप मात्र वंदना करे, ऐसें वंदना पूर्वक गुरु पासों प्रत्याख्यान करावे, क्योंकि श्रावकप्रज्ञप्तिसूत्रमें लिखा है, कि प्रत्याख्यान करणेके परिणाम दृढजी होवे, तोजी गुरुके पासों करावें, गुरु पासों प्रत्याख्यान करानेमें यह गुण है, सो लिखते हैं १ दृढता होती है, २ आज्ञाका करणा होता है, ३ कर्मका क्षय होता है, ४ उपशमकी वृद्धि होती है

ऐसेंही दैवसिक चातुर्मासिक नियमादिजी गुरुका संजव होवें, गुरु साक्षिकही करनां चाहियें, योगशास्त्रमें गुरुकी जक्ति ऐसें लिखी है ॥ श्लोक ॥ अन्युबान तदालोके, ऽनियान च तदागमे ॥ शिरस्यंजलिसश्लेप , स्वयमासनढोकन ॥१॥ आसनाजिग्रहो जक्त्या, वंदना पर्युपासन ॥ तद्यानेऽनुगमश्चेति, प्रतिपत्तिरियं गुरौ ॥ २ ॥ अस्यार्थ – १ गुरुकों आता देखकें खडा हो जानां, २ सन्मुख लेने जानां, ३ मस्तक उपर अंजलि बांध कर प्रणाम करणां, ४ गुरुकों आसन देनां, ५ जब गुरु आसन उपर वैठ जावेगा, तव मैं आसन उपर वैठुगा, ऐसा अजिग्रह लेवे, ६ जक्तिसें वंदना पर्युपासना करे, ७ जब गुरु जावे, तब पौंहुचाने जावे, ८ यह गुरुकी जक्ति है तथा १ थडके गुरुके बराबर न वैठे, २ आगें न वैठे, ३ गुरुको

नेका पाप लगेगा, कदाचित् अज्ञान करकें चूकिकें वे समजीसें इत्यादि का रणोसे कोइ श्रावकादि देवादि द्रव्यका उपन्नोग कर लेवे, तो तिसकें प्राय श्चित्तमें जितना द्रव्य खाया होवे, उतना द्रव्य देव साधारण सवधि करे, मरण अवस्थामें शक्तिके अनावसें धर्मस्थानमें थोडाही खरचे, परंतु देणा किसीका न रखे, देवादि द्रव्य तो विशेष करकें न रखे, इसी रीतिसें श्री जिनराजजीकी पूजा दृढनावोंसें करनी चाहियें॥ इति सक्षेपतो जिनेश्वर परमेश्वर पूजनविधि सपूर्ण ॥

अब गुरु वदनाकी विधि लिखते हैं,जो ज्ञानादि पांच आचार करकें सयुक्त होवे, और शुद्ध प्ररूपक होवे, सो गुरु है, पांच आचारका स्वरूप देखनां होवे, तदा श्री रत्नशेखरसूरिकृत आचारप्रदीप ग्रथ देख लेनां

यह पूर्वोक्त गुरु आचार्यादिकके पास जो प्रत्याख्यान पूर्वे अपणे आप करा था, सो विशेष करकें विधि पूर्वक गुरु मुखसें उच्चरावे, क्योंकि प्रत्याख्यान तीन तरेंसे करा जाता है, एक आत्मसाक्षिक, दूसरा देवसाक्षिक, तीसरा गुरुसाक्षिक, तिसकी विधि यह है, कि –

मदिरमें देवबदनार्थे, स्नात्रादि देखनेकें अर्थे, धर्मोपदेश देनेके अर्थे, गुरु जिनमदिरमें आया होवे, तथा वस्तिमें होवे, तहां मदिरकी तरें तीन निस्सही पंचाभिगमनादि यथायोग्य विधिसें जा करकें गुरुके धर्मोपदेशसें पहिलां तथा पीछें, यथाविधिसें पंचवीश आवश्यक शुद्ध द्वादशावर्त्त वदना देवे, वदनाका बडा फल कहा है, कृष्णवासुदेववत् तथा नाष्यमें वदना तीन तरेंकी कही हैं, एक तो मस्तक नमावणादि सो फेटा वदना, दूसरी सपूर्ण दो खमासमण पढनेसें स्तोजवदना होती है, तीसरी द्वादशावर्त्त करनेसें द्वादशावर्त्त वदना होती है, तिसमें प्रथम वदना तो सर्व सघको करणी, दूसरी वदना सर्व स्वदर्शनी साधुउंको करणी, अरु तीसरी वदना जो है, सो पदवीधर आचार्यादिककों करनी

जिसने सवेरेका पडिकमणां न करा होवे, तिसने विधि पूर्वक वदना करणी, क्योंकि नाष्यमें असेंही लिखा है १ नाष्योक्तविधि ईर्यापथप्रतिक्रमे २ पीछें कुस्वप्नका कायोत्सर्ग करे, सौ उत्सास प्रमाण करे, जेकर स्वप्नमें स्त्रीसें सगम करा होवे, तदा अशुचिकी सर्व जगा धोके पीछें एक सौ आठ श्वासोच्छ्वास प्रमाण कायोत्सर्ग करे, ३ पीछें चैत्यवदन करे, ४ पीछें मु

माश्रमण पूर्वक मुखवस्त्रिका प्रतिलेखे, ५ पीछें दो बंदना देवें, ६ पीछें दे वसिआदिक आलोवे, ७ फेर वदना दो देवे, ८ पीछें अभुठ्ठिमि कहे, ९ पीछें दो वंदना करे, १० पीछें प्रत्याख्यान करे, ११ पीछें नगवन् अह इ त्यादि चार क्षमाश्रमण देवे, १२ पीछें स्वाध्याय संदिसावउं कहे, फेर क्ष माश्रमण पूर्वक सझाय करू, ऐसें कहे, पीछें स्वाध्याय करे, यह स वेरकी वदनाविधि है

तथा प्रथम १ ईर्यापथ पडिक्कमे, २ पीछें चैत्यवदना करे, ३ पीछें क्षमाश्र मण पूर्वक मुखवस्त्रिकाका प्रतिलेखन करे, ४ पीछें दो वदना करे, ५ पी छें दिवसचरिमका प्रत्याख्यान करे, ६ पीछें दो वदना करे, ७ पीछें देव सि आलोउं कहे, ८ पीछें दो वदना करे, ९ पीछें अभुठ्ठिउ कहे, १० पीछें नगवन् इत्यादि चार स्तोजवदना करे, ११ पीछें दैवसिक प्रायश्चित्त का कायोत्सर्ग करे, १२ पीछें पूर्ववत् दो क्षमाश्रमण देकर स्वाध्याय करे, यह सध्याकी वदन विधि है.

जे कर किसी कार्य करणादिसें गुरुका चित्त और तर्फ होवे, तदा सक्षेप मात्र बंदना करे, ऐसें वदना पूर्वक गुरु पासों प्रत्याख्यान करावे, क्योंकि श्रावकप्रज्ञप्तिसूत्रमें लिखा है, कि प्रत्याख्यान करणेके परिणाम दृढनी होवे, तोजी गुरुके पासों करावें, गुरु पासों प्रत्याख्यान करानेमें यह गुण है, सो लिखते हैं १ दृढता होती है, २ आज्ञाका करणां होता है, ३ कर्म का क्षय होता है, ४ उपशमकी वृद्धि होती है

ऐसेंही दैवसिक चातुर्मासिक नियमादिनी गुरुका सन्नव होवें, गुरु सा क्षिकही करनां चाहियें, योगशास्त्रमें गुरुकी नक्ति ऐसें लिखी है ॥ श्लोक ॥ अन्युद्धान तदालोके, ऽनियान च तदागमे ॥ शिरस्यंजलिसश्लेष , स्वयमा सनढोकन ॥१॥ आसनानिग्रहो नक्त्या, वदना पर्युपासन ॥ तद्यानेऽनुगम मेति, प्रतिपत्तिरियं गुरौ ॥ २ ॥ अस्यार्थ – १ गुरुकों आता देखकें खडा हो जानां, २ सन्मुख लेने जानां, ३ मस्तक उपर अंजलि बाध कर प्रणाम करणां, ४ गुरुकों आसन देनां, ५ जब गुरु आसन उपर बैठ जावेगा, तब मैं आसन उपर बैठुगा, ऐसा अनिग्रह लेवे, ६ नक्तिसे व दना पर्युपासना करे, ७ जब गुरु जावे, तब पौहुचाने जावे, ८ यह गुरुकी नक्ति है तथा १ अडके गुरुके बराबर न बैठे, २ आगे न बैठे, ३ गुरुकी

तर्फ पीठ दे कर न बैठे, ४ पग उपर पग चढा करकें गुरुके पास न बैठे, ५ पाजठी मारके न बैठे, ६ हाथोसे जघाकों लपेटके न बैठे, ७ पग पसा रकें न बैठे, ८ विकथा न करे, ९ बहुत हसे नहीं, १० नींद न लेवे, ११ मन, वचन, काया गोप करकें हाथ जोडी नक्ति बहुमान पूर्वक उपयोग सहित सुणे, क्योंकि गुरु पासों धर्म सुननेंसें इस लोक परलोकमें बहुत गुण होता है

तथा गुरुकों पूछे, किसी साधुकों रोगादि होवे, तदा वैद्यकों बोलाउ? औष धिका योग मिलावु? इत्यादि गुरु गच्छकी सर्व तरेंसें खबर सार लेवे, नोजनके अ वसरमें उपाश्रयमें जा करकें साधुओंको निमत्रणा करे, तथा औषधि पथ्या दि जो जिसकों योग्य होवे, सो देवे, जब साधु, श्रावकके घरमें आवे, तब जो जो वस्तु साधुके योग्य होवे, सो सो सर्व वस्तुकों देने वास्ते निमत्रणा करे, सर्व वस्तुओंका नाम लेवे, जेकर साधु नहीं नी लेवे, तोनी दाताको जीर्णशेठवत् पुण्य फल है रोगी साधुकी प्रतिचर्या करणेंसें जीवानद वैद्यवत् महापुण्य फल होता है साधुओंके रहनेकों स्थान देवे, तथा जिनशासनके प्रत्यनीकको सर्वशक्तिसे निवारण करे, तथा साधवीयोंकों दुष्ट, नास्तिक, कुशील ज नोंसें रक्षा करे, अपने घरके पास बदोबस्त वाला गुप्त उपाश्रय रहनेकों देवे, उनोंको अपणी स्त्री, वहू, बहिन, बेटी प्रमुखसें सेवा नक्ति करावे, अपणी बेटीयोंकों साधवीयोंसें विद्या शिखलावे, जेकर किसी बेटीकों वैरा ग्य चढे, तब साधवीयोकों दे देवे, जे कर कोइ साधवी धर्मकृत्य नूल जावे, तदा स्मरण करा देवे, जेकर कोइ साधवी अन्यायमें प्रवृत्त होवे, तो निवार ण करे, तथा आप रोज गुरुपासो नवीन नवीन शास्त्र पढे, जेकर बुद्धि थोडी होवे, तदा ऐसा विचारे कि सुरमेंदानीमेंसें थोडा थोडा अजन नि कलनेसें अजन क्षय हो जाता है, तथा वर्मीका वधणा, ऐसे परिश्रम अन्या स करणेसें नि फल दिन न जाने देवे, थोडी बुद्धिनी होवे तोनी पढनेका अन्यास न छोडे, इत्यादि धर्मकृत्य करकें पीछें जेकर राजा श्रावक होवे, तदा राजसनामें जावे, प्रधान होवे, तो न्याय सनामें जावे, वणिया होवे, तदा हट्टीबजारमे जावे, इत्यादि उचित स्थानमें जा करके धर्मसे विरुद्ध न होवे, उसी रीतिसे धन उपार्जनेको चिंता करे

प्रथम राजा किस रीतिसे प्रवर्त्ते, सो लिखते है १ जो राजा होवे, सो दरिद्री, मान्य, अमान्य, उत्तम, अधमादि सर्वलोकोंका पक्षपात रहित मध्य

स्थ हो कर न्याय करे, २ राजाके कारजारी (मंत्री) आदिक तिनका धर्माविरोध यह है, कि राजाका अरु प्रजाका नुकशान न होवे, तैसें प्रवर्त्ते, क्योंकि जो मंत्री राजाका हित चाहता है, उस उपर प्रजा द्वेष करती है, अरु जो प्रजाका हितकारी है, उसकों राजा छोड देता है, इसी वास्ते राजमंत्री आदिकोंकों दोनोका हितकारी होना चाहियें

वणिक् व्यापारी लोकोंका धर्माविरोध यह है जो व्यापारकी शुद्धि करे ॥ तथैव चाह ॥ विवहारसुद्धि देसा,इ विरुद्ध चाय उचिय चरणेहि ॥ तो कुणइ अच्छचिंतं, निव्वाहितो निय धम्मं ॥ १ ॥ अस्यार्थ — व्यापारकी शुद्धि, देशादि विरुद्धका त्याग, उचित आचरण, इन तीनो प्रकारें करकें धन उपार्जनेकी चिंता करे, अरु अपणे धर्मकाभी निर्वाह करे, क्योंकि अैसा कोइ कार्य नहीं है, कि — जो धनसें सिद्ध न होवे ? तिस वास्ते बुद्धिमान् धन उपार्जनेमें यत्न करे ॥ यदाह ॥ नहि तद्विद्यते किंचि, यदर्थेन न सिद्ध्यति ॥ यत्नेन मतिमांस्तस्मा, दर्थमेकं प्रसाधयेत् ॥ १ ॥ इहां जो अर्थ चिंता है सो अनुवादरूप है, क्योंकि धन उपार्जनेकी चिंता लोकमें स्वत ही सिद्ध है, कुछ शास्त्रकारके उपदेशसें नहीं, 'अरु धर्म निर्वाहयन्' यह जो कहनां है, सो विधेय करने योग्य है, क्योंकि इसकी आगें प्राप्ति नहीं है, शास्त्रका जो उपदेश है, सो अप्राप्त अर्थकी प्राप्ति वास्ते है, शेष सर्व अनुवादादि रूप है अब आजीविका चलानेके प्रकार कहते है

आजीविका जो है, सो सात प्रकारसें है १ व्यापार करनेसें, २ विद्यासें, ३ खेती करनेसें, ४ पशुओंके पालनेसें, ५ कारीगरी करनेसे, ६ नौकरी करनेसें, ७ भीख मांगनेसें, तिनमें वणिज्य करनेसें वणिक लोकोंकी आजीविका है, २ विद्यासे वैद्यादिकोंकी आजीविका है, ३ खेती करनेसे कणबादिकोंकी है, ४ पशुपालनेसें गोपाल अजापालादिकोंकी है, ५ शिल्प करके चितारादिकोंकी है, ६ नौकरी करनेसें सिपाही लोकोंकी है, ७ भिक्षा करके मांग खानेवालोंकी आजीविका है तिनमें १ वणिज्य सो धान्य, घृत, तेल, कार्पास, सूत्र, वस्त्र, धातु, मणि, मोती, रूपइया, सोनइया प्रमुख जितनी जातका किरियाणा है, सो सर्व व्यापार है अरु जो व्याज देनां है, सोभी व्यापार है

२ विद्याभी औषधि, रस, रसायन, चूर्ण, अंजनादि, वास्तुक शास्त्र, पखी

का शकुन, नूत नविष्यतादि निमित्त, सामुद्रिक, चूडामणि, जवाहिर परखनेका शास्त्र, धर्म, अर्थ, काम, ज्योतिष तर्कादि नेदसे अनेक प्रकारकी है, इस वैद्यविद्यामें अतारपणा, पसारीपणां करनां ठीक नहीं, क्योंकि इसमें प्राय दुर्ध्यान होनेसे बहुत गुण नहि दिखता है, क्योंकि जिसकों जिस्से लान होता है, वो उसी वातकों चाहता है ॥ तडुक्त ॥ आर्या ॥ विग्रहमिन्नति नटा, वैद्याश्च व्याधिपीडितं लोक। मृतक बहुल विप्रा, क्षेम सुनिक्ष च निर्ग्रंथा ॥ १ ॥ अर्थ – सुनट सग्राम चाहते है, वैद्य रोगपीडित लोकोंकों चाहते हैं, अरु ब्राह्मण बहुत लोकोंकों मरणां चाहते हैं, तथा निरुपद्रव, सुकालकों साधु निर्ग्रंथ चाहते हैं, परंतु जो वैद्य अत्यंत लोनी होवे, धन लेने वास्ते उलटा औषधि जानके देवे, जिसके मनमें दया न होवे, जो त्यागी साधुओंकी औषधि न करे, जो दरिद्री, अनाथादि लोकोंकों मरते जानकेनी धन खोस लेवे, मांस मद्यादि अनक्ष्य वस्तुका नक्षण करनां बतावे, जूठी औषधि बनाके लोकोंको ठगे, वो वैद्यविद्या नरककी देने वाली है, सो न करनी चाहियें अरु जो वैद्य सत् प्रकृति वाला होवे, लोनी न होवे, पूर्वोक्त दूषण रहित होवे, परोपकारी होवे, असेकी वैद्य विद्या श्रीऋषनदेवजीके जीव जीवानद वैद्यकी तरें दोनों नवोंमें गुण देने वाली है, असी वैद्यविद्यासें आजीविका करे, तो अछी है

३–४ तीसरी खेती, चौथा पशुपालक, इसमें खेतीनी तीन तरेंसें होती है, एक मेघसें, दूसरी कूप नहरादिसें, तीसरी दोनोंसें चौथा पशु पालकपणा, सो गौ, महिष, बकरी, ऊंट, बैल, घोडा, हाथी, इनकों वेच वेचके आजीविका करणी, ये खेती अरु पशुपाल्य, यह दोनों काम विवेकीकों करने उचित नहीं जे कर इनके करे विना निर्वाह न होवे, तदा बीज बोनेका काल जाणे, नूमि सरस नीरस जाणे, अरु जो खेत पहिलां वाह्यां विना वोया न जावे, दूसरा रस्तेका क्षेत्र, यह दोनो, क्षत्रकों वर्जे, तो धनकी वृद्धि होवे, अरु जो पशुपाल्य पणां करे, तो पशुओ ऊपर निर्दय न होवे, पशुका कोइ अवयव न छेदे इसी तरें पशुपालपणा करे

५ पांचमी शिल्प आजीविका है, सो शिल्प सौ तरेंका है, मूल शिल्प तो पांच है, १ कुनार, २ लोहार, ३ चितारा, ४ वणकर, अर्थात् बुनने वाला, ५ नाइ, इन पांचोंके वीश वीश नेद है, यद्यपि इस कालमें न्यूनाधि

कनी होवेंगें, परंतु श्रीरूषनदेवजीने प्रथम सौ तरेंहीका शिल्प पर्याकों शिखलाया था, इस वास्ते सौही लिखा है जो सांसारिक विद्या है, सो सर्वकोइ शिल्पमें है, कोइ कर्ममें है, शिल्प, गुरु उपदेशसें आता है, सोही है, अरु कर्म स्वयमेवही आ जाता है, यह कर्मनी सामान्यसें चार प्रकारें है, १ उत्तम बुद्धिसें धन कमाता है, २ मध्यम हाथोंसे कमावे, ३ अधम पगोसें कमावे, ४ अधमाधम मस्तकसे बोजा ढो कर कमावे

६ सेवा करकें आजीविका करे, सो सेवा राजाकी, मंत्रीकी, शेठकी, सामान्य लोकोकी, नोकरी यह चार प्रकारें है प्रथम तो नौकरी किसी कीनी न करनी चाहियें, क्योंकि नौकर परवश हो जाता है, जे कर निर्वाह न होवे, तदा नौकरीनी करे, परंतु जिसकी नौकरी करे, उसमें यह कहे हूए गुण होवे, तो उसके वहां नौकर रहे, जो १ कानोंका डुर्बल न होवे, २ सूरमा होवे, ३ कृतज्ञ होवे, ४ सात्विक, गंनीर, धीर, उदार, शीलवान्, गुणोंका रागी होवे, उसकी नौकरी करे, अरु जो क्रूर प्रकृति वाला होवे, कुव्यसनी होवे, लोनी होवे, चतुर न होवे, सदा रोगी रहे, मूर्ख होवे, अन्यायी होवे, असोंकी नौकरी न करे, क्योंकि कामंदकीय नामक नीति शास्त्रमें लिखा है, कि जिस राजाको वृद्ध पुरुषोंनें सेवा करी होवे, सो राजा अछा है, स्वामीकोंनी चाहियें कि जैसा सेवक होवे, तैसा उसका सन्मान करे, सेवकनी थके हूए, नूखे हूये, क्रोधमें हूये, व्याकुल होये, तृपावत होये, शयन करने लगे, दूसरेके अर्ज करते हूये, इन अवस्थायोंमें स्वामीकों विनति न करें, तथा राजाकी माता, राजाकी राणी, राजकुमार, मुख्यमंत्री, अदालती, राजेका दरवाजेवान, इनके साथ राजाकी तरें वर्त्तना चाहियें इस रीतीसें प्रवर्त्ते, तो धनकी प्राप्ति डुर्लन नहीं ॥ यदूचे ॥ श्लोक ॥ इक्षुक्षेत्र समुद्रश्च, योनिपोषणमेव च ॥ प्रसादो नूभुजां चैव, सद्योऽघ्नंति दरिद्रतां ॥ १ ॥ निंदतु मानिनां सेवा, राजादीनां सुसेविण ॥ स्वजना स्वजनोद्धार, सद्दारो नविनातया ॥ २ ॥ मंत्री, श्रेष्ठी, सेनानी इत्यादि व्यापारनी सर्व नृपसेवाके अंतर्नावही हैं, परंतु जेहलखानेका दरोगादि, नगरका कोटवाल पणां, सीमापाल, इत्यादि नौकरी न करणी चाहियें, क्योंकि यह नौकरीयों निर्दयी लोकोंके करनेकी हैं, तिस वास्ते श्रावककों नहीं करनी जे कर कोइ श्रावक राजाधिकारी हो जावे,

तब वस्तु पालादिक मंत्रीयोंकी तरें महाधर्म कीर्त्तिका करनेवाला होवे, श्रावक मुख्यवृत्ति करकें तो सम्यग्दृष्टिकोही नौकरी करे

७ सातमी भीख मांगनेसें आजीविका है, सो भीख मांगनेकेभी अनेक भेद हैं, तिनमें धर्मोपष्टंभ मात्र आहार, वस्त्र, पात्रादिककी भिक्षा लेवे, सो भी जिस साधुने सर्वससार और परिग्रहका सग त्यागा है, तिसकों मांगनी उचित है, क्योंकि उसकी भीख मांगनेसें और गति नहीं है, श्रीहरिभद्रसूरिजीने पाचमे अष्टकमें भिक्षा तीन प्रकारकी लिखी है, प्रथम भिक्षा सर्व सपत्करी, दूसरी पौरुषघ्नी, तीसरी वृत्तिभिक्षा है, जो साधु परिग्रहका त्यागी, धर्मध्यान सयुक्त, जिनाज्ञासहित होनेसें षट्कायके आरंभसें रहित, तिसकी भिक्षा सर्व सपत्करी है, तथा जो साधु तो बन गया है, परंतु साधुके गुण उसमें नहि हैं, तथा जो गृहस्थावासमें लष्ट पुष्ट षट्कायका आरंभी पडिमावहे बिनाका श्रावक, तथा और गृहस्थ जो मांगकें खावे, तिसकी पौरुषघ्नी भिक्षा है, वो पुरुष धर्मकी लाघवताका करने वाला है, पूर्वजन्ममें जिनाज्ञा खमने वाला है, आगें अनत जन्म लग दुःखी रहेगा, तथा जो निर्धन, अधा, पांगला, असमर्थ, और कोइ काम करने समर्थ नहीं, वो भीख मांगकें खावे, वो तीसरी वृत्तिभिक्षा है, यह भिक्षा दुष्ट नहीं इस भीखके मांगनेसें लघुतादि धर्मके दूषण नहीं होते हैं, क्योंकी जो इनकों देता है, वो अनुकपा (दया) करकें देता है, देनेवाला पुण्य उपार्जन करता है, इस वास्ते गृहस्थकों भीख न मांगनी चाहियें धर्मी श्रावककों तो विशेष करकें भीख न मांगनी चाहियें, भिक्षा मांगनेसें धर्मकी निंदा, अरु धर्मकी निंदासें दुर्लभबोधी होता है, भीख मांगनेसें उदर पूर्ण तो हो जाता है, परंतु लक्ष्मी नहीं होती है ॥ यत ॥ लक्ष्मीर्वसति वाणिज्ये, किंचिदस्ति च कर्षणे ॥ अस्ति नास्ति च सेवाया, भिक्षायां न कदाचन ॥ १ ॥

मनुस्मृतिके चौथे अध्यायमेंभी लिखा है, कि जब वाणिज्य करे, तब कष्टमें सहायक, पूजीका बल, स्वभाग्योदय, देश, काल, देखकें करे, वाणिज्य करणे लगे, तब पहिला थोडा करे, पीछें लाभ जाणे, तो यथायोग्य करे, कदाचित् निर्वाहके न हूये खरकर्मभी करे, तोभी अपणे आपकों निंदता हूआ करे, विना देखा विना परीक्षाके सौदा न लेवे, जा सौदा सदेह वाला

होवे, वो बहुतोंके साथ मिल कर लेवे, जहां स्वचक्र परचक्रादिका उपद्रव न होवे, अरु धर्म सामग्री होवे, तिस क्षेत्रमें व्यापार करे

कालसें अषाढी तीन, पर्वतिथिके दिन व्यापार न करे, जो वस्तु वर्षा कालके साथ विरोधि होवे, सो त्यागे, जावसेंती जो क्षत्रिय जातिका व्यापारी राजा प्रमुख होवे, तिसके साथ व्यापार न करे, अपणे विरोधीकों उधारा न देवे, तथा नट विट वेश्या, जुआरी प्रमुखकों तो विशेष करकें उधारा नहींही देवे, हथीयारबंधके साथ तथा व्यापारी ब्राह्मणके साथ लेन देन न करे, मुख्य तो अधिक मोलका गहना रखकें व्याज्ञु देवे, क्योंकि उस्सें मांगनेका क्लेश, विरोध, धर्महानी, धरणादिक कष्ट नहीं होते हैं, जे कर ऐसें निर्वाह न होवे, तदा सत्यवादीकों व्याज्ञु उधार देवे, व्याज जी एक, दो, तीन, चार, पांच प्रमुख सैंकडे पीछें महीनेमें जले लोक जिसकों निंदे नहीं, ऐसा लेवे,

जेकर देना होवे, तदा करार उपर बिन मांग्याही देना चाहियें, कदाचित् निर्धनपणेसें एकवारमें दे न सके, तो किशत प्रमाणें जरुर दे देवे, क्योंकि देना किसीका न रखना चाहियें ॥ यडुक्त ॥ धर्मारंभे ऋणछेदे, कन्यादाने धनागमे ॥ शत्रुघातेऽग्निरोगे च, कालक्षेपं न कारयेत् ॥१॥ जे कर देना न उतरे, तब उसका नौकर रहकर जी देना उतार देवे, नहीं तो जवांतरोमें उसका कर्मकर (चाकर) महिष, बैल, उट, खर, खच्चर, घोडा प्रमुख बन कर देना पडेगा, लेने वालाजी जब जान लेवे, कि यह देने समर्थ नहि तब बिलकुल मागना छोड देवे, ऐसें कहे कि जब तू देने समर्थ होवेगा, तब दे देना, नहीं तो यह धन मैं अपणे धर्ममें लगाया, वहीमें लिख लेता हू, तेरेसें मैं कुछ नहीं लेवुगा?

श्रावककों मुख्यवृत्ति तो धर्मीजनोंसेंही व्यवहार करना चाहियें, क्योंकि दोनों पासें धन रहेगा तो धर्ममें लगेगा, अरु किसी म्लेछ पास धन रहि जावे, तदा व्युत्सर्जन कर देवे, व्युत्सर्जन करां पीछें जेकर वो म्लेछ फेर धन दे देवे, तदा वो धन धर्ममें खरचणे वास्ते सघकों सौंप देवे, अरु व्युत्सर्जन करा है, ऐसाजी कह देवे, ऐसेही जो कोइ वस्तु खोइ जावे, अरु ढुढनेसें न मिले, तो तिस वस्तुकाजी व्युत्सर्जन कर देवे, पीछें कदाचित् अपने पास

धनहानी हो जावे,धनकी अप्राप्ति हो जावे,तोजी खेद न करे, क्योंकी खेदका न करणां, यही लक्ष्मीका मूल कारण है,

बहुत धन जाता रहे, तोजी धर्म करणेमें आलस न करे, क्योंकि पदा अरु आपत् बडे आदमीकोंही होती है, सदा एक सरिखे दिन के नहीं जाते हे, पूर्व जन्म जन्मांतरके पुण्यपापोदयसे सपदा, होती है, इस वास्ते धैर्यका अवलबनां श्रेष्ठ है, यदा अनेक उपाय नेसेंजी दरिद्र दूर न होवे, तदा किसी नाग्यवान्का आधार लेवे, अर्थात् सांजो बनके व्यवहार करे, क्योंकि काष्ठके संग लोहाजी तर जाता है

जे कर बहुता धन हो जावे,तदा अजिमान न करे,क्योंकि लक्ष्मीके साथ पांच वस्तु होती हैं, १ निर्दयत्व, २ अहंकार, ३ तृष्णा, ४ कठिन वचन बोलनां, ५ वेश्या, नट, विट, नीच पात्र, वल्लन होते है, इस वास्ते बहुत धन हो जावे, तो इन पांचोंकों अवकाश न देवे, किसीके साथ लडाइ न करे,जबरदस्तके साथ तो विशेष करकें लडाइ नहिं करे, तथा १ धनवंत, २ राजा, ३ पक्षवाला, ४ बलवान्, ५ दीर्घरोषी, ६ गुरु, ७ नीच, ८ तपस्वी, इन आठोंके साथ वाद न करे, जहां तक नरमाइसें काम बने, तहां तक कठिनाइ न करे, लेने देनेमें भ्रांति जूलादिकसें अन्यथा हो जावे, तो विवाद न करे, किंतु न्यायसें झगडा मिटावे, न्याय करनेवालेकोंजी निर्लोंनी पक्षपात रहित होनां चाहियें, तथा जिस वस्तुके महगे होनेसें पर्यायकों पीडा होवे, असी वस्तुके महिंगे होनेकी चिंता न करे, परंतु कर्मयोगसें डुर्जिक्षादिक हो जावे, तबजी सौदेमें डुणे तिणे लान हो जावे, तदा अन्नमें अधिक न लेवे, तथा एक, दो, तीन, चार, पांच रूपइये सैंकडेसें अधिक व्याज न लेवे, किसीका गिर पडा धन न लेवे, तथा कालांतरमें क्रयविक्रयादिमें देशकालादि अपेक्षा उचित शिष्टजन अनिंदित लान होवे, सो लेवे, यह कथन प्रथम पंचाशकसूत्रमें लिखा है तथा खोटा तोल, खोटा मापा, न्यूनाधिक वाणिज्य रसमें नेल सनेल न करे, वस्तुका अनुचित मौल, अनुचित व्याज, लंचा अर्थात् घूस, कोडवट्टी न लेवे, घसा हूआ तथा खोटा रूपकादि किसीकों खरेमें न देवे, दूसरोंके व्यापारमें नंग न करे, ग्राहक न बकावे, वानकी और न दिखावे, अंधेरा करकें वस्तु न वेचे, जाली खत पत्रादि न बनावे, इत्यादि परवचन प

णाकों वर्जे, सर्वथा प्रकारें व्यवहार शुद्धि करे, क्योंकि व्यवहार शुद्धिही गृहस्थ धर्मका मूल है

तथा स्वामिद्रोह, मित्रद्रोह, विश्वासघात, बालद्रोह, वृद्धद्रोह, देवगुरुद्रोह न करे, थापणमोसा न करे, ये सर्व महापापके काम वर्जे, तथा कूडी साक्षी, रोष, विश्वासघात, कृतघ्नपणा, ये चारो, कर्मचमालपणा है, तिसको वर्जे, झूठ जो है, सो सर्व पापोसें बडा पाप है, इस वास्ते झूठ सर्वथा न बोले, न्यायसें धन उपार्जन करे, अरु जो अन्यायी लोक सुखी दिखते हैं, वो अन्यायसे सुखी नहीं है, किंतु उनके पूर्व जन्मके पुण्यके फलसें सुखी है, क्योंकि कर्मफल चार तरेंका है॥ यदाहुर्धर्मघोषसूरिपादा ॥ एक पुण्यानुबंधी पुण्य है, दूसरा पापानुबंधी पुण्य है, तीसरा पुण्यानुबंधी पाप है, चौथा पापानुबंधी पाप है यह चार प्रकार जो है, तिनकू किंचित् विस्तार पूर्वक कहते है

१ जिसने जिनधर्म नहीं विराध्या है, किंतु संपूर्ण आराधकें जो संसारमें भवांतरमें महा सुखी धनाढ्य उत्पन्न होवे, भरत बाहुबलकी तरें, सो पुण्यानुबंधी पुण्य है

२ जो पुरुष नीरोगादि गुणयुक्त होवे, अरु धनाढ्यभी होवे, परंतु कोणिकराजाकी तरें पाप करणेमें तत्पर होवे, यह पुण्य पूर्व भवमें अज्ञान कष्ट करणेसें होता है, सो पापानुबंधी पुण्य है

३ जो पुरुष पापके उदयसें दरिद्री अरु दुःखी होवे, परंतु श्रीजिनधर्ममें बडा अनुरक्त होवे, धर्म करणेमें तत्पर होवे, सो पुण्यानुबंधी पाप है, यह द्रुमकमहर्षिवत् पूर्व भवमें लेश मात्र दयादि सुकृत करणेसें होता है

४ पापी चंम कर्मका करनेवाला निर्धर्मी, निर्दय, पाप करके पश्चात्ताप रहित यह पुरुष दुःखीया है तोभी पाप करणेमें तत्पर है, सो पापानुबंधी पाप है, काल सौकरिकादिवत्

बाह्य जो नव प्रकारका परिग्रह रूप ऋद्धि है, अरु अंतरंग जो आत्माकी अनंत गुण रूप ऋद्धि है, सो पुण्यानुबंधी पुण्यसें होती है, ऐसें जेकर कोइ जीव पापानुबंधी पुण्यके प्रभावसे इस लोकमे सुखी दीखता है, तोभी आगले भवमें महा आपदा पावेगा, अरु जो महस्थूलकी चोरी है, सो स्वामिद्रोहमें है, यह चोरी इस लोक अरु परलोकमें अनर्थकी दाता

धनहानी हो जावे,धनकी अप्राप्ति हो जावे,तोजी खेद न करे, क्योंकी न करणां, यही लक्ष्मीका मूल कारण है,

वहुत धन जाता रहे, तोजी धर्म करणेमे आलस न करे, क्योंकि पदा अरु आपत् वडे आदमीकोही होती है, सदा एक सरिखे दिन के नहीं जाते है, पूर्व जन्म जन्मातरके पुण्यपापोदयसें संपदा, होती है, इस वास्ते धैर्यका अवलंबनां श्रेष्ठ है, यदा अनेक उपाय नेसेंजी दरिद्र दूर न होवे, तदा किसी जाग्यवान्का आधार लेवे, सांजी वनके व्यवहार करे, क्योंकि काष्ठके संग लोहाजी तर जाता है

जे कर वहुता धन हो जावे,तदा अजिमान न करे,क्योंकि लक्ष्मीके साथ पांच वस्तु होती हैं, १ निर्दयत्व, २ अहंकार, ३ तृष्णा, ४ कठिन वचन बोलनां, ५ वेश्या, नट, विट, नीच पात्र, वल्लन होते है, इस वास्ते वहुत धन हो जावे, तो इन पांचोंकों अवकाश न देवे, किसीके साथ लराइ न करे,जबरदस्तके साथ तो विशेष करकें लडाइ नहिं करे, तथा १ धनवंत, २ राजा, ३ पक्षवाला, ४ बलवान्, ५ दीर्घरोषी, ६ गुरु, ७ नीच, ८ तपस्वी, इन आठोंके साथ वाद न करे, जहां तक नरमाइसें काम बने, तहां तक कठिनाइ न करे, लेने देनेमें भ्रांति जूलादिकसें अन्यथा हो जावे, तो विवाद न करे, किंतु न्यायसें जगडा मिटावे, न्याय करनेवालेकोंजी निर्लोजी पक्षपात रहित होनां चाहियें, तथा जिस वस्तुके महंगे होनेंसें पर्यायकों पीडा होवे, असी वस्तुके महिंगे होनेकी चिंता न करे, परंतु कर्मयोगसें दुर्जिक्षादिक हो जावे, तवजी सौदेमें दुणे तिणे लाज हो जावे, तदा अन्नमें अधिक न लेवे, तथा एक, दो, तीन, चार, पांच रूपइये सैंकडेसें अधिक व्याज न लेवे, किसीका गिर पडा धन न लेवे, तथा कालांतरमें क्रयविक्रयादिमें देशकालादि अपेक्षा उचित शिष्टजन अनिंदित लाज होवे, सो लेवे, यह कथन प्रथम पंचाशकसूत्रमें लिखा है तथा खोटा तोल, खोटा मापा, न्यूनाधिक वाणिज्य रसमें जेल सजेल न करे, वस्तुका अनुचित मोल, अनुचित व्याज, लंचा अर्थात् घूस, कोडवट्टी न लेवे, घसा हूआ तथा खोटा रूपकादि किसीकों खरेमें न देवे, दूसरोंके व्यापारमें भंग न करे, ग्राहक न वकावे, वानकी और न दिखावे, अंधेरा करकें वस्तु न वेचे, जाली खत पत्रादि न वनावे, इत्यादि परवचन प

णाकों वर्जे, सर्वथा प्रकारें व्यवहार शुद्धि करे, क्योंकि व्यवहार शुद्धिही गृहस्थ धर्मका मूल है

तथा स्वामिद्रोह, मित्रद्रोह, विश्वासघात, बालद्रोह, वृद्धद्रोह, देवगुरुद्रोह न करे, थापणमोसा न करे, ये सर्व महापापके काम वर्जे, तथा कूडी साक्षी, रोष, विश्वासघात, कृतघ्नपणा, ये चारो, कर्मचमालपणा है, तिसकों वर्जे, कूव जो है, सो सर्व पापोसें बडा पाप है, इस वास्ते कूव सर्वथा न बोले, न्यायसें धन उपार्जन करे, अरु जो अन्यायी लोक सुखी दिखते है, वो अन्यायसें सुखी नहीं हैं, किंतु उनके पूर्व जन्मके पुण्यके फलसें सुखी हे, क्योंकि कर्मफल चार तरेंका है ॥ यदाहुर्धर्मघोषसूरिपादा ॥ एक पुण्यानुबंधी पुण्य है, दूसरा पापानुबंधी पुण्य है, तीसरा पुण्यानुबंधी पाप है, चौथा पापानुबंधी पाप है यह चार प्रकार जो है, तिनकू किंचित् विस्तार पूर्वक कहते है

१ जिसने जिनधर्म नहीं विराध्या है, किंतु संपूर्ण आराधकें जो संसारमें नवांतरमें माहा सुखी धनाढ्य उत्पन्न होवे, नरत बाहुबलकी तरें, सो पुण्यानुबंधी पुण्य है

२ जो पुरुष नीरोगादि गुणयुक्त होवे, अरु धनाढ्यनी होवे, परंतु कोणिकराजाकी तरें पाप करणेमें तत्पर होवे, यह पुण्य पूर्व नवमें अज्ञान कष्ट करणेसें होता है, सो पापानुबंधी पुण्य है

३ जो पुरुष पापके उदयसें दरिद्री अरु उःखी होवे, परतु श्रीजिनधर्ममें बडा अनुरक्त होवे, धर्म करणेंमें तत्पर होवे, सो पुण्यानुबंधी पाप है, यह ऊमकमहर्षिवत् पूर्व नवमें लेश मात्र दयादि सुकृत करणेसें होता है

४ पापी चंम कर्मका करनेवाला निर्धर्मी, निर्दय, पाप करके पश्चात्ताप रहित यह पुरुष उःखीया है तोनी पाप करणेमें तत्पर है, सो पापानुबंधी पाप है, काल सौकरिकादिवत्

बाह्य जो नव प्रकारका परिग्रह रूप ऋद्धि है, अरु अंतरंग जो आत्माकी अनंत गुण रूप ऋद्धि है, सो पुण्यानुबंधी पुण्यसें होती है, ऐसें जे कर कोइ जीव पापानुबंधी पुण्यके प्रनावसें इस लोकमे सुखी दीखता है, तोनी आगले नवमें महा आपदा पावेगा, अरु जो महत्तजकी चोरी है, सो स्वामिद्रोहमें है, यह चोरी इस लोक अरु परलोकमें अनर्थकी दाता

है जिसमें दूसरोंको पीडा होवे, ऐसे व्यवहार न करे ॥ यत. ॥ इंद्रवज्रा वृत्त । शाठ्येन मित्र कपटेन धर्म, परोपतापेन समृद्धिभाव ॥ सुखेन विद्या परुषे ण नारी, वाछति ये व्यक्तमपडितास्ते ॥ १ ॥ तथा जिसतरे लोकोंको राग भाव होवे तैसे यत्न करे ॥ यत ॥ वंशस्थ वृत्त ॥ जितेंद्रियत्व विनयस्य कारण, गुणप्रकर्षो विनयादवाप्यते ॥ गुणप्रकर्षेण जनोनुरंज्यते, जनानुरागप्र भवाहि सपद ॥ १ ॥ तथा धनहानिवृद्धि, सग्रहादि, गुह्य, दूसरोंके आगे प्रकाश न करे ॥ यत ॥ अनुष्टुप्वृत्त ॥ स्वकीय दारमाहार, सुकृतं द्रविण गुण ॥ दुष्कर्म मर्म मन्त्र च, परेषां न प्रकाशयेत् ॥ १ ॥ तथा झूठभी न बोले, जेकर राजा गुरु आदिक पूछे, तो सत्य कह देवे सत्य बोलना सोही पुरुषकी परमदशा है

तथा यथार्थ कहनेसें मित्रका मन हरे, तथा बांधव जनोकों सन्मानसें वश करे, तथा स्त्रीकों प्रेमसें वश करे, तथा चाकरोको दान देनेसें वश करे, तथा दाक्षिण्यता करके इतर लोकोंका मन हरे, तथा किसी जगे अ पणे कार्यकी सिद्धि करने वास्ते दुष्ट जनोंकोंभी अगुवे, (आगडी) करे, तथा जिस जगे प्रीति होवे, तहां लेने देनेका व्यापार न करे, यह क थन सोमनीतिमेंभी है

तथा साक्षी विना मित्रके घरमेंभी धनादिक रखना न चाहियें, क्योंकि लोभ बडा दुर्दांत है, तथा जो धन रखनेवाला मर जावे तो वो धन उसके पुत्रादिककों दे देना चाहियें, जे कर धन रखने वालेका कोइभी सबधी न होवे, तब वो धन सर्वलोकोंके समक्ष धर्मस्थानमें लगा देवे, तथा श्रा वक, देवगुरु, चैत्य, जिनमदिरकी चाहे सच्ची, चाहे झूठीभी शपथ अर्थात् सौगद न खावे, तथा दूसरोंका साक्षीभी न बने, यत् कर्पासिक ऋषि क हता है ॥ श्लोक ॥ अनीश्वरस्य द्वे नार्यौ, पथि क्षेत्र द्विधा कृषि ॥ प्रातिभा व्य च साक्ष्य च, पंचानर्था स्वयं कृता ॥ १ ॥

तथा श्रावक मुख्यवृत्तिसें तो जिस गाममें रहे, तहांही व्यापार करे, क्यों कि ऐसे करनेसें कुटुबका अवियोग तथा घरका कार्य अरु धर्मकार्यादिक सर्व बने रहते हैं, कदापि अपने गाममें निर्वाह न होवे, तदा निकट देशांतरमें व्यवहार करे, जहांसें कोइ योग्य काम पडे तो शीघ्र घरमें आ जावे, ऐ सा कौन पामर है ! कि – जिसका स्वदेशमें निर्वाह होवे, तोभी परदे

शमें जावे, उक्तमपि ॥ जीवतोपि मृता पच, श्रूयंते किल नारते ॥ दरिद्री व्याधितो मूर्ख , प्रवासी नित्यसेवक ॥ जे कर निर्वाह न होवे, तदा आप तथा पुत्रादिकोकों परदेशमें न भेजे, किंतु सुपरीक्षित गुमास्तेकों भेजे, जे कर स्वयमेव देशातरमें जावे, तदा भला मुहूर्त्त शकुन निमित्त देखकें अरु देव गुरुकों वदना करके मगलपूर्वक भाग्यवान् साथके वीचमें निद्रादि प्रमाद वर्जकें कितनेक अपने ज्ञातियोकों साथ ले कर जावे, क्योंकि भाग्यवान्के साथ जाता विघ्न टल जाता है, तथा लेनां, देना, गडा हूवा धन, सर्व, पिता, भाइ, पुत्रादिकोंकों कह जावे, अपणे सवधीयोंको भली शिक्षा दे जावे, बहुमान पूर्वक सर्वकों बोलाके जावे, परंतु जो जीवनेकी इछा होवे, तो देव गुरुका अपमान करकें, किसीको निर्भ्रछिके, स्त्रीयादिकको ताडना कूटना करकें, वालकको रुदन करवा करकें न जावे कदापि कोइ पर्व महोत्सवादिकका दिन निकट होवे, तदा उत्सव करके जावे ॥ यत ॥ उत्सवमशन सर्व, प्रगुण चोपेक्ष्य मगलमशेष ॥ असमापिते च सूतक,युगेऽग नर्त्ती च नो यायात् ॥ १ ॥ तथा दूध पीकें, मैथुन करकें, स्नान करकें, अपणी स्त्रीको हणके, वमन करकें, थूककें, रुदन करकें, कठिन शब्द सुणके, गालीया सुणकें, प्रदेशको न जावे, तथा शिर मुंमन करवाकें, आंसु गिराकें, खोटे शुकनके हूयें ग्रामांतर न जावे

तथा कार्यके वास्ते जव चले, तव जौनसा स्वर वहता होवे, उस पासेंका पग पहिला उठाकें धरे, जिस्से कार्यसिद्धि होवे, तथा रोगी, बूढा, ब्राह्मण, अधा, गौ, पूजनिक, राजा, गर्भवती स्त्री,भार उठानेवाला, इनकों कुब दे कर ग्रामांतरमें जावे, तथा धान्य पक्का वा कञ्चा पूजा योग्य मत्र मंमल, इनकों त्यागे नहीं,तथा स्नानका जल,रुधिर, मुरदा, थूंक, श्लेष्म, विष्टा, मूत्र, बलती अग्नि, साप, मनुष्य, शस्त्र, इनकों उल्लघे नहीं, तथा नदीके कांठे, गौओंके गोकुलमें, वड वृक्षके हेठ,जलाश्रयमें, अरु कूपकांठे, इतने जगो पर विष्टा न करे, तथा रात्रिको वृक्ष हेठ न रहे, उत्सव, सूतक, पूरा हूये परदेशको जावे, विना साथके न जावे, दासके साथ न जावे, मध्यान्हमें तथा अर्द्धरात्रिमें मार्गमें न चले, तथा क्रूर प्रकृतिवाला मनुष्य, कोटवाल, चुगल, दरजी, धोवी प्रमुख अरु कुमित्र, इतनोके साथ गोष्टि न करे, इनोके साथ अकालमें चले नहीं, तथा महिष, गर्दभ, अरु

गो, इनकी असवारी न करे, तथा हाथीसे हजार हाथ, गाडेसे पांच हाथ अरु घोडे तथा सिंग वाले जनावरोंसेनी पांच हाथ दूर रहे, तथा खरची विना रस्तेमें न चले, बहुत सोवे नहि, रस्तेमें किसीका विश्वास न करे, एकीला किसीके घरमें न जावे, जीर्ण नावा ऊपर चढे नहीं, एकला नदीमें न पैसे, कठिन जगामें उपाय विना न जावे, अगाध पाणीमें प्रवेश न करें, जहां बहुते क्रोधी होवे, अरु बहुते सुखोंके इच्छक होवे, तथा जहां घणे सूम होवे ऐसे सथवाराके साथ कदापि परदेश न जावे, तथा बांधनेके, मारणेके, जूआ खेलनेके, पीडाके, खजानेके, अंतेउरके, स्थानमें न जावे, तथा बूरे स्थानमें, श्मशानमें, शून्यस्थानमें, चौकमें, शूके घासमें कूडेमें, ऊंची नीची जगामें, उकरूडीमें, वृक्षाग्रमें, पर्वताग्रमें, नदीके कांठेमें, कूपके कांठेमें, इतने स्थानोंमें बैठे नहीं, तथा जो जो कृत्य जिस जिस कालमें करना है, सो करे, परंतु छोडे नहि

तथा पुरुषको जो नला वस्त्रादि पहरनेका आमबर चाहियें सो न छोडे, परदेशमें तो विशेष करके आमबर, नहीं छोडनां, क्योंकि आमबरसें अनेक कार्य सिद्ध हो जाते हैं, तथा जो कार्य करणां सो पंच परमेष्ठिस्मरण पूर्वक तथा गौतमादि गणधरोंका नामग्रहण पूर्वक करे, तथा देव गुरु की नक्ति वास्ते धनकी कल्पना करे, क्योंकि जब धन कमावनेका प्रारंन करनां, तबही नफेमेंसू इतना हिस्सा सात क्षेत्रमें लगावुंगा? ऐसी नावना जरुर करनी चाहियें

जदा लान हो जावे, तदा चिंता अनुसारें मनोरथ सफल करे, क्योंकि व्यापारका फल यह है, कि—धन होना, अरु धन होनेका फल यह है, कि धर्ममें धन लगानां, नहीं तो व्यापार करनां सो नरक तिर्यंचगति होनेका कारण है, जे कर धर्ममें खरचे, तो धर्मधन कह्या जावे, जेकर नहीं खरचे तो पापधन कह्या जावे क्योंकि ऋद्धि तीन प्रकारकी है, एक धर्मऋद्धि, दूसरी नोग ऋद्धि, तीसरी पापऋद्धि उसमें जो धर्मकार्यमें लगावे, सो धर्म ऋद्धि तथा जो शरीरके नोगमे आवे सो नोगऋद्धि अरु धर्म तथा नोगसें जो रहित, सो पाप ऋद्धि जाननी, इस वास्ते नित्य प्रत्यें स्वधनकों दानादि धर्ममें लगानां चाहियें, जेकर थोडा धन होय तो थोडा लगाने, क्योंकि किसीकों इच्छानुसारिणी शक्ति होती है तथा धन उत्पन्न करनेका उपाय

नित्य करना चाहियें,परंतु अत्यंत लोन न करना चाहियें, तथा धर्म, अर्थ, अरु काम यथा अवसरमें सेवना, परंतु अत्यंत कामासक्त न होना चाहियें, अरु जो धन उत्पन्न करना सोजी न्यायसें उत्पन्न करना चाहियें, यहां न्यायार्जित धन सत्पात्रमें देना, लगाना, तिसके चार नग है, सो लिखते हैं

१ न्यायोपार्जित सत्पात्रविनियोग रूप प्रथम नग पुण्यानुबंधी पुण्यका हेतु होनेसे वैमानिक देवतापणा नोगनूमि मनुष्यपणा सम्यक्त्वादिककी प्राप्ति निकट मोक्ष फल है, धनसार्थवाह तथा शालिनद्रादिवत्

२ न्यायोपार्जित असत्पात्रविनियोगरूप दूसरा नग पापानुबंधी पुण्यका हेतु होनेसें नोग मात्र फलनी है, तोनी बेकड विरस फल है, जैसे लक्ष्य नोज्यकरणे वाला ब्राह्मण बहुत नवोंमें किंचित्सुख नोगके सेचनक नामा सर्वांग सुलक्षणो नद्र हस्ती हूआ.

३ अन्यायसें आया सत्पात्रपरिपोषरूप तीसरा नग है, तिसका अछे खेतमें जैसें सामक वो देने वत् फल है, यह सुखानुबंधी होने करकें राजके कारनारीयोंके बहुत आरंनोपार्जित धनवत् है परंतु असा धननी धर्ममें लगावे. तो अछा है, जैसें आनूके पर्वतोपरि जिनमंदिर बनाने वाले विमलचंद्र अरु तेजपाल मंत्रीकी तरें अछा है, जेकर असा धननी धर्ममें न लगावे, तो डुर्गति अरु अपकीर्त्तिका फल है, मम्मन शेठवत्

४ अन्यायार्जित कुपात्रपोष रूप चौथा नग है, यह नग सर्वथा प्रकारें त्यागने योग्य है, क्योंकि अन्यायार्जित जो धन कुपात्रकों देना, सो असा है, कि – जैसा गौकों मारकें उसके मांससें कागोंका पोषण करना, इस वास्ते गृहस्थकों न्यायसें धनार्जन करना चाहिये

श्राद्धदिनकृत्य सूत्रमें लिखा है, कि – व्यवहारशुद्धि जो है, सोही धर्मका मूल है, जिसका व्यापार शुद्ध है, उसका धननी शुद्ध है, जिसका धन शुद्ध है, उसका आहार शुद्ध है, जिसका आहार शुद्ध है, उसकी देह शुद्ध है, जिसकी देहशुद्ध है, वो धर्मके योग्य है, असा पुरुष जो जो कृत्य करे, सो सर्व सफल होवे, अरु जो व्यवहार शुद्ध न करे, वो धर्मकी निंदा करानेसें स्वपरकों डुर्लनबोधी करे, इस वास्ते व्यवहार शुद्धि जरुर करनी चाहियें ॥ इति व्यवहारशुद्धिस्वरूप समाप्त ॥

तथा देशादि विरुद्ध त्यागे, सो देश, काल, राजविरुद्धादि परिहरे,

गो, इनकी असवारी न करे, तथा हाथीसें हजार हाथ, गाडेसें पांच हाथ अरु घोडे तथा सिंग वाले जनावरोसेंभी पांच हाथ दूर रहे, तथा खरची विना रस्तेमें न चले, बहुत सोवे नहि, रस्तेमे किसीका विश्वास न करे, एकीला किसीके घरमे न जावे, जीर्ण नावा ऊपर चढे नहीं, एकला नदीमें न पैसे, कठिन जगामें उपाय विना न जावे, अगाध पाणीमें प्रवेश न करें, जहा बहुते क्रोधी होवे, अरु बहुते सुखोके इछक होवे, तथा जहा घणे सूम होवे ऐसे सथवाराके साथ कदापि परदेश न जावे, तथा बाधनेके, मारणेके, जूआ खेलनेके, पीडाके, खजानेके, अंतेउरके, स्थान में न जावे, तथा बूरे स्थानमें, श्मशानमें, शून्यस्थानमें, चौकमें, शूके घासमें कूडेमें, ऊची नीची जगामें, उकरूडीमें, वृक्षाग्रमें, पर्वताग्रमें, नदीके कांठेमें, कूपके कांठेमें, इतने स्थानोमें बैठे नहीं, तथा जो जो कृत्य जिस जिस कालमें करनां है, सो करे, परतु छोडे नहि

तथा पुरुषकों जो भला वस्त्रादि पहरनेका आम्बर चाहियें सो न छोडे, परदेशमें तो विशेष करकें आम्बर, नहीं छोडना, क्योंकि आम्बरसे अनेक कार्य सिद्ध हो जाते हैं, तथा जो कार्य करणा सो पंच परमेष्ठिस्मरण पूर्वक तथा गौतमादि गणधरोंका नामग्रहण पूर्वक करे, तथा देव गुरु की भक्ति वास्ते धनकी कल्पना करे, क्योंकि जब धन कमावनेका प्रारंभ करनां, तबही नफेमेंसू इतना हिस्सा सात क्षेत्रमें लगावुगा ? ऐसी भावना जरुर करनी चाहियें

जदा लाभ हो जावे, तदा चिंता अनुसारें मनोरथ सफल करे, क्योंकि व्यापारका फल यह है, कि —धन होनां, अरु धन होनेका फल यह है, कि धर्ममें धन लगानां, नहीं तो व्यापार करनां सो नरक तिर्यंचगति होनेका कारण है, जे कर धर्ममें खरचे, तो धर्मधन कह्या जावे, जेकर नहीं खरचे तो पापधन कह्या जावे क्योंकि ऋद्धि तीन प्रकारकी है, एक धर्मऋद्धि, दूसरी भोग ऋद्धि, तीसरी पापऋद्धि उसमें जो धर्मकार्यमें लगावे, सो धर्म ऋद्धि तथा जो शरीरके भोगमे आवे सो भोगऋद्धि अरु धर्म तथा भोगसें जो रहित, सो पाप ऋद्धि जाननी, इस वास्ते नित्य प्रत्यें स्वधनकों दानादि धर्ममें लगानां चाहियें, जेकर थोडा धन होय तो थोडा लगाने, क्योंकि किसीकों इछानुसारिणी शक्ति होती है तथा धन उत्पन्न करनेका उपाय

नोंका वेष रखनां, मैले वस्त्र पहिरने, इत्यादि लोकविरुद्ध है यह सर्व इस लोकमें अपयशका कारण है ॥ यडुवाच वाचकमुख्य ॥ लोक खल्वाधार, सर्वेषां धर्मचारिणां यस्मात् ॥ तस्माल्लोकविरुद्ध, धर्मविरुद्ध च सत्याज्यं ॥ १ ॥ अर्थ — उमास्वाति पूर्वधारी आचार्य कहते हैं, कि — सर्वधर्म करने वालोके लोकजन समुदाय आधार है, तिस वास्ते लोकविरुद्ध अरु धर्म विरुद्ध यह दोनों, त्यागने योग्य हैं, क्योंकि असें करनेंसे धर्मका सुखें निर्वाह होता है, लोक विरुद्धकें त्यागनेसें सर्व लोकोको वल्लभ होता है, अरु जो लोकोको वल्लभ होना है, सोइ सम्यक्त्व तरुका वीज है

अथ धर्म विरुद्ध लिखते हैं मिथ्यात्वकी करणी, सर्व गौ आदिकको निर्दय होके ताडनां, बांधनां, जू, मांकडादिकों निराधार गेरणे, धूपमें गेरणे, शिरमें कधीसें लीख फोडनी, उष्ण कालमें तथा शेष कालमे चौडा, लंबा, गाढा गलनां पाणी गलनेके वास्ते न रखनां, पाणी छानके पीछें जीवोको युक्तिसें पाणीमे न गेरनां, तथा अन्न, इंधन, शाक, दाल, तांबूल, अरु फलादिकोंको विना शोधें खानां, तथा अक्षत, सोपारी, खारीक, वाल्हु, उलि, फली प्रमुख संपूर्ण मुखमें गेरे, टूटीके रस्ते, तथा पाणी आदिकको धारा बांध कर पीवे, तथा चलतेमे, बैठनेमें, स्नान करतां, हरेक वस्तु रखतां, लेतां, रांधतां, धान छडता, पीसतां, औषधि घसतां, तथा मूत्र, श्लेष्म, कुरलादि, काजल, तंबोलका उगाल गेरतां, उपयोगसें न करे, तथा धर्ममे अनादर करे, देव, गुरु, अरु साधर्मीसें द्वेष धरे, जिनमंदिरका धन खावे, अधर्मीकी संगति करे, धर्मीयोंका उपहास करे, कषाय बहुलता होवे, तथा बहुत पापकारी क्रय विक्रय खरकर्म करनां, पापकी नौकरी करनी, इत्यादि सर्व धर्मविरुद्ध है, यह पांच प्रकारका विरुद्ध श्रावककों त्यागनां चाहियें

अथ उचित आचरण कहते हैं उचित आचरण सो, पितादि नव प्रकारकी है स्नेहवृद्धि कीर्त्यादि हेतु, सो हितोपदेशमाला ग्रंथसे लिखते हैं एक पिताके साथ उचित, दूसरा माताके साथ उचित, तीसरा भाइयोंके साथ, चौथा स्त्रीके साथ, पांचमा पुत्रके साथ, छठा स्वजनके साथ, सातमा गुरुके साथ, आठमा नगरवालोंके साथ, नवमा परतीर्थी अर्थात् दूसरे मतवालोंके साथ, यह नवके साथ उचित आचरण करणां,

यह कथन हितोपदेशमालामे लिखा है, कि देश, काल, राज, अरु विरुद्ध जो त्यागे, सो पुरुष सम्यग्धर्मको प्राप्त होता है

तिनमे देशविरुद्ध तो जैसे कि –सौवीरदेशमे खेती करणी,लाट देशमें दिरा बनानी, यह देश विरुद्ध है, तथा औरनी जो जिस देशमें नोकें अनाचीर्ण है, सो तिस देशमे विरुद्ध जानना जाति कुलादि जो अनुचित होवे, सो देशविरुद्ध है, जैसे ब्राह्मण जातिको सुरापान रना, तिल लूणादि वेचना, सो कुलापेक्षा विरुद्ध है, तथा जैसे मद्यपान करना, तथा और देशवालोके आगे और देशवालोंकी निंदा रणी, यहनी देशविरुद्ध है

तथा कालविरुद्ध, सो जैसे हिमालयके पास अत्यंत शीतगर्मी गल तथा मरुदेशमें वर्षातमें अत्यंत पिच्छिल (पंक) संयुक्त दक्षिण समु द्रके पर्यंत नागोमें, तथा अति दुर्भिक्षमे, दो राजाओंका परस्पर विरोध होनेसें, धाडने रस्ता रोका होवे, दुरुत्तार महाअटवीमें, सांझकी वेला न यमें, इतने स्थानकोंमें तैसा सामर्थ्य सहायादि दृढ बल विना जावे, तो प्राण धन नाशादि अनर्थकारि है, तथा फागुण मास पीछे तिलोंका व्या पार, तिल पीलाने, तिल नक्षण करने वर्षाऋतु चउमासेमें पत्र शाकका मह ण करणां, तथा बहुजीवाकुल नूमिमें हल फेराना, यह महा दोषका का रण है, यह सर्व कालविरुद्ध जान लेनां

तथा राजविरुद्ध यह है कि –राजाके दोष बोलना, जिसकों राजा माने तिसकों न माननां,तथा राजाके वैरीयोंसें मेल करनां, राजाके शत्रुके स्था नमें लोनसे जानां, राजाके शत्रुके पासो आयेके साथ व्यापार करनां, राजाके काममें अपणी इच्छासे विधि निषेध करणां,

तथा लोकविरुद्ध यह है कि – नगरनिवासियोंके साथ प्रतिकूल पणा करणां, तथा स्वामिद्रोह करणां, लोकोंकी निंदा करणी, गुणवान अरु धन वानकी निंदा करणी, अपणी बडाइ करणी, सरलकी हांसी करणी, गुणवान्में मत्सर रखनां, कृतघ्नत्व करणां, बहुत लोकोंके जो विरोधी होवे, उसकी संगति करणी, लोकमान्यकी अवज्ञा करणी, नले आचार वालेको कष्ट पडे, तव राजी होनां, अपनी शक्तिके हुये साधर्मीके कष्ट कों दूर न करनां, देशादि उचिताचार लंघन करना, थोडे धनके हूए गु

नोंका वेष रखना, मैले वस्त्र पहिरने, इत्यादि लोकविरुद्ध है. यह सर्व इस लोकमें अपयशका कारण है ॥ यडुवाच वाचकमुख्य ॥ लोक खल्वाधार, सर्वेषां धर्मचारिणा यस्मात् ॥ तस्माल्लोकविरुद्ध, धर्मविरुद्ध च सत्याज्यं ॥ १ ॥ अर्थ —उमास्वाति पूर्वधारी आचार्य कहते हैं, कि —सर्वधर्म करने वालोंके लोकजन समुदाय आधार है, तिस वास्ते लोकविरुद्ध अरु धर्म विरुद्ध यह दोनों, त्यागने योग्य हैं,क्योंकि असें करनेसें धर्मका सुखें निर्वाह होता है, लोक विरुद्धके त्यागनेसे सर्व लोकोंको वल्लभ होता है, अरु जो लोकोंको वल्लभ होना है, सोइ सम्यक्त्व तरुका बीज है

अथ धर्म विरुद्ध लिखते हैं मिथ्यात्वकी करणी, सर्व गौ आदिकको निर्दय होके ताडनां, बांधनां, जू, मांकडादिकों निराधार गेरणे, धूपमें गेरणे, शिरमें कधीसें लीख फोडनी, उष्ण कालमें तथा शेष कालमे चौडा, लंबा, गाढा गलनां पाणी गलनेके वास्ते न रखनां, पाणी गलके पीछें जीवोंको युक्तिसें पाणीमे न गेरनां, तथा अन्न, इंधन, शाक, दाल, तांबूल, अरु फलादिकोंको विना शोधे खानां, तथा अक्षत, सोपारी, खारीक, वाल्द, उलि,फली प्रमुख संपूर्ण मुखमें गेरे, टूटीके रस्ते, तथा पाणी आदिकको धारा बाध कर पीवे, तथा चलतेमे, बैठनेमें, स्नान करतां, हरेक वस्तु रखतां, लेता, रांधतां, धान छडतां, पीसतां, औषधि घसतां, तथा मूत्र, श्लेष्म, कुरलादि, काजल, तंबोलका उगाल गेरतां, उपयोगसें न करे, तथा धर्ममे अनादर करे, देव, गुरु, अरु साधर्मीसें द्वेष धरे, जिनमंदिरका धन खावे,अधर्मीकी संगति करे, धर्मीयोंका उपहास करे, कषाय बहुलता होवे, तथा बहुत पापकारी क्रय विक्रय खरकर्म करनां, पापकी नौकरी करनी, इत्यादि सर्व धर्मविरुद्ध है, यह पांच प्रकारका विरुद्ध श्रावककों त्यागना चाहियें

अथ उचित आचरण कहते हैं उचित आचरण सो, पितादि नव प्रकारकी है स्नेहवृद्धि कीर्त्यादि हेतु, सो हितोपदेशमाला ग्रंथसे लिखते हैं एक पिताके साथ उचित, दूसरा माताके साथ उचित, तीसरा भाइयोंके साथ, चौथा स्त्रीके साथ, पांचमा पुत्रके साथ, छठा स्वजनके साथ, सातमा गुरुके साथ, आठमा नगरवालोंके साथ, नवमा परतीर्थी अर्थात् दूसरे मतवालोंके साथ, यह नवके साथ उचित आचरण करणां.

१ तिनमें प्रथम पिताके साथ उचित आचरण सो मन, वचन, और काया करके तीन प्रकारे है, तिसमें काया करके तो पिताके शरीरकी शुश्रूषा करे, किंकर दासकी तरें विनय करे, विना मुखसे निकलाही पिताका वचन प्रमाण करे, पिताके शरीरकी शुश्रूषा करे, पिताके चरण धोवे, मुष्टि चांपी करे, उठावे, बैठावे, देश काल उचित जोजन, शय्या, वस्त्र, शरीरविलेपनादिका योग मिलावे, विनयसे करे, परंतु आग्रहसें न करे, आप करे, परंतु नोकरोंसे न करावे, पिताके वचन प्रमाण करणे वास्ते श्रीरामचंद्रजी राज्याभिषेक छोडके वनवासमें गये, तथा पिताका वचन सुण्या अणसुण्या न करे, मस्तक धुनना, कालक्षेप करे नहीं, पिताके मनके अनुसारें प्रवर्त्ते, तथा सर्व कृत्योंमे यत्नपूर्वक जो अपने मनमें कार्य करणा उत्पन्न हूआ है, सो पिता आगे कह देवे, पिताके मनकों जो कार्य गमे, सो करे, क्योंकि माता, पिता, गुरु, बहुश्रुत, ये आराधे हूये सर्व कार्यका रहस्य प्रकाश देते है, माता, पिता, कदाचित् कठिन वचनजी बोले, तोजी क्रोध न करे, जो जो धर्मका मनोरथ माता पिताके होवे, सो सो पुरे करे, इत्यादि माता पिताके साथ उचित आचरण करे

माताके साथ उचित आचरण, सोजी पितावत् करे, परंतु माताके मनोरथ पितासेंजी अधिक पुरे, देवपूजा, गुरुसेवा, धर्म सुननां, देशविरति अंगीकार करणी, आवश्यक करणा, सात क्षेत्रोंमें धन लगानां, तीर्थयात्रा, अनाथ दीनका उद्धार करणां, इत्यादि माताके मनोरथ विशेष करकें पूर्ण करे, क्योंकि यह करणे योग्यही है, ये पूर्वोक्त कृत्य जले सपूत पुत्रोंकों इस लोकमे गुरु, माता, पिता है, सो माता पिताको जो पुत्र श्रीअर्हतके धर्ममे जोडे, तो ऐसा और कोइ उपकार जगत्मे नहीं है, उस पुत्रने माता पिताका सर्व ऋण दे दीया, और किसी प्रकारसेंजी माता पिताका देणा पुत्र नहिं दे सक्ता है, यह कथन श्रीस्थानांग सूत्रमे है

अब यह मातपिताके उचिताचरणमे जो विशेष है, सो लिखते है माताके चित्तके अनुसार प्रवर्त्ते, क्योंकि स्त्रीका स्वजावही ऐसा होता है, कि जलदी पीडाकों प्राप्त हो जानां, इस वास्ते जिस कामसें माताकों पीडा होवे, सो काम न करे, क्योंकि पितासेंजी माता विशेष पूज्य है ॥ यन्मनु ॥ श्लोक ॥ उपाध्यायाद्दशाचार्य, आचार्येन्य शतं

पिता ॥ सहस्रं तु पितुर्माता, गौरवेणातिरिच्यते ॥ १ ॥ तथा औरोनेंनी कहा है कि जहा तक दूध पीवे, तहां तक अपनी माता असें पशु जानते हैं, तथा आहार न खावे तहां तक अधम पुरुष, माता जानते हैं, तथा जहा तक घरका काम करे, तहां तक मध्यम पुरुष, माता जानता है, अरु जहा तक जीवे, तहां तक तीर्थकी तरें माताकों उत्तम पुरुष, मानते हे पशुओंकी माता पुत्रसें सुख मानती है, धन उपार्जे तो मध्यम पुरुषकी माता सुख मानती है, तथा पुत्र वीर होवे, संपूर्ण धर्माचरण करकें संयुक्त होवे, निर्मलचरितवाला होवे, तब उत्तम पुरुषको माता संतोष पावे है

७-अथ-सहोदरके साथ उचित आचरण लिखते है बडे नाईकों तो पिता समान जाने, अरु छोटे नाइको सर्वकार्योंमें माने, तथा जे कर दूसरी माताका बेटा होवे, तो जैसें श्रीरामचंद्र और लक्ष्मणकी परस्पर प्रीति थी, तैसी प्रीति करणी चाहियें, असेंही बडे नाइ अरु छोटे नाइकी स्त्रीयोके साथ तथा पुत्र पुत्रीयोंके साथनी उचिताचरण यथायोग्य करे, परंतु पृथग्नाव न करे, नाइकों व्यापारमें पुछे, छानी वात न रखे, तथा धननी नाइसें गुप्त (छानां) न रखे, अपणे नाइको असी शिक्षा देवे, जिस्सें उसकों कोइ धूर्त्त न छल सके, जे कर नाइको खोटी संगति लग जावे, तथा अविनीत होवे, तदा क्या करे? सो कहते हैं जेकर अविनीत होवे, तदा आप शिक्षा देवे, तथा नाइके मित्र पासों उलांना देवावे, तथा सगा संबधीयोंसें शिक्षा देवावे, काकासें, मामासें, सुसरासें, इनके पुत्रोंसें अविनीत नाइकों शिक्षा देवावे, अन्योक्ति करकें शिक्षा देवावे, परंतु आप तर्जना न करे, अरु जे कर आप तर्जना करे, तव क्या जाने निर्लज्ज होकर निर्मर्याद हो जावे? सन्मुख बोल उठे? तिस वास्ते हृदयमें स्नेह सहित उपरसें जब नाइकों देखे, तब असे जान पडे जो नाइ मेरे उपर बहुत वे राजी है, जब नाइ विनयमार्गमें आ जावे, तदा निकपट मीठे वचन बोलकें प्रेम धरे, कदाचित् नाइ अविनीतपणा न छोडे, तब चित्तमें ऐसा विचारे की – इसकी प्रकृतिही असी है, तब उदासीन पणेसें प्रवर्त्ते, तथा नाइकी स्त्री अरु पुत्रोंके साथ दान सन्मान देनेमे समदृष्टि होवे, तथा दो मातके पुत्रके साथ विशेष करकें दान सन्मान प्रेमादि करे, क्योंकि उसके साथ थोडानी अंतर करें, तो उसकों वे प्रतीति

१ तिनमे प्रथम पिताके साथ उचित आचरण सो मन, वचन, काया करके तीन प्रकारे है, तिसमें काया करके तो पिताके .. शुश्रूषा करे, किंकर दासकी तरे विनय करे, विना मुखसें निकला पिताका वचन प्रमाण करे, पिताके शरीरकी शुश्रूषा करे, चरण धोवे, मुष्टि चापी करे, उठावे, बेठावे, देश काल उचित जोजन, शय्या, वस्त्र, शरीरविलेपनादिका योग मिलावे, विनयसे करे, परंतु आग्रहसे न करे, आप करे, परंतु नोकरोंसे न करावे, पिताके वचन प्रमाण करणे वास्ते श्रीरामचंद्रजी राज्याजिषेक गेडकें वनवासमें गये, तथा पिताका वचन सुण्या अणसुण्या न करे, मस्तक धुनना, कालक्षेप करे नहीं, पिताके मनके अनुसारें प्रवर्त्ते, तथा सर्व कृत्योंमे यत्नपूर्वक जो अपने मनमें कार्य करणा उत्पन्न हूआ है, सो पिता आगें कह देवे, पिताके मनकों जो कार्य गमे, सो करे, क्योंकि माता, पिता, गुरु, बहुश्रुत, ये आराधे हूये सर्व कार्यका रहस्य प्रकाश देते है, माता, पिता, कदाचित् कठिन वचनजी बोले, तोजी क्रोध न करे, जो जो धर्मका मनोरथ माता पिताके होवे, सो सो पूरे करे, इत्यादि माता पिताके साथ उचित आचरण करे

माताके साथ उचित आचरण, सोजी पितावत् करे, परंतु माताके मनोरथ पितासेंजी अधिक पूरें, देवपूजा, गुरुसेवा, धर्म सुनना, देशविरति अंगीकार करणी, आवश्यक करणा, सात क्षेत्रोंमें धन लगाना, तीर्थयात्रा, अनाथ दीनका उद्धार करणा, इत्यादि माताके मनोरथ विशेष करकें पूर्ण करे, क्योंकि यह करणे योग्यही है; ये पूर्वोक्त कृत्य जले सपूत पुत्रोंकों इस लोकमे गुरु, माता, पिता है, सो माता पिताको जो पुत्र श्रीअर्हतके धर्ममे जोडे, तो असा और कोइ उपकार जगत्मे नहीं है, उस पुत्रने माता पिताका सर्व ऋण दे दीया, और किसी प्रकारसेंजी माता पिताका देणा पुत्र नहिं दे सक्ता है, यह कथन श्रीस्थानांग सूत्रमे है

अब यह मातपिताके उचिताचरणमे जो विशेष है, सो लिखते हैं माताके चित्तके अनुसार प्रवर्त्ते, क्योंकि स्त्रीका स्वजावही असा होता है, कि जलदी पीडाकों प्राप्त हो जाना, इस वास्ते जिस कामसे माताकों पीडा होवे, सो काम न करे, क्योंकि पितासेंजी माता विशेष पूज्य है ॥ यन्मनु ॥ श्लोक ॥ उपाध्यायाद्दशाचार्य, आचार्याणां शतं

वो स्त्रीका नरतार उपर अत्यंत प्रेम हो जाता है, तथा स्त्रीकों न देखनेसें, अतिदेखनेसें, देख कर न बुलानेसें, अपमान देनेसें, अहंकार करनेसें, इन पूर्वोक्त बातोंसें प्रेम टूट जाता है

तथा नरतार बहुत परदेशमें रहे, तब स्त्री कदाचित् अनुचित काम कर लेवे, इस वास्ते बहुत काल परदेशमेंजी न रहना चाहियें, तथा स्त्रीका अपमान न करे, स्त्री जूल जावे, तो शिक्षा देवे, रूस जावे, तो मना लेवे, तथा धनकी हानी वृद्धि, घरका गुह्य, स्त्रीके आगें प्रगट न करे, तथा क्रोधमें आ करकें दूसरी स्त्री न विवाहे, क्योंकि दो स्त्री करनी महा दुःखों का कारण है, कदाचित् संतानादिकके वास्ते दो स्त्रीजी कर लेवे, तदा दोनों उपर समजावसें प्रवर्त्ते, तथा स्त्री किसी काममें जूल जावे, तदा ऐसी शिक्षा देवे, कि जे कर फेर वो स्त्री, उस कामकों न करे, तथा रूसी स्त्रीकों जे कर नहि मनावे, तो सोमजट्ट नार्या अबावत् कूवेमें गिर पडे, इत्यादि अनर्थ करे इस वास्ते स्त्रीसें सर्वकाम, स्नेहकारी वचनोंसें करावे, नतु कविनतासें

जेकर निर्गुण स्त्री मिले, तब विशेष करकें नरमाइसें प्रवर्त्ते, परंतु स्त्रीकों घरमें प्रधान न करे, जिस घरमें पुरुषकी तरें स्त्री सामर्थ्य प्रधान पणा करे, वो घर नष्ट हो जाते हैं, यह कहना, बाहुल्यतासें है, क्योंकि कोइक स्त्री तो ऐसी बुद्धिमान् होती है, कि — जेकर उसकों पूछके कार्य करे, तो बहुत गुणके तांइ होता है, जैसे तेजपालकी नार्या, अनुपदेवीकों तेजपाल अरु वस्तुपाल पूछके काम करते थे, तथा स्त्री जब धर्म कार्योंमें तप करे, चारित्र लेवे, उद्यापन करे, दान देवे, देवपूजा, तीर्थयात्रादि करे, तथा यह बातोंकों करनेका मनमें उत्साह धरे, तब धन देवे, सुशील सहायक दे के उसका मनोरथ पूर्ण करे, परंतु अंतराय न करे, क्योंकि स्त्री जो धर्मकृत्य करेगी उसमेंसें पतिकोंजी पुण्य होगा, क्योंकि पति उस कृत्य करणेमें बहुत राजी रहे है ॥ इति ॥ ५ ॥

५ अथ पुत्रके साथ उचिताचरण लिखते हैं पिता अपने पुत्रकों बाल अवस्थामें बहुत मनोज्ञ पुष्टाहारसें पोषे, स्वेछा नाना प्रकारकी क्रीडा करावे, क्योंकि मनोज्ञ पुष्ट आहार देनेसें बालकको बुद्धि, बल, अरु कांतिकी वृद्धि होती है, स्वेछा क्रीडा करानेसे शरीर पुष्ट होता है, अरु अ

हो जावे, अरु लोकोमें निंदा होवे ऐसेही माता, पिता अरु नाइके स मान जो और जन है, तिनोके साथभी यथोचित उचिताचरण विचार है नां ॥ यत ॥ जनकश्चोपकर्त्ता च, यस्तु विद्या प्रयच्छति ॥ अन्नद प्राणद श्चैव, पचैते पितर स्मृता ॥ १ ॥ राजपत्नी गुरो पत्नी, पत्नीमाता तथैव च ॥ स्वमाता चोपमाता च, पचैता मातर स्मृता ॥ २ ॥ सहोदर सहा ध्यायी, मित्र वा रोगपालक ॥ मार्गे वाक्यसखा यश्च, पचैते भ्रातर स्मृता ॥ ३ ॥ अस्यार्थ सुगम ॥ तथा अपणे भाइको धर्मकार्यमें अवश्य प्रेरणा करे, भाइकी तरें मित्रके साथभी उचिताचरण करे

४ अथ स्त्रीके साथ उचित कहते है स्त्री विवाहिताके साथ स्नेह स युक्त वचन बोलकें स्त्रीकों अभिमुख करे, वल्लभ, और स्नेह सयुक्त वचन, निश्चय प्रेमका जीवन है, तथा स्त्री पासों स्नान करावे, अपणा स्नान प गचपी प्रमुखमें स्त्री प्रत्यें प्रवर्त्तावे, जब स्त्री विश्वास पा करकें सच्चा स्नेह धरेगी, तब कदापि बुरा आचरण न करेगी, तथा देश काल कुटुंब धना दि उचित वस्त्राभरण देवे, क्योंकि अलकार सयुक्त स्त्री लक्ष्मीकी वृद्धि करती है, तथा स्त्रीकों रात्रिमें कहीं जाने न देवे, तथा कुशील पुरुषकी अरु पाखंडी भगत योगी योगीकोंकी सगति न करणे देवे, स्त्रीकों घरके काममें जोड देवे, तथा राजमार्गमें वेश्याके पाडेमें न जाने देवे, धर्मकृत्य पडिक्कमणा सामायिकादिक जे कर करणे वास्ते धर्मशाला उपाश्रयमें जावे, तदा माता बहिनादि सुशील धर्मिणी स्त्रीयोंकी टोलीमें जावे, आवे घरका काम, दान देनां, सगे सबधीका सन्मान करणां, रसोइका कारण करणां, यह सब करे, तथा प्रभात समयें शय्या उगावे, घर प्रमार्जन करे, दूधके बर्त्तन धोवे, चौकादि चुल्लेकी क्रिया करे, तथा भांडे धोने, अन्न पीसणां, गौ, भैंस दोहनी, दहिं विलोनां, रसोइ करणी, खाने वालोंकों पुरोसनां, जूठे बर्त्तन शुचि करने, सासु, भरतार, नणद, देवर, इतनोका विनय करनां, इत्यादि पूर्वोक्त कामोंमें स्त्रीकों जोडे, अर्थात् काम करणेमें तत्पर करे, जे कर स्त्रीकों पूर्वोक्त कामोंमें न जोडे, तब स्त्री, चपलतासें विकारकों प्राप्त हो जाती है, काममें लगे रहनेंसे स्त्रीकी रक्षा, गोपना होती है, तथा भरतार स्त्रीके सन्मुख देखे, बोलावे, गुणकीर्त्तन करे, धन, वस्त्र, आ भूषण देवे, जिस तरें स्त्री कहे, उस तरें करे, स्त्रीकों दूर न छाडे, तब

करे, क्योंकि प्रयोजनके वशसें कदा काल देशांतरमेंभी जानां पडे, तो कोइ कष्ट न होवे, तथा दो मातके पुत्रके साथ विशेष उचित करे

६ अब सगोंके साथ उचित करणां लिखते हैं, पिता, माता, स्त्रीके पक्षके जो लोक हैं, तिनकों स्वजन कहते हैं, यह स्वजनोंका कोइ घरके वडे काममें तथा सदा काल सन्मान करे, तथा आपभी स्वजनोंके काममें अग्रेश्वरी बने, जो स्वजन धनहीन होवे, रोगातुर होवे, तिसका उद्धार करे, क्योंकि स्वजनका जो उद्धार करणां है, सो तत्त्वसें अपणाही उद्धार करणां है तथा स्वजनके परोक्ष उनकी निंदा न करे, तथा स्वजनके वैरीयोंसें मित्राचारी न करे, स्वजनादिकसें प्रीति करणी होवे, तदा शुष्क कलह, हास्यादि, वचनकी लडाइ न करे, स्वजन घरमें न होवे, तो उसके घरमें एकिला न जावे, देव, गुरु, धर्म अरु धनके कार्यमें स्वजनोंके साथ सामिल रहे, जिस स्त्रीका पति परदेशमें गया होवे, ऐसे स्वजनके घरमें एकिला न जावे, तथा स्वजनोंके साथ लेने देनेका व्यापार न करे॥ तथाह ॥ यदीछेहिपुलां प्रीतिं, त्रीणि तत्र न कारयेत् ॥ वाग्वादमर्थसंबंध, परोक्षे दारदर्शनम् ॥ १ ॥ तथा इस लोकके कार्यमें स्वजनोंके साथ एक चित्त रहे, अरु जिनमंदिरादि कार्यमें तो विशेष करकें स्वजनसेंही मिलकें करे, क्योंकि ऐसे कार्य जे कर बहुतोंसें मिलकें करे, तोही शोभा है इत्यादि स्वजनोचित जानना

७ अब गुरुउचित कहते हैं धर्माचार्यके साथ उचित भक्ति आंतरंगकी बहुमान, वचन, कायाका आवश्यक प्रमुख कृत्य करणां, गुरु पासों शुद्ध श्रद्धा करकें धर्मोपदेश श्रवण करणां, गुरुकी आज्ञा माने मनसेंभी गुरुका अपमान न करे, गुरुके अवर्णवाद किसीकों बोलने न देवे, गुरुकी प्रशंसा सदा प्रगट करे, गुरुके प्रत्यक्ष वा परोक्ष स्तुति करे, गुरु स्तुति जो है, सो अगणित पुण्यबंधनेका कारण है, गुरुके छिद्र कदापि न देखे, गुरुसें मित्रकी तरें अनुवर्त्तन करे, गुरुके प्रत्यनीक निंदककों सर्व शक्तिसे निवारण करे, कदाचित् गुरु, प्रमादके वशसें कहीं चूक जावे, तब एकांत हितशिक्षा देवे, अरु कहे कि हे भगवन् ! तुम सरीखोंकों यह काम करणां उचित नहि, गुरुका विनय करे, गुरुके सन्मुख जावे, गुरु निकट आवे, तो आसन छोडकें खडा हो जावे, गुरुकों आसन देवे, गुरुकी पग

गोपांग संकुचित नहीं होते हैं ॥ यदुक्तं ॥ श्लोक ॥ लालयेत् पंच वर्षाणि, दश वर्षाणि ताडयेत् ॥ प्राप्ते षोडशमे वर्षे, पुत्रं मित्रवदाचरेत् ॥ १ ॥ तथा गुरु, देव, धर्म अरु सुखी स्वजन, इनकी संगति करावे, जली जाति, कुलआचार, शीलवान् ऐसा पुरुषके साथ मित्राचार करावे, क्योंकि गुरु आदिकका परिचय होनेसे बाल्यावस्थामें जली वासनावाला हो जाता है, वल्कलचीरीवत् जाति, कुल, आचारशील संयुक्तकी मित्रतासें, दैवयोगसें कदापि अनर्थनी आ पडे, तोनी जले मित्रकी सहायसे कष्ट दूर हो जाता है, जैसें अजयकुमारके साथ मित्रता करनेसे आर्द्रकुमारकों जली वासना, हो गइ, तथा जब अढार वर्षका पुत्र हो जावे, तब उसका विवाह करे, क्योंकि बाल्यावस्थामें वीर्यक्षय हो जानेसें बुद्धि, पराक्रम अरु आयु, अधिक नहीं होता है, सर्व जैनमतके शास्त्रोंमें ऐसेही लिखा है, कि जब पुत्रकों जोगसमर्थ जाने, तब पुत्रका विवाह करे, तथा जिस कन्यासें विवाह करावे, उस कन्याका कुल, जन्म; रूप; सरिखा होवे, तब विवाह करावे, तथा पुत्रके उपर घरका जार सर्व गेरे, घरका स्वामी बना देवे, तथा जिस कन्यामें सरिखे गुण न होवे, उसके साथ विवाह करानां महा विडबना है, विवाहजेद आगें लिखेंगे, जब पुत्रके उपर घरका जार हो वेगा, तब चिताक्रांत होनेसें कोइजी स्वछंद उन्मादादि न करेगा, क्योंकि वो जान जावेगा कि धन, बडे क्लेशोंसें प्राप्त होता है, इस वास्ते अनुचित व्यय न करनां चाहियें, ऐसा वो आपसें जान जावेगा, परंतु पुत्रकी परीक्षा करकें पीछें उसके घरका जार जाल देवे, जैसे प्रसेनजित राजानें श्रेणिकपुत्रकों दीया, तथा पुत्रकी तरें पुत्रीके साथ अरु जत्तीजादिकके साथ जी यथायोग्य उचित जान लेनां, ऐसेंही बेटेकी बहूके साथजी धनश्रेष्ठीकी तरें उचिताचरण करे, तथा प्रत्यक्ष पणे पुत्रकी प्रशंसा न करे, तथा जब कष्ट पडे, तब दुःख सुखकी बात कहे, तथा आय व्ययका स्वरूप कहे, तथा पुत्रकों राजसजा देखावे, क्योंकि क्या जाने बिना विचार्या कोइ कष्ट आ पडे, तब क्या करे? तथा कोइ कुष्टजन उपद्रव कर देवे, तब राजसजा बिना बूटकारा नहीं होता है॥ श्लोक ॥ तस्योक्तं ॥ आर्या ॥ गतव्य राजकुले, इष्टव्याराजपूजिताश्लोका ॥ यद्यपि न जवत्यर्था, स्तथाप्यनर्था विलीयंते ॥ १ ॥ तथा, पुत्रकों परदेशका आचार, व्यवहारादिकसें जानकार

कर कुशल होवेंगे? तिस वास्ते अवश्य धर्मार्थीयोने उचिताचरणमें निपुण होनां चाहियें ॥ इति नवविध उचिताचरण समाप्त ॥

अब अवसरमें उचित बोलनां, यही बडा गुणकारी है, तथा औरजी जो कुशोनाकारी होवे, सो त्यागे ॥ उक्तं च विवेकविलासादौ ॥ जंनाइ, छींक, ऊकार, तथा हसनां, यह सब मुख ढांकके करे, तथा सजाके बीच नाकमें अंगुली घालके मैल न काढे, हाथ मोडे नहीं, पर्यस्तिका न करे, पग न पसारे, निज्ञा विकथा न करे, सजामें कोइ बुरी चेष्टा न करे, जो कुलीन पुरुष है, सो अवसरमें हसे, तो होठ फरकने मात्र हसे, परंतु मुख फाडके न हसे, अपणा अंग बजावे नहि, तृण तोडे नहि, व्यर्थ जूमिमें लिखे नहि, नखों करकें दांत घसे नहिं, दांतों करी नख न तोडे, अजिमान न करे, जाट चारणकी करी हुइ प्रशंसा सुनके गर्व न करे, अपणे गुणोंका निश्चय करे, बातकों समजके बोले, नीच जन जो अपनेकों हीन वचन कहे, तो उसकों बदलेका हीन वचन न बोले, जिस वस्तुका निश्चय न होवे, सो बात प्रगट न कहे, जो कोइ पुरुष कार्य करे, अरु उस कार्य करणेमें वो समर्थ न होवे, तिसकों पहिलां वर्ज देवे, कहे कि यह काम तुम न करो, तथा किसीका बूरा न बोले, जेकर वैरीका बूरा बोले, तो उसका अटकाव नहि, परंतु सोजी अन्योक्ति करकें बोले, तथा माता, पिता, रोगी, आचार्य, पराहुणा, अन्यागत, जाइ, तपस्वी, वृद्ध, बाल, स्त्री, वैद्य, पुत्र, गोत्री, पामर, बहिन, बहिनोइ, मित्र, इन सर्वके साथ वचनकी लडाइ न करे, सदा सूर्यकों न देखे, तथा चंड सूर्यके ग्रहणकों न देखे, कम्रे (गहिरे) कूवेकों फूकके न देखे, सध्या समय आकाश न देखे, तथा मैथुन करतेकों, शिकार मारतेकों, नगी स्त्रीकों, यौवनवती स्त्रीकों, पशुक्रीडाकों, कन्याकी योनिकों, इतनेकों देखे नहीं तथा तेलमें, जलमें, शस्त्रमें, मूतमें, रुधिरमें, इतनी वस्तुओंमें अपणा मुख न देखे, क्योंकि इस कामसें आयु टूट जाती है, तथा अंगीकार करेकों त्यागे नहि, नष्ट हो गइ वस्तुका शोक न करे, किसीका निज्ञाछेद न करे, बहुतोंसें वैर न करे, जो बहुतोंकों सम्मत होवे, सो बोले, जिस काममें रस न होवे, सो न करे, कदापि करनां पडे, ताजी बहुतोंसें मिलकें करे, तथा धर्म, पुण्य, दया, दानादि शुज काममें बुद्धिमान् मुख्य होवे, अग्रेश्वरी

चपी करे, गुरुको शुद्ध, निर्दोष, वस्त्र, पात्राहारादि देवे, यह द्रव्योपचार करे, अरु जावोपचार सो गुरुका परदेशमें सदा स्मरण करे, इत्यादि

८ अब नगर निवासी जनोंका उचित कहते है जिस नगरमें रहे, उस नगरके निवासी जनोके साथ उचित इसी प्रकारसे करना कि – अपणे सरीखी जीन व्यापारीयोंकी वृत्ति होवे, उनके साथ जो एकचित्तसें सुख, डुःख, व्यसन, कष्ट, राजउपद्रवादिमें बराबर रहे, उनके उत्साहमें उत्साहवान् होवे, राजदरबारमें किसीकी चुगली न करे, तथा नगरनिवासीयोंसें फटे नहीं, सर्वसें मिल कर राजका हुकुम करे, क्योंकि जब निर्बल पुरुष बहुते एकठे होकें कार्य करे, तब तृणरज्जुवत् बलवान् हो जाते हैं, जब विवाद हो जावे, तब नि पक्ष होकें कार्य करे, किसीसे लचा ले कें फूठा काम न करे, तथा किसीसें थोडीसी लडाइ हो जावे, तो उसका राजमें पुकार न करे, तथा राजाके कारजारीयोंसें लेने देनेका व्यापार न करे, क्योंकि उनलोकोंकों नाणां देनेके अवसरमें क्रोध आ जाता है, तब वो कोइ और अनर्थ कर देते हैं, तथा समानवृत्ति नागरोंकी तरें असमान वृत्ति वाले नगरनिवासीयोंके साथजी यथायोग्य उचिताचरण करे ॥ ८ ॥

९ अथ परतीर्थी परमत वालोके साथ उचिताचरण लिखते हैं जो परमतवाला जिक्षाके वास्ते उसके घरमें आवे, वो सर्वका उचित करे, तथा राजाका माननीयका विशेष उचित करे, उचित कृत्य सो यथायोग्य दान देनां चाहे, जे कर उन साधुओंकी मनमें जक्ति नहींजी होवे, तोजी घरमें मांगने आयेकों देनां चाहिये, क्योंकि –दान देनां यह गृहस्थका धर्महीहै, तथा महंत कोइ घरमें आ जावे, तो आसन, दान, सन्मुख जानां, उठके खडा होनां प्रमुख करे, तथा परमतवाला किसी कष्टमें पडा होवे, तदा उसका उद्धार करे, डुःखी जीवोंकी दया करे, पुरुषापेक्षा मधुर आलापादि करे, तथा अन्यमतवालेकों कामका पूछनादि करे, जैसें कि आपका आनां किस प्रयोजनके वास्ते हूआ है ? पीछें जो कार्य वो कहे, सो कार्य जे कर उचित होवे, तो पूरा कर देवे, तथा डुःखी, अनाथ, अंधा, बधीर, रोगी प्रमुख दीन लोकोंकी दीनताकों यथाशक्तिसें प्रतिकार करे, जो श्रावकादि पूर्वोक्त लौकिक उचिताचरणमें कुशल नहीं होवे, तो वो जिनमतमेंजी क्यों

फल हो जावे, इस वास्ते दिशावलोकन करे, जो भोजन साधुकों न दीया होवे, सो भोजन श्रावक न खावे, तथा जो श्रावक लष्ट पुष्ट साधुकों बिना कारण अशुद्ध आहार देवे, तो लेने देने वाले दोनोंकों रोगीके दृष्टांत करिकें हितकारी नहिं है तथा जिस साधुका निर्वाह न होवे, दुर्भिक्ष होवे, साधु रोगी होवे तथा और कोइ कारण होवे, तो उस साधुकों अशुद्ध अप्राशुक आहार देवे, तो लेने देने वाले दोनोकों हितकारी होवे, तथा रस्तेके थकेकों, रोगीकों, शास्त्र पढने वालेकों, लोच करेकों, पारणेके दिनकों, दान देवे, तो बहुत फल होता है, इस सुपात्रदानका नाम अतिथिसंविभाग कहते हैं ॥ यदागम ॥ अतिहि संविभागो नाम नायगयाण ॥ इत्यादि पाठका अर्थ कहते हैं, अतिथि संविभाग व्रतकों कहते हैं, कि जो न्यायसें आया कल्पनीय अन्न, पाणी प्रमुख, देश, काल, श्रद्धा सत्कार क्रमयुक्त उत्कृष्ट भक्तिसें आत्माकों अनुग्रह बुद्धिसें, संयत साधुकों दान देवे, सुपात्र दानसें देवता संबंधी तथा औदारिकादि संबंधी अद्भुत भोग इष्ट सर्व सुखसमृद्धि राज्य प्रमुख मनगमतासंयोगादि प्राप्ति, और निर्विलंब, निर्विघ्न, मोक्षफलप्राप्ति है, क्योंकि अभयदान, अरु सुपात्र दान, तो मोक्ष देते है, और अनुकंपादान, उचितदान, अरु कीर्त्तिदान, यह तीनों सांसारिक सुखभोगोंके देने वाले हैं

पात्रभी तीन तरेंका कह्या है एक उत्तम पात्र साधु है, दूसरा मध्यमपात्र श्रावक है, तीसरा अविरतिसम्यग्दृष्टि, सो जघन्यपात्र है तथा अनादर, कालविलंब, विमुख, खोटा वचन बोलनां, अरु दान देके पश्चात्ताप करणां, ये पांच सत्दानके कलंक है तथा आनंदके आंसु आवे, रोमांच होवे, बहुमान देवे, मीठा बोले, दान दीये पीछें अनुमोदना करे, यह पांच सुपात्र दानके भूषण है, सुपात्रदानका परिग्रह परिमाण करनेका फल, रत्नसार कुमारकी तरें होता है, यह कथा श्राद्धविधि ग्रंथसें जान लेनी इस वास्ते ऐसे साधु आदि संयोगके मिलेसें सुपात्रदान, दिन प्रतिदिन विवेकवान् अवश्य करे

तथा यथाशक्ति भोजनावसरमें आये साधर्मीयोंकों अपने साथ भोजन करावे, क्योंकि वोभी पात्र हैं, तथा अंधे आदि मांगनेवालोंकोंभी यथा योग्य देवे, परंतु किसी मांगनेवालेकों निराश न जाने देवे, धर्मकी निंदा

बने, तथा किसीके बूरे करनेमें जलदी अग्रेश्वरी न बने, तथा सुपात्र साधुमें कदापि मत्सर ईर्ष्या न करे, तथा अपणे जातिवालेके कष्टकी उपेक्षा न करे, पंच एकठे मिल कर आदरसे उनकी कष्ट दूर करे, तथा माननीयका मानभ्रंश न करे, तथा दरिद्रपीडित, मित्र, साधर्मिक, न्यातिमें बुद्धिवाला होवे, तथा गुणो करके बडा होवे, बहिन संतान रहित होवे, इन सर्वकी पालना करे, अपने कुलमें जो काम करने योग्य न होवे, सो न करे, इत्यादि तथा नीतिशास्त्रोक्त तथा और शास्त्रोंमें जो उचिताचरण होवे, सो करे, अरु अनुचित होवे,सो वर्जे, मध्यान्हमें पूर्वोक्त विधिसें विशेष करकें प्रधान शाल्योदनादि निष्पन्न निःशेष रसवती ढोवे, दूसरी वार जिनपूजा, जो मध्यान्हकी पूजा, अरु भोजन, इन दोनोका कालनियम नहीं, क्योंकि जब भूख लगे, सोइ भोजनकाल है, इस वास्ते मध्यान्हसें पहिलांभी प्रत्याख्यान पारकें देव पूजापूर्वक भोजन करे, तो दोष नहीं, वैदकग्रथोंमेंभी लिखा है, कि – एक प्रहरमें दो वार भोजन न करे, तथा दो प्रहर उल्लंघे नहीं, क्योंकि एक प्रहरमें दो वार खानेसें रसोत्पत्ति होती है, अरु जेकर दो प्रहर पीछें न खावे, तो बलक्षय होता है

अब सुपात्रदानादिककी युक्ति लिखते हैं, सो ऐसें है कि – भोजन वेलामें भक्ति सहित साधुओंकों निमंत्रणा करकें, साधुके साथ घरमें आवे, अथवा साधु स्वयमेव आता होवे तब सन्मुख जाके आदर करे, विनयसहित संविज्ञ भावित अभावित क्षेत्र देखे, तथा सुभिक्ष दुर्भिक्षादिक काल देखे, तथा सुलभ दुर्लभादि देने योग्य वस्तु देखे, तथा आचार्य, उपाध्याय, गीतार्थ, तपस्वी, बाल, वृद्ध, ग्लान, सह असहादि अपेक्षा करकें महत्त्व, स्पर्द्धा,मत्सर, स्नेह, लज्जा, भय, दाक्षिण्य, परानुयायिपणा, प्रत्युपकार, इछा, माया, विलंब, अनादर, बूरा बोलना, पश्चात्तापादि ये सर्व दानके दूषण वर्जकें आत्माकों संसारसें तारनेके वास्ते ऐसी बुद्धिसें बेंतालीश दूषण रहित जो कुछ घरमें अन्न, पकान्न, पाणी, वस्त्रादि होवे, तिसकी अनुक्रमसें सर्व निमंत्रणा करे, अपणे हाथमें पात्र लेके पास रही भार्यादिकसें दान दिलावे, पीछें वंदना करकें अपने घरके दरवाजे तक साथ जावे, फेर पीछा आवे, जे कर साधु न होवे, तदा बिना बादलों मेघकी तरें साधुका आना देखे, जे साधु आ जावे, तो मेरा जन्म स

सर्व नोजन बराबर हो जाता है, इस वास्ते एक क्षणमात्रका स्वादके वास्ते अति लोल्यता न करनी चाहियें, तथा अनक्ष्य अनतकाय, बहु सावद्य वस्तु, अर्थात् बहुत पापवाली वस्तु न खावे,तथा जो थोडा खाता है, सो बहुत बलादिवान् होता है, तथा जो बहुत खाता है, सो अल्प खानेके फलवाला होता है, तथा अधिक खानेसें अजीर्ण वमन विरेचनादि मरणांत कष्टनी हो जाता है ॥ श्लोक ॥ हितमितविपक्वनोजी, वामशयी नित्यचक्रमणशील ॥ उज्झितमूत्रपुरीष , स्त्रीषु जितात्मा जयति रोगान् ॥ १ ॥ अर्थ –जो नूख लगे तो हितकारी असा अन्न थोडा जीमे, वामा पासा हेठ करकें सोवे, नित्य चलनेका स्वनावशील होवे, जब बाधा होवे, तबही दिसामात्रा करे, स्त्रीसें नोग न करे, वो पुरुष रोगोंकों जींत लेता है

अथ नोजनविधि, व्यवहार शास्त्रादिकोंके अनुसार लिखते हैं अतिप्रनातमें, अतिसध्यामें, तथा रात्रिमें नोजन न करना चाहियें, तथा सडा, वास्या, अन्न न खावे, चलता हूआ न खावे, तथा जीमणा (दाहिण) पग ऊपर हाथ रखके न खावे,हाथ ऊपर रखकें न खावे,खुल्ले आकाशमें न खावे, धूपमें बैठकें न खावे, अधारेमें वृक्षके तलें न खावे, तर्जनी अंगुली ऊंची करकें कदापि न खावे, मुख, हाथ, पग, अरु वस्त्र, विना धोयां न खावे,नगा हो कर मैले वस्त्रोंसें, दाहिणे हाथसें, थालकों विना पकडे, न खावे, धोती आदिक एक वस्त्र पहिरकें न खावे, नींजे वस्त्र पहिरकें न खावे, नींजे वस्त्रसें मस्तक लपेटकें न खावे, यदा अपवित्र होवे, तदा न खावे, अति गृद्ध रस लपट हो कर न खावे, तथा जूते सहित, व्यग्रचित्त, नि केवल नूमि ऊपर बैठकें, अरु मजे ऊपर बैठके न खावे, विदिशिकी तर्फ तथा दक्षिणकी तर्फ मुख करकें न खावे, पतले आसनपैं बैठकें नोजन न करे, तथा आसन ऊपर पग रखकें नोजन न करे, चमालके देखते न खावे, जो धर्मसें पतित होवे, उसके देखते न खावे, तथा फूटे पात्रमें अरु मलीन पात्रमें न खावे, जो शाकादिक वस्तु विष्टासें उत्पन्न होवे, सो न खावे, बालहत्यादि जिसने करी होवे इनने तथा रजस्वला स्त्रीने जो वस्तु स्पर्शी होवे, तथा जो वस्तुकों गाय, श्वान, पखीने सूघी होवे, तथा जो वस्तु अजाणी होवे, तथा जो वस्तु फेरके उष्ण करी होवें, सो न खावे,

न करावे, कठिन हृदयवाला न होवे, नोजनके अवसरमें दयावतकों क पाट लगाने न चाहियें, उसमेंनी धनवान् तो विशेष करके कपाट ल गावेही नहिं॥ आगमेऽप्युक्त ॥ नेव दारं पिहावेई, नुजमाणो सुसावउ ॥ अ णुकंपा जिणदेहिं, सड्ढाण न निवारिया ॥ १ ॥ दिठूण पाणिनिवहं, नीमे नव सायरंमि डुक्खत्त ॥ अविसेस अणुकंप, डुहावि सामडउ कुणई ॥२॥ अ स्यार्थ – नोजन करता हूआ दरवाजा जडे नहिं, क्योंकि अनुकंपादान श्रावककों जिनेश्वर नगवान्ने मने नहीं करा है, जीवोका समूहकों नया नक संसारमें डुःखपीडित देखकें विशेष रहित द्रव्य अरु नाव दोनों तरेंसें अनुकंपा करे, उसमें द्रव्यसे तो यथायोग्य अन्नादि देवे, अरु नावसें उ नकों सन्मार्गमें प्रवर्त्तावे, श्रीपंचमांगादिकमें जहा श्रावकोंका वर्णन करा है, तहा अैसा पाठ है, "अवगुंछिअ डुवारा" इस विशेषण करकें निक्षुका दिकोंके प्रवेश वास्ते सदा किंवाड उघाडे रखे, दीनोद्धार तो संवत्सरी दान देनेंसें तीर्थंकरोनेंनी करा है, कदापि काल डुकाल पड जावे, तब तो श्रा वक जो होवे, सो विशेष करकें दीनोद्धार, दानादिसे करे, क्योंकि आगेंनी विक्रमादित्यके संवत् १३१५ में नद्रेसर गामके वसनें वाला श्रीमाल जाति शाह जगडु श्रावकने (११२) एक सौ बारह दानशाला करकें दान दीया है, तथा विक्रमादित्यके संवत् १४२ए में सोनी सिंहा श्रावकने २४००० मण अन्न, दीन जीवोंकों डुकालमें दीया है, तथा निर्दूषण आ हार देवे, तो सुपात्र दान शुद्ध है

तथा माता, पिता, नाइ, बहिन, पुत्र, बहू, सेवक, ग्लान, अरु बांधे हूये गौ प्रमुख इन सर्वकी चिंता करकें अर्थात् इन सर्वकों नोजन कराकें पीछें पंच परमेष्ठि स्मरण करकें, प्रत्याख्यान पारके, सर्व नियम स्मरण क रकें, साम्यतासें नोजन करे साम्यता अैसें जाननी कि जो अन्न, पाणी, आपसमें विरुद्ध न होवे, तथा उलटा न परिणमे, आपणे स्वनावके मा फक होवे, तिसकों साम्य कहते हैं जो पुरुष संपूर्ण जन्म तक साम्य तासें नोजन करे, वो कदी विषनी खावे, तोनी अमृत हो जावे, अरु अ साम्यतासें अमृत खायानी विष हो जाता है, परंतु इतना विशेष है, कि – साम्यतासेंनी पथ्यही खाना चाहियें, नतु अपथ्य तथा खानेका अत्यंत गृद्ध न होना चाहियें, कंठ नाडिसें जब देठ उतर जाता है, तब

करनां, ये सर्व नोजन कीया पीछें न करे, तथा कितनेक काल तांइ बुद्धिमा न् पुरुष नोजन करकें बेठ जावें, तो पेट बडा हो जाता है, तथा उपरि कों मुख करकें चित्त हो कर सोवे, तो बल वधे, वामे पासें सोवे, तो आयु वधे, नोजन करकें दौडे, तो मरण होवे, नोजन कीयां पीछें वामे पासें दो घडी तांई सोवे, परंतु निद्रा न लेवे, अथवा सोवे नहीं तो सौ प ग (सौ फिंग) चले, (फिरे) अन्यत्रनी कहा है कि देवकों, साधुकों, नगरका स्वामी राजाकों तथा स्वजनोंकों, जब कष्ट होवे, तब तथा चंद्रसूर्यके ग्र हणमें जे कर शक्ति होवे, तो विवेकवान् पुरुष नोजन न करे अैसेंही "अजीर्ण प्रनवारोगा" इस वास्ते अजीर्णमेंनी नोजन न करे

ज्वरकी आदिमें लघन करनां श्रेष्ठ है, परंतु वायुज्वर, श्रमज्वर, क्रोध ज्वर, शोकज्वर, कामज्वर, घावकीज्वर, इतने ज्वरकों वर्जके शेष ज्वर त था नेत्ररोगके हूये लघन करे

तथा देव गुरुके वदनादिके अयोगसें, तथा तीर्थ अरु गुरुकों नमस्कार करण जाते वखत, तथा विशेष धर्मांगीकार करतां, बडा पुण्य कार्य प्रा रंज करतां, अरु अष्टमी, चतुर्दशी आदि विशेष पर्वके दिन, नोजन न कर नां चाहियें तपका जो करणां है, सो इस लोक अरु परलोकमें बहुत गु णकारी है, तथा नोजन करा पीछें नमस्कार स्मरण करके उठे, चैत्यवंद ना करकें देव गुरुकों यथायोग्य वंदना करे, तथा नोजनके पीछें गंठिस हित दिवसचरिम प्रत्याख्यान विधिसें करे, पीछें गीतार्थ साधु, गीतार्थ श्रा वक, तथा सिद्धपुत्रादिकोंके समीपें स्वाध्याय (पठन पाठन) यथायोग्य करे, योगशास्त्रमें लिखा है, कि जो गुरुमुखसें पढा होवे, सो औरोंकों पढावे, स्वाध्याय करे, पीछें संध्यामें जिनपूजा करे, पीछें पडिक्कमणां करे, पीछें स्वाध्याय करे, पीछें वैयावृत्य अर्थात् मुनिकी पगचपी करे, पीछें घर जा कर सकल परिवारकों जोडकें धर्मका स्वरूप कथन करे, उत्सर्गमार्गे तो श्रावककों एक वारही नोजन करनां चाहियें ॥ यदुक्तंच ॥ उस्सग्गेण तु सड्ढोय, सचित्ताहारं वज्जउ ॥ इक्कासणग नोइअ, बंनयारि तहेव य ॥ १ ॥ जेकर एक नुक्त न करने सामर्थ्य होवे, तदा दिनका अष्टमा नाग अर्थात् चार घडी दिन जब रहे,तब नोजन कर लेवे, (जीम लेवे) दो घडी दिन रहनेसें पहिलांही नोजन कर लेवे, पीछें यथाशक्ति चार आहार, तीन

तथा वचवचाट शब्द करके न खावे, तथा मुख फाटे तो बुरा लगे ऐसें मुख करकें न खावे, तथा भोजनके अवसरमें दूसरोंकों बुलाकें प्रीति उप जावे, अपणे देवगुरुका नामस्मरण करकें समासन ऊपर बैठकें, जो अन्न अपनी माता, बहिन, ताइ, (पितासे बडे भाइकी औरत) भाणजी, स्त्री प्रमु खनें राध्या होवे, सो पवित्र पणे भोजन परोसा हूआ उसकों, मौन करकें दाहिना स्वर चलते खावे, जो जो वस्तु खावे, सो नासिकासें सूघके खावे, इसमें दृष्टिदोष नष्ट हो जाता है, तथा अति खारा, अति खट्टा, अति उष्ण, अति शीतल, अति शाक, अति मीठा, ये सर्व न खावे, मुखके स्वाद मात्र खावे, क्योंकि अति उष्ण खावे, तो रस हण्या जाता है, अति खट्टा खावे, तो इंद्रियोंकी शक्ति कम हो जाती है, अति लवण खावे, तो नेत्र बिगड जाते हैं, अति स्निग्ध खावें, तो नासिका विषय रहित हो जाती है, तथा तीक्ष्णद्रव्य अरु कौडा द्रव्य खावे, तो कफ दूर हो जाता है, तथा कषायेला अरु मीठा खावें, तो पित्त नष्ट हो जाता है, स्निग्ध घृतादिक खानेसें वायु दूर हो जाता है, बाकी शेष रोग जो हैं, सो न खानेसें दूर हो जाते हैं

जो पुरुष शाक न खावे, अरु घृतसें रोटी खावे, तथा जो दूधसें चावल खावे,तथा बहुत पाणी न पीवे, अजीर्ण होवे, तदा खावे नहिं, सो पुरुष, रोगोकों जींत लेता है, भोजन करती वखत पहिलां मीठा अरु स्निग्ध भो जन करे,बीचमें तीक्ष्ण भोजन करे, पीछें कौडी वस्तु खावे ॥ उक्तं च ॥ सुस्नि ग्धमधुरैः पूर्वं,मश्नीयादन्वितं रसैः ॥ द्रव्याम्ललवणैर्मध्ये, पर्यंते कटुतिक्तकैः ॥

तथा जो पहिलां द्रव अर्थात् नरम वस्तु खावे, मध्यमें कडुआ रस खावे, अंतमें फेर नरम रस खावे, सो बलवत अरु नीरोगी रहे, तथा पाणीकों भोजनसें पहिलां पीवे, तो मंदाग्निका जनक है, तथा भोजनके बिचमें पीवे, तो रसायन समान गुणकारी है, तथा भोजनके अंतमें पीवे, तो विष समान है,भोजनके अनंतर सर्वरससें लिप्त हूये हाथसें एक चलु रोज पीवे, पशूकी तरे पाणी न पीवे, पीया पीछें जो पाणी रहे सो गेर देवे, अंजलिसें पाणी न पीवे,पाणी थोडा पीणां पथ्य है,पाणीसें भींजे हूये हाथोंकों गला,तथा कपोल, हाथ, नेत्र,इतने स्थानोंमें न लगावे,न पूजे,गोडे (जानु) का स्पर्श करे,तथा अंगमर्दन,दिसा जानां,भार उठानां, बैठनां,स्नान

य्यामें विगिसें निद्रा अल्पमात्र करे, गृहस्थ बाहुल्यता करकें मैथुनसें व र्जित होवे,जे कर गृहस्थ जावजीव तक ब्रह्मव्रत पालने समर्थ न होवे,तदा पर्व तिथिके दिन तो अवश्य ब्रह्मचर्यव्रत पालना चाहियें

नींद लेनेकी विधि नीतिशास्त्रके अनुसारें यह है – जिस मांचेमें जीव पडे होवे, जो खाट छोटी होवे, भांगी हुइ होवे, मैली होवे, दूसरे पाये सयु क्त होवे, तथा अग्निके बले काष्ठकी खाट होवे, सो त्यागे, खाटमें तथा आसनमें चार जातकी लकडी लगे,तब तांइ तो शुभ है,परंतु पाचादि काष्ठ लगे, तो अशुभ है, तथा पूजनिक वस्तुके उपर न सोवे, तथा पाणीसे पग भींजे न सोवे, तथा उत्तर दिशि अरु पश्चिमदिशि तर्फ शिर करके न सोवे, बांसकी तरें न सोवे, पगोंके ठिकाणे न सोवे, हाथीके दांतकी तरें न सोवे, देवताके मंदिरके मूलगभारेमे, सर्पकी बबी उपर, वृक्षके हेठ, तथा श्मशानमें सोवे नहीं, किसीके साथ लडाइ हुइ होवे, तदा मिटाकें सोवे, सोने वखत पाणी पास रखे, तथा दरवाजा जडकें, इष्टदेवकों नम स्कार करके बडी शय्यामें अछी तरें ढंढनेके वस्त्र समारकें, सर्वाहार त्या गकें, वामा पासा नीचें करकें सोवे

दिनकों सोवे नहीं, परंतु क्रोध, शोक, अरु भयके मिटाने वास्ते तथा स्त्रीकर्म, अरु भारके थकेवेकें मिटाने वास्ते तथा रस्तेके खेदके मि टाने वास्ते तथा अतिसार, श्वास, हिजकी प्रमुख रोग दूर करने वास्ते सोवे, तथा जो बाल होवे, वृद्ध होवे, बलक्षीण होवे, सो सोवे, तथा तृषा, शूल, गड, गूमडकी वेदना करकें विव्हल होवे, सो सोवे, तथा जि सकों अजीर्ण हुवा होवे, वाय हुवा होवे, जिसकों खुसकी हुइ होवे, तथा जिसकों रात्रिमें निद्रा थोडी आती होवे, वो दिनमेंभी सो जावे तथा ज्येष्ठ अरु आषाढ महीनेमें दिनमेंभी सोना अछा है, और म हीनोमें सोवे, तो कफ अरु पित्त करता है, तथा बहुत नींद लेनी बहुत काल लग सूता रहना, अछा नहीं, तथा रातकों सोवे तदा दिशावकाशिक व्रत उच्चारकें सोवे, तथा चार सरणां लेवे, सर्व जीवराशिसें खामणां करे, अठारह पाप स्थानक व्युत्सर्जन करे, डुष्कृतकी निंदा करे, सुकृतानुमोदन करे, तथा ॥ जइ मे हुज्ज पमाउ, इमस्स देहस्स इमाइ रयणीये ॥ आहा रमुवहि देहं, सवं तिविहेण वोसरियं ॥ १ ॥ नमस्कार पूर्वक इस गा

आहार, दो आहारका त्यागरूप दिवसचरिम सूर्य अगते तांइ करे,सो मुख्य वृत्तिसे तो दिन होतेही करना चाहिये, परंतु अपवादमें रातकोंनी करे

इतिश्री तपगछीय गणिश्रीमणिविजय तच्छिष्य मुनिश्रीबुद्धिविजय तच्छिष्य मुनि आत्माराम आनदविजयविरचिते जैनतत्त्वादर्शे श्राद्धविधिसूत्रानुसारेण श्रावक दिनकृत्यप्रकाशक नामा नवम परिछेद सपूर्ण ॥ ९ ॥

॥ अथ दशम परिछेद प्रारंभ ॥

इस परिछेदमें श्रावकोंका एक रात्रिकृत्य, दूसरा पर्वकृत्य, तीसरा चौमासिककृत्य, चौथा संवत्सरीकृत्य, अरु पांचमा जन्मकृत्य, यह पांच कृत्य अनुक्रमसें लिखेंगे तिसमें प्रथम रात्रिकृत्य लिखते है

साधुके पास तथा पौषधशालादिमें यत्नपूर्वक प्रमार्जना पूर्वक सामायिक करकें प्रतिक्रमण करे, पीछें साधुओंकी पगचपी करे, यद्यपि साधुने श्रावकके पासों उत्सर्गमार्गमें विश्रामणादि नही करावणी, तोनी श्रावक विश्रामणा करणेके नाव करे, तो महाफल है पीछें श्राद्धदिनकृत्य, श्रावकविधि, उपदेशमाला अरु कर्मग्रथादि शास्त्रोंकी स्वाध्याय करे, पीछें सामायिक पारके घरमें जावे

पीछें सम्यक्त्वमूल बारह व्रतमें, सर्वशक्तिसें यत्न करणादिरूप तथा सर्वथा अर्हत् चैत्य,अरु साधर्मिक वर्जित वासस्थानमें अनिवासरूप तथा पूजा प्रत्याख्यानादि अभिग्रहरूप, यथाशक्ति सप्त क्षेत्रमें धन खरचनरूप ऐसा यथायोग्य सकल परिवारकों धर्मोपदेश कथन करे, जेकर श्रावक अपणे परिवारकों धर्म न कहे,तब उन परिवारकों धर्मकी प्राप्ति न होवेगी, तो इस लोक परलोकमें जो वे पापकर्म करेंगे,सो सर्व उस श्रावककों लगेंगे,क्योंकि लोकमें यह व्यवहार है कि – जो चोरकों खाने पीनेकों देवे, सोनी चोर गिना जाता है ऐसें धर्ममेंनी जान लेना, इस वास्ते श्रावकने द्रव्य तथा नावसें अपने कुटुबकों शिक्षा देनी चाहियें, उसमें द्रव्यसे तो पुत्र, कलत्र, बेटी प्रमुखकों यथायोग्य वस्त्रादि देवे, अरु नावसें तिनकों धर्मका उपदेश करे,तथा छुखीये सुखीयेकी चिंता करे ॥अन्यत्राप्युक्त॥ राज्ञि राष्ट्रकृतं पापं, राज्ञः पापं पुरोहिते ॥ नर्त्तरि स्त्रीकृतं पापं, शिष्यपापं गुरावपि ॥ १ ॥ धर्म देशना दीये पीछें, रात्रिका प्रथम प्रहर वीत्या पीछें, शरीरकों हितकारी अ

उसीमें महा सडे हूये कुत्तेके कलेवर समान दुर्गंध आती है, तो फेर कामीजन क्यों कर उन स्त्रीके शरीरमें रागांध होते हैं? इत्यादि स्त्रीके शरीरकी अशुचि विचारे, वो पुरुषकों धन्य है, वो पुरुष जंबुकुमार, जिसने नवपरिणीत आठ पद्मिनी स्त्री, अरु निनानवे क्रोड सौनइये छिनकमें त्याग दीया, तिसका माहात्म्य विचारे, तथा श्रीथूलिभद्र अरु सुदर्शन शेठके शीलका माहात्म्य विचारे

कषाय जीतनेका उपाय इस तरें करे—क्रोधकों क्षमा करकें जींते, मानकों नरमाइसे जींते, मायाकों सरलताइसें जींते, लोभकों संतोषसें जींते, रागकों वैराग्यसें जींते,द्वेषकों मित्रतासें जींते, मोहकों विवेकसें जींते, कामकों स्त्रीके शरीरकी अशुचि भावनासें जींते, मत्सरकों परकी संपदा देखके पीडा न करनेसें जींते, विषयकों संयमसें जींते, अशुभ मन, वचन, अरु काया इन तीनोंकों तीन गुप्तिसें जींते,आलसकों उद्यमसें जींते, अविरतिपणाकों विरतिपणासें जींते, इस प्रकार करकें यह सब, सुखसें जींते जाते हैं, आगेंभी बहुत महात्माउने इनकों इसी तरे जींता हैं

भवस्थिति महादुःखरूप है, क्योंकि चारों गतिमें जीव नाना प्रकारके दुःख पा रहे हैं, तिनमें नरकगतिमें तो सातों नरकोंमें क्षेत्रवेदना है,तथा पांच नरकोंमें परस्पर शस्त्रों करकें उदीरी वेदना है, तथा तीन नरकमें परमाधार्मिक देवताकृत वेदना है आंख मींचके उघाडे,इतना कालभी नरकवासी जीवोंकों सुख नहीं है निकेवल दुःखही पूर्व जन्मका करा हूआ पापोंसें उदय हूआ है रात, अरु दिन, एक सरीखे दुःखमें जाते हैं, जितना नरकगतिमें जीव दुःखकों पावे है, उस्सें अनंतगुणा दुःख निगोदमें जीव पावे है, तथा तिर्यंचगतिमें अंकुश, पराणा, लाठी, सोटा, शृंगमोडन, गलमोडन, तोडन, छेदन, भेदन, दहन, अंकन, परवशादि, अनेक दुःख पावे है तथा मनुष्य गतिमें गर्भ, जन्म, जरा, मरण, नानाप्रकारकी पीडा, रोग, व्याधि, दरिद्रता, माता, पिता, स्त्री, पुत्रका मरणादि अनेक दुःख पावता है, तथा देवगतिमें चवनका दुःख, दासपणेका दुःख, पराभव, ईर्ष्यादि अनेक दुःख है, इत्यादि भवस्थिति विचारे

तथा धर्ममनोरथ भावना सो श्रावकके घरमें जो ज्ञान, दर्शन, व्रत सहित मैं दासभी हो जाऊं, तोभी अछा है, परंतु मिथ्यादृष्टिमें चक्रवर्ती राजाभी

थाकों तीन वार पढे साकार अनसन करे, पंच नमस्कार स्मरण सोनेके अवसरमें पढे, स्त्रीसे दूर अलग शय्यामें सोवे, जेकर निकट सोवे, तब एक तो विकार अधिक जागता है, तथा दूसरा जिस वासना युक्त पुरुष सोवे, सो जितना चिर जागे नहीं, उतना चिर उही वासना उस पुरुषकों रहती है इस वास्ते स्त्रीसें अलग दूसरी शय्यामें सोवे, तथा पागल (दीवाना) हो जावे, तथा मरणावसरमें गफलत हो जावे, तोभी तिसके जो सचित्त अवस्थामें वासनाथी, उही वासना है, ऐसे जानना ॥ इत्याप्तोपदेश ॥ इस वास्ते सर्वथा उपशांतमोह हो करके, धर्म वैराग्यादि भावना करके, वासित हो करकें निद्रा करे, तो खोटा स्वप्न न होवे, जिस रीतिसें अच्छा धर्ममय स्वप्न देखे, इसी रीतिसें सोवे, जे कर कदाचित् उसका आयु समाप्तिभी हो जावे, तोभी वो अच्छी गतिमें जावे

तथा सूतां पीछें रात्रिमें जब जाग जावे, तदा अनादि कालका अभ्यास रससे कदाचित् काम पीडा करे, तब स्त्रीके शरीरका अशुचिपणा विचारे, अरु श्रीजंबूस्वामी तथा थूलिभद्रादि महा ऋषियोंका तथा सुदर्शनादि महा श्रावकोंकी दुष्कृत शील पालनेमें दृढता विचारे, तथा कषायादि दोषके जीतनेका उपाय जो भवस्थिति अत्यंत दुःखदाता है, धर्म मनोरथ इनकी चितवणा करे, तिनमें स्त्रीके शरीरकों अपवित्रता, जुगुप्सनीयादि सर्व विचारे, जैसें श्रीहेमचंद्रसूरिजीनें योगशास्त्रमें लिखा है तथा पूज्यश्री मुनिसुंदर सूरिजीनें अध्यात्मकल्पद्रुममें लिखा है, तैसें विचारे, सो लेशमात्र इहां लिखते हैं

चाम, हाड, मज्जा, आंदरा, चरबी, नसा, रुधिर, मांस, विष्ठा, मूत्र, खेल, खकारादि अशुचि पुद्गलका, पिंड स्त्रीका शरीर है, इस पिंडमें तु क्या रमणिक वस्तु देखता है? जो विष्ठेकों दूरसें देख कर लोक थूथूकार करते हैं, वेही मूढ लोक विष्ठे अरु मूत्रसें पूर्ण, ऐसें स्त्रीके शरीरकी अभिलाषा करते हैं? विष्ठेकी कोथली बहुत छिद्रोंवाली जिसके छिद्रद्वारा कृमीजाल निकलते हैं, अरु कृमीजालसें भरी है, ऐसी स्त्री है, तथा चपलता, माया, झूठ, ठगी, इनों करकें सत्कारी हुइ है, तातें जो पुरुष मोहसें इसका संग करे, भोगविलास करे, तिसकों नरकके तांइ है, ऐसी स्त्री विष्ठेकी कोथली जिसकें इग्यारों द्वारोंसें अशुचि झरती है, जिस द्वारकों सूघो,

तथा सर्व सचित्ताहार न त्याग सके, तो नाम लेके कितनीक वस्तु खानेकी छूट रखे, उपरांत त्याग देवे तथा छेहों अठाइयोंमें जिनवर पूजा करनी, तप करनी ब्रह्मचर्य पालना, छेहो अठाइयोमें चैत्र तथा आसोजकी यह जो दो अठाइ है, सो शाश्वती है, इन दोनोमें वैमानिक देवताजी नदी श्वरादिमें यात्रोत्सव करते हैं, तथा तीन चौमासेकी तीन अठाइ अरु चौथी पर्यूषणकी तथा दो चैत्र अरु आसोजकी, यह सब मिल कर छे अठाइ हैं

तथा तिथि जो प्रभातसमय प्रत्याख्यानकी वेलामें होवे, सो जैनमतमें माननी प्रमाण है, सूर्योदय अनुसारें लोकमेंजी दिनका व्यवहार होनेसें माननी प्रमाण है, तथा च निशीथजाष्ये ॥ चउमासी अ वरीसे, परिकय पंच छमीसु नायव्वा ॥ ताउ तिहिउ जासि, उदेइ सूरो न अन्नाउ ॥ १ ॥ पूआ पच्चरकाण, पडिक्कमण तहय नियम गहण च ॥ जीए उदेइ सूरो, तीए ति हिए उ कायव्व ॥ २ ॥ उदयम्मि जा तिहि सा, पमाणमिअरी कीरमाणी ए ॥ आणाजगणवछा, मिछत्त विराहण पावे ॥ ३ ॥ अस्यार्थ – चौमासी, सवत्सरी, पक्खी, पचमी, अष्टमी, ये तिथियां सूर्योदयमें होवे, तब प्रमाण है, नान्यथा पूजा, पडिक्कमणा, प्रत्याख्यान, तैसेंही नियम ग्रहण करनी सो जिस तिथिमें सूर्योदय होवे, तिसमें करनी चाहियें, जो तिथि सूर्योदयमें होवे, सो प्रमाण है, तथा उदय तिथि विना जो कोइ और तिथि करे, माने, सो आज्ञाका विराधक, अनवस्था कारक, मिथ्या दृष्टि है पाराशरस्मृत्यादिमेंजी लिखा है ॥ श्लोक ॥ आदित्योदयवेलायां, या स्तोकापि तिथिर्नवेत् ॥ सा सपूर्णेति मतव्या, प्रभुता नोदयं विना ॥१॥ उमास्वातिवाचकप्रघोषश्चैव श्रूयते ॥ क्षये पूर्वा तिथि कार्या, वृद्धौ कार्या तथोत्तरा ॥ श्रीवीरज्ञाननिर्वाण, कार्यं लोकानुगेरिह ॥ २ ॥

तथा श्रीअर्हतोंके जन्मादि पचकल्याणकके दिनजी पर्व हैं, जब दो, तीन, कल्याणक होवे, तब तो विशेष करकें पर्व माननां चाहियें, शास्त्रोंमें सुनते हैं, कि श्रीकृष्ण वासुदेव सर्व पर्व आराधनेमें अपणेकों असमर्थ जान कर श्रीनेमिनाथ अरिहतकों पूछता हूआ कि, उत्कृष्ट पर्व कौनसा है? तब जगवान् कहते जये कि हे कृष्ण वासुदेव! मगसिर शुक्ल एकादशी, यह पर्व सर्वोत्तम है, क्योंकि इस दिन श्रीजिनेंद्रोंके पांच कल्याणिक जये हैं, सर्व क्षेत्रोंके मेळ सौ कल्याणिक हूये हैं, तब श्रीकृष्ण वासुदेवने

न होवं ? तथा कब मै सविज्ञ सो संवेगी वैराग्यवंत गीतार्थ गुरुके चरणोंमें स्वजनादि संग रहित प्रव्रज्या ग्रहण करुंगा ? तथा कब मै तिर्यंचके पिशाचके जयसें नि प्रकंप हो कर श्मशानादिमें विधिपूर्वक कायोत्सर्ग करुंगा ? तथा कब मैं तपसे कृश शरीर हो कें उत्तम पुरुषोंके मार्गमें चलुंगा ? इत्यादिक जावनासें कामके कटककों जींते ॥ इति श्राद्धविधि ग्रथानुसार रात्रिकृत्यं॥

अथ श्रावकका पर्वकृत्य लिखते है पर्व जो अष्टमी, चतुर्दशी आदिक दिवस, तिसमें धर्मकी पुष्टि करे तिसका नाम पौषध है, सो पौषधक नवे व्रतवाले श्रावककों पर्वके दिनमें अवश्य करनां चाहियें, जे कर पर्वके दिन शरीरमें शाता न होवे तदा पौषध न कर सके, तो दो वार प्रतिक्रमणां करे, तथा बहुत वार सामायिक अरु दिशावकाशिक व्रत अंगीकार करे, तथा पर्वदिनोंमें ब्रह्मचर्य पाले, आरंज वर्जे, विशेष तप करे, चैत्यपरिवाडी करे, सर्वसाधुओंकों नमस्कार करे, तथा सुपात्रदान, देवपूजा अरु गुरुजक्ति, यह सर्व, और दिनोंसें विशेष करे, धर्मकरणी तो सर्वदिनोंमें करणी अछी है, जे कर सदा न करी जावे, तो पर्वके दिन तो अवश्यमेव करणी चाहियें सो, पर्व ये हैं अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णमासी, अमावास्या, यह एक मासमें छै पर्व, अरु पक्षमें तीन पर्व, तथा दूज, पचमी, अष्टमी, एकादशी, चतुर्दशी, यह पांच तिथि, तीर्थंकरोनें कही है उसमें दूजके दिन दो प्रकारका धर्म आराधना करनां पंचमीके दिन ज्ञानकों आराधनां, अष्टमीकों अष्टकर्मका नाश करणां, एकादशीमें इग्यारह अंगकों आराधनां, चतुर्दशीकों चौदह पूर्वकों आराधनां, यह पांच तथा पूर्वोक्त अमावास्या अरु पूर्णमासी एव षट् पर्व हूये अरु वर्षमें छै अठाइ पर्व है चौमासी पर्वादि पर्वोमें जेकर सर्वथा आरंज न त्याग सके, तो स्वल्प स्वल्पतर आरंज करे तथा पर्वके दिन सर्व सचित्ताहार वर्जे, श्रावककों तो नित्यही सचित्ताहार वर्जनां चाहियें, जेकर शक्ति न होवे, तदा पर्वके दिन तो अवश्य वर्जे, तथा ऐसें पर्वके दिनोंमें स्नान, शिर दिखाने, गूथन करानां, वस्त्र धोनां, वस्त्र रंगनां, गाडा हलादि चलानां, धान्यका मूढक बधनां, कोल्हु, अरहट्ट चलानां, दलनां, छडनां, पीषणां, पत्र, पुष्प, फल तोडनां, सचित्त खडी हरमजीका मर्दन करनां, धान्य काढनां, लींपनां, माटी खोदनी तथा घर वनानां, इत्यादि आरंज सर्व यथाशक्तिसें त्यागनां चाहियें,

तुर्विंशतिस्तवका कायोत्सर्ग करे, अपूर्वज्ञान पढे, गुरुकी वैय्यावृत्य करे, ब्रह्मचर्य पाले,अचित्त पाणी पीवे,सचित्तका त्याग करे, बासी, विदल, रोटी, पूरी, पापड, वडी, सूका साग, पत्ररूप हरिया साग, खारक, खजूर, द्राक्ष, खांम, छुहारा इत्यादि यह सर्व, नीली फूलण, कुंथुआदि लट कीडे पडनेसें खाने योग्य नहिं रहते है, इस वास्ते इनका त्याग करे, कदाचित् औषधादि विशेष कार्यमें लेनी पडे, तो सम्यग्रीतिसें शोधकें लेवे, तथा खाट, स्नान, शिरगुंथाना, दातण, पगरखा, इनका त्याग करे, तथा भूषण, वस्त्र रंगनेका निषेध करें, तथा घर, हाट, भींत, स्तंभ, खाट, पाट,पट्टक,पट्टिका, छींका, अरु घृत तेलादिकका वासण, इंधन धान्यादि सर्व वस्तुमें नीली फूली हो जाती है, तो इसकी रक्षा वास्ते पहिलांही चूना आदि खार लगा देवे, मैल दूर करे, धूपमें न गेरे, शीतल स्थानमें रख देवे, तथा दिनमें दो तीन वार जल छाणे, स्नेह, गुड, छाछ प्रमुखके वासणका मुख यत्नसें ढकके रक्खे, तथा उसामणका अरु स्नानका पाणी, जहां जीव न होवे, तहां पृथक् पृथक् भूमिमें थोडा थोडा गेरे, तथा चूला अरु दीपक प्रमुख उघाडा न छोडे, तथा खमना, पीसना, रांधना, वस्त्र भाजन धोने, इत्यादि कामो देख कें यत्नसें करे, तथा जिनमंदिर अरु धर्म शालाकों समराकें रक्खे,तथा यथाशक्ति उपधान तप प्रतिमा मासादि वहै,तथा कषाय अरु इंद्रियकों जींते, तथा योगशुद्धि तप, बीशस्थानक तप, अमृत अष्टमी तप, एकादशांग तप, चौदह पूर्वतप, नमस्कार तप, चौवीश तीर्थंकरके कल्याणिक तप, अक्षयनिधि तप, दमयंती तप, भद्रमहाभद्रादि तप, संसारतारण अठाइ तप, पक्ष मासादि विशेष तप करे, तथा रात्रिकों चतुर्विध आहार, त्रिविध आहार त्याग करे, पर्वदिनमें विकृति त्यागे, पर्वदिनमें पौषधोपवासादि करे, तथा निरंतर पारणेमें अतिथिसंविभाग करे, चातुर्मासिक अभिग्रह पूर्वाचार्योंनें इस तरेसें लिखा है, ज्ञानाचारमें, दर्शनाचारमें, चारित्राचारमें, तपआचारमें, तथा वीर्याचारमें इत्यादि अनेक प्रकारका अभिग्रह करे, सो इस रीतिसें है –ज्ञानाचारमे शक्ति अनुसारें सूत्र पढे, सुने, चिंते, तथा शुक्ल पंचमीकों ज्ञानकी पूजा करे, तथा दर्शनाचारमें काजा काढे अर्थात समार्जना करे, देहरेमें लीपे, गुहली करे मांडली करे, चैत्यजिनप्रतिमाकी पूजा करे, देववंदना करे, जिनबिंबोंकों निर्मल करे,

मौन पौषधोपवास करकें तिस दिनकों माना, तबसेंही "यथा राजा तथा प्रजा" यह रीतिसे सब लोक एकादशी मानने लगे, सो आज तांइ प्रसिद्ध है.

तथा दूज, पंचमी, अष्टमी, एकादशी, चतुर्दशी, इन तिथियोंमें प्राय जीवोंका परजवायु बंधता है, इस वास्ते इन तिथियोंमें विशेष धर्मकरणी करे, तथा पर्वके महिमाके प्रजावसें अधर्मी निर्दयादिजी धर्मी अरु दयावान् हो जाता है, कृपणजी धन खरच देते हैं, कुशीलजी सुशील हो जाते हैं वो जयवंत रहो, कि जिसने संवत्सरी, चातुर्मासी आदि अष्ट पर्व कथन करे हैं, क्योंकि जो अनार्योंके चलाये पर्व हैं, तिनमें आग जलानां, जीव मारने, रोनां, पीटनां, धूल उमानी, वृक्षोंके पत्रादि तोडने, इत्यादि नाना प्रकारके पाप होते हैं, अरु जो पर्व, परमेश्वर अरिहंतने कहे है, उनमें तो निःकेवल धर्मकृत्यही करनां कहा है, इस वास्ते पर्वदिनमें पोषधादि करे, पौषधके जेद, अरु विधि, यह सब श्राद्धविध्यादि शास्त्रोसें जान लेनां ॥ इति

अथ चौमासिककृत्य विधि लिखते हैं, चौमासेमें विशेष करके नियम व्रत परिग्रह परिमाण करनां चाहियें, वर्षा (चौमासेमें) बहुत जीव उत्पन्न होते हैं, इस वास्ते विशेष नियमादि करनां चाहियें, वर्षादमें गाडा च लानां, तथा हल फेरनां न करे, तथा राजादन, अर्थात् खिरनी आंबादिमें कीडे पड जाते हैं, सो न खाने चाहियें, देशोंका विशेष अपनी बुद्धिसें समफ लेनां, तथा नियमजी दो तरेंके है, एक सुनिर्वाह, दूसरा दुर्निर्वाह, तिनमें धनवंतोंकों व्यापार, अरु अविरतियोंकों सचित्तका त्याग, रसका त्याग, तथा शाकका त्याग करनां, अरु सामायिकादि ये अंगीकार करनां, यह डुर्निवाह है अरु पूजा, दान, महोत्सवादि सुनिर्वाह है, अरु निर्धनोंकों इस्सें विपरीत जान लेनां, तथा चित्त एकाग्र करनां यह तो सर्वहीकों डुष्कर है, इनमें डुर्निर्वाह नियम न हो सके तो सुनिर्वाह नियम अंगीकार करे, तथा चौमासेमें ग्रामांतर न जावे, जे कर निर्वाह न होवे तो जिस गाममें अवश्य जानां है, तिसकों वर्जके और जगें न जावे, सर्व सचित्तका त्याग करे, निर्वाह न होवे, तो परिमाण करे, तथा दो, तीन वार जिनराजकी अष्टप्रकारी पूजा करे संपूर्ण देववंदन सर्व जिन मंदिरोंमें जिनबिंबोंकी पूजा वंदना करनी, स्नात्रपूजा महामहोत्सव, प्रजावनादि करे, गुरुकों वृहत्वंदना तथा और साधुओंकों प्रत्येक वंदनाकरे, च

अथ श्रावकोंका वर्षकृत्य द्वादश द्वारों करी लिखते हैं

१ प्रथम संघपूजा करे, सो स्वद्रव्यकुलादि अनुसारें बहुत आदर मानसें साधु साध्वी योग्य निर्दोष वस्त्र, कंबल, पूंछणां सूत, ऊन, पाणीका पात्र, तुंबकादि, दंम, दंमिका, सूइ, कागद, दवात, लेखिनी, पुस्तकादिक, श्रीगुरुको देवे, औरभी जो संयमका उपकारी उपकरण होवे, सोभी देवे, ऐसेंही प्रातिहारक, पीठ, फलक, पट्टिकादि सर्व साधुओंकों देवे, ऐसेंही श्रावक, श्राविकारूप संघकी भक्ति यथाशक्तिसें पहरावणादि करकें सत्कार करे, देवगुरुके गुण गाने वाले गंधर्वादिक याचकोंकोंभी यथोचित दान देवे, संघकी पूजा तीन प्रकारकी है, एक जघन्य, दूसरी मध्यम, तीसरी उत्कृष्ट, तिसमें सर्वदर्शन सर्व संघको करे,सो उत्कृष्टी पूजा, तथा सूत मात्रादि देवे, तो जघन्य पूजा, तथा शेष सर्व मध्यम पूजा है, तहां अधिक खरच करनेकी शक्ति न होवे, तो गुरुकों सूत, मुखवस्त्रिका देवे, तथा एक दो तीन श्रावक श्राविकाकों सोपारी प्रमुख वर्ष वर्ष प्रत्यें देवे, इस रीतिसें संघ पूजा करे, तो निर्धनकोंभी महा फल है ॥ यत ॥ संपत्तौ नियमाशक्तौ,सहन यौवने व्रतं ॥ दारिद्र्ये दानमप्यल्पं,महालाभाय जायते॥१॥

२ दूसरी साधर्मिक वात्सल्य करे,सो सर्व साधर्मीयोंकी अथवा कितनेककोंकी यथाशक्ति यथायोग्य भक्ति करे,तथा पुत्रके जन्मोत्सवमें, विवाहमें, तथा और किसी कार्यमें पहिलें तो साधर्मियोंकों निमंत्रणा करकें विशिष्ट भोजन, तांबूल, वस्त्राभरणादि देवे, तथा किसी साधर्मीकों कोइ कष्ट पडे, तब अपणा धन खरचके उसका कष्ट दूर करे,जे कर कोइ साधर्मी निर्धन होवे, तो धनसें सहाय करे, परदेशसें देशमें पहुचावे, तथा धर्मसें सीदताकों जैसें बने तैसें स्थिर करे, जे कर कोइ साधर्मी प्रमादी होवे, तो तिसकों प्रेरणादि करे, साधर्मीयोंकों विद्या पढावे, पूछना, परिवर्त्तना, अनुप्रेक्षा, धर्मकथामें यथायोग्य जोडे, तथा धर्मकरणी वास्ते साधारण पौषधशालादि करावे, तथा श्राविकाके साथभी श्रावकोंवत् वात्सल्य करे, क्योंकि श्राविकाभी ज्ञान, दर्शन, चारित्र, शील संतोष वाली होती हैं तथा सधवा विधवा जो जिनशासनमें अनुरक्त होवे, वो सर्वकों साधर्मिकपणे माननी चाहियें, तिसकाभी माताकी तरें बहिनकी तरें बेटीकी तरें हितकरनी चाहियें, बहुत करके राजाका तो अतिथि संविभाग व्रत साधर्मीवा

तथा चारित्रमें जूयांकी यत्ना करे, वनस्पतिमें कीडे पडे खार न देवे, इंध नमें, जलमें, अग्निमें, धान्यमें जीव होवे, तिनकी रक्षा करे, किसीकों क लंक न देवे, कठिन वचन न बोले, रूखा वचन न बोले, तथा देवकी अरु गुरुकी सोगंद न खावें, किसकी चुगली न करे, किसीके अवर्णवाद न बोले, माता पितासें छाना काम न करे, निधान तथा पडा हूआ धन देख के जैसें शरीर और धर्म न विगडे, तैसे करे, दिनमें ब्रह्मचर्य पाले, रात्रिकों स्वदारासें संतोष करे, तथा धनधान्यादि नव प्रकारके परिग्रहका इछा प रिमाण व्रत करे, दिशावकाशिक व्रत करें, तथा स्नानका, उवटनेका, वि लेपनका, आभरणका, फूलका, तंबोलका, वरासका, अगरका, केशरका, क स्तूरिका, इतनी भोगनेकी वस्तुओंका परिमाण करे तथा मजीठ, लाख, कुसुभा, नील, इनसें रंगे वस्त्रोंका परिमाण करे, तथा रत्न, वज्र, नील मणि, सुवर्ण, रूपा, मोती प्रमुखका परिमाण करे, तथा जंबीर, जंबरूव, जंबू, राजदन, नारंगी, शतरा, बीजोरां, काकडी, अखोड, बदाम, कोठफल, टींबरू, विल, खजूर, डाख, दाडिम, उत्तिजका फल, नालिअर, अबली, बोर, वीजूक फल, चीभडा, चीभडी, कयर, कमेदां, भोरड, निंबू, आंवली अथाणा (आचार) तथा अकूरिया हूआ नाना प्रकारके फूल, पत्र, सचित्त, बहुबीजा, अनंतकाय, इतनी वस्तु वर्जे, तथा विगय अरु विगयगतका परिमाण करे, तथा वस्त्र धोनेका, लीपणेका, हल वाहनेका, स्नानकी व स्तुका परिमाण करे, तथा खम्हनां, पीसनां, इत्यादिकका परिमाण करे, फूठी साख न देवे, तथा पाणीमें कूदनां अरु अन्न रांधनेका परिमाण करे, व्या पारका परिमाण करे, चोरीका त्याग करे, तथा स्त्रीके साथ सभापण क रना, स्त्रीकों देखनां त्यागे, तथा अनर्थदंम त्यागे, सामायिक, पौपध करे, अतिथिसंविभाग करे, इन सर्व वस्तुओंका प्रतिदिन परिमाण करे, तथा जि नमंदिरकों देखे, तथा जिन मंदिरकी वस्तुकी सार संभाल करे, पर्वमें तप करे, उजमणे करे, धर्मके वास्ते मुखवस्त्रिका अरु पाणीका छाननां देवे, तथा औपधी देवे, साधर्मीवत्सल यथाशक्तिसे करे, गुरुकी विनय करें, मास मा समें सामायिक करे, वर्पमें पौपध करे ॥ इत्यादि ॥ इति श्राद्धश्राविका चातु र्मासिक नियमस्वरूप कथन समाप्त ॥

थाल,मेरा,तंबू,कडाहिया साथ लेवे,चलती कूपादिककों सज करे, तथा गाडा, सेजवाला रथ, पर्यंक, पालखी,ऊंट,घोडा प्रमुख साथ लेवे, तथा श्रीसंघकी रक्षा वास्ते बडे योद्धोंकों नौकर रखे, योद्धोंकों कवच अंगकादि उपस्कर देवे, तथा गीत, नाटक वाजित्रादि सामग्री मेलवे, तथा अछे मुहूर्त्तमें, शुभ शकुनमें प्रस्थान (चलना) करे, भोजनादिसें श्रीसंघका सत्कार करकें संघप तिका तिलक देवे,आगें पीछें रखवाला रखे, संघके चलने उतरणेका संकेत करे, तथा संघवालोंकी गाडी आदिक टूट जावे, तो समरा देवे, अपणी शक्तिअनुसार सर्वसंघकों सहाय देवे, तथा गाम नगरमें जहां जिनमंदिर आवे, तहां महाध्वज देवे, चैत्यपरिवाडी आदि बडा महोत्सव करे, जी र्णचैत्यका उद्धार करे, तथा जब तीर्थोंकों देखे, तब सुवर्ण, रत्न, मोती आदिकसें वर्द्धापना करे, लापसी, लड्डु प्रमुखका लाहणा करे, तथा साध र्मिवात्सल्य, यथोचित दान देवे, बडे उत्सवसें जब तीर्थकों प्राप्त होवे, तब प्रथम हर्षपूजा धन चढावे, तथा अष्टोपचारविधि, स्नात्रमालोद्घट्टन, घीकी धारा देवे, पहरावणी मोचन करे, तथा नवांगजिनपूजन, फूलघर कदलीघरादि महापूजा करे, डुकूलादिमय महाध्वज देवे, मांगनेवालोंकों नाहिं न करे, तथा रात्रिजागरण नाना प्रकारके गीतनृत्यादि उत्सव करे, तथा तीर्थोपवास छठ प्रमुख तप कोडि लाख अक्षतादि विविध प्रकारका उजमणा होवे, तथा नाना प्रकारकी वस्तु फल एक सौ आठ. चौवीश, व्यासी, बावन, बहत्तरादि होवे,सर्व भक्ष्य भोजनके थाल होवे, डुकूलादि मय चडुवा पहरावणी करे, तथा अंगलूहणा, दीपक, तेल, धोती, चंदन, केसर, कस्तूरी, चंगेरी (छाबडी) कलश, धूपधाणा, आरति, आभरण, प्रदीप, चामर, भृंगार, स्थाल, कचोलक, घंटा, झालरी, पडहादि विविध प्रकारके वाजिंत्र देवे, देहरी करावे, कारीगरोंकों सत्कार देवे, तीर्थके बि गडे कामकों समरावे, सार संभाल करे, तीर्थके रक्षकोंकों बहु सन्मान देवे, जैनके भगतोंकों, दीनोंकों, उचित दान देवे, तथा साधर्मिवात्सल्य गुरुभक्ति करे, इस रीतिसें यात्रा करकें तैसेंही पीछा फिरे,वर्षादि तक तीर्थ व्रत करे ॥ इति यात्राविधि ॥ इति यात्रात्रयस्वरूपं समाप्तम् ॥३॥

॥ अथ स्नात्रविधिर्लिख्यते ॥ मंदिरमें स्नात्र महोत्सवभी घृतका मेरु

त्सल करनेसेंही हो सक्ता है, क्योंकि मुनिको तो राजपिंम लेनाही नहीं है तिस वास्ते श्रीभरतचक्री, तथा दमवीर्य राजादिकोनें असेही करा है, तथा श्रीसंजवनाथ अर्हतके जीवन तीसरे जवमें धातकीखंम ऐरावतक्षेत्रमें क्षेमापुरी नगरीमें विमलवाहनराजाने महा डुर्भिक्षमें सकल साधर्मिकादिकोंकों जोजनादिक देनेसे तीर्थंकरनामकर्म उपार्जन करा है, तथा देवगिरि मांमव गढमें शाह जगत्सिंहने तथा थिरापड नगरमें श्रीमाल आजूने तीन सौ साठ साधर्मियोकों धन देकें अपणे तुल्य करा, तथा शाह सारंगादि अनेक पुरुषोने बडा बडा साधर्मिवात्सल्य करा है ॥ इति ॥ १ ॥

२ तीसरी यात्राविधि कहते हैं, वर्ष वर्षमें जघन्यसें एक यात्रा तो अवश्य करनी चाहियें, यात्राजी तीन तरेंकी है, एक अष्टाइयात्रा, दूसरी रथयात्रा, तीसरी तीर्थयात्रा, तिसमें अष्टाइमें विस्तार सहित सर्व चैत्यपरिवाडी करे, इसका नाम चैत्ययात्राजी कहते हैं, तथा रथयात्रा श्रीहेमचंद्रसूरिकृत परिशिष्ट पर्वमें जैसी संप्रतिराजाने करी है, तैसें करे, तथा महापद्मचक्रवर्त्तीने जैसे माताके मनोरथ पूरणे वास्ते करी है, तैसें करे,तथा जैसी कुमारपाल राजाने रथयात्रा करी तैसें करे ॥ इति ॥ २ ॥

तीसरी तीर्थयात्राका स्वरूप लिखते हैं, तहां श्रीशत्रुंजय रैवतादि तीर्थ तथा तीर्थंकरोंके जन्म, दीक्षा, ज्ञान, निर्वाण, अरु विहारजूमि, यह सर्व प्रजूत जव्यजीवोंकों शुजजावका संपादक है, इस वास्ते संसारसें तारणेका कारण होनेसें इसकों तीर्थ कहना चाहियें तिन तीर्थोंमें जानेसें सम्यक्त्व निर्मल होता है, अब जिनशासनकी उन्नति करनेके वास्ते जिस विधिसें यात्रा करे, सो विधि यह है,कि —चलनेके स्थानसें ले कर यात्रा करे, तहां तक, एक वार जोजन करे, दूसरा सचित्त परिहार, तीसरा जूमिशयन, चौथा ब्रह्मचारी, पांचमा सर्व सामग्रीके हूयेजी पगें चलना, छठा सम्यक्त्वधारी पणा तथा यात्रा वास्ते राजासें आज्ञा लेवे, विशिष्ट मंदिरोकों सजावे, विनय बहुमान सहित स्वजन और साधर्मियोंकों बुलावे,तथा गुरुकों साथ ले जाने वास्ते निमंत्रणा करे, अमारी ढंढेरा फिरावे, मंदिरमें महापूजा महोत्सव करावे, खरची रहितोंकों खरची देवे, वाहन विनाकों वाहन देवे, निराधारोंकों यथायोग्य आधार देवे, सार्थवाहकी तरें दौंमी फिराकें लोकोंकों उत्साहवत करे, तथा आमंबर सहित बडा चरु, घडा,

थाल,मेरा,तंबू,कडाहिया साथ लेवे,चलतां कूपादिककों सज करे, तथा गाडा, सेजवाला रथ, पर्यंक, पालखी,ऊंट,घोडा प्रमुख साथ लेवे, तथा श्रीसंघकी रक्षा वास्ते बडे योद्धोंकों नौकर रखे, योद्धोंकों कवच अंगकादि उपस्कर देवे, तथा गीत, नाटक वाजित्रादि सामग्री मेलवे, तथा अछे मुहूर्त्तमें, शुभ शकुनमें प्रस्थान (चलना) करे, जोजनादिसें श्रीसंघका सत्कार करके संघप तिका तिलक देवे,आगें पीछें रखवाला रखे, संघके चलने उतरणेका संकेत करे, तथा संघवालोंकी गाडी आदिक टूट जावे, तो समरा देवे, अपणी शक्तिअनुसार सर्वसंघकों सहाय देवे, तथा गाम नगरमें जहां जिनमंदिर आवे, तहां महाध्वज देवे, चैत्यपरिवाडी आदि बडा महोत्सव करे, जी र्णचैत्यका उद्धार करे, तथा जब तीर्थकों देखे, तब सुवर्ण, रत्न, मोती आदिकसें वर्धापना करे, लापसी, लड्डु प्रमुखका लाहणा करे, तथा साध र्मिवात्सल्य, यथोचित दान देवे, बडे उत्सवसें जब तीर्थकों प्राप्त होवे, तब प्रथम हर्षपूजा धन चढावे, तथा अष्टोपचारविधि, स्नात्रमालोद्घट्टन, घीकी धारा देवे, पहरावणी मोचन करे, तथा नवांगजिनपूजन, फूलघर कदलीघरादि महापूजा करे, डुकूलादिमय महाध्वज देवे, मांगनेवालोंकों नांहिं न करे, तथा रात्रिजागरण नाना प्रकारके गीतनृत्यादि उत्सव करे, तथा तीर्थोपवास छठ प्रमुख तप कोडि लाख अक्षतादि विविध प्रकारका उजमणा होवे, तथा नाना प्रकारकी वस्तु फल एक सौ आठ चौवीश, ब्यासी, बावन, बहत्तरादि होवे,सर्व जक्ष्य जोजनके थाल होवे, डुकूलादि मय चंडुवा पहरावणी करे, तथा अगलूहणां, दीपक, तेल, धोती, चंदन, केसर, कस्तूरी, चंगेरी (छाबडी) कलश, धूपधाणां, आरति, आजरण, प्रदीप, चामर, जृंगार, स्थाल, कचोलक, घंटा, झालरी, पडहादि विविध प्रकारके वार्जित्र देवे, देहरी करावे, कारीगरोंकों सत्कार देवे, तीर्थके बि गडे कामकों समरावे, सार संजाल करे, तीर्थके रक्षकोंकों बहु सन्मान देवे, जैनके जगतोंकों, दीनोंकों, उचित दान देवे, तथा साधर्मिवात्सल्य गुरुजक्ति करे, इस रीतिसें यात्रा करके तैसेंही पीछा फिरे,वर्षादि तक तीर्थ व्रत करे ॥ इति यात्राविधि ॥ इति यात्रात्रयस्वरूपं समाप्तम् ॥३॥

॥ अथ स्नात्रविधिर्लिख्यते ॥ मंदिरमें स्नात्र महोत्सवजो घृतका मेरु

करे, अष्ट मांगलिक नैवेद्यादि होवें, बहुत बहुत जातिवत चंदन, केसर, पुष्प, अंबरादि ल्यावे, सकल श्रावकसमुदाय मेले, गीत नृत्यादि आडंबर रचावे, डुकूलादि महाध्वज देवे, प्रौढाडंबरसें प्रभावनादि, निरंतर तथा पर्वदिनमें करे, जेकर निरंतर अथवा पर्वदिनमेंभी न कर सके, तोभी वर्षमें एक वार तो अवश्य करे स्नात्र महोत्सवमें स्वधनकुलप्रतिष्ठादि अनुसारें सर्वशक्तिसें करे, जिनमतका महा उद्योत करे ॥इति स्नात्रविधि ॥४॥

तथा देवद्रव्यकी वृद्धि वास्ते प्रतिवर्ष मालोद्घट्टन करे, इंद्रमाला तथा और मालाभी यथाशक्ति करे, ऐसेंही पहरावणी, नवीन धोती, विचित्र प्रकारका चंडुआ, अंगलूहणां, दीपक, तेल, जातिवत केसर, चंदन, बरास, कस्तूरी प्रमुख चैत्योपयोगी वस्तु, प्रतिवर्ष यथाशक्तिसें देवे ॥५॥

तथा सुंदर अंगी, पत्रभंगी, सर्वांगाभरण, पुष्पगृह, कदलीगृह, पूतली, पाणीके यंत्रादिककी रचना करे, तथा नाना गीत नृत्यादि उत्सवसें महापूजा रात्रि जागरण करे ॥ ६ ॥ ७ ॥

तथा श्रुतज्ञानकी पुस्तकादिककी पूजा कर्पूरादिसें सदा सुकर है, अरु प्रशस्त वस्त्रादिकसें विशेषपूजा तो प्रतिमास शुक्लपंचमीके दिन श्रावकको करनी योग्य है, जे कर शक्ति न होवे, तोभी वर्षमें एक वार तो अवश्य करे, इसका विस्तार, जन्मकृत्यमें ज्ञानभक्तिद्वारमें लिखेंगे॥८॥

तथा पंचपरमेष्ठि नमस्कार, आवश्यकसूत्र, उपदेशमाला, उत्तराध्ययनादि ज्ञान दर्शनका तप, इत्यादिमें जघन्य एक वार उद्यापन करे, जिसें लक्ष्मी सफल होवे,जब जप तपका उद्यापन करे,तब चैत्य उपर कलशारोपण करे, फल चढावे, अक्षत पात्रके मस्तक उपर अक्षत देवे, जैसें भोजन उपर तांबूल देते हैं, तैसी तरें यहभी जान लेनां यह उपधान, उद्यापनविधि, शास्त्रांतरसें जान लेनी ॥ इति उद्यापनविधि ॥ ९ ॥

तथा तीर्थकी प्रभावना वास्ते वाजे गाजे प्रौढाडंबरसें गुरुका प्रवेश करावे, यह व्यवहारभाष्यमें कहा है, क्योंकि इस्से जिनमतकी प्रभावना होती है, तथा यथाशक्ति श्रीसंघका बहुमान करणां, तिलक करणां, चंदन, बरास, कस्तूरी प्रमुखसे विलेपन करे, तथा सुगंधि फूल, भक्तिसें नालियरादि विविध तांबूलप्रदानरूप भक्ति करे, क्योंकि शासनकी उन्नति करनेसे तीर्थंकर गोत्र उपार्जन करता है, यह कथन ज्ञातासूत्रमें है ॥ १० ॥

तथा गुरुके योग मिले हूए जघन्यसेंजी एक वर्षमें एक वार आलोचना लेवे, अपणे करे हूए सर्व पापकों गुरुके आगें कह देवे, पीछें गुरु जो प्रायश्चित्त देवे, सो लेवे, फेर उस पापकों न करे, तिसका नाम आलोचना लेनी है, ऐसी श्राद्धजितकल्पादिमें विधि लिखी है पक्ष पीछें, चार मास पीछें, एक वर्ष पीछें, उत्कृष्ट वारा वर्ष पीछें, निश्चेही आलोचना करे, अपणा शल्य काढनेंकों क्षेत्रसें सात सौ योजन, अरु कालसें वारा वर्ष तक गीतार्थ गुरुका अन्वेषण करे, तथा जिस गुरुके आगें आलोचना करे, सो गुरु कैसा होवे? सो लिखते हैं गीतार्थ होवे, मन, वचन, काया स्थिर होवे, चारित्रवंत होवे, आलोचना ग्रहणमें कुशल होवे, प्रायश्चित्तका जाणकार होवे, विषाद रहित होवे, ऐसा गुरु होवे, सो आलोचना प्रायश्चित्त देनें योग्य होता है

तिनमें गीतार्थ उसको कहते हैं, कि जो १ निशीथादि छेद शास्त्रोंका मूलपाठ, निर्युक्ति, जाष्य, चूर्णी, इनका जानकार होवे, तथा ज्ञानादि पंचाचार युक्त होवे, तथा २ आधारवंत आलोचितपापका धारणे वाला होवे, ३ आगमादि पांच व्यवहारका जानने वाला होवे, तिसमेंजी इस कालमें तो जितव्यवहार मुख्य है, तिसका जानने वाला होवे, ४ प्रायश्चित्त आलोचककी लज्जा दूर करानेवाला होवे, ५ आलोचककी शुद्धि करने वाला होवे, ६ आलोचकके पापकर्म, औरके आगें न कहे, ७ जैसें वो आलोचक निर्वाह कर सके, तैसें प्रायश्चित्त देवे, ८ जो प्रायश्चित्त न करे, तिसकों इस लोक अरु परलोकका जय दिखावे, यह आठ गुण युक्त गुरु होता है

साधुने तथा श्रावकने १ प्रथम तो अपणे गछमें गछके आचार्य आगें, २ तदयागे (तदजावे) उपाध्यायके पास, ३ तदजावे प्रवर्त्तकके पास, ४ तदजावे स्थविरके पास, ५ तदजावे गणावछेदकके पास, स्वगछमें इन पांचोंके अजावसें संजोगी एकसमाचारी वाले गछांतरमें पूर्वोक्त आचार्यादि पांचोंके पास क्रमसें आलोचे, तिनकेजी अजावसें असंजोगी संवेगी गछमें पूर्वोक्त क्रमसें आलोचे, तिनकेजी अजाव हूआ गीतार्थ पार्श्वस्थके पास आलोचे, तिसके अजावसें गीतार्थ सारूपीके पास आलोचे, तिसके अजावें पश्चात्कृतके पास आलोचे, सारूपी उसको कहते हैं, कि

जो शुक्लवस्त्रधारी होवे, शिरमुंडित, अबद्धकच्छ, रजोहरण रहित, ब्रह्मचारी, स्त्रीरहित भिक्षावृत्ति होवे, अरु जो सिद्धपुत्र होता है, सो शिखा सहित, अर्थात् चोटी सहित, स्त्री सहित होता है, तथा जो पश्चात्कृत होता है, सो चारित्र छोडके गृहस्थके वेषवाला होता है. आलोचनाके अवसरमें पार्श्वस्थादिककोंभी गुरुकी तरें वंदना करे, क्योंकि विनयमूल धर्म है, इस वास्ते वंदना करे, जे कर वो पार्श्वस्थादिक अपणे आपकों गुणहीन जान कर वंदना न करावे, तब तिसकों आसन उपर बैठा कर प्रणाम मात्र करकें आलोचना लेवे, तथा पश्चात्कृतकों इत्वर सामायिक आरोपण लिंग दे कर पीछेसें उसके पास यथाविधिसें आलोचना लेवे, तथा पार्श्वस्थादिकके अभावें जहां राजगृहादि गुणशील चैत्यादिकमें जहां श्री अर्हंत गणधरादिकोंने बहुत वार प्रायश्चित्त लोकोंकों दीया है, सो तहां रहनेवाले देवतानें देखा है, वास्ते तिस देवताकों अष्टमादि तपसें आराधकें तिसके आगें आलोचे, कदाचित् वो देवता चव गया होवे, अरु उसकी जगे और उत्पन्न हूआ होवे, तदा वो देवता महाविदेहके अर्हंतकों पूछके प्रायश्चित्त देवे, तिसके अभावें अर्हंत प्रतिमाके आगें आलोचे, आप प्रायश्चित्त लेवे, तिसके अभावें पूर्वोत्तर मुख करकें अर्हंतसिद्धोंके समक्ष आलोवे, परंतु शल्य न रक्खे, आलोचना करनेवाला पुरुष, मायारहित बालककी तरें सरल हो कर आलोवे, जो कोइ किसी कारणसें आलोचना न करे, वो आराधक नहीं है

आलोचना करनेवाला दश दोष वर्जके आलोचना करे, सो दश दोषका नाम लिखते हैं १ गुरुकों वैयावृत्तादिकसें खुशी करकें पीछें आलोवे, जिस्सें वो गुरु थोडा प्रायश्चित्त देवे, २ यह गुरु थोडा दंड देता है, ऐसें अनुमान करकें आलोवे, ३ जे दूसरोंने देखा होवे, सो आलोवे, परंतु जो अपणा कीया अपराध दूसरा कोइने न देखा होवे, उसकों न आलोवे, ४ बादर दोषकों आलोवे, परंतु सूक्ष्म दोषकों न आलोवे, ५ सूक्ष्मदोष आलोवे, परंतु बादर दोष न आलावे, ६ अव्यक्त स्वरसें आलोवे, ७ जैसें गुरु समझे नहीं, ऐसें रौला करकें आलोवे, ८ आलोचा हूआ बहुतोंकों सुणावे, ९ अव्यक्त अगीतार्थके पास आलोवे, १० अपराध जो गुरुने कहा होवे, तिसही अपणे अपराधकों आलोवे, यह दश दोष हैं

आलोचना करनेसें जो गुण होता है, सो कहते हैं. जैसें बोजा उ ठाने वाला जारके दूर हूए हलका होता है, तैसा पापसें वो हलका हो जाता है, तथा पापरूप शल्य दूर हो जाता है, प्रमोद उत्पन्न होता है, आत्मपरके दोषोंसें निवृत्ति तिसकों देखकें औरजी आलोचना करेंगे, सर लता होती है, शुद्ध हो जाता है, वो डुष्कर कामके करने वाला है, क्योंकि दोषकों सेवनां तो डुष्कर नहीं है, किंतु आलोचना प्रकाश क रनां, यह डुष्कर है, तथा श्री तीर्थंकरकी आज्ञाका आराधक होता है, नि शल्य होता है, आलोचनावालेकों ये गुण होते हैं यह आलोचना विधि श्राद्धजितकल्पसूत्रवृत्तिके अनुसारें लीखा है, आलोचना करनेसें बाल, स्त्री, यति हत्यादि पाप तथा देवादिद्रव्यनक्षण पाप, तथा राज पत्नी गमनादि महापापनी सम्यक्रीतिसें आलोवे, गुरुदत्त प्रायश्चित्त करे, तो दूर हो जाते है, नहीं तो दृढपरिहारि प्रमुख उसी नवमें मोक्ष कैसें जाते? इसी वास्ते वर्ष वर्ष प्रति चौमासे चौमासे आलोचना लेवे ॥ इति श्राद्धविध्यनुसारे वर्षकृत्यं सपूर्णम् ॥

अथ जन्मकृत्य, अढारह द्वारों करकें लिखते हैं १ तिसमें प्रथम उचित द्वार है, सो पहिलां तो उचित योग्य वसनेका स्थान करे, जहां रहनेसें धर्म, अर्थ अरु काम, तीनोंकी सिद्धि होवे, तहां श्रावककों वास करनां चाहियें क्योंकि और जगे वसनेसें दोनों नव बिगड जाते हैं, नी ल्लपल्लीमें, चोरोंके गाममें, पर्वतके किनारे, हिंसक लोकोमें, डुष्ट लोकोंमें, धर्मीलोकोंके निंदकोंमें, इत्यादि स्थानमें वास न करे, परंतु जहां जिन चैत्य होवे, जहां मुनि आते होवें, जहां श्रावक वसते होवें, जहां बुद्धि मान् लोक स्वनावसेंही शीलवान् होवें, जहां प्रजा धर्मशील होवें, बहुत जल, इंधन, होवे, तहां वास करे जैसा अजमेरके पास हर्षपुर नगर था, ऐसें नगरमें रहनेसें धनवत, गुणवत अरु धर्मवतकी सगतिसें विनय, वि चार, आचार, उदारता, गनीरता, धैर्य, प्रतिष्ठा आदि गुणकी प्राप्ति होती है, धर्मकृत्यमें कुशलता प्रगट होती है, इस वास्ते बुरे गामोंमें चाहो धन प्राप्ति होवे, तोनी वास न करे ॥ उक्त च ॥ यदि वांछसि मूर्खत्वं, ग्रामे वस दिनत्रयं ॥ अपूर्वस्यागमोनास्ति, पूर्वाधीतं च नश्यति ॥१॥

उचितस्थानजी स्वचक्र, परचक्र, परस्पर विरोध, डार्निक्ष, मारी,(हैजा)

प्रजाविरोध, अन्नादि वस्तुक्षय, इत्यादि कारण हो जावे, तो तत्काल छोड जाना चाहियें, नहीं तो त्रिवर्गकी हानी हो जावेगी, जैसें आगें म्लेछोंके नयसें लोक दिल्लिको छोडके गुजरातादि देशोमें जातेसें सुखी और धनी हूए हैं; तथा क्षितिप्रतिष्ठित, चनकपुर, ऋषनपुर, प्रमुखके उजडनेकी व्यवस्था जान लेनी, सो इस रीतिसें है कि – क्षितिप्रतिष्ठित उजडके चनकपुर वसा, अरु चनकपुर उजडके ऋषनपुर वसा, अरु ऋषनपुर उजडके राजगृह वसा, तथा राजगृह उजडके चंपा वसी, अरु चंपा उजडके पाटलीपुत्र अर्थात् पटना वसा ऐसें श्रावकनी पूर्वोक्त हानी जाने तो नगरकों छोडकें और जगें जा कर वसे

तथा रहनेका घरनी अछे पडोसीयोंके पास करे, परंतु वेश्या, तिर्यंच, निशाचर, श्रमण, बौद्ध, तापसादि ब्राह्मण, मशाण, कोटवाल, माछी, जूआरी, चोर, नट, नचानेवाला, नाट, कुकर्मी, इत्यादिकोंके पडोसमें घर हाट न लेवे, न वसे, जे कर देहरेके पास रहे, तो हानी होवे, तथा चौंकमें, धूर्तकें अरु प्रधानके पास रहे, तो धन अरु पुत्र दोनोंका क्षय होवे तथा मूर्ख, अधर्मी, पाखंमी, पतित, चोर, रोगी, क्रोधी, चंमाल, मदोन्मत्त, गुरुतल्पग, वैरी, स्वामीवंचन, लोनी, तथा ऋषि, स्त्री, अरु बालहत्या करनेवाला, इतने लोक जे कर अपणा नला चाहे, तोनी इनकें पडोसमें न रहे, क्योंकि इनकी संगतिसें गुणहानी प्रमुख अनेक उपद्रव होते हैं, इस वास्ते इनके पडोसमें न रहे

तथा नला स्थान वो होता हैं, कि जहां हड्डीका शल्य न होवे, राख न होवे, जहां माज उगती होवे, नला वर्ण, गंधवाली मिट्टी होवे, मीठा जल होवे, खोदतां धन निकले, वो जगा शुन है तथा जो नूमि, शीतकालमें उष्ण स्पर्शवाली होवे, अरु उष्ण कालमें शीतस्पर्शवाली होवे, वो जगा बहुत शुन है एक हाथमात्र नूमि पहिलां खोदकें फेर तिस मट्टी करकें पीछें वो खाड नरे, जे कर मट्टी अधिक रहे, तो श्रेष्ठनूमि जाननी, अरु जो मट्टी बराबर रहे, तो समाननूमि जाननी, अरु मट्टी उंछी हो जावे तो नेष्टनूमि जाननी, तथा सौ पग चाले इतने कालमें जिस नूमिकामें पाणी न शूके, सो उत्तम नूमि जाननी, अरु जे कर सौ पग चाले, इतने कालमें एक अंगुली नर पाणी शोष होवे, तो मध्यम नूमि जाननी,

अरु एक अंगुलीकेभी उपरांत पाणी शूके, तो अधमभूमि जाननी, तथा पक्षांतरमें जिस भूमिके खातमें फूल गेरे, वो फूल जे कर शूके नहीं, तो उत्तम भूमि जाननी, अर्द्ध शूके, तो मध्यमभूमि जाननी, अरु सर्व शूक जावे, तो अधम भूमि जाननी, तथा जिस भूमिमें व्रीहि बोइ हुई तीन दिन पीछें उगे, तो उत्तम, पाच दिन पीछें उगे तो मध्यम, अरु सातदिन पीछें उगे, तो हीन भूमि जाननी

सर्पकी वम्भी उपर घर बनावे, तो रोग होवे, पोली भूमि उपर घर बनावे, तो निर्धन होवे, शल्ययुक्त भूमि उपर घर बनावे, तो मरण पावे, मनुष्यका हाड अरु केशका शल्य होवे, तो मनुष्योंकी हानी करे खरका शल्य होवे, तो राजा प्रमुखका भय होवे, श्वानका हाड होवे, तो बालक मरण पावे, बालकका हाड होवे, तो गृहस्वामी परदेशमें उजड जावे, गौका शल्य होवे, तो गौरूप धनकी हानी होवे, मनुष्यके केश तथा कपाल अरु भस्म होवे, तो मरण देवे

तथा प्रथमप्रहर अरु पश्चिम प्रहर वर्जके शेष प्रहरमें वृक्षकी अरु ध्वजाकी छाया घर ऊपर पडे, तो दुःखदायी है, अर्हतके मंदिरके पीछें न वसे, ब्रह्मा और कृष्णके पास न रहे, चंडिका और सूर्यके सन्मुख रहे नहीं, महादेवके तो किसी पासेंभी न रहे, कृष्णके वामें पासें अरु ब्रह्माके वाहिणे पासें न रहे, निर्माल्य (स्नानका पाणी) ध्वजकी छाया, विलेपन वर्जे, जिनमंदिरके शिखरकी छाया अरु अर्हतकी दृष्टि होवे, तहां न वसे तथा नगर अथवा गामके ईशान कोणमें घर न बनावे, बनावे, तो ऊच जातिवालेकों दुःखदायी है

घर बनावे, तो पूरा मोल देवे; पडोसीकों दुःख न देवे, घर लेती वखत किसीकों दुःख न देवे, ऐसेही ईंट, काष्ठ, पाषाण प्रमुख वस्तु निर्दोष, दृढ, बलवान, अरु जो नवीन होवे, सो योग्य मोल दे कर लेवे, सो विक्रय होती होवे, तिसका योग्य मोल दे कर लेवे, परंतु आप इंट पचावा न लगावे, तथा जिनप्रासादादिककी ईंटादि न ग्रहण करे, क्योंकि शास्त्रमेंभी कहा है, जो देहरा, कूवा, वावडी, मसाण, मठ, अरु राजाके मंदिर, इनके पाषाण, ईंट, काष्ठकों सरसों मात्रभी वर्जे, क्योंकि इनका

प्रजाविरोध, अन्नादि वस्तुक्षय, इत्यादि कारण हो जावे, तो तत्काल गोड जाना चाहियें, नहीं, तो, त्रिवर्गकी हानी हो जावेगी, जैसे आगें मू र्कोके नयसें लोक दिल्लिकों गोडके गुजरातादि देशोमे जानेसे सुखी औ धनी हूए हैं, तथा क्षितिप्रतिष्ठित, चनकपुर, ऋषनपुर, प्रमुखके उजडनेकी व्यवस्था ज्ञान लेनी, सो इस रीतिसे है कि – क्षितिप्रतिष्ठित उजडके च नकपुर वसा, अरु चनकपुर उजडके ऋषनपुर वसा, अरु ऋषनपुर उज डके राजगृह वसा, तथा राजगृह उजडके चंपा वसी, अरु चंपा उजडके पाटलीपुत्र अर्थात् पटना वसा ऐसे श्रावकनी पूर्वोक्त हानी जाने तो नगरकों गोडकें और जगें जा कर वसे

तथा रहनेका घरजी अच्छे पडोसीयोंके पास करे, परंतु वेश्या, ति र्यंच, निक्षाचर, श्रमण, बौद्ध, तापसादि ब्राह्मण, मशाण, कोटवाल, माछी, जूआरी, चोर, नट, नचानेवाला, नाट, कुकर्मी, इत्यादिकोंके पडोसमें घर हाट न लेवे, न वसे, जे कर देहरेके पास रहे, तो हानी होवे, तथा चौं कमें, धूर्तके अरु प्रधानके पास रहे, तो धन अरु पुत्र दोनोंका क्षय होवे तथा मूर्ख, अधर्मी, पाखंमी, पतित, चोर, रोगी, क्रोधी, चंमाल, मदोन्मत्त, गुरुतल्पग, वैरी, स्वामीवंचन, लोनी, तथा ऋषि, स्त्री, अरु बा लहत्या करनेवाला, इतने लोक जे कर अपणा नला चाहे, तोजी इनकें पडोसमें न रहे, क्योंकि इनकी संगतिसें गुणहानी प्रमुख अनेक उपद्रव होते हैं, इस वास्ते इनके पडोसमें न रहे

तथा, नला स्थान वो होता है, कि जहां हड्डीका शल्य न होवे, राख न होवे, जहां माज उगती होवे, नला वर्ण, गंधवाली मिट्टी होवे, मीठा जल होवे, खोदतां धन निकले, वो जगा शुन है तथा जो नूमि, शीत कालमें उष्ण स्पर्शवाली होवे, अरु उष्ण कालमें शीतस्पर्शवाली होवे, वो जगा बहुत शुन है एक हाथमात्र नूमि पहिलां खोदकें फेर तिस मट्टी करकें पीछें वो खाड नरे, जे कर मट्टी अधिक रहे, तो श्रेष्ठनूमि जा ननी, अरु जो मट्टी बराबर रहे, तो समाननूमि जाननी, अरु मट्टी उंढी हो जावे तो नेष्टनूमि जाननी, तथा सौ पग चाले इतने कालमें जिस नूमि कामें पाणी न शूके, सो उत्तम नूमि जाननी, अरु जे कर सौ पग चाले, इतने कालमें एक अंगुल नर पाणी शोष होवे, तो मध्यम नूमि जाननी,

खनेका स्थान करे, ईशानकोणमें देवगृह करें, तथा दक्षिणपासे अग्नि, पाणी, गाय, वायु, दीवेकी नूमि बनावे, तथा वामे पासें नोजन, धान्य, इव्य, वाहन, देवताकी नूमि करे, यह पूर्वादि दिशा सो घरके दरवाजेकी अपेक्षासें जाननी. बींकवत् नतु सूर्यापेक्षा

तथा घर बनानेवाले सूत्रधार मजूर प्रमुखको बोले प्रमाणसे कछुक अधिक मजूरी देवे, इसमें शोजा है, गृहस्थको चाहियें वैसा घर बनावे परतु व्यर्थ वडा घर न बनावे, क्योंकि उसमें व्यर्थ धन खरचना है, घरका द्वार, मर्यादासे योग्य जाणकें रखे क्योंकि बहुत दरवाजे बनानेसें दुष्ट जनोंके आने जानेसें स्त्री अरु धनका नाश हो जाता है, तथा दरवाजेका किंवाड दृढ बनावे, सांकल अर्गलादिसे सुरक्षित करे, किंवाडनी सुखे खुल जावे, असे बनावे, नींतमें नोगल रखनेसें पचेंड्रिय जीवकी विराधना होती है, किंवाड नेडे, तब यत्नसे नेडे असे प्रणाला खालादि कानी यथाशक्तिसें उद्यम करे,इसी तरें देश, काल, स्वविन्नव उचित स्वजाति उचित घर बनाकें विधि सहित स्नात्रपूजा, साधर्मिकवात्सल्य, संघपूजा करकें नले मुहूर्त्तमें नले शकुनमें प्रवेश करे, तो बहुत सुखदायी होवे, त्रिवर्गकी सिद्धिका हेतु होवे ॥ इति प्रथम उचितद्वार ॥ १ ॥

२ दूसरा विद्याद्वार कहते है विद्या सो लिखित, पठित, वाणिज्यादि कलाका ग्रहण करे, अर्थात् अध्ययन करे, क्योंकि जो विद्या नहीं शीखता है, सो मूर्ख रहता है, पग पगमें परानव पाता है, अरु विद्यावान् परदेशमेंनी माननीय होता है, इस वास्ते सर्व प्रकारकी कला शीखनी चाहियें क्या जाने क्षेत्र कालके विशेषसें किस कलासें आजीविका करणी पडे? जिसने सर्वकला शीखी होवे, उसनेनी पूर्वोक्त सात प्रकारकी आजीविकामेंसें जिस करकें सुखें निर्वाह होवे, सो आजीविका करणी जे कर सर्वकला शीखने समर्थ न होवे, तब जिस कलासें अपना सुखें निर्वाह होवे, अरु परलोकमें अछी गति होवे, सो कला शीखे, पुरुषकों दो वातें अवश्य शीखनी चाहियें, उसमें एक तो जिस्से सुखे निर्वाह होवे सो, अरु दूसरी जिस्सें मरकें अछी गतिमें जावे,यह दो वातें अवश्य शीखनी २

३ तीसरा विवाहद्वार सो विवाहनी त्रिवर्गशुद्धिका हेतु होनेसे उचित ही करणा चाहियें, विवाह अन्यगोत्रवालेसें करना चाहियें, तथा समान

पाषाणके, स्तंभ, पीठ, पट्टा, द्वार, शाखा, ये सर्व गृहस्थके घरमें, विरोधकारी हैं, अरु धर्मके स्थानमें सुखदायी है.

तथा पाषाणमय घरमें काष्ठके स्तंभ, अरु काष्ठमय घरमें, पाषाणके स्तंभ, मंदिरमें तथा घरमें बनानां वर्जे, तथा हलका काष्ठ, कोल्हुका काष्ठ, गाडेका काष्ठ, अर्हटका काष्ठ, चरखेका काष्ठ, कांटेवाले वृक्षका काष्ठ, पंच उंबरका काष्ठ, थोहरका काष्ठ, ये काष्ठ घरमें न लगावे, तथा बीजोरा, केला, दाडिम, बेरी, जंबीरी, हलद, आंवलीकी कर अरु धतूरा, इतनेका काष्ठ वर्जे, तथा इन वृक्षोंकी जड पडोससें घरमें प्रवेश करे, अथवा इनकी छाया घरमें पडे, तो कुलका नाश करे, तथा पूर्वदिशिकी तरफ घर ऊंचा होवे,तो धनका नाश करे,तथा दक्षिणदिशें उचा होवे,तो धनकी वृद्धि करे, पश्चिमदिशें ऊंचा होवे, तो धनादिकी वृद्धि करे, उत्तर दिशिमें होवे, तो उजड जावे, तथा जो गोल घर होवे, बहुत कूणे वाला होवे, अथवा एक कूणा दो कूणा तीन कूणा होवे अरु दक्षिण वामी तरफ लंबा होवे, ऐसे घरमें न वसे तथा जिस घरके कवाड स्वयमेव उघडे अरु जिडे वो घर सुखकारी नहीं

तथा घरके द्वार आगें कलशादि चित्राम होवे, तो शुभ है, तथा रंगनी, नाटारंभ, भारत रामायणका युद्ध, राजाओंका युद्ध, ऋषियोंका चरित्र, देवचरित्र, ये चित्राम करानां, घरमें शुभ नहीं, तथा फलवृक्ष, फूलीवेल, सरस्वती, नवनिधान, यक्षस्तंभ, लक्ष्मीदेवी, कलश, वर्द्धमान, चौदह स्वप्नावलि, ये चित्राम करानां शुभ है

तथा खजूर, दाडिम, केला, कोहला, बीजोरा, ये जिसघरमें लगे, उस घरका नाश करते हैं, वटवृक्ष लगे तो लक्ष्मीका नाश करे, कांटावाला वृक्ष लगे, तो शत्रुका भय करे, बडे फल वाला वृक्ष लगे, तो संतानका नाश करे, इन वृक्षका काष्ठभी वर्जे, तथा कोइ शास्त्र ऐसा कहता है कि:— घरके पूर्व बडवृक्ष होवे, तो अछा है, दक्षिणपासें उदंबरवृक्ष शुभ है, पश्चिमभागें पीपल, उत्तरपासें क्षीरवृक्ष अछा है

तथा घरमें पूर्वदिशिमें लक्ष्मीका घर करे, अग्निकोणमें रसोइ करे, दक्षिणदिशिमें शयनकी जगा करे, नैरुतकोणमें शस्त्रशाला करे, पश्चिमदिशें भोजनक्रिया करे, वायुकोणमें अन्न संग्रह करे, उत्तर पासें जल र

देवे, सो आसुरविवाह है, सातमा जो जोरावरीसे कन्याको ग्रहण करे, सो राक्षस विवाह है, आठमा सूती, मदोन्मत्त, बावरी, प्रमादवत, कन्याकों ग्रहण करें, सो पिशाच विवाह है, इन चारोंकों अधर्म विवाह कहते है, जे कर वधूवरकी परस्पर रुचि होवे तदा अधर्मविवाहकोंभी धर्मविवाह जानने अच्छी स्त्रीका लाभ होना, यह विवाहका फल है, अरु स्त्री मिलनेका फल यह है कि—अच्छा पुत्र उत्पन्न होवे, चित्तकी वृत्ति अनुपहत रहे, शुद्धाचार, देवगुरु, अतिथि, बंधवादिका सत्कार होवे

तथा विवाहमें जो धन खरचे, सो अपणे कुल वैभवकी अपेक्षा लो कमें जैसें अच्छा लगे, तितना खरच करे, परतु अधिक अधिक खरचनेकी चाल न बढावे, क्योंकि अधिक अधिक खरच तो धर्मपुण्यकी जगेही करना ठीक है, विवाहादिके अनुसारें स्नात्रमहोत्सव, बडी पूजा, आदर सहित करे, रसवती ढोकन अरु चतुर्विधसघका सत्कारादि करे, क्योंकि विवाहादि जो हैं, सो सब ससारके कारण है, इसमेंसें जितना धर्ममें लग जावे, सो सफल है ॥ इति तृतीयद्वार ॥ ३ ॥

४ अथ चौथा मित्र द्वार कहते हैं मित्र बनावें उसकों गुमास्ता रखे, उसकों जो सहायक होवे, उत्तमप्रकृतिवाला, साधर्मी, धैर्यवत, गभीर, चतुर, बुद्धिमान, प्रतीतकारी, सत्यवादी, इत्यादि शुभगुण युक्त होवे, उसकों मित्र बनावे॥

५ पांचमा द्वार भगवान्का मदिर बनावे सो बहा ऊचा, तोरण शिखर मडपादि मडित, भर्तचक्रवर्त्यादिवत् बनावे सुवर्ण, मणि, रत्नमय तथा विशिष्टपाषाणमय, अथवा विशिष्ट काष्ठ इटमय मदिर बनावे, जेकर शक्ति न होवे, तो तृणकी कुटीभी न्यायार्जित धनसें बना कर उसमें मट्टीकी प्रतिमा बना करकें पूजे, न्यायोपार्जित धनसेंही जिनमदिर बनाना चाहियें, जिसने जिनभवन नहीं कराया, जिनप्रतिमा नहीं बनवाइ, जिनप्रतिमाकी पूजा नहीं करी, अरु साधुपणा नहीं लीया, उस पुरुषने अपणा जन्म हार दीया है जो पुरुष, शक्तिके अभावसें एक फूलसेंभी पूजा करे, तोभी वो परमपुण्य उपार्जन करता है, तो फेर जिसने दृढ, निबिड, सुदर शिलासें श्रीजिनभवन मानरहित हो करकें बनवाया है, तिसके पुण्यका क्या कहना है? उसका तो जन्मही सफल है

जिनमदिर बनानेकी जो विधि है, सो लिखते हैं—भूमि अरु काष्ठादि

कुल,सदाचारादि,शील, रूप, वय, विद्या, धन, वेष, जाषा, प्रतिष्ठादि गुणों करके जो आप समान होवे, तिसके साथ विवाह करे, अन्यथा अ वहेलना, कुटुब, कलहादि अनेक कलक उत्पन्न होते है, श्रीमतीवत् सामुद्रिक शास्त्रोक्त शरीरके लक्षण अरु जन्मपत्रिका देखके वर कन्याकी परीक्षा करके विवाह करे, तडुक्त ॥ श्लोक ॥ इन्द्रवज्रावृत्त ॥ कुल च शील च सनाथता च, विद्या च वित्त च वपुर्वयश्च ॥ वरे गुणा सप्त विलोकनी या, स्तत पर जाग्यवशा हि कन्या ॥ १ ॥ तथा जो मूर्ख होवे, निर्धन होवे, दूर होवे, सूरमा होवे, मोक्षाजिलाषी वैरागवत होवे, वयमें कन्यासे त्रिगुणा अधिक होवे, इनकों कन्या न देनी, तथा अतिधनवान्, अतिशीतल, अतिक्रोधी, विकलांग, अरु रोगी, इनकोंजी कन्या न देनी, तथा जो कुल जातिसें हीन होवे, माता पिता रहित होवे, स्त्री पुत्रसहित जिसके होवे, इनकोंजी कन्या न देनी, तथा जिसका बहुतोंसे वैर होवे, जो नित्य कमाके खावे, अरु जो आलसी होवे, इनकोजी कन्या न देनी, तथा गोत्रीयकों, जूआरीकों, कुव्यसनीकों, विदेशीकों, इनकोंजी कन्या न देनी, जो स्त्री,कपट रहित जर्त्तारके साथ वर्ते,देवरके साथजी कपट रहित वर्त्ते,सासुकी जक्ता होवे, स्वजनकी वत्सल होवे, जाइयोमें स्नेहवाली होवे, कमलकी तरें विकसित वदन वाली होवे,सो कुलवहू, सुलक्षणी है

अग्नि देवताकी साखसें पाणीग्रहण करना, तिसका नाम विवाह कहते हैं, सो विवाह लोकमें आठ प्रकारका है, एक अलकार करकें कन्या देवे, तिसका नाम ब्राह्मविवाह है, दूसरा कन्याके पिताकों धन देकें जो कन्या विवाहे, तिसका नाम प्राजापत्य विवाह है, इन दोनो विवाहकी विधि आचारदिनकर शास्त्रसें जान लेनी, तीसरा बछडे सहित गोदान पूर्वक, सो ऋषिविवाह, चौथा जो यज्ञके वास्ते दीक्षा लेवे, उसकों जो कन्या देवे, सोइ दक्षिणा है, सो देवविवाह है, ये दोनो विवाह, लौकिकवेद सम्मत है, परतु जैनवेदमें सम्मत नहीं हैं क्योंकि इन दोनो विवाहोंके मत्र, जैनवेदमें नहीं हैं, अरु ये दोनो विवाह जैनमतवालोंके मतमें करने योग्य नहीं है, इन पूर्वोक्त चारों विवाहोंकों लोक नीतिमें धर्मविवाह कहते है, पांचमा मातापिताकी आज्ञा विना परस्पर स्त्री पुरुषके रागसे जो विवाह होवे, तिसकों गांधर्व विवाह कहते है, उठा किसी कामकी प्रतिज्ञा कराके कन्या

कलश, उरसा, प्रदीप, नंमार, बाग, वाडी, गाम, नगर प्रमुख राजा देवे, जैसें सिद्धराजराजाने, श्रीरैवताचल उपर श्रीनेमिनाथके चैत्य वास्ते बारा गाम दीये थे, तथा जैसें कुमारपालराजानें वीतनय पाटनके खुदानेसें त्रांबापत्रमें श्रीउदयन राजाके दीये गाम निकले, सो कबूल करके दीये, तैसें देवे, श्रीजिनमंदिरके बनानेका फल यह है कि:– जो यथाशक्तिसे अपणे धनके अनुसार श्रीजिनवरका नवन करावे, सो देवता जिसकी स्तुति करे, बहुत काल लग आनंद रूप, ऐसा देवविमानादिका परम सुख पावे॥५॥

६ अथ षष्ठ प्रतिमा द्वार सो श्रीअर्हंतका बिंब, मणि, सुवर्ण, धातु, चंदनादि काष्ठ अरु पाषाण, माटी प्रमुखका पांच सौ धनुष प्रमाण यावत् अंगुष्ठ प्रमाण यथाशक्तिसें बनावें, श्रीजिनप्रतिमा बनानेवालेकों फल होता है, सो कहते हैं ॥ श्लोक ॥ वसंततिलकावृत्त ॥ सन्मृत्तिकामलशिलातलदंतरौप्य, सौवर्णरत्नमणिचंदनचारुबिंबम् ॥ कुर्वंति जैनमिह ये स्वधनानुरूप, ते प्राप्नुवंति नृसुरेषु महासुखानि ॥ १ ॥ आर्या ॥ दारिद्द दोहग्ग, कुजाइ कुसरीर कुगइ कुमईउ ॥ अवमाण रोग सोगा, न हुंति जिणबिंब कारीण ॥ १ ॥ अर्थ – जो जिनबिंबका कराने वाला है, सो दारिद्र, दौर्भाग्य, कुजाति, विरूप शरीर, नरक तिर्यंचकी गति, बूरी बुद्धि, परवशपणा, रोगी, अरु शोकी पणांको न पावे

तथा प्रतिमाभी वास्तु शास्त्रमें कही विधिपूर्वक बनावे, सुलक्षणा संततिकी वृद्धि करनेवाली बनावे, तथा जो प्रतिमा अन्यायोपार्जित द्रव्यसें बने, दोरगादि रंगवाले पाषाणकी बने, जिसका अंग हीनाधिक होवे, सो प्रतिमा स्वपरकी उन्नतिकी नाश करने वाली है, तथा जिस प्रतिमाका मुख, नाक, नेत्र, नाभि, कटि, इतने अंग, भंग होवे, तो वो प्रतिमाकों मूल नायक न करनां चाहियें, अरु आभरण सहित, वस्त्रसहित, परिकर सहित, लंछन सहित पूजे, तथा जिस प्रतिमाकों सौ वर्षसें अधिक वर्ष हो गया होवे, अरु आगें जो प्राभाविक पुरुषकी प्रतिष्ठी हुइ होवे, वो प्रतिमा जे कर खंडित होवे, तोभी पूजने योग्य है तथा बिंबके परिवारमें पाषाणमयमें, जेकर दूसरा रंग होवे, तो वो बिंब, सुखकारी नहीं, जो बिंब, सम अंगुल प्रमाण होवे, सो शुभ नहीं, तथा एक अंगुलसें ले कर इग्यारह अंगुल प्रमाण बिंब घरमें पूजनां चाहियें इस्से उपरांत प्रमा

शुद्ध होवे, मजुरोंसे ठग्न न करे, सूत्रधार कारीगरोंकों सन्मान देवे, तथा पूर्वे जो घर बनानेकी विधि कही, वो सर्व इहां विशेष करकें जाननी. काष्ठादि जो ल्यावे, सोन्नी देवाधिष्ठातावनादिसे सूका ल्यावे, परंतु अविधिसें न ल्यावे, तथा आप, ईट पकावे, तो अच्छा नहीं, नौकरोकों काम करने वालोंकों ठहरावसेंन्नी कछुक महीना अधिक देवे, क्योंकि वे लोक तुष्टमान होकें अच्छा पक्का काम करे, अरु मंदिरादि करानेमें शुन्न परिणामके वास्ते गुरु संघ समक्ष ऐसे कहे, कि जो इहां अविधिसे पारका धन मेरे पास आया होवे, तिसका पुण्य तिसकों होवे, इसी तरें जिनमंदिर बनावे, परंतु नूमि खोदनी, पूरणी, पाषाणदलसें कपाट लाने, शिला फोडनी, चिनने प्रमुखमें महा आरंन्न होता है, इस वास्ते जिनमंदिर न बनाना चाहियें ? ऐसी आशंका न करनी, क्योंकि यत्नसें करके प्रवृत्त होनेसें निर्दोष है, अरु नाना प्रतिमास्थापन, पूजन, संघसमागम, धर्मदेशना करणी, दर्शन व्रतादिककी प्रतिपत्ति, शासनप्रन्नावना, अनुमोदनादि, अनंत पुण्यका हेतु होनेसे तथा शुन्नोदयका हेतु होनेसें कूपके दृष्टांतसें महालान्नका कारन है

अरु जीर्णोद्धारमें ऐसी रीति है यत ॥ नवीनजिनगेहस्य, विधाने यत्फलं न्नवेत् ॥ तस्मादष्टगुणं पुण्यं, जीर्णोद्धारेण जायते ॥ १ ॥ जीर्णे समुद्धृते यावं, त्तावत्पुण्यं न नूतने ॥ उपमर्दो महांस्तत्र, स्वचैत्यख्यातिधीरपि ॥ २ ॥ तथा ॥ राय अमच्च सेठी, कोडंबीएवि देसेण काउ ॥ जिणे पुव्वायणे, जिणकप्पीवावि कारवई ॥ १ ॥ अर्थ – राजा, मंत्री, श्रेष्ठी, कौटंबीकोंकों उपदेश दे कर जीर्ण जिनमंदिरका उद्धार जिनकल्पी साधुन्नी करावे, जो जिनन्नवनका उद्धार करे, तिसनें न्नयंकर संसारसें अपणी आत्माका उद्धार करा है, ऐसा जान लेनां जीर्णचैत्योद्धारकरणपूर्वकही नवीन चैत्य करानां योग्य है, इसी वास्ते संप्रति राजाने नवासी हजार जीर्णोद्धार कराये हैं, अरु नवीन जिनमंदिर तो उत्तीश हजारही बनवाये हैं, ऐसेही कुमारपाल राजा तथा वस्तुपालादिकोनेन्नी नवीन जिनमंदिरों बनानेसें जीर्णोद्धार बहुत कराये हैं

तथा जब चैत्य बन जावे, तब शीघ्रही प्रतिमा बिराजमान करनी चाहियें ॥ यदाह श्रीहरिन्नद्रसूरि ॥ जिनन्नवने जिनबिंबं कारयितव्यं द्रुतं तु बुद्धिमता ॥ साधिष्ठानं ह्येवं, तद्भवनं वृद्धिमन्नवति ॥ १ ॥ देहरेमें कुंमी,

राये, ग्नवे क्रोड रूपइये खरचकें त्रिभुवनविहार नामा जिनमंदिर बन वाया, उसमें एक सौ पचवीश अंगुल प्रमाण अरिष्टरत्नमयी प्रतिमा बह त्तर देहरी संयुक्त अरु चौवीस प्रतिमा रत्नकी, चौवीस सोनेकी, चौवीस रूपेकी स्थापन करी, अरु चौदह नार प्रमाण एकेक चौवीसी बनवाई, तथा मंत्री वस्तुपालने तेरां सौ तेरां नवीन जिनमंदिर बनवाये, श्रौ बाइ सौ जीर्णोद्धार कराये,सवा लाख प्रतिमा, अरु सवा लाख रत्नसुवर्ण जडे श्रैसे आनूपण, प्रतिमाजीके बनवाये तथा साह पेथडने चौरासी जिनमं दिर बनवाये,मांधाता अरु ॐकार नगरमे तथा देवगिरिमें क्रोडो रूपक ख रचके वीरमदे राजाके राज्यमें चौरासी जिनमंदिर बनवाये, तीन लाख रूप इया दानमें दीना, तथा तिसही पेथडशाहनें श्रीशत्रुंजय तीर्थमें श्रीरूपन्न देवजीके मंदिरको सुवर्णपत्रसे मढाके मेरुके शृंगवत् कर दीया था, ये सर्व पूर्वोक्त मंदिर, राजा अजयपालनें अरु मुसलमानोनें गारत कर दीये, शेष जो बचे बचाये रहे हैं,वे आजनी आबु तारगादि पर्वतों उपर विद्यमान हैं

७ सातमा प्रतिमाकी प्रतिष्ठाका द्वार सो प्रतिमाकी प्रतिष्ठा शीघ्र करनी चाहियें, षोडशकग्रंथमें लिखा है, कि मंदिर त्यार हूआं पीछें दश दिनके अन्यतरही प्रतिष्ठा करानी चाहियें, यह प्रतिष्ठाकी विधि प्रतिष्ठाकल्प प्र मुख ग्रंथोंसें जान लेनी ॥ इति सप्तमद्वार ॥ ७ ॥

८ आठमा दीक्षा द्वार सो बडे महोत्सवसें पुत्र, पुत्री, नाइ, नत्रीजा, स्वजन, मित्र, परिजन प्रमुखकों दीक्षा दिलावे, उपस्थापना करावे, तथा और दीक्षा लेनेवालोंका महोत्सव करे, यें महापुण्यका कारण है, जि सके कुलमें चारित्र धारक पुरुष होवे, सो बडा पुण्यवान् कुल है, लौकिक शास्त्रमेंनी लिखा है कि ॥ श्लोक ॥ तावद्भ्रमति संसारे, पितरः पिंमकां क्षिणः ॥ यावत्कुले विशुद्धात्मा, यतिपुत्रोन जायते ॥१॥ इति अष्टमद्वार ॥

९ नवमा तत्पदस्थापना द्वार सो गणि,वाचनाचार्य, वाचक, आचार्यादि पदप्रतिष्ठाको शासनकी उन्नति वास्ते बडे महोत्सवसें करे, जैसें पहिला गणधरोंकों शक्र (इंद्र) ने करी है, तथा मंत्री वस्तुपालने एकवीश आचा र्योंकों पदस्थापना करी ॥ इति नवमद्वार ॥ ९ ॥

१० दशमा पुस्तक लिखावनेका द्वार सो पुस्तक जो आचारांगादि कल्प सूत्र,अरु जिनचरित्रादिकोकों न्यायार्जित धनसें लिखावे,अछे पत्र (कागज)

णवाला बिंब होवे,तो प्रासादमें पूजना चाहिये. यह कथन पूर्वाचार्योंका है, तथा निरयावलिसूत्रमें कहा है,कि लेपकी,पाषाणकी, काष्ठकी, दांतकी, लोहकी प्रतिमा, परिवार अरु प्रमाण रहित होवे, तो घरमें न पूजे, तथा घरप्रतिमाके आगें नैवेद्यका विस्तार न करे, तीन कालमें निश्चये अभिषेक करे, पूजा, भावसें करे, प्रतिमा मुख्यवृत्तिसे परिकर सहित तिलक सहित आभरण सहित करावे, उसमें मूल नायक तो विशेष करकें शोभनीक बनाना चाहियें. क्योंकि जिनप्रतिमाकी अधिक शोभा देखनेसे परिणाम अधिक उल्लासमान होनेसें अधिक निर्जरा होती है, जिनमंदिर अरु जिन प्रतिमा बनानेवालेकों अतुल्य पुण्य फल होता है,जहां तक वो मंदिर अरु प्रतिमा रहेंगे, तहां तक पुण्य फल होवे, जैसें अष्टापद उपर भरत राजाका कराया चैत्य तथा रेवतगिरि उपर ब्रह्मेंद्रका कराया कांचन बलानकादि चैत्यप्रतिमा, अरु भरतचक्रीकी अंगूठीमें माणककी प्रतिमा, तथा कुल्पाक तीर्थमें माणिक्यस्वामीकी प्रतिमा कहलाती है, तथा श्री स्तंभनक पार्श्वनाथकी प्रतिमा आज लग पूजते हैं, इसी वास्ते इस चौवीसीमें पहिला भरतचक्रीनें श्रीशत्रुंजय तीर्थमें रत्नमय चौमुख चौरासी मंडप संयुक्त श्रीऋषभदेवका मंदिर बनवाया, पांच कोडी मुनियोंसें पुंडरीक गणधर मोक्ष पाये, ज्ञाननिर्वाणके ठिकाणेभी बनवाये, ऐसेंही बाहुबली, मरुदेवी शृंगमें तथा रेवतगिरि, अर्बुदगिरि,वैभारगिरि अरु समेतशिखरमेंभी जिनमंदिर बनवाये, प्रतिमाभी सुवर्णादिककी बनवाइ, तथा भरतराजाकी आठमी पीढीमें (पुस्तमें) दंडवीर्य राजानें तथा दूसरा सगरचक्रवर्त्यादिकोंनें तिनका उद्धार कराया, तथा हरिषेण नामक दशमे चक्रीनें श्रीजिनमंदिरमंडित पृथ्वी करी, तथा संप्रतिराजाने सवा लाख जिनमंदिर तथा सवा क्रोड जिनप्रतिमा बनवाइ, तथा आमराजा श्रावकने गोपालगिरि अर्थात् गवालियरके राजानें श्रीमहावीर अर्हंतका मंदिर एक सौ एक हाथ ऊंचा बनवाया, तिसमें साढे तीन क्रोड सोना मोहोर खरचकें सात हाथ प्रमाण ऊंची श्रीमहावीर अर्हंतकी प्रतिमा बिराजमान करी, तहां मूलमंडपमें सवा लाख सोनइया लगाया, अरु प्रेक्षामंडपमें एकवीश लाख सोनइया खरच कया, तथा कुमारपाल राजाने चौदह सौ चौतालीस (१४४४) नवीन जिनमंदिर कराये, अरु सोलां सौ मंदिर, जीर्णोद्धार क

कों प्राहुणे समान समुझे, क्योंकि भावश्रावकके लक्षण सत्तरे प्रकारें कहे हैं, तिनका नाम कहते हैं

१ स्त्रीसें वैराग्य, २ इंद्रियवैराग्य, ३ धनसें वैराग्य, ४ संसारसें वैराग्य, ५ विषयसें वैराग्य, ६ आरंभ स्वरूप जाणे, ७ घरकों दुःखरूप जाणे, ८ दर्शनधारी, ९ गडरीप्रवाह छोडे, १० धर्ममें आगें हो कर प्रवर्त्ते, आगमानुसारें धर्ममें प्रवर्त्ते, ११ दानादिकमें यथाशक्ति प्रवर्त्ते, १२ विधिमार्गमें प्रवर्त्ते, १३ मध्यस्थ रहे, १४ अरक्तद्विष्ट, १५ असंबद्ध, १६ परहित वास्ते अर्थ कामका भोगी न होवे, १७ वेश्याकी तरें घरवास पाले, ए सत्तरे पद संयुक्त भावश्रावक होता है तिनमें १ प्रथम स्त्री जो है, सो अनर्थका भवन है, चपलचित्तवाली है, नरककी वाट सरीखी है, जाणता हूआ कामी, इसके वशवर्त्ती न होवे, २ दूसरी इंद्रियों जो हैं,सो चपल घोडे समान हैं, खोटी गतिकी तरफ नित्य दौडती हैं,उसकों भव्य जीव, संसारका स्वरूप जानकें सत्ज्ञानरूप रज्जु (दोरडी) सें रोके, ३ तीसरा धन जो है, सो सर्व अनर्थका औ क्लेशका कारण है, इस वास्ते धनमें लुब्ध न होवे,४ चौथा संसारकों दुःखरूप दुःखफल दुःखानुबंधी विडंबनारूप जानकें प्रीति न करे, ५ पांचमा विषयका क्षणमात्र सुख है, विषय विषफल समान है, ऐसें जानकें कदापि विषयमें गृद्धित्व न करे, ६ छठा तीव्रारंभ सदा वर्जे, जे कर निर्वाह न होवे, तोभी स्वल्पारंभ करे, अरु आरंभ रहितोंकी स्तुति करे, सर्व जीवों उपर दयावंत होवे, ७ सातवा गृहवासकों दुःख रूप, फांसी मानकें गृहवासमें वसे, अरु चारित्रमोहनीय कर्मके जींतनेमें उद्यम करे, ८ आठमा आस्तिक्य भाव संयुक्त जिनशासनकी प्रभावना गुरुभक्ति करे, ऐसें सम्यग्दर्शन निर्मल धरे,९ नवमा जिस तरें बहुत मूर्ख लोक भेड (गडरी) प्रवाहवत् चलते होवे, तैसें न चले, परंतु जो काम करे,सो विचारके करे, १० दशमा श्रीजिनागम विना और कोइ परलोकका यथार्थ मार्ग कहनेवाला शास्त्र नहीं, इस वास्ते जो काम करे, सो जिनागमानुसारें करे, ११ इग्यारहवा आपणी शक्तिके विना गोप्यां चार प्रकारका दानादि धर्म करे, १२ बारहवा हितकारी, अनवद्य, धर्मक्रियाकों चिंतामणि रत्नकी तरें दुर्लभ जानकें करता हूआ किसी मूर्खके हसनेसें लज्जा न करे, १३ तेरहवा शरीरके रखने वास्ते धन, स्वजन, आहार, घरप्रमुखमें वसे,

ऊपर बहुत शुद्ध सुंदर अक्षरोंसे लिखावे,तथा आप वांचे, संवेगी गीतार्थ पासों वचावे,तथा प्रौढ प्रारंभादि महोत्सवसें दिनप्रत्यें पुस्तककी पूजा ब हुमान पूर्वक व्याख्यान करावे, तिनके पढने वालोंकों वस्त्र अन्नादिसें उपष्टंभ करे, शास्त्र जो होते, सो दुखम कालके प्रभावसें बारां वर्षके दु र्भिक्ष कालमें बहुत विछेद गये, अरु जो शेष रहे, सो भगवान् नागार्जुन स्कंदिलाचार्य प्रमुखोनें पुस्तकोंमें लिखे, तबसें लिखे हूए शास्त्रोंका बहुमान करने लगे, तिस वास्ते पुस्तक जरुर लिखाने चाहियें क्योंकि जो यह विछेद हो जायगे, तो फेर इस क्षेत्रके अनाथ जीवोंकों कौन ज्ञान देवेगा? इस वास्ते पुस्तकोंके ऊपर डुकूलादि वस्त्र बांधकें यत्नासें पूजने रखने चाहियें, शाह पेथडनें सात क्रोड, अरु मंत्री वस्तुपालनें अ ठारह क्रोड रूपइये खरचकें तीन ज्ञानके भंमार बनाये, तथा थिरापद्रीय संघपति आभूने अपणी माताके नामके रूपइये तीन क्रोडसें सर्वागमोंकी प्रति सोनेके अक्षरोंसें लिखवाइ,शेषग्रंथ स्याहीके अक्षरोंसें लिखाये॥१०॥

११इग्यारहवा पौषधशाला बनानेका द्वार सो श्रावक प्रमुखोंके पोषध करने वास्ते साधारण स्थानमें पूर्वोक्त घर बनानेकी विधिके अनुसारें ब नानी चाहियें वो शाला समरार्के अवसरमें सुसाधुके रहनेकोंभी देवे, ति सका महाफल है, श्रीवस्तुपालने नौ सौ चौरासी (९८४) पौषधशाला कराइ, सिद्धराज जयसिंह राजाके प्रधान, सांतूने अपणे रहने वास्ते बहुत सुंदर आवास करार्के श्रीवादिदेवसूरिजीकों दिखलाया, अरु मंत्रीजीने पूछा कि—कैसा आवास है? तब चेले माणिक्यने कह्या कि पौषधशाला होवे तो वर्णन करियें, तब मंत्रीने कह्या कि— यह पौषधशालाही होवे॥

१२—१३ तथा बारहवां अरु तेरहवा द्वारमें आजन्म बाल्य अवस्थासें ले करजावजीव लगें सम्यक्त्वदर्शन यथाशक्तिसें पाले,यह बारहमा द्वार॥१२॥ १३ अरु यथाशक्तिसे व्रतादि पाले, यह तेरहवा द्वार ॥ १३ ॥

१४ चौदहवा दीक्षा ग्रहणका द्वार सो श्रावक अवसर जानकें दीक्षा ग्रहण करे, तात्पर्य यह है कि—श्रावक जो है, सो निश्चय बालावस्थामें दीक्षा न लेवे, तो अपणे मनमें ठगाया हूआ माने,जैसे जगत्में अति वल्ल भ वस्तुकों लोक स्मरण करते हैं, तैसें श्रावकभी नित्य सर्वविरति लेनेकी चिंता करे, जे कर गृहवासभी पाले, तोभी औदासीन्य अलिप्तपणे अपणे

चार मास तक चार पर्वोंमें पूर्वजो तीन प्रतिमा सहित अखंडित परिपूर्ण पौषध करे,पांचमी पांच मास तक स्नान न करे,रात्रिकों चार आहार वर्जे, दिनमें ब्रह्मचर्य धरे, कछ बांधे नहीं, चार पर्वोंमें घरमें तथा चौकमें निःप्रकंप होके सकलरात्रि कायोत्सर्ग करे,यह सर्व पूर्वजो प्रतिमा सहित करे. यह बात, आगेंभी सर्व प्रतिमामें जान लेनी छठी छै मास तक ब्रह्मचारी होवे,सातमी सात मास तक सचित्त आहार वर्जे,आठमी आठ मास तक आप आरंभ न करे, नवमी नव मास तक आरंभ करावे नहीं,दशमी दश मास तक क्षुरमुंडित रहे अथवा अल्प चोटी राखे, घरमें गडा हूआ धन होवे, जब घरके पूछे तब कहे जानता हूं, औ जो न गडा होवे, तो कहे मैं नहीं जानता, शेष घरका कृत्य सर्व वर्जे, तिसके निमित्त जो घरमें आहार कर्या होय, तोभी न खावे इग्यारहवी इग्यारां मास तक घरका संग त्यागे,लोच करे,वा क्षुरमुंडित होवे,रजोहरण पात्रे प्रमुख लेके मुनिका वेष धारी हो कर स्वकुलमें भिक्षा लेवे, मुखसें ऐसा कहे कि " प्रतिमाप्रतिपन्नाय श्रमणोपासकाय भिक्षां देहीति वचन कहे, " धर्मलाभ शब्द न कहे, सर्वरीतिसें साधुकी तरें प्रवर्त्ते ॥ इति श्राद्धप्रतिमा सप्तदश द्वारम् ॥ १७ ॥

१८ अठारहवा द्वार, आराधनाका कहते हैं, श्रावक अंतकालमें आराधना जो आगें कहेंगे सो अरु संलेषनादिकों विधिसें करे श्रावक जब सर्वधर्मकृत्यमें अशक्त हो जावे, तब मरण निकट जानके द्रव्य अरु भावें दो प्रकारें संलेषना करे. तहां द्रव्यसंलेषना तो अनुक्रमसें आहार त्यागे, अरु भावसंलेषना सो क्रोधादि कषाय त्यागे, मरण निकट, इन लक्षणोसे जान लेवे, सो लक्षण कहते हैं १ बूरे स्वप्न आवे, २ प्रकृति स्वभाव और तरेंका होवे, ३ डुर्निमित्त मले, ४ खोटे ग्रह आवे, ५ आत्माका आचरण फिर जावे, अथवा कोइ देवता कह जावे तो मरण निकट जान जावे, जो द्रव्ये भावें संलेषणा न करे, अरु अनशन कर देवे, उसकों प्रायें डुर्ध्यान होनेसें कुगति होती है, इस वास्ते संलेपना अवश्य करे, पीछे श्रावकोंके धर्मके उद्यापन करने वास्ते संयम अंगीकार करे, क्योंकि एक दिनकीभी दीक्षा स्वर्गलोककी दाता है, जैसें नलराजाके भाई कुवेरके पुत्र सिंहकेसरी, पांच दिनकी दीक्षासे केवलज्ञान पाके मोक्ष गया, तथा हरिवाहन राजाने नव प्रहरका शेष आयु सुनके दीक्षा लीनी

नोग रहे, परंतु राग, द्वेष, किसी वस्तुमें न करे, १४ चोदहवा उपशांतवृत्ति सार है, ऐसें विचारसे जो राग द्वेषमें लेपायमान न होवे, खोटा आग्रह न करे, हितका अनिलाषी मध्यस्थ रहे, १५ पदरहवा सर्ववस्तुकों क्षणनं गुर पणा निरंतर विचारे, धनादिके साथ प्रतिबंध तजे, १६ शोलहवा स सारसें विरक्त मन होवे, क्योंकि नोग नोगनेसें आज तक कोइ तृप्त नहीं हूआ है, परंतु स्त्रीआदिके आग्रहसे जे कर नोगोमें प्रवर्त्ते, तोनी विरक्तमन रहे, १७ सत्तरहवा वेश्याकी तरे अनिलाषा रहित वर्त्ते, ऐसा विचारे की आज काल ये अनित्यसुख मुऊकों गेडने पडेंगे, इस वास्ते घरवासमें स्थिर नाव न रखे, यह सत्तरे गुण संयुक्त श्रीजिनागममें नाव श्रावक कहा है ॥ इति धर्मरत्नशास्त्रे कथितं ॥

ऐसें शुननावना वासित प्रागुक्त दिनकृत्यादिमें रक्त "इणमेव निग्गंथे पवयणे अट्ठे परमट्ठे सेसे अणट्ठे" ऐसी सिद्धांतोक्त रीतिसें वर्त्तमान सर्व व्यापारोंमें सर्वप्रयत्नसें वर्त्तता हूआ सर्वत्राऽप्रतिबद्ध चित्त करकें क्रमसें मोह जीतने समर्थ होकें पुत्र, नाइ, नत्रीजादिककों गृहनार सौंपकें अप णी शक्तिकों देखके अर्हत चैत्यमें अठाइ महोत्सव करकें संघकी पूजा क रकें दीन अनाथोंकों यथाशक्ति दान देकें परिचित जनोंसें खामणां करकें सुदर्शन श्रेष्ठीवत् विधिसे सर्वविरति अंगीकार करे ॥ १४ ॥

१५ पंदरहवा द्वारमें जे कर दीक्षा लेनेकी शक्ति न होवे, तदा आरंनका त्याग करे, जे कर निर्वाह न होवे, तोनी सर्व सचित्ताहारादिक कितनाक आरंन वर्जे ॥ इति पंचदश द्वारं ॥ १५ ॥

१६ शोलमे द्वारमें ब्रह्मचर्य, जावज्जीव तक अंगीकार करे, यथा शाह पेथडनें बत्तीस वर्षकी अवस्थामें ब्रह्मचर्य धारण कीया ॥ इति षोडश द्वारं॥

१७ सत्तरहवे द्वारमें प्रतिमादि तप विशेष करे, आदि शब्दसे संसार तार णादि तप करे, तहां इग्यारह प्रतिमाका स्वरूप इस तरें है, प्रथम राया निओगेणादि ठे आगार रहित, तथा सतशठ बोल श्रद्धादि सहित सम्यक् दर्शन नय लज्जादिसें अतिचार रहित त्रिकाल देवपूजादिमें तत्पर एक मास तक सम्यक्त्व पाले, यह प्रथम प्रतिमा, दूसरी दो मास तक अखंमित पांच अणुव्रत पाले, सोनी पीछली प्रतिमा सहित वर्त्ते, तीसरी तीन मास तक उनय काल अप्रमत्त पूर्वोक्त दो प्रतिमा सहित सामायिक करे, चौथी

चार मास तक चार पर्वीमें पूर्वेजी तीन प्रतिमा सहित अखंमित परिपूर्ण पौषध करे, पाचमी पाच मास तक स्नान न करे, रात्रिकों चार आहार वर्जे, दिनमें ब्रह्मचर्य धरे, कछ वाधे नहीं, चार पर्वीमें घरमें तथा चौकमें निःप्रकप होकें सकलरात्रि कायोत्सर्ग करे, यह सर्व पूर्वेजी प्रतिमा सहित करे यह बात, आगेंजी सर्व प्रतिमामें जान लेनी छठी छे मास तक ब्रह्मचारी होवे, सातमी सात मास तक सचित्त आहार वर्जे, आठमी आठ मास तक आप आरंभ न करे, नवमी नव मास तक आरंभ करावे नहीं, दशमी दश मास तक क्षुरमुंमित रहे अथवा अल्प चोटी राखे, घरमें गडा हुआ धन होवे, जव घरके पूछे तब कहे जानता हू, अरु जो न गडा होवे, तो कहे मैं नहीं जानता, शेष घरका कृत्य सर्व वर्जे, तिसके निमित्त जो घरमें आहार कस्या होय, तोजी न खावे इग्यारहवी इग्यारां मास तक घरका संग त्यागे, लोच करे, वा क्षुरमुंमित होवे, रजोहरण पात्रे प्रमुख लेके मुनिका वेष धारी हो कर स्वकुलमें निक्षा लेवे, मुखसें ऐसा कहे कि " प्रतिमाप्रतिपन्नाय श्रमणोपासकाय निक्षां देहीति वचन कहे, " धर्मलाज शब्द न कहे, सर्वरीतिसें साधुकी तरें प्रवर्त्ते ॥ इति श्राद्धप्रतिमा सप्तदश द्वारम् ॥ १७ ॥

१७ अठारहवा द्वार, आराधनाका कहते हैं, श्रावक अतकालमें आराधना जो आगें कहेंगे सो अरु संलेपनादिकों विधिसें करे श्रावक जब सर्वधर्म कृत्यमें अशक्त हो जावे, तब मरण निकट जानके इव्य अरु नावें दो प्रकारें संलेपना करे तहां इव्यसंलेपना तो अनुक्रमसें आहार त्यागे, अरु नावसंलेपना सो क्रोधादि कषाय त्यागे, मरण निकट, इन लक्षणोसे जान लेवे, सो लक्षण कहते हैं १ बूरे स्वप्न आवे, २ प्रकृति स्वनाव और तरेंका होवे, ३ दुर्निमित्त मले, ४ खोटे ग्रह आवे, ५ आत्माका आचरण फिर जावे, अथवा कोइ देवता कह जावे तो मरण निकट जान जावे, जो इव्ये नावें संलेपणा न करे, अरु अनशन कर देवे, वसकों प्रायें डुर्ध्यान होनेसें कुगति होती है, इस वास्ते संलेपना अवश्य करे, पीछे श्रावकोंके धर्मके उद्यापन करने वास्ते संयम अंगीकार करे, क्योंकि एक दिनकीजी दीक्षा स्वर्गलोककी दाता है, जैसें नजराजाके नाई कुवेरके पुत्र सिंहकेसरी, पाच दिनकी दीक्षासें केवलज्ञान पाकें मोक्ष गया, तथा हरिवाहन राजाने नव प्रहरका शेष आयु सुनके दीक्षा लीनी

सर्वार्थसिद्ध विमानमें गया, संथारा और दीक्षाके अवसरमें प्रनावना वास्ते यथाशक्ति धन खरचे, जैसे सात क्षेत्रोमें ते अवसरमें थिरापद्रीय सघपति आनूने सात क्रोड धन खरच्या तथा जिसको सयमका योग न होवे, सो सलेषना करकें शत्रुजयादि तीर्थ सुस्थानमें जा कर निर्दोष स्थण्डिलमें विधि सें चार आहार त्यागरूप अनशनकों आणद कामदेवादि श्रावकोंवत् करे, तिस पीछें सर्वातिचारका परिहार चार सरणादि रूप आराधना करे

आराधना दश प्रकारसें होती है, सो कहते हैं १ पहिलां सर्वातिचार आलोवे, २ व्रत उच्चारण करे, ३ सर्व जीवोसे क्षमावे, ४ अपणी आत्मा कों अठारह पापस्थानक करनेसें व्युत्सर्जन करे, ५ चार सरणां लेवे, ६ गमनागमन दुकृतकी गर्हणा करे, ७ जो किसीने जिनमदिरादि सुकृत करा होवे, तिसकी अनुमोदना करे, ८ शुनजावना जावे, ए अनशन करे, अर्थात् चार आहार तीन आहारका त्याग करे, १० पच नमस्कारका स्मरण करे, असी आराधना करणेसें जे कर तिस नवसें मुक्ति न होवे, तोजी सुदेव अथवा सुमनुष्यके आठ नव करकें तो अवश्यमेव मोक्षरूप हो जावेगा ॥ १८ ॥ इति अष्टादश द्वारं समाप्तम् ॥

इस गृहस्थके धर्म करनेसें निरंतर गृहस्थ लोक इस लोक, परलोकमें सुखकों प्राप्त होवे हैं, अरु परंपरासें मोक्षकों प्राप्त होते हैं ॥ इति श्रीश्राद्धविधि ग्रथानुसार श्रावकस्य जन्मकृत्यं सपूर्णम् ॥

इति श्री तपगच्छीयमुनि श्रीमणिविजयगणि तच्छिष्य मुनिश्रीबुद्धिविजय तच्छिष्य मुनिश्री मुक्तिविजयगणि तस्य लघुगुरुभ्रातृ मुनि आत्माराम आनद विजयविरचिते जैनतत्त्वादर्शे गृहस्थधर्मनिरूपणनामा दशम परिछेद ॥१०॥

॥ इति श्री जैनतत्त्वादर्शे दशम परिछेद समाप्त ॥

॥ अथ एकादश परिछेद प्रारंभ ॥

इस परिछेदमें ऋषभादि महावीर पर्यंत जैनमतादि शास्त्रोंके अनुसार पूर्व वृत्तांत इतिहास रूप लिखते हैं, क्योंकि इस ग्रंथके पढने वाले यह तो जान जायगे कि जैनी इस तरें मानते हैं, परंतु वर्त्तमान समयमें कितनेक भव्य जीवोंकी जिज्ञासा है, कि—जैनमत कबसें यहा प्रचलित हूआ है? फिर कितनेक जीवोकों औसी भ्रांति है कि—जैनमत बौद्धमतकी शाखा है, और कितनेक कहते हैं कि बौद्धमत जैनमतकी शाखा है, क्योंकि यह दोनों मत किसी कालमें एक थे, परंतु आचार्योंके मत भेद होनेसे एक मतके जैन औ बौद्ध यह दो मत हो गये है, तथा कोइक कहते हैं कि—सवत् छे सौके ६०० लग भग जैनमत हूआ है, तथा कोइ कहते है कि विष्णु भगवान्ने दैत्यके धर्मभ्रष्ट करनेकों अर्हतका अवतार लीया, तथा कोइ कहते हैं कि मछदर नाथके बेटोनें जैनमत चलाया है, इत्यादि अनेक विकल्प करते हैं, परंतु ये सर्व कहने दतकथा, अरु जैनमतके न जाननेका सूचक है, जैसें चर्मकार अर्थात् चमार कहते हैं, कि बानी और चामो दो बहिनां थी, तिनमें बानीकी औलाद, अग्रवालादि सर्व बनिये हैं, और चामोकी औलाद, हम चमार हैं इस वास्ते बनीयें और चमार एक वंशके हैं, अब शोचना चाहियें कि चमारोंकी यह कही हूइ कथा सुनकें बुद्धिमान् सांच मान लेवेंगे? इसी तरें जो कोइ अपणी दलीलसें वा दतकथा सुनकें जैनमतकी उत्पत्ति मानेगा, वोभी जैनीयोंके आगें हसनेका स्थान बनेगा, क्योंकि प्रथम तो कोइभी मतवाला जैनमतके असली तत्त्वकों नहीं जानता है, जैसें शंकर दिग्विजयमें शंकर स्वामीनें जो जैनमतका खंडन लिखा है,उसकों देखके हमकों हासी आती है, जब शंकर स्वामीने जैनमतकोंही नहीं जाना,तो फेर जो उनका जैनमतका खंडन है, सोभी औसा जानना कि जैसें पुरुषकी छायाकों पुरुष जानके तिसकों लाठीसें पीटनां, जब शंकरस्वामीकोंही जैनमतकी खबर नहीं थी, तो अबके वर्त्तमान कालके गाल बजाने वालोंका क्या कहनां है? इस वास्ते हम बहुत नम्र हो कर ग्रंथ पढने वालोंसे विनति करते हैं कि अछी तरेंसें जैनमतकों जान कर फिर

तुमनें जैनमतका खंडन मंडन करनां, नहीं तो शंकरस्वामी अरु रामानुजाचार्यादिककी तरें तुमभी हसने योग्य हो जावेंगे?

अब सज्जनोके जानने वास्ते प्रथम इस जगत्का थोडासा स्वरूप लिखते हैं यह जगत्कों जैनी, द्रव्यार्थिक नयके मतसें शाश्वत अर्थात् हमेशां प्रवाहसें असाही मानते हैं,और इस जगत्में छ तरेका काल वर्त्तता है, तिनहीकों जैनी लोक, छ आरे कहते है एक अवसर्पिणी काल, अर्थात् सर्व अछी वस्तुका क्रमसें नाश करता चला जाता है, तिसके छ हिस्से हैं तथा दूसरा उत्सर्पिणी काल, अर्थात् सर्व अछी वस्तुकों क्रमसें वृद्धिमान् करता चला जाता है, दश कोटाकोटी सागरोपम प्रमाण एक अवसर्पिणी काल, और इतनेही सागरोपम प्रमाण एक उत्सर्पिणी काल है, एक सागरोपम असंख्याता वर्षका होता है, इसका स्वरूप जैनशास्त्रसें जान लेनां यह एक अवसर्पिणी अरु एक उत्सर्पिणी मिल कर दोनोंका एक कालचक्र, वीश कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण होता है, असें कालचक्र अनंत पीछें व्यतीत हो गये हैं, और आगेंकों व्यतीत होवेंगे, अवसर्पिणीके पूरे हूये उत्सर्पिणी कालका प्रारंभ होता है, और उत्सर्पिणीके पूरे हूये अवसर्पिणी कालका प्रारंभ होता है. इसी तरें अनादि अनंत काल तक यही व्यवस्था रहेगी अब छेहों आरोंके स्वरूप लिखते हैं

अवसर्पिणीका प्रथम आरा जिसका नाम सुखम सुखम कहते है सो चार कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण है तिस कालमें भरतक्षेत्रकी भूमिका बहुत सुंदर रमणीय मार्दलके तले समान सम (बराबर) थी, उस कालके मनुष्य, भद्रक, सरलस्वभाव, अल्प राग, द्वेष, मोह, काम, क्रोधादि वाले थे, सुंदर रूपवान्, नीरोग शरीर वाले थे, दश जातिके कल्पवृक्षोसें अपनें खाने पीने पहनने सोने आदिकका सर्व व्यवहार कर लेते थे, एक लडका एक लडकी दोनोका युगल जन्मते थे, जब यौवनवंत होते थे, तब दोनों बहिन और भाइ, स्त्री भरतारका संबंध कर लेते थे, उनोंके आगें असेही फेर युगल होते रहे, सो पूर्वोक्त सर्व व्यवहार करते थे, जैन मतके मापेसें तीन गाऊ (कोश) प्रमाण उनका शरीर उंचा था, और तीन पल्योपम प्रमाण आयु था, तथा दो सौ छप्पन २५६ करंडके हाड थे,धर्म करनां, और जीवहिंसा, झूठ, चोरी प्रमुख पापभी विशेष नहीं था, इन्होंहीमें सो रह

ते थे, जुगल जोडेनी गिणतीमें थोडे थे, बाकी (शेष) चउपाय, पक्षी, पंचें द्रिय सर्व जातिके जीव थे, परंतु वो जद्रक थे, क्षुद्रक नहीं थे, शालिप्रमुख सर्व अन्न तथा इक्षु प्रमुख चीजें सब जंगलोंमें स्वयमेवही उत्पन्न हो जाते थे, परंतु वो कुछ मनुष्योंके खानेमें नहीं आते थे, क्योंकि मनुष्य तो निकेवल फल फूलोंकाही आहार करते थे, वस्त्रकी जगें वृक्षोंके पत्ते वा बिल्वक उढते थे, इत्यादि प्रथम आरेका स्वरूप, जबूद्वीपप्रज्ञप्ति प्रमुख शास्त्रोंसें जान लेना ॥ इति प्रथम आराका किंचित्स्वरूप कह्या ॥ १ ॥

दूसरा आरा, तीन कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण, तिसमें दो गाऊ (कोश) देहमान, दो पल्योपमायु, एक सौ अठाइ पृष्ठ करंमक हाड थे, शेष व्यवहार प्रथम आरावत् जानना ॥ इति दूसरा आरक ॥ २ ॥

तीसरा आरा, दो कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण, एक गाऊ (कोश) देहमान एक पल्योपमायु, चौसठ पृष्ठ करंमकी पसलीया, शेष व्यवहार प्रथम आरेवत् जानना, इन सर्व आरोंमें सर्ववस्तु क्रमसें घटती घटती छेहडे अगले आरे तुल्य रह जाती है परंतु एक बारगी सर्व स्तु नहीं घटती है

इस तीसरे आरेके छेहडे एक वशमें सात कुलकर उत्पन्न हूए, कुलकर उसकों कहते हैं कि जिनोंने तिस तिस कालके मनुष्योंके वास्ते कछुक मर्यादा बांधी है, इनही सात कुलकरोंकों लौकिकमें सप्त मनु कहते हैं, दूसरे वंशोंके कुलकर गिनीयें, तब श्रीऋषभदेवकों वर्जके चौदह कुलकर होता है अरु ऋषभनाथ पदरहवा कुलकर होता है

पूर्वोक्त सात कुलकरोंके नाम लिखते हैं प्रथम विमलवाहन, दूसरा चक्षुष्मान्, तीसरा यशस्वान्, चौथा अभिचंद्र, पांचमा प्रश्रेणि, छठा मरुदेव, सातमा नाभि इन सातोंकी भार्याका नाम क्रमसें कहते हैं, १ चंद्रयशा, २ चंद्रकाता, ३ सुरूपा, ४ प्रतिरूपा, ५ चक्षु कांता, ६ श्रीकांता, ७ मरुदेवी, ये सर्व कुलकर, गगा अरु सिंधु नदीके मध्यके खंडमें हुये हैं

यह कुल कर होनेका कारण कहते हैं तीसरें आरेके उतरता दश जातिके कल्पवृक्ष, कालके दोषसें थोडे हो गये, तब युगलक लोकोंनें अपने अपने वृक्षोंका ममत्व कर लीया, पीछें जब दूसरे युगलोंके रखे हूए वृक्षोंसें फल लेने लगे, तब ममत्व वाले युगल उनसे क्लेश करनें लगे, तब युगलक पुरुषोंकों ऐसा विचार आया कि कोइ ऐसा होवे, जो ह

मारे क्लेशका निवेडा करे, तब तिन युगलियोंमेंसे एक युगलकों एक बनके श्वेत हाथीनें देख कर प्रेमसें अपने स्कंध पर चढा लीया, जब वो युगल पुरुष एकला हाथी ऊपर चढके फिरने लगा, तब और युगलोंनें विचार किया कि यह युगल, हमसें बडा है, क्योंकि यह, हाथी ऊपर चढा फिरता है, और हम तो पगोंसें चलते हैं, इस वास्ते इसकों न्यायाधीश बनाउ अर्थात् जो यह कहे, सो मानो, तब तिनोनें उसकों न्यायाधीश बनाया जिस कारनसें हाथीनें युगलकों अपणे उपर चढाया है, सो कारण, और इनोंकें पूर्वभवकी कथा आवश्यक सूत्र तथा प्रथमानुयोगसें जान लेनी।

तब तिस विमलवाहननें सर्व युगलियोंकों कल्पवृक्ष वांटके दे दीये, कितनेक युगलीये अपने कल्पवृक्षोंसें संतोष न करके औरोंके कल्पवृक्षोंसें फल लेने लगे, तब उस वृक्षके मालक क्लेश करने लगे पीछे तिस नि संतोषी युगलीयेकों पकडकें विमलवाहनके पास लाते हूए, तब विमलवाहननें उनकों कहा कि हा तुमने यह क्या करा ? तबसें विमलवाहननें ऐसी दंमनीति प्रवर्त्ताइ, तिस हकार दंमनीतिसें फेर वे ऐसा काम नहीं करते थे पीछें तिस विमलवाहनका पुत्र चक्षुष्मान् हूआ, अपने बापके पीछे वो राजा अर्थात् कुलकर बना, तिसके वखतमेंनी हाकारही दंम रहा, तिसके यशस्वान् नामा पुत्र हूआ, तिसके अनिचंद्र पुत्र हूआ, इन दोनोंके समयमें थोडे अपराध वालेकों हाकार दंम और बहुत ढीठकों मकार दंम जो यह काम मत करनां, ये दो दंमनीति हूइ, तिसके पुत्र प्रश्रेणि हूआ, प्रश्रेणिके पुत्र मरुदेव हूआ, मरुदेवका पुत्र नानि हूआ, ये तीनों कुलकरोंके समयमें हाकार, मकार अरु धिक्कार, ये तीन दंमनीति हो गइ, तिसमें थोडे अपराधीकों हाकार, अरु मध्यम अपराधीकों मकार, तथा उत्कृष्ट अपराधीकों धिक्कार दंम करते हूए, तिस नानिकुलकरकें मरुदेवी नामा नार्या थी, यह नानिकुलकर बहुलतासें इक्ष्वाकु नूमि अर्थात् विनता नगरीकी नूमिमें निवास करता था, यह नूमि, कश्मीर देशके परे थी, क्योंकि विनता नगरीके चारों दिशामें चार पर्वत थे, तिसमें पूर्वदिशिमें अष्टापद अर्थात् कैलासगिरि थे, दक्षिणदिशिमें महाशैल्य थे, पश्चिमदिशिमें सुर शैल्य, तथा उत्तरदिशिमें उदयाचल पर्वत होते.

तिस नाभिकुलकरकी मरुदेवी नामक जार्याकी कूखमें आषाढवदि चौथकी रात्रिकों सर्वार्थसिद्ध देवलोकसे च्यवकें ऋषनदेवका जीव, गर्जमें पुत्रपणे उत्पन्न हूआ, मरुदेवीने चौदह स्वप्न देखे, इंद्रमहाराजने स्वप्न फल कह्या, चैत्रवदि अष्टमीकों ऋषनदेवजीका जन्म हूआ, छप्पनदिग्कुमारी और चौशठ इंद्रने मिलकें जन्ममहोत्सव करा, मरुदेवीनें चौदह स्वप्नकी आदिमें बैलका स्वप्न देखा था, तथा पुत्रके दोनो साथलोंमें बैलका चिन्ह था, इस वास्ते पुत्रका नाम ऋषन दीया

बाल अवस्थामें श्रीऋषनदेवकों जब नूख लगती थी, तब अपने हाथका अगूंठा मुखमें लेकें चूस लेते थे उस अंगूठेमें इंद्रनें अमृत संचार कर दीया था, जब ऋषनदेवजी बडे हूए, तब देवता उनको कल्पवृक्षोंके फल ल्या कर देते थे, वे फल खा लेते थे, जब ऋषनदेव कूछ न्यून एक वर्षके हूए, तब इंद्र आया, हाथमें इक्षुदंड ल्याया, क्योंकि रीते हाथसें स्वामीके समीप न जाना चाहियें, इस वास्ते इक्षुदंड ल्याया, उस वखतमें श्रीऋषनदेवजी नाभिकुलकरकी गोदीमें बैठे थे, तब ऋषनदेवकी दृष्टि, इक्षुदंड उपर पडी, तब इंद्रनें कह्या के हे जगवन्! इक्षु अकु अर्थात् इक्षु नक्षण करोगे? तब ऋषनदेवजीनें हाथ पसाख्या, तब इंद्रने ऋषनदेवजीका इक्ष्वाकुवंश स्थापन करा, तथा श्रीऋषनदेवजीके वंशवालोंनें काशकार पीया, इस वास्ते गोत्रका नाम काश्यप हूआ, श्रीऋषनदेवजीके जिस जिस वयमें जो जो काम उचित था, सो सो शक्र (इंद्र)नें करा, यह अनादिसें जो जो शक्र (इंद्र) होते हैं, तिनका जीतकल्प है, जो प्रथम जगवान्के वयोचित सर्वकाम करने

इस अवसरमें एक लडकी लडका बहिन और नाइ बालावस्थामें तालवृक्षके हेठ खेलते थे, उहां ताडके फल गिरनेसें लडका मर गया, तब लडकीकों नाभिकुलकरने यह ऋषनदेवजीकी जार्या होवेगी? ऐसा विचार करकें अपने पास रख लीनी, तिसका नाम सुनंदा था, और दूसरी जो ऋषनदेवजीके साथ जन्मी थी, तिसका नाम सुमंगला था, इन दोनोंके साथ ऋषनदेव बालावस्थामें खेलते हूए यौवनके प्राप्त हूए, तब इंद्रने विवाहका प्रारंन करा, आगें युगलके समयमे विवाहविधि नहीं थी, इस वास्ते यह विवाहमें पुरुषके कृत्य तो सर्व इंद्रनें करे, और स्त्री

योंकी तर्फसें सर्वकृत्य इंद्राणीयोनें करे, तदासें विवाहविधि जगत्में प्र
लित हूई, तब श्रीऋषभदेव दोनो नार्योंके साथ सांसारिक विषयसुख
गता, जब छे लाख पूर्व, वर्ष व्यतीत हूए, तब सुमंगला राणीके न
और ब्राह्मी यह युगल जन्मे, तथा सुनंदाके बाहुबली और सुं
यह युगल जन्मे, पीछेसे सुनंदाके तो और कोइ पुत्र पुत्री नहीं जन्मे,
रंतु सुमंगला देवीके उणपचास (४ए) अर्थात् एक कम पंचास जोडे पु
होके जन्मे यह सब मिल कर सौ पुत्र और दो पुत्रीयों,श्रीऋषभदेवके
पत्य अर्थात् पुत्र पुत्री हूए हैं

तिन सौ पुत्रके नाम लिखते है १ नरत, २ बाहुबली, ३ श्रीमस्तक
४ श्रीपुत्रांगारक, ५ श्रीमल्लिदेव, ६ अगज्योति, ७ मलयदेव, ८ नार्ग
तार्थ, ए बंगदेव, १० वसुदेव, ११ मगधनाथ, १२ मानवर्त्तिक, १३ म
नयुक्ति, १४ वैदर्नदेव, १५ बनवासनाथ, १६ महीपक, १७ धर्मराष्ट्र
१८ मायकदेव, १ए आस्मक, २० दमक, २१ कलिंग, २२ ईषकदेव, २३
पुरुषदेव, २४ अकल, २५ नोगदेव, २६ वीर्यनोग, २७ गणनाथ, २८
तीर्णनाथ, २ए अबुदपति, ३० आयुवीर्य, ३१ नायक, ३२ काक्षिक, ३३
आनर्त्तक, ३४ सारिक, ३५ ग्रहपति, ३६ करदेव, ३७ कछनाथ, ३८ छ
राष्ट्र, ३ए नर्मद,४० सारस्वत, ४१ तापसदेव, ४२ कुरु, ४३ अंगल, ४४
पंचाल, ४५ शूरसेन, ४६ पुट, ४७ कालगदेव, ४८ काशीकुमार, ४ए कौ
शल्य, ५० नद्रकाश, ५१ विकाशक, ५२ त्रिगर्त्त, ५३ आवर्प, ५४ साल्लु,
५५ मत्स्यदेव, ५६ कुलियक, ५७ मुषकदेव, ५८ वाल्हीक, ५ए कांबोज,
६० मधुनाथ, ६१ सांड्क, ६२ आत्रेय, ६३ यवन, ६४ आनीर, ६५
वानदेव, ६६ वानस, ६७ कैकेय, ६८ सिंधु, ६ए सौवीर, ७० गधार, ७१
काष्ठदेव, ७२ तोषक,७३ शौरक, ७४ नारद्वाज,,७५ शूरदेव, ७६ प्रस्थान,
७७ कर्णक, ७८ त्रिपुरनाथ, ७ए अवतिनाथ, ८० चेदिपति, ८१ विष्कंन,
८२ नैषध, ८३ दशार्णनाथ, ८४ कुसुमवर्ण, ८५ नूपालदेव, ८६ पालप्रभु,
८७ कुशल, ८८ पद्म,८ए महापद्म,ए० विनिड्र, ए१ विकेश, ए२ वैदेह,ए३
कछपति, ए४ नद्रदेव, ए५ वज्रदेव, ए६ सांद्रनद्र, ए७ सेतज, ए८ वत्स
नाथ,एए अगदेव, १०० नरोत्तम,यह ऋषन देवके सौ पुत्रोंका नाम जानना

इस अवसरमें जीवोंके कषायों प्रबल हो जानेसें पूर्वोक्त हकारादि तीनो

दंमका लोक नय नहीं करने लगे, इस अवसरमें लोकोने सर्वसें अधिक ज्ञानवानादि गुणों करकें संयुक्त श्रीरुषभदेवकों जानकें युगलक लोक, श्रीरुषभदेवकों कहते हूए कि अबके सब लोक दंमका नय नहीं करते हैं? श्री रुषभदेवजी गर्नमेंनी मति, श्रुत, अरु अवधि, यह तीन ज्ञानों करकें संयुक्त थे, यह श्रीरुषभदेवजीके पूर्वनवोंका वृत्तांत आवश्यक तथा प्रथमानुयोगसें जान लेनां, तब श्रीरुषभदेव वो युगलक पुरुषोंकों कहते नये कि जो राजा होता है, सो दंम करता है, और राजा जो होता है, सो मंत्री कोटवालादि सेना संयुक्त होता है, अरु कृताभिषेक होता है, फेर उसकी आज्ञा अनतिक्रमणीय होती है, ऐसा वचन सुन कर, वे मिथुनक बोले कि ऐसा राजा हमारानी हो जावे? तब रुषभदेवजी बोले जो तुमारी मनसा ऐसी है, तो नाभिकुलकरसें याचना करो, पीछें तिनोनें नाभिकुलकरसें विनति करी, तब नाभिकुलकरने कहा, जाउ रुषभदेवजी तुमारा राजा हूआ, तब वे मिथुनक, रुषभदेवकों राज्याभिषेक करने वास्ते पद्मिनी सरोवरमें गये, इस अवसरमें इंद्रका आसन कंपमान हूआ, तब अवधिज्ञानसें राज्याभिषेकका अवसर जानके यहां आ कर श्रीरुषभदेवकों राज्याभिषेक करा, मुकुटादि सर्व अलंकार जो कुछ राजाके योग्य थे, सो पहिराये, इस अवसरमें मिथुनक लोक पद्मसरोवरसे नलिनीकमलोंमें पाणी ल्याये, उनोने आ कर जब श्रीरुषभदेवजीकों अलंकृत देखा, तब उननोंने चरणों उपर जल गेर दीया, तब इंद्रने मनमें चिंता करी कि ये बडे विनीत पुरुष हैं, ऐसा जान कर वैश्रमणकों आज्ञा दीनी कि इन विनीतोंके रहने वास्ते विनीता नामा नगरी वसाउ, तब विनीता नगरी वैश्रमणनें वसाइ, इसका स्वरूप, शत्रुंजयमहात्म्यसें जान लेनां

अथ संग्रहके वास्ते हाथी, घोडे, गौ प्रमुख श्रीरुषभदेवके राज्यमें वनोंसें पकडे गये, तब श्रीरुषभदेवने चार प्रकारका संग्रह करा १ उग्रा, २ नोगा, ३ राजन्या, ४ क्षत्रिया, उसमें जिनकों कोटवालकी पदवी दीनी, सो दंमके करनेसें उग्रवंश कहलाया, तथा जिनकों श्रीरुषभदेवजीने गुरु अर्थात् उंचे बडे करकें माने, तिनोंका नोगवंश कहलाया, तथा जो श्रीरुषभदेवजीके मित्र थे उनोका राजन्यवंश नाम रखा गया, तथा शेष जो रहे, तिनका क्षत्रियवंश हूआ

अथ आहारकी विधि कहते हैं, जब कल्पवृक्षोंके फलोंका अभाव हूआ,तब पकाहारका खाना किस तरेसें हूआ? सो लिखते हैं कालके प्रभावसें कल्पवृक्ष फल देनेसें रह गये, तब लोक,और वृक्षोंके कन्द, मूल,पत्र, फूल, फल, खाने लगे, केइक इक्षुका रस पीने लगे, तथा सतरे जातका कच्चा अन्न खाने लगे, परंतु कितनेक दिनो पीछें कच्चा अन्न उनकों जीर्ण न होनेसें ऋषभदेवजीने उनको कहा कि तुम हाथोंसें मसलके तूतरा दूर करकें खाओ फेर कितनेक दिनो पीछें वैसेंभी पाचन न होने लगा, तो फेर दूसरी तरें कच्चा अन्न खानेकी विधि बताइ, असें बहुत तरेंस कच्चा अन्न खानेकी विधि बताइ, तोभी कालदोषसें अन्न पाचन न होने लगा, इस अवसरमें जंगलोंमें वांसादिके घसनेसें अग्नि उत्पन्न हूआ।

प्रश्न – तुम कहते हो कि ऋषभदेवजीको जातिस्मरण और अवधि ज्ञान था, तो फेर ऋषभदेवजीने प्रथमसेंही अग्नि बनाना उस अग्निसें अन्न रांधके खाना क्युं न बतलाया?

उत्तर – हे भव्य! एकांत स्निग्ध कालमें और एकांत रुक्षकालमें अग्नि किसी वस्तुसेंभी उत्पन्न नहीं हो सक्ति, कदाचित् कोइ देवता विदेहक्षेत्रसें अग्निको लेभी आवे, तोभी यहां तत्काल बूज जाती थी, इस वास्ते अग्निसे पकाकें खानेका उपदेश नहीं दीया, पीछें तिस अग्निकों तृणादि दाह करता देखकें अपूर्व रत्न जानकें पकडनें लगे, जब हाथ जले, तब डर खा कर दौडकें श्रीऋषभदेवजीसें सर्व वृत्तांत कह्या, तब श्रीऋषभदेवने अग्नि ले आनेकी विधि बताइ,तिस विधिसें अग्नि घरमें ले आये,तब हस्ती उपर बैठे हूये ऋषभदेवने हाथीके शिर उपरही मिट्टिका एक कूमासा बना कर उनोंके पास अग्निमें पका कर उसमें अन्न रांध कर खाना बताया, पीछें जिसके हाथसें वो कुम्भ पकडाया वो कुंभार नामसें प्रसिद्ध हूआ,इसी वास्ते कुंभारकों प्रजापति पर्यायपति कहते हैं, फेर तो शनै शनै सर्वतरेंका आहार पकाकें खानेकी विधि प्रवृत्त हो गइ,सर्वविधि श्रीऋषभदेवजीनेही बताइ है

अथ शिल्पद्वार कहते हैं श्रीऋषभदेवजीके उपदेशसें पांच मूल शिल्प अर्थात् कारीगर बने, तिसका नाम लिखते हैं १ कुंभकार, २ लोहकार, ३ चित्रकार, ४ वस्त्र बुनने वाले, ५ नापित अर्थात् नाइ, ये पांच शिल्प

वने. यह एकेक शिल्पके अवांतर नेद वीश वीश हैं, इस वास्ते सर्व मिल कर एक सौ शिल्प उत्पन्न हूए.

अथ कर्मद्वार लिखते हैं कर्मद्वारमें १ खेती करणी, वाणिज्य करणा, धनका ममत्व करणा, इत्यादि कर्म बताये प्रथम मट्टीके सचयोंमें नरके, अहरण, हथोडी प्रमुख वनाये, पीछें उनसे सर्व वस्तु काम लायक बनाइ गइ.

तथा नरतादि पर्यालोकोकों बहत्तर कला सिखलाइ, तथा स्त्रीयोंकों चौशठ कला सिखलाइ इन, सर्नोका नाम मात्र असे है — १ लिखनेकी कला, २ पढनेकी कला, ३ गणितकला, ४ गीतकला, ५ नृत्यकला, ६ ताल बजाना, ७ पटह बजाना, ८ मृदंग बजाना, ९ वीणा बजाना, १० वशपरीक्षा, ११ नेरीपरीक्षा, १२ गजशिक्षा, १३ तुरंगशिक्षा, १४ धातुवाद, १५ दृष्टिवाद, १६ मत्रवाद, १७ वलिपलितविनाश, १८ रत्नपरीक्षा, १९ नारीपरीक्षा, २० नरपरीक्षा, २१ छदबधन, २२ तर्कजल्पन, २३ नीतिविचार, २४ तत्त्वविचार, २५ कविशक्ति, २६ ज्योतिषशास्त्रका ज्ञान, २७ वैद्यक, २८ षड्नाषा, २९ योगान्यास, ३० रसायणविधि, ३१ अजनविधि, ३२ अठारह प्रकारकी लिपि, ३३ स्वप्नलक्षण, ३४ इंद्रजालदर्शन, ३५ खेती करणी, ३६ वाणिज्य करणा, ३७ राजाकी सेवा, ३८ शकुनविचार, ३९ वायुस्तंनन, ४० अग्निस्तंनन, ४१ मेघवृष्टि, ४२ विलेपनविधि, ४३ मर्दनविधि, ४४ कर्ध्वगमन, ४५ घटबधन, ४६ घटभ्रमन, ४७ पत्रछेदन, ४८ मर्मनेदन, ४९ फलाकर्षण, ५० जलाकर्षण, ५१ लोकाचार, ५२ लोकरंजन, ५३ अफलवृक्षोंकों सफल करणा, ५४ खड्गबंधन, ५५ छुरी बधन, ५६ मुद्राविधि, ५७ लोहज्ञान, ५८ दांत समारणे, ५९ काललक्षण, ६० चित्रकरण, ६१ बाहुयुद्ध, ६२ मुष्टियुद्ध, ६३ दमयुद्ध, ६४ दृष्टियुद्ध, ६५ खड्गयुद्ध, ६६ वाग्युद्ध, ६७ गारुडविद्या, ६८ सर्पदमन, ६९ नूतमर्दन, ७० योग सो द्रव्यानुयोग, अक्षरानुयोग, व्याकरण, औषधानुयोग, ७१ वर्षज्ञान, ७२ नाममाला यह पुरुषोंकों बहत्तर कला सिखलाइ, तिसका नाम कह्या

अब स्त्रीयोंकों चौशठ कला सिखलाइ, तिसका नाम कहते हैं, १ नृत्यकला, २ औचित्यकला, ३ चित्रकला, ४ वादित्र, ५ मत्र, ६ तंत्र, ७ ज्ञान,

८ विज्ञान, ९ दम, १० जलस्तंभ, ११ गीतगान, १२ तालमान, १३ मेघ वृष्टि, १४ फलवृष्टि, १५ आरामारोपण, १६ आकार गोपन, १७ धर्मविचार, १८ शकुनविचार, १९ क्रियाकल्पन, २० संस्कृतजल्पन, २१ प्रसादनीति, २२ धर्मनीति, २३ वर्णिकावृद्धि, २४ स्वर्णसिद्धि, २५ तैलसुरभीकरण, २६ लीलासचरण, २७ गजतुरंगपरीक्षा, २८ स्त्री पुरुषके लक्षण, २९ कामक्रिया, ३० अष्टादश लिपि परिछेद, ३१ तत्कालबुद्धि, ३२ वस्तुसिद्धि, ३३ वैद्यकक्रिया, ३४ सुवर्ण रत्नभेद, ३५ घटभ्रम, ३६ सारपरिश्रम, ३७ अंजनयोग, ३८ चूर्णयोग, ३९ हस्तलाघव, ४० वचनपाटव, ४१ भोज्य विधि, ४२ वाणिज्यविधि, ४३ काव्यशक्ति, ४४ व्याकरण, ४५ शालिखंडन, ४६ मुखमंडन, ४७ कथाकथन, ४८ कुसुमगुंथन, ४९ वरवेष, ५० सकलभाषाविशेष, ५१ अभिधानपरिज्ञान, ५२ आभरण पहनने, ५३ भृत्योपचार, ५४ गृहाचार, ५५ शाठ्यकरण, ५६ परनिराकरण, ५७ धान्यरंधन, ५८ केशबंधन, ५९ वीणादि नाद, ६० वितंडावाद, ६१ अंकविचार, ६२ लोक व्यवहार, ६३ अत्याक्षरिका, ६४ प्रश्नप्रहेलिका यह स्त्रीकी चौसठ कला कही.

अबकी सर्व सांसारिक कला पूर्वोक्त कलायोंका प्रकरभूत है, इस वास्ते सर्व कला इनहीके अंतर्भाव है, जैसे प्रथम लिपि कलाके अठारह भेद दक्षिण हाथसें ब्राह्मीपुत्रीकों सिखाइ, तिसके नाम कहते हैं १ हंसलिपि, २ भूतलिपि, ३ यक्षलिपि, ४ राक्षसलिपि, ५ यावनी लिपि, ६ तुरकीलिपि, ७ कीरीलिपि, ८ द्राविडीलिपि, ९ सैंधवीलिपि, १० मालवीलिपि, ११ नडी लिपि, १२ नागरीलिपि, १३ लाटीलिपि, १४ पारसीलिपि, १५ अनिमित्ती लिपि, १६ चाणक्कीलिपि, १७ मूलदेवी, १८ उड्डीलिपि, यह अठारह प्रकार की ब्राह्मीलिपि, देशविशेषके भेदसे अनेक तरेंकी हो गइ, जैसेंकी १ लाटी, २ चौडी, ३ डाहली, ४ कानडी, ५ गौर्जरी, ६ सोरठी, ७ मरहठी, ८ कोंकणी, ९ खुरासाणी, १० मागधी, ११ सिंहली, १२ हाडी, १३ कीरी, १४ हम्मीरी, १५ परतीरी, १६ मसी, १७ मालवी १८ महायोधी, इत्यादि लिपि सिखाइ, तथा सुंदरी पुत्रिकों वाम हाथसें अंकविद्या सिखाइ, जो जगतमें प्रचलित कला है, जिनोसे अनेक कार्य सिद्ध होते हैं, वे सर्व श्रीऋषभदेवने प्रवर्त्ताइ हैं तिसमें कितनीक कला कइ वार लुप्त होजाती हैं, फिर सामग्री पा कर प्रगटभी हो जाती हैं, परंतु नवीन विद्या वा कला कोइभी नहीं अ

त्पन्न होती है, जो कलाव्यवहार, श्रीऋषभदेवजीनें चलाया है, वो सर्व आवश्यक सूत्रमें देख लेना

ब्राह्मी जो भरतके साथ जन्मी थी, तिसका विवाह बाहुबलीके साथ कर दीया, और बाहुबलीके साथ जो सुंदरी पुत्री जन्मी थी तिसका विवाह भरतके साथ कर दीया, तबसें माता पिताकी दीनी कन्याका व्यवहार प्रचलित हूआ

श्रीऋषभदेवजीने युगल अर्थात् एक उदरके उत्पन्न हूए बहिन भाइका विवाह दूर कीया, श्रीऋषभदेवकों देखकें लोकभी इसी तरें विवाह करने लगे, श्रीऋषभदेवने बहुत काल तांइ राज्य करा, प्रजाके वास्ते सर्व तरेंके सुख उत्पन्न हूए, इस हेतुसें श्रीऋषभदेवकों जैनीलोक, जगत्का कर्त्ता मानते हैं, दूसरे मतवाले जो ईश्वरकी करी सृष्टि कहते हैं, वेभी ईश्वर, आदीश्वर, जगदीश्वर, योगीश्वर, जगत्का कर्त्ता ब्रह्मा आदि विष्णु आदि योगी आदि भगवान् आदि, अर्हतआदि, तीर्थंकर, प्रथम बुद्ध, सर्वसें वडा, इत्यादि जो नाम, और महिमा गाते हैं, वे सर्व श्रीऋषभदेवजीकेही गुणानुवाद है, और कोइ सृष्टिका कर्त्ता नहीं है

मूर्ख और अज्ञानीयोंनें स्वकपोलकल्पित शास्त्रोंमें ईश्वरविषयमें मनमानी कल्पना कर लीनी है, उस कल्पनाकों बहुत जीव आज तांइ सच्ची मानते चले आये हैं, क्योंकि सर्वमत जैनके विना ब्राह्मणोनेही प्राय चलाये हैं, इस वास्ते ब्राह्मणोही मतोंके विश्वकर्मा हैं, अरु लौकिक शास्त्रोंमें जो कुछ है, सो ब्राह्मणोहीके वास्ते है ब्राह्मणभी लौकिक शास्त्रोनें तार दीये, क्योंकि शास्त्र बनाने वालोंके संतानादि, खूब खाते,पीते,और आनंद करते हैं, इन ब्राह्मणोंकी तथा वेदोंकी उत्पत्ति जैसें आवश्यक आदिक शास्त्रोंमें लिखी है, तैसें भव्य जीवोंके जानने वास्ते यहां मैंभी लीखुगा

निदान सर्व जगत्का व्यवहार चला कर, भरत पुत्रकों विनीता नगरीका राज्य दीया, अरु बाहुबली पुत्रकों तक्षिलाका राज्य दीया, शेष पुत्रोंकों और और देशोंका राज्य दीया, उनही पुत्रोंके नामसें बहुत देशोंका नामभी तैसाही पड गया, जैसें अंगदेश, बंगदेश, मगधदेश, इत्यादि नाम देशोंकाभी पुत्रोके नामसें पड गया

पीछें श्रीऋषभदेवने स्वयमेव दीक्षा लीनी, उनके साथ कछ, महाकछ, सामतादिक चार हजार पुरुषोंने दीक्षा लीनी.

श्रीऋषभदेवजीको एक वर्ष तक भिक्षा न मिली,तब चार हजार पुरुष तो भूखें मरते जटाधारी, कंद, मूल, फल, फूल, पत्रादि आहारी हो क रके गंगाके दोनो किनारा उपर तापस वनके रहने लगे, अरु श्रीऋषभदे वजीका ध्यान, जप आदि ब्रह्मादि शब्दोंसें करने लगे

तब एक वर्ष पीछें वैशाख शुदी तीजको हस्तिनापुरमें आये, तहां श्री ऋषभदेवका पडपोता श्रेयांस कुमारने जातिस्मरण ज्ञानके बलसें श्रीऋषभ देवको भिक्षा वास्ते फिरते देखके इक्षुरससें पारणा कराया, क्योंकि उस समयमें लोकोने कोइ भिक्षाचर देखा नहीं था, अरु न वो भिक्षाको दे जानते थे, तिस कारणसें श्रीऋषभदेवजीको हाथी, घोडे, आभूषण, कन्या दि तो बहुत भेट करे, परंतु वे तो उस समयमे त्यागी थे, इस वास्ते लीने नही तब लोकोने श्रेयांसकुमारकों पूछा कि तुमने श्रीऋषभदेवजीको भिक्षार्थी कैसे जाने? तब श्रेयांसकुमारने अपणे और श्रीऋषभदेवजीके आठ भवोंका संबंध कह्या, सो सर्व अधिकार, आवश्यक शास्त्रमें लिखा है तद् पीछें सर्व लोक भिक्षा देनेकी रीति जान गये

श्रीऋषभदेवजी एक हजार वर्ष तक देशोमें छद्मस्थ पणे विचरते रहे, तिस अवस्थामें कछ अरु महाकछके बेटे नमि और विनमीने आ कर प्रभुकी बहुत सेवा भक्ति करी, तब धरणेंद्रने प्रज्ञप्त्यादि अडतालीस ह जार विद्या (४८०००) उनकों दे कर वैताढ्यगिरिकी दक्षिण, अरु उत्तर, यह दोनों श्रेणिका राज्य दीया, वे सर्व विद्याधर कहलाये, इनही विद्या धरोंके संतानोंमें रावण, कुंभकर्णादि तथा वाली सुग्रीवादि और पवन ह नुमानादि सर्व विद्याधर हूए हैं

एकदा छद्मस्थ अवस्थामें श्रीऋषभदेवजी विहार करते हूए, बाहुब लीकी तक्षिला नगरीमें गये, वहां बाहिर बागमें कायोत्सर्ग करकें खडे रहे यह खबर जब बाहुबलीकों पहुंची तब बाहुबलीने मनमें विचार करा कि कलकों बडे आडंबरसें पिताकों वंदना करनेकों जाऊंगा, प्रभात हूये जब आडंबरसें गया, तब श्रीऋषभदेवजी तो तहांसें और कहीं चले गये, तब बाहुबल बहुत उदास हूआ, तब श्रीऋषभदेवजीके चरणोंकी ज

गोंके ऊपर धर्मचक्रतीर्थ स्थापन कराये, वो धर्मचक्र तीर्थ, विक्रमराजा तक तो रहा, पीछें जब पश्चिमदेशमें, नवे मतमतांतर खडे हूए, तबसें वो तीर्थ नष्ट हो गया

तदपीछें श्रीऋषभदेवजी बाल्हीक, जोनक, अमंब, इल्लाक, सुवर्णभूमि, पह्लवकादि देशोमें विचरने लगे तहां जिनोनें श्रीऋषभदेवजीका दर्शन करा, वो तो सब भद्रक स्वभाव वाले हो गये,अरु शेष जो रहा, वो सब म्लेछ, निर्दयी अनार्य हो गये, अनेक कल्पनाके मत मानने लगे, उनका व्यव हार और तरेंका बन गया

जब श्रीऋषभदेवकों एक हजार वर्ष व्यतीत हूए तब विहार करकें विनीता नगरीके पुरिमताल नामा बागमें आये, तब बड वृक्षके हेठ, फागुन वदि एकादशीके दिन, तीन दिनके उपवासी थे, तहां पहिले प्रहरमें केवलज्ञान अर्थात् भूत, भविष्यत् वर्त्तमानमें सर्व पदार्थोंके जानने देखने वाला आत्म स्वरूप रूप केवलज्ञान प्रगट हूआ,तब चौशठ इन्द्र आए,देवताओनें समव सरण बनाया, तीन गढ चारों दरवाजे इत्यादि समवसरणकी रचना करी, एकैक दिशामें तीन तीन दरवाजे बनाये, मध्यभागमें मणिपीठिका अर्थात् चौंतरा बनाया, तिसके मध्यभागमें अशोकवृक्ष रचा, तिसके हेठ दरवाजोंके सन्मुख चारों दिशोंमें चार सिंहासन रचे, तिसमें पूर्वके सिंहासन ऊपर श्रीऋषभदेव अर्हंत बिराजमान हुए, अरु शेष तीनो सिंहासनो ऊपर श्रीऋषभदेव सरीखे तीन बींब स्थापन करे, तब जिस दरवाजेसें कोइ आवे, वो तिस पासेंही श्रीऋषभदेवजीकों दीखते थे, इसी वास्ते जगत्में चार मुख वाला श्रीभगवान् ऋषभदेवजी ब्रह्माके नामसें प्रसिद्ध हूआ, ध नजयकोशमें श्रीऋषभदेवजीका नाम ब्रह्मा लिखा है

जब श्रीऋषभ देवजीकों केवलज्ञान उत्पन्न हूआ, तब भरत राजा श्रीऋषभदेवजीकों केवली सुन कर सकल परिवार संयुक्त समवसरणमें वं दना करनेंकों अरु उपदेश सुननेकों आया, वहां श्रीऋषभदेवजीका उप देश सुन कर भरत राजाके पांच सौ पुत्र अरु सात सौ पोते तथा ब्राह्मी ऋषभदेवजीकी बेटी औरभी अनेक स्त्रीयोंने दीक्षा लीनी, मरुदेवीजी तो भगवान्के छत्रादि देखके तथा वानी सुनकें केवली हो कर मोक्ष हो गइ, तथा भरतके बडे पुत्रका नाम ऋषभसेन पुंडरीक था, वो सोरठदेशमें

शत्रुंजय तीर्थ ऊपर देह त्यागकर, मोक्ष गया, इस वास्ते शत्रुंजयका नाम पुंडरीकगिरि रक्खा गया।

भरतके पांच सो पुत्रोंने जो दीक्षा लीनी थी, तिनमें एकका, नाम मरीची था, वो मरीचीने जैन दीक्षाका पालनां कठिन जान कर अपनी आजीविकाके चलाने वास्ते नवीन मन कल्पित उपाय खडा कीया, क्योंकि उसने गृहवास करनेमें तो बडी हीनता जाणी, तब एक कुलिंग बनानां चाहा, सो इसी रीतिसे बनाया कि साधु तो मनदंड, वचनदंड, अरु काय दंड, इन तीनो दंडोंसे रहित है, और मै तो इन तीनो दंडों करकें संयुक्त हुं, इस वास्ते मुजको त्रिदंड रखनां चाहियें, दूसरा साधु तो द्रव्य अरु भाव करके मुंडित है, सो लोच करते है, अरु मैं तो द्रव्य मुंडित हुं, इस वास्ते मुजे उस्तरे पाछनेंसे मस्तक मुंडवानां चाहियें, शिखाभी रखनी चाहिये, तीसरा साधु तो पांच महाव्रत पालते है, अरु मेरे तो सदा स्थूल जीवकी हिंसाका त्याग रहो चौथा साधु तो निकंचन है, अर्थात् परिग्रह रहित है, अरु मुजकों एक पवित्रकादि रखनी चाहियें, पांचमा साधु तो शीलसें सुगंधित है, अरु मैं ऐसा नहीं हू इस वास्ते मुजे चंदनादि सुगंधी लेनी ठीक है, छठा साधु तो मोह रहित है, अरु मैंतो मोह संयुक्त हूं, इस वास्ते मुजे मोहाछादितकों छत्री रखनी चाहियें सातमा साधु जूते रहित है, मुजकों पगोंमें कुछ उपानह (जुती) प्रमुख चाहियें आठमा साधु तो निर्मल है, इस वास्ते उनके शुक्लांबर वस्त्र है, अरु मैं तो क्रोध, मान, माया, अरु लोभ, इन चारों कषायों करकें मैला हू इस वास्ते मुजे कषाय वस्त्र अर्थात् गेरुके रंगे (भगवे) वस्त्र रखने चाहियें, नवमा साधु तो सचित्त जलके त्यागी हैं, इस वास्ते मैं छानके सचित्त पाणी पीउंगा, स्नानभी करुंगा, इस तरें स्थूलमृषावादादिसेंभी निवृत्त हूआ, इस प्रकारके मरीचीने स्वमतिसें अपणी आजीविकाके वास्तें लिंग बनाया, यही लिंग, परिव्राजकोंका उत्पन्न हूआ

मरीची भगवान्के साथही विचरता रहा, तब साधुओंसें विलक्षण लिंग देखकें लोक पूछते हूए, तब मरीची साधुका यथार्थ धर्म कहता था, अरु अपणा पाखंडवेष पूर्वोक्त रीतिसें प्रगट कह देता था, जो पुरुष, इसके पास धर्म सुन कर दीक्षा लेनी चाहता था, तिसकों भगवान्के सा

धुओंकों दे देता था, एकदा समय मरीची मांदा (रोग ग्रस्त) हूआ, तब विचार किया कि मैं तो असयती हू, इस वास्ते साधु मेरी वैयावृत्त नहीं करते हैं, अरु मुझे करानीभी युक्त नहीं है, तो कोइ चेलाभी मुझे वैयावृत्त वास्ते करनां चाहियें, तिस कालमें श्रीऋषभदेवजी निर्वाण हो गये थे, पीछें एक कपिलनामक राजाका पुत्र था, सो मरीचीके पास धर्म सुननेकों आया, तब मरीचीनें उसकों यथार्थ साधुका लिंग आचार कहा, तव कपिलने कहा तो तेरा लिंग विलक्षण क्यों कर है? तब मरीचीने कहाकि मैं साधुपणा पालने समर्थ नहीं हूं, इस वास्ते मैं यह लिंग निर्वाहके वास्ते स्वकपोलकल्पित बनाया है, तब कपिलने कहा कि मुझे श्रीऋषभदेवके साधुओंका धर्म रुचता नहीं है, तुम कहो तेरे पासभी कुछ धर्म है, या नहीं है,? तब मरीचीने जाना, यह भारीकर्मी जीव है, मेराही शिष्य होने योग्य है, इस लोभसें मरीचीने कह दीया कि वहांभी धर्म है, अरु मेरे पासभी कछुक धर्म है, यह सुन कर कपिल मरीचिका शिष्य हो गया, यह कपिल मुनिकी उत्पत्ति है उस बखत मरीचीके पास तथा कपिलके पास कोइभी पुस्तक नहीं था, नि केवल जो कुछ आचार मरीचीने कपिलकों बता दीया सोइ आचार कपिल करता रहा, मरीचीने उत्सूत्र भाषण करनेसे एक कोटाकोटी सागरोपम लग संसारमें जन्म मरणकी वृद्धि करी, मरीचि तो काल कर गया अरु पीछेसें कपिल यथार्थ ज्ञान शून्य मरीचीकी बताइ हूइ रीति उपर चलता रहा, उस कपिलका आसुरीनामा शिष्य हूआ, कपिलने आसुरीकोंभी आचार मात्रही मार्ग वतलाया, कपिलने औरभी बहुत शिष्य बनाये, उनके प्रेममें तत्पर थका, मरके ब्रह्मनामक पांचमे देवलोकमें देवता हूआ, तब उत्पत्तिके अनंतर अवधिज्ञानसें देखा, कि मैंनें क्या दानादि अनुष्ठान करा है? जिस्सें मैं देवता हूआ, हू, तब अवधिज्ञानसें यथाज्ञानशून्य अपणे आसुरीनामा शिष्यकों देखा, तब विचार करा कि मेरा शिष्य कुछ नहीं जानता? इसकों कुछ तत्त्व उपदेश करुं? असा विचार कर, कपिल देवता आकाशमें पंचवर्णके मंडलमें रह कर तत्त्वज्ञानका उपदेश करता भया, कि अव्यक्तसें व्यक्त प्रगट होता है, तिस अवसरमें षष्ठितंत्र शास्त्र, आसुरीने बनाया, तिसमें असा कथन करा कि प्रकृतिसें महान् होता है, अरु महा

नसे अहंकार होता है, अहंकारसे गण षोडश होता है, तिस गणको उशमेंसू पंचतन्मात्रोंसे पांच नूत इत्यादि सरूप पूर्वे यही प्रथम सांख्य मतविषे लिख आये हैं, वहांसे जान लेना पीछे इनकी सप्रदायमें नामी सख नामा आचार्य हूआ, तबसे इस मतका नाम सांख्यमत प्रसिद्ध हूआ, वास्तवमें सर्वपारिव्राजक सन्यासीयोंके लिंग आचारादि धर्मका मूल मरीचि हूआ, इन सांख्यमतका तत्त्व अबनी नगवद्गीता तथा नागवतादि ग्रंथोंमें तथा सांख्यमतके शास्त्रोंमें प्रचलित है, एक जैनमतके विना सर्वमतोंकी जड, इससे समऊनी चाहियें

जब श्रीक्रृषनदेवजीकों केवलज्ञान उत्पन्न हूआ था, उसीदिन नरत राजाकी आयुधशालामें चक्ररत्न उत्पन्न हूआ, तब नरतने नरत क्षेत्रके ठहों खंमोमें राज बनाया, अपनी आज्ञा मनाइ, इसी वास्ते इसका नाम नरत खंम प्रसिद्ध हूआ

जब नरतने अपने ठोटे नाइयोंको आज्ञा मनाने वास्ते दूत नेजा, तब तिनोंनें विचार करा कि राज तो हमकों हमारा पिता दे गया है, तो फेर हम नरतकी आज्ञा क्यो कर माने? चलो पितासें कहे,जे कर अपना पिता श्री क्रृषनदेवजी कहेंगे, कि तुम नरतकी आज्ञा मानो,तब तो हम आज्ञा मान लेवेंगे,जे कर हमारा पिता कहेगा लडो,तो हम लडेंगे, ऐसा विचार करके कैलास पर्वतके ऊपर श्री क्रृषनदेवजीके पास गये, तब क्रृषनदेवजीनें उनके मनका अनिप्राय जान कर उनकों उपदेश करा जो उपदेश करा था,सो श्रीसूत्रकृतांग सूत्रके दूसरे वैतालीय अध्ययनमें लिखा है, तब तो उपदेश सुन कर अठानवे (९८) पुत्रोंनें दीक्षा ले लीनी,सर्व ऊगडे ठोड दीये, इस वार्त्तामें नरतकी अपकीर्त्ति हूइ, तब नरत चक्रवर्त्ती पांच सौ गाडे पक्वान्नके ले कर समवसरणमें आया, और कहने लगा कि मैं अपनें नाइयोंकों नोजन कराउंगा, और मैरा अपराध क्षमा कराउगा, तब श्री क्रृषनदेवजीने कहा कि ऐसा आहार साधुओंकों लेना योग्य नहीं, तब नरत मनमें बडा उदास हूआ,नरतने कहा अब मैं यह आहार, किसकों देउ? तब शक्र (इन्द्रने) कहा कि जो तेरेसें गुणोमें अधिक होवे, तिनकों यह नोजन देवो, तब नरतने मनमें बिचार करा कि मेरेसें गुणाधिक तो श्रावक हैं, तब नरतने बहुत गुणवान् श्रावकोंकों वो नोजन

जिमाया, और उन श्रावकोंकों जरतजीनें कह दीया कि तुम सर्व मिल कर प्रतिदिन अर्थात् रोजकी रोज मेराही जोजन करा करो खेति वाणि ज्यादि कुछ काम मत करा करो, निकेवल स्वाध्याय करनेमें त त्पर रहो, जोजन करकें मेरें महिलोंके दरवाजे आगें निकट बैठकें तुमने ऐसे कहना कि " जितो जवान् वर्द्धते जयं तस्मान्माहन माहने ति" तब वे श्रावक ऐसेंही करते हूये, अरु जरत राजा तो जोगविलासों में मग्न रहता था, परंतु जब तिनका शब्द सुनता था, तब मनमें विचार ता था, कि किसने मुझे जींता है? तब विचार करा कि क्रोध,मान, माया अरु लोज, इन चार कषायोंने मुझे जींता है तिनोंसेंही जयकी वृद्धि हो ती है, ऐसा विचार करनेसें जरतकों बडा जारी वैराग्य उत्पन्न होता था, इस अवसरमें रसोइ जीमणे वाले श्रावक बहुत हो गये, जब रसोइदार र सोइ करने समर्थ न रहा, तब जरत महाराजकों निवेदन करा कि मैं नहीं जान सक्ता, जो इनमें श्रावक कौन है, और कौन नहीं है? तब जरतने कहा तुम पूछकें उनकों जोजन दिया करो, तब रसोइ करनेवाले उनकों पूछने लगे कि तुम कौन हो? वे केहने लगे, हम श्रावक हैं फेर तिनोकों पूछा कि श्रावकोंके कितने व्रत हैं? तब तिनोनें कहा हमारे पांच अणुव्रत हैं, अरु सात शिक्षा व्रत हैं, इस तरेंसे जब जाना कि यह श्रा वक ठीक है तब उनकों जरत महाराजके पास ल्याये, जरतने उनके श रीरमें काकणी रत्नसें तीन तीन रेखाका चिन्ह कर दीया, अरु छठे महि ने अनुयोग परीक्षा करते रहे, वे सर्व श्रावक ब्राह्मणके नामसें प्रसिद्ध हूये, क्योंकि जब जरत महाराजके दरवाजे आगें वे माहन माहन शब्द वार वार उच्चारन करते थे, तब लोक उनकों माहन कहने लग गया, जैनमतके शास्त्रोंमें प्राकृत जाषामें अबजी ब्राह्मणोंकों माहन करकें लिखा है अरु जो संस्कृती ब्राह्मण शब्द है, वो प्राकृत व्याकरणमें बंज ण और माहणके स्वरूपसें सिद्ध होता है, श्री अनुयोगद्वार सूत्रमें ब्रा ह्मणोंका नाम " वुड्ढसावया " अर्थात् वडे श्रावक ऐसा लिखा है यह सर्व ब्राह्मणोंकी उत्पत्ति है, अरु सो ब्राह्मण अपणे बेटोंकों साधुओंकों देते हूये, जिनोने प्रव्रजा न लीनी वे श्रावक व्रतधारी हूए यह रीति तो जरतके राज्यमें रही

पीछे नरतका बेटा आदित्ययश हूआ, अर्थात् सूर्ययश जिसके संतान वाले नरत क्षेत्रमें सूर्यवंशी कहे जाते है, अरु बाहुबलजीका बडा पुत्र चंद्रयश था तिसके संतानवाले चंद्रवंशी कहे जाते है. श्री ऋषनदेवजीके कुरु नामा पुत्रके संतान सब कुरुवंशी कहे जाते है, जिनमें कौरव पांडव हूये हैं.

जब नरतका बडा बेटा सूर्ययश सिंहासन पर बैठा, तब तिसके पास का कणी रत्न नहीं था, क्योंकि काकणी रत्न, चक्रवर्त्तीके शिवाय और किसी पास नहीं होता है, इस वास्ते सूर्ययश राजाने ब्राह्मण श्रावकोंके गलेमें सु वर्णमय यज्ञोपवीत करवा दीयें जन्नेउ इतिनाषा तथा नोजन प्रमुख सर्व न रत महाराजकी तरे देता रहा, जब सूर्ययशका बेटा महायश गद्दी पर बैठा, तब तिसने रूपेके यज्ञोपवीत बनवा दीये, आगे तिनोंकी संतानोंने पंचरंगे रेशमी पटसूत्र मय यज्ञोपवीत बनाते रहे, आगे सादे सूतके बनाये गये, यह यज्ञोपवीतकी उत्पत्ति है.

नरतके आठ पाट तक तो ब्राह्मणोंकी नक्ति नरतकी तरें करते रहे पीछे प्रजानी ब्राह्मणोंकों नोजन कराने लगे, तब सर्व लगे ब्राह्मणपूजनीक स मझे गये, आठमां तीर्थंकर श्रीचंद्रप्रन स्वामीके बखत तक सर्व ब्राह्मणव्र तधारी, जैनधर्मी श्रावक रहे, अरु श्रीचंद्रप्रन नगवान्के पीछे कितनाकि काल व्यतीत नये, इस नरत खंममें जैनमत अर्थात् चतुर्विधसंघ और सर्व शास्त्र विछेद हो गये, तब तिन ब्राह्मणानासोंकों लोक पूछने लगे कि धर्मका स्वरूप हमकों बतलाउ, तब तिनोने जो मनमें माना, और अ पणा जिसमें लान देखा सो धर्म बतलाया, अनेक तरेंके ग्रंथ बनाते रहे.

जब नवमे श्रीसुविधिनाथ पुष्पदंत अरिहंत हूए, तिनोने जब फेर जैन धर्म प्रगट करा, तब कितनेंक ब्राह्मणानासोंने न माना, स्वकपोलकल्पित मतहीका कदाग्रह रक्खा, साधुओंके द्वेषी बन गये, चारों वेदोंका नामनी बदल दीया, अरु उन वेदोंमें मतलबनी औरका और लिख दीया.

अब चारोंवेदोंकी उत्पत्ति लिखते हैं जब नरतराजाने ब्राह्मणोंकों पूजा, तब दूसरा लोकनी ब्राह्मणोंकों बहुत तरेका दान देने लग गये, तब नरत चक्रवर्त्तीने श्रीऋषनदेवजीके उपदेशानुसार तिन ब्राह्मणोंके स्वाध्याय करने वास्ते श्रीआदीश्वर ऋषनदेवजीकी स्तुति और श्रावकके धर्मका स्वरूपगर्नित ऐसे चार आर्यवेद रचे, तिनके यह नाम रक्खे १

संसारदर्शन वेद, २ संस्थापनपरामर्शन वेद, ३ तत्त्वावबोध वेद, ४ विद्या प्रबोध वेद, इन चारोंमें सर्वनय, वस्तुके कथन संयुक्त तिन ब्राह्मणोंकों पढाये, तब वे ब्राह्मण, अरु पूर्वोक्त चार वेद, आठमे तीर्थंकर तक य थार्थ चले आये, परंतु जब आठमे तीर्थंकरका तीर्थ विछेद हूआ, तद पीछें, तिन ब्राह्मणाजासोनें धनके लोनसें तिन वेदोंमें जीवहिंसा आ॰ दिकी प्ररूपणा करकें उलट पुलट कर माले, जैनधर्मका नामनी वेदो मेंसें निकाल दीया, बलकि अन्योक्ति करकें "वैत्यदस्युवेदबाह्य"* इत्यादि नामोंसें साधुओंकी निंदा गर्भित १ ऋग्, २ यजु, ३ साम, ४ अथर्व, ये चार नाम कल्पन कर दीये तिन ब्राह्मणोंमेंसूं जिनोनें तीर्थंकरोंका उप देश मान्या, उनोनें पूर्ववेदोके मत्र न त्यागे, सो आज तक दक्षिण कर णाटक देशमें जैन ब्राह्मणोंके कंठ है ऐसा सुना और देखानी है, तथा उन प्राचीन वेदोंके कितनेक मत्र मेरे पासनी हैं यत उक्तं आगमे ॥ सिरि नरह चक्कवट्टी,आयरिय वेयाणविस्सु उप्पत्ती ॥ माहण पढणछमिण, कहि यं सुहझाण विवहारं ॥ १ ॥ जिणतित्थे वुछिन्ने, मिछत्ते माहणेहिं तेठ विया ॥ अस्संजयाण पूआ, अप्पाण काहिया तेहि ॥ २ ॥ इत्यादि य हांसें आगें तिनवेदोंकी रचना हिंसा संयुक्त याज्ञवल्क्य, सुलसा, पीपलाद, अरु पर्वत प्रमुखोने विशेष कर रचना रच दइ, तिसकानी स्वरूप किंचित् मात्र यहां लिख देते है

वृहदारण्यक उपनिषद्की नाष्यमें लिखा है, कि जो यज्ञोंका कहने वाला सो यज्ञवल्क्य तिसका पुत्र याज्ञवल्क्य इस कहनेसेंनी यही प्रतीत होता है, जो यज्ञोंकी रीति प्राय याज्ञवल्क्यसेंही चली है, तथा ब्राह्मण लोकोंके शास्त्रोंमें लिखा है, कि याज्ञवल्क्यने पूर्वली ब्रह्मविद्या वमके सूर्य पासों नवीन ब्रह्मविद्या सीखके प्रचलित करी, इस्सेंनी यही अनुमान नि कलता है, जो याज्ञवल्क्यने प्राचीन वेद छोड दीये, और नवीन बनाये

तथा श्रीत्रेशठ सलाका पुरुष चरित्र ग्रंथमें आठमे पर्वके दूसरे सर्गमें ऐसा लिखा है, कि काशपुरीमें दो संन्यासिणीया रहती थी, तिसमें ए कका नाम सुलसा था, अरु दूसरीका नाम सुनंदा था, यह दोनोही वेद अरु वेदांगोकी जानकारथी तिन दोनो बहिनोंने बहुवादीयोंकों वादमें जींता, इस अवसरमें याज्ञवल्क्य परिव्राजक तिनके साथ वाद करनेकों

आया, आपसमें ऐसी प्रतिज्ञा करी कि जो हार जावे, वो जीतने वालेकी सेवा करे, तव याज्ञवल्क्यने सुलसाकों वादमे जीतके अपणी सेवा करने वाली वनाइ,सुलसाजी रात दिन याज्ञवल्क्यकी सेवा करने लगी,याज्ञवल्क्य अरु सुलसा यह दोनो यौवनवत (तरुण) थे, इस वास्ते दोनो कामातुर हो के जोगविलास करने लग गये, सचतो है कि अग्नि और फूस मिलकें अग्नि क्यों कर प्रज्वलित न होवे? निदान दोनो काम क्रीडामें मग्न होकर काशपुरीके निकट कुटीमें वास करते थे, तब याज्ञवल्क्य सुलसासे पुत्र उत्पन्न हूआ पीछें लोकोंके उपहासके जयसे उस लडकेकों पीपलके वृक्षके हेठ छोड कर दोनों जगके कहीको चले गये, यह वृत्तांत सुनन्दा जो सुलसाकी वहिनथी उसने सुना, तव तिस वालकके पास आइ, जव वालककों देखा, तो पीपलका फल स्वयमेव मुखमें पडेकों च बोल रहा है, तव तिसका नामजी पिप्पलाद रखा, और तिसकों अपणे स्थानमें ले जाकें यत्नसे पाला, अरु वेदादि शास्त्र पढाये, तव पिप्पलाद वडा बुद्धिमान् हूआ, वहुत वादीयोंका अभिमान दूर करा, पीछें, तिस पिप्पलादके साथ सुलसा और याज्ञवल्क्य यह दोनो वाद करनेकों आए, तिस पिप्पलादनें दोनोकों वादमें जींत लीया, और सुनन्दा मासीके कहनेसें जान गया कि, यह दोनो मेरे माता पिता है और मुझे जन्मतेकों निर्दय हो कर छोड गये थे, जव वहुत क्रोधमें आया तव याज्ञवल्क्य अरु सुलसाके आगें मातृमेध पितृमेध यज्ञोंकों युक्तिसें सम्यक् रीतिसें स्थापन करके पितृमेधमें याज्ञवल्क्यकों और मातृमेधमें सुलसाकों मारके होम करा, मीमांसक मतका यह पिप्पलाद मुख्य आचार्य हूआ, इसका वातली नामा शिष्य हूआ, तवसें जीवहिंसा सयुक्त यज्ञ प्रचलित हूए

याज्ञवल्क्यके वेद बनानेमें कुछजी शका नहीं, क्योंकि वेदमें लिखा है "याज्ञवल्केति होवाच" अर्थात् याज्ञवल्क्य ऐसे कहता हूआ, तथा वेदमें जो शाखा है, वे वेदकर्त्ता मुनियोंकेही सबवसें है, इस वास्ते जो आवश्यक शास्त्रमें लिखा है, कि जीवहिंसा सयुक्त जो वेद हैं, वे सुलसा अरु याज्ञवल्क्यादिकोंने बनाये है, सो सत्य है क्योंकि कितनीक उपनिषदोमे पिप्पलादकाजी नाम है, तथा और मुनियोंकाजी कितनेक जगेमें नाम है

जमदग्नि कश्यप तो वेदोमें खुद नामसें लिखे हैं, तो फेर वेदोंके नवीन हो नेमें क्या शंका रहती है?

तथा लंकाका राजा रावण जब दिग्विजय करनेके वास्ते देशोमें चतुरंग दल ले कर राजायोंकों अपणी आज्ञा मना रहा था, इस अवसरमें नारद मुनि, लाठी, सोटे, और, लात, घूसयोंका पीटा हूआ पुकार करता हूआ रावणके पास आया, तब रावणने नारदकों पूछा कि तुझकों किसने पीटा है? तब नारदने कहा कि राजपुर नगरमें मरुत नामा राजा है, सो मिथ्यादृष्टि है, वो ब्राह्मणाजासोंके उपदेशसें यज्ञ करने लगा, होमके वास्ते सौनिकोंकी तरें वे ब्राह्मणाजास अरराट शब्द करते हूए, ऐसे बिचारे पशुओंको यज्ञमें मारते हूए मैनें देखा, तब मैं आकाशसें उतरके जहां मरुतराजा ब्राह्मणोंके साथमें बैठा था, तहां आ कर मरुत राजाकों कहा कि यह तुम क्या करने लग रहे हो? तब मरुतराजाने कहा ब्राह्मणोके उपदेशसे देवताओंकी तृप्ति वास्ते और स्वर्ग वास्ते यह यज्ञमें पशुओंकी बलिदानसें करता हूं यह महाधर्म है, तब नारद कहता है, कि मैं वो मरुतराजाकों कहा कि हे राजा जो चारोंवेदोंमें यज्ञ करना कहा है, वो यज्ञ में तुमकु सुनाता हूं, आत्मा तो यज्ञका यष्टा अर्थात् करनेवाला है, तथा तपरूप अग्नि है, ज्ञानरूप घृत है, कर्मरूपी ईंधन है, क्रोध, मान, माया, अरु लोभादि पशु है, सत्य बोलनेरूप यूप अर्थात् यज्ञस्तंभ है, तथा सर्व जीवोंकी रक्षा करणी यह दक्षिणा है, तथा ज्ञान, दर्शन, अरु चारित्र, यह रत्नत्रयी रूप त्रिवेदी है यह यज्ञ वेदका कहा हूआ है ऐसा यज्ञ जो योगाभ्यास संयुक्त करे, तो करनेवाला मुक्त रूप हो जाता है, और जो राक्षस तुल्य होकें छागादि मारकें यज्ञ करता है, सो मरकें घोर नरकमें चिरकाल तक महादुःख भोगता है, हे राजा! तू उत्तमवंशमें उत्पन्न हूआ है, बुद्धिमान् और धनवान् है, इस वास्ते हे राजन् तू इस व्याधोचित पापसें निवर्त्तन हो जा, जेकर प्राणीवधसेंही जीवोंकों स्वर्ग मिलता होवे तब तो थोडेही दिनोंमें यह जीवलोक खाली हो जावेगा, यह मेरा वचन सुनकें यज्ञकी अग्निकी तरें प्रचण्ड हूए होये ब्राह्मण हाथमें लाठी, सोटे, ले कर सर्व मेरेकों पीटने लगे, तब जैसे कोइ पुरुष नदीके पूरसें डरकर द्वीपेमें चला आता है तैसें मैं दौडता हूआ

तेरे पास पहुचा हू हे रावण राजा! बिचारे निरपराधि पशु मारे जाते हे, तू तिनकी रक्षा करणेमे तत्पर हो, जेसे मै तेरे शरणसे बचा हू वैसे तू पशुओंकोंभी बचा तब रावण विमानसे उतरके मरुत राजाके पास गया मरुत राजाने रावणकी बहुत पूजा, भक्ति आदर, सन्मान करा तब रावण कोपमें हो कर, मरुत राजाको औसे कहता हूआ — अरे! तू नरक का देने वाला यह यज्ञ क्या कर रहा हे? क्योंकि धर्म तो अहिंसारूपसर्वज्ञ तीर्थंकरोने कहा है, सोइ जगत्के हितका करनेवाला है, जब तुमने पशुओंको मारके धर्म समजा, तब तुमको हितकारक क्योंकर होवेगा? इस वास्ते यह यज्ञ तुमको दोनो लोकमें अहितकारक हे, इसें छोड दो, नहीं तो इस यज्ञका फल तेरेको इस लोकमे तो मै देता हू, और परलोकमें तुमारा नरकमें वास होवेगा, यह सुन कर मरुत राजाने यज्ञ करना छोड दीया, क्योंकि रावणकी आज्ञा उस वखत औसी जयकरथी, कि कोइ उसकों उल्लघन नहीं कर सक्ता था, इस कथानकसे यहभी मालुम हो जाता है, कि जो ब्राह्मण लोक कहते है कि आगे राक्षस यज्ञ विध्वस कर देते थे, सो क्या जाने रावणादि जबरदस्त जैनधर्मी राजाओ पशुवध रूप यज्ञका करणा छुडा देते थे, तबसेंही ब्राह्मणोने पुराणादि शास्त्रोमें उन जबरदस्त जैनराजाओंकों राक्षसोके नामसे लिखा है? तथा यहभी सुननेमें आया हें, कि नारदजीनेभी मायाके वशसें जैनमत धारकें वेदोंकी निंदा करी थी तो क्या जाने? इस कथानकका यही तात्पर्य लोकोने लिख लीया हो?

पीछें रावणने नारदकों पूछा कि औसा पापकारी पशुवधात्मक यह यज्ञ कहासें चला है तब नारदजीनें कहा कि — शुक्तिमती नदीके किनारे उपर एक शुक्तिमती नगरी है सो वीशमें श्रीमुनिसुव्रत स्वामी हरिवंश तीर्थंकरकी औलादमें जब कितनेक राजा व्यतीत होगये, तब अभिचन्द्रनामा राजा हूआ, तिस अभिचन्द्रराजाका वसुनामा बेटा हूआ, वो वसु महाबुद्धिमान, सत्यवादी, लोकोमें प्रसिद्ध हूआ, तिस नगरीमें खीरकदंबक उपाध्याय रहता था तिसके पर्वत नाम पुत्र था, यहां एक तो राजाका बेटा वसु दूसरा पर्वत और तीसरा में (नारद) हम तीनो खीरकदंबक उपाध्यायके पास पढते थे, एकदा समय हमतो तीनो जन पाठ करनेके श्रमसें रात्रिकों सो गये थे और उपाध्याय जागता था हम छत उपर सूते

थे तब दो चारण साधु ज्ञानवान्, आकाशमें परस्पर वार्ता करते चले जाते थे, कि यह खीर कदंबक उपाध्यायके तीन छात्रोमेंसुं दो नरकमें जायेंगे अरु एक स्वर्गमें जायेगा, यह मुनियोंका कहना सुन करके उपाध्यायजी चिंता करने लगा कि जब मेरे पढाये हूये नरकमें जायगे, तब यह मुझको बहुत दुःख है,परंतु इन तीनोंमेंसू नरक कौन जायगे ? और स्वर्ग कौन जायगा ? इस बातके जानने वास्ते तीनोकों एक साथ बुलाया, पीछें वो गुरुने हम तीनोंकों एकेक पीठिका कुक्कड दीया और कह दीयाकि इनकों असी जगेमें मारो जहां कोइभी न देखता होवे ! पीछें वसु अरु पर्वत यह दोनो तो शून्य जगाओमें जाकर दोनो पीठके बनाये कुक्कडोंकों मार ल्याये और में उस पीठके कुक्कडको ले कर बहूत दूर नगरसें बाहिर चला गया, जहा कोइभी नहीं था, तहां जा कर खडा हूआ, चारों तर्फ देखनें लगा और मनमें यह तर्क उत्पन्न हूआ, कि गुरु महाराजने तो यह आज्ञा दीनी है, कि हे वत्स यह कुक्कड तू तहा मारी, जहां कोइ देखता न होवे,तो यह कुक्कड देखता है, अरु मेंभी देखता हू, खेचर देखते हैं, लोकपाल देखते है, ज्ञानी देखते हैं, असा तो जगत्में कोइभी स्थान नहीं जहा कोइभी न देखता होवे, इस वास्ते गुरुके कहनेका यही तात्पर्य है, कि इस कुक्कडका वध न करना क्योंकि गुरुपूज्य तो सदा दयावत और हिंसासें पराङमुख हैं, नि केवल हमारी परीक्षा लेने वास्ते यह आदेश दीया है, तब मैनें असा विचार करके विनाही मारे कुक्कडेकों लेके गुरुके पास चला आया, और कुक्कडेके न मारनेका सबब सर्व गुरुकों कह दीया, तब गुरुने मनमें निश्चय कर लीया कि यह नारद असे विवेकवाला है, सो स्वर्ग जायगा तब गुरुजीने मुझकों छातीसें लगाया, और बहुत साधुकार कहा, तथा वसु और पर्वतभी मेरेसे पीछे गुरुके पास आयें, और गुरुकों कहते हूये कि हम कुक्कडाकों असी जगे मारके आये हैं,कि जहां कोइभी देखता नहीं था तब गुरुने कहा तुम तो देखते थे, तथा खेचर देखते थे, तब हे पापिष्टो ! तुमने कुक्कड क्यों मारे ? असे कह कर गुरुने शोचा कि पर्वत, और वसुके पढानेकी मेहनत मैने व्यर्थही करी, मैं क्या करु ? पानी, जैसे पात्रमें जाता है, वैसाही बन जाता है विद्याकाभी यही स्वभाव है जब प्राणोसें प्यारा पर्वतपुत्र और पुत्रसें प्यारा वसु

यह दोनो नरकमें जायगे तो मुझे फेर घरमें रह कर क्या करणा है! ऐसे निर्वेदसें क्षीरकदंबक उपाध्यायने दीक्षा ग्रहण करी, साधु हो गया. तिसके पद ऊपर पर्वत बैठा क्योंकि व्याख्या करणेमें पर्वत बडा विचक्षण था और मै (नारद) गुरुके प्रसादसें सर्वशास्त्रोंमें पंडित हो कर अपने स्थानमें चला आया, तथा अभिचंद्रराजाने तो संयम लीया, और वसु राजा राजसिंहासन ऊपर बैठा, वसुराजा जगतमें सत्यवादी प्रसिद्ध हो गया अर्थात् वसुराजा झूठ नहीं बोलता है, ऐसा प्रसिद्ध हो गया, वसु राजानेजी अपणी प्रसिद्धिको कायम रखने वास्ते सत्य बोलनाही अंगी कार कीया, वसुराजाकों एक स्फटिकका सिंहासन गुप्त पणे ऐसा मिला कि – सूर्यके चांदणेमें जब वसुराजा उसके ऊपर बैठताथा, तब सिंहासन लोकोंको बिलकुल नहीं दीख पडताथा, इसी तरें वसुराजा आकाशमें अधर बैठा दीख पडताथा, तब लोकोंमें यह प्रसिद्धी होगइ, कि सत्यके प्रभावसें वसुराजाका सिंहासन देवता आकाशमें थांभे रखते हैं, तब सब राजा डरकें वसुराजाकी आज्ञा मानने लग गये, क्योंकि चाहो सच्ची हो चाहो झूठी हो तोजी प्रसिद्धि जो है सो पुरुषके जयकारी होती है

तब एकदा प्रस्तावमें (नारद) वो सूक्तिमतीनगरीमें गया, वहां जा कर पर्वतकों देखा तो वो अपणे शिष्योंको ऋग्वेद पढा रहा है, और उसकी व्याख्या करता है, तब ऋग्वेदमें एक ऐसी श्रुति आई "अजैर्यष्टव्य मिति" तब पर्वतने इस श्रुतिकी ऐसी व्याख्या करी जो अजानाम छागका (बकरीका) है तिनोंसे यज्ञ करनां तिनकों मारके तिनके मांसका होम करनां, तब मैंने पर्वतकों कहा हे भ्राता? यह व्याख्या तू क्या भ्रांतिसें करता है? क्योंकि गुरु श्रीक्षीरकदंबकने इस श्रुतिकी ऐसें व्याख्या नहीं करी है, गुरुजीने तो तीन वर्षका धान्य पुराणें जौंका ऐसा अर्थ यह श्रुतिका करा है, "न जायंतइत्यजा" जो बोनेसें न उत्पन्न होवे, सो अजा, ऐसा अर्थ श्रीगुरुजीने तुमकों और हमकों शिखलाया था वो अर्थ, तुमने किस हेतुसे भूला दीया? तब पर्वतने कहा कि तुमने जो अर्थ करा है, यह अर्थ गुरुजीने नहीं कहा था, किंतु जो अर्थ मैने करा है, यही अर्थ गुरुनें कहा था क्योंकि निघंटमेंजी अजा नाम बकरीका ही लिखा है, तब मैंने (नारदने) पर्वतकों कहा कि शब्दोंका अर्थ दो तरेंके होते हैं, एक

मुख्यार्थ दूसरा गौणार्थ तो यहां श्रीगुरुनें गौणार्थ करा था गुरु धर्मोप देष्टाका वचन और यथार्थ श्रुतिका अर्थ, दोनोंकों अन्यथा करकें हे मित्र तू महापाप उपार्जन मत कर तब फेर पर्वतने कहा कि अजा शब्दका अर्थ श्रीगुरुजीने मेषेका करा है, निघटमेंभी असेही अर्थ है, इनको उल्ल घन करकें तू अधर्म उपार्जन करता है ? इस वास्ते वसुराजा आपणा स हाध्यायी है, तिसकों मध्यस्थ करकें इस अर्थका निर्णय करो, जो जूग होवे तिसकी जीव्हाछेद करणी, असी प्रतिज्ञा कही, तब मैंनेभी पर्वतका कहना मान लीया क्योंकि सांचकों क्या आंच है ? तब पर्वतकी माताने पर्वतकों छाना कहा कि हे पुत्र ! तू असा जूग कदाग्रह मत कर क्योंकि मैंनेभी इस श्रुतिका अर्थ तीन वर्षका धान्यही सुना है, इस वास्ते तूने जो जीव्हाछेदकी प्रतिज्ञा करी है, सो अच्छी नहीं करी, क्योंकि जो विना विचारें काम करता है, वो अवश्य आपदामें पडता है, तब पर्वत कहने लगा कि हे माताजी ! जो में प्रतिज्ञा करी है, वो अबमैं किसीतरेंसेंभी दूर नहीं कर सक्ता हूं, तब माता अपने पर्वत पुत्रके दुःखकी पीडी हूइ दुःखिनी हो कर वसुराजाके पास पहुची क्योंकि पुत्रके जीवतव्य वास्ते कौन असो है, जो उपाय न करे ? जब वसुराजाने अपनी गुरुकी पत्नीकों आता देखा तब सिंहासनसें उठके खडा हूआ, और कहने लगाकि मैंनें आज क्षीरकदंबकका दर्शन करा जो माता तुजकों देखा, अब हे माता ! कहो (आज्ञा करो) मैं क्या करुं ? और क्या देऊं ? तब ब्राह्मणी कहणे लगी कि तू मुजे पुत्रकी भिक्षा दे क्योंकि विना पुत्रके मैंनें हे पुत्र ! धन धान्य क्या करणा है ? तब वसुराजा कहने लगा हे माता ! मेरेकोंतो प र्वत पूजने और पालने योग्य है, क्योंकि गुरुकी तरें गुरुके पुत्रके सा थभी वर्त्तना चाहियें, यह श्रुतिका वाक्य है, तो फेर आज किसकों का लने क्रोधमें आकर पत्र भेजा है, जो मेरे भाइ पर्वतकों मारा चाहाता है ? इस वास्ते हे माता ? तू मुजे सर्व वृत्तांत कह दे, तब ब्राह्मणीने अ पणे पुत्रका अज व्याख्यान और जिव्हाछेदनेकी प्रतिज्ञा कह सुनाइ, और कहाकि जो तैने अपने भाइकी रक्षा करनी है, तो अजा शब्दका अर्थ मेष अर्थात् बकरी बकरा करानां क्योंकि महात्मा जन परोपकारके वास्ते अपने प्राणभी दे देते हैं, तो वचनसें परोपकार करनेंमें तो क्या क

हना है ? तब वसु राजाने कहा कि हे माताजीमें मिथ्यावचन क्यों कर वोलु ? क्योंकि सत्यबोलनेवाले पुरुष जेकर अपणे प्राणभी जाते देखे तोभी असत्य नहीं वोलते है, तो फेर गुरुका वचन अन्यथा करणा और झूठी साक्षी देणी, इसका तो क्याही कहना है ? तब ब्राह्मणीने कहा यातो गुरुके पुत्रकी जान वचेगी, या तेरा सत्यव्रतका आग्रहही रहेगा, और मैंभी तुझे अपणे प्राणकी हत्या देऊंगी तब वसुराजाने लाचार हो कर ब्राह्मणीका वचन माना, पीछे क्षीरकदंबककी नार्या प्रमुदित हो कर अपने घरको गइ, इतनेहीमें मै (नारद) और पर्वत दोनो जने वसुराजाकी सभामें गये, तब तहां वडे वडे विद्वान् एकठे सभामें मिले, और स्फटिकके सिंहासन ऊपर बैठके वसुराजा सभाके बिचमें सभापति वन कर बैठा, तब पर्वतने और मैने अपणी अपणी व्याख्याका पक्ष वसुराजाकों सुनाया, और ऐसाभी कहाकि हे राजन् तू! सत्य कह दे कि गुरुने इन दो अर्थोमेंसे कौनसा अर्थ कहा था ? तब वृद्ध ब्राह्मणोनें कहा हे राजा तू सत्य सत्य जो होवे सो कह दे क्योंकि सत्यसेंही मेघ वर्षता है, और सत्यसेंही देवता सिद्ध होते हैं, सत्यके प्रभावसेंही यह लोक खडा है, और तू पृथ्वीमें सत्य वादी सूर्यकी तरें प्रकाशक है, इस वास्ते सत्यही कहनां तुमकों उचित है, और हम इस्सें अधिक क्या कहें ? यह वचन सुनकरभी वसुराजाने अपने सत्य वोलनेकी प्रतिज्ञाकों जलांजली दे कर "अजान्मेषान्गुरुर्व्याख्यदिति" अर्थात् अजाका अर्थ गुरुने मेष (बकरे) कहे थे, ऐसी साखी वसुराजाने कही, तब इस असत्यके प्रभावसें व्यंतर देवताने वसुराजाके सिंहासनकों तोडके वसुराजाकों पृथ्वीके उपर पटकके मारा, तब तो वसुराजा मरके सातमें नरकमें गया, पीछे वसुराजाके राज सिंहासन उपर वसुराजाके आठपुत्र १ पृथुवसु, २ चित्रवसु, ३ वासव, ४ शक्र, ५ विभावसु, ६ विश्वावसु, ७ सूर, ८ महासूर, ये आगे अनुक्रमसे गद्दी ऊपर बैठे वो आगेंहीको व्यंतर देवताओंनें मार दीये, तब सुवसुनामा नवमा पुत्र तहांसें भाग कर नागपुरमें चला गया और दसमा बृहध्ध्वज नामा पुत्र भाग कर मथुरांमें चला गया,और मथुरामें राज करणे लगा इस बृहध्ध्वजकी संतानोंमें यदुनामा राजा बहुत प्रसिद्ध हूआ, इस वास्ते हरिवंशका नाम छूट गया और यदुवंशी प्रसिद्ध हो गये

यह राजाके सूर नामक पुत्र हूआ, तिस सूर राजाके दो पुत्र हूवे, एक बडा शौरी और दूसरा छोटा सुवीर हूआ, शौरि राजा पिताके पीछें बना, शौरिने मथुरांका राज्यतो अपने छोटे नाइ सुवीरकों दे दीया, और आप कुशावर्त्त देशमें जा कर अपणे नामका शौरिपुर नगर बसा कें राज धानी बनाइ, शौरिका बेटा अंधकविष्ण, आदि पुत्र हूआ, और अंधकवि ष्ण,के दश बेटे हूयें १ समुद्रविजय, २ अक्षोन्य, ३ स्तिमित, ४ सागर, ५ हिमवान्, ६ अचल, ७ धरण, ८ पूर्ण, ९ अनिचंद्र, १० वसुदेव, तिनमें समुद्रविजयका बडा बेटा अरिष्टनेमि जो जैनमतका बावीशमा ती र्थंकर हूआ, और वसुदेवके बेटे प्रतापी कृष्णवासुदेव,अरु बलनद्रजी हूये, तथा सुवीरका बेटा नोजवृष्णि और नोजवृष्णिका उग्रसेन और उग्रसेन का कंस बेटा हूआ,और वसुराजाका दूसरा बेटा सुवसु जो नागके नागपुर गया था, तिसका बृहद्रथ नामा पुत्र हूआ तिसने राजगृहमें आ कर राज करा, तिसका बेटा जरासिंधु हूआ, यह मैंनें यहां प्रसंगसें लिख दीयाहै.

तब उहांतो नगरके लोक और पंमितोनें पर्वतका बहुत उपहास करा, सबने पर्वतकों कहा कि तू जूठा है, क्योंकि तेरे साखी वसुकों जूठा जान कर देवताने मार दीया,इस वास्ते तेरेसे अधिक पापी कौन है? असें कह कर लोकोनें मिलकें पर्वतकों नगरसें बाहेर निकाल दीया, तब महाकाल, असुर, उस पर्वतका साहायक हूआ

यहां रावणने नारदकों पूछाकि वो महाकाल असुर कौन था? नार दने कहा यहां चरणा युगल नामा नगर है, तिसमें अयोधन नामा राजा था, तिसकी दिति नामा नार्याथी, तिन दोनोकी सुलसा नामक बहुत रू पवान् बेटी थी, तिस सुलसांका स्वयंवर उसके पिताने करा वहां और सर्व राजे बुलवाये, तिन सर्व राजाओंमेंसू सगर राजा अधिक था तिस सगरराजाकी मदोदरी नामा रणवासकी दरवाजेदार सगरकी आज्ञासें प्रति दिन अयोधनराजाके आवासमें जाती हूइ, एकदिन दिति घरके बागके क दलीघरमें गइ, और सुलसांके साथ मदोदरीनी तहां आ गइ,तब मदोदरी, सुलसा और दिति इन दोनोकी वार्ता सुननेके वास्ते तहां छिप गइ, तब दिति सुलसांकों कहने लगी, हे बेटी! मेरे मनमें इस तेरे स्वयंवरमें बडा शल्य है, तिसका उद्धार करना तेरे अधीन है,इस वास्ते तू सुनले मूजसें

श्रीऋषभदेव स्वामीके भरत अरु बाहुबली यह दो पुत्र हूये, फेर तिनके दो पुत्र हूये तिनमें भरतका सूर्ययश और बाहुबलीका चंद्रयश जिनोंसें सूर्यवंश और चंद्रवंश चले है चंद्रवंशमें मेरा भाइ तृणबिंदुनामा हूआ, तथा सूर्यवंशमें तेरा पिता राजा आयोधन हूआ, और आयोधन राजाकी बहिन सत्ययशा नामा तृणबिंदुकी भार्या हूइ, तिसका बेटा मधुपिंगल नामा मेरा भत्रीजा है, तो हे सुंदरी! मैं तेरेको तिस मधुपिंगलकों दीया चाहती हू, और तूतो क्या जाने स्वयंवरमें किसको देइ जावेगी? मेरे मनमें यह शल्य है इस वास्ते तूने स्वयंवरमें सर्वराजाओंको छोडकें मेरे भत्रीजे मधुपिंगलकों वरनां, तब सुलसाने माताका कहनां स्वीकार कर लीया, और मंदोदरीने यह सर्ववृत्तांत सुन कर सगर राजाको कह दीया, तब सगर राजाने अपने विश्वभूतिनामा पुरोहितको आदेश दीया, वो विश्वभूति बडा कवि था उसने तत्काल राजाके लक्षणोंकी संहिता बनायी तिस संहितामें ऐसें लिखा कि सगर तो शुभलक्षण वाला बन जावे और मधुपिंगल लक्षण हीन सिद्ध हो जावे, तिस पुस्तककों संदूकमें बंद करकें रख छोडा जब सब राजा आ कर स्वयंवरमें एकठे बैठे, तब सगरकी आज्ञासें विश्वभूतिने वो पुस्तक काढा अरु सगरने कहा कि जो लक्षण हीन होवे, तिसको यातो मार देनां, अथवा स्वयंवरसे बाहिर निकाल देनां, यह कहनां सबोनें मान लीया, तब तो पुरोहित यथायथा पुस्तक वांचता जाता है, तथा तथा मधुपिंगल अपनेकों अपलक्षण वाला मान कर लज्जावान् होता जाता है, और स्वयंवरसें आपही निकल गया, तब सुलसानें सगरकों वर लीया, दूसरे सर्व राजा अपणे अपणे स्थानोंकों चले गये, अरु मधुपिंगल तो उस अपमानसें बाल तप करकें साठ हजार वर्षकी आयुवाला कालनामा असुर परमधार्मिक देव हूआ, तब अवधिज्ञानसें सगरका कपट जो उसने सुलसाके स्वयंवरमें झूठा पुस्तक बनाया था, और अपना जो अपमान हूआ था, सो देखा जाना, तब विचार करा कि सगर राजादिकोंकों मैं मारु? तब तिनके छिद्र देखने लगा, जब शुक्तिमती नगरीके पास पर्वतकों देखा, तब ब्राह्मणका रूप करकें पर्वतकों कहनें लगा कि हे पर्वत! मैं तेरे पिताका मित्र हू, मेरा नाम शांडिल्य है, मैं और तेरा पिता हम दोनो साथ होकर गौतम उपाध्यायके पास पढे थे, मैंने सुना था कि नारदनें और दूसरे लोकोंने तुझे

वहुत दुःखी करा, अब मैं तेरा पक्ष पुरुगा, और मंत्रों कर कें लोकोंकों विमोहित करुगा, यह कह कर पर्वतके साथ मिलके लोकोंकों नरकमें मालने वास्ते तिस असुरने वहुत व्यामोह करा, व्याधि नूतादि दोष लो कोको कर दीये, पीछें जहां जो लोक पर्वतका वचन मान लेता था, तिसकों अछा कर देताथा, शाम्मिल्यकी आज्ञासें पर्वतनी लोकोंकों अछा करने लगा, उपकार करकें लोकोंकों अपने मतमें मिलाता जाता था, तव तिस असुरनें सगर राजाकों तथा तिसकी राणीयोंकों वहुत नारी रोगादिकका उपद्रव करा, तव तो राजानी पर्वतका सेवक वना, अरु पर्वतने शांमिलके साथ मिलकें तिसका रोग शांति करा, तव पर्वतने राजाकों उपदेश करा कि हे राजा! सौत्रामणि नामा यज्ञ करके, मद्यपान अर्थात् सराव पीनेंमें दोष नहीं, तथा गोसव नामा यज्ञमें अगम्य स्त्री (चांमाली) आदि तथा माता बहिन, बेटी आदिसें विषय सेवन करनां चाहियें, मातृमेधमें माताका और पितृमेधमें पिताका वध अंतर्वेदी कुरुक्षेत्रादिकमें करे, तो दोष नहीं, तथा कछुकी पीठ ऊपर अग्नि स्थापन करकें तर्पण करे, कदाचित् कछु न मिले तो शुद्ध ब्राह्मणके मस्तककी टटरी उपर अग्नि स्थापन करकें होम करें, क्योंकि टटरीनी कछुकि तरें होती है इस वातमें हिंसा नहीं है, क्योंकि वेदोमें लिखा है, श्लोक ॥ सर्वंपुरुषैववेद, यद्भूतंयच्चविश्यति ॥ इशानोयंमृतत्वस्य, यदन्नेनातिरोहति ॥१॥ इसका नावार्थ यह है, कि जो कुछ है, सो सब ब्रह्मरूपही है, जव एकही ब्रह्म हूआ, तव कौन किसिकों मारता है? इस वास्ते यथारुचिसें यज्ञोमें जीवहिंसा करो, और तिन जीवोंका मांस नक्षण करो, इसमें कुछ दोष नहीं क्योकि देवोद्देश करनेंसें मास पवित्र हो जाता है, इत्यादि उपदेश देकर सगरराजाको अपने मतमें स्थापन करकें अतर्वेदी कुरुक्षेत्रादिमें वो पर्वत यज्ञ कराता हूआ तव कालासुरने अवसर पा करकें राजसूयादिक यज्ञनी कराता हूआ, और जो जीव यज्ञमें मारे जाते थे, तिनको विमानोंमें वैठाके देवमायासे दिखाता हूआ, तव लोकोंकों प्रतीत आ गइ पीछें वो नि शंक होकर जीवहिंसारूप यज्ञ करने लगे और पर्वतका मत मानने लगे, सगरराजानी यज्ञ करनेंमें वडा तत्पर हूआ, सुलसा और सगर दोनों मरके नरकम गये, तव माहाकालासुरनें सगर राजाकों नरकमें मार पीटादि महादुःख देके अपणा वैर लीया, इस वास्ते

श्रीऋषभदेव स्वामीके नरत अरु बाहुबली यह दो पुत्र हूये, फेर तिनके दो पुत्र हूये तिनमें नरतका सूर्ययश और बाहुबलीका चंद्रयश जिनोंसें सूर्य वंश और चंद्रवंश चले हैं चंद्रवंशमें मेरा नाइ तृणबिंदुनामा हूआ, तब सूर्यवंशमें तेरा पिता राजा आयोधन हूआ, और आयोधन राजाकी बहिन सत्ययशा नामा तृणबिंदुकी नार्या हूइ, तिसका बेटा मधुपिंगल नामा मेरा नत्रीजा है, तो हे सुंदरी! मैं तेरेकों तिस मधुपिंगलकों दीया चाहती हूं, और तूतो क्या जाने स्वयंवरमें किसकों देइ जावेगी? मेरे मनमें यह शल्य है इस वास्ते तूने स्वयंवरमें सर्वराजाओंको छोडके मेरे नत्रीजे मधुपिंगलकों वरना, तब सुलसाने माताका कहनां स्वीकार कर लीया, और मंदोदरीने यह सर्ववृत्तांत सुन कर सगर राजाको कह दीया, तब सगर राजाने अपने विश्वनूतिनामा पुरोहितकों आदेश दीया, वो विश्वनूति बडा कवि था उसने तत्काल राजाके लक्षणोंकी संहिता बनायी तिस संहितामें ऐसें लिखा कि सगर तो शुनलक्षण वाला बन जावे और मधुपिंगल लक्षण हीन सिद्ध हो जावे, तिस पुस्तकको संदूकमें बंद करकें रख छोडा जब सब राजा आ कर स्वयंवरमें एकठे बैठे, तब सगरकी आज्ञासे विश्वनूतिने वो पुस्तक काढा अरु सगरने कहा कि जो लक्षण हीन होवे, तिसकों यातो मार देनां, अथवा स्वयंवरसे बाहिर निकाल देनां, यह कहनां सबोनें मान लीया, तब तो पुरोहित यथायथा पुस्तक वांचता जाता है, तथा तथा मधुपिंगल अपनेकों अपलक्षण वाला मान कर लज्जावान् होता जाता है, और स्वयंवरसें आपही निकल गया, तब सुलसानें सगरकों वर लीया, दूसरे सर्व राजा अपणे अपणे स्थानोंकों चले गये, अरु मधुपिंगल तो उस अपमानसें बाल तप करकें साठ हजार वर्षकी आयुवाला कालनामा असुर परमधार्मिक देव हूआ, तब अवधिज्ञानसें सगरका कपट जो उसने सुलसाके स्वयंवरमें झूठा पुस्तक बनाया था, और अपना जो अपमान हूआ था, सो देखा जाना, तब विचार करा कि सगर राजादिकोंकों मैं मारु? तब तिनके छिद्र देखने लगा, जब शुक्तिमती नगरीके पास पर्वतकों देखा, तब ब्राह्मणका रूप करकें पर्वतकों कहनें लगा कि हे पर्वत! मैं तेरे पिताका मित्र हूं, मेरा नाम शांडिल्य है, मैं और तेरा पिता हम दोनो साथ होकर गौतम उपाध्यायके पास पढे थे, मैंने सुना था कि नारदनें और दूसरे लोकोंने तुफे

बहुत दुःखी करा, अब मैं तेरा पक्ष पुरुगा, और मंत्रों कर कें लोकोंकों विमोहित करुगा, यह कह कर पर्वतके साथ मिलके लोकोंकों नरकमें गलने वास्ते तिस असुरने बहुत व्यामोह करा, व्याधि नूतादि दोष लोकोंकों कर दीये, पीछें वहां जो लोक पर्वतका वचन मान लेता था, तिसकों अछा कर देताथा, शांमिल्यकी आज्ञासें पर्वतनी लोकोंकों अछा करने लगा, उपकार करकें लोकोंकों अपने मतमें मिलाता जाता था, तब तिस असुरने सगर राजाकों तथा तिसकी राणीयोंकों बहुत नारी रोगादिकका उपद्रव करा, तब तो राजानी पर्वतका सेवक बना, अरु पर्वतने शांमिलके साथ मिलकें तिसका रोग शांति करा, तब पर्वतने राजाकों उपदेश करा कि हे राजा! सौत्रामणि नामा यज्ञ करके, मद्यपान अर्थात् सराब पीनेंमें दोष नहीं, तथा गोसव नामा यज्ञमें अगम्य स्त्री (चांमाली) आदि तथा माता बहिन, बेटी आदिसें विषय सेवन करनां चाहियें, मातृमेधमें माताका और पितृमेधमें पिताका वध अंतर्वेदी कुरुक्षेत्रादिकमें करे, तो दोष नहीं, तथा कछुकी पीठ ऊपर अग्नि स्थापन करकें तर्पण करे, कदाचित् कछु न मिले तो शुद्ध ब्राह्मणके मस्तककी टटरी उपर अग्नि स्थापन करकें होम करें, क्योंकि टटरीनी कछुकि तरें होती है इस बातमें हिंसा नहीं है, क्योंकि वेदोमें लिखा है, श्लोक ॥ सर्वंपुरुषेवेद, यद्भूतंयच्चविष्यति ॥ इशानोयंमृतत्वस्य, यदन्नेनातिरोहति ॥१॥ इसका नावार्थ यह है, कि जो कुछ है, सो सब ब्रह्मरूपही है, जब एकही ब्रह्म हूआ, तब कौन किसिकों मारता है? इस वास्ते यथारुचिसें यज्ञोमें जीवहिंसा करो, और तिन जीवोंका मांस नक्षण करो, इसमें कुछ दोष नहीं क्योंकि देवोद्देश करनेंसें मांस पवित्र हो जाता है, इत्यादि उपदेश देकर सगरराजाकों अपने मतमें स्थापन करकें अंतर्वेदी कुरुक्षेत्रादिमें वो पर्वत यज्ञ कराता हूआ तब कालासुरने अवसर पा करकें राजसूयादिक यज्ञनी कराता हूआ, और जो जीव यज्ञमें मारे जाते थे, तिनकों विमानोंमें बैठाके देवमायासें दिखाता हूआ, तब लोकोको प्रतीत आ गइ पीछे वो निःशंक होकर जीवहिंसारूप यज्ञ करने लगे और पर्वतका मत मानने लगे, सगरराजानी यज्ञ करनेंमें बडा तत्पर हूआ सुलसा और सगर दोनो मरके नरकमें गये, तब महाकालासुरनें सगर राजाकों नरकमें मार पीटादि महादुःख देके अपणा वैर लीया, इस वास्ते

श्रीऋषभदेव स्वामीके भरत अरु बाहुबली यह दो पुत्र हूये, फेर तिनके दो पुत्र हूये तिनमें भरतका सूर्ययश और बाहुबलीका चंद्रयश जिनोंसें सूर्य वंश और चंद्रवंश चले है चंद्रवंशमें मेरा भाइ तृणबिंदुनामा हूआ, तब सूर्यवंशमे तेरा पिता राजा आयोधन हूआ, और आयोधन राजाकी बहिन सत्ययशा नामा तृणबिंदुकी भार्या हूइ, तिसका बेटा मधुपिंगल नामा मेरा भत्रीजा है, तो हे सुंदरी! मैं तेरेको तिस मधुपिंगलकों दीया चाहती हूं, और तूतो क्या जाने स्वयंवरमें किसको वेइ जावेगी? मेरे मनमें यह शल्य है इस वास्ते तूने स्वयंवरमें सर्वराजाओंको छोडके मेरे भत्रीजे मधुपिंगलकों वरना, तब सुलसाने माताका कहना स्वीकार कर लीया, और मंदोदरीने यह सर्ववृत्तांत सुन कर सगर राजाको कह दीया, तब सगर राजाने अपने विश्वभूतिनामा पुरोहितकों आदेश दीया, वो विश्वभूति बडा कवि था उसने तत्काल राजाके लक्षणोंकी संहिता बनायी तिस संहितामें असें लिखा कि सगर तो शुभलक्षण वाला बन जावे और मधुपिंगल लक्षण हीन सिद्ध हो जावे, तिस पुस्तककों संदूकमें बंद करकें रख छोडा जब सब राजा आ कर स्वयंवरमें एकठे बैठे, तब सगरकी आज्ञासें विश्वभूतिने वो पुस्तक काढा अरु सगरने कहा कि जो लक्षण हीन होवे, तिसकों यातो मार देनां, अथवा स्वयंवरसें बाहिर निकाल देनां, यह कहना सबोनें मान लीया, तब तो पुरोहित यथायथा पुस्तक वांचता जाता है, तथा तथा मधुपिंगल अपनेकों अपलक्षण वाला मान कर लज्जावान् होता जाता है, और स्वयंवरसें आपही निकल गया, तब सुलसानें सगरकों वर लीया, दूसरे सर्व राजा अपणे अपणे स्थानोंकों चले गये, अरु मधुपिंगल तो उस अपमानसें बाल तप करकें साठ हजार वर्षकी आयुवाला कालनामा असुर परमधार्मिक देव हूआ, तब अवधिज्ञानसें सगरका कपट जो उसने सुलसाके स्वयंवरमें झूठा पुस्तक बनाया था, और अपना जो अपमान हूआ था, सो देखा जाना, तब विचार करा कि सगर राजादिकोंकों मै मारु? तब तिनके छिद्र देखने लगा, जब शुक्तिमती नगरीके पास पर्वतकों देखा, तब ब्राह्मणका रूप करकें पर्वतकों कहनें लगा कि हे पर्वत! मैं तेरे पिताका मित्र हू, मेरा नाम शांडिल्य है, मैं और तेरा पिता हम दोनो साथ होकर गौतम उपाध्यायके पास पढे थे, मैंने सुना था कि नारदनें और दूसरे लोकोंने तुझे

अहो याचका ! अहो याचका तबहीसें ब्राह्मणोंको याचक कहने लगे, तब ब्राह्मणोने श्रीऋषभदेवकी चितामेंसे अग्नि ले कर अपने अपने घरोमें स्थापन करते हूये, तिस कारणसें ब्राह्मणकों आहिताग्नय कहने लगे

श्री ऋषभदेवकी चिता जले पीछें दाढादिक सर्व तो देवता ले गये, शेष नस्म अर्थात् राख रहगयी सो ब्राह्मणोने थोडी थोडी सर्व लोकोंकों दीनी, तिस राखकों लोकोने अपणे मस्तक ऊपर त्रिपुंड्राकारसें लगायी, तबसें त्रिपुंडलगाना, शुरु हूआ इत्यादि बहुत व्यवहार तबसेंही चला है

जब नरतने कैलास पर्वतके उपर सिद्धनिषद्या नामा मंदिर बनाया, उसमें आगें होनेंवाले त्रेवीश तीर्थंकरोंके और श्री ऋषभदेवजीकी मिलकर चोवीश प्रतिमाकी स्थापना करी, और दंडरत्नसें पर्वतकों ऐसे छीला कि जिस उपर कोइ पुरुष पगोंसें न चढ सके उसमें आठ पद (पगथीए) रखे इसी वास्ते इन कैलास पर्वतका दूसरा नाम अष्टापद कहते हैं, तबसेंही कैलास महादेवका पर्वत कहलाया महादेव अर्थात् बडेदेव सो ऋषभदेव तिसका स्थान कैलास पर्वत जानना

नरत अरु बाहुबलि यह दोनो दीक्षा लेकें मोक्ष गये,तब नरतके पीछें सूर्ययश गद्दी ऊपर बैठा, तिसकी औलाद सूर्यवंशी कहलाये, तिसके पीछें सूर्ययशका बेटा महायश गद्दी उपर बैठा, ऐसेंही अतिबल, महाबल, तेजवीर्य, कीर्त्तिवीर्य अरु दंडवीर्य, ये आठ अनुक्रमसे अपने अपने बापकी गद्दी उपर बैठे, अपने अपने राजका प्रबंध करते रहे, परंतु नरतके राजसे इनोंने आधा (तीन खंडका) राज्य करा, और अंतें नरतकी तरें राज्य छोड कर मोक्षमें गये, इनके पीछें गद्दी ऊपर असंख पाट हूये, तिनकी व्यवस्था चितांतरगंडिकासें जान लेनी यावत् जितशत्रूराजा हूये ॥ इति संक्षेपत श्रीऋषनाधिकार संपूर्ण ॥

अब अजितनाथ स्वामीके वखतका स्वरूप लिखते हैं अयोध्या नगरीमें श्रीनरतके पीछें जब असंख्य राजा हो चुके, तब इक्ष्वाकुवंशमें जितशत्रु राजा हूआ, विनीता नगरीकाही दूसरा नाम अयोध्या है, परंतु अब जो अयोध्या है सो वो अयोध्या नहीं वो तो कैलास पर्वतके पास थी, और यह तो नवीन अयोध्या उसके नामसें वसी है, जितशत्रु राजाका छोटा नाइ सुमित्र युवराज था, जितशत्रुकी विजया देवी राणी थी,

हे रावण! पीछे पापीसें यह जीवहिंसारूप यज्ञ निषेध करके प्रवर्त्त हुवे हैं हे राजा रावण! सो यह यज्ञ तेने निषेध करा. यह कथा सुनके राजा रावणने प्रणाम करके नारदको विदा करा, इस तरसें जैन मतके शास्त्रोंमें वेदोंकी उत्पत्ति लिखी है सो आवश्यकसूत्र, आचारदिनकर, त्रेसठ शलाका पुरुष चरित्रमें सर्व लिखा है, तहांसे देख लेना.

और इस वर्त्तमान कालमें जो चारों वेद है इनकी उत्पत्ति बाबत मोक्षमूलर साहिब अपने बनाये संस्कृत साहित्य प्रथम तो ऐसा लिखते हैं, कि वेदोंमें दो भाग हैं, एक छंदोभाग, दूसरा मंत्र भाग है, तिनमें छंदोभागमें इस प्रकारका कथन है, जैसे अज्ञानीके मुखसें अकस्मात् वचन निकला हो, तैसें इसकी उत्पत्ति एकतीससो वर्षसें हूइ है, और मंत्रभागको बने हूये उनतीससो वर्ष हूये है. इस लिखनेसें क्या आश्चर्य है? जो किसीने उलट पुलटके फेर नवीन वेद बना दीये हों इन वेदों उपर उवट, सायण, रावण, महीधर, अरु शंकराचार्यादिकोंनें भाष्य बनाये हैं, टीका, दीपिका, रची हैं, फेर अब उन प्राचीन भाष्य दीपिकाकों अयथार्थ जानकें दयानंदसरस्वती स्वामि अपणे मतके अनुसार नवीन भाष्य बना रहे है, परंतु पंडित ब्राह्मण लोक, दयानंद सरस्वतीके भाष्यकों प्रामाणिक नही मानते हैं अब देखा चाहियें क्या होता है? और जैनमत वालोंनेंतो जबसे उनके शास्त्रोंके लिखने मुजब आर्य वेद, बिगाडे गये उसीदिनसें वेदोकों मानने छोड दीये हैं॥ इतिवेदोत्पत्ति ॥

जब श्रीऋषभदेवजीका कैलास पर्वतके उपर निर्वाण हूआ, तब सर्व देवता निर्वाण महिमा करनेकों आये, तिन सर्व देवताओंमेंसू अग्निकुमार देवतानें श्रीऋषभदेवकी चितामें अग्नि लगाइ, तबसेंही यह श्रुति लोकमें प्रसिद्ध हूइ है "अग्निमुखावैदेवा" अर्थात् अग्निकुमार देवता सर्वदेवताओंमें मुख्य है, और अल्पबुद्धियोंनेंतो यह श्रुतिका अर्थ ऐसा बनालीया है कि अग्निजो है, सो तेतीसक्रोड देवताओंका मुख है यह प्रभुके निर्वाणका स्वरूप सर्व आवश्यक सूत्रसें जान लेना.

जब देवताओंने श्रीऋषभदेवकी दाढा वगैरे लीनी, तब श्रावक ब्राह्मण मिलकर देवतायोंकों अतिभक्तिसें याचना करते हूये, तब वे देवता तिनकों बहुत जान करकें बडे यत्नसें याचनेके पीछे हूये देख कर कहते हूये कि

कर मोक्ष पहुंचे, और अजितनाथ स्वामीजी समेतशिखर पर्वतके ऊपर शरीर छोडकें मोक्ष गये, श्रीऋषभदेव स्वामीके निर्वाणसें पंचाश लाख कोडी सागरोपमके व्यतीत हूया श्रीअजितनाथ तीर्थंकरका निर्वाण हूआ तिनोंके पीछें तीस लाख कोडी सागरोपम व्यतीत हूये, श्रीसंभवनाथजी तीसरे तीर्थंकर हूये, राज्य सर्व सूर्यवंशी, चंद्रवंशी, और कुरुवंशी, आदिक राजाओंके घरानेमें रहा ॥ इति श्रीअजितनाथ और सगरचक्रवर्तीका अधिकार संपूर्ण ॥

अब श्रावस्ती नगरीमें इक्ष्वाकुवंशी जितारिराजा राज्य करता था, तिसकी सेना नामें पटराणी थी, तिनोंका संभव नामा पुत्र तीसरा तीर्थंकर हूआ, यह चोवीसही तीर्थंकरोंका वर्णन प्रथम परिछेदमें यंत्र और वार्त्तामें लिख आये हैं इस वास्ते यहां संक्षेपसें लिखेगे और तीर्थंकरोंके आपसमें जो अंतरकाल हैं सोभी यंत्रोंमें देख लेनां इति तृतीय तीर्थंकरवृत्तांत

इनके पीछें अयोध्यानगरीमें इक्ष्वाकुवंशी संवरराजाकी सिद्धार्था नामक राणी तिनोंका पुत्र अभिनंदन नामक चौथा तीर्थंकर हूआ पीछें अयोध्या नगरीमें इक्ष्वाकुवंशी मेघराजाकी सुमंगला राणी तिनोंकापुत्र सुमतिनाथ नामक पांचमां तीर्थंकर हूआ, पीछें कौसंबी नगरीमें इक्ष्वाकुवंशी श्रीधरराजाकी सुसीमा राणी तिनोंका पुत्र पद्मप्रभनामक छट्ठा तीर्थंकर हूआ, पीछे वाणारसी नगरीमें इक्ष्वाकुवंसी प्रतिष्ठराजाकी पृथ्वी नामाराणी तिनोंका पुत्र श्रीसुपार्श्वनाथ नामा सातमा तीर्थंकर हूआ, पीछे चंद्रपुरी नगरीमें इक्ष्वाकुवंशी महासेन राजाकी लक्ष्मणा नामें राणी तिनोंका पुत्र श्री चंद्रप्रभ नामा आठमां तीर्थंकर हूआ, पीछें काकंदी नगरीमें इक्ष्वाकुवंशी सुग्रीवराजाकी रामा नामक राणी तिनोंका पुत्र श्रीसुविधिनाथ अपरनाम पुष्पदंत नामक नवमा तीर्थंकर हूआ

यहां तक तो सर्व ब्राह्मण जैनधर्मी श्रावक और आर्य चारों वेदोंके पढने वाले बने रहे, जब नवमें तीर्थंकरका तीर्थ व्यवछेद हो गया, तबसे ब्राह्मण मिथ्यादृष्टि और जैनधर्मके द्वेषी और सर्व जगत्के पूज्य कन्या, भूमि, गोदानादिकके लेने वाले, सर्व जगत्में उत्तम और सर्वके हर्त्ता कर्त्ता मतोंके मालक बन गये क्योंकि शूना घर देखकें कुत्ताभि आटा खा जाता है, और जो जगत्में पाखंम तथा बुरे बुरे देवतादिकोंकी पूजा

तिसके चौदह स्वप्न पूर्वक अजितनाथ नामा पुत्र हूआ, और सुमित्रकी राणी यशोमतीकोंनी चौदह स्वप्न देखने पूर्वक सगरनामा पुत्र हूआ जब दोनों यौवनवत हूए तब जितशत्रु और सुमित्रतो दीक्षा लेके मोक्ष रूप हो गये तब श्रीअजितनाथ राजा हूये अरु सगर युवराजा हूये कितनेक काल राज करके श्री अजितनाथजीने तो स्वयमेव दीक्षा ले कर तप करा, और केवलज्ञान पा कर दूसरा तीर्थंकर हूआ पीछें सगर राजा हूआ, सो सगर दूसरा चक्रवर्ति हूआ है, यह सगर राजाने भरतकी तरे षट् खंडका राज्य करा, यह सगर राजाके जन्हु कुमार प्रमुख शाठ हजार बेटे हुये, तिनोंनें दंड रत्नसें गंगा नदीकों अपने असली प्रवाहसे फेरके और कैलासके गिरदनवाह खाइ खोदके उस खाइमें गंगाको लाके गेरा, क्योंकि उनोने विचार करा था कि हमारे बडे भरतने जो इस पर्वत ऊपर सुवर्णरत्नमय श्रीऋषभादि तीर्थंकरोंका मंदिर बनाया है, तिसकी रक्षा वास्ते इस पर्वतके चारो तर्फ खाइ खोद कर उसमें गंगा फेर देवें, जिससें तीर्थकी विशेष रक्षा हो जावेगी, तिन शाठ हजारकों नाग देवताने मार दीया, क्योंकि खाइ खोदने और जल भरनेसें उनको तकलीफ पहुंची थी, तब गंगाके जलनें देशमे बडा उपद्रव करा, तब सगरराजाका पोता जन्हुका बेटा भगीरथने सगरकी आज्ञासें दंड रत्नसें भूमि खोदके गंगाकों समुद्रमें मिलाया, इसी वास्ते गंगाका नाम जान्हवी और भागीरथी कहा जाता है, सगरराजाने श्रीशत्रुंजय तीर्थ ऊपर श्रीभरतके बनाये ऋषभदेवजीके मंदिरका उद्धार करा, तथा और जैनतीर्थोंकाभी उद्धार करा,तथा यह समुद्रभी भरतक्षेत्रमें सगरही देवताके सहाय्यसें लाया, लंकाके टापूमें वैताढ्य पर्वतसें सगरकी आज्ञासें घनवाहन पहिला राजा हूआ, और लंकाके टापूका नाम राक्षसद्वीप है, तिसका यह हेतु हैकि घनवाहन राजाके वंसके राक्षस कहलाये, इसी वंसमें राजा रावण और बिभीषणादि हूये हैं इत्यादि सगरचक्रवर्त्तीके समयका हाल त्रेशठ शलाका पुरुष चरित्रसें जान लेना, क्योंकि तिस चरित्रके तेत्तीस हजार काव्य हैं इस वास्ते मैं सारा हाल उसका इस ग्रंथमें नहीं लिख सक्ता हूं, परंतु संक्षेप मात्र वृत्तांत लिखुगा सगरचक्रवर्त्ति राज्य करकें पीछें श्री अजितनाथजीके पास दीक्षा ले कर, संयम तप करकें केवलज्ञान पा

तरें पंदरहवें तीर्थंकर तक सात तीर्थंकरोंका शासन विछेद होता रहा, और मिथ्याधर्म बढ गये

तिस पीछें सिंहपुरी नगरीमें इक्ष्वाकु वंशी विष्णुराजा हूआ तिसकी विष्णु श्रीराणी तिनोंका पुत्र श्रीश्रेयांसनाथ नामा इग्यारमा तीर्थंकर हूआ, तिनके समयमें वैताढ्यपर्वतसें श्रीकंठ नामा विद्याधरके पुत्रने वज्रोत्तर विद्याधरकी बेटीकों हरके अपने बहनोइ राक्षसवंशी लंकाका राजा कीर्त्ति धवलकी शरण गया, तब कीर्त्तिधवलनें तीनसौ योजन परिमाण वानर द्वीप उनके रहनेकों दीया, तिनोंके संतानोंमेंसें चित्र विचित्र विद्याधरोने विद्यासें बंदरका रूप बनाया, तब वानर द्वीपके रहनेसें और वानरका रूप बनानेसे वानरवंशी प्रसिद्ध हूये, तिनोहींकी औलादमें बाली और सुग्रीवादिक हूये हैं

तथा श्रेयांसनाथके समयमें पहिला त्रिपृष्ठ नामा वासुदेव हरिवंशमें हूआ, तिसकी उत्पत्ति ऐसे है – पोतनपुर नगरमें हरिवंशी जितशत्रु नामा राजा हूआ, तिसकी धारणी नामा राणी थी, तिसका अचल नामा पुत्र और मृगावती नामा बेटीथी,सो अत्यंत रूपवान् औ यौवनवती थी, उसकों देखकें उसके पिता जितशत्रुने अपणी राणी बना लीनी तब लो कोंने जितशत्रु राजाका नाम प्रजापति रक्खा, अर्थात् अपनी बेटीका पति ऐसा नाम रक्खा, तबहीसें वेदोमें यह श्रुति लिखी गइ ‘ प्रजापतिर्वैस्वा दुहितरमभ्य ध्यायद्दिवमित्यन्यआहुरुषसमित्यन्येतामृश्योभूत्वा तदसावादि त्योभवत्” इसका भावार्थ यह है कि –प्रजापतिब्रह्मा अपनी बेटीसे विषय सेवनेकों प्राप्त होता हूआ, हमारे जैनमतवालोंकी तो इस अर्थसें कुछ हानी नहीं, परंतु जिनलोकोंने ब्रह्माजीकों वेदकर्त्ता हिरण्यगर्भके नामसें इश्वर माना है, औ इस कथाकों पुराणोंमें लिखा है, उनका फजीता तो जरूर दूसरे मतवाले करेंगे ? इसमें हम क्या करे ? क्योंकि जो पुरुष अपने हाथोंसेंही अपना मुह काला करे, तब उसकों देखने वाले क्योंकर हांसी न करेगे ? यद्यपि मीमांसाके वार्त्तिककार कुमारिलनें इस श्रुतिके अर्थके कलंक दूर करणेकों मनमानी कल्पना करी है, तथा इस कालमें दयानंद सरस्वतीनेभी वेदश्रुतियोके कलंक दूर करनेंको अपनी बनाइ भा ष्यमें खूब अर्थोंके जोड तोड लगाये हैं, परंतु जो पुराणवालेने कथानक

है, तथा औरजी जो जो कुमार्ग प्रचलित हूवा है, वे सर्व कर्नोंहीने चलाये है, मानो आदीश्वर जगवानकी रची हूइ सृष्टिरूप अमृतमें जहर मिलाने वाले हूये, क्योंकि आगे तो जैनमतके और कपिलके मतके विना और को इनी मत नहीं था कपिलके मतवालेजी श्रीआदीश्वर अर्थात् रूपनदेवकोही देव मानते थे, निदान यह इस हुमा अवसर्पिणिमें आश्चर्य गिना जाता है

तीस पीछें जद्दिलपुरनगरमे इक्ष्वाकुवंशी दृढरथराजाकी नंदा नामा राणी तिनोंका पुत्र श्री शीतलनाथनामा दशमा तीर्थंकर हूआ, इनही तीर्थंकरके शासनमें हरिवंश उत्पन्न हूआ है, तिसकी कथा लिखते है

कौशांबिनगरीमें वीरा नामा कोली रहताथा, तिसकी वनमाला नामा स्त्री अत्यंत रूपवती थी सो नगरके राजाने खोसके अपणी राणी बना लेइ, वीरा कोली स्त्रीके विरहसे बावला हो गया हा वनमाला हा वनमाला असें कहता हूआ नगरमे फिरने लगा एकदा वर्षाकालमें राजा वनमालाके सा थ महिलके जरोखेमे बैठा था, तव राजा राणीनें वीरेको तिस हालमें दे खके बडा पश्चात्ताप करा, अरु विचार करने लगे कि हमने यह बहुत बुरा काम करा,इसी वखत वीजली गिरनेसे राजा राणी दोनो मरके हरिवासक्षे त्रमें युगल स्त्री पुरुष हो गये, तव वीरा कोली राजा राणीका मरण सुनके राजी हो गया पीछें तापस बनकें तप करा,अज्ञान तपके प्रजावसें किल्बिष देवता हूआ तव अवधिज्ञानसें राजा राणिकों युगलीये हूये देख कर वि चार करा कि यह जद्रक परिणामी और अल्पारजी है, इस वास्ते मरके दे वता होवेंगे, तो फेर में अपना वैर किससें लेऊंगा ? इस वास्ते असा क रु कि – जिससें ये दोनों मरकें नरकमें जावे, असा विचार के तिन दो नोंकों तहांसें उठा करकें जरत क्षेत्रमें चंपा नगरीके इक्ष्वाकुवंशी चंद्रकीर्त्ति राजा अपुत्रिया मरा था, लोक सब चितामें बैठे थे कि कौन यहांका राजा होवेगा ? पीछें तिस देवतानें ये दोनो उनकों सोंपे, और कहाकि यह तु मारा हरिनामा राजा हूआ, इसकी यह हरणी नामा राणी है, इनके खाने वास्ते तुमने फलमिश्रित मांस देनां और इनसें शिकारजी करानां तब लोकोंनें तैसेही करा वे दोनों पापके प्रजावसें मरके नरकमें गये, और इनकी औलाद सब हरिवंशकी कहलायें इसी वंशमें वसुराजा हूआ इति हरिवंशोत्पत्ति ॥ इनश्री शीतलनाथजीकाजी शासन विच्छेद गया, इसी

तिस पीछें हस्तिना पुर नगरमें कुरुवंशी सूरनामा राजा हूआ, तिसकी श्रीराणी तिनोंका पुत्र श्रीकुंथुनाथ हूआ, सो प्रथम गृहस्थावस्थामें छठा चक्रवर्त्ती था, अरु दीक्षा लीया पीछें सत्तरहवां तीर्थंकर हूआ

तिस पीछे हस्तिनापुरनगरीमें कुरुवंशी सुदर्शन नामा राजा, हूआ तिसकी देवी राणी, तिनोंका पुत्र श्रीअरनाथ हूआ, सो गृहस्थावासमें तो सातवां चक्रवर्त्ति था और दीक्षा लीया पीछें अठारहवां तीर्थंकर हूआ.

अठारहवें और उन्नीसवें तीर्थंकरके अंतरेमें आठवां कुरुवंशी सुभूम नामा चक्र वर्त्ती हूआ यह सुभूमके वखतमेंही परशुराम हूआ इन दोनोंका संबंध जैनमतके शास्त्रोंमें जैसे लिखा है तैसेंमेंभी यहां लिख देता हूं

यह कथा योग शास्त्रमें ऐसे लिखी है कि, वसंत पुर नामा नगरमें उच्छन्नवंश नामा अर्थात् जिसका कोइभी संबंधी नहीं था ऐसा अग्निक नामा एक लडका था सो अग्निक एकदा समये किसी साथवाराके साथ देशांतरकों जाता हूआ मार्गमें साथसें भूलके जंगलमें एक तापसके आश्रममें गया, तब कुलपति तापसने तिसकों अपना पुत्र बनाकें रखलीया, पीछें तहां अग्निकने बडाभारी घोर तप करा और बडा तेजस्वी हूआ, जगत्में यमदग्नि तापसके नामसें प्रसिद्ध हूआ इस अवसरमें एक जैनमति विश्वानर नामा देव और दूसरा तापसोंका भक्त धन्वंतरि नामा देव, यह दोनो देव परस्पर विवाद करने लगे तिसमें विश्वानर तो ऐसा कहने लगाकि – श्रीअर्हंतका कहा धर्म प्रामाणिक है? और दूसरा कहने लगा कि तापसोंका धर्म सच्चा है, तब विश्वानरने कहाकि दोनो धर्मके गुरुओंकी परीक्षा कर लो तिसमेंभी अर्हंतधर्मके तो जघन्य गुरुजो होवे तिसकी और तापस धर्मके उत्कृष्ट गुरु जो होवे,तिसका धैर्य देख लो, तब मिथिला नगरीका पद्मरथ राजा नवाही जिन धर्मी हो कर भावयति हूआथा सो चंपानगरीमें गुरुओंकें पास दीक्षा लेने वास्ते जाताथा,तिसकों पंथमें तिन दोनो देवताओंने देखा, तब रस्तेमें दुःख देनेवाले बहुत कम्हे ककरे बना दीये, तथा रस्तेके सिवाय दूसरे स्थानमें बहुत कीडे आदि जीव हरजगें बना दीये तब राजा भावयतिके भावोंसें कमल समान कोमल, नंगे पगोंसें उन कांटे ककरोके उपर चला जाता है, पगोंमसुं रुधिरकी ततीरीयां छूटती हैं, तोभी जीवों संयुक्त भूमि उपर नहीं चलता है, तब देवता

लिखा है, तिसकों क्योंकर छिपा सकेंगे? इसमें यह मसल मशहूर है कि – खूबकी बात तो छिजायत गइ अब क्यों पड़े रुदाते हो बस हमारे मतमेंतो वेदश्रुति और ब्रह्मा (प्रजापति) का अर्थ यथार्थही जानो. अरु जब त्रिपृष्ठ और अचल दोनो योवनवंत हूये तब तिनोंने त्रिखंडम राजा अश्वग्रीवकों मारके तीन खंडका राज्य करा

तिस पीछें चंपा पुरीका इक्ष्वाकुवंशी वसुपूज्य नामा राजा हूआ, तिसकी जया नामा राणी तिनोंका पुत्रश्रीवासुपूज्यनाथ नामा बारहवां तीर्थकर हूआ,तिनोंके वारें दूसरा द्विपृष्ठ वासुदेव और अचल बलदेव हूये और इनका प्रतिशत्रु रावण समान तारक नामा दूसरा प्रतिवासुदेव हूआ, इन सर्व वासुदेव और चक्रवर्त्ती आदिकोंका संपूर्ण वरनन त्रेशठशलाका पुरुष चरित्रसे जान लेना

तिस पीछें कंपिलपुर नगरमें इक्ष्वाकुवंशी कृतवर्मा नामा राजा हूआ, तिसकी श्यामा नामा राणी, तिनोंका पुत्र श्री विमलनाथ नामा तेरहवां तीर्थंकर हूआ, तिनोंके वारें तिसरा स्वयंभु वासुदेव और भद्रनामा बलदेव तथा मेरक नामा प्रतिवासुदेव हूये

तिस पीछें अयोध्या नगरीमें इक्ष्वाकुवंशी सिंहसेन राजा हूआ तिसकी सुयशाराणी तिनोंका पुत्र श्रीअनंतनाथ नामा चौदहवां तीर्थंकर हूआ, तिनके वारें चौथा पुरुषोत्तम नामा वासुदेव और सुप्रभनामा बलदेव तथा मधुकैटभ नामा प्रतिवासुदेव हूये

तिस पीछें रत्नपुरी नगरीमें इक्ष्वाकुवंशी भानुनामा राजा हूआ, तिसकी सुव्रतानामा राणी तिनोंका पुत्र श्रीधर्मनाथ नामा पंदरहवां तीर्थंकर हूआ, तिनके वारे पांचमां पुरुषसिंह नामा वासुदेव और सुदर्शन नामा बलदेव तथा निशुंभ नामा प्रतिवासुदेव हूआ, यहांतक पांच वासुदेव हूयें सो पांचोंही, अरिहंतोंके सेवक अर्थात् जैनधर्मी हूये

तिस पीछें पंदरहवे धर्मनाथ और शोलवें श्रीशांतिनाथजीके अंतरमें तीसरा मघवा नामा चक्रवर्त्ती और चौथा सनत्कुमार नामा चक्रवर्त्ती हूये

तिस पीछें हस्तिनापुरी नगरीमें कुरुवंशी विश्वसेन राजा हूआ तिसकी अचिरा राणी तिनका पुत्र श्रीशांतिनाथ नामा हूवा सो पहिला गृहवासमें तो पांचमां चक्रवर्त्तिथा पीछे दीक्षा लेके केवली होकर शोलवां तीर्थंकर हूआ

अधिक और पापी कौन है? तब जमदग्निने शोचा कि हमारे शास्त्रमें तो जैसें चिडेने कहा है, तैसेही है तब मनमें विचारा जब मेरे स्त्री, और पुत्र नही, तब मेरा सर्व तप असा है, जैसा पाणीके प्रवाहमें मूतनां, तैसा है, पीछें जमदग्निके मनमें स्त्रीकी चाहना उत्पन्न हूइ, यह देखके ध्वनतरि देवता श्रावक जैनधर्मी हो गया अरु उहांसे दोनो देवता अह श्य हो गये और जमदग्नि तहांसें उठके नेमिक कोष्टक नगरमें पहुचा ति स नगरमें जितशत्रुराजा था, तिसके बहुत बेटीयां थी तिस राजा पासों एक कन्या मांगु? असा विचार किया? राजानी आसनसें उठकें और हाथ जोडके कहता हूआ कि आप किस वास्ते आये हो? और मुझे आदेश देओ क्या करु? तब जमदग्निने कहा मैं तेरे पास तेरी एक कन्या मांगने आया हू तब राजाने कहा मेरी सौ (१००) पुत्री है तिनमेंसू जौ नसी तुमकों वांछे सो तुम लेल्यो, तब जमदग्नि कन्यायोंके महिलमें गया और कहने लगा कि तुममेंसे जिसने मेरी धर्मपत्नी (स्त्री) बननां है, सो कह देवे कि मैं तुमारी स्त्री बनूगी, तब तिन राजपुत्रीयोंने जटाला और पलित धोलेकेशोंवाला दुर्बल और भीख मांगके खानेवाला जब देखा और उसका पूर्वोक्त वचन सुना तब सर्वोने थूका और कहा कि असी बात कहते हूये तुझकों लज्जा नहीं आती है? यह बात सुनकर जमद ग्निकों बडा क्रोध चढा, तब विद्याके प्रभावसें उन राजपुत्रीयोंकों कूबडी और महाकुरूपवान् बना दीया, अरु आप तहांसें निकलके महिलोके अं गनमें आया, तहां एक छोटी राजाकी बेटी रेणु पुजमें (मट्टीके ढेरमें) खेल रही थी, तिसकों हाथमें बिजोरेका फल ले कर कहने लगा हे रेणुका! तु मुझकों वांछती है? तब तिस बालिकाने बिजोरेकों देखकें हाथ पसा रा तब मुनिने कहा मुझकों यह वांछती है असें कहकर मुनिने उसकों ले लीया पीछे राजाने कितनीक गौआं और धन देकर लडकीका विवाह उ सके साथ विधिसें कर दीया तब जमदग्निने शालीयोंके स्नेहसें सर्व क न्यायोंकों अछा कर दीया, और तिस रेणुका नायीकों लेकर अपणे आश्र ममें आया पीछें तिस मुग्धा, मधुर आकृति, हरणीसमान लोलाक्षीकों प्रेमसें वृद्धि करता भया, जब जमदग्निको अगुलियो उपर दिन गिणतेकों वो रेणुका सुदर यौवन कामके लीला वनकों प्राप्त हूइ, तब जमदग्निने

ओंने गीत नाटकका वडा प्रारंन करा तोनी वो राजा क्षोजायमान न हु था तव दोनों देवता सिद्धपुत्रोंका रूप करके राजाकों कहने लगे हे महा नाग तेरी आयु अनि वहुत है. तु स्वछंद नोगविलास कर क्योंकि यौवनमें तप करना ठीक नहीं इस वास्ते जव तू वृद्ध हो जावेंगा, तव दीक्षा ले लीजो यह वात सुन कर राजा कहने लगा यदि मेरा वहुत आयु है, त व मे वहुत धर्म करुगा क्योकि जितना कना पाणी होता है, तितनीही कम लकी नालिनी वढ जाती है और यौवनमें जो इंद्रियोंकों जीतना है, सोइ न सली तप होता है तव तिन देवताओंने जाना यह तो कदापि चलायमान न होगा, पीछें वो दोनो देवता मिल कर सर्वसें उत्कृष्ट जमदग्नि तापसके पास परीक्षा करणेको गये, तव तिनोंनें जिसकी वडवृक्षकी जटाकी तरें तो धरतीसें जटा लग रही है, और पगोमें सर्पोंकी विवीयां वन गइ है, ऐसे हालमें जमदग्निकों देखा, तव वो दोनोंदेवताने देव मायासे जमदग्निकी दाढीमें घोंसला वनाकर चिडा और चिडी वनकर घोसलेमें दोनो वेठ गये पीछें चिडा चिडीसे कहने लगा मै हिमवत पर्वतमें जाउगा तव चिडी कहने लगी मैं तुझे कनी न जाने देउगी, क्योंकि तू तहा जाके किसी और चि डीसें आसक्त हो जावेंगा, फेर मेरा क्या हाल होवेगा ? तव चिडा कहने लगा कि जो मैं फिर कर न आउ, तो मुझे गौ घातका पाप लगे, तव चिडी कहने लगी मैं तेरी शपथको नहीं मानती हों, जो मै सपथ (सौ गंद) कहू वो तू करे, तो मैं जाने देउगी, तव चिडेने कहा तू कह दे तव चिडी कहने लगी कि जो तू किसी चिडीसे यारी करे तो इस जमदग्नि का जो पाप है, सो तुजकों लगे चिडाचिडीका ऐसा वचन सुणके जम दग्निकों क्रोधोत्पन्न हूआ तव दोनो हार्थोसें चिडा चिडीकों पकड लीया और कहता हूआ कि मैं तो वडा डुष्कर तप जो पापोंका नाश करने वाला है,सो कर रहा हों तो फेर मेरेंमें ऐसा कौनसा पाप शेष रह गया है जिस्से तुम मुझे पापी वतलाते हो ? तव चिडा यमदग्निकों कहता हैं, हे ऋषि ! तू हमारें उपर कोप मत कर क्योंकि हमने कूठ नहीं कहा है, और जो तेरेकों अपने तपका घमंम है, सो तप तेरा निष्फल है, क्योंकि तुमारे शास्त्रोमें लिखा है, जो " अपुत्रस्यगतिर्नास्ति " अर्थात् पुत्र रहितकी गति नहीं यह तुमनें शास्त्रमें नहीं सुना ? तो जिसकी सुगति न हूइ तिस्सें

केका दोनोंका शिर काट माला, जब यह वृत्तांत अनंतवीर्य राजाने सुना, तब क्रोधमें नर कर और फौज ले कर जमदग्निका आश्रम जाल फूक तोड फोक गेरा और सर्व तापसोंकों त्रास मान करा, तब तापसोनें दो डते हूयां जो रौला करा तिसकों परशुरामनें सुना और सारा वृत्तांत सुनके परशु लेके राजाकी सेना ऊपर दोडा, परशुरामनें परशुसें राजा और राजाकी सेना सुनटोंकों काष्टकी तरे फाडके गेर दीया, आप पीछे आश्रममें चला गया, उधर प्रधान राजपुरुषोंनें अनतवीर्यके बेटे कृतवीर्यकों राजसिंहासन उपर बैठाया, परतु वो उमरमें छोटा था, एकदिन अपणी माताके मुखसें अपने पिताके मरणेका वृत्तात सुनकें सर्पके मसे हूयेकी तरें आ कर जमदग्निकों मार दीया, तब परशुराम आपना पिताका वध देखकें क्रोधमें जाज्वल मान हो कर हस्तिनापुरमें आकें कृतवीर्यकों मारकें आप राजसिंहासन उपर बैठ गया, क्योंकि राज्य जो है, सो पराक्रमके आधीन है, तब कृतवीर्यकी तारा नामा गर्नवती राणी परशुरामके नयसें दौडकर किसी जगलमें तापसोंके आश्रममें गइ, तब तिन तापसोंनें दया करकें तिस राणीकों अपने मठके नौंहरेमें निधानकी तरें छिपाके रखा, तहां तिस राणीके चौदह स्वप्न सूचित पुत्र जन्मा तिसका नाम तिसकी माताने सूनूम रखा, क्षत्रिय जो जहां मिलता है, तहांही परशुरामका कुहाडा जाज्वलमान होजाता है, तब परशुराम परशुसे क्षत्रियोका शिर काट देता है, अन्यदा परशुराम जिहां छिपी हूइ राणी पुत्रसे रहती थी तिस आश्रममें आया तहां परशुरामका परशु जाज्वलमान हूआ, तब परशुरामनें तापसोंकों पूछा, क्या यहां कोइ क्षत्रिय है, तब तापसोने कहा हम गृहस्थावासमें क्षत्रिय थे, तब परशुरामनेंनी क्षत्रियोंकों छोडकें सात वार नि क्षत्रिय पृथ्वी करी, अर्थात् सात वार चढाइ करकें अपणी जाणमें कोइनी क्षत्रिय बाकी नहीं छोडा, जैसें अग्नि, पर्वत ऊपर घासकों नहीं छोडती है, तैसें परशुरामनेनी जो जो क्षत्रिय राजादि प्रसिद्ध थे, तिनोंकों मारकें तिनोंकी दाढासें एक थाल नरा, और परशुरामने एकदा निमित्तियेकों पूछा कि मेरामरणा किसके हाथसें होगा ? तब निमित्तियेनें कहा कि जो तैने दाढोंसे थाल नरा है, सो थाल जिसके देखनेसे दाढाकी क्षीर बन जायेगी, और इस सिंहासन ऊपर बैठके जो तिस क्षीरको खा

अग्निकी साक्षी करके रेणुकासे फिर विवाह करा, जब रेणुका ऋतुकालको प्राप्ति हुइ, तब जमदग्नि कहने लगा कि मै तेरे वास्ते चरु साधता हूं, चरु "होममें डालनेकी वस्तुओको कहते है" जिस्से सर्व ब्राह्मणोंमें प्रथम प्रताप वाला तेरेको पुत्र होवेगा, तब रेणुकानें कहा हस्तिना पुरमें कुरुवंशी अनतवीर्य राजाको मेरी बहिन व्याही है तिसके वास्ते तू क्षत्रिय चरुभी साध्य, अर्थात् मंत्रोंसे संस्कार करके सिद्ध कर पीछे जमदग्निने ब्राह्मण चरु तो अपणी नार्या वास्ते अरु क्षत्रिय चरु तिस नार्याकी बहिन वास्ते सिद्ध करा तव रेणुकाने मनमें विचार कराकि मै जैसे अटवीम हरिणीकी तरें रहती हूं, तो मेरा पुत्रभी वैसेही जगलोमें रहेगा, इस वास्तेमें क्षत्रिय चरु भक्षण करु, जिस्से मेरा पुत्र राजा होक इस जगल वाससें छुट जावे, औसा विचारकें क्षत्रिय चरु खा लीया और ब्राह्मण चरु अपनी बहिनको भक्षण कराया, तब तिन दोनोके दो पुत्र हूये तिसमे रेणुकाके तो राम नामक पुत्र हुये, और रेणुकाकी बहिनके कृतवीर्य पुत्र हूये, क्रमसें दोनों बडे हूये, राम तो आश्रममें पला, और कृतवीर्य राज महेलोंमें पला, राम तो क्षत्रीतेज अर्थात् क्षत्रिय पणेकी तेजी देखानें लगा अन्यदा एक विद्याधर अतिसार राग वाला तिस आश्रममें आ गया, अतिसारके प्रभावसें आकाशगामिनी विद्या भूल गया, तब तिस मांदे विद्याधरकी रामने औषध पथ्यादि करकें भाइकी तरें सेवा करी, पीछे तिस विद्याधरने तुष्टमान होके रामको परशुविद्या दीनी, तब रामभी सरकडेके वनमें जाकर तिस विद्याको सिद्ध करता हूआ, तिस विद्याके प्रभावसें राम परशुराम नाम करकें जगत्में प्रसिद्ध हूआ, एकदा अवसरमें अपना जमदग्नि पतिकों पूछकें रेणुका बडी उत्कंठासें अपणी बहिनके मिलने वास्ते हस्तिना पुरमें गइ, तहां रेणुकाकों अपणी शालि जान कर अनतवीर्य राजा हंसी मश्करी करने लागा, और रेणुकाका बहुत सुंदर रूप देख कर कामातुर होकें उसके साथ निरंकुश हो कर विषय सेवन करने लगा, तब अनतवीर्यके भोगसें रेणुकाके एक पुत्र जन्मा, पीछे जमदग्नि पुत्र सहित रेणुकाकों आश्रममें ल्याया क्योंकि पुरुष जब स्त्रीयोंका लुब्ध हो जाता है तब बहुलताइसें कोइभी दोष नहीं देखता है, जब परशुरामने अपनी माताकों पुत्र सहित देखा, तब क्रोधमें आकर परशुसें अपनी माताका और तिस लघ

विद्या देवी जो थी, सो सुनूमके पुण्य प्रनावसें परशुकों गेड के नाग गइ तव सुनूमनें शत्रुके अनावसें थालही उगके परशुरामकों मारा तिस थालका चक्र वन गया, तिस चक्रने परशुरामका मस्तक काट गेरा तिस चक्रसेंही सुनूम आठवां चक्रवर्त्ति हूआ

इस कथा उपर लोकोंनें जो यह कथा बना रक्खी, सो ठीक नहीं है,सो कथा कहते हैं जैसें कि परशुराम परशुसें क्षत्रियोंकों काटता हूआ राम चंद्रजीके पास पहूंचा और परशुसें रामचंद्रजीकों मारने लगा, तव राम चंद्रजीने नरमाइसें पग चपी करकें उसका तेज दूर लीया, तव परशुरा मका परशु हाथसे गिर पडा, और फिर न उठा सका यह श्रीरामचंद्र नहीं था, परंतु यहतो सुनूम नामा आठमा चक्रवर्त्ती था, जिसनें परशुरा मका काम तमाम कीया, इस कथाके वनानें वालोंनें परशुरामकी हीनता दूर करनेकों श्रीरामचंद्रजीका संबंध लिख दीया है, असली सुनूमचक्र वर्त्ति लिखने वालोंनें यहनी शोचा होगा एक अवतारनें दूसरे अव तारका अंस खींच लीया, इसमें परशुरामकी लघुता न होवेगी, परंतु यह नहीं शोचा होगा कि दोनों अवतार अज्ञानी वन जायेंगे जव परशुराम आपही अपने अंशकों कोहाडेसें काटने लगा, तव तिसमें और अधिक अ ज्ञानी कौन बनेगा ? जव सुनूम चक्रवर्त्ति आठमा हूआ, तव जैसे परशुरा मने सात वार नि क्षत्रिया पृथ्वी करी थी, तैसें सुनूमनें पिछले वैरसें इक वीश वार निर्ब्राह्मण पृथ्वी करी अपणी जाणमें कोइनी ब्राह्मण जीता नहीं गेडा, इसी वास्ते इन राजायोंकों ब्राह्मणोंनें दैत्य, राक्षसके नामसें पुस्तकोंमें लिख दीया है,यह दोनो मरकें अधोगतिमें गये ॥ इति परशु राम और सनूमचक्रवर्त्तिका संवध संपूर्ण ॥

यह सनूमचक्रवर्त्तिसे पहिला इसी अंतरेमें गठा पुरुषपुंमरीक वासुदेव तथा आनंद नामा वलदेव और वलि नामा प्रतिवासुदेव हूये,तथा सुनूमके पीठें इस अंतरेमें दत्त नामा सातमा वासुदेव तथा नंद नामा वलदेव और प्रल्हाद नामा प्रतिवासुदेव हूये

तिस पीठें मिथुला नगरीमें इक्ष्वाकुवंशी कुंन राजा हूआ, तिसकी प्रनावती राणी तिनकी पुत्री मल्लिनाथ नामा एगुणवीसमा तीर्थंकर हूआ,

तिस पीठें राजगृह नगरीमें हरिवंशी सुमित्र राजा हूआ, तिसकी

यगा, तिसके हाथसें तेरा मरण होवेगा, यह सुन कर परशुरामने दान शाला बनाइ, और दानशालाके आगे एक सिंहासन रखाया, तिस ऊपर क्षत्रियोंकी दाढोंवाला स्थाल रखवाया, अब इधर तापसोंके आश्रममें प्रतिदिन तापस सनूम बालककों लाड लडाते, खिलाते, अंगणके वृक्षकी तरें वृद्धि करते हूये रहते हे, इस अवसरमें मेघ नामा विद्याधर कोइ निमित्तियेको पूछने लगा कि मेरी जो पद्मश्री कन्या है,तिसका वर कौन होवेगा? तब तिस निमित्तियेने सुनूम वर बतलाया,और उसका सर्व वृत्तांतभी सुना दीया, तब मेघ विद्याधरने अपनी बेटी सुनूमको व्याही, और तिसकाही सेवक बन गया एकदा कूपके मेंडकको तरे और कही जानमें रहित हूआ होया सनूम अपनी माताको पूछनें लगा कि हे माता! इतनाही लोक है, कि जिसमें हम रहते हे, क्या इस्से अधिकभी हे? तब माता कहने लगी हे पुत्र! लोक तो अनंत हे, तिसमें मक्खिके पग जितनी जगामें यह आश्रम हे, इस लोकमें बहुत प्रसिद्ध हस्तिना पुर नगर है, तिस नगरीका राजा तेरा पिता कृतवीर्य था, परंतु परशुराम तेरें पिताकों मारकें हस्तिना पुरका राजा बन गया है, और तिस परशुरामने निःक्षत्रिय पृथ्वी कर दइ है, तिस परशुरामके भयसे हम यहां आश्रममें छिपे हूये बैठे हैं अपनी माताका यह कहना सुनके सनूम भौमकी तरें अर्थात् मंगलके तारेकी तरें लाल हूआ, और तहांसें निकलके सीधा हस्तिना पुरमें आया, तब लोकोंने पूछा कि तू ऐसा अत्यद्भुत सुंदर किसका बेटा हैं? तब कहा मैं क्षत्रियका पुत्र हूं तब लोकोंने कहा तू यहां ज्वलती आगमें क्यों आया? तब तिसने कहा मैं परशुरामकों मारनेके वास्ते आया हूं, तब लोकोने बालक जानके उसकी बात उपर कुछ ख्याल न करा अब सुनूम सिंहकी तरें उस पूर्वोक्त सिंहासन उपर जाके बैठा, और तहां देवताके विनियोगसे दाढाकी खीर बन गइ, तिसकों सुनूम खाने लग गया तब तहां जो रखवाले ब्राह्मण थे, वे सर्व सुनूमको मारणेकों उठे, तब मेघनाद विद्याधरने सब ब्राह्मणकों मार दीया तब कंपता हूआ और होठोंकों चाबता हूआ, क्रोधमें भरा हूआ, ऐसा परशुराम कोहाडा (परशु) लेके सनूमकों मारने आया परशुरामने सनूमके मारणेकों परशु चलाया वो परशु सुनूमतक पहूंचनेंसें पहिलाही आगके अंगारेकी तरें बुझ गया,

विद्या देवी जो थी, सो सुनूमके पुण्य प्रजावसें परशुकों छोड के नाग गइ तव सुनूमनें शत्रुके अजावसें थालही उगाके परशुरामकों मारा तिस थालका चक्र बन गया, तिस चक्रने परशुरामका मस्तक काट गेरा तिस चक्रसेही सुनूम आठवां चक्रवर्त्ति हूआ

इस कथा उपर लोकोंनें जो यह कथा बना रक्खी, सो ठीक नहीं है,सो कथा कहते हैं जैसें कि परशुराम परशुसें क्षत्रियोंकों काटता हूआ राम चंद्रजीके पास पहूचा और परशुसें रामचंद्रजीको मारने लगा, तव राम चंद्रजीने नरमाइसें पग चपी करकें उसका तेज दूर लीया, तव परशुरा मका परशु हाथसें गिर पडा, और फिर न उग सका यह श्रीरामचंद्र नहीं था, परंतु यहतो सुनूम नामा आठमा चक्रवर्त्ती था, जिसनें परशुरा मका काम तमाम कीया, इस कथाके बनानें वालोनें परशुरामकी हीनता दूर कनेरको श्रीरामचंद्रजीका संबंध लिख दीया है, असली सुनूमचक्र वर्त्ति लिखने वालोंनें यहजी शोचा होगा एक अवतारनें दूसरे अव तारका अस खींच लीया, इसमें परशुरामकी लघुता न होवेगी, परंतु यह नहीं शोचा होगा कि दोनो अवतार अज्ञानी बन जायेंगे जव परशुराम आपही अपने अंशकों कोहाडेसें काटने लगा, तव तिसमें और अधिक अ ज्ञानी कौन बनेगा ? जव सुनूम चक्रवर्त्ति आठमा हूआ, तव जैसें परशुरा मने सात वार नि क्षत्रिया पृथ्वी करी थी, तैसें सुनूमनें पिछले वैरसें इक्क वीश वार निर्ब्राह्मण पृथ्वी करी अपणी जाणमें कोइजी ब्राह्मण जीता नहीं छोडा, इसी वास्ते इन राजायोंकों ब्राह्मणोंनें दैत्य, राक्षसके नामसें पुस्तकोंमें लिख दीया है,यह दोनों मरकें अधोगतिमें गये ॥ इति परशु राम और सनूमचक्रवर्त्तिका संबध संपूर्ण ॥

यह सनूमचक्रवर्त्तिसें पहिला इसी अंतरेमें छठा पुरुषपुंडरीक वासुदेव तथा आनंद नामा बलदेव और बलि नामा प्रतिवासुदेव हूये,तथा सुनूमके पीछें इस अंतरेमें दत्त नामा सातमा वासुदेव तथा नंद नामा बलदेव और प्रल्हाद नामा प्रतिवासुदेव हूये

तिस पीछें मिथुला नगरीमें इक्ष्वाकुवंशी कुंज राजा हूआ, तिसकी प्रजावती राणी तिनकी पुत्री मल्लिनाथ नामा एगुणवीसमा तीर्थंकर हूआ,

तिस पीछें राजगृह नगरीमें हरिवंशी सुमित्र राजा हूआ, तिसकी

यगा, तिसके हाथसें तेरा मरणा होवेगा, यह सुन कर परशुरामने सव शाला वनाइ, और दानशालाके आगे एक सिंहासन रखाया, तिस ऊपर क्षत्रियोंकी दाढोंवाला स्थाल रखवाया, अब इधर तापसोंके आश्रममें प्रतिदिन तापस सुभूम बालककों लाड लडाते, खिलाते, अंगणके वृक्षकी तरें वृद्धि करते हूये रहते हे, इस अवसरमें मेघ नामा विद्याधर कोइ निमित्तियेको पूछने लगा कि मेरी जो पद्मश्री कन्या है,तिसका वर कौन होवेगा? तव तिस निमित्तियेने सुभूम वर वतलाया,और उसका सर्व वृत्तांतभी सुना दीया, तव मेघ विद्याधरने अपनी बेटी सुभूमकों व्याही, और तिसकाही सेवक वन गया एकदा कूपके मेंडककी तरे और कही जानेमें रहित हूआ होया सुभूम अपनी माताको पूछने लगा कि हे माता! इतनाही लोक है, कि जिसमें हम रहते हे, क्या इस्से अधिकभी हे? तव माता कहने लगी हे पुत्र! लोक तो अनंत है, तिसमें मक्खिके पग जितनी जगामें यह आश्रम है, इस लोकमें वहुत प्रसिद्ध हस्तिना पुर नगर है, तिस नगरीका राजा तेरा पिता कृतवीर्य था, परंतु परशुराम तेरे पिताकों मारके हस्तिना पुरका राजा बन गया है, और तिस परशुरामने निःक्षत्रिय पृथ्वी कर दइ है, तिस परशुरामके भयसे हम यहां आश्रममें छिपे हूये वैठे हैं अपनी माताका यह कहना सुनके सुभूम भौमकी तरें अर्थात् मंगलके तारेकी तरें लाल हूआ, और तहांसे निकलके सीधा हस्तिना पुरमें आया, तव लोकोंने पूछा कि तू ऐसा अत्यद्भुत सुंदर किसका बेटा हैं? तव कहा मैं क्षत्रियका पुत्र हू तव लोकोंने कहा तू यहां ज्वलती आगमें क्यों आया? तव तिसने कहा मैं परशुरामकों मारनेके वास्ते आया हूं, तव लोकोने वालक जानके उसकी बात उपर कुछ ख्याल न करा अब सुभूम सिंहकी तरें उस पूर्वोक्त सिंहासन उपर जाके बैठा, और तहां देवताके विनियोगसे दाढाकी क्षीर बन गइ, तिसकों सुभूम खाने लग गया तब तहां जो रखवाले ब्राह्मण थे, वे सर्व सुभूमको मारणेकों उठे, तव मेघनाद विद्याधरने सब ब्राह्मणकों मार दीया तब कंपता हूआ और होठोंकों चावता हूआ, क्रोधमें भरा हूआ, ऐसा परशुराम कोहाडा (परशु) लेके सुभूमकों मारने आया परशुरामने सुभूमके मारणेकों परशु चलाया वो परशु सुभूमतक पहूंचनेसें पहिलाही आगके अंगारेकी तरें बुझ गया,

ना चाहियें, क्योंकि राजासें उपरांत औसे अनाथ लिंगीयोंकी रक्षा करने वाला कौन है? तथा मेरा तुम कुछ करने समर्थ नहीं और वडे अभिमानी हो, तथा हमारे धर्मके निंदक हो इस वास्ते मेरे राजसें बाहिर हो जाउ, जो रहेगा, उसको में मार मारूंगा इसमें मुझे पापभी नहीं होगा, तब गुरुने आ कर मीठे वचनसें कहा कि हमारा यह कल्प नहीं जो गृहस्थके कार्यमें जाना, परंतु हम अभिमानसेही नहीं आये औसा मत समझना क्योंकि साधु समभावसें अपने धर्मकृत्यमें लगे रहते हैं, तब नमुचिवल अति शांतिवृत्तिवाले मुनियोको कठोर हो कर कहने लगा कि सात दिनके अंदर मेरे राजसें बाहिर हो जाउ जो रहेगा, सो मारा जायगा, यह सुनके सब साधु अपने तपोवनमें आये, और शोचने लगे कि अब क्या उपाय करीयें? तब एक साधु कहने लगा कि महापद्म चक्रवर्त्तिका वडा भाइ विष्णुमुनि लब्धिपात्र है, अर्थात् वडी शक्तिवाला मेरु पर्वत ऊपर है, तिसके कहनेसें यह नमुचिवल प्रशांत हो जावेगा, इस वास्ते कोइ चारण साधु उसको यहां बोला ल्यावे तो ठीक है तब एक साधु बोला कि मेरी वहां मेरु पर्वत पर जानेकी तो शक्ति है, परंतु पीछें आवनेकी शक्ति नहीं है तब गुरु कहने लगे कि तुमकों पीछा विष्णु मुनिही यहां ले आवेंगे, तुम जाउ तब वो साधु लब्धिसें एक क्षणमें तहां गया, और सर्व वृत्तांत सुनाया, तब विष्णु मुनि उस साधुकोभी साथ ले कर तत्काल गुरुके पास आकें वंदना करी, पीछें गुरुकी आज्ञासें एकिलाही राज सभामें आया यहां एक नमुचिबलके विना और सर्व सभाके लोकोनें उठके वंदना करी तब विष्णु मुनिने धर्मोपदेश देकर कहाकि निःसंगी साधुओंसे वैर करणा, यह महा नरकका कारण है, क्योंकि साधु किसीका कुछ विगाडते नहीं, और जगत् तो और वडे पुरुषोंकों नमस्कार करते हैं, किसी शास्त्रमें मुनि निंदे नहीं है, तो फेर यह आश्चर्य है,कि-तुच्छ, क्षणिक राजके पानेंसे अंधे अधम पुरुष अपणेकों साधुओंसें नमस्कार कराया चाहते हैं, और नमुचिवलकों कहा तू इस बुरे कामकों जानेदे जिस्सें साधु सब सुखसे रहे, और तू क्युं मत्सरमें मगन होके अपणा आप विगाडा चाहता है? साधु चौमासेमें विहार करते नहीं क्योंकि चौमासेमें जीवोंकी वहुत उत्पत्ति हो जाती है और सर्व जगे तेराही राज्य

पद्मावती राणी तिनका पुत्र मुनिसुव्रतनामा वीशमा तीर्थंकर हूआ, इ नोके समयमे महापद्म नामा नवमा चक्रवर्त्ती हूआ, तिसका संबंध त्रेसठ शलाका पुरुष चरित्रसें जान लेना परंतु तिसके नाइ विष्णु कुमारका थोडासा संबंध यहां लिखते है

हस्तिना पुर नगरमे पद्मोत्तर नामा राजा तिसकी ज्वालादेवी राणी तिनका वडा पुत्र विष्णुकुमार, और छोटा नाइ महापद्म हूआ, तिस अवसरमें अवती नगरीमें श्रीधर्मनामा राजेके मंत्रि नमुचि अपर नाम बल यह नामके मिथ्यादृष्टि ब्राह्मणने श्रीमुनिसुव्रत तीर्थंकरका शिष्य श्री सुव्रताचार्यके साथ अपनी मतका विवाद करा, वादमें हार गया तब रात्रिको तलवार लेके आचार्यको मारने चला, रस्तेमें पग थंनये यह स्वरूप राजानें सुनके अपनें राज्यसे वाहिर निकाल दीया तब नमुचि बल तहांसे चलके हस्तिना पुरमें युवराज महापद्मकी सेवा करने लगा किसी काममें तुष्ट मान होके महापद्मने तिसको यथेछा वर दीया पीछे पद्मोत्तर राजा और विष्णु कुमार दोनोंनें सुव्रत गुरुके पास दीक्षा ले कें पद्मोत्तर मोक्ष गया, और विष्णु कुमार तपके प्रभावसें महालब्धिमान् हूआ इस अवसरमें सुव्रताचार्य फेर हस्तिना पुरमें आये, तब नमुचिबलनें विचारा कि यह वैर लेनेका अवसर है, तब महापद्म चक्रवर्त्तीसें विनति करीकि —मैंनें जैसें वेदोमें कहा है,तैसें एक महायज्ञ करना है इस वास्ते मैं पूर्वोक्त वर मांगना चाहाता हूं, तब महापद्मने कहा मांग तब नमुचिने कहा मुझे कितनेक दिन तक आपनां सर्व राज दे देवो, यह सुनकर महापद्मनें उसके कहे दिन तक सर्व राज उसें दे कर आप अपने अंतेउरोमें चला गया, तब नमुचिबलने नगरसें निकलके यज्ञ वास्ते यज्ञ पाडा बनाया, उसमें दीक्षा ले के आसन उपर बैठा तब जैनमतके साधु छोडके दूसरे सर्व पाखंडी भिक्षु और गृहस्थ भेटना ले के आये भेट दे के सर्वोंने नमस्कार करा, तब नमुचिबलने पूछा कि नहीं आया होये, औसा तो कोइ रहा नहीं ? तब लोकोनें कहा कि जैनमती सुव्रताचार्य वर्जके सर्व दर्शनी आ गये हैं, तब नमुचिबलने यह छिद्र प्रगट करकें और क्रोधमें भरके सिपाही बोलानेंकों भेजे, और कहला भेजा कि राजा चाहो कैसाही हो, तो भी सर्वको माननें योग्य है, उसमेंभी साधुओको तो विशेष करकें मान

नां चाहियें, क्योंकि राजासें उपरांत असे अनाथ लिंगीयोंकी रक्षा करने वाला कौन है ? तथा मेरा तुम कुछ करने समर्थ नहीं और बडे अभिमानी हो, तथा हमारे धर्मके निंदक हो इस वास्ते मेरे राजसें बाहिर हो जाउ, जो रहेगा, उसको में मार डालूंगा इसमें मुझे पापभी नहीं होगा, तब गुरुने आ कर मीठे वचनसें कहा कि हमारा यह कल्प नहीं जो गृहस्थके कार्यमें जानां, परंतु हम अभिमानसेंही नहीं आये असा मत समजना क्योंकि साधु समभावसें अपने धर्मकृत्यमें लगे रहते है, तब नमुचिवल अति शांतिवृत्तिवाले मुनियोको कठोर हो कर कहने लगा कि सात दिनके अंदर मेरे राजसें बाहिर हो जाउ जो रहेगा, सो मारा जायगा, यह सुनके सब साधु अपने तपोवनमें आये, और शोचने लगे कि अब क्या उपाय करीयें ? तब एक साधु कहने लगा कि महापद्म चक्रवर्त्तिका बडा भाइ विष्णुमुनि लब्धिपात्र है, अर्थात् बडी शक्तिवाला मेरु पर्वत ऊपर है, तिसके कहनेसे यह नमुचिवल प्रशांत हो जावेगा, इस वास्ते कोइ चारण साधु उसको यहां बोला ल्यावे तो ठीक है तब एक साधु बोला कि मेरी वहां मेरु पर्वत पर जानेकी तो शक्ति है, परंतु पीछें आवनेकी शक्ति नहीं है तब गुरु कहने लगे कि तुमकों पीछा विष्णु मुनिही यहां ले आवेंगे, तुम जाउ तब वो साधु लब्धिसें एक क्षणमें तहां गया, और सर्व वृत्तांत सुनाया, तब विष्णु मुनि उस साधुकोभी साथ ले कर तत्काल गुरुके पास आके वंदना करी, पीछें गुरुकी आज्ञासें एकिलाही राज सभामें आया उहां एक नमुचिवलके विना और सर्व सभाके लोकोनें उठके वंदना करी तब विष्णु मुनिने धर्मोपदेश देकर कहाकि निःसंगी साधुओंसें वैर करणां, यह महा नरकका कारण है, क्योकि साधु किसीका कुछ बिगाडते नहीं, और जगत् तो और बडे पुरुषोंकों नमस्कार करते हैं, किसी शास्त्रमें मुनि निंदे नहीं है, तो फेर यह आश्चर्य है,कि –तुच्छ, क्षणिक राजके पानेसें अंधे अधम पुरुष अपणेकों साधुओंसें नमस्कार कराया चाहते हैं, और नमुचिवलकों कहा तू इस बुरे कामकों जानेदे जिस्से साधु सब सुखसें रहे, और तू क्यु मत्सरमें मगन होके अपणा आप बिगाडा चाहता है ? साधु चौमासेमें विहार करते नहीं क्योंकि चौमासेमें जीवोंकी बहुत उत्पत्ति हो जाती है और सर्व जगे तेराही राज्य

दे, तो सर्व साधु सात दिनमे कहां चले जाय? तब नमुचि बल कुमावसी तरें होकर बोला कि बहुत कहनेसे क्या है? पांच दिनसें उपरांत जो कोइ तुमारा साधु मेरे राज्यमे रहेगा, तो मै उसकों चोरकी तरे बध करुंगा, और तू हमारे माननें योग्य है, इसी वास्ते तू जाकर साधुओंकों कहदे जो कि जीवनां चाहते हो तो नमुचिके राज्यसें बाहिर चले जावें क्योंकि राज्य ब्राह्मणका है, और तेरे मान्यके रहने वास्ते तीन कदम अर्थात् तीन डिंग जगा देता हूं, तिस्सें बाहिर किसी साधुको देखुंगा तिसका शिरछेद करुंगा, तब विष्णुमुनिने विचारा कि यह साम अर्थात् मीठे वचनोंके योग्य नहीं यह तो बडा पापी साधुओंका घातक है, इसकी जलदी उखाडनी चाहिये तब विष्णुमुनिने कोपमें आ कर वैक्रिय लब्धिसे लाख योजनकी देह बनाइ, एक डिंगसेंतो भरतक्षेत्रादि मापा और दूसरी डिंग पूर्वापर समुद्र उपर धरी और तीसरी डिंग नमुचिबलके शिर ऊपर रखके सिंहासनसें हेठ गेरके धरतीमें धसोड दीया नमुचि मरके नरकमें पहुंच गया और विष्णुमुनिकों देवताओंनें कानोमे मधुर गीत सुनाकर शांत करा, तब शरीरकों संकोचके गुरोंके पास जाकर आलोचना करी, पापका प्रायश्चित्त लेकर विहार कर गया, जप, तप, कर संयम पालके मोक्ष गया

इस कथासे असा मालूम होता है कि ब्राह्मणोने पुराणोंमें जो लिखा है, कि विष्णु भगवान्नें वामन रूप करके यज्ञ करते बलिराजाकों छला, सो यही विष्णुमुनि अरु नमुचिकी कथाकों बिगाडके अपने मतके अनुसार औरकी और कथा बना लीनी है, क्योंकि श्रीभगवान्कों क्या गरज थी, कि जो धर्मी बलिराजा यज्ञ करने वालेके साथ छल करता? यह तो निकेवल बुद्धि हीनोका काम है, जो अपनी बेटीयोंसें तथा परस्त्रीयोंसें विषय सेवन करा कहनां, तथा भगवान्ने झूठ बोला, औरोंसे बोलाया, चोरी करी, औरोंसें कुशील भगवान्ने सेवन करा, छलसें मारा, कपट करा, इत्यादि कामतो नीचजनोंके करनेके हैं, श्री वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर यह काम कभीभी नहीं करता तो और करने वालेकों परमेश्वर भूलकेभी न माननां चाहियें ॥ इति विष्णुमुनि तथा नमुचिबलका संबंध समाप्त ॥

वीसमें और इक्कवीसमें तीर्थंकरके अंतरमें श्री अयोध्या नगरीके दशरथराजाकी कौशल्या राणीका पद्म (रामचंद्र) नामा पुत्र हूवा, सो आ

ठमां वलदेव श्रौर दशरथराजाकी सुमित्रा राणीका पुत्र नारायण श्र
नाम लक्ष्मण सो श्रावमां वासुदेव हूश्रा जिनोंका प्रतिशत्रु रावण
तिवसुदेव लंकाका राजा हूश्रा सो जगतमें प्रसिद्ध है इन तीनोंका
याथै स्वरूप पद्मचरित्रसें जान लेना, परतु लौकिक रामायणमें जो रावए
दश शिर लिखे है,सो ठीक नहीं है,क्योंकि मनुष्यके स्वाभाविकही दश शि
कदापि नहीं हो शक्ते हैं, पद्मचरित प्रथमानुयोग शास्त्रमें लिखा है कि
वणके वडे वडेरोंकी परंपरायसें एक वडा नव माणिकका हार चला श्रा
था,सो रावणने बालावस्थासें श्रपने गलेमें पहिर लीये थे श्रौर वे नौ
माणक बहुत वडे थे, सो चार माणक एक पासें स्कधके ऊपर हार
जडे हूये थे, श्रौर पांच माणक दूसरे पासे जडे थे, दोनों स्कधो ऊ
नव माणकमें नवमुख दीखते थे, श्रौर एक रावणका श्रसली मुख थ
इस वास्ते दशमुख वाला रावण कहा जाता है, तथा रावणके सम
सेही हिमालयके पहाडमें वद्रीनाथका तीर्थ उत्पन्न हूश्रा है, तिसक
उत्पत्ति जैनमतके शास्त्रोंसे श्रैसे जानी जाती है कि –यह श्रसली पा
नाथकी मूर्त्तिथी, तिसकाही नाम वद्रीनाथ रक्खा गया है इसका पूरा स
रूप गद्यवद्ध पार्श्वपुरानसें जान लेना

तिस पीछें मिथुलानगरीमें इक्ष्वाकुवशी विजयसेनराजाकी विप्रा राए
तिनका पुत्र श्रीनमिनाथ नामा इक्कवीसमा तीर्थंकर हूश्रा तिनोके वारें ह
रिषेणनामा दशमां चक्रवर्त्ति हूश्रा है, तथा यह इक्कवीसमें श्रौर बावीसमे
तीर्थंकरके श्रतरेमें इग्यारहमां जयनामा चक्रवर्त्ती हूश्रा

तिस पीछें सौरीपुर नगरमें हरिवशी समुद्रविजय राजा तिसकी शिवा देवि
राणी तिनका पुत्र श्रीश्ररिष्ट नेमिनामा बावीशमा तीर्थंकर हूश्रा तिनोके वार
तिनोके चाचेके वेटे नवमे कृष्णवासुदेव श्रौर राम बलदेव (बलभद्रबल
देव) इनका प्रतिशत्रु जरासिंधु प्रतिवासुदेव हूश्रा, तिसमें कृष्ण श्ररु बल
भद्र तो जगतमें बहुत प्रसिद्ध हैं क्योंकि लोक श्रीकृष्ण वासुदेवकों साक्षात्
ईश्वर तथा ईश्वरका श्रवतार जगत्काकर्त्ता मानते हैं, यह बात कृष्ण वा
सुदेवके जीते हूयें नहीं हूइ, किंतु उनके मरे पीछें लोक कृष्ण वासुदेवकों
ईश्वरावतार मानने लगे हैं, तिसका हेतु त्रेसठ सलाका पुरुष चरित्रमें श्रैसें
लिखाहै कि –जव कृष्ण वासुदेवनें कुसवी वनमें शरीर छोडा तव काल क

है, तो सर्व साधु सात दिनमें कहा चले जाय? तब नमुचि बल कुकाष्ठकी तरें होकर बोला कि बहुत कहनेंसे क्या है? पांच दिनसे उपरांत जो कोइ तुमारा साधु मेरे राज्यमें रहेगा, तो मै उसकों चोरकी तरे बध करुगा, और तू हमारे मानने योग्य है, इसी वास्ते तू जाकर साधुओंकों कहदे जो कि जीवना चाहते हो तो नमुचिके राज्यसे बाहिर चले जाउ क्योंकि राज्य ब्राह्मणका है, और तेरे मान्यके रहने वास्ते तीन कदम अर्थात् तीन ऊिग जगा देता हू, तिस्से बाहिर किसी साधुको देखूगा तिसका शिरछेद करुगा, तब विष्णुमुनिने विचारा कि यह साम अर्थात् मीठे वचनोंके योग्य नहीं यह तो बडा पापी साधुओंका घातक है, इसकी जडही उखाडनी चाहिये तब विष्णुमुनिने कोपमें आ कर वैक्रिय लब्धिसे लाख योजनकी देह बनाइ, एक ऊिगसेतो नरतक्षेत्रादि मापा और दूसरी ऊिग पूर्वापर समुद्र उपर धरी और तीसरी ऊिग नमुचिबलके शिर ऊपर रखके सिंहासनसें हेठ गेरके धरतीमें घसोड दीया नमुचि मरके नरकमें पहुच गया और विष्णुमुनिकों देवताओंनें कानोमें मधुर गीत सुनाकर शांत करा, तब शरीरकों सकोचके गुरोंके पास जाकर आलोचना करी, पापका प्रायश्चित्त लेकर विहार कर गया, जप, तप, कर सयम पालके मोक्षगया

इस कथासें ऐसा मालूम होता है कि ब्राह्मणोने पुराणोंमें जो लिखा है, कि विष्णु नगवान्नें वामन रूप करके यज्ञ करते बलिराजाकों उला, सो यही विष्णुमुनि अरु नमुचिकी कथाकों बिगाडके अपने मतके अनुसार औरकी और कथा बना लीनी है, क्योंकि श्रीनगवान्कों क्या गरज थी, कि जो धर्मी बलिराजा यज्ञ करने वालेके साथ उल करता? यह तो नि केवल बुद्धि हीनोका काम है, जो अपनी बेटीयोंसें तथा परस्त्रीयोंसें विषय सेवन करा कहना, तथा नगवान्ने झूठ बोला, औरोंसे बोलाया, चोरी करी, औरोंसें कुशील नगवान्ने सेवन करा, उलसें मारा, कपट करा, इत्यादि कामतो नीचजनोंके करनेके हैं, श्री वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर यह काम कन्नीनी नहीं करता तो और करने वालेकों परमेश्वर नूलकेनी न माननां चाहियें ॥ इति विष्णुमुनि तथा नमुचिबलका संबध समाप्त ॥

वीसमें और इकवीसमें तीर्थंकरके अतरमें श्री अयोध्या नगरीके दशरथराजाकी कौशल्या राणीका पद्म (रामचंद्र) नामा पुत्र हूवा, सो आ

ठमा बलदेव और दशरथराजाकी सुमित्रा राणीका पुत्र नारायण अपर नाम लक्ष्मण सो आठमां वासुदेव हूआ जिनोंका प्रतिशत्रु रावण प्रतिवसुदेव लंकाका राजा हूआ सो जगतमें प्रसिद्ध है इन तीनोंका यथार्थ स्वरूप पद्मचरित्रसे जान लेना, परंतु लौकिक रामायणमें जो रावणके दश शिर लिखे हैं,सो ठीक नहीं है,क्योंकि मनुष्यके स्वाभाविकही दश शिर कदापि नहीं हो शक्ते हैं, पद्मचरित प्रथमानुयोग शास्त्रमे लिखा है कि रावणके वडे वडेरोंकी परंपरायसें एक वडा नव माणिकका हार चला आता था,सो रावणने बालावस्थासे अपने गलेमें पहिर लीये थे और वे नौही माणक बहुत वडे थे, सो चार माणक एक पासें स्कधके ऊपर हारमें जडे हूये थे, और पांच माणक दूसरे पासे जडे थे, दोनों स्कधो उपर नव माणकमें नवमुख दीखते थे, और एक रावणका असली मुख था इस वास्ते दशमुख वाला रावण कहा जाता है, तथा रावणके समयसेंही हिमालयके पहाडमें वद्रीनाथका तीर्थ उत्पन्न हूआ है, तिसकी उत्पत्ति जैनमतके शास्त्रोंसे ऐसे जानी जाती है कि –यह असली पार्श्वनाथकी मूर्त्तिथी, तिसकाही नाम वद्रीनाथ रक्का गया है इसका पूरा स्वरूप गद्यवद्ध पार्श्वपुरानसे जान लेना

तिस पीछें मिथुलानगरीमें इक्ष्वाकुवंशी विजयसेनराजाकी विप्रा राणी तिनका पुत्र श्रीनमिनाथ नामा इक्कवीसमा तीर्थंकर हूआ तिनोके वारें हरिषेणनामा दशमां चक्रवर्त्ति हूआ है, तथा यह इक्कवीसमें और बावीसमें तीर्थंकरके अंतरेमें इग्यारहमां जयनामा चक्रवर्त्ती हूआ

तिस पीछें सौरीपुर नगरमें हरिवंशी समुद्रविजय राजा तिसकी शिवा देवी राणी तिनका पुत्र श्रीअरिष्ट नेमिनामा वावीशमा तीर्थंकर हूआ तिनोके वारें तिनोके चाचेके वेटे नवमे कृष्णवासुदेव और राम बलदेव (बलभद्रबलदेव) इनका प्रतिशत्रु जरासिंधु प्रतिवासुदेव हूआ, तिसमें कृष्ण अरु बलभद्र तो जगतमें बहुत प्रसिद्ध हैं क्योंकि लोक श्रीकृष्ण वासुदेवकों साक्षात् ईश्वर तथा ईश्वरका अवतार जगत्काकर्त्ता मानते हैं, यह वात कृष्ण वासुदेवके जीते हूयें नहीं हुइ, किंतु उनके मरे पीछें लोक कृष्ण वासुदेवकों ईश्वरावतार मानने लगे हैं, तिसका हेतु त्रेसठ सलाका पुरुष चरित्रमें ऐसें लिखाहै कि –जब कृष्ण वासुदेवनें कुसंबी वनमें शरीर छोडा तब काल क

रकें वालुप्रना पृथ्वी (पातालमें) गये और बलनद्रजी एक सौ वर्ष जैनदीक्ष पालके पाचमे ब्रह्मदेवलोकमें गये वहा अवधिज्ञान से अपनें नाइ श्रीकृष्ण कों पातालमें तीसरी पृथ्वीमें देखा,तब नाइके स्नेहसे वैक्रिय शरीर बनाकर श्री कृष्णके पास पहूचा और श्रीकृष्णसे आलिंगन करके कहा कि मै बलन द्रनामा तेरे पिछले जन्मका नाई हूं, मै काल करकें पाचमें ब्रह्मदेवलोकमें उत्पन्न हूआ हू, और तेरे स्नेहसे यहा तेरे पास मिलनेको आया हू सो मैं तेरे सुख वास्ते क्या काम करु ? इतना कहे कर जब बलनद्रजीनें आ पनें हाथों ऊपर कृष्णजीको लीया, तब कृष्णका शरीर पारेकी तरें हा थसें छूरके नूमि ऊपर गिर पडा, और मिलकर फेर सपूर्ण शरीर पूर्ववत् हो गया इसीतरें प्रथम आलिंगन करनेंसे फेर विरतात कहनेंसें और हाथों ऊपर उठानेसें कृष्णनेंनी जान लीयाकि यह मेरे पूर्वनवका अति वत्सल बलनद्र नाई है तब कृष्णजीने सभ्रमसे उठके नमस्कार करा तब बलनद्रजीनें कहा हे भ्राता ! जो श्रीनेमिनाथने कहायाकि यह विषय सुख महाडुखदाई है सो प्रत्यक्ष तुमकों प्राप्ति हूआ और तुजकर्मनिर्यंत्रितकों मैं स्वर्गमेंनी नही लेजा सक्ता हूं परंतु तेरे स्नेहसे तेरे पासमैं रहा चाहता हू तब कृष्णने कहा हे भ्राता ! तेरे रहनेंसेंनी तो मैनें करे हूये कर्मका फल अवश्यमेव नोगनाही है परंतु मुजकों इस डुखसें वो डुख बहुत अधिक है जो में द्वारिका और सकल परिवारके दग्ध होजानेसें एकला कुसंबी वनमें जरा कुमारके तीरसें मरा और मेरे शत्रुओंकों सुख तथा मेरे मित्रोंकों डुख हूया जगतमें सर्व यडुवशी बदनाम हूये इस वास्ते हे भ्राता ! तू नरतखण्डमें जा कर चक्र,शारंग, शख, गदाका धरने वाला और पीत (पीले) वस्त्र वाला, तथा गुरुड ध्वजा वाला, ऐसा मेरा रूप बना कर विमानमें बैठ कर लोकोंकों दिखला तथा नीलवस्त्र और तालध्वज अरु हल, मूशल, शस्त्रका धरनेंवाला ऐसा तू विमानमें बैठके अपना रूप सर्वजगें दिखलाकर लोकोंकों कहोकि राम कृष्ण दोनो हम अविनाशी पुरुष है, और स्वेछा विहारी हैं, जब लोकोंकों यह सत्य प्रतीत हो जा वेगा तब हमारा सर्व अपयश दूर हो जावेगा यह श्रीकृष्णजीका कहना सर्व श्रीबलनद्रजीने स्वीकार कर लीया, और नरतखण्डमें आकर कृष्ण ब लनद्र दोनोका रूप करकें सर्व जगे विमानारूढ दिख लाया और ऐसे क

हने लागा कि नो लोको ! तुम कृष्ण बलन्नद्र अर्थात् हमारे दोनोकी सुंदर प्रतिमा बनाकर ईश्वरकी बुद्धिसे बडे आदरसें पूजो क्योंकि हमही जगतके रचनेवाले और स्थिति संहारके कर्त्ता हैं और हम अपणी इछासें स्वर्ग (वैकुंठसें) यहा चले आते है, और पीछें स्वर्गमें अर्थात् वैकुंठमें अपनी इछासें चले जाता हैं और द्वारका हमनेही रची थी तथा हमनेही कंसका संहार करा है, क्यों कि जब हम, वैकुंठमे जानेकी इछा करते हैं, तब सर्व अपना वंश द्वारिका सहित दग्ध करके चले जाते हैं, हमारे उपरांत और कोई अन्य कर्त्ता, हर्त्ता नहीं है ऐसा बलन्नद्रजीका कहना सुननेसें सर्व ग्राम (नगर) के लोकोंने कृष्ण बलन्नद्रजोकी प्रतिमा सर्व जगे बना कर पूजी तब प्रतिमा पूजनेवालोंकों बहुत सुख धनादिसें बलन्नद्रने आनंदित करा, इस वास्ते बहुत लोक हरिन्नक्त हो गये, जबसें नक्त हूये तबसें पुस्तकोमें कृष्णजीकों पूर्णब्रह्म परमात्मा ईश्वरादि नामोसें लिखा, क्याजाने जबसे बलन्नद्रजीनें कृष्णकी पूजा कराई, तबसेही लोकोने कृष्णकोंही ईश्वरावतार माना हो ? और इस समयको पांच हजार वर्ष हूये हों, जिस्से लौकीकमें कृष्ण हूयेकों पांच हजार वर्ष कहते हैं

बाइसमें अरु तेइसमें तीर्थंकरके अंतरेमें बारमा ब्रह्मदत्तनामा चक्रवर्ती हूआ, तिस पीछे वाणारसी नगरीमें इक्ष्वाकुवंशी अश्वसेन राजा हूआ तिसकी वामादेवी राणी तिनका पुत्र श्रीपार्श्वनाथ नामा तेइसमा तीर्थंकर हूआ तिस पीछें क्षत्रियकुंम नामा नगरमें इक्ष्वाकुवंशी दूसरा नाम सूर्यवंशी सिद्धार्थ नामा राजा हूआ तिसकी त्रिसला नामा राणी तिनका पुत्र श्रीवर्द्धमान महावीरनामा चौवीशमा चरम छेला तीर्थंकर हूआ, आज काल जो जैनमत नरत खंममें प्रचलित है, सो इसही श्रीमहावीरका शासन अर्थात् उनहीके कहे उपदेशसें चलता है, और जो जैनमतके शास्त्र हैं, वे सर्व इसही श्रीमहावीर नगवत के उपदेशानुसार रचे गये है यह श्रीमहावीर नगवतका संपूर्ण वृत्तांत देखना होवे, तदा आवश्यक सूत्रवृत्ति कल्पसूत्र वृत्ति तथा श्रीमहावीर चरितादि ग्रंथोंसें जान लेना

इति श्रीतपगछीय मुनिश्रीगणि मणिविजय तछिष्य मुनिबुद्धिविजय तछिष्य मुनि आत्माराम आनंदविजय विरचिते जैनतत्त्वादर्शे श्रीऋषनादि महावीर पर्यंत पूर्ववृत्तांत निरूपण नाम एकादश परिछेद संपूर्ण ॥ ११ ॥

अथ द्वादशः परिछेद प्रारंभ. ॥

यह परिछेदमें श्रीमहावीर नगवानसे लेकर आजकाल पर्यंत कितनाक वृत्तांत लिखते हैं श्रीमहावीर नगवतके इग्यारह शिष्य मुख्य, और सर्व साधुओंसें वडे हूये, तिनका नाम कहते हैं १ इंद्रिनूति, अर्थात् गौतम स्वामी, २ अग्निनूति, ३ वायुनूति, ४ व्यक्तस्वामी, ५ सुधर्मस्वामी, ६ मण्डिकपुत्र, ७ मौर्यपुत्र, ८ अवकंपित, ए अचलभ्राता, १० मैतार्य, ११ प्रनास, यह इग्यारह वडे शिष्य श्रीमहावीर नगवतके हूए और सर्व शिष्य तो चौदह हजार साधु हूये, परंतु चौदह हजारसें कहेनी अधिक नही हूये, और साध्वी छत्तीस हजार हूइ, तथा श्रेणिक, उदायन, कोणक, उदायी, वत्सदेशका उदायन, चेटक, नवमल्लिक क्षत्रियजातिके, नवलेछिक क्षत्रिय जातिके, उद्यनका राजा चंड्प्रद्योत, अमलकल्पा नगरीका स्वेत नामे राजा, पोलासपुरका विजय राजा, क्षत्रिय कुंमका नंदिवर्द्धन राजा, वीतनय पट्टनका उदायनराजा, दशार्णपुरका दशार्णनद्र राजा, पावापुरीका हस्तिपाल राजा, इत्यादि अनेक राजे श्रीमहावीर नगवतके सेवक थे अर्थात् श्रावक थे, और आनंद, कामदेव, सख पुष्कली प्रमुख श्रावक, और जयंती, रेवती, सुलसा प्रमुख श्राविका तो लाखोंही थे, तिन श्रावकोंमें एक सत्यकी नामा अविरति, सम्यग्दृष्टि श्रावक हूआ है, तिसका संबंध आवश्यक शास्त्रमें इसी तरें लिखा है सो कहते हैं –

विशालानगरीके चेटक राजाकी छोटी पुत्री सुज्येष्टानामा कुमारी कन्यानें दीक्षा लीनी थी अर्थात् जैनमतकी साध्वी हो गइ थी, वो किसी अवसरमें उपाश्रयके अंदर सूर्यके सन्मुख आतापना लेती थी, इस अवसरमें पेढाल नामा परिव्राजक अर्थात् सन्यासी विद्या सिद्ध था, सो आपनी विद्यादेनेके वास्ते पात्र पुरुषकों देखता था, और उसका विचार अैसाथा कि – यदि ब्रह्मचारणीका पुत्र होवे, तो सुनाथ होवेगा तव तिस सन्यासीने रात्रिमें सुज्येष्टाकों नग्न पणे शीतकी आतपना लेतीकों देखा, तव धुंध विद्यासे अंधकारमें विमोह अर्थात् अचेत करके उसकी योनिमें अपने वीर्यका संचार करा,तिस अवसरमें सुज्येष्टाको ऋतुधर्म आ गया था,इस वास्ते गर्न रह गया तव साथकी साध्वीयोंमें गर्नकी चर्चा होने लगी, पीछें अति

शय ज्ञानीने कहा कि सुज्येष्ठानें विषयन्नोग किसीसें नहीं करा, अरु तिस विद्याधरका सर्ववृत्तांत कहा, तब सर्वकी शंका दूर हो गई पीछें समयमें सुज्येष्ठाके पुत्र जन्मा, तब तिस लडकेको श्रावकनें अपने घरमें ले जाकें पाला, तिसका नाम सत्यकी रक्खा, एकदा समय सत्यकी साध्वीयोंके साथ श्रीमहावीर नगवानके समवसरणमें गया, तिस अवसरमें एक कालसंदीपक नामा विद्याधर, श्रीमहावीरकों वंदना करकें पूछने लगा कि मुझकों किससें नय है, तब नगवंत श्रीमहावीर स्वामीने कहा कि, यह जो सत्यकी नामा लडका है, इससें तुझकों नय है तब कालसंदीपक सत्यकीके पास गया, अवज्ञासें कहने लगा कि अरे तू मुझकों मारेगा? असें कह कर जोरावरीसे सत्यकीकों अपने पगोमे गेरा तब तिसके पिता पेढालने सत्यकीका पालन करा, और अपणी सर्व विद्यायोंकों सत्यकीकों दे दई, सत्यकी महारोहिणी विद्याका साधन कर रहा था, इस सत्यकीका यह सातमा नव रोहिणीविद्या साधनमे लग रहा था, रोहिणी विद्याने इस सत्यकी के जीवकों पांच नवमें तो जानसे मार गेरा और छठे नवमें छे महीने शेष आयुके रहनेंसें सत्यकीके जीवने विद्याकी इछा न करी परंतु इस सातमें नवमें तो तिस रोहिणी विद्याकों साधनेका आरंन करा तिसकी विधि लिखते है

अनाथ मृतक मनुष्यकों चितामें जलावे और गीले (आले) चमडेकों शरीर उपर लपेटके पगके वामें अगूठेसें खडा होकर जहां लग वो चिताका काष्ठ जले तहां लग जाप करे इस विधिसें सत्यकी विद्या साध रहा था, उहां काल संदीपक विद्याधरनी आ गया, और चितामें काष्ठ प्रक्षेप करकें सात दिन रात्री तक अग्नि बुझने न देनी, तब सत्यकीका सत्य देखकें रोहिणी देवी आप प्रगट हो कर कालसंदीपककों कहने लगी कि मत विघ्न कर – क्योंकि मैं इस सत्यकीके सिद्ध होने वाली हूं, इस वास्ते मैं सिद्ध हो गइ हू, तब रोहिणी देवीने सत्यकीकों कहा, कि मैं तेरे शरीरमें किधरसें प्रवेश करु? सत्यकीने कहा मेरे मस्तकमें हो कर प्रवेश कर, तब रोहिणीने मस्तकमें हो कर प्रवेश करा, तिस्से मस्तकमें खडा पड गया तब देवीने तुष्टमान हो कर तिस मस्तककी जगों तीसरे नेत्रका आकार बना दीया तबतो सत्यकी तीन नेत्रवाला प्रसिद्ध हूआ पीछें सत्यकीने शोचाकि पेढालने मेरी माता राजाकी कुमारी बेटीकों बिगडा है, असा

शोच कर अपने पिता पेढालकों मार दीया, तब लोकोंने सत्यकीका नाम रुद्र (नयानक) रख दीया, क्योंकि जिसने अपना पिता मार दीया उससें और नयानक कौन है ? पीछें सत्यकीने विचारा कि कालसदीपक मेरा वैरी कहां है ? जब सुना कि कालसदीपक अमुक जगामें है, तब सत्यकी तिसके पास पहुंचा, फेर कालसदीपक विद्याधर तहांसें नाग निकला तोनी सत्यकी तिसके पीछें लगा, तब कालसदीपक देव ऊपर नागता रहा, परंतु सत्यकीने तिसका पीछा न छोडा, फेर कालसदीपकने सत्यकीके छुलाने वास्ते तीन नगर बनाये, तब सत्यकीने विद्यासें तीनो नगरनी जलादीयें तब कालसंदीपक दौडके लवणसमुद्रके पाताल कलशमें चला गया, सत्यकीने तहां जा कर कालसदीपककों मार माला, तिस पीछे सत्यकी विद्याधर चक्रवर्त्ति हूआ, तीन सध्यामें सर्व तीर्थकरोंकों वंदना करकें नाटक करता हूआ, तब इंद्रने सत्यकीका नाम महेश्वर दीया, तिस महेश्वरके दो शिष्य हूये, एक नंदीश्वर, दूसरा नांदीया, तिनमें नांदीया तो विद्यासें बैलका रूप बना लेता था, और तिस ऊपर चढके महेश्वर अनेक क्रीडा कुतूहल करता था, महेश्वर श्रीमहावीर नगवतका अविरति सम्यग्दृष्टि श्रावक था, परंतु बडा नारी कामीथा और ब्राह्मणोंके साथ उसका बडा नारी वैर हो गया, तब विद्याके बलसें सैकडों ब्रह्मणोंकी कुमारी कन्यायोंकों विषय सेवन करकें बिगाडा, और लोक तथा राजा प्रमुखकी वहु बेटीयोंसें काम क्रीडा करने लगा, परंतु उसकी विद्यायोंके नयसें उसे कोइ कुछ कहता नहीं था, जेकर कोइ मनानी करता था, सो मारा जाताथा, महेश्वरने विद्यासें एक पुष्पक नामा विमान बनाया तिसमें बैठके जहां इछा होती तहां चला जाता था, ऐसें उसका काल व्यतीत होता था, एकदा प्रस्तावे महेश्वर उज्जयन नगरमें गया, तहां चंद प्रद्योतकी एक शिवा नामा राणीकों छोडके दूसरी सर्व राणीयोंके साथ विषय नोग करा, औरनी सर्वलोकोंके वहु वेटीयोंकों बिगाडना शुरु करा, तब चंडप्रद्योतकों बडी चिंता हूइ, अरु विचाराकी कोइ ऐसा उपाय करीयें कि जिस्सें इस महेश्वरका विनाश (मरणा) हो जावे — परंतु तिसकी विद्याके आगें किसीका कोइ उपाय नहीं चलताथा, पीछें तिस उय्यन नगरमें एक उमा नामा वेश्या बडी रूपवत, रहतीथी, उसका यह कौलथा कि जो कोइ इतना धन

मुझे देवे, सो मेरेसें नोग करे, जो कोइ उसके कहे मूजब धन देता था सो उसके पास जाता था, एक दिन महेश्वर उस वेश्याके घर गया, तब तिस उमावेश्याने महेश्वरके सन्मुख दो फूल करे एकविकशा हूआ दूसरा मिचा हूआ, तब महेश्वरने विकशे फूल (खिडे फूलकी) तर्फ हाथ पसारा तब उमावेश्याने मिचा हूआ कमल महेश्वरके हाथमे दीया, और कहा कि यह कमल तेरे योग्य है, तब महेश्वरनें कहा क्यों यह कमल मेरे योग्य है ? तब उमानें कहा इस मिचे हूए कमल समान कुमारी कन्या है, सो तुझको नोग करने वास्ते वल्लन है, और मैं खिले हूए फूल समान हौं, तब महेश्वरने कहा तूनी मेरेकों वहुत वल्लन है, ऐसा कह कर महेश्वर उसके साथ नोग नोगने लगा, और तिसकेही घरमें रहने लगा, तिस उमाने महेश्वरको अपनें वशमें कर लीया उमाका कहनो महेश्वर उल्लंघन नहीं कर सकता था, ऐसें जब कितनाकि काल व्यतीत हूआ तब चड्प्रद्योतने उमाको बुलायके उसको वहुत धन, और आदर सन्मान देकर कहा कि तू महेश्वरसें यह पूछेकि – ऐसानी कोइ काल है कि जिस कालमें तुमारे पास कोइनी विद्या नहीं रहती ? तब उमाने महेश्वरकों पूर्वोक्त रीतिसें पूछा, तब महेश्वरने कहा कि जवमै मैथुन सेवता हू तब मेरे पास कोइनी विद्या नही रहती, अर्थात् कोइ विद्या चलती नहीं तब उमाने चड्प्रद्योतराजाकों सर्वकथन सुना दीया, तब राजाने उमासे कहा कि जब महेश्वर तेरेसें नोग करेगा, तब हम उसकों मारेंगे तब उमाने कहाकि मुझकों मत मारना तब चंड्प्रद्योतने कहाकि तुझकों नहीं मारें गे ? पीछे चड्प्रद्योतनें अपने सुनटोंकों गुप्त (छाना) उमाके घरमें छिपा रक्खा, जब महेश्वर उमाके साथ विषय सेवनमें मग्न होकें दोनोका शरीर परस्पर मिलकें एक शरीरवत् हो गया, तब राजाके सुनटोंने दोनों हीको काट माला, और अपने नगरका उपद्रव दूर करा, पीछे महेश्वरकी सर्व विद्यायोंने उसके नदीश्वर शिष्यकों अपना अधिष्ठाता बनाया जब नदीश्वरने अपने गुरुकों इस विटंबनासें मारा सुना, तब विद्यासें उज्जयनके उपर शिला बनाइ, और कहने लगाकि हे मेरे दासो ! अब तुम कहां जाउगे ? में सबकों मारुगा क्योंकि मैं सर्वशक्तिमान् ईश्वर हू किसीका मारा मैं मरता नहीं हू, मैं सदा अविनाशी हू, यह सुनकर बहुत लोक मरे औ

र सर्वलोक विनती करके पगोंमें पडे, अरु कहने लगेकि, हमारा अपराध क्षमा करो, तव नंदीश्वरनें कहाकि जे कर तुम उसी अवस्थामें अर्थात् उमाकी जगमें महेश्वरका लिंग स्थापन करकें पूजो, तो मै तुमकों जीता छोडेगा, तव लोकोने तैसेही वना कर पूजा करी, पीछे नंदीश्वरनेभी अैसे ही गाम गाममें नगर नगरमें लोकोको मरा मरा करकें मंदिर वनवायें तिनमें पूर्वोक्त आकारे जगमें लिंगस्थापन करार्के पूजा कराई, यह श्रीमहावीरके अविरतिसम्यग्दृष्टि श्रावक महेश्वरकी उत्पत्ति है

तथा श्रीमहावीर स्वामीके विद्यमान होते राजगृह नगरमें श्रेणिकराजाकी चेलणा राणीके कोणिक नामा पुत्र हूआ, परंतु कोणिकका श्रेणिकके साथ पूर्व जन्मका वैर था, इस वास्ते कोणिक राजानें श्रेणिक राजाकों पकडके पिंजरेमें दे दीया, और राज सिंहासन ऊपर आप बैठा, जव अपनी माता चेलनाके मुखसें सुना कि श्रेणिककों जैसा तू वल्लभ था, अैसा कोइभी पुत्र वल्लभ नहीं था, क्योंकि जव तू वालक था तव तेरी अंगुली पक गइ थी, तिस्सें तुझे रात्रिमें निंद नहीं आती थी, और तू सर्व रात्रिमें रोता था, तव तेरा पिता तेरी अंगुलीकों अपने मुखमें ले कर चूसके उसकी राध रुधिरकों थूकता था, इत्यादि तेरे पितानें तेरे साथ राग (स्नेह) करा है, और तुमने उस उपकारके बदले अपने पिताकों पिंजरेमें बंद कीया, वाह रे पुत्र! तेरी लायकी! यह सुनके कोणिक राजा बडा दुःखी हूआ, और रोता हूआ आप कुहाडा लेकर दौडाकि मैं अपनें हाथसे पिताका पिंजरा काटके वाहिर निकालूंगा और राजसिंहासन ऊपर बैठालगा परंतु जव श्रेणिकराजाने देखा कि कोणिक कुहाडा लेकर दौडा आता है, तव विचार करा कि क्याजाने मुझे किस कुमौतसें मारेगा? तव श्रेणिक राजा कुछ खाकें मर गया, जव कोणिकने आकर देखा कि पिता तो मर गया तव बहुत रोया पीटा, महाशोकसें दाह लग गया, जव राजगृहके अंदर वाहिर श्रेणिकके मकान महिल सिंहासनादि देखता है, तव बडा दिलगीर (शोकवंत) होता है, इस दुःखसें राजगृह नगरकों छोडके चंपा नगरी अपनी राजधानी वनाके रहने लगा, तोभी पिताके वियोगसे सेवा न करनेंसें दुःखी रहने लगा, तव प्रधान (मंत्रीयोंनें) मता करकें एक छाना पुस्तक वनवाया, उसमें अैसा कथन लिखवाया कि —जो पुत्र अपने

मरें हूये पिताकों पिंम प्रदान वस्त्र जोडे, आनूषण, शय्या प्रमुख ब्राह्म णोकों देता है, वो सर्व श्राद्धादि सामग्री उसकें पिताकों प्राप्ति होते हैं, तिस पुस्तककों धुंयेके मकानमें रखकें धुयेसें पुराने पुस्तकवत् बना दीया, तब कोणिक राजाको सुनाया कोणिकनेनी पिताकी नक्तिवास्ते पिंम प्रदा नादि बहुत धन लगा करके करा, तबहीसें मृतकोंकों पिंम प्रदान श्रा द्धादि प्रवृत्त हूये है क्योंकि जगत्में प्रसिद्ध है कि कर्ण राजाने श्राद्ध च लाये हैं, सो इसी कोणिक राजाका नाम लोकोने कर्ण राजा करकें लिखा है

तथा अन्निका सुत जैनाचार्य अत्यंत वृद्ध गंगा नदी उतरतेको केवल ज्ञान हूआ, और जहां प्रयाग है तहां शरीर गेडके मोक्ष हूआ, तिस जगे देवताओंने तिस मुनिकी महिमा करी तबसे प्रयाग तीर्थकी मानता चली, अर्थात् प्रयाग तीर्थकी उत्पत्ति हूई, महावीर स्वामीके वखतमें जो स्वरूप राजादि व्यवहारोकाथा तथा जैनमतका जहां तक विस्तारथा सो आवश्यकसूत्र वीरचरित्र तथा वृहद्कल्पादि शास्त्रोंसें जान लेना

तथा श्रीमहावीरके समयमें राजगृह नगरीका राजा श्रेणिक तिसके पीछें कोणिक हूआ जिसने श्रेणिकके मरनेसें पीछें चंपानगरीकों अपनी राजधानी बनाई तिसका बेटा उदायी हूआ जिनके कोणिककें मरे पीछें उदासीसें चं पाकों गेडके पाटली पुत्र नगर (पटना) बसाके अपनी राजधानी बनाया

श्रीमहावीर नगवंत विक्रम संवतसे (४७०) वर्ष पहिलां पावापुरी न गरीमें हस्तपाल राजाकी पुराणी राजसनामें बहत्तर वर्षकी आयु नोगके कार्त्तिक वदि अमावास्याकी रात्रिके पीछले प्रहरमें पद्मासन अर्थात् चौंकडी मारे हूये, शरीरादि चार कर्मकी सर्व उपाधी गेडकें निर्वाण हूये (मोक्ष पहूचे) तिस समयमें गौतमस्वामी और सुधर्म स्वामी यह दो बडे शिष्य जीतेथे, शेष नव बडे शिष्य तो श्रीमहावीरजीके जीते हूयेही एक मा सका अनशन करकें केवलज्ञान पाके मोक्ष चले गये थे, यह इग्यारहही बडे शिष्य जातिके तो ब्राह्मण थे, चार वेद और छै वेदांगादि सर्वशास्त्रोंके जानकार थे, इन इग्यारहोके चौतालीससे (४४००) विद्यार्थीथे

इनोंका संबंध असें है,कि – जब नगवंत श्रीमहावीरजीकों केवलज्ञान हूआ, तिस अवसरमें मध्यपापा नगरीमें सोमल नामा ब्राह्मणने यज्ञ क रनेका आरंन करा था, और सर्व ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ [illegible]

वोंक्त गौतमादि इग्यारादी आचार्योंको बुलायाथा तिस समय तिस यज्ञ पाडाके ईशान कूणमें महासेन नामा उद्यानमें श्रीमहावीर जगवतका समवसरण रत्न सुवर्ण रौप्यमय क्रमसे तीन गढ सयुक्त देवोने बनाया तिसके वीचमें बैठकें जगवत श्रीमहावीरस्वामी उपदेश करने लगे, तब आकाश मार्गके रस्ते सैंकडो विमनोमें बैठे हूये चार प्रकारके देवता जगवत श्रीमहावीरके दर्शनकों और उपदेश सुननेको आते थे, तव तिनों यज्ञ करने वाले ब्राह्मणोने जाना कि यह देव सब हमारे करे हूये यज्ञकी आहुतीयों लेने आये हैं, इतनेमें देवता तो यज्ञ पाडेकों छोडके जगवानके चरणोंमें जाकर हाजर हूये, तथा और लोकजी श्रीमहावीर जगवतका दर्शन करकें और उपदेश सुनकें गौतमादि पंम्तितोंके आगे कहने लगे, कि – आज इस नगरके बाहिर सर्वज्ञ सर्वदर्शी जगवान् आया है, नतो उसके रूपकी कोई तारीफ कर सक्ता हैं, अरु न कोई उसके उपदेशसें सशय रहता है, और लाखों देवता जिनोके चरणोंकी सेवा करते हैं, ताते हमारें बडेजाग्योदय हैं, जो अैसे सर्वज्ञ अरिहत जगवतका हमने दर्शन पाया अैसा जब गौतमजीने सुना कि सर्वज्ञ आया तब मनमें ईर्ष्याकी अग्नि जडकी अरु अैसे कहने लगाकि – मरेसें अधिक और सर्वज्ञ कौन है ? में आज इसका सर्वज्ञ पणा छडा देता हूं ? इत्यादि गर्व सयुक्त जगवान् श्रीमहावीरके पास पहुंचा, और जगवान्कों चौत्तीश अतिशय संयुक्त देखा, तथा देवता, इंड, मनुष्योंसे परिवृत देखा, तब बोलनेकी शक्तिसें हीन हुवा जगवतके सन्मुख जाके खडा हो गया तब जगवतने कहा कि – हे गौतम इंडनूति ! तू आया ? तब गौतमजीने मनमें बिचाराकि जो मेरा नामजी ये जानते हैं, तोजी मैं सर्व जगे प्रसिद्ध हूं मुझे कौन नहीं जानता ? तो इन्ने मेरा नाम लीया, इस वातमे कुछ आश्चर्य और सर्वज्ञ इसकों नहीं मानता हू, किंतु मेरे मनमें जो शशय है तिसकों दूर कर देवें तोमें इसकों सर्वज्ञ मानु, तब जगवतने कहा, हे गौतम ! तेरे मनमें यह सशय है – जो जीवहै कि नहीं ? और यह सशय तेरेकों वेदोंकी परस्पर विरुद्ध श्रुतियोसे हूआ है, वो श्रुतियों यह हैं सो कहते हैं

"विज्ञानघनएवैतेन्योजूतेन्य समुछाय तान्येवानुविनश्यति न प्रेत्य संज्ञास्तीत्यादि" इस्सें विरुद्ध यह श्रुति है – सवै अयमात्मा ज्ञानमय

इत्यादि इन श्रुतियोंका अर्थ जैसा तेरे मनमें भासन होता है तैसाही प्रथम श्रुतिका अर्थ कहते हैं नीलादि रूप होनेसें विज्ञानही चैतन्य है, चैतन्य विशिष्ट जो नीलादि तिस्सें जो घन सो विज्ञानघन सोविज्ञानघन इन प्रत्यक्ष परिछियमान रूप पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाश, इन पांच भूतोंसें उत्पन्न हो कर फेर तिनके साथही नाश हो जाता है अर्थात् भूतोंके नाश होनेसें उनके साथ विज्ञानघनकाभी नाश हो जाता है, इस हेतुसें प्रेत्यसंज्ञा नही अर्थात् मरके फेर परलोकमें और कोई नर नारकका जन्म नहीं होता, इस श्रुतिमें जीवकी नास्ती सिद्ध होती है, और दूसरी श्रुति कहती है कि – यह आत्मा ज्ञान मय अर्थात् ज्ञान स्वरूप है, इस्सें आत्माकी सिद्धी होती है, अब ये दोनो श्रुतियों परस्पर विरोधी होनेंसें प्रमाण नहीं हो शक्ती हैं, और बहुत परस्पर आत्माके स्वरूपमें विरोधी मत है, कोइ कहता हैकि – एतावानेवपुरुषो,यावानिंद्रियगोचर ॥ भद्रे वृकपद पश्य,यद्वदत्यबहुश्रुता ॥ १ ॥ इस श्लोकका अर्थ चार्वाकमतमें लिख आये हैं यहभी एक आगम कहता है, तथा "न रूपं भिक्षव पुद्गल" अर्थात् आत्मा अमूर्त्ति है, यहभी एक आगम कहता है, तथा "अकर्त्तानिर्गुणोभोक्ताआत्मा" अर्थ – अकर्त्ता सत्व, रज, अरु तम, इन तीनों गुणोंसें रहित सुख दुःखका भोगने वाला आत्मा है, यहभी एक आगम कहता है अब इनमेंसें किसकों सच्चा और किसकों झूठा माने? परस्पर विरोधी होनेसें सर्व तो कुछ सच्चे होही नहीं शक्ते हैं, तथा युक्ति प्रमाणसेंभी मरके परलोक जाने वाली आत्मा सिद्ध नहीं होती है, ताते हे गौतम! यह तेरे मनमें संशय है, अब इसका उत्तर कहता हूं कि तू वेद पदोंका अर्थ नहीं जानता है इत्यादि श्रीगौतमजीके संशयकों दूर करा, ये सर्व अधिकार मूलावश्यक और श्रीविशेषावश्यकसें जान लेनां, मैंनें ग्रंथके भारी और गहन हो जानेके सबबसें यहां नहीं लिखा क्योंकि सब इग्यारह गणधरोंके संशय दूर करनेका कथनके चार हजार श्लोक हैं पीछे जब गौतमजीका संशय दूर हो गया, तब गौतमजी पांचसौ अपने विद्यार्थीयोंके साथ दीक्षा लेके श्रीमहावीर भगवतका प्रथम शिष्य हूआ

इसीतरें इंद्रभूतिकों दीक्षित सुनके दूसरा भाई अग्निभूति वडे अभिमानमें भर कर चला और कहने लगा कि – मेरे भाईकों इंद्रजालीयेने छलसें

जीतके अपना शिष्य बना लीया, तो मैं अबी उस इंद्रजालीयेकों जीतके अपने नाईकों पीछा लाता हू, इस विचारसे नगवत श्रीमहावीरजीके पास पहुंचा, जब नगवानकों देखा, तब सर्व आइ वाइ नूल गया मुखसे बो लनेकीनी शक्ती न रही और मनमें बडा अचना हूआ क्योंकि औसा स्व रूप न उसने कबी सुनाथा और न कबी देखा था, तब नगवानने उसका नाम लीया, अग्निनूतिने विचारा कि यह मेरा नामनी जानते हैं, अथवा मैं प्रसिद्ध हू,मुझे कौन नहीं जानता है ? परंतु मेरे मनका संशय दूर करे तो मै इसकों सर्वज्ञ मानु,तब नगवतने कहा हे अग्निनूति ! तेरे मनमें यह संशय है कि – कर्म है किंवा नहीं ? यह संशय तेरेकों विरुद्ध वेदपदोंसें हूआ है, क्योंकि तू वेद पदोंका अर्थ नहीं जानता है, वे वेदपद यह हैं – "पुरुषएवेदग्निसर्वयद्भूतं यच्च नाव्य उतामृतत्वस्येशानोयदन्नेनाऽतिरोहति यदेजति यन्नेजति यद्दूरेयद्वअतिके यदतरस्य यडुत सर्वस्यास्य बाह्यतइ त्यादि" इस्सें विरुद्ध यहश्रुति है – "पुण्य पुण्येनेत्यादि" और इनका अर्थ तेरे मनमें औसा नासन होता है कि – पुरुष अर्थात् आत्मा एव शब्द अवधारणके वास्ते है, सो अवधारण कर्म और प्रधानादिकोंके व्यवछेद वास्ते है, "इद सर्वं" अर्थात् यह सर्व प्रत्यक्ष वर्त्तमान चेतन अचेतन व स्तु "ग्नि" यह वाक्यालंकारमें है, यद्भूतं अर्थात् जो पीछें हूआ है और आगेकों होवेगा जो मुक्ति तथा संसार सो सर्व पुरुष आत्मा ब्रह्मही हैं, तथा उतशब्द अतिशब्दके अर्थ में है और अपि शब्द समुच्चय अर्थमें है अमृतत्वस्य अमरणनावका अर्थात् मोक्षका ईसान प्रभु अर्थात् स्वामी (मालक) है, "यदिति यच्चेति" च शब्दके लोप होनेसें यदिति बना इसका अर्थ जो अन्न करकें वृद्धिकों प्राप्त होता है, "यदेजति" जो चलता है औसे पशुआदिक और जो नहीं चलता है औसें पर्वतादिक और जो दूर हैं मेरु आदिक "यतुव्अतिके" उ शब्दअवधारणार्थमें है, जो समीप अ र्थात् नेडे हैं, सो सर्व पूर्वोक्त पदार्थ पुरुष अर्थात् ब्रह्मही है, इस श्रुतिसें कर्मका अनाव होता है अरु दूसरी श्रुतिसें तथा शास्त्रांतरोंसे कर्मसिद्ध होते हैं, तथा युक्तिसे कर्मसिद्ध होते नहीं क्योंकि अमूर्त्त आत्माको मूर्त्त कर्म लगते नहीं, इस वास्ते मैं नहीं जानता कि कर्म है या नही यह संशय तेरे मनमें है, औसा कह कर नगवानने वेदश्रुतियोंका अर्थ

वरावर करके तिसका पूर्वपक्ष खंमन करा, सो विस्तारसें मूलावश्यक तथा विशेपावश्यकसें जानलेनां अग्निनूतिनेनी गौतमवत् दीक्षा लीनी॥ २॥

अग्निनूतिकी दीक्षा सुनके तीसरा वायुनूति आया परंतु आगे दोनो ना ईयोंके दीक्षा ले लेनेसें इसकों विद्याका अनिमान कुबनी न रहा, म नमें विचार कराकि मैं जा कर नगवानको वंदना (नमस्कार) करुगा असा विचारके आया आ कर नगवतको वदना (नमस्कार) करी तव न गवतने कहा तेरे मनमें सशयतो है परतु क्षोनसेंतूं पूब नही शका है स शय यह हैकि – जो जीव है सो देहही है और यह सशय तेरेको विरुद्ध वेदपदश्रुतिसे हूआ है, और तू तिन वेदपदोंका अर्थ नहीं जानता है वे वेद पद ये हैं – "विज्ञानघनइत्यादि" पहिले गणधरकी श्रुति जाननी इस्सें देहसें न्यारा जीव (आत्मा) सिद्ध नहीं होता है, और इस श्रुतिसें वि रुद्ध यह श्रुति है, "सत्येन लन्यस्तपसा ह्येपव्रह्मचर्येण नित्यज्योतिर्मयो हिशुद्धोयं पश्यंति धीरायतय सयतात्मानइत्यादि" इस श्रुतिसें देहसें निन्न आत्मा सिद्ध होती है, इस वास्ते तुजको सशय है, पीछे नगवान्ने यह सर्व सशय दूर करे, तव तीसरा वायुनूतिनेनी अपने पांच सौ विद्यार्थीयोंके साथ दीक्षा लीनी ॥ ३ ॥

वायुनूतिकी तरें शेप आठ गणधर क्रमसें आये, तिसमें चौथा अव्य क्तजी आया तिनके मनमें यह सशयथा कि – पांचनूत हैं कि नही ? यह सशय विरुद्ध श्रुतियोंसे हूआ वे परस्पर विरुद्ध श्रुतियों यह है – "स्वप्नो पम वै सकलमित्येव व्रह्मविधिरंजसाविज्ञेयइत्यादीनि" तथा इससें विरुद्ध यह श्रुति है "द्यावापृथिवी जनयन्देवइत्यादि" तथा पृथिवीदेवता, आपो देवता, इत्यादीनि इनका अर्थ तेरे मनमें असा नासन होता है – अर्थ स्वप्न सरीखा वैनिपात अवधारणार्थे सपूर्ण जगत है "एप व्रह्मविधि" अ र्थात् यह परमार्थ प्रकार है, अंजसा सीधेन्यायसें जाननां योग्य है, यह श्रुति पांचनूतका अनाव कहती हैं, और श्रुतियों पांचनूतकी सत्ताकों क हतीयों हैं, इस वास्ते तेरेकों सशय है, तेरे मनमें यहनी हैकि – युक्तिसें पांचनूतसिद्ध नहीं होते हैं पीछें नगवानने इसका पूर्वपक्ष खमन करा वेद पदोंका यथार्थ अर्थ कराये,यह अधिकार वक्र ग्रथोंसें जान लेनां यह सुन कर चौथा वायुनूतिनेनी अपने पांचसौ शिष्योंके साथ दीक्षा लीनी ॥ ४ ॥

तब पांचमा सुधर्म नामा गणधर आया. इसकाजी असी तरें सर्वाधिकार जानलेना, यावत् तेरे मनमें यह संशय है कि – मनुष्यादि सर्व जैसें इस जवमें हैं तैसेही अगले जन्ममें होते हैं ? कि मनुष्य कुछ और पशुआदिजी बन जाते हैं ? यह संशय तेरेको परस्पर विरुद्ध वेद श्रुतियोंसे हूआ है सो वेद श्रुतियों यह हैं –"पुरुषोवैपुरुषत्वमश्नुते पशवः पशुत्वं इत्यादीनि" यह श्रुति जैसा इस जन्ममें पुरुष स्त्री आदि हैं वे पर जन्ममेंजी असेही होवेंगे इस्से विरुद्ध यह श्रुति हैं "शृगालोवैएषजायते यः सपुरीषोदह्यतइत्यादि इन सर्व श्रुतियोंका जगवानने अर्थ करके संशय दूर करा, तब अपने पांच शिष्यके साथ दीक्षा लीनी ॥ ५ ॥

तिस पीछें छठा मण्डिक पुत्र आया, तिसके मनमें यह संशय था, कि बंध मोक्ष है, वा नही है ? यह संशयजी विरुद्ध श्रुतियोंसें हूआ है, सो श्रुतियों यह हैं –"स एष विगुणोविभुर्न बध्यते, संसरति वा न मुच्यते मोचयति वा ॥ एष बाह्यमन्यतरं वा वेदइत्यादीनि" इस श्रुतिका असा अर्थ तेरे मनमें जासन होता है, "एषअधिकृतजीव" अर्थात् यह जीव जिसका अधिकार है "विगुण" अर्थात् सत्वादि गुण रहित सर्वगत सर्वव्यापक पुण्य पाप करकें इसकों बंध नहीं होता है, और संसारमें भ्रमणजी नहीं करता है, और कर्मोसें छूटताजी नहीं है, बंधके अजाव होनेसे दूसरोंकों कर्मबंधसें छुडाताजी नहीं है, इस कहनेसें आत्मा अकर्त्ता है, सोई कहता है – यह पुरुष अपणी आत्मासें बाहिर महत् अहंकारादि और अन्यंतर स्वरूप अपना जानता नही क्योंकि जानना ज्ञानसें होता है, और ज्ञानजो है, सो प्रकृतिका धर्म है, और प्रकृति अचेतन है, बंध मोक्ष नही इस श्रुतिसें बंध मोक्षका अजाव सिद्ध होता है,अब इस्सें विरुद्ध श्रुति यह है सो कहते हैं – "नही वैसशरीरस्य, प्रिया प्रिययोरपहतिरस्ति अशरीरं वा वसते प्रिया प्रिये नस्पृशत इत्यादीनि" इशका अर्थ कहते हैं – सशरीरस्य अर्थात् शरीर सहितकों सुख दुःखका अजाव कदापि नहीं होता है, तात्पर्य यह हैकि – संसारी जीव सुख दुःखसें रहित नहीं होता है, और अमूर्त्त आत्माकों कारणके अजावसे सुख दुःख स्पर्श नहीं कर शक्ते हैं, इस श्रुतिसें बंध मोक्ष सिद्ध होते हैं, तथा तेरे मनमें यहजी बात है – कि – युक्तिसेंजी बंध मोक्ष सिद्ध नहीं होते हैं इत्यादि संशय कह कर जग

वान्ने तिसके पूर्वपक्षोंकों खमन करकें संशय दूर करा,तब मंमितपुत्र साढे तीनसौ विद्यार्थियोके साथ दीक्षित नया ॥ ६ ॥

७ तिस पीछें सातवां मोर्यपुत्र आया तिसके मनमें यह संशयथा कि – देवता हैं किंवा नही है? यह संशय परस्पर विरुद्ध श्रुतियोसें हूआ वो श्रुतियो यह हैं – सएपयज्ञायुधीयजमानोज सास्वर्गलोकं गच्छति इत्यादि श्रुतियों स्वर्ग तथा देवताओंकी सिद्धि करतीयों हैं, इस्सें विरुद्ध श्रुति यह है – अपामसोम अमृता अनूम, अगमामज्योतिर्विदामदेवान् ॥ किंनूनम स्मान्तृणवदराति किमुधूर्त्ति रमृतमर्त्यस्येत्यादीनि" तथा कोजानाति मा योपमान् गीर्वाणानि इयमवरुणकुबेरादीन् इत्यादि" इनका अैसा अर्थ तेरे मनमें नासन होता है कि – पाणीकों पीते हूये एतावता सोमलताका रस पीते हूये अमृत (अमरण) धर्मवाले हम हूये हैं, ज्योति स्वर्ग और देवताकों हम नही जानते हैं तथा देवता हम हूये हैं, यहनी नहीं जा नते देवता तृणेकी तरें हमारा क्या कर शक्ते हैं? यह श्रुति अनाव प्रति पादन करती है, और यह नावकी प्रतिपादक है, "धूर्त्तिजराअमृतमर्त्य स्य" अमृतत्व प्राप्त पुरुपकों क्या कर सक्ती है? इन श्रुतियोका यथार्थ अर्थ करकें और तिसका पूर्वपक्ष खमन करकें नगवतने इनका संशय दूर करा, तव यहनी साढे तीनसो छात्रोंके साथ दीक्षित नया ॥ ७ ॥

८ तिस पीछें आठमा अकंपिक आया उसके मनमेंनी वेदकी परस्पर वि रुद्ध श्रुतियोंके पदोंसें नरकवासी है कि नही? यह संशय उत्पन्न हूआ था, वो परस्पर विरुद्ध श्रुतियों लिखते हैं –"नारको वै एप जायतेय शूद्रान्न मश्नाति इत्यादि" इसका अर्थ – यह ब्राह्मण नारक होवेगा जो शूद्रका अन्न खाता है, इस श्रुतिसें नरक सिद्ध होता है, तथा "नह वैप्रेत्यनरके नारका संतीत्यादि सुगमार्थ इसश्रुतिसे नरकका अनाव सिद्ध होता है इनका अर्थ करके और पूर्वपक्ष खंमन करकें नगवान्ने तिसका संशय दूर करा तव अक पिकनेनी तीन सौ छात्रोंके साथ दीक्षालीनी ॥ ८ ॥

९ तिस पीछें नवमा अचलन्राता आया तिसकोंनी परस्पर वेदकी विरुद्ध श्रुतियोंकेपदोंसें पुण्य पाप है, कि नही? यह संशय था, सो वेद पद यह हैं – "पुरुपएवेदंग्निसर्वंइत्यादि दूसरे गणधर वत् इस्से विरुद्धपद यह है – "पुण्य पुण्येन कर्मणा नवति, पाप पापेन कर्मणा नवति इत्यादि" इस्सें

पुण्यपाप सिद्ध होते है, यह संशयभी भगवानने दूर करा, तब यहभी तीन सौ छात्रोंके साथ दीक्षित भया ॥ ए ॥

१० तिस पीछें दशमा मेतार्य आया उसकोंभी वेदकी परस्पर विरुद्ध श्रुतियोंसे यह संशयहूआ था, कि —परलोक है किंवा नहीं है ? वो श्रुतियों यह है.— "विज्ञानघन इत्यादि प्रथम गणधरवत् अनाव कथक श्रुति माननी" तथा "स वैअयं आत्मा ज्ञानमयइत्यादि" परलोक भाव प्रतिपादक श्रुति जाननी इनका तात्पर्य भगवानने कहा तब मेतार्यजीनेभी निःशंक होकें तीन सौ छात्रोंके साथ दीक्षा लीनी ॥ १० ॥

११ तिस पीछें इग्यारहवा प्रनास नामा गणधर आया, तिसके मनमेंभी वेद श्रुतियोंके परस्पर विरुद्ध होनेसे यह संशयथा कि निर्वाण है कि नही है ? वो श्रुतियों यह हैं — "जरामर्यं वा एतत्सर्वं यदग्नि होत्र" इस्से विरुद्ध श्रुति यह है — "द्वेब्रह्मणी वेदितव्ये परमपरं च तत्र परं सत्यं ज्ञानमनंतंब्रह्मेति" इनका यह अर्थ तेरी बुद्धिमें भासन होता है कि — अग्निहोत्र जो है, सो जीव हिंसा संयुक्त है, और जरा मरणका कारण है, अरु वेदमें अग्नि होत्र निरंतर करणा कहा है, तब ऐसा कौनसा काल है, कि जिसमें मोक्ष जानेका कर्म करीयें ? इस वास्ते आत्माकों मोक्ष (निर्वाण) कदापि नहीं हो शक्ता है, अरु दूसरी श्रुति मोक्ष प्राप्तिभी कहती है, इस वास्ते संशय हूआ है इसका जब भगवान्ने उत्तरदे के निशंक करा तब तीनसौ छात्रोंके साथ दीक्षा लीनी यह श्रीमहावीर भगवंतके वैशाखशुदि दशमीके दिन मध्यपापानगरीके महासेन वनमे (४४००) शिष्य हूये तिस पीछें राजपुत्र श्रेष्ठिपुत्रादि तथा राजपुत्री श्रेष्ठिपुत्री राजाकी राणीयों आदिकने दीक्षा लीनी तथा जब भगवंत श्रीमहावीरजी पावापुरीमें मोक्ष गये, तिसही रात्रिमें इन्द्रनूति अर्थात् गौतमगणधरकों केवल ज्ञान हूआ, तब इन्होंने निर्वाण महोत्सव करा, और सुधर्मास्वामीजीकों श्रीमहावीर स्वामीजीकी गद्दी ऊपर बैठाया श्रीगौतमजीकों गद्दी इस वास्ते न हूइ की केवलज्ञानी पुरुष कोइ पाट ऊपरनहीं बैठता है, क्योंकि केवली तो जो पूछे उसका उत्तर अपने ज्ञानसेही देता है, परंतु ऐसा नहीं कहता है कि — मैं अमुक तीर्थंकरकें कहनेसें कहता हूं, इस वास्ते केवलज्ञानी पाट ऊपर नहीं बैठता है, जेकर बैठे तो तीर्थंकरका

शासन दूर हो जावे, यह कभी हो न शक्ती जो अनादि रीतिकों के वली नंग करे, इस वास्ते श्रीगौतमजी केवल ज्ञानी था सो गद्दी ऊपर नही बैठे और सुधर्म स्वामी बैठे

१ श्रीसुधर्म स्वामी पचास वर्ष तो गृहस्थावास (घरमें) रहे, और तीस वर्ष श्रीमहावीर नगवतकी चरण सेवा करी, जब श्रीमहावीर निर्वाण हूआ, तिस पीछें बारां वर्ष तक छद्मस्थ रहे, और आठ वर्ष केवली रहे, क्योंकि श्रीमहावीर अर्हतके पीछें केवली हो कर बारां वर्ष श्रीगौतमजी जीते रहे, और श्रीगौतमजीके निर्वाण पीछें श्रीसुधर्म स्वामीजीकों केवल ज्ञान हूआ, केवली हो कर आठ वर्ष जीते रहे, श्रीसुधर्म स्वामी जीकी सर्वायु एक सौ (१००) वर्षकी थी, सो श्रीमहावीरजीके पीछें वीश वर्ष मोक्ष गये २ श्रीसुधर्म स्वामी के पाट ऊपर श्रीजंबूस्वामी बैठे सो राजगृहनगरका वासी श्रीऋषनदत्तश्रेष्ठकी धारिणी नामा स्त्रीसें जन्मेथे निनानवे क्रोड सोनइये और आठ स्त्रीयोंकों छोड कर दीक्षा लेता नया, शोलांवर्ष गृहस्थ वासमें रहे, वीश वर्ष व्रतपर्याय, औ चौतालीस वर्ष केवलपर्याय पालके श्रीमहावीरके निर्वाण पीछें चौशठमें वर्ष मोक्ष गये

यह श्रीजंबूस्वामीके पीछें नरतक्षेत्रमें दश बातें विछेद हो गइ तिसका नाम लिखते हैं – १ मन पर्यायज्ञान, २ परमावधि ज्ञान, ३ पुलाक लब्धि, ४ आहारकशरीर, ५ क्षपकश्रेणि, ६ उपशमश्रेणि, ७ जिनकल्पमुनिकी रीति, ८ परिहारविशुद्धिचारित्र, तथा सूक्ष्मसपराय, और यथाख्यात, यह तीन तरेंके सयम, ९ केवलज्ञान, १० मोक्ष होनां, यह दश वस्तु विछेद हो गइ, श्रीमहावीर नगवतके केवली हूये, पीछें जब चौदह वर्ष बीते थे, तब जमाली नामा, प्रथम निन्हव हूआ, और शोलां वर्ष पीछें तिष्यगुप्त नामा दूसरा निन्हव हूआ श्री जंबुस्वामीकी आयु एसी वर्षकी थी

३ जंबूस्वामीके पाट ऊपर प्रनवा स्वामी बैठे, तिनकी उत्पति ऐसें हैं – विंध्याचल पर्वतके पास जयपुर नामा पत्तन था, तिसका विंध्य नामा राजा था तिसके दो पुत्र थे एक वडा प्रनव दूसरा छोटा प्रभु, विंध्यराजाने किसी कारणसें छोटे पुत्र प्रभुकों राज तिलक दे दीया, तब वडा बेटा प्रनव क्रुद्धसें हो कर जयपुर पत्तनसे निकल कर विध्याचलकी विषम जगामें गाम वसा कर रहने लगा, और खात्रखनन, वदिग्रहण,

पुण्यपाप सिद्ध होते है, यह संशयभी भगवानने दूर करा, तब यहभी तीन सौ छात्रोके साथ दीक्षित भया ॥ ९ ॥

१० तिस पीछें दशमा मेतार्य आया उसकोंभी वेदकी परस्पर विरुद्ध श्रुतियोंसें यह संशयहूआ था, कि –परलोक है किंवा नही है ? वो श्रुतियों यह हैं – "विज्ञानघन इत्यादि प्रथम गणधरवत् अभाव कथक श्रुति मानभी" तथा "स वैश्वर्य आत्मा ज्ञानमयइत्यादि" परलोक भाव प्रतिपादक श्रुति जानभी इनका तात्पर्य भगवानने कहा तब मेतार्यजीनेभी निःशंक होकें तीन सौ छात्रोंके साथ दीक्षा लीनी ॥ १० ॥

११ तिस पीछें इग्यारहवा प्रभास नामा गणधर आया, तिसके मनमेंभी वेद श्रुतियोंके परस्पर विरुद्ध होनेसे यह संशयथा कि निर्वाण है कि नही है ? वो श्रुतियों यह हैं – "जरामर्यं वा एतत्सर्वं यदग्नि होत्र" इस्सें विरुद्ध श्रुति यह है – "द्वेब्रह्मणी वेदितव्ये परमपरं च तत्र परं सत्यं ज्ञानमनंतंब्रह्मेति" इनका यह अर्थ तेरी बुद्धिमें भासन होता है कि – अग्निहोत्र जो है, सो जीव हिंसा संयुक्त है, और जरा मरणका कारण है, अरु वेदमें अग्नि होत्र निरंतर करणां कहा है, तब ऐसा कौनसा काल है, कि जिसमें मोक्ष जानेका कर्म करीयें ? इस वास्ते आत्माकों मोक्ष (निर्वाण) कदापि नहीं हो शक्ता है, अरु दूसरी श्रुति मोक्ष प्राप्तिभी कहती है, इस वास्ते संशय हूआ है इसका जब भगवान्ने उत्तरदे के निःशंक करा तब तीनसौ छात्रोंके साथ दीक्षा लीनी यह श्रीमहावीर भगवंतके वैशाखशुदि दशमीके दिन मध्यपापानगरीके महासेन वनमे (४४००) शिष्य हूये तिस पीछें राजपुत्र श्रेष्ठिपुत्रादि तथा राजपुत्री श्रेष्ठिपुत्री राजाकी राणीयों आदिकने दीक्षा लीनी तथा जब भगवंत श्रीमहावीरजी पावापुरीमें मोक्ष गये, तिसही रात्रिमें इंद्रभूति अर्थात् गौतमगणधरकों केवल ज्ञान हूआ, तब इंद्रोने निर्वाण महोत्सव करा, और सुधर्मास्वामीजीकों श्रीमहावीर स्वामीजीकी गद्दी ऊपर बैठाया श्रीगौतमजीकों गद्दी इस वास्ते न हूइ की केवलज्ञानी पुरुष कोइ पाट ऊपरनहीं बैठता है, क्योंकि केवली तो जो पूछे उसका उत्तर अपने ज्ञानसेही देता है, परंतु ऐसा नहीं कहता है कि – मै अमुक तीर्थंकरकें कहनेसें कहता हू, इस वास्ते केवलज्ञानी पाट ऊपर नहीं बैठता है, जेकर बैठे तो तीर्थंकरका

तत्त्व कह दे ? नहीं तो तलवारसें तेरा शिर छेद करुंगा ऐसें कहके जब मियानसें तलवार काढी तब उपाध्यायने प्राणांत कष्ट देखकें कहा हमारे वेदोंमेंजी ऐसें लिखा है और हमारी आम्नायजी यही है, जब हमारा कोइ शिर छेदे, तब तत्त्व कहनां, नहीं तो नहीं कहनां तिस वास्तेमें तुमकों तत्त्व कह देता हूंकि इस यज्ञ स्थंजके हेठ अर्हतकी प्रतिमा स्थापन करी है, और नीचेही तिसकों प्रछन्न हो कर पूजते हैं, तिसके प्रजावसें यज्ञके सर्व विघ्न दूर हो जाते है, जेकर यज्ञस्थंजके नीचे अर्हतकी प्रतिमा न राखें तो महातपा सिद्ध पुत्र और नारद ये दोनो यज्ञको विध्वंस कर देते है,पीछें उपाध्यायने यज्ञ स्थंज उखाडके अर्हतकी प्रतिमा दिखाइ और कहा कि यह प्रतिमा जिस देवकी है, तिस अर्हतका कहा हूआ धर्म जीवदया रूप तत्त्व है, और यह जो वेद प्रतिपाद्य यज्ञ है, वे सर्व हिंसात्मक रूप होनेसें विडंबना रूप हैं, परंतु क्याकरें ? जेकर हम ऐसें न करें तो हमारी आजीविका नहीं चलती है, अब तू तत्त्व जानले और मुझकों छोड दे अरु तु परमार्हत होजा क्योंकि मैनें अपने पेटके वास्ते तुझकों बहुत दिन बहकाया है, तब शिय्यंजवने नमस्कार करकें कहा तू यथार्थ तत्त्वके प्रकाश करनेसें सच्चा उपाध्याय है, ऐसा कह कर शिय्यंजवने तुष्टमान हो कर यज्ञकी सामग्री जो सुवर्णपात्रादिये,वे सर्व उपाध्यायकों दे दइ, और प्रजवस्वामीके पास जा कर तत्त्वका स्वरूप पूछ कर दीक्षा ले लीनी, शेष इनका वृत्तांत परिशिष्टपर्व ग्रंथसें जान लेनां शिय्यंजवस्वामी अठाइस वर्ष गृहस्थावासमें रहे, इग्यारह वर्ष सामान्य साधु व्रतमें रहे, और तेइस वर्ष युगप्रधानाचार्य पदवीमें रहे, इसीतरें सर्वायु बासठ वर्ष जोगकें श्रीमहावीर जगवतके अठानवे वर्ष पीछें स्वर्ग गये

५ श्रीशिय्यंजवस्वामीके पाट उपर यशोजद्र स्वामी बैठे, सो बावीश वर्ष गृहस्थावासमें रहे, और चौदह वर्ष व्रत पर्यायमें रहे अरु पचास वर्ष तक युगप्रधान पदवीमें रहे, इसीतरें सर्वायु छयासी वर्षकी जोगके श्रीमहावीरसें (१४८) वर्ष पीछें स्वर्गमें गये

६ श्रीयशोजद्रस्वामीके पाट ऊपर एक संजूतविजय और दूसरे श्रीजद्रबाहु, यह दोनो बैठे, तिनमें संजूतविजय तो बैतालीस वर्ष तक गृहस्थ रहे, और चालीश वर्ष व्रत पर्याय तथा आठ वर्ष युग प्रधान पदवी स

रस्ते लूटनादि, अनेक तरेंकी चोरीयोंसे अपने परिवारकी आजीविका क रता था, एक दिन पांच सौ चोरोंको ले कर राजगृह नगरमें जंबूजीके घ रकों लूटने आया, तहां जंबूस्वामीने तिसकों प्रतिबोध करा, तब तिसने पांच सौ चोरोंके साथ दीक्षा श्रीजंबूजीके साथ लीनी इत्यादि जंबूजीका और प्रभवजीका अधिकार जंबूचरित्र तथा परिशिष्ट पर्वादि ग्रंथोंसें जान लेना प्रभव स्वामी तीस वर्ष गृहस्थ पर्याय, चौतालीश वर्ष व्रतपर्याय, तथा एकादश वर्ष युगप्रधान पदवी, सर्व पंचाशी वर्षकी आयु पूरी करकें श्री महावीरसे पंचहत्तर वर्ष पीछें स्वर्ग गया

४ श्रीप्रभवस्वामीके पाट ऊपर श्रीशिय्यंभव स्वामी बैठे, जिनोने म नक साधुके वास्ते दशवैकालिक सूत्र बनाया, तिनकी उत्पत्ति ऐसे है – एकदा प्रस्तावें प्रभवस्वामीनें रात्रिमें विचार कराकि मेरे पाट ऊपर कौन बैठेगा ? पीछें ज्ञान बलसें अपणे सर्वसंघमें पाट योग्य कोइ न देखा, तब परदर्शनीयोंकों ज्ञान बलसें देखने लगा तब राजगृह नगरमें शिय्यंभव भ ट्टकों यज्ञ करते हूयेकों अपने पाट योग्य देखा, पीछें प्रभव स्वामी वि हार करकें सपरिवार राजगृह नगरमें आये उहां दो साधुओंकों आदेश दीयाकि तुम यज्ञ पाडेमें जाकर भिक्षाके वास्ते धर्म लाभ कहो, और यज्ञ करने वालोंकों ऐसे कहो – " अहोकष्ट महोकष्ट तत्त्व विज्ञायते नहि " तब तिन साधुओंनें पूर्वोक्त गुरुका कहना सर्व कीया, जब ब्राह्म णोनें " अहोकष्ट " इत्यादि सुना और तिस यज्ञ वाडेमें शिय्यंभव ब्रा ह्मणने यज्ञ दीक्षा लीनी थी, तिसने यज्ञ वाडेके दरवाजेमें खडेनें अहो कष्ट इत्यादि मुनियोंका कहना सुनके विचार करनें लगा कि ऐसा उप शम प्रधान साधु होते हैं, इस वास्ते यह असत्य (झूठ) नहीं बोलते हैं, इस्सें मनमें संशय होगया, तब उपाध्यायकों पूछा कि तत्त्व क्या है ? तब उपाध्यायने कहा कि चार वेदमें जो कथन करा है, सो तत्त्व है, क्योंकि वेदोंके शिवाय और कोइ तत्त्व नहीं है ? तब शिय्यंभवने कहा कि तू दक्षिणाकें लोभसें मुझकों तत्त्व नहीं बतलाता है, क्योंकि राग द्वेष रहित, निर्मम, नि परिग्रह, शांत, दांत, महांत मुनियोंका कहना झूठा नहीं होता है, और तू मेरा गुरु नहीं तैने तो जन्मसें इस जगत्को ठग नांही सीखा है, इस वास्ते तू शिक्षाके योग्य है इस वास्ते यातो मुझे

श्री स्थूलभद्रस्वामीके पीछें उपर ले चार पूर्व, प्रथम संहनन, प्रथम संस्थान, व्यवछेद हो गये, तथा श्रीमहावीरसे दोसौ बीस (२२०) वर्ष पीछे अश्वमित्र नामा चौथा क्षणिकवादि निन्हव हूआ, और श्री स्थूलभद्रजीके समयमें बारां वर्षका डुर्जिक्ष (काल) पडा उस समयमें चंद्रगुप्तका राज था तथा श्री महावीरके पीछें (२२८) वर्ष व्यतीत हूए गंग नामा पांचमा निन्हव हूआ

८ श्री स्थूलभद्रके पीछे श्री स्थूलभद्रजीके दो शिष्य एक आर्यमहागिरि, और दूसरा सुहस्ति सूरि, आठमें पाट उपर बैठे, तिसमें आर्यमहागिरिके शिष्य १ बहुल, २ बलिस्सह, फेर बलिस्सहका शिष्य श्री उमास्वातीजी जिसनें तत्त्वार्थादि सूत्र रचे हैं, और उमास्वातीका शिष्य श्यामाचार्य जिसने प्रज्ञापना (पन्नवणासूत्र) बनाया, यह श्यामाचार्य श्रीमहावीरसें तीन सौ छिहत्तर वर्ष पीछें स्वर्ग गया, और आर्य महागिरजी तीस वर्ष गृहवासमें रहे, चालीस वर्ष व्रत पर्याय अरु तीस वर्ष युगप्रधान पदवी सर्वायु एक सौ वर्षकी जोगके स्वर्ग गया

और दूसरा आठमें पाटवाला सुहस्तिसूरि, जिसनें एक भिखारीकों दीक्षा दीनी वो भिखारी काल करके चंद्रगुप्तका बेटा बिंडुसार और बिंडुसारका बेटा अशोक और अशोकका बेटा कुणाल तिस कुणालका बेटा संप्रति राजा हूआ, तिस संप्रति राजाने जैनधर्मकी बहुत वृद्धि करी, क्योंकि कल्प सूत्रके प्रथम उद्देसेमें श्रीमहावीरके समयमें अबकी निसबत बहुत थोडे देशोमें जैनधर्म लिखा है, मारवाड, गुजरात, दक्षिण, पंजाब वगैरे देशोमें जो जैनधर्म है, सो संप्रति राजादीसें फैला है, यद्यपि इस कालमें जैनी राजाके न होनेसे जैनधर्म सर्व जगें नही, परंतु संप्रतिराजाके समयमें बहुत उन्नति पर था, क्योंकि संप्रति राजाका राज्य मध्यखंड और गंगापार और सिंधु पारके सर्व देशोमें था, संप्रति राजाने अपने नौकरोंकों जैनके साधुओंका वेष बना कर अपने सेवक राजाओंके जो शक, यवन फारसादि देशों थे, तिन देशोंमें भेजे, तिनोने तिन राजाओंकों जैनके साधुओंका आहार विहार आचारादि सर्व बताया और समझाया पीछेसें साधुओंका विहार तिन देशोंमें कराकर लोकोंकों जैन धर्मी करा, और संप्रति राजाने (९९०००) निनानवें हजार जीर्ण (पु

र्षायु नवे वर्ष नोगके स्वर्गमें गये, और नद्रबाहुस्वामीने १ आवश्यक निर्युक्ति २ दशवैकालिकनिर्युक्ति ३ उत्तराध्ययन निर्युक्ति ४ आचारांगकी निर्युक्ति, ५ सूत्रकृदंग निर्युक्ति, ६ सूर्यप्रज्ञप्ति निर्युक्ति, ७ ऋषिनाषित नि र्युक्ति, ८ कल्प निर्युक्ति, ९ व्यवहार निर्युक्ति, १० दशा निर्युक्ति, ये दश निर्युक्तियों और १ कल्प, २ व्यवहार, ३ दशाश्रुतस्कंध, यह नवमे पूर्वसें उद्धार करकें बनाये और एक बहुत वडा नद्रबाहु नामे संहिता ज्यो तिष शास्त्र बनाया, उपसर्गहर स्तोत्र बनाया, जैनमतीयों उपर बहुत उ पकार करा इनही नद्रबाहुजीका सगा नाइ वराहमेहर हूआ, वो पहिलें तो जैनमतका साधु हूआ था, फेर साधुपणा छोडकें वराही संहिता बनाइ और जो वराह मिहर विक्रमादित्यकी सनाका पंमित था, वो दूसरा वरा हमिहर था, संहिता कारक वो नहीं हूआ, इसका संपूर्ण वृत्तांत परिशिष्ट पर्वसे जान लेनां श्रीनद्रबाहुस्वामी गृहस्थावासमें पैंतालीश वर्ष रहे, स त्तारे वर्ष व्रतपर्याय, अरु चौदह वर्ष युगप्रधान, सब मिल कर ठहत्तर व र्षकी आयु नोगकें श्रीमहावीरसें एकसौ सत्तर (१७०) वर्ष पीछें स्वर्ग गये

७ यह श्रीसंनूतविजय अरु नद्रबाहुस्वामीके पाट ऊपर श्रीस्थूलनद्र स्वामी बैठे इनका बहुत वृत्तांत है, सो परिशिष्टपर्वमध्यसें जान लेनां, १ प्रनवस्वामी, २ शिय्यंनवस्वामी, ३ यशोनद्रस्वामी, ४ संनूतविजय, ५ नद्रबाहुस्वामी, ६ स्थूलनद्र,यह छहों आचार्य चौदह पूर्वके वेत्ता थे, श्री थूलनद्रस्वामी तीस वर्ष गृहस्थावासमें रहे, चौवीश वर्ष व्रतपर्याय, अरु पैंतालीस वर्षयुगप्रधान पदवी,सर्वायु निनानवें वर्षकी नोगकें श्रीमहावीरके पीछे (२१५) वर्षे स्वर्ग गये श्रीमहावीरसें दोसौ चौदह वर्ष पीछें आषाढा चार्यके शिष्य तीसरे निन्हव हूये

स्थूलिनद्रके वखतमें नवनंदोंका एक सौ पंचावन (१५५) वर्षका राज्य उछेद करकें चाणाक्य ब्राह्मणने चंद्रगुप्तराजाकों राजसिंहासन उपर बैठाया, और चंद्रगुप्तके संतानोंनें एक सौ आठ वर्ष तक राज्य कीया चंद्र गुप्त मोरपालका बेटा था, इस वास्ते चंद्रगुप्तका मौर्यवंश कहते हैं यह चंद्रगुप्त जैनमतका धारक श्रावक राजा था, यह चंद्रगुप्त तथा नवनंदका वृत्तांत देखनां होवे, तदा परिशिष्ट पर्व, उत्तराध्ययनवृत्ति तथा आवश्य क वृत्तिसें देख लेनां.

नहीं, तब सिद्धसेनजीने कहा कि यह जो गौ चरानेवाले गोप है, येही मेरे तुमारे साक्षी रहे, ये जिसको कहदेंगे हारा सो हारा, तब वृद्धवादीने कहा बहुत अछा, येही साक्षी रहे, अब तुम बोलो तब सिद्धसेनजीने बहुतसंस्कृत जाषा बोली और चुप करी तब गोपोंने कहा यह तो कुछनी नहीं जानता,केवल ऊचा बोलके हमारे कानोंको पीडा देता है, तब गोप कहने लगे हे वृद्ध ! तू बोल ? पीछें वृद्धवादी अवसर देख के कछा बांध कर तिन गोपोंकी जाषामें कहने लगे, और थोडे थोडे कूदनेजी लगे, जो छंद उच्चारा सो कहते हैं " नविमारिये नविचोरियें, परदारागमणनिवारिये ॥ थोवाथोवदाइयें, सग्गिमट्ठेमट्टेजाइयें ॥ १ ॥ फेरजी बोले और नाचने लगे ॥ छंद ॥ कालो कबल नीचोवट्ठ, छाछें जरिछ दीवडो पट्ट ॥ एवड पडीउ नीले जाड, अवरकिसोछे सग्ग निलाड ॥ २ ॥ यह सुनकरें गोप बहुत खुशी हूये और कहने लगेकि वृद्धवादी सर्वज्ञ है, इसने कैसा मीठा कानोंको सुखदायी हमारे योग्य उपदेश कहा, और सिद्धसेन तो कुछ नहीं जानता तब सिद्धसेनजीने वृद्धवादीकों कहा कि हे जगवन् ! तुम मुजकों दीक्षा देके अपना शिष्य बनाउ क्योंकि मेरी प्रतिज्ञा थी के जो गोप मुझे हाराकहेंगे, तो मैं हारा, और तुमारा शिष्य बनूगा यह सुनकर वृद्धवादीने कहा कि जृगुपुरमें राजसजाके बीच तेरा मेरा वाद होवेगा, परंतु यह गोपोंकी सजामें वादही क्या है ? तब सिद्धसेनने कहा मैं अवसर नहीं जानता, तुम अवसरके ज्ञाता हो, इस वास्ते मैं हारा पीछें वृद्धवादीने राजसजामें उसको पराजय करा, तब सिद्धसेनने दीक्षा लीनी. गुरुने उनका नाम कुमुदचंद्रजी दीया, पीछें जब आचार्य पदवी दीनी, तब फिर सिद्धसेन दिवाकर नाम रक्खा पीछें वृद्धवादी तो और कहींकों विहार कर गये, और सिद्धसेन दिवाकर अवती (उज्जयनमें) गये, तब उजयनका संघ सन्मुख आया, और सिद्धसेन दिवाकरकों सर्वज्ञ पुत्र ऐसा बिरुद दीया, ऐसा बिरुद बोलते हूए अवती नगरीके चौकमें आये, तिस अवसरमें राजाविक्रमादित्य हाथी ऊपर चढा हूआ सन्मुख मिला तब राजानें सर्वज्ञ पुत्र ऐसा बिरुद सुनके तिनकी परीक्षा वास्ते हाथी उपर बैठेहीनें मनसें नमस्कार करा तब आचार्यने धर्मलाज कहा, तब राजाने पूछाकि विनाही वंदना करे, आप मेरेकों धर्मलाज क्यों कर कहा ? क्या यह

राने) जिनमदिरोका उद्धार कराया अर्थात् पुरानें टूटोफूटोंकों नवा बनाया, और छवीस हजार (२६०००) नवीन जिनमदिर बनवाये, और सोने, चांदी पीतल, पाषाण, प्रमुखकी सवा क्रोड प्रतिमा बनवाइ, तिसके बनवायें मदिर नमोल, गिरनार. शत्रुंजय, रतलाम, प्रमुख अनेक स्थानोंमें सबे हमनें अपनी आखोसे देखे है, और सप्रतिकी बनवाइ जिनप्रतिमा तो हमने सैंकडो देखी हैं, इस सप्रति राजाका वृत्तांत परिशिष्ट पर्वादि ग्रंथोंसें समग्र जान लेना

तिसही सुहस्ती सूरि आचार्यने उजयनकी रहने वाली भद्रसेगानीका पुत्र अवती सुकुमालकों दीक्षा दीनी और जहा उस अवती सुकुमालने काल करा था, तिस जगे तिस अवती सुकुमालके महाकाल नाम पुत्रने जिनमदिर बनवाया, और तिस मदिरमें अपने पिताके नामसें अवति पार्श्वनाथकी मूर्त्ति स्थापन करी, कालांतरमें ब्राह्मणोने आपना जोर पा कर तिस मदिरमें मूर्त्तिकों देठ दाब कर उपर महादेवका लिंग स्थापन करके महाकाल (महादेवका) मदिर प्रसिद्ध कर दीया, पीछे जब राजा विक्रम उजयनमें राजा हूआ, तिस अवसरमें कुमुदचद्र अर्थात् सिद्धसेन दिवाकर नामा जैनाचार्यने कल्याणमदिर स्तोत्र बनाया, तब शिवका लिंग फटकर वीचमेंसुं पूर्वोक्त पार्श्वनाथकी मूर्त्ति फिर प्रगट हूइ

इसका सबध ऐसा हैकिः– विद्याधर गच्छमें स्कदिलाचार्य तिनका शिष्य वृद्धवादि आचार्य था, तिस अवसरमें उजयनका राजा विक्रमादित्य था, तिसका मत्री कात्यायन गोत्री देवऋषिनामा ब्राह्मण तिसकी देवसिका नामा स्त्री, तिनका पुत्र सिद्धसेन सो विद्याके अभिमानसें सारे जगतके लोकोंकों तृणवत् (घासफूसशमान) समझता था, और ऐसा जानता था कि – मेरे समान बुद्धिमान कोइभी नहीं, और जो मुझकों वादमें जींत लेवे, तो मैं उसकाही शिष्य बन जाऊंगा पीछें तिसने वृद्धवादीकी बहुत कीर्त्ति सुनी उनके सन्मुख जाने वास्ते सुखासन ऊपर बैठके भृगु कछ (भरोंच) कीतरफ चला जाता था, तिस अवसरमें वृद्धवादीभी र स्तेमें सन्मुख आता हूआ मिला, तब आपसमें दोनोका आलाप सलाप हू आ पीछें सिद्धसेनजीने कहा कि मेरे साथ तुम वाद करो, तब वृद्धवादीने क हाकि वाद तो करुं, परंतु इस जगलमें जीते हारेका कहनेवाला कोइ साक्षी

स्यन मिल गया सर्व पुस्तक वीचमें रह गये और आकाशसें देव वाणी हूइ कि तू इन पुस्तकोंके वाचने योग्य नहीं आगे मत वांचना, वांचेंगा तो तत्काल मर जायगा तब सिद्धसेनने मरकें विचार करा कि दो विद्यामि ली सोही सही. पीछें चित्रोडसें विहार करके पूर्वदेशमें कुमार पुरमें गये, तहां देवपाल राजा था तिसकों प्रतिबोधके पक्का जैनधर्मी करा, तहां वो राजा सिद्धांत श्रवण करता है, जब ऐसे कितनाक काल व्यतीत हूआ, तब एकदा समय राजा छाना आया, और आंसुसें नेत्र नर कर कहने लगा कि–हे नगवन् हम बडे पापी हैं, क्योंकि आपकी ऐसी उत्तम गो ष्ठिका रस नहीं पीसक्ते हैं? कारण कि हम बडे संकटमें पडे हैं, तब आ चार्यने कहा तुमकों क्या संकट हूआ? राजा कहने लगा कि बहुत मेरे वैरीराजे एकठे हो कर मेरा राज्य छीना चाहते हैं, तब फेर आचार्यने कहा कि हे राजन्! तू आकुल व्याकुल मत हो,जब मैं तेरा साहायक हों तो फेर तुझे क्या चिंता है? यह बात सुन कर राजा बहुत राजी हूआ, पीछें आचार्यने राजाकों पूर्वोक्त दोनो विद्यायोंसें समर्थ कर दीया, तिन विद्यायोंसें परदल नग हो गया, तिनका मेरा मम्मा सर्व राजानें लूंट ली या,तब राजा आचार्यका अत्यंत नक्त हो गया उस्सें आचार्य सुखोंमें पडके शिथिलाचारी हो गया यह स्वरूप वृद्धवादीजीनें सुना, पीछें दया करके तिनका उद्धार करने वास्ते तहां आये, दरवाजे आगें खडे हो कर कह ला नेजा कि एक बूढा वादी आया है, तब सिद्धसेननें बुला कर अपनें आगे बैठाया वृद्धवादी, सर्व अपना शरीर वस्त्रसें ढांक कर बोले–"अण फुल्लियफुल्लमतोडहिं, मारोवामोडिहिंमणकुसुमेहिं ॥ अच्चिनिरंजणजिण, हिं म्हिकाइवणेणवणु ॥१॥ इस गाथाकों सुणकर सिद्धसेनने विचारनी करा परंतु अर्थ न पाया तब विचार कराकि क्या यह मेरे गुरु वृद्धवादी है? जिनके कहेका मैं अर्थ नही जानता हू पीछें जब वार वार देखने लगा तब जाना कि यह मेरा गुरु है पीछे नमस्कार करकें क्षमापन मांगा, औरपूर्वोक्त श्लो कका अर्थ पूछा, तब वृद्धवादी कहने लगे "अणफुल्लियेत्यादि" अणफुल्लिय फुल्ल प्राकृतके अनतहोनेंसें अप्राप्त फूल फलोंकों मत तोड, नावार्थ यह हैकि योग जो है, सो कल्पवृक्ष है, किस तरें कि जिस योग रूप वृक्षमें यम नि यम तो मूल है, और ध्यान रूप बडा स्कंध है, तथा समता पणां कवि

धर्मलाभ बहुत सस्ता है ? तब आचार्यने कहा यह धर्मलाभ क्रोड चिंता मणि रत्नोंसेंभी अधिक है, जो कोइ हमको वंदना करता है, उसकों हम धर्मलाभ कहते हैं और ऐसेंभी नहीं,जो तुमने हमकों वंदना नहीं करी! तुमनेंभी अपने मनसें वंदना करी, तो मनही सर्व कार्योंमें प्रधान है, इस वास्ते हमने धर्म लाभ कहा है, और तुमनेंभी मेरी परीक्षा वास्तेही मनमें नमस्कार करा है, तब विक्रमराजा तुष्टमान हो कर हाथीसे नीचें उतर कर सर्वसंघकी समक्ष वंदना करी, और एक क्रोड अशर्फी दीनी परंतु आचार्यने अशर्फीयों नही लीनी क्योंकि वे त्यागी थे, और राजाभी पीछा नहीं लेता, तब आचार्यकी आज्ञासें संघपुरुषोने जीर्णोद्धारमें लगा दीनी, राजाके दफतरमें तो ऐसा लिखा है ॥श्लोक॥ धर्मलाभ इतिप्रोक्ते,दूरा दुच्छ्रि तपाणये ॥ सूरये सिद्धसेनाय, ददौकोटिं धराधिप ॥१॥ श्रीविक्रमराजाके आगें सिद्धसेन दिवाकरने ऐसेंभी कहा था कि ॥गाथा॥ पुन्ने वास सहस्से, सयंमि वरिसाण नवनवइकलिए ॥ होइ कुमर नरिंदो, तुहविक्कम राय सारिच्छो ॥ १ ॥ अन्यदा सिद्धसेन चित्रकूटमें गये तहां बहुत पुराने जिनमंदिरमें एक बडा मोटा स्थंभ देखा, तब किसीकों पूछाकि यह स्थंभ किसतरांका है ? एह सुन कर किसीने कहा कि यह स्थंभ औषध द्रव्यमय जलादि करकें अभेद्य वज्रवत् है इस स्थंभमें पूर्वा चार्योनें बहुत रहस्य विद्याके पुस्तक स्थापन करे हैं, परंतु किसीसें यह स्थंभ खुलता नहीं यह सुन कर सिद्धसेन आचार्यने तिस स्थंभकों सूघा तिसकी गंधसे तिसकी प्रतिपक्षी औषधीयोंका रस छांटा तिस्सें वो स्थंभ कमलकी तरें खिड गया, तब तिसमें पुस्तक देखा तिनमें सु एक पुस्तक ले कर वांचा, तिसके प्रथम पत्रमें दो विद्या लिखी पाइ, एक स रसों विद्या और दूसरी सुवर्णविद्या, तिसमें सरसों विद्या उसको कहतें है,कि जो काम पडे तब मंत्रवादी जितनें सरसोंके दाने जपके जलाशयमें गेरे उतनेही अश्वार बैतालीश प्रकारके आयुधों सहित बाहिर निकलके मैदानमें खडे हो जाते हैं, तिनोंसें शत्रुकी सेना भग हो जाती है, पीछें जब वो कार्य पूरा हो जाता है, तब अश्वार अदृश्य हो जाते हैं, और दूसरी हेमविद्यासें विनामेहनतके जितना चाहे, उतना सुवर्ण हो जाता है, ये दो विद्या सिद्धसेनने लेलीनी, पीछे जब आगे वांचने लगा तब

व्याहृत विश्वलोक, मनाविमध्यातमपुण्यपापं ॥१॥ इत्यादि प्रथमही श्लोक पढनेसे लिंगमेंसे धूआं निकला तबलोक कहने लगे शिवजीका तीसरा नेत्र खुला है, अब इस भिक्षुकों अग्निनेत्रसें भस्म करेगा तबतो विजलीके तेजकी तरें तडतडाट करता प्रथम अग्नि निकला पीछे श्रीपार्श्वनाथजीका बिंब प्रगट हूआ, तब वादी सिद्धसेननें कल्याण मंदिरादि स्तवनों करी स्तवन करकें क्षमापन मांगा, तब राजा विक्रमादित्य कहने लगाकि हे भगवन्! यह क्या अदृश्यपूर्व देखनेमें आया? यह कौनसा नवीन देव है? और यह प्रगट क्यों कर हूआ? तब सिद्धसेनजीनें आवतीसुकुमाल और तिसके पुत्र महाकालने पिताके नामसें आवती पार्श्वनाथका मदिर और मूर्त्ति बनाइ स्थापन करी, तिसकी कितनेक वर्ष लोकोंने पूजा करी अवसर पाकर ब्राह्मणोंने जिनप्रतिमाकों देव दावके ऊपर यह शिवलिंग स्थापन करा इत्यादि सर्व वृत्तांत कहा,और हे राजन्! इस मेरी स्तुतिसें शासनदेवताने शिवलिंग फाडके वीचमेंसें यह प्रतिमा प्रगट कर दीनी, अब तूं सत्यासत्यका निर्णय कर ले तब विक्रमादित्यने एक सौ गाम मंदिरके खरच वास्ते दीये, और देवके समक्ष गुरु मुखसें बारां व्रत ग्रहण करे, और सिद्धसेनकी बहुत महिमा करी, अपने स्थानमें गया और वादींद्र (सिद्धसेनदिवाकरकों) संघने जिनधर्मकी प्रभावनासें तुष्टमान हो कर संघमें लीया अरु पूर्ववत् आचार्य बनाया

एकदा प्रस्तावे सिद्धसेन दिवाकर विहार करते हूये मालवेके देशमें जो ॐकारनामें नगर है,तहां गये,तिसनगरके भक्त श्रावकोनें आचार्यकों विनती करी,जैसें हे भगवन्! इसी नगरके समीप एक गाम था,तिसमें सुवर नामा राजपुत्र ग्रामणी था, तिसकी दो स्त्रीयां थी, एक स्त्रीके प्रथम पुत्री जन्मी वो स्त्री मनमें खीजी तिस अवसरमें उसकी सौकनभी प्रसूत होने वाली थी,तब तिस बेटीवालीनें विचारा कि इसके पुत्र न होवे,तों ठीक है,क्योंकि नही तो यह पतिकों वल्लभ हो जावेगी, तब दाइसें मिलके उससें पैदा हूआ पुत्रकों बाहिर गिरा दीया, और तत्कालका मरा हूआ लडका उसके आगें रख दीया पीछे जौनसा लडका बाहिर गेरा गया था, उसकों कुलदेवीनें गौका रूप करकें पाला जब आठ वर्षका हूआ तब इस ॐकार नगरके शिवभवनके अधिकारी भरहनें देखा और अपना चेला बना लीया, एकदा प्रस्तावे

पणा, वक्तापणा, यश, प्रताप, मारण, उच्चाटन, स्तंभन, वशीकरणादि सिद्धियों कि जो सामर्थ सो फूल है, अरु केवलज्ञान फल है, अजी तो योगकल्पवृक्षके फूलही लगे हैं सो केवल ज्ञानरूप फल करकें आगे फलेंगे इस वास्ते तिन अप्राप्त फल पुष्पोंकों क्यों तोरता है ? अर्थात् मत तोड ऐसा नावार्थ है, तथा "मारोवा मोडिहिं" जहां पांच महाव्रत आरोपा है तिनकों मत मरोड "मणुकुसुमेत्यादि" मनरूप फूलें करी निरंजन जिन पूजय (निरंजन जिनकों पूज) "वनात् वनकिंहिंमसे" राजसेवादि बुरे नीरस फल क्यों करता है ? इतिपद्यार्थ तब सिद्धसेनसूरिने गुरु शिक्षाकों अपने शिर उपर धरके और राजाकों पूछके वृद्धवादी गुरुके साथ विहार करा, और निबिड चारित्र धारण करा, अनेक आचार्योंसें पूर्वोंका ज्ञान सीखा, वृद्धवादी स्वर्गवास हूए पीछे एकदा सिद्धसेनजीने सर्वसंघ एकठा करकें कहा कि जेकर तुम कहोतो सर्वागमोंकों मैं संस्कृतनाषामें करदेउं तब श्रीसंघने कहा क्या तीर्थंकर गणधर संस्कृत नही जानते थे ? जो तिनहोंनें अर्द्धमागधीनाषामें आगम करे ? ऐसी बात कहनेसे तुमकों पारांचिक नाम प्रायश्चित्त आवेगा हम तुमसें क्या कहें ? तुम आपही जानते हो, तब सिद्धसेनने विचार करकें कहा कि, मैं मौन करकें बारांवर्षका पारांचिक नाम प्रायश्चित्त लेकें गुप्त मुख वस्त्रिका, रजोहरणादि लिंग करकें और अवधूत रूप धारके फिरुगा, ऐसें कह कर गच्छकों छोडके नगरादिकोंमें पर्यटन् करने लगे बारां वर्षके पर्यंतमें उज्जयन नगरीमें महाकालके मंदिरमें शेफालिकाके फूलों करकें वस्त्ररंगे पहने हूए सिद्धसेनजी जाके बैठा तब पूजारी प्रमुख लोकोंने कहा तुम महादेवकों नमस्कार क्यों नही करता ? सिद्धसेन तो बोलतेही नहीं हैं ? ऐसें लोकोंकी परंपरासें सुन कर विक्रमादीत्यनेजी तहां आ कर कहा "क्षीरलिलिक्षोनिक्षोकिमितित्वयादेवोनवंद्यते" तब सिद्धसेनने कहा मेरे नमस्कारसें तुमारे देवका लिंग फट जायगा फेर तुमकों महादुःख होवेगा मैं इस वास्ते नमस्कार नही करता हूं तब राजाने कहा लिंग फटे तो फट जानेद्यो परंतु तुम नमस्कार करों, पीछें सिद्धसेनजी पद्मासन बैठके कहने लगा, सुनो तब द्वात्रिंशका करकें देवका स्तवन करने लगा, तथा हि ॥ श्लोक ॥ इंद्रवज्रवृत्तम् ॥ स्वयंभुव भूतसहस्त्रनेत्र,मनेकमेकाक्षरभावलिंग ॥ अव्यक्तम

सेनकी गच्छ पास खबर करनेकों भेजा,तिस भट्टने सूरियोंकी सभामे आधा श्लोक पढा और वार वार पढताही रहता है, वो आधा श्लोक यह है – स्फुरंति वादिखद्योता, सांप्रतं दक्षिणापथे ॥ जब वार वार यह अर्द्ध श्लोक सुना तब सिद्धसेनकी बहिन साधवीनें सिद्ध सारस्वत मत्रसें अर्द्ध श्लोक पूरा करा नूनमस्तगतोवादी, सिद्धसेनोदिवाकर ॥ १ ॥ पीछे तिस भट्टने सर्ववृत्तांत सुनाया तब संघकों बडा शोक हूआ ॥ इति सिद्धसेन दिवाकरका प्रसगसे सबंध कथन करा ॥

यह सुहस्ति आचार्य तीस वर्ष गृहस्थावासमें रहे और चौवीसवर्ष व्रत पर्याय, तथा छेतालीश वर्ष युगप्रधान पदवी सब मिलकर एक सौ वर्षकी आयु भोगके श्रीमहावीरसे पीछें दोसौ एकानवे (२९१) वर्ष पीछे स्वर्ग गये, ये आठमें पाट आर्यमहागिरि और सुहस्ति आचार्य हूए.

९ श्रीसुहस्तीसूरिके पाट उपर श्रीसुस्थित और सुप्रतिबद्ध नामा दो शिष्य बैठे, तिनोने क्रोडों वार सूरिमत्रका जाप करा, इसवास्ते गच्छका कोटिक अैसा दूसरा नाम श्रीसंघने रक्खा, क्योंकि सुधर्मस्वामीसें ले कर आठपाट तक तो अनगार निर्ग्रंथगच्छ नाम था पीछे दूसरा कोटिक नाम हूआ.

१० श्रीसुस्थितसूरिके पाट उपर श्रीइन्द्रदिन्नसूरि हूआ इस अवसरमें श्री महावीरसें चारसौ त्रेपन (४५३) वर्ष पीछे गर्दभिल्लराजाके उच्छेद करणेवाला दूसरा कालिकाचार्य हूआ, इसकी कथा कल्पसूत्रमें प्रसिद्ध है, और श्रीमहावीरसें (४५३) वर्ष पीछे भृगुकच्छ (भडौंचमें) श्रीआर्य खपुटाचार्य विद्याचक्रवर्त्ती हूआ, इनका प्रबध श्रीप्रबधचिंतामणिग्रंथ तथा हारिभद्री आवश्यककी टीकासें जान लेना और प्रभावक चरित्रमें अैसा लिखा है कि – श्रीमहावीरसें (४८४) वर्ष पीछे खपुटाचार्य और (४६४) (४६७) वर्ष पीछे आर्यमगु, वृद्धवादि, पादलिप्त तथा कल्याण मदिरका कर्त्ता उपर जिसका प्रबध लिख आये सो सिद्धसेन दिवाकर हूआ जिनोने विक्रमादित्यको जैनधर्मी करा सो विक्रमादित्य श्रीमहावीरसें (४७०) वर्ष पीछे हूआ सो (४७०) वर्ष अैसे हूएहैं;– जिस रात्रिमें श्रीमहावीरजी निर्वाण हूए उस दिन अवति नगरीमें पालक नामा राजेकों राज्याभिषेक हूआ, यह पालक चद्दप्रद्योतका पोता था तिसका राज्य (६०) वर्ष रहा, तिसके पीछें श्रेणिकका बेटा कोणिक और कोणिकका बेटा उदायी जब वि

कन्य कुब्ज देशका राजा आंखोंसे आधाने विग् विजय कार्यसें तहां प्रयाण करा तव रात्रिमें उस छोटे चेलेको शिवजक्त व्यंतर देवतानें कहा कि शेष जोगराजाकों देना, उसकी आंख अछी हो जायेंगी, तैसेही करा तिस्सें राजाकी आंख अछी हो गइ तव राजाने सौ गाम मंदिरके खरच वास्ते दीये और यह वडा ऊंचा जो शिवका मंदिर है सोजी उसीनें बनवाया, और हम इस नगरमें रहते हैं परंतु मिथ्यादृष्टियोंके बलवान् होनेंसें हम जिनमंदिर बनाने नही पाते हैं, इस वास्ते आपसें विनति करते हैं, कि इस मंदिरसें अधिक हमारा मंदिर यहां बने तो ठीक है, और आप सर्वतरेंसे सामर्थ हों तिनका वचन सुनकर वादिइने आवतीमें आकर चार श्लोक हाथमें ले कर विक्रमादित्यके द्वार पास आये दरवाजे दारके मुखसें राजाकों कहाया " दिदृक्षुर्भिक्षुरायातस्तिष्ठति द्वारवारित हस्तन्यस्तचतु श्लोक उतागछतुगछतु॥१॥ तिस श्लोककों सुनकर विक्रमादित्यनें बदलेका श्लोक लिखकर भेजा " दत्तानिदशलक्षाणि, शासनानिचतुर्दश ॥ हस्तन्यस्तचतु श्लोक उतागछतु गछतु ॥ २ ॥ तिस श्लोककों सुनकर आचार्यने कहा भेजा कि भिक्षु तुमकों मिला चाहता है, परंतु धन नहीं लेता तब राजाने सन्मुख बुलवाये और पिछानके कहने लगा कि गुरुजी बहुत दिनों पीछें दर्शन दीया तब आचार्य कहने लगे धर्मकार्यके करनेंसें बहुत दिन हूये फिरसें आना हूआ अब चार श्लोक तुम सुनो ॥ अपूर्वेयं धनुर्विद्या, जवताशिक्षिता कुत ॥ मार्गणौघ समन्येति, गुणोयातिदिगतरे ॥ १ ॥ सरस्वतीस्थितावक्रे, लक्ष्मीकरसरोरुहे ॥ कीर्त्ति किंकुपित राजन्, येन देशांतरंगता ॥ २ ॥ कीर्त्तिस्तेजातजाड्येव, चतुरंजोधिमज्जनात्, ॥ आतपायधरानाथ, गतामार्त्तंडमंडल ॥ ३ ॥ सर्वदासर्वदोसीति, मिथ्या सस्तूयसे जनै ॥ नारयोलेनिरे पृष्ठ, नवक्षपरयोषित ॥ ४ ॥ यह चारों श्लोक सुनकें राजा बहुत खुश हूआ, और आचार्यकों कहने लगा जो मेरा राज्यमें सार है, सो मांगो तो देउ तब आचार्यनें कहा मुझेतो कुछजी नही चाहिता, परंतु ऊँकार नगरमें चतुर्द्वार जैनमंदिर शिवमंदिरसें उचा बनाउ और प्रतिष्ठाजी कराउ तब राजानें वैसेंही करा तब जिनमत प्रजावना देखकें सघ तुष्टमान हूआ, इत्यादि प्रकारसें जैनधर्मकी प्रजावना करते हूए दक्षिणदेशमें प्रतिष्ठानपुरमें जा कर अनशन करके देवलोक गये, तब तहांसे सघने एक जट्टकों सि-

प्रधान आचार्य हूये तथा श्रीमहावीरसे पांचसौ तेतीस (५३३) वर्ष पीछें श्रीआर्यरक्षितसूरिने सर्व शास्त्रोंका अनुयोग पृथग् पृथग् कर दीयें, ये प्रबंध आवश्यक वृत्तिसें जान लेना. तथा श्रीमहावीरसे (५४८) में वर्ष त्रैराशिके जीतने वाले श्रीगुप्त सूरि हूये, तिनका प्रबंध उत्तराध्यनकी वृत्ति तथा श्रीविशेषावश्यकसे जान लेना, जिसने त्रैराशिक मत निकाला तिसका नाम रोहगुप्त था, वो श्रीगुप्तसूरिका चेलाथा, जिसका उलूक गोत्र था जब रोहगुप्त गुरुके आगे हारा, और मत कदाग्रह न छोडा, तब अ तरजिका नगरीके बलश्रीराजाने अपने राज्यसे बाहिर निकाल दीया, तब तिस रोहगुप्तनें कणाद नाम शिष्यकरा, उसको १ द्रव्य, २ गुण, ३ कर्म, ४ सामान्य, ५ विशेष, ६ समवाय, इन षट् पदार्थोंका स्वरूप बतलाया, तब तिस कणादनें वैशेषिक सूत्र बनाये, तहांसें वैशेषिक मत चला

१४ श्रीवज्र स्वामीके पाट ऊपर चौदवें श्रीवज्रसेन सूरि बैठे, वे दु र्भिक्षमें श्रीवज्र स्वामीके वचनसे सोपारक पत्तनमें गये तहां जिनदत्तके घ रमें ईश्वरी नामा तिसकी भार्याने लाख रूपकके खरचनेसे एक हांमी अ न्नकी रांधी, जिसमें विष (जहर) मालने लगी, क्योंकि उनोंनें विचाराथा कि अन्न तो मिलता नहीं तिस वास्ते जहर खाके सर्व घरके आदमी मर जायेंगे, तिस अवसरमें श्रीवज्रसेन सूरि तहां आये, वो उनकों कहने लगे कि तुम जहर मत खाउ कलको सुगाल हो जावेगा तैसेंही हूआ तब तिन शेठके चार पुत्रोंनें दीक्षा लीनी, तिनके नाम लिखते हैं — १ नागें द्र, २ चंद्र, ३ निवृत्त, ४ विद्याधर, तिन चारोंसें स्व स्व नामके चार कुल बने यह वज्रसेन सूरि नव वर्ष तक गृहस्थावासमें रहे और (११६) वर्ष समान साधुव्रतमें रहे तथा तीन वर्ष युग प्रधान पदवीमें रहे सर्वायु (१२८) वर्षकी भोगके श्री महावीरसे (६२०) वर्ष पीछें स्वर्ग गये, यहां श्रीवज्रस्वामी और वज्रसेन सूरिके बीचमें आर्य रक्षित सूरि तथा श्री दुर्बलिका पुष्य सूरि, यह दोनो युग प्रधान हूये, श्रीमहावीरसें (५८४) वर्ष पीछें सातवा निन्हव हूआ, तथा श्रीमहावीरसें (६०९) वर्ष पीछें श्री कृष्ण सूरिका शिष्य शिवभूति नामें था तिने दिगंबर मत प्रवृत्त करा, सो अधिकार विशेषावश्यकादिकोसें जान लेना

१५ श्रीवज्रसेन सूरिके पाट ऊपर श्रीचंद्रसूरि बैठे, तिनके नामसे गछ

ना पुत्रके मरा तव तिसकी गद्दी उपर नंद नामा नाइ बेठा, तिनकी वं
में सर्व नंदनामा नव राजे हूए तिनका राज्य (१५५) वर्ष तक रहा;
वमें नदकी गद्दी उपर मौर्यवशी चंद्रगुप्त राजा हूआ तिसका बेटा बिं
सार तिसका वेटा अशोक तिसका वेटा कुणाल तिसका बेटा संप्रति महार
जादि हूए, इन मौर्यवशीयोका सर्व राज (१०८) वर्ष तक रहा यह १
वोक्त सर्वराजे प्रायें जैनमत वाले थे तिनके पीछे तीस वर्ष तक पुष्पमित्र
राजाका राज्य रहा, तिस पीछें बलमित्र, भानुमित्र, यह दोनो राजाक
राज्य (६०) वर्ष तक रहा, तिस पीछे नजवाहन राजाका राज्य (४०
वर्ष तक रहा, तिस पीछें तेरा वर्ष गर्दभिल्लीका राज्य रहा, और चार व
शकोंका राज्य रहा, पीछे विक्रमादित्यनें शकोंकों जीतके अपना राज्य
जमाया यह सर्व (४७०) वर्ष हूए

११ श्रीइंद्रदिन्न सूरिके पाट ऊपर श्रीदिन्नसूरि हूये १२ दिन्न सूरिके पाट
उपर श्रीसिंहगिरि सूरि हूये, १३ श्रीसिंहगिरिजीके पाट ऊपर श्रीवज्र
स्वामी हूये, जिनकों बाल्यावस्यासें जातिस्मरण ज्ञान था, जिनकों आका
शगमन विद्याभी थी, जिनोंने दूसरे बारा वर्षी कालमें संघकी रक्षा करी,
तथा जिनोंने दक्षिणपथमें बौधोंके राज्यमें श्रीजिनेंद्रपूजा वास्ते फूल लाके
दीये, बौद्धराजाकों जैनमती करा, यह आचार्य पीछला दशपूर्वका पाठक
हूआ, जिनोंसें हमारी वज्री शाखा उत्पन्न हूइ, इनका प्रबंध आवश्यक दृ
तिसें जान लेना सो वज्रस्वामी श्रीमहावीरसें पीछें चार सौ छानवे और
विक्रमादित्यके संवत छवीसमें जन्मे, और आठ वर्ष घरमें रहे चौतालीस
वर्ष समान साधुव्रतमें रहे और छत्तीस वर्ष युगप्रधान पदवीमें रहे, सर्वायु
अठाशी वर्षकी भोगी, तथा इन आचार्यके समयमें जावडशाह सेठने श्री
शत्रुंजय तीर्थका संवत् १०८) में तेरहवा बडा उद्धार करा, तिसकी श्री
वज्र स्वामीने प्रतिष्ठा करी यह श्रीवज्र स्वामी श्रीमहावीरसें (५०४) वर्ष
पीछें स्वर्ग गये, इन श्रीवज्र स्वामीके समयमें दशमा पूर्व और चौथा सं
हनन और चौथा संस्थान व्यवछेद होगये, यहां श्रीसुहस्ती सूरि आठमें
और श्रीवज्र, स्वामी तेरहवे पाटके वीचमें अपर पटावलियोंमें १ श्रीगुण
सुंदरसूरि, २, श्रीकालिकाचार्य, ३ श्रीस्कंधिलाचार्य, ४ श्रीरेवतमित्रसूरि,
५, श्रीधर्मसूरि, ६ श्रीभद्रगुप्ताचार्य, ७ श्रीगुप्ताचार्य, यह सात क्रमसें युग

नमिन्नवन, प्रतिष्ठयामद्दितपाणिसौनाग्य ॥ अनवधीराचार्य, स्त्रिनि. शते साधिकै राज्ञ ॥ १ ॥

२२ श्रीवीरसूरिके पाट ऊपर श्रीजयदेवसूरि वैठे, २३) श्रीजयदेवसूरिके पाट ऊपर श्रीदेवानन्दसूरि वैठे इस अवसरमें श्रीमहावीरसे (७४५) वर्ष पीछे वलनी नगरी नंग हूइ, तथा (७७२) वर्ष पीछे चैत्येस्थिति तथा (७७६) वर्ष पीछे ब्रह्मद्दिपिका २४) श्रीदेवानन्दसूरिके पाट ऊपर श्रीविक्रमसूरि वैठे, २५) श्रीविक्रमसूरिके पाट ऊपर श्रीनरसिंहसूरि वैठे यत ॥ नरसिंहसूरिरासी,दतोऽखिलग्रंथपारगोयेन ॥ यक्षोनरसिंहपुरे, मांस रतिस्त्याजितास्वगिरा ॥ १ ॥ २६) श्रीनरसिंहसूरिके पाट ऊपर श्रीसमुद्रसूरि वैठा ॥श्लोक॥ वसततिलकावृत्तम् ॥ खोमीणराजकुलजोपि समुद्रसूरि, र्गछ शशास किल य प्रवण प्रमाणी ॥ जित्वातदाक्षपनकान् स्ववश वितेने, नागह्रदेभुजगनाथनमस्यतीर्थम् ॥१॥२७) श्रीसमुद्रसूरिके पाट ऊपर श्रीमानदेव सूरि हूए॥श्लोक॥ वसततिलकावृत्तम् ॥ विद्यासमुद्रहरिनद्रमुनींद्रमित्रं, सूरिर्वनूव पुनरेव हि मानदेव ॥ मांद्यात्प्रयातमपियोनघसूरिमंत्रं, लेनेंविकामुखगिरा तप सोज्झयंते ॥ १ ॥ श्री महावीरसे एक हजार वर्ष पीछें सत्यमित्र आचार्यके साथ पूर्वोंका व्यवछेद हूआ, यहां १ श्रीनागहस्ति, २ रेवतीमित्र, ३ ब्रह्मद्दीप, ४ नागार्जुन, ५ नूतदिन्न, ६ श्रीकालकसूरि, ये छै युगप्रधान यथाक्रमसे श्रीवज्रसेनसूरि और सत्यमित्रके वीचमें हूए, इन पूर्वोक्त छै युगप्रधानोंमेंसे शक्राभिवंदित और प्रथमानुयोग सूत्रोंका सूत्रधार कल्प श्रीकालिकाचार्य श्रीमहावीरसे (९९३) वर्ष पीछें पंचमीसें चौथकी सवत्सरी करी तथा श्रीमहावीरात् (१०५५) वर्ष पीछे और विक्रमादित्यसें (५८५) वर्ष पीछे यकनी साधवीका धर्म पुत्र श्रीहरिनद्र सूरि स्वर्गवास हूए, तथा (१११५) वर्षपीछे श्रीजिननद्रगणि युगप्रधान हूआ और यह जिननद्रीय ध्यानशतकका कर्त्ता होनेंसें और हरिनद्रसूरिके टीका करनेसें दूसरा जिननद्र है, यह कथन पट्टावलिमें है, परंतु श्रीजिननद्रगणिक्षमाश्रमणकी आयु (१०४) वर्षकी थी, इस वास्ते जे कर हरिनद्रसूरिके वखतमें जीते होवें तोनी विरोध नहीं

२८ श्रीमानदेवसूरिके पाट ऊपर श्रीविबुधप्रनसूरि हूआ, २९) श्रीविबुधप्रनसूरिके पाट ऊपर श्रीजयानंदसूरि हूआ, ३०) श्रीजयानंदसूरिके पा

का तीसरा नाम चन्द्रगच्छ हूआ, (१६) श्री चन्द्रसूरिके पाट ऊपर श्री
मतनद्रसूरि हूये, वे पूर्वगत श्रुतके जानकार थे, वैरागके रंगसें निर्मल हू
जगलोंमें रहते थे, तब लोकोंने चन्द्रगच्छका नाम वनवासी गच्छ रक्खा,
श्रीसामतनद्र सूरिके पाट ऊपर श्रीवृद्धदेव सूरि हूये, तथा श्रीमहावीर
(५९५) वर्ष पीछें कोरंट नगरमे नाहड नामा मन्त्रीने तथा सत्यपुर
नाहडमन्त्रीने मदिर बनवाया, प्रतिमाकी प्रतिष्ठा जज्जग सूरिने करी,
तिमा श्री महावीरकी स्थापन करी जिसको "जयउवीरसच्चउरिमंडण"
हते हैं (१७) श्रीवृद्धदेव सूरिके पाट ऊपर श्री प्रद्योतन सूरि हूये
१९ श्री प्रद्योतन सूरिके पाटऊपर श्रीमानदेव सूरि हूये, इनके सूरिप
स्थापनावसरमें दोनो स्कधोंपर सरस्वती और लक्ष्मी साक्षात् देखकें य
चारित्रसे भ्रष्ट हो जावेगा ? ऐसें विचार करकें खिन्नचित्त गुरुको जान
गुरुके आगें ऐसा नियम करा कि — नक्तिवाले घरकी निक्षा और दू
दही, घृत, मीग, तेल, अरु सर्व पक्वान्नका, त्याग कीया, तब तिनके
पके प्रनावसें नमोल पुर जो पालीके पास है तिसमें १ पद्मा, २ जया,
विजया, ४ अपराजिता, ए चार नामकी चार देवी सेवा करती देखी, को
मूर्ख कहने लगाकि ए आचार्य स्त्रीयोंका सग क्यों करता है? तब तिन दे
योंनें तिसकों सिक्षा दीनी, तथा तिसके समयमें तिक्षिला (गजनी) न
रीमें बहुत श्रावक थे तिनमें मरीका उपद्रव हूआ तिसकी शांतिके वास
श्री मानदेव सूरिने नमोल नगरीसें शांतिस्तोत्र बना कर नेजा
२० श्री मानदेव सूरिके पाट ऊपर श्रीमानतुग सूरि हूये जिनोने नक्त
मर स्तवन करकें बाण अरु मयूर पंमितोंकी विद्या करकें चमत्कृत हूआ
जो वृद्ध नोजराजा तिनकों प्रतिबोधा, और नयहर स्तवन करकें नाग
जा वश करा तथा नत्तिनरेत्यादि स्तवन जिनोनें करे हैं प्रनावक चरित्र
प्रथम श्री मानतुग सूरिका चरित्र कहा और पीछें देवसूरिका शिष्य श्री प्रद्यो
तनसूरि तिनका शिष्य श्रीमानदेव सूरिका प्रबध कहा परंतु तहां सका न क
नी चाहियें क्योंकि प्रनावक चरित्रमें औरनी कई प्रबंध आगे पीछें कहे है
२१ श्रीमानतुगसूरिके पाट ऊपर श्रीवीरसूरि हूवा, सो वीरसूरिनें श्री
महावीरसें (७७०) वर्षमें तथा विक्रम सवत्के तीन सौ वर्ष पीछें नाग
पुरमें श्रीनमि अर्हतकी प्रतिमाकी प्रतिष्ठा करी, यदुक्त ॥ आर्या ॥ नागपुरे

वर्ष पीछें श्रीउत्तराध्ययनकी टीका करने वाला थिरापद्रीयगछमें वादी वे ताल श्री शांति सूरि हूये

३७ श्री सर्व देवसूरिके पाट ऊपर श्री देवसूरिके रूपश्री ऐसा राजानें विरुद दीया, (३८) श्री देवसूरिके पाट ऊपर फिर श्री सर्व देवसूरिनामा हूये जिसने यशोभद्र नेमिचंद्रादि आठ आचार्योंकों आचार्य पदवी दीनी, तथा श्री महावीरसें(१४९६)वर्ष पीछें तक्षिलाका नाम गजनी रक्खा गया, (३९) श्री सर्व देवसूरिके पाट ऊपर श्री यशोभद्र अरु नेमिचंद्र ये दो गुरु नाइ आचार्य हूये, तथा विक्रमसे (११३५) वर्ष पीछें कोइ कहता है, (११३९) वर्ष पीछें नवांगीवृत्ति करनें वाला श्री अभयदेवसूरि स्वर्ग वास हूये, तथा कूर्चपुरगछीय चैत्यवासि जिनेश्वरसूरि शिष्य श्री जिनवल्लभ सूरिने चित्रकूटमें श्री महावीरके षट् कल्याणक प्ररूपे

४० श्री यशोभद्रसूरि तथा श्री नेमिचंद्रसूरिके पाट ऊपर श्री मुनिचंद्र सूरि हूये, जिनोने जावज्जीव एकसौवीर पाणी पीना रक्खा, और सर्व विगयका त्याग करा तथा जिनोनें श्रीहरिभद्रसूरिकृत अनेकांत जयपताकादि अनेक ग्रंथोंकी पंजिका करी, उपदेशपदकी वृत्ति, योगबिंडुकी वृत्ति, इत्यादिकोंके करनेसें तार्किक शिरोमणि जगत्में प्रसिद्ध हूआ, और यह आचार्य बडा त्यागी निस्पृह हूआ यहां विक्रम राजासें (११५९) वर्ष पीछें चंद्रप्रभसे पौर्णिमीयक मतोत्पत्ति हुइ तिस चंद्रप्रभके प्रतिबोधने वास्ते श्री मुनिचंद्रसूरिजीने पाक्षिक सप्ततिका करी, है तथा श्री मुनिचंद्रसूरिका शिष्य श्री अजितदेव सूरि वादी अरु श्री देवसूरि प्रमुख हूये तहां वादी श्री अजितदेव सूरिजीनें अणहल पुरपाटणमें श्रीजयसिंह देवराजाकी सभामें अनेक विद्वज्जन संयुक्त चोराशीवाद वादियोंसें जीते, दिगंबरमतका चक्रवर्त्ती कुमुदचंद्र आचार्यकों जिनोंनें वादमें जीता, और दिगंबरोंका पट्टनमें प्रवेश करनां बंध कराया, सो आज तक प्रसिद्ध है तथा विक्रमसें (१२०४) वर्ष पीछें फलवर्द्धिग्राममें चैत्यबिंबकी प्रतिष्ठा करी, सो तीर्थ आजभी प्रसिद्ध है तथा आरासणेमें श्री नेमिनाथकी प्रतिष्ठा करी, तथा जिनोंनें (८४०००) चोरासी हजार श्लोक प्रमाण स्याद्वादरत्नाकर नामा ग्रंथ बनाया, तथा जिनोंसें बडे नामावर चौवीश आचार्योंकी शाखा हूइ, इनोंका जन्म संवत् (११३४) में हूआ, (११५२) में दीक्षा लीनी, (११७४) में सूरिपद

ट ऊपर श्रीरविप्रनसूरि हूआ, सो महावीरसे पीछें (११७०) वर्ष और विक्रमसंवत्से (७००) वर्ष पीछें नमोल नगरमें श्रीनेमिनाथका प्रासाद (मंदिरकी) प्रतिष्ठा करी तथा श्रीवीरात् (११९०) वर्ष पीछें उमास्वाति युगप्रधान हूआ, ३१ श्रीरविप्रनसूरिके पाट ऊपर श्रीयशोदेव सूरि बैठे, यहां श्रीमहावीरसें (१२७२) वर्ष पीछें और विक्रम संवतसें (८०२) के सालमें अणहल्ल पुर पट्टन वनराज राजेने वसाया वनराज जैनी राजा था, तथा श्रीवीरात् (१२७०) और विक्रमादित्यके संवत् ८००) के सालमें जाद्रपद शुक्ल तीजके दिन बप्प जट्ट आचार्यका जन्म हूआ, जिसने गवालियरके आम नाम राजाकों जैनी बनाया इनका विशेष चरित्र प्रबंधचिंतामणि ग्रंथसें जान लेना

३२ श्रीयशोदेवसूरिके पाट ऊपर श्रीप्रद्युम्नसूरि हूआ, ३३) श्रीप्रद्युम्नसूरिके पाट ऊपर श्रीमानदेव, सूरि उपधानवाच्यग्रंथका कर्त्ता हूआ, ३४) श्रीमानदेवसूरिके पाट ऊपर श्रीविमलचंद्र सूरि हूआ, ३५) श्रीविमलचंद्रसूरिके पाट ऊपर श्रीउद्योतनसूरि हूआ, सो उद्योतनसूरि अर्बुदाचले (आबू)के पहाड ऊपर यात्रा करणे आये थे, वहां टेली गामके पास बडी बडवृक्षकी गयामें बैठोनें अपने पाटकी वृद्धि वास्ते अछा मुहूर्त देख करके श्रीमहावीरसें (१४६४) वर्ष और विक्रमसें (९९४) वर्ष पीछें अपने पाट ऊपर श्रीसर्वदेवप्रमुख आठ आचार्य स्थापे कोइ एकले सर्वदेव सूरिकोंही कहते हैं, बडे बडके हेठ सूरि पदवी देनेंसें तहांसें वन वासी गछका पांचमा नाम बडगछ हूआ, " प्रधानशिष्यसतत्या, ज्ञानादि गुणै प्रधानचरितैश्चवृद्धत्वा बृहद्गछइत्यपि "

३६) श्रीउद्योतनसूरिके पाट ऊपर श्रीसर्वदेवसूरि हूए, यहां कोइक तो श्रीप्रद्युम्नसूरि और उपधान ग्रंथका कर्त्ता श्रीमानदेवसूरि इन दोनोंकों पट्टधर नहीं मानते हैं, तिनके अनिप्रायसें सर्वदेवसूरि चौतीसमें पाट हूआ, सो सर्वदेवसूरि श्रीगौतमस्वामीकी तरें सुशिष्य लब्धिमान विक्रमसंवतसें (१०१०) वर्ष पीछें रामसैन्य पुरमें श्रीऋषभचैत्य तथा चंद्रप्रभचैत्यकी प्रतिष्ठा करी, तथा चंद्रावतीमें कुंकणमंत्रिकों प्रतिबोधके दीक्षा दीनी, तिसनेही चंद्रावतीमें जैनमंदिर बनवाया था, तथा विक्रमसें (१०२९) वर्ष पीछें धनपाल पंडितनें देशी नाम माला बनाइ तथा विक्रमसें (१०९६)

है – १ श्री सुधर्मस्वामी, २ सुस्थित सूरि, ३ श्रीचंद्र सूरि, ४ सामतनद्र सूरि, ५ श्रीसर्वदेव सूरि, ६ श्रीजगच्चद्र सूरि

४५ श्री जगचद्र सूरि पट्टे श्री देवेंद्र सूरि हूये, सो मालवेकी उज्जयनी नगरीमें जिनचद्र नामा वडे शेठका वीरधवल नामा पुत्र तिसके विवाह निमित्त महोत्सव हो रहा था, तव वीरधवल कुमारको प्रतिवोध करकें सवत् (१३०२) वर्पमें दीक्षा दीनी, तिस पीछें तिसके नाइकोंनी दीक्षा देकर चिरकाल तक मालव देशमें विचरे, तिस पीछें गुर्जर देशमें देवेंद्र सूरि श्री स्तन स्तीर्थमे आये, तहां पहिलां श्री विजयचद्र सूरि गीतार्थोंको पृथक् पृथक् वस्त्रके पोटले देता है, और नित्य विगय खानेकी आज्ञा देता है, और वस्त्र धोनेकी तथा फल, शाक लेनेकी और निर्वृकतके प्रत्याख्यानमें विगयगतका लेना कहता है और आर्याका ल्याया आहार साधु खावे, यह आज्ञा देता है, और दिनप्रत्यें द्विविध प्रत्याख्यान और गृहस्थोके अवर्जिने वास्ते प्रतिक्रमण करणेकी आज्ञा देता है, और सविनागके दिनमें तिसके घरमें गीतार्थ जावे, लेपकी सनिधि रखनी, तत्कालोष्णोदका ग्रहण करणा इत्यादि काम करनेंसे कितनेक साधु शिथिलाचार्योंको साथ लेकर सदोप पौषधशालामें रहा

इन विजयचद्राचार्यकी उत्पत्ति असें है मत्री वस्तुपालके घरमें विजयचद्रनामा दफतरीया, वो किसी अपराधसें जेहल खानेमें कैद हूआ, तब श्री देवचद्र उपाध्यायने दीक्षा देनेकी प्रतिज्ञा करवा कर छुडा दीया, पीछें तिसने दीक्षा लीनी, सो बुद्धिवलसे वहुश्रुत हो गया, तव मत्री वस्तुपालनें कहाकि ये अभिमानी हैं, इस वास्ते सूरिपदके योग्य नहीं हैं इस तरें मने करते हूए तोनी श्री जगचद्र सूरिजीने श्री देवचद्र उपाध्यायके कहनेंसें सूरिपद दे दीया, क्योकि यह देवेंद्र सूरिका सहायक होवेगा असा जान कर सूरिपद दीया, पीछें वो विजयचद्र वहुत काल तक श्री देवेंद्र सूरिके साथ विनयवान् शिष्यकी तरें वर्त्तता रहा परतु जव मालव देशसें श्री देवेंद्र सूरि आये, तव वदना करनेकोनी नहीं आया, तव देवेंद्र सूरिजीने कहला भेजा कि एक वस्तिमें तुम वारा वर्प कैसे रहे ? तव विजयचद्रने कहाकि शांत दांतको वारां वर्प एक जगेम रहनेसें कुछ दोष नहीं सविग्नसाधु सवे देवेंद्र सूरिके साथ रहे, और देवेंद्र सूरिजी तो अनेक स

मिला, (१२२०) की श्रावणकृष्णसप्तमी गुरुवारे स्वर्गको प्राप्त हूये, तिनोंके समयमें श्री देवचंद्रसूरिका शिष्य तीन क्रोड ग्रंथका कर्त्ता, कलिकालमें सर्वज्ञ बिरुदका धारक, पाटणके राजा कुमारपालका प्रतिबोधक, सवा लक्ष श्लोक प्रमाण पचांग व्याकरणका कर्त्ता, श्री हेमचंद्रसूरि विद्या समुद्र हूआ, तिनका विक्रमसवत् (११४५) में जन्म (११५०) में दीक्षा (११६६) में सूरिपद अरु (१२२९) में स्वर्गवास हूआ, इनोंका सपूर्ण प्रबध देखना होवे, तदा श्री प्रबध चिंतामणि तथा कुमारपाल चरित्रसे देख लेना ४१ श्री मुनिचंदसूरिके पाट ऊपर श्री अजितदेव सूरि हूये, तिनोंके समयमें सवत् (१२०४) में खरतरोत्पत्ति, सवत् (१२१३) वर्षे आंचलिकमतोत्पत्ति, सवत् (१२३६) वर्ष सार्द्धपौर्णिमीयक मतोत्पत्ति, सवत् (१२५०) वर्ष आगमिक मतोत्पत्ति, हूइ, तथा श्री वीरभगवानसें (१६८२) वर्षे वागभट मंत्रीने शत्रुंजयका चौदहमा उद्धार कराया, साढे तीन क्रोड रूपक लगाया

४२ श्री अजितदेव सूरिपट्टे श्री विजयसिंह सूरि हूये, जिनोंनें विवेकमंजरी ग्रंथ करी, जिनोका बडा शिष्य श्री सोमप्रभ सूरि शतार्थतया अर्थात् जनोके बनाये एकेक श्लोकोंके सौ सौ तरेंके अर्थ निकलें और दूसरा मणिरत्न सूरिथा, (४३) श्री विजयसिंह सूरिपट्टे श्री सोमप्रभ सूरि और मणिरत्नसूरि हूये ४४ श्री सोमप्रभ तथा श्री मणिरत्न सूरिके पाट ऊपर श्री जगच्चंद्र सूरि हूये, जिनोंनें अपणे गच्छकों शिथिल देखकें और गुरुकी आज्ञासें वैराग्य रसका समुद्र चैत्रवालगच्छीय श्री देवभद्र उपाध्यायके सहायसें क्रिया उद्धार कीया, और हीरलाजगच्चद सूरि विरुद पाया, क्योंकि जिनोंनें चितोडके राजाकी राजधानी अघाट अर्थात् (अहडमें) बत्तीस दिगबराचार्योंके साथ वाद करता हूआ, हीरेकी तरें अभेद्य रहा, तब राजाने हीरलाजगच्चंद्र सूरि ऐसा विरुद दीया तथा जिनोने यावज्जीव आचाम्लतपका अभिग्रह करा तब बारा वर्ष तप करता हूआ तब चितोडके रानाने तपा बिरुद दीया सवत् (१२८५) के वर्षमें वडगच्छका नाम तप गच्छ हूआ, यह छठा नाम हूआ १ निर्ग्रंथ, २ कोटिक, ३ चंद्र, ४ वनवासी, ५ वडगच्छ, ६ तपागच्छ, इन छहो नामोंके प्रवृत्त होनेके छै आचार्य हेतुरूप हूये है, तिसका नाम अनुक्रममें लिखते

आचार्यने ज्ञानसे जाना कि यह पुरुपके व्रत भंग होजावेगा? इस भयसें निपेध करा, पीछे वो पृथ्वीधर, मम्डपाचलके राजाका मंत्री हूआ, और धन करके तो धनद समान हो गया, पीछें तिसने चौरासी जिनमंदिर और सात ज्ञानके पुस्तकोंके भंडारे बनाये और श्री शत्रुंजयमें इक्कीस धडी प्रमाण सोना खरचकें रूपे मय श्री ऋषभदेवजीका मदिर बनवाया, कोइ कहते हैं कि छप्पन धडी सुवर्ण खरचकें इन्द्रमाला पहरि तथा धरती नगरमें किसी साधर्मीनें ब्रह्मचारीका वेप देनेंके अवसरमें पृथ्वीधरको महाधनाढ्य जानकें तिसकी भेट करा, तब पृथ्वीधरने वोही वेप लेकर तिस दिनसें बत्तीस वर्षकी उमरमें ब्रह्मचर्य व्रत धारण करा, तिसके एकही जांजण नाम पुत्र था, जिसने श्री शत्रुंजय, उज्जयंतगिरिकें शिखर उपर बारह योजन प्रमाण सुवर्ण रूप्यमय एकही ध्वज चढाइ, जिसनें सारंगदेव राजासे कर्पूरका महसूल छुडाया, तथा जिसनें मम्डपाचलमें बहत्तर हजार (७२०००) रूपक गुरुके प्रवेशके उत्सवमें खरच करे

तथा श्री धर्मघोप सूरिने देवपत्तनमें शिष्योंके कहनेसें मंत्रमय स्तुति बनाइ तथा देवपत्तनमें जिनोंके स्वध्यानके बलसे नवीनोत्पन्न हूये कपर्द्दी यक्षनें वज्र स्वामीके महात्मसे पुरानें कपर्द्दी मिथ्यादृष्टिकों निकालाथा, इनोंने उसको प्रतिबोधकें श्री जैनाबिंबोंका अधिष्ठाता करा, तथा जिनों आगें समुद्रके अधिष्ठातानें अपने समुद्रके तरंगोसें रत्न ढोकन करे, एकदा समय किसी दुष्टस्त्रीनें कामेण संयुक्त वडे बनाकर साधुओंको दीए परं श्री धर्मघोप सूरिजीनें वे वडे धरती उपर गिराए, अरु उस स्त्रीकों मंत्रसे पकडा पीछें जब वहु दुःखी हूइ, तब दया करके छोड दीनी, तथा विद्यापुरमें पक्षांतरीयोंकी स्त्रीयोंनें धर्मघोपजीके व्याख्यान रसके भंग करने वास्ते कंठमें मंत्रसें केश गुच्छक कर दीया पीछे श्री धर्मघोप सूरिजीने जब जाना, तब तिन स्त्रीयोंकों स्तंभन कर दीया, तब तिन स्त्रीयोंनें विनति करी कि आज पीछे हम तुमारें गच्छकों उपद्रव न करेंगे, तब गुरुजीने श्री संघके बहुत आग्रहसें छोडी, तथा उज्जयनीमें एक योगी जैनके साधुओंको रहने नहीं देता था जब श्री धर्मघोप सूरि तहां आये तब उस योगीनें साधुओंकों कहा कि अब तुम इहां आये हो सो तकडे हो कर रहनां तब साधुओंने कहा हमभी देखेंगे कि तू क्या करेगा? पीछे उसनें साधु

विग्न साधुके समुदाय साथ उपाश्रयमेंही रहे, तब लोकोंने बडीशालामें रहनेसें विजयचंद्रसूरिके समुदायका नाम वृद्धपौशालिक रक्खा और देवेंद्र सूरिजीके समुदायका लघुपौशालिक नाम दीया, और स्यनतीर्थके चौकमें कुमारपालके विहारमें धर्मदेशा नामे मंत्रि वस्तुपालने चारोवेदोंका निर्णय दायक स्वसमय परसमयके जानकार श्रीदेवेंद्रसूरिजीकों वंदना देके बहुमान दीया, और श्रीदेवेंद्रसूरिजी विजयचंद्रकी उपेक्षा करकें विचरते हुए क्रमसें पाल्हणपुरमें आये, तहां चौरासी इभ्यसेठ अनेक पुरुषोंके साथ परिवरे, सुखासन उपर बैठे हूए शास्त्रके वडे श्रोता व्याख्यान सुनने आते थे, और पालनपुरके विहारमें रोजकी रोज एक मूठक प्रमाण अक्षत और सोलां मण सोपारी दर्शन करनेवाले श्रावकोंकि चढाइ चढती होती थी, इत्यादि बडे धर्मी लोकोंनें गुरुकों विनति करी कि हे भगवन्! यहां आप किसीकों आचार्य पदवी देओ हमारा मनोरथ पूरो तब गुरुने उचित जानके पाल्हन पुरमें विक्रम संवत् (१३२३) में वर्ष श्रीविद्यानंद सूरि नाम देकें वीरधवलकों सूरिपद दीना, और तिसके अनुज भीमसिंहकों धर्मकीर्त्ति उपाध्यायकी पदवी दीनी, तिस अवसरमें प्रल्हादनविहारके सौवर्ण कपिशीर्ष मंडपसे कुंकुमकी वर्षा हूइ, तब सर्व लोकोंकों बडा आश्चर्य हूआ – श्री विद्यानंद सूरिजीने विद्यानंद नाम नवीन व्याकरण बनाया यदुक्त ॥ विद्यानंदाभिध येन, कृतं व्याकरणं नवं ॥ भाति सर्वोत्तम स्वल्प, सूत्र बव्हर्थसंग्रहं ॥ १ ॥ पीछें श्री देवेंद्र सूरिजी फेर मालवेकों गये श्री देवेंद्र सूरिजीके करे हूये ग्रंथोंका नाम लिखते हैं १ श्राद्धदिनकृत्यसूत्रवृत्ती, २ नव्यकर्मग्रंथपंचकसूत्रवृत्ती, ३ सिद्धपंचाशिकासूत्रवृत्ती, ४ धर्मरत्नवृत्ती, ५ सुदर्शनचरित्र, ६ तीनभाष्य, ७ वृंदारवृत्ती, ८ सिरिउसहवद्धमाण प्रमुख स्तवन, कोइ कहते हैं कि श्राद्धदिनकृत्यसूत्रतो चिरंतन आचार्योंका करा है विक्रम संवत् (१३२७)में वर्ष मालवदेशमें देवेंद्र सूरि स्वर्गवास हूये दैवयोगसें विद्यापुरमें तेरह दिनो पीछें श्रीविद्यानंद सूरिजी स्वर्गवास हूये, तब छै मास पीछें सगोत्र सूरिने श्रीविद्यानंद सूरिके भाइ श्री धर्मकीर्त्ति उपाध्यायको सूरिपद देके श्री धर्मघोष सूरि नाम दीया

४६ श्री देवेंद्र सूरिपट्टे श्री धर्मघोष सूरि हूये, जिनोंने मंडपाचलमें शा० श्री पृथ्वीधरको पंचमाणुव्रत लेतेकों ज्ञानसे निषेध करा, क्योंकि

काय़के विराधनाके नयसें और मरुदेशमें शुद्धजलकी दुर्लभताले साधुओं का विहार निषेध करा तथा नीमपल्लीमें दोकार्त्तिक मास हूये तब सोमप्र नजी प्रथम कार्त्तिककी एकादशीकों विहार कर गए क्योंकि उनोंनें जा नाकि नीमपल्लीका नग होगा अरु नग हूए पीछें जो रहे वो, दुखी हूए, सोमप्रन सूरिके करे ग्रंथ जितकल्पसूत्र, यत्राखिलेत्यादि स्तुतीयां, जितेन येनेतिस्तुतीया, श्री मद्धर्म्मेत्यादि, तिनके करे बडे शिष्य विमलप्रन सूरि, श्री परमानंद सूरि, श्री पद्मतिलक सूरि,अरु श्री सोमविमल सूरि थे, जिस दिन पूर्वोक्त श्री धर्मघोष सूरि, देवगत हूए तिस दिनही (१३५७) वर्षे श्री सोमप्रन सूरिजीने श्री विमलप्रन सूरिकों सूरिपद दीया क्योंकि तिनोंने अपना स्वल्पही आयु जाना श्री सोमप्रनजी (१३७३) वर्षे देवलोक गए

४७ श्रीसोमप्रनसूरि पट्टे श्रीसोमतिलकसूरि हूए, तिनोका (१३५५) मे वर्षे माघे जन्म, (१३६९) वर्षे दीक्षा, (१३७३) वर्षे सूरिपदं, (१४२४) वर्षे स्वर्गगमनं, सर्वायु ६९) वर्षकी जाननी, तिनके करे ग्रंथ लखते है — १ बृहन्नव्यक्षेत्रसमास सूत्र, सत्तरिसयठाण, यत्राखिलजयवृषनस्तत्राशर्म० प्रमुखकी वृत्ति, श्रीतीर्थराज०, चतुरर्थीस्तुतित वृत्ति, शुननावानत० श्रीमही रस्तुवेदित्यादिकमलबधस्तव शिवशिरसि श्रीनाभिसनव० श्रीशैवेय० इत्यादि स्तवन श्रीसोमतिलकसूरिक्रम करके १ श्रीपद्मतिलकसूरि, २ श्रीचंद्रशेखरसूरि, ३ जयानंदसूरि, ४ श्रीदेवसुंदरसूरियोंकों सूरि पद दीया,तिनमें श्रीपद्मतिलक सूरि, सोमतिलक सूरिसें पर्यायमें वडे थे, सो एक वर्ष जीते रहे, और वडे वैरागी थे तथा श्रीचंद्रशेखर सूरि,विक्रम संवत् (१३७३)में जन्मे (१३८५)में दीक्षा,(१३९३) में सूरिपद, इनके करे ग्रंथ — १ उषितनोजनकथा,यवराजक्र षिकथा, श्रीमत्स्तंनकहारवधादिस्तवन है, जिनोंके मंत्रों सों मंत्री रजहो वे तिनसेंनी उपद्रव करनेवाले गृद्द, हरिका, दुर्द्दर मृगराज, श्वान, शुरिति दूर हो जाते थे तथा श्रीजयानंदसूरिका विक्रम संवत् (१३८०) वर्षे जन्म, (१३९२) वर्षे आषाढ सुदिसातम सुक्रवारकेदिन धारानगरीमें व्रतग्रहण, (१४२०) में सूरिपद (१४४१) में स्वर्ग गये तिनके करे ग्रंथ १ श्री थूलनद्द चरित्र, २ देवा प्रनोयं प्रमुख स्तवन है

४९ श्री सोमतिलक सूरि पट्टे श्री देवसुंदर सूरि हूए, तिनका (१३९६) वर्षे जन्म, (१४०४) वर्षे दीक्षा (१४२०) वर्षे अणहलपत्तनमें सूरिपद,

ओंकों दात दिखलाये, तब साधुओंने कफोणि (कूहनी) दिखलाइ पी साधुओंने जा कर यह सर्व समाचार अपने गुरुको कहा, वहां योग नेंनी धर्मशालामें विद्याके बलसें बहुत चूहे बनादीये, तब साधु बहु मरे पीछे गुरुजीनें घडेका मुख, वस्त्रसें ढाकके ऐसा मंत्र जपा कि जिस योगी आराटि करता हूआ आके पाकमें पडा, और अपने अपराधक क्षमापना मांगा, तथा किसी नगरमें शाकनीयोंके भयसें मंत्रके कपा दीये जाते थे, एक दिन विना मंत्रे कपाट दीये गये, तब रात्रिकों शाक नीयोंनें उपद्रव करा, गुरुने उनकों विद्यासें स्तंभित करा, एकदा रात्रि गुरुकों सर्पके काटनेसें जब जहेर चढा, तब गुरुने संघकों विधुर देख वे कहा कि दरवाजेमें किसी पुरुषके मस्तकोपरि काष्ठकी भरीमें विषापहार एव वेलडी आवेगी वो वेलडी घसके मकमें देदेनी उस्सें जहर उतर जायगा संघनें तैसेंही करा गुरुराजी हो गये, पीछे तिस दिनसे जावज्जीव छै विग यका त्याग करा, और सदा जुवारकी रोटी नीरस जानके खाते रहे, श्री धर्मघोष सूरिजीके करे ये ग्रंथहैं – सो कहते है – १ संघाचारभाष्यवृत्ती २ सुअधम्मेतिस्तव, ३ कायस्थिति भवस्थिति, ४ चौवीश तीर्थंकरोंके चौ वीश स्तवन, तथा ५ स्वस्ताशमैत्यादि स्तोत्रं, ६ देवेंद्रैरनिशइति श्लेषस्तोत्र, ७ यूयं युवात्वमिति श्लेषस्तुतीयां, ८ जयवृषभेत्यादि स्तुति, यह जयवृषभे त्यादि स्तुति करणेका यह निमित्त थाकि –एक मंत्रीने आठ यमक काव्य कह करकें कहा, कि ऐसें काव्य अब कोइ नहीं बना सक्ता तब गरुने कहाकि ना स्ति नहीं तब तिसने कहा तो हमकों कर दिखलाओ तब गुरुजीनें जयवृषभे त्यादि ७ स्तुति एक रात्रिमें बना कर भीतोंपर लिखकें दिखाइ तब तिसने बडा चमत्कार पाया, गुरुजीने तिसकों प्रतिबोधके जैनी करा, ये श्री धर्मघो ष सूरि विक्रम संवत् (१३५७) में स्वर्ग गये

४७ श्री धर्मघोष सूरि पट्टे श्री सोमप्रभ सूरि हूये, जिनोनें नमि ऊण भणइएवमित्यादि आराधना सूत्र करा, तिनका संवत् (१३१०) में जन्म, (१३२१) में दीक्षा, (१३३२) में सूरिपद, जिनोके इग्यारह अंग सूत्रार्थ कंठ थे, तथा "गुरुनिर्गीयमानायां मंत्रपुस्तकायां यश्चतचरित्र मंत्रपुस्तिका च " ऐसा कह कर तिसमंत्र पुस्तकाको ग्रहण करा, क्योंकि अपर कोइ योग्य नहीं था यह श्री सोमप्रभ सूरिने जलकंकणदेशमें अ

राणक पुरमें श्री धनकृत चौमुखविहारेमें ऋषभादि अनेक शत बिंब प्रतिष्टित करी, ये विक्रम संवत् (१४९९) में स्वर्ग गये

५१ श्री सोमसुंदर सूरि पट्टे श्री मुनिसुंदर सूरि हूये, जिनोंनें अनेक प्रसाद, पद्मचक्र, पट्कारक, क्रियागुप्तक, अर्द्धभ्रम, सर्वतोभद्र, मुरज, सिंहासन, अशोक, भेरी, समवसरण, सरोवर, अष्टमहाप्रातिहार्यादि नवीन त्रिशतिबंध तर्क प्रयोगादि अनेक चित्राक्षर, द्व्यक्षर, पंचवर्ग परिहारादि अनेक स्तवमय त्रिदशतरंगिणीनामा एक सौ आठ हाथ लंबी पत्रिका लिखकें श्री गुरुकों भेजी तथा चातुर्वेद्यविशारद्य निधि, उपदेश रत्नाकर प्रमुख अनेक ग्रंथोंका कर्त्ता, तथा जिनकों श्री स्तंभतीर्थमें दफर खानें वादी गोकुलसंघ,ऐसा नाम कहा,तथा जिनोंनें दक्षिणसे कालसरस्वती ऐसा बिरुद पाया, आठ वर्ष गणनायक, पीछे तीन वर्ष युगप्रधान पद, लोकोंनें प्रसिद्ध करा एक सौ आठ वर्त्तुलिकानादोपलक्षक, बाल्यावस्था मेंभी एक सहस्त्र श्लोक नवीन कंठ कर लेते थे तथा संतिकर नामा समहिम स्तवन करनेंसें योगिनी कृत मरीका उपद्रव दूर करा चौवीश वार विधिसें सूरि मंत्रकों आराधा, तिनमेंभी चौदह वार जिनके उपदेशसे धारादि नगरीयोंके स्वामी पांच राजाओंनें अपने अपने देशोंमें अमारिका ढंढोरा फिराया, तथा सिरोही देशमें सहस्रमल्लराजानेंभी ऽप्रमार प्रवृत्त करी तीडका उपद्रव टाला, इनका विक्रम संवत् (१४३६) में जन्म (१४४३) में दीक्षा (१४६६) में वाचक पद, (१४७८) में बत्तीस सहस्र रूपक खरचकें वृद्धनगरीके शाह देवराजने सूरिपदका महोत्सव करा, (१५०३) वर्षे कार्त्तिकशुदि पडिवाके दिन स्वर्गवास हूआ

५२ श्री मुनिसुंदर सूरि पट्टे श्री रत्नशेखर सूरि हूए, तिनका (१४५७) वर्षे जन्म, (१४६३)वर्षे दीक्षा, (१४८३) वर्षे पंडितपद, (१४९३) वर्षे वाचकपद (१५०२) वर्षे सूरिपद, (१५१७) वर्षे पोषवदि छठ दिनें स्वर्गवास हूआ, जिसका स्तंभतीर्थमें बांबी नामा भट्टनें बाल सरस्वती नाम दीया, तिनके करे ग्रंथ –श्राद्धप्रतिक्रमणवृत्ति, श्राद्धविधिसूत्रवृत्ति, लघुक्षेत्र समास, तथा आचारप्रदीपादि अनेक ग्रंथ जान लेनां तथा जिनोंकें समयमें लुंका नामक लिखारीने संवत् (१५०८) में जिनप्रतिमाका उत्थापक लुंका नामा मत चलाया और तिसके मतमें वेषका धर

यह देवसुंदर सूरि बडा योगाभ्यासी और मंत्र तंत्रकी ऋद्धिका, मंदिर, स्थावर जंगमविषापहारी, जनानल, व्याल अरु हरि, जयका तोडनेवाला अतीतानागत निमित्तका वेत्ता, राजमत्रि प्रमुखोंका पूज्यनीक, यह श्री देव सुंदर सूरिके शिष्य १ श्रीज्ञानसागर सूरि, २ श्री कुलमंडन सूरि, ३ श्री गुणरत्न सूरि, ४ श्री सोमसुदर सूरि, ५ श्री साधुरत्न सूरि, यह पांच बडे शिष्य थे, तिनमें श्री ज्ञानसागरजीका (१४०५) में वर्ष जन्म (१४१७) में दीक्षा, (१४४१) में सूरिपद, (१४६०) में स्वर्गगमन, तिनके करे ग्रंथ श्री आवश्यक, उंगनिर्युक्त्यादि अनेक ग्रंथावचूरी, श्री मुनिसुव्रत स्तवन, घनौघनखंड पार्श्वनाथादि स्तवन, दूसरा श्री कुलमंडन सूरिजीका (१४०९) में जन्म, (१४१७) में दीक्षा, (१४४२) में सूरिपद (१४५५) में स्वर्गगमन, जिनोंके करे ग्रंथ सिद्धांतालापकोद्धार, विश्वश्रीधरेत्यादि, अ ष्टादशारचक्रस्तव, गरीयो और हारस्तवादय है, तीसरा श्री गुणरत्न सूरि तिनके करे ग्रंथ १ क्रियारत्न समुच्चय, २ षड्दर्शनसमुच्चय बृहद्वृत्ति है, चौथा श्री साधुरत्न सूरिजीके करे ग्रंथ – १ यतिजीतकल्पवृत्ति है.

५० श्री देवसुंदर सरि पट्टे श्री सोमसुंदर सूरि हूए तिनका (१४३०) में जन्म, (१४३७) में दीक्षा, (१४५०) में वाचक पद, (१४५७) में सूरिपद, जिसके (१८००) अठारहसो साधु क्रिया पात्र परिवार देखकें कितनेक लिंगी पाखंमीयोंनें पांचसो (५००) रूपक देके एक स हस्र पुरुषोंको उनके वध करनें वास्ते भेजे, तब वे जिस मकानमें गुरु थे तिस मकानमें रातकों छीप रहे, जब मारनेकों उद्यत हूए तब चंद्र माके उद्योतमें श्री गुरुजीनें रजोहरणसें पूजके जब पासा पलटा, तब दे खके तिनके मनमें ऐसा विचार आया कि – ए नींद्रमेंभी क्षुद्र प्राणि योंकी दया करते हैं, और हम इनकों मारने आए हैं, यह कितना अं तर है? तब मनमें डरे और गुरुके पायोंमें पडके अपराध क्षमा कराया, इनोंके करे ग्रंथ – योगशास्त्र, उपदेशमाला, षडावश्यक, नवतत्त्वादि बा लावबोध, भाष्यावचूर्णी, कल्याणिकस्तोत्रादि जिनोंके शिष्य श्री मुनिसुदर सूरि कृष्णसरस्वती बिरुद धारक श्री जयसुदर सूरि, और महाविद्या विडंबन टिप्पनक कारक श्री भुवन सुदर सूरि, जिनके कंठ एकादशांगी सूत्रा र्थ थे, और चौथा जिनसुदर सूरि ये चार जिनकेप्रतापी शिष्य हूए, जिनोंने

पच्चीश वर्ष तक करी, परंतु लुंकेके उपदेशसे साधु कोइनी न हूआ, जब संवत् (१५३३) का शाल आया तब, एक जाणा नामा वनीयके बेटेनें लुंकेके उपदेशसे वेष पहना, उसकों रूषिजूणा नाम दीना, तिसका शिष्य संवत् (१५६८) में रूपजी हूआ, तिसका शिष्य संवत् (१५७८) में जी वाजीरूषि हूआ, तिसका शिष्य (१५८७) में वृद्धवरसिंहजी हूए, तिसका शिष्य संवत् (१६०६) में वरसिंहजी हूआ, तिसका शिष्य संवत् (१६४९) में जसवंतजी हूआ, इस लुंपक मतके तीन नाम हूए, १ गुजराती, २ नागोरी, ३ उतराधी, ॥ इति लुंपक मतोत्पति ॥

५३ श्रीरत्नशेखरसूरि पट्टे श्रीलक्ष्मीसागरसूरि हूए, तिनका (१४६४) में वर्षे जन्म (१४९०) में वर्षे दीक्षा, (१५०१) वर्षे वाचक पद, (१५०८) में सूरिपद, ५४ श्रीलक्ष्मीसागरसूरिपट्टे श्रीसुमतिसाधुसूरि हूआ, ५५ श्रीसुमतिसाधुसूरिपट्टे श्रीहेमविमलसूरि हूए, शिथिलसाधुओंके बीचमेंभी रहे, तोभी जिनोंनें साधुका आचार उल्लंघन न करा, तब कितनेक दिन पीछें बहुत साधुओंनें शिथिलपणा छोडा, तथा रूषिहरगिरि, रूषिश्रीपति, रूषिगणपति, प्रमुख बहुत जनोंनें लुंपक मत छोड के श्रीहेमविमलसूरिके पास दीक्षा लीनी, तिस अवसरमें संवत् (१५६२) में कडुये नामक एक वणियेने कडुयामत निकाला और तीन थूइ मानी अरु इस कालमें साधु कोइभी नहीं दीखता, ऐसा पंथ निकाला, परंतु इसग्रंथके लिखनेवालेके समयमें ये मत नहीं है,व्यवछेद हो गया है,तथा संवत् १५७०) में लुंका मतसें निकलकें बीजा नामा वेषधरने बीजामत चलाया, जिसकों लोक विजय गछ कहते हैं तथा संवत् (१५७२) वर्षे नागपुरीया तपगछसें निकलके उपाध्याय पार्श्वचंद्रनें अपने नामका मत अर्थात् पासचंदीया मत चलाया

५६ श्रीहेमविमलसूरि पट्टे श्रीसुविहितमुनि चूडामणि कुमत तमके मथनेकों सूर्यसमान श्रीआनंदविमलसूरि हूआ तिसका विक्रम संवत् (१५४७) में जन्म (१५५२) में दीक्षा (१५७०) मे सूरि पद तथा आनंदविमलसूरिके साधु शिथिलाचारीभी थे, तोभी तिनके वैरागरंगका भंग नहीं हूआ और जब उनोंनें देखाकि जिनप्रतिमाके निषेधने वाले बहुत बढे और छुद्ध साधु तुछमात्र रह गए अरु उत्सूत्र प्ररूपण रूप जलमें भव्यजन वह चले तब मनमें दयाद्दष्टि लाकें और अपने गुरुकी आज्ञासे

ने वाला संवत् (१५३३) में नाणा नामा प्रथम साधु हूआ, इस मतकी उत्पत्ति ऐसें हूइ है, सो लिखते हैं –

गुजरात देशमें अहमदावादमें जातिका दशाश्रीमालि लुका नामें लिखारी वसता था, सो ज्ञानजी जतीके उपाश्रयमें पुस्तक लिख कर उसकी आमदनीसें गुजारा करताथा, एक दिन एक पुस्तककों लिख रहा था, तिसमेंसे सात पत्रे विना लिखे गेड दीये, जब पुस्तक वालेनें पुस्तक देखा तब पूगकि इस पुस्तकके सात पत्रे क्यों गेड दीये? तब लुका उसके साथ लडने लगा तिस वखत लोकोंनें मार पीटके उपाश्रयसें बाहिर निकाल दीया, और नगरमें कह दीयाकि इस्से कोइ जननी पुस्तक न लिखावे, तब लुका लाचार और क्रोधमें जरकर अहमदाबादसें बैतालीस कोसके लग जग नींबडी गाममें चला गया, उस गाममें लुकेकी बिरादरीका एक लखमसी नामा बणिया राजमें कारजारी था, तिसके आगें बहुत रोया, पीटा, जब तिसने पूगा क्या हूआ? तब लुकेने कहाकि मैं जगवान्का सच्चा मत कहने लगा था, तब तपगच्छके श्रावकोंने मुझे पीटा, अब मैं तेरे पास आया हू, जेकर तू मैरा मददकार बने, तो मैं सच्चामत प्रगट करु, तब तिस लखमसीने कहाकि नींबडीके राज्यमें तू बेशक अपणे सच्चे मतकों प्रगट कर, मैं तेरा मददगार हू, खाने पीनेकोंजी देउगा, और तेरा शास्त्रजी सुनुगा, तब लुकातो श्रीमहावीरके साधुओंकी और श्रीजिनप्रतिमाकी उत्थापना करने लगा, अरु कहने लगा कि यह साधु नहीं हैं, भ्रष्टाचारी हैं निर्दयी हैं, उलटाज्ञान सुनाते हैं, इत्यादि जो आपके मनमानी सो निंदा करी, और शास्त्रोंमेंसेजी जिन जिन शास्त्रोंमें जिनप्रतिमाका जिकर नहीं था वो शास्त्रकों सच्चे माने, और जिनोमें थोडासा जिनप्रतिमाका कथन था, तिन पाठोंके अर्थ कुयुक्तिसें औरके और सुनाने लगा, अरु कहने लगा कि एकतीस शास्त्र सच्चे हैं, तिनमेंजी आवश्यकसूत्रकों तो बिलकुल बिगाडके लोकोंने स्वकपोलकल्पित औरका और बना दीया है, क्योंकि श्रीआवश्यकमें बहुत जगें जिनप्रतिमाका अधिकार चलता है, पीछें एक दिन तिस लुकेकों किसीने कहा कि विना जैनदीक्षाके लीए शास्त्र पढनेका तो व्यवहारसूत्रमें निषेध करे हैं, तो फेर तुम गृहस्थ हो कर शास्त्र क्यों कर पढते हो? तब लुकेने कहा मै व्यवहारसूत्रकोही सच्चा नहीं मानता हूं? इत्यादि प्ररूपणा

मदमदका मान्य मंत्री गलराजा दूसरा नाम मलिक श्रीनगदलनें श्रीशत्रुंज यका वडा संघ निकाला तथा जिनोंके उपदेशसें गांधार नगरके श्रावक रामजीने तथा अहमदावादी साह कुअरजी प्रमुखोंनें श्रीशत्रुंजय चौमुख अष्टापदादि जिनमंदिर बनवाए, गिरनार ऊपर जीर्ण प्रासादोद्धार करा तथा जिनके सूर्यकी तरें उदय होनेंसे वादी रूपीये तारे अदृश्य हो गये, श्रीविजयदान सूरि सर्व सिद्धांतका पारंगामी, अखंमित प्रताप वाला तथा अप्रमत्त पणे रूप करके श्रीगौतममुनिवत् था,तथा गूर्जर मालवक, कछ, मरुस्थली, कुंकणादि देशोमें अप्रतिबद्ध विहार करता हूआ, महातपस्वी, ज्ञावजीव एक घृतविगय विना सर्व विगयका त्यागीथा,जिनोंने एकादशांग सूत्र अनेक वार शुद्ध करे, और जिनोंने बहुत जीवोंको धर्मप्राप्त करा, तिनका संवत् (१५५३) वर्षे जामलामें जन्म, (१५६२) वर्षे दीक्षा (१५८७) में, सूरिपद (१६२२) वर्षे, वटपल्लीमें अनशनें स्वर्ग प्राप्त हूआ

५८ श्री विजयदान सूरि पट्टे श्री हीरविजय सूरि हूआ. जिनका संवत् (१५८३) वर्षे मार्ग्गशीर्षशुदि नवमी दिनें प्रल्हादन पुरका वासी ऊके जाती सा० कूरा भार्या नाथी मदे जन्म हूआ, (१५९६) वर्षे कार्त्तिकवदि दूज दिनें पत्तन नगरें दीक्षा,(१६०७) वर्षे नारदपुरी में श्रीऋषभ देवके मंदिरमें पंमित पद, (१६०८) माघशुक्लपंचमीदिने नारदपुरीमें श्री वरकाणक पार्श्वनाथसनाथे नेमिजिन प्रसादें वाचकपदं, (१६१०) वर्षे सिरोही नगरे सूरिपद,तथा जिनका सौभाग्य वैराग्य निःस्पृहतादि गुणोंकों वचन गोचर करनेंकों बृहस्पतिभी चतुर नहींथा तथा श्री स्तंभतीर्थमें जिनोंके रहनेसें श्रद्धावानोंने एक क्रोड रूपक प्रभावनादि धर्मकृत्योमें खरच करा, तथा जिनोंकें चरण विन्यासके प्रतिपदमें दो मोहर अरु एक रूपक मोचन करा,और जिनोंके आगें श्रद्धालुओंने मोतीयोंसें साथीये करे,तथा जिनोंनें सिरोही नगरमें श्री कुंथुनाथ बिंबोंकी प्रतिष्ठा करी तथा नारदपुरमें अनेक सहस्रबिंबोंकी प्रतिष्ठा करी, तथा जिनोंके विहारादिमें युगप्रधान अतिशय देखनेमें आती थी, तथा अहमदावादमें लुंके मतका पूज्य ऋषि मेघजी नामा था तिसने अपने लुंके मतकों दुर्गतिका हेतु जान कर रजकी तरें आचार्य पद छोडके पच्चीश यतियोंके साथ सकल राजा धिराज बादशाह श्रीअकब्बर राजाकी आज्ञा पूर्वक बादशाही बाजत्रे व

कितनेक संविग्न साधुओंकों साथ ले कर संवत् (१५८२) में शिथिलाचार परिहार रूप क्रिया उद्धार करा, देशमें विचरके बहुत भव्यजनोंका उद्धार करा, और अनेक इभ्योंके पुत्रोंकों धन कुटुंबका मोह त्याग कराके दीक्षा दीनी, और सोरठके राजा पासो खत लिखवाया कि जो जीते सो मेरे देशमें रहे अरु जो हारें सो निकाला जावे, तूणसिंह नामा श्रावक जिसकों बादशाहने बैठने वास्ते पालकी दीनी हूइथी, और बादशाहनें जिसकों मलिक श्रीनगर लबिरुद दीयाथा असा तूणसिंह श्रावकने गुरुकों विनति करी कि साधुओंकों सोरठदेशमें विहार कराओ, तब श्रीगुरुजीने गणि जगर्षिकों साधुओंके साथ सोरठदेशमें विहार कराया, तथा जेसलमेरादि मरवाड देशमें जल दुर्लभ मिलता है, इस वास्ते पूर्वे श्रीसोमप्रभ सूरिनें साधुओंकों मने कर दीया था कि मारवाडमें न जानां, सो विहार कुमतिव्याप्त न हो जावें, तिन जीवोंकी अनुकंपा कर कें और लाभ जान कर साधुओंकों आज्ञा दीनी कि तुम मारवाडमें जा कर कुमतिमतकों खंडन करो, तब लघु वयमें शक्ति करकें श्रीस्थूलिभद्रसमान वैराग्यनिधि निस्पृहावधि जावज्जीव जघन्यसें जघन्यभी षष्ठ अर्थात् दोदिनका उपवास करणां अरु पारणेके दिन आचाम्ल करणां असे अभिग्रहधारी महोपाध्यायश्रीविद्यासागरगणिनें मारवाडदेशमें विहार करा, तिनोंनें जेसलमेरादिकोंमें खरतरोंकों और मेवात देशमें बीजामतियोंकों और मोरवी आदिकमें लुंकामतीयोंकों प्रबोधके श्रावक बनाए सो आजतक प्रसिद्ध है, तथा पार्श्वचंद्रके व्युद्ग्राह वीरमगाममें पार्श्वचंद्रके साथ वाद करकें पार्श्वचंद्रकों निरुत्तर करा, तब बहुत जिनोंनें जैनधर्म अंगीकार करा, असेही मालवेमें अरु उज्जयनी प्रमुख देशोंमें फिरकें धर्मकी प्रवृत्ति करी, यह श्रीविद्यासागर उपाध्यायजीने तपगछकी फिरवृद्धि करी, और क्रियाउद्धार करा पीछे श्रीआनंदविमलसूरिजी चौदह वर्ष तक जघन्यसेंभी नियत तप वर्जके वेलेसें कम तप नहीं करा, तथा जिनोंनें चतुर्थ, षष्ठ तप करकें वीश स्थानककी आराधना करी, यह संवत् (१५९६) वर्षे नवदिनका अनशन करिकें स्वर्ग गए

५७ श्रीआनंदविमलसूरि पट्टे श्रीविजयदानसूरि हूआ, जिनोंनें स्तंभतीर्थ, अहमदावादपत्तन, महीशानकगाम, गधार बंदिरादिमें महा महोत्सवपूर्वक अनेक जिनबिंबोंकी प्रतिष्ठा करी, तथा जिनोंके उपदेशसें बादशाह

गरमें श्री नेमिजिनकी यात्रा वास्ते गये, तहा श्री ऋषभदेव और नेमिना थजीकी वडी और बहुत पुरानी दोनो प्रतिमा और उस तत्कालके व नाए श्री नेमिनाथके चरणोकी प्रतिष्ठा करी, फिर आगरेमें शा० मानसिंह कल्याणमल्लका कराया (वनवाया) श्री चिंतामणि पार्श्वनाथादि बिंबोकी प्रतिष्ठा करी, सो आज तक आगरेमे श्री चिंतामणि पार्श्वनाथ प्रसिद्ध है, पीछें श्री गुरुजी फेर फतेपुर नगरमें गए और अकब्बर बादशाहसे मिले तहां एक प्रहर धर्मगोष्ठि धर्मोपदेश करा, तब बादशाह कहने लगा कि — मैनें आपको दर्शनके उत्कंठित हो कर दूरदेशसे बुलाए है, और आप हमसें कुछभी नही लेते हो, इस वास्ते आपकोजो रुचे सो मेरेसे मांगना चाहियें, जिस्से मेरे मनका मनोरथ सफल होवे, तब सम्यग्वि चार करके गुरुजीने कहा कि तेरे सर्वराज्यमें पर्यूषणोके आठ दिनोमें कोइ जनावर न मारा जाय और बंदिजन छोडे जाय मै यह मागा चाहता हू, तब बादशाहने गुरुकों निर्लोभी, शांत, दांत, जान करकें कहा कि आठ दिन तुमारी तर्फसे और चारदिन मेरी तर्फसे सर्व मिलकर बारहदिन तक अर्थात् भाद्रवावदि दशमीसे ले कर भाद्रवाशुदि छठ तक कोइ जानवर न मारा जायगा, पीछें बादशाहने सोनेके हर्फोंसे लिखवा कर छे फूरमान श्री गुरुजीको दीए, छे फूरमानकी व्यक्ति ये है — प्रथम श्री गूर्जरदेशका, दूसरा मालवेदेशका, तीसरा अजमेरदेशका, चौथा दिल्लीफतेपुरके देशका, पांचमा लाहोर मुलतान मण्डलका, और छठा श्री गुरुके पास रखनेका पूर्वोक्त पांचोदेशका साधारण फूरमान पांच, सो तिन तिन देशोमें भेजके अमारि पटह बजवा दीया, तब तो बादशाहकी आज्ञासें जो नहींभी जा नते थे ऐसे सर्व आर्य अनार्य कुल मण्डपमें दयारूपिणी वेलडी विस्तार वान् हो गइ, और बंदिवान जनभी बादशाहने गुरुपाससे उठ कर तत्काल छोड दीए, और एक कोशका झील अर्थात् तलावमें आप जाकर बादशाहने अपने हाथसे नानाजातिके नानादेशवालोंनें जो जो जानवर बादशा हको भेट कर हूए थे, वे सर्व छोड दीए, बादशाहसें गुरुजी अनेकवार मिले और अनेक जिनमंदिर अरु उपाश्रयोंके उपद्रव दूर करे, और जब श्री हीरविजय सूरि अपर देशको जाने लगे, तब बादशाहसे ऐसा फूर मान लिखवा ले गए, तिसकी नकलमैं इस पुस्तकमे लिखता हूं.

जते हूये, महामहोत्सवसे श्री हीरविजय सूरिजीके पास दीक्षा लीनी, ऐसा किसी आचार्यके समयमें नही हूआ था, तथा जिनोंके उपदेशसें अकब्बर बादशाहनें अपने सर्व राज्यमें एक वर्ष में छै महिनें तक जीव हिंसा बंद करी, जिजय छोडाया, इसका विशेष स्वरूप देखना होवे, तो हीरसौभाग्यकाव्यमेंसें देख लेना

और सक्षेपसें यहांभी लिखते है – एकदा कदाचित् प्रधान पुरुषोंके मुखसे अकब्बरशाहनें श्री हीरविजय सूरिके निरुपम शम दम संवेग वैराग्यादि गुणो सुणके बादशाह श्री अकब्बरनें अपनें नामांकित फुरमान भेज के बहुमान पुरस्सर गधार बंदिरसें आगरेके पास फतेपुर नगरमें द र्शन करनेकों बुलाया, तब गुरुजी अनेक भव्यजीवोंकों उपदेश देते हूये, क्रमसे विहार करते हूये विक्रम संवत् (१६३९) वर्षे ज्येष्ठवदि त्रयोदशी दिनें तहां आए तिसमें बादशाहका शिरोमणी प्रधान अबुल फजल नाम द्वारा उपाध्याय श्री विमलहर्षगणि प्रमुख अनेक मुनियोंसें परिवरे हूए बादशाहकों मिले तिस अवसरमें बादशाहने बडी खातरसें अपनी सभामें बैठाए, और परमेश्वरका स्वरूप गुरुका स्वरूप अरु धर्मका स्वरूप पूछा, और परमेश्वर कैसे प्राप्त होवे ? इत्यादि धर्मविचार पूछा, तब श्री गुरुने म धुर वाणीसें कहा कि जिसमे अठारह दूषण न होवें, सो परमेश्वर है, तथा पंचमहाव्रतादि धारक गुरु है, और आत्माका शुद्धस्वभाव जो ज्ञान दर्शन, चारित्ररूप है, सो धर्म है तब अकब्बरशाहने ऐसा धर्मोपदेश सु नके आगरासें अजमेर तक प्रतिकोश कूवा मनार सहित बनाए, और जी वहिंसा छोडकें दयावान् हो गया, तब अकब्बरशाह अतीव तुष्टमान होके कहनें लगा कि हे प्रभु ! आप पुत्र, कलत्र, धन, स्वजन, देहादिमेंभी ममत्व रहित हो, इस वास्ते आपकों सोना, चांदी, देना, तो ठीक नहीं, परंतु मेरे मकानमे जैनमतके पुराने पुस्तक बहुत हैं, सो आप लीजीये, और मेरे ऊपर अनुग्रह करीयें जब बादशाहका बहुत आग्रह देखा, तब श्री गुरुजीनें सर्व पुस्तक ले कें श्री आगरा नगरके ज्ञानभंडारमे स्थापन कर दीए, तब एक प्रहर तक गुरुजी धर्मगोष्टि करकें बादशाहकी आज्ञा लेकें बडे आडम्बरसे उपाश्रयमे आए, उस वखतमे लोकोंमे जैनमतकी उन्नति स्फीती हूइ, तिस वर्षमें आगरे नगरमे चौमासा करके सोरीपुर न

करी अब ये बहुत दूरसे हमारे पास आये है, और इनकी अरज वाजवी (सच्ची) है यद्यपि यह अरज मुसल्लमानी महजबसे (मतसे) विरुद्ध मालुम होती है, तोभी परमेश्वरके पिछाननें वाले आदमियोंका यह दस्तूर होता है, कि – कोइ किसीके धर्ममें दखल न देवे, और तिनोके रेवाज बहाल रखे इस वास्ते यह अरज मेरी समझमें सच्ची मालुम हुइ, जे सर्व पहाड तथा पूजाकी जगा बहुत अरसेसे जैनश्वेतांबरी धर्मवालोंकी है, तिस वास्ते इनकी अरज कबुल करी गइकि, सिद्धाचलका पहाड, तथा गिरनारका पहाड, तथा तारंगाजीका पहाड, तथा केशरीयाजीका पहाड तथा आबुका पहाड जो गुजरातके मुलकमें है तथा राजगृहके पांच पहाड तथा समेतशिखर उरफे पार्श्वनाथका पहाड, जो बंगालके मुलकमें है, ये सर्व पूजायोंकी जगायो तथा पहाड नीचें तीर्थकी जगायों जो मेरे राज्यमें है, चाहो किसी ठिकाने जैनश्वेतांबरी धर्मकी जगायो होवे, सो हीरविजय जैनश्वेतांबरी आचार्यकों देनेमें आइ है, और इनोनें अच्छीतरेसे परमेश्वरकी भक्ति करनी चाहिये

और एक बात यहभी याद रखनी चाहिये जो कि ये जैनश्वेतांबरी धर्मकी पहाड तथा पूजाकी जगा तथा तीर्थकी जगा, जे मैंनें श्रीहीरविजय सूरि आचार्यको दीनी हैं, परंतु हकीकतमें ये पूर्वोक्त सर्व जगायो जैन श्वेतांबर धर्मवालोंकोही हैं, और जहांतक सूर्यसे दिन रौशन रहे, तथा जहांतक चंद्रमासें रात रोशन रहे, तहां तक इस फुरमानका हुकम जैन श्वेतांबरी धर्मके लोकोंमें सूर्य तथा चंद्रमाकी तरें प्रकाशित रहे, और कोइ आदमी तिनको हरकत न करे, और किसी आदमीने तिन पहाडो उपर तथा तिनके नीचे तथा तिनकी आस पास पूजाकी जगायोंमें तथा तीर्थकी जगायोमें जानवर नहीं मारना, और इस हुकम ऊपर अमल करनां, इस हुकमसे फिरना नहीं, तथा नवीन सणद मांगनी नहीं लिखा तारीक ७ मी माह उरदी बहेस मुतावेक माह रवीयुल अवल सन् ३७ जुलसी यह अकब्बर बादशाहके दीये फुरमानकी नकल है

तथा थानसिंघकी कराइ अपर साह दूजणमल्लकी कराइ श्रीफतेपुरमें अनेक लाख रुपइये लगाके बडे महोत्सवसें श्री जिनप्रतिमाकी प्रतिष्ठा करी प्रथम चातुर्मास आगरेमें करा दूसरा फतेपुरमें करा तीसरा लिराम नाम नगरमें करा, चौथा फेर आगरेमें करा, फेर वहां बादशाहकी गोट वास्ते

जलालुदीन बादशाह
अकब्बर बादशाह
गाजीकाफुरमान

अकब्बरमोहरकी वंशावली
जलालुदीनअकब्बर बादशाह
हुमायुन बादशाहका बेटा
बाबरशाहका वीन बेटा
उमरशेख मीरजांका बेटा
सुलतान अबुस इदका बेटा
सुलतान महम्मदशाहका बेटा
मीर शाहका बेटा
अमीर तैमुरसाहि किरानका बेटा.

सूबे मालवा तथा अकब्बराबाद, लाहोर, मुलतान, अहमदाबाद, अजमेर, मीरत, गुजरात, बंगाला, तथा और जो हाल मैरे तावेके मुलक हैं तथा आंयदा, मुतसद्दी, सूबा, करोरी तथा जगीरदार इन सबोंकों मालुम रहे, कि जो हमारा पूरा इरादा यह है कि सर्व रइयतका मन राजी रखना, क्योंकि रइयतका जो मन है सो परमेश्वरकी एक बडी अनामत है, और विशेष करके वृद्ध अवस्थामें मेरा यही इरादा है, कि – मेरा भला वांछने वाली रइयत सुखी रहे तिस वास्ते हरेक धर्मके लोकोंमेंसें जो अच्छे विचार वाले परमेश्वरकी भक्ति करनेमें अपनी उमर पूरी करते हैं, तिनकों दूर दूर देशोंसें मैंने अपने पास बुलवाये, और तिनकी परीक्षा करकें अपनी सोवतमें रखता हूं, और तिनकी बाते सुनके मैं बहुत खुश होता हू, तिस वास्ते हमारे सुननमें आया है कि श्रीहीरविजय सूरि जैन श्वेतांबरमतका आचार्य गुजरातके बंदरोमें परमेश्वरकी भक्ति करता है, मैंने तिनकों अपनें पास बुलवाया, और तिनकी मुलाकात करकें हम बहुत खुश हूए, कितनेक दिन पीछें जब तिनोंनें अपने वतन जानेकी रजा मांगी, तब अरज करी कि जो गरीबपरवरकी मरजीसें ऐसा हुकम होना चाहियें कि – सिद्धाचलजी, गिरनारजी, तारंगाजी, केसरीआनाथजी, तथा आबुजीका पहाड, जो गुजरातमें है, तथा राजगृहके पांच पहाड तथा समेतशिखर उरफे पार्श्वनाथजी जे बंगालके मुलकमें हैं, तथा पहाड हेठली सर्व मंदिरोंकी कोठीयों तथा सर्व भक्ति करनेकी जगायोंमें, तथा तीर्थकी जगायोमें जो जैनश्वेतांबरी धर्मकी जगायों सर्व मेरे तावेके मुलकोमें जिस ठिकाने होवे, उन पहाडों तथा मंदिरोंकी आस पास कोइभी आदमी, कोइ जानवरको न मारे, यह अरज

करी अब ये बहुत दूरसें हमारे पास आयें हैं, और इनकी अरज वाजबी (सच्ची) है यद्यपि यह अरज मुसल्लमानी महजबसें (मतसें) विरुद्ध मालुम होती है, तोजी परमेश्वरके पिछाननें वाले आदमियोंका यह दस्तूर होता है, कि – कोइ किसीके धर्ममें दखल न देवे, और तिनोंके रेवाज बहाल रक्के इस वास्ते यह अरज मेरी समजमें सच्ची मालुम हुइ, जे सर्व पहाड तथा पूजाकी जगा बहुत अरसेंसे जैनश्वेतांबरी धर्मवालोंकी है, तिस वास्ते इनकी अरज कबुल करी गइकि, सिद्धाचलका पहाड, तथा गिरनारका पहाड, तथा तारंगाजीका पहाड, तथा केशरीयाजीका पहाड तथा आबुका पहाड जो गुजरातके मुलकमें है तथा राजगृहके पांच पहाड तथा समेतशिखर वरफे पार्श्वनाथका पहाड, जो बंगालके मुलकमें है, ये सर्व पूजायोंकी जगायों तथा पहाड नीचें तीर्थकी जगायों जो मेरे राज्यमें है, चाहो किसी ठिकाने जैनश्वेतांबरी धर्मकी जगायो होवे, सो हीरविजय जैनश्वेतांबरी आचार्यकों देनेमें आइ है, और इनोंनें अच्छीतरेंसें परमेश्वरकी जक्ति करनी चाहिये

और एक बात यहजी याद रखनी चाहियें जो कि ये जैनश्वेतांबरी धर्मकी पहाड तथा पूजाकी जगा तथा तीर्थकी जगा, जे मैनें श्रीहीरविजय सूरि आचार्यकों दीनी हैं, परंतु हकीकतमें ये पूर्वोक्त सर्व जगायों जैन श्वेतांबर धर्मवालोंकीही हैं, और जहांतक सूर्यसें दिन रौशन रहे, तथा जहांतक चंद्रमासें रात रोशन रहे, तहां तक इस फुरमानका हुकम जैन श्वेतांबरी धर्मके लोकोंमें सूर्य तथा चंद्रमाकी तरें प्रकाशित रहे, और कोइ आदमी तिनकों हरकत न करे, और किसी आदमीने तिन पहाडों उपर तथा तिनके नीचे तथा तिनकी आस पास पूजाकी जगायोंमें तथा तीर्थकी जगायोंमें जानवर नहीं मारना, और इस हुकम ऊपर अमल करना, इस हुकमसें फिरना नहीं, तथा नवीन सणद मांगनी नहीं लिखा तारीक ७ मी माह उरदी बहेस मुताबेक माह रबीयुल अवल सन् ३७ जुलसी यह अकब्बर बादशाहके दीये फुरमानकी नकल है

तथा थानसिंघकी कराइ अपर साह दूजणमल्लकी कराइ श्रीफतेपुरमें अनेक लाख रुपइये लगाके बडे महोत्सवसें श्री जिनप्रतिमाकी प्रतिष्ठा करी प्रथम चातुर्मास आगरेमें करा दूसरा फतेपुरमें करा तीसरा जिराम नाम नगरमें करा, चौथा फेर आगरेमें करा, फेर वहां बादशाहकी गोष्ट वास्ते

जलालुदीन बादशाह
अकब्बर बादशाह
गाजीकाफ़ुरमान

अकब्बरमोहरकी वंशावली.
जलालुदीनअकब्बर बादशाह
हुमायुन बादशाहका बेटा
बाबरशाहका बीन बेटा
उमरशेख मीरजांका बेटा
सुलतान अबुस इदका बेटा
सुलतान महम्मदशाहका बेटा
मीर शाहका बेटा
अमीर तैमुरसाहि किरानका बेटा

सूबे मालवा तथा अकब्बराबाद, लाहोर, मुलतान, अहमदाबाद, अजमेर, मीरत, गुजरात, बंगाला, तथा और जो हाल मेरे ताबेके मुलक हैं तथा आंयदा, मुतसद्दी, सूबा, करोरी तथा जगीरदार इन सबोंको मालुम रहे, कि जो हमारा पुरा इरादा यह है कि सर्व रइयतका मन राजी रखनां, क्योंकि रइयतका जो मन है सो परमेश्वरकी एक बडी अनामत है, और विशेष करके वृद्ध अवस्थामें मेरा यही इरादा है, कि – मेरा नला बांहने वाली रइयत सुखी रहे तिस वास्ते हरेक धर्मके लोकोंमेंसें जो अछे विचार वाले परमेश्वरकी नक्ति करनेमें अपनी उमर पूरी करते हैं, तिनकों दूर दूर देशोंसें मैंने अपने पास बुलवाये, और तिनकी परीक्षा करकें अपनी सोबतमें रखता हूं, और तिनकी बाते सुनके मैं बहुत खुश होता हूं, तिस वास्ते हमारे सुननमें आया है कि श्रीहीरविजय सूरि जैन श्वेतांबरमतका आचार्य गुजरातके बंदरोमें परमेश्वरकी नक्ति करता है, मैंने तिनकों अपनें पास बुलवाया, और तिनकी मुलाकात करकें हम बहुत खुश हूए, कितनेक दिन पीछें जब तिनोंनें अपने वतन जानेकी रजा मांगी, तब अरज करी कि जो गरीबपरवरकी मरजीसें असा हुकुम होना चाहियें कि – सिद्धाचलजी, गिरनारजी, तारंगाजी, केसरीआनाथजी, तथा आबुजीका पहाड, जो गुजरातमें है, तथा राजगृहके पांच पहाड तथा समेतशिखर उरफे पार्श्वनाथजी जे बंगालके मुलकमें हैं, तथा पहाड हेठली सर्व मंदिरोंकी कोठीयों तथा सर्व नक्ति करनेकी जगायोंमें, तथा तीर्थकी जगायोंमें जो जैनश्वेतांबरी धर्मकी जगायों सर्व मेरे तावेके मुलकोमें जिस ठिकाने होवे, उन पहाडों तथा मंदिरोंकी आस पास कोइनी आदमी, कोइ जानवरको न मारे, यह अरज

करी अब ये बहुत दूरसे हमारे पास आये हैं, और इनकी अरज वाजबी (सच्ची) है यद्यपि यह अरज मुसल्लमानी महजबसे (मतसें) विरुद्ध मालुम होती है, तोभी परमेश्वरके पिछाननें वाले आदमियोंका यह दस्तूर होता है, कि – कोइ किसीके धर्ममें दखल न देवे, और तिनोके रेवाज बहाल रखे इस वास्ते यह अरज मेरी समझमें सच्ची मालुम हुइ, जे सर्व पहाड तथा पूजाकी जगा बहुत अरसेसे जैनश्वेतांबरी धर्मवालोंकी है, तिस वास्ते इनकी अरज कबुल करी गइकि, सिद्धाचलका पहाड, तथा गिरनारका पहाड, तथा तारंगाजीका पहाड, तथा केशरीयाजीका पहाड तथा आबुका पहाड जो गुजरातके मुलकमें है तथा राजगृहके पांच पहाड तथा समेतशिखर उरफे पार्श्वनाथका पहाड, जो बगालके मुलकमें है, ये सर्व पूजायोंकी जगायों तथा पहाड नीचें तीर्थकी जगायों जो मेरे राज्यमें है, चाहो किसी ठिकाने जैनश्वेतांबरी धर्मकी जगायो होवे, सो हीरविजय जैनश्वेतांबरी आचार्यकों देनेमें आइ है, और इनोंनें अच्छीतरेंसें परमेश्वरकी भक्ति करनी चाहिये

और एक बात यहभी याद रखनी चाहियें जो कि ये जैनश्वेतांबरी धर्मकी पहाड तथा पूजाकी जगा तथा तीर्थकी जगा, जे मैंने श्रीहीरविजय सूरि आचार्यको दीनी हैं, परंतु हकीकतमें ये पूर्वोक्त सर्व जगायों जैन श्वेतांबर धर्मवालोंकोही हैं, और जहांतक सूर्यसे दिन रौशन रहे, तथा जहांतक चंद्रमासें रात रोशन रहे, तहां तक इस फुरमानका हुकम जैन श्वेतांबरी धर्मके लोकोंमें सूर्य तथा चंद्रमाकी तरें प्रकाशित रहे, और कोइ आदमी तिनकों हरकत न करे, और किसी आदमीने तिन पहाडो उपर तथा तिनके नीचे तथा तिनकी आस पास पूजाकी जगायोंमें तथा तीर्थकी जगायोंमें जानवर नहीं मारनां, और इस हुकम उपर अमल करनां, इस हुकमसें फिरनां नहीं, तथा नवीन सणद मांगनी नहीं लिखा तारीक ७ मी माह उरदी बहेस मुताबेक माह रवीयुल अवल सन् ३७ जुलसी यह अकब्बर बादशाहके दीये फुरमानकी नकल है

तथा थानसिंघकी कराइ अपर साह दूजणमल्लकी कराइ श्रीफतेपुरमें अनेक लाख रुपइये लगाके बडे महोत्सवसें श्री जिनप्रतिमाकी प्रतिष्ठा करी प्रथम चातुर्मास आगरेमें करा दूसरा फतेपुरमें करा तीसरा निराम नाम नगरमें करा, चौथा फेर आगरेमे करा, फेर वहां बादशाहकी गोष्ट वास्ते

श्रीशांतिचद्र उपाध्यायकों छोड गये, और आप गुरुजी मेह्डते, नागपुर चौमासा करकें सिरोंही नगरमें गये, तहां नवीन चतुर्मुख प्रासादमें श्री आदिनाथके बिंब तथा श्री अजितनाथके प्रासादमें श्री अजितनाथके बिंबोकी प्रतिष्ठा करकें अर्बुदाचलमें यात्रा करनेंकों गये, और पीछें श्री शांतिचद्र उपाध्यायने नवीन कृपारस कोश नामा ग्रंथ बनाके अकब्बर बादशाहकों सुनाया, तिसके सुननेंसे बादशाहनें दयाकी बहुत वृद्धि करी, तिसका स्वरूप यह है कि – बादशाहके जन्मके दिनसें एक मास अरु पर्यूषणाके बारां दिन, तथा सर्व रविवार, तथा सर्वसक्रांतिके दिन, नवरोजकामास, सर्व इद केदिन, सर्व मिहर वासरा, सर्व सोफी अनादिन इत्यादि सब मिलकर एक वर्षदिनमें छै महीनें तक जीवहिंसा बद कराइ, तिसके फुरमान लिखवाए सो फुरमान अबतक हमारें लोकोंके पास हैं, इसमें कुछ शका नहीं कि श्री हीरविजय सूरिजीने जैनमतकी वृद्धि और उन्नति बहुत करी ? मुसलमानोंकोंभी जिनोंनें दयावान् करा तथा स्थभनतीर्थ सवत् (१६४६) में स्थभनतीर्थवासी शा० तेजपालके बनवाये मदिरकी प्रतिष्टा करी

५९ श्री हीरविजय सूरि पट्टे श्री विजयसेन सूरि हूए इनका (१६०४) वर्षे जन्म (१६१३) वर्षे मातापिता सहित दीक्षा, (१६२६) वर्षे पंडित पद, (१६२८) वर्षे उपाध्याय पद पूर्वक आचार्य पद, (१६५२) वर्षे भट्टारक पद, (१६७१)वर्षे स्थभनतीर्थे स्वर्गवास जिनके वेरवहरख, अरु परमानंद येदोशिष्योनें अकब्बर बादशाहके बेटे जाहांगीरकों धर्म सुनाकें प्रतिबोधा, और जाहांगीर बादशाहसें फुरमान कराया तिसकी नकल यह है

उरुदीन महम्मद जहांगीर बादशाह गाजीका फुर मान

जहांगीरकी मोहरमें बशावलि नुरदीनमहम्म जहांगीर बादशाह अकब्बर बादशाह हुमायुन बादशाह बाबर बादशाह मीरजा उमरशेष सुलतानअबुसइस सुलतान मीरजामोहम्मशाह मीरांशाह अमीरतैमुर साहिब किरान

मेरे सर्वराजके विशेष करकें गुजरातकें सूबे, मोटे हाकिम तथा कीफायत करने वाले आमील तथा जागीरदार तथा करोरी तथा सर्व खातोंके कार कुनोंको मालुम होवे कि जो परमेश्वरके पिछानने वाले लोक हैं, तिनका यह दस्तूर है, कि हरेक मत तथा कोमके लोक इतनाही नही बलकि सर्व जीव सुखी रहें, और अब वेखहरख, तथा परमानद यतीयोंनें इनी यांकी रक्षा करने वालोंकी दरवारमें आकर तखतके पास खडेरहनें वालोसे अरज करी कि विजयसेन सूरि तथा विजयदेव सूरि और जे अछी बुद्धि वाले लोक है, तिनकी हरेक जगे तथा हरेक सहरोमें देहरा अर्थात् जिन मदिर तथा धर्मशाला है,तिनमें ये लोक ईश्वरकी भक्ति करते है औ प्रार्थना करतें हैं,और वेखहरख तथा परमानद यतीकी परमेश्वरकों राजी रखनेंकी हकीगत हमने अछी तरेंसे जान लीनी है, तिस वास्ते इनीयाकों तावे करने वाला हुकम हूआ कि —कोइ आदमीने इन जैनलोकोंके मदिर तथा धर्मशालामें उतरना नही तथा कारन विना अडचल नही करनी और जेकर ये लोक फिरकर नवा वनाया चाहेंतो तिनको किसीतरेंकी मनाई तथा हरकत नही करणी और तिनके साधुओके उपाश्रयोंमें कोइनेभी उतरणा नहीं, और जो ये लोक सोरठके मुलकमें शत्रुजय तीर्थकी यात्रा करने वास्ते जावे तो कोइभी आदमी तिन यात्रालुओंसे कुछ न मांगे ला लच न करे, और पूर्वोक्त वेखहरख अरु परमानदयतिकि अरज तथा खाहि स ऊपर हुकम वडा भारी हूआ कि हर अठवाडेमें रविवार तथा गुरुवार तथा हर महिनेंमें शुदि पडिवाका रोज तथा इदके दिन तथा हर वर्षमे न वरोज तथा माहशहरयुरमा जे हमारा मुबारक दिन है तिनमें एक एक व र्षके हिसाव प्रमाण मेरे सर्व राज्यमें कोइ जीवकी हिंसा न होवे, तथा शि कार करना तथा पक्षीयोंका पकडनां, मारनां, तथा मछलीयोंका मारनां, ये वंद कीया जावे तथा इस तरेके औरभी काम इन पूर्वोक्त दिनोंमें न होने चाहियें, ये वात जरूर है, जे पूर्वोक्त हुकम प्रमाण हमेशां चलानेकी को शिक करकें मेरे फुरमानके हुकमसें कोइ फिरे नहीं, विरुद्ध चले नहीं लि खा ता० माह सहर युरमें सन् ३ जुलसी यह फुरमान खाजाहानके चौ पानीयां तथा सेवक अली तकीके वर्त्तमान पत्रमें दाखल हूआ तरजुमा करनेवाला मुनशी सइयद अवदुलामीयां साहिव वगैरे

६० श्री विजयसेन सूरि पट्टे श्री विजयदेव सूरि हूये तिनका (१६३४) वर्षे जन्म (१६४३) वर्षे दीक्षा, (१६५०) वर्षे पंमित पदं, (१६५६) वर्षे उपाध्याय पद पूर्वक आचार्य पद, (१६०१) वर्षे स्वर्ग, ६१ श्री विजयदेव सूरि पट्टे श्री विजयसिंह सूरि हूये तिनका (१६४४) वर्षे जन्म, (१६५४) में वर्षे दीक्षा, (१६७३) वर्षे वाचक पद, (१६०१) वर्षे सूरि पद, (१७००) वर्षे स्वर्गगतं, ६२ श्री विजयसिंह तथा श्री विजयदेव सूरि पट्टे श्री विजयप्रज सूरि हूये, तिनका (१६७५) वर्षे जन्म, (१६०ए) वर्षे दीक्षा, (१७०१) वर्षे पंमित पदं, (१७१०) वर्षे उपाध्याय पदं, (१७१३) वर्षे नट्टारक पदं, (१७४ए) वर्षे स्वर्गगमन, इनोंके समयमें मुं हवधे ढुंढीयोंका पंथ निकला तिसकी उत्पत्ति ऐसे हैं –

सुरत नगरमें वोहरा वीरजी साहुकार दशाश्रीमालि वसता था, तिसकी फूलां नामें बालविधवा एक बेटीथी, तिसने एक लवजी नामा लडका गोदी लीया, तिस लवजीकों लुंकेके उपाश्रयमें पढने वास्ते नेजा, तहां यतीयोंकी संगतसें वैराग्य उत्पन्न हूआ, और लुंकेके यती बजरंग जीका शिष्य हूआ, तब दो वर्षे पीछें अपने गुरुकों कहने लगा कि जैसा शास्त्रोंमें साधुका आचार है वैसा तुम क्यों नही पालते हो ? तब गुरुने कहा पंचमकालमें शास्त्रोक्त सर्व क्रिया नहीं हो सक्ति है, तब लवजीने कहा तुम भ्रष्टाचारी मेरे गुरु नहीं मैंतो आपही सयम फेरकें लेऊंगा इस तरेंका क्लेश करके ऋषि लवजीने लुंके मतकी गुरु शिक्षा बोडके अपने साथ दो यति और लीए तिसमें एकका नाम नूणा,दूसराका नाम सुखजी इन तीनोंहीने अपने आपहीको दीक्षित करा, और मुंहके ऊपर कपडेकी पट्टी बांधी, तब इनका नवीन वेष देखकें गामोंमें किसी श्रावकने इनके रहनेकों जगा न दीनी, तब ये उजडे हूये मकानोंमें जा रहे गुजरात देशमें फूटे टूटे मकानकों ढूंढ कहते हैं, इस वास्ते लोकोंने इनका नाम ढूंढिये रक्खा, इन तीनोंको नवे मत चलानेमें बडे बडे क्लेश नोगने पडे परंतु इनके त्यागकों देखकें कितनेक लुंकेमति इनकों माननेनी लगे, क्योंकि यह नेडचाल जगत्में प्रसिद्ध है, और नोले लोक तो ऊपरली दूर्गा फूर्गा देखकें रागी हो जाते हैं, और गुजरातके बहुत लोक ऐसे हठ माही हैकि –जो बात पकड लेवे उस बातकों बहुत मुसकलसे बोडते है, इसी वास्ते जैनमतमें

केइ फिरके गुजरात देशसेही निकले है पीछें तिस लवजीका शिष्य अहम दावादके कालुपुरेका वासी ठतवाल सोमजी हूआ, तिसने सूर्यकी आत पना बहुत करी, तिसके चेलोंका नाम १ हरिदासजी, २ प्रेमजी, ३ गि रधरजी, ४ कान्हजी, प्रमुख और लुकेमति कुवरजीके चेलेभी इनके शिष्य बने तिनके नाम १ श्रीपाल, २ अमीपाल, ३ धर्मसी, ४ हरजी, ५ जी वाजी, ६ समरथ, ७ तोडुजी, ८ मोहनजी, ९ सदानदजी, १० गोधा जी, ये एक गुजरातका वासी धर्मदास छींपीनें मुंमपुंमाकें मुख ऊपर पट्टी बाधके अपने आपको ढूढिया साधु मशाहूर कीया, तिनमें हरिदासका चेला वृदावन हूआ, और वृदावनका चेला भुवानीदास हूआ, और भु वानीदासका चेला लाहोरका वासी मलूकचद हूआ, मलूकचदका महा सिघ, और महासिघका कुशालराय और कुशालरायका छजमल, और छ जमलका रामलाल, और रामलालके शिष्य रामरत्न, और अमरसिह, ये दोनो मैनें देखे हैं अब इन दोनोंके चेले वसतराय, और रामबकस वगैरे जीते हैं ये पजाब देशमें आज काल फिरते है

और जीवाजीका चेला लालचंद हूआ, लालचदका अमरसिंह हूआ सो मारवाड देशमें आया तिसके परिवारमें नानकजी जिनोंके चेले अब अजमेर अरु कृष्णगढके जिल्लेमें बहुत रहते हैं, और श्यामिदास जि नोंके परिवारके कन्हीराम, खेखराज, तखतमल, प्रमुख अब मारवाडमें रहते हैं और जो कोटेबूदीमें तथा मालवेमें लालचद, गणेशजी, गोविं दरामजी, हूये, तथा अमीचद, हुकमचद, खवयचंद, फतेचद ग्यानजी छ गन, मगन, देवकरण, अरु पन्नालाल प्रमुख फिरते हैं येभी हरिदास केही चेले हैं तथा अमरसिघका चेला दीपचद, दीपचदका, चेला धर्म दास, धर्मदासका जोगराज, जोगराजका हजारीमल्ल, हजारीमल्लका ला लजीराम, लालजीरामका गगाराम, गगारामका जीवणमल्ल, जो इस व खत दिल्लीके आसपासके गामोंमें फिरते है, तथा अमरसिघके परिवा रमें धनजी, मनजी, नाथूराम, अरु ताराचदादि हूये, हैं, जिनोंके चेले रतीराम, नदलाल, हूये नदलालका चेला रूपचद, रूपचदका विहारी, जोकि पंजाबमें कोट जगरावादि गामोमे रहिते हैं तथा कानजी और ध र्मदास छींपीके चेलेयोंमेंसें दीपचद, गुपालजी प्रमुख ये लींमडी, बढ

६० श्री विजयसेन सूरि पट्टे श्री विजयदेव सूरि हूये तिनका (१६३४) वर्षे जन्म (१६४३) वर्षे दीक्षा, (१६५५) वर्षे पंमित पद, (१६५६) वर्षे उपाध्याय पद पूर्वक आचार्य पद, (१७०१) वर्षे स्वर्ग, ६१ श्री विजयदेव सूरि पट्टे श्री विजयसिंह सूरि हूये तिनका (१६४४) वर्षे जन्म, (१६५४) में वर्षे दीक्षा, (१६७३) वर्षे वाचक पद, (१६८२) वर्षे सूरि पद, (१७०८) वर्षे स्वर्गगत, ६२ श्री विजयसिंह तथा श्री विजयदेव सूरि पट्टे श्री विजयप्रज्ञ सूरि हूये, तिनका (१६७५) वर्षे जन्म, (१६८९) वर्षे दीक्षा, (१७०१) वर्षे पंमित पद, (१७१०) वर्षे उपाध्याय पद, (१७१३) वर्षे नट्टारक पद, (१७४९) वर्षे स्वर्गगमन, इनोंके समयमें मुहबधे ढूंढीयोंका पंथ निकला तिसकी उत्पत्ति ऐसे हैं —

सुरत नगरमें वोहरा वीरजी साहुकार दशाश्रीमालि वसता था, तिसकी फूलां नामे बालविधवा एक बेटीथी, तिसने एक लवजी नामा लडका गोदी लीया, तिस लवजीकों लुंकेके उपाश्रयमें पढने वास्ते नेजा, तहां यतीयोंकी संगतसें वैराग्य उत्पन्न हूआ, और लुंकेके यती बजरंगजीका शिष्य हूआ, तब दो वर्षे पीछे अपने गुरुकों कहने लगा कि जैसा शास्त्रोंमें साधुका आचार है वैसा तुम क्यों नही पालते हो ? तब गुरुने कहा पंचमकालमें शास्त्रोक्त सर्व क्रिया नहीं हो सक्ति है, तब लवजीने कहा तुम भ्रष्टाचारी मेरे गुरु नहीं मैंतो आपही सयम फेरकें लेऊंगा इस तरेंका क्लेश करके ऋषि लवजीने लुके मतकी गुरु शिक्षा छोडके अपने साथ दो यति और लीए तिसमें एकका नाम नूणा,दूसराका नाम सुखजी इन तीनोंहीने अपने आपहीको दीक्षित करा, और मुंहके ऊपर कपडेकी पट्टी बांधी, तब इनका नवीन वेष देखकें गामोंमें किसी श्रावकने इनके रहनेकों जगा न दीनी, तब ये उजडे हूये मकानोंमें जा रहें गुजरात देशमें फूटे टूटे मकानकों ढूंढ कहते हैं, इस वास्ते लोकोंने इनका नाम ढूंढिये रक्खा, इन तीनोंको नवे मत चलानेमें बडे बडे क्लेश नोगने पडे परंतु इनके त्यागकों देखकें कितनेक लुकेमति इनकों माननेनी लगे, क्योंकि यह नेडचाल जगत्में प्रसिद्ध है, और नोले लोक तो ऊपरली टूंगां फूंकां देखकें रागी हो जाते है, और गुजरातके बहुत लोक ऐसे हठ माही हैकि —जो बात पकड लेवे उस बातकों बहुत मुसकलसे छोडते है, इसी वास्ते जैनमतमें

यशोविजयगणि इनदोनोंने श्रीविजयसिंहसूरिकी आज्ञा लेकें गछमेंक्रि याशिथिल साधुओंको देखकें और ढूंढकमतके पाखंड अंधकारके दूर क रणे वास्ते क्रिया उद्धार करा, और जिनोंने काशीके पंडितोंसे जयपता काका उंडा पाया, और गुजरात प्रमुख देशोंसे प्रतिमा उछापक कुलिंगी योंके मतरूप अंधकारको दूर करा, और जिनोंके रचे हूए (१००) ग्रंथ अध्यात्मसार, स्याद्वादकल्पलता, शास्त्रसमुच्चयकीवृत्ति, मल्लवादी सूरिकृत नयचक्र उद्धारादि, अनेक वडेवडे एक सौ ग्रंथ है

श्रीगणिसत्यविजयजी क्रिया उद्धार करके श्रीआनंदघनजीके साथ व हुत वर्ष लग वनवासमे रहे, और बडी तपस्या योगाभ्यासादि करा, जब बहुत वृद्ध हो गए, जंघामे चलनेका बल न रहा, तब अणहल पट्टनमे जा रहे तिनके उपदेशसे तिनके दो शिष्य हूए, एक गणिकपूरविजयपं डित, और दूसरा पंडित कुशलविजयजी, तिनमे गणिकपूरविजयजीनेंतो अनेक अर्हंत बिंबोंकी प्रतिष्ठा करी, और अनेक ग्राम नगरोंमें धर्मकी वृद्धि करी, वडे प्रभावक हूए, श्रीगणिकर्पूरविजयजीके दो शिष्य हूए, एक पंडित वृद्धिविजय गणि, दूसरा पंडित क्षमाविजयगणि, श्रीपंडित क्षमाविजयगणिके शिष्य पंडित श्रीजिनविजय गणि, तिनका शिष्य पंडित उत्तमविजयगणि, तिनका शिष्य पंडित पद्मविजयगणि, तिनका शिष्य पं डित रूपविजयगणि, तिनका शिष्य पंडित कीर्त्तिविजयगणी तिनका शिष्य पंडित कस्तूरविजयगणी तिनका शिष्य मुनिमणिविजयगणि, तिनका शिष्य मुनि बुद्धिविजय गणि, तिनका शिष्य पंडित मुक्तिविजय गणि, तिनोंके हाथका दीक्षित लघु गुरु भ्रातृ इस जैनतत्त्वादर्शग्रंथके लिखनेवाला मुनि आत्माराम आनंदविजय नामक हूं इतिगुरावलिसंपूर्ण ॥

अब इस ग्रंथके लिखनेवालेके समयमें इतने नवीनपंथ निकले हैं सो लिखते हैं – गुजरातदेशमें स्वामी नाराणकापंथ, और बंगालदेशमें ब्रह्म समाजीयोंका पंथ, और पंजाबदेशमें लोदीहानेसें दश कोशके अंतरे एक भयणीनामा गाम है तिसमें रहनेवाला जातिका त्रखाणसिख तिसके उपदेशसें कूका नामे पंथ, और कोइलमे मौलवी, अहमदशाहका नवीन फिरका, तथा दयानंदसरस्वतीस्वामीका निकाला आर्यसमाजका पंथ इत्यादि अनेकमत पुराने मतोकों छोडके निकाले है, क्योंकि इनोनें अ

वाण, मोरबी, गोंमल, जैतपुर, राजकोट, अमरेली, धांगधरा, प्रमुख झा लावाड, काठीयावाड, मछुकांठा प्रमुख देशोके गामोंमें फिरते रहते हैं और धर्मदास छींपिका चेला धनाजी, धनाजीका जूदरजी, जूदरजीका रघुनाथजी, जैमलजी, गुमानचंद, दुर्गदास, कन्हीराम, रत्नचंद्र, हमीरमल्ल, कचौडीमल्ल प्रमुख जो अब मारवाडदेशमें रहते हैं सो प्रसिद्ध हैं

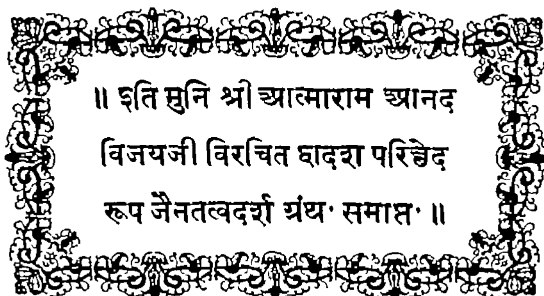
और रघुनाथजीका चेला भीखमजी संवत् (१८१८) में हूआ, जिसने तेराहपंथ निकाला तिसके चेले भारमल, हेमजी, रायचंद, जीतमल्ल, जीतमल्लकी गद्दी उपर अब मेघजी है, ये पट्टीबंध-जितने साधु हैं इनका पंथ संवत (१७०९) के सालसें चला है, और इनका मत जबसें निकला है, तबसें ले कर आजपर्यंत इनके मतमे कोइभी विद्वान् नहीं हूआ है, क्योंकि ये लोक कहते हैं कि.– व्याकरण, कोश, काव्य, छंद, अलंकार, पढनेंसें तथा तर्कशास्त्र पढनेंसें बुद्धि मारी जाती है इस वे इलमीकेही सबबसें ये लोक परस्पर बडा द्वेष रखते हैं, केइ मनमानी कल्पित बाते बना लेते हैं, एक दुसरेके पग नही जमने देते, मनमे जानते है कि – मेरे गृहस्थ चेलोंकों वह लेवेगा ? इत्यादि मेरे लिखनेमें किसीकों शंका होवे तो मारवाडमें जाकर प्रत्यक्ष देख लेवे, इनका आचार, व्यवहार, वेष, श्रद्धा, प्ररूपणा, प्रमुख है सो जैनमतके शास्त्रानुसार नहीं है, और दूसरे मतोंवालेभी जो बहुत जैनमतकों बूरा जानते हैं, वो इन ढूंढीयोंके हीके आहार व्यवहारके देखनेसें जानते हैं परंतु यह लोक तो सर्व जैन मतसें विपरीत चलने वाले हैं, इति ढुंढकमतोत्पत्ति ॥

६३) श्रीविजयप्रभसूरिपट्टे श्रीविजयरत्न सूरि हूए, ६४ श्रीविजय रत्नसूरिपट्टे श्रीविजयक्षमासूरि हूए, ६५ श्रीविजयक्षमा सूरिपट्टे श्रीवि जयदयासूरि, ६६ श्रीविजयदयासूरिपट्टे श्रीविजयधर्मसूरि, ६७ श्री विजयधर्मसूरिपट्टे, श्रीजिनेंद्रसूरि, ६८ श्रीजिनेंद्रसूरिपट्टे श्रीदेवेंद्रसूरि, ६९ श्रीदेवेंद्रसूरिपट्टे श्रीविजयधरणेंद्रसूरि, जोकि इस वर्त्तमान कालमें विद्यमान विचरते हैं

तथा एकसठमे पाटें जो श्रीविजयसिंह सूरिथे तिनका शिष्य श्रीसत्य विजयगणि हूए और महोपाध्याय षटशास्त्रवेत्ता, न्यायविशारद, बिरुदधा रक महावैय्याकरण, तार्किकशिरोमणि, बुद्धिका समुद्र महोपाध्याय श्री

पनी बुद्धि समान प्राचीनोंके करे पुस्तक तथा वेदार्थोंकों नही समजा जेकर इसीतरें नवीन नवीन मत निकलते रहेतो कोइकदिनमे ब्राह्मणादि मताधिकारीयोंकी रोजी मारी जायगी, और धर्म अरु नियम किसिकिसिका कायम रहेगा ?

इति श्रीतपगछीय मुनिगणिश्री मणिविजय तच्छिष्य मुनि श्रीबुद्धिविजय छिष्य मुनि आत्मरामआनदविजय विरचिते जैनतत्त्वादर्शे गुरुआवलि कथन रूप द्वादश परिछेद सपूर्ण ॥ १२ ॥



॥ इति मुनि श्री आत्माराम आनद विजयजी विरचित द्वादश परिछेद रूप जैनतत्वदर्श ग्रंथ· समाप्त· ॥